रागिनी शर्मा

राजस्थान एवं एम. डी. एस. विश्वविद्यालयों के बी.ए. द्वितीय वर्ष
(द्वितीय प्रश्न-पत्र) हेतु एक अद्वितीय पाठ्य-पुस्तक)

भारतीय सामाजिक समस्याएं

[INDIAN SOCIAL PROBLEMS]

(प्रत्येक अध्याय से सम्बन्धित लघु उत्तरीय एवं वस्तुनिष्ठ प्रश्न
का परिशिष्ट पुस्तक के अन्त में दिया गया है)

प्रो. एम. एल. गुप्ता
प्राचार्य एवं स्नातकोत्तर विभागाध्यक्ष

एवं

डॉ. डी. डी. शर्मा
प्राचार्य
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बारां

2000



साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा

all
about the book

I S B N-81-7288-135-5

Price : Rs. 80.00

Tenth Revised Edition . 2000

Published by
Sahitya Bhawan Publications
Hospital Road, Agra-282 003
Tel 351665, 353400, 360899
Fax 0562-351568

Printed at
Bhawan Printers
Agra

Note Due care and diligence has been taken while editing and printing the book, neither the author nor the publisher of the book hold any responsibility for any *mistakes that may have inadvertently crept in.*

भूमिका

- सर्वप्रथम उन विद्यार्थियों एवं विज्ञ-प्राध्यापको के प्रति आभार प्रकट करना हम अपना पुनीत दायित्व समझते हैं जिन्होंने प्रथम नौ संस्करणों की उपयोगिता एव उपादेयता को मान्यता प्रदान की। इस दशम् संस्करण को पूर्णतः परिशोधित एवं परिवर्द्धित रूप में प्रस्तुत करते हुए हमें हर्ष का अनुभव हो रहा है। पुस्तक में भाषा-शैली तथा विषय की स्पष्ट अभिव्यक्ति को प्रमुखतः प्रधानता दी गयी है। साथ ही विषय से सम्बन्धित उपलब्ध नवीनतम् प्रामाणिक सूचनाओं को पुस्तक में स्थान देने का पूर्ण प्रयास किया गया है। जनगणना 1991 से सम्बन्धित नवीन आंकड़ों को भी यथास्थान दिया गया है।

- वास्तव में पुस्तक की लोकप्रियता का श्रेय उन सहृदय पाठकों एवं सहकर्मियों को ही है जिन्होंने इसे आशा के अनुरूप पाया। हम पुस्तक के प्रकाशक श्री के. एल. बंसल को विशेष रूप से धन्यवाद देना चाहेंगे जिनके सद्प्रयत्नों से बहुत ही कम समय में सुन्दर ढंग से पुस्तक प्रकाशित हो पायी है। हमें पूर्ण विश्वास है कि पूर्ववत् ही आप इस संस्करण को भी अपनायेंगे। सभी विज्ञ-जनों से अपने रचनात्मक सुझाव भेजने का नम्र निवेदन है।

एम. एल. गुप्ता

(एम. एल. गुप्ता)

(डी. डी. शर्मा)

विषय-सूची

अध्याय | पृष्ठ-संख्या

नोट—1. महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर के पाठ्यक्रम में अध्याय 14, 15, 16 तथा 17 नहीं हैं। अतः अजमेर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध विद्यार्थियों को ये अध्याय नही पढ़ने है।

2. राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के पाठ्यक्रम में अध्याय 10 के अतिरिक्त शेष सभी अध्याय हैं। अतः राजस्थान विश्वविद्यालय से सम्बद्ध विद्यार्थियों को अध्याय 10 नहीं पढ़ना है।

1

सामाजिक समस्याओं की अवधारणा

[CONCEPT OF SOCIAL PROBLEMS]

समाजशास्त्र काफी लम्बे समय से सामाजिक समस्याओ के अध्ययन मे रुचि लेता रहा है। यदि यह कहा जाय कि समाजशास्त्र का विकास समस्यामूलक परिस्थितियो को कम करने के प्रयत्न के रूप में ही हुआ, तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी। सामाजिक समस्याए एक उपयोगी समाजशास्त्रीय अवधारणा है। सामाजिक समस्याओ के अध्ययन में लोगो की रुचि के बने रहने का कारण यह है कि ये सामाजिक जीवन का अभिन्न अंग हैं। मनुष्य कभी भी सामाजिक समस्याओं से पूर्णतः मुक्त नहीं रहा है। इतना अवश्य है कि आज संचार के साधनों तथा शिक्षा के प्रसार के कारण वह इन समस्याओ के प्रति अधिक संवेदनशील हो गया है। परिणाम यह हुआ है कि असन्तुष्ट लोगों के व्यवहार के प्रति समाज में जागरूकता आयी है। लोग यह अनुभव करने लगे है कि राष्ट्र के साधनों का कुछ भाग सामाजिक समस्याओं को हल करने में खर्च किया जाना चाहिए।

तीव्र गति से होने वाले सामाजिक परिवर्तनों के साथ-साथ सामाजिक समस्याओं में लोगों की रुचि बढती जा रही है। वर्तमान में सामाजिक समस्याओ के निवारण के लिए लोग अर्थशास्त्रियों, मनोवैज्ञानिको तथा समाजशास्त्रियों के विशिष्ट ज्ञान का लाभ उठाना चाहते हैं। पिछले कुछ ही वर्षो से, विशेषतः स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद, समाजशास्त्रियों ने सामाजिक समस्याओं के वैज्ञानिक अध्ययन की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया है। इस अध्ययन में एक सबसे बड़ी कठिनाई इस बात को लेकर आती है कि सामाजिक समस्या को हल कैसे किया जाय, सामाजिक समस्या कैसे बनती है, सामाजिक समस्या किसे माना जाय तथा किन समस्याओं को प्राथमिकता दी जाय।

सामाजिक समस्याओ के समाधान को लेकर समाजशास्त्रियों मे मतभेद पाया जाता है। इसका कारण यह है कि किसी भी समस्या के निराकरण के लिए अनेक विकल्प हो सकते है। किसी सामाजिक समस्या का उदाहरण प्रस्तुत करना सरल है परन्तु उसे परिभाषित करना कठिन है। बाल-अपराध, वयस्क-अपराध, बेकारी, निर्धनता, शारीरिक और मानसिक बीमारी, मद्यपान, विवाह-विच्छेद, जातिवाद, युद्ध आदि सामाजिक समस्याओं के उदाहरण है। इन सभी समस्याओ के बीच एक पारस्परिक सम्बन्ध पाया जाता है। एक लम्बे समय तक बेकारी के बने रहने से निर्धनता उत्पन्न होती है। इसी प्रकार एक लम्बी अवधि तक युद्ध के चलने से विवाह-विच्छेदों, बाल-अपराधों तथा मानसिक बीमारियों की संख्या मे वृद्धि होती है। कहने

का तात्पर्य यह है कि सामाजिक समस्याएं एक दूसरे पर अन्तर-निर्भर होती हैं। अतः इनमें से किसी को भी सुलझाने के लिए इन सभी के निवारण के लिए एक साथ प्रयत्न करना आवश्यक होता है। साधारणतः यह भी विश्वास किया जाता है कि एक समस्या के निराकरण से कोई दूसरी समस्या उत्पन्न हो सकती है।

एक सामाजिक समस्या की किसी भी परिभाषा में तीन तत्व पाये जाते हैं : प्रथम, सामाजिक समस्या एक ऐसी दशा है जिसमें सापेक्ष रूप से काफी लोग उलझे होते हैं, यद्यपि यह कहना कठिन है कि कितने लोग। द्वितीय, इस दशा को अधिकांश लोगों की मूल्य-व्यवस्था की दृष्टि से समाज के कल्याण के लिए खतरा समझा जाता है। तृतीय, यह मानकर चला जाता है कि सामूहिक प्रयत्न के द्वारा इस दशा को नियन्त्रित किया जा सकता है। यहां हमें इस बात को भी ध्यान में रखना है कि एक सामाजिक समस्या वस्तुनिष्ठ दृष्टि से (यथार्थ में) मौजूद हो सकती है, परन्तु यह व्यक्तिपरक ढंग से अस्तित्व में नहीं आ सकती जब तक कि समाज के बहुत-से लोग उसके प्रति जागरूक न हों। अतः यह कहा जा सकता है कि एक सामाजिक समस्या का अस्तित्व उसके प्रति जनता में जागरूकता पर निर्भर करता है। उस समस्या को हल करने के प्रयत्न इस बात पर निर्भर करते हैं कि उसके विरुद्ध जनमत को कितने प्रभावशाली ढंग से संगठित किया जाता है?

सामाजिक समस्या की परिभाषा में एक तत्व यह भी है कि यह एक ऐसी दशा है जिसे समाज खतरे के रूप में देखता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि एक विशिष्ट दशा की उपस्थिति मात्र से सामाजिक समस्या निर्मित नहीं होती है। महत्वपूर्ण बात यह है कि लोग उस दशा को किस रूप में परिभाषित करते हैं। वे विभिन्न परिस्थितियों या दशाओं को अपने मूल्यों, मनोवृत्तियों तथा प्रेरणाओं की पृष्ठभूमि में ही देखने या समझने की कोशिश करते हैं। इनमें सबसे अधिक महत्व मूल्यों का है जो व्यक्ति की मनोवृत्तियों को प्रभावित करते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि एक ऐसी सामाजिक दशा जो सामान्य रूप से अधिकांश लोगों के मूल्यों की दृष्टि से खतरे के रूप में देखी जाती है, सामाजिक समस्या मानी जाती है। बाल-अपराध तथा वयस्क-अपराध निजी सम्पत्ति तथा जीवन के लिए खतरे के रूप में हैं। इसी कारण इन्हें सामाजिक समस्याओं के रूप में देखा जाता है। स्पष्ट है कि एक सामाजिक दशा को सामाजिक समस्या के रूप में परिभाषित करने में समाज विशेष की मूल्य-व्यवस्था का काफी महत्व होता है। जब तक किसी सामाजिक दशा को समाज के अधिकतर लोग अपने कल्याण के लिए खतरे के रूप में नहीं देखें, तब तक वह सामाजिक समस्या नहीं कहला सकती। बेकारी अथवा मद्यपान उसी समय सामाजिक समस्याओं की श्रेणी में आते हैं जब इनकी मात्रा इतनी बढ़ जाये कि समाज को इनसे खतरा पैदा हो जाय। ये समस्या का रूप उसी समय ग्रहण करते हैं जब बहुत-से लोग इनसे प्रभावित हों, इनके प्रति जागरूक हों और इनके हल के लिए सामूहिक रूप से प्रयत्नशील हों।

सामाजिक समस्या : परिभाषा और अर्थ
(SOCIAL PROBLEM : DEFINITION AND MEANING)

सामाजिक समस्या को परिभाषित करना यद्यपि कठिन अवश्य है, परन्तु फिर भी बहुत-से विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से इसे परिभाषित किया है। डब्ल्यू. वेलेस वीवर के

अनुसार, "सामाजिक समस्या एक ऐसी दशा है जो चिन्ता, तनाव, संघर्ष या नैराश्य उत्पन्न करती है और आवश्यकता की पूर्ति में बाधा डालती है।"[1]

सामाजिक समस्या उद्वेगात्मक अथवा मानसिक व्याकुलता के लिए उत्तरदायी है। चिन्ता, समस्या मे गतिशील तत्व के रूप में पायी जाती है। एक समस्यामूलक परिस्थिति उन व्यक्तियों को इसका हल खोजने के लिए बाध्य करती है जो इससे प्रभावित हों। समस्या से छुटकारा प्राप्त करने के लिए परिस्थिति को सामाजिक परिवर्तनों के माध्यम से बदलना आवश्यक होता है। सामाजिक समस्याओं के अध्ययन में ध्यान सामाजिक परिस्थितियों पर केन्द्रित किया जाता है।

राब तथा सेल्जनिक ने सामाजिक समस्या को "मानवीय सम्बन्धों से सम्बन्धित एक समस्या माना है जो समाज के लिए गम्भीर खतरा पैदा करती है अथवा जो व्यक्तियों की महत्वपूर्ण आकांक्षाओं की प्राप्ति में बाधाएं उत्पन्न करती है।"[2]

पाल लैण्डिस के अनुसार, "सामाजिक समस्याएं व्यक्तियों की कल्याण सम्बन्धी अपूर्ण आकांक्षाएं हैं।"[3]

क्लेरेंस माशकिस के मतानुसार, "सामाजिक समस्या का तात्पर्य किसी ऐसी सामाजिक परिस्थिति से है जो एक समाज में काफी संख्या में योग्य अवलोकनकर्ताओं के ध्यान को आकर्षित करती है, और सामाजिक अर्थात् सामूहिक, किसी एक अथवा दूसरे किस्म की क्रिया के द्वारा पुनः सामंजस्य या हल के लिए उन्हें आग्रह करती है।"[4]

रिचार्ड सी. फुल्लर तथा रिचार्ड मायर्स के अनुसार, "व्यवहार के जिन प्रतिमानों या परिस्थितियों को किसी समय समाज के बहुत-से सदस्य आपत्तिजनक अथवा अवांछनीय मानते हों, वे ही सामाजिक समस्याएं हैं। इन सदस्यों की यह मान्यता रहती है कि इन समस्याओं को हल करने और उनके कार्यक्षेत्र को कम करने के लिए सुधार-नीतियों, कार्यक्रमों एवं सेवाओं की आवश्यकता होती है।"[5]

मैरिल तथा एल्डरिज ने बताया है कि "सामाजिक समस्याएं उस समय उत्पन्न होती हैं जब गतिहीनता के कारण काफी संख्या में लोग अपनी-अपनी अपेक्षित सामाजिक भूमिकाओं मे कार्य करने में असमर्थ होते हैं।"[6]

1 "A social problem is any condition that causes strain, tension, conflict or frustration and interferes with the fulfilment of a need"
—W. Wallace Weaver, *Social Problems*, p 1

2 "It is a problem in human relationship which seriously threatens society or impedes the important aspirations of many people"
—Roab Earl and Selznick, G. J, *Major Social Problems*, p. 4

3 "Social problems are man's unfulfilled aspirations for welfare"
—Landis, Paul H, *Social Problems*, p 3.

4 Clarence Marsh Case, *What is a Social Problem?* The Journal of Applied Sociology, May-June 1924, pp 268-273

5 Richard C. Fuller & Richard Myers, "Some Aspects of a Theory of Social Problems" in American Sociological Review (Feb. 1941), pp. 24-32, and W S Kisson, *Social Problems in Our Times*, p. 4

6 Merril, Francis E. & Eldredge, H. W., *Culture & Society*, p 517.

हॉर्टन तथा लेस्ले के अनुसार, "सामाजिक समस्या एक ऐसी स्थिति है जो बहुत-से लोगों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है तथा जिसका हल सामूहिक क्रिया द्वारा ही हो सकता है।"[1]

वाल्स एवं फर्फे की मान्यता है कि "सामाजिक समस्या सामाजिक आदर्शों का विचलन (deviation) है जिसका निराकरण सामूहिक प्रयास से ही सम्भव है।"[2]

अरनाल्ड एम. रोज ने लिखा है कि "सामाजिक समस्या एक ऐसी परिस्थिति है जो किसी समूह के द्वारा अपने सदस्यों के लिए असन्तोष के एक स्रोत के रूप में देखी जाती है और जिसमें बेहतर विकल्पों को मान्यता दी जाती है ताकि समूह या समूह में व्यक्ति कोई परिवर्तन लाने के लिए प्रेरित होते हैं। इसे सामाजिक समस्या प्रमुखतः इसलिए माना जाता है क्योंकि यह सामाजिक वातावरण मे ही पायी जाती है और उत्तरदायी कारणों को इस रूप मे देखा जाता है कि ये पर्यावरण में ही मौजूद है।"[3]

शेपर्ड तथा वॉस के अनुसार, "एक सामाजिक समस्या समाज की कोई भी ऐसी सामाजिक दशा है जिसे समाज के एक बहुत बड़े भाग या शक्तिशाली भाग द्वारा अवांछनीय और ध्यान देने योग्य समझा जाता है।"[4]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर सामाजिक समस्याओं के अर्थ को भली-भांति समझा जा सकता है। इन परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि सामाजिक समस्या के अर्थ में निम्नलिखित सामान्य तत्व पाये जाते हैं :

(1) सामाजिक समस्या एक ऐसी कष्टप्रद दशा है जो व्यक्ति और समाज दोनों के विकास की दृष्टि से बाधक है।

(2) सामाजिक समस्या का मनोवैज्ञानिक एवं भौतिक विस्तार इतना होता है कि उससे एक महसूस की जाने वाली आवश्यकता की पूर्ति में बाधा पड़ती है।

(3) किसी सामाजिक दशा के सामाजिक समस्या कहलाने के लिए यह आवश्यक है कि समूह या जनता में उसके प्रति जागरूकता पायी जाय।

(4) असामंजस्यपूर्ण शक्तियों तथा उनके परिणामों को रोकने के लिए सामाजिक क्रिया एवं नियन्त्रण की आवश्यकता पड़ती है।

(5) पुन. सामंजस्य स्थापित करने के लिए पर्यावरण सम्बन्धी परिस्थिति मे संरचनात्मक संशोधन आवश्यक रहता है।

स्पष्ट है कि सामाजिक समस्याएं वे सामाजिक दशाएं या परिस्थितियां हैं जो समाज में सामंजस्य, सुदृढ़ता एवं सामाजिक मूल्य-व्यवस्था के लिए खतरा मानी जाती हैं। अतः सामाजिक समस्याओं को हम उन सामाजिक दशाओं के रूप मे परिभाषित कर सकते हैं जो सामाजिक कल्याण के लिए काफी खतरे के रूप मे होती हैं, जिनके प्रति एक समाज के काफी लोग जागरूक होते हैं और निराकरण के लिए सामूहिक रूप से कोई रचनात्मक कार्य या प्रयास करने की आवश्यकता अनुभव करते हैं। किसी सामाजिक समस्या को हल करने हेतु सार्वजनिक धन से व्यय किया जाता है।

1 Horton, Pa
2 Walsh, Ma
3 Arnold M
of Social P
4 Shepard &

किसी सामाजिक दशा को सामाजिक समस्या के रूप में समझने और हल करने के लिए फुल्लर के अनुसार तीन अवस्थाओं से गुजरना आवश्यक है। प्रथम, किसी परिस्थिति को सामाजिक समस्या मानने के लिए यह आवश्यक है कि लोगो को यह दृढ विश्वास हो कि वह परिस्थिति लोगों की मूल्य-व्यवस्था की दृष्टि से अनुचित है और उसको हल करने के लिए कुछ करना चाहिए। द्वितीय, किसी सामाजिक समस्या के अस्तित्व को स्वीकार करने पर उसके निवारण के लिए अनेक सुझावो में से किसी एक को मानकर उसके अनुरूप साधन ढूंढने का प्रयास किया जाता है। तृतीय, किसी साधन को ढूंढने के पश्चात् उसको कार्यान्वित कर सुधार लाने की कोशिश की जाती है।

अधिकांश सामाजिक समस्याएं मानव-निर्मित होती है और उन्हे सच्चे सामूहिक प्रयत्नो द्वारा हल किया जा सकता है। जोन जे. केन ने सामाजिक समस्याओं को दो श्रेणियो में बांटा है। प्रथम, प्रकट सामाजिक समस्याएं (Overt Social Problems) और द्वितीय, प्रत्याशित (गुप्त) सामाजिक समस्याएं (Covert Social Problems)।[1] एक प्रकट सामाजिक समस्या एक ऐसी सामाजिक दशा है जिसके लिए राज्य या निजी एजेन्सियों अथवा दोनो के द्वारा सामूहिक रूप से उपचारात्मक प्रयत्न किये जाते है क्योंकि जनता को इसके प्रति जागरूक कर दिया जाता है और वह ऐसा विश्वास करने लगती है कि यह दशा समाज की मूल्य-व्यवस्थाओं के अनुसार समाज के लिए खतरा है। बाल अपराध, अपराध, मद्यपान, बेकारी, निर्धनता तथा जनसंख्या-वृद्धि आदि इसी श्रेणी में आती हैं। एक प्रत्याशित सामाजिक समस्या वह है जिसके लिए कोई उपचारात्मक सामूहिक कार्यवाही नही की गयी हो, लेकिन जो फिर भी समाज के लिए खतरा है, कम से कम जनता के किसी खण्ड या समूह अथवा कई सुयोग्य अवलोकनकर्ताओं के मस्तिष्क में। स्पष्ट है कि प्रत्याशित सामाजिक समस्या भी एक वास्तविक समस्या है, लेकिन वह उस समय तक सामाजिक समस्या के रूप में प्रतीत नहीं होती जब तक कि उसके प्रति जनता में जागरूकता पैदा नहीं की जाती और उसके निवारण के लिए कोई सामूहिक कार्यवाही नही की जाती। हमारे देश में अस्पृश्यता सैकड़ो वर्षों तक एक प्रत्याशित सामाजिक समस्या के रूप में रही है, परन्तु वर्तमान मे यह एक प्रकट सामाजिक समस्या बन गयी है क्योंकि इसके प्रति अब जनता में जागरूकता पायी जाती है और इसके निवारण के लिए सामूहिक प्रयत्न किये जा रहे हैं।

व्यक्तिगत और सामाजिक समस्या में अन्तर
(DISTINCTION BETWEEN INDIVIDUAL AND SOCIAL PROBLEM)

सामाजिक समस्या को और अधिक स्पष्टता के साथ समझने के लिए व्यक्तिगत व सामाजिक समस्या के अन्तर को जान लेना आवश्यक है। व्यक्तिगत समस्या उस समस्या को कहते हैं जिसका सम्बन्ध व्यक्ति विशेष से होता है और जो व्यक्ति के विकास एवं प्रगति में बाधक होती है, व्यक्ति सामाजिक आदर्शों की अवहेलना करने लगता है और उसके व्यक्तित्व का विघटन होने लगता है। मावरर लिखते हैं, "व्यक्तिगत समस्याएं व्यक्ति के उन व्यवहारो का प्रतिनिधित्व करती हैं जो संस्कृति द्वारा मान्यता प्राप्त प्रतिमानों से इतने अधिक नीचे गिर जाते हैं कि समाज उन्हें अस्वीकृत कर देता है।"[2] लेमर्ट लिखते हैं कि व्यक्तिगत समस्या वह स्थिति अथवा प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अपने मुख्य व्यवहार के चारों ओर अपने व्यवहार को

1 John J. Kane, *Social Problems*, p 7.
2 E R. Mowrer, *Disorganization—Personal and Social*

स्थिर नहीं रख पाता। उसकी भूमिकाओ के चुनाव की प्रक्रिया मे संघर्ष और भ्रम बना रहता है। संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि व्यक्तिगत समस्याओ की स्थिति मे व्यक्ति के व्यक्तित्व में असन्तुलन पैदा हो जाता है, वह समाज और संस्कृति के प्रतिमानों का पालन नहीं करता तया उसके व्यवहार मे विचलन और विघटन दिखायी देता है।

व्यक्तिगत और सामाजिक समस्या में निम्नांकित अन्तर हैं :

(1) व्यक्तिगत समस्या का सम्बन्ध और प्रभाव क्षेत्र व्यक्ति विशेष तक सीमित होता है जबकि सामाजिक समस्या का सम्बन्ध सम्पूर्ण समाज व समुदाय से है तथा वह सम्पूर्ण समाज या उसके एक बड़े भाग को प्रभावित करती है।

(2) चूंकि व्यक्तिगत समस्या का सम्बन्ध व्यक्ति विशेष से होता है, अत' उसे हल करने का प्रयत्न भी व्यक्तिगत रूप से किया जाता है जबकि सामाजिक समस्या के निवारण के लिए सामूहिक रूप से प्रयत्न किये जाते है।

(3) व्यक्तिगत समस्या व्यक्ति के विकास मे लेकिन सामाजिक समस्या विकास और प्रगति में बाधक होती है।

(4) व्यक्तिगत समस्या के जन्म के लिए व्यक्ति स्वयं या कुछ व्यक्ति उत्तरदायी होते हैं और उसके परिणाम व्यक्ति विशेष को ही भुगतने होते हैं, जबकि सामाजिक समस्या को जन्म देने मे समाज या समुदाय के कई लोगो का हाथ होता है और उसके परिणाम भी अनेक लोगो को भुगतने होते हैं।

(5) व्यक्तिगत समस्या की स्थिति मे अपने उद्देश्यों एवं आवश्यकता की पूर्ति के लिए व्यक्ति समाज द्वारा अस्वीकृत साधनों का प्रयोग करता है जबकि सामाजिक समस्या की स्थिति में समाज के अधिकांश व्यक्ति अनैतिक साधनों के द्वारा अपने उद्देश्यों व आवश्यकताओं की पूर्ति करने लगते हैं।

(6) व्यक्तिगत समस्या के दौरान व्यक्ति के व्यक्तित्व में असन्तुलन और विघटन उत्पन्न हो जाता है जबकि सामाजिक समस्या की स्थिति मे सामाजिक संरचना और संगठन अस्त-व्यस्त होने लगते है।

(7) व्यक्तिगत समस्या व्यक्ति के साथ ही समाप्त हो जाती है जबकि सामाजिक समस्या समाज की निरन्तरता से सम्बन्धित होने के कारण लम्बे समय तक चलने वाली होती है। इसके निवारण के प्रयत्न के बावजूद भी यह कुछ न कुछ मात्रा में अवश्य मौजूद रहती है।

इन अन्तरो का यह अर्थ नहीं लिया जाना चाहिए कि ये दोनों समस्याएं एक-दूसरे से एकदम पृथक् हैं वरन् दोनो में घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है, ये दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं। कुछ समस्याएं व्यक्तिगत और सामाजिक दोनो ही हो सकती है, विशेषतः उस समय जब उनका सम्बन्ध व्यक्ति विशेष व समाज दोनों से ही हो। व्यक्तिगत समस्या सामाजिक समस्याओं को तथा सामाजिक समस्या व्यक्तिगत समस्याओं को भी जन्म देती है।

समस्या के आकार को प्रभावित करने वाले कारक
(FACTORS INFLUENCING MAGNITUDE OF A PROBLEM)

किसी समस्या के आकार को प्रभावित करने वाला प्रथम कारक उस परिस्थिति मे सम्मिलित व्यक्तियों की संख्या है। द्वितीय कारक समस्या द्वारा उत्पन्न भावना की तीव्रता है। इस भावना को आवेग (passion) के नाम से जाना जाता है। निसबेट की मान्यता है कि जो व्यक्ति या समूह किसी परिस्थिति को एक समस्या के रूप में परिभाषित करते है, नैतिक

रोष अनुभव करते हैं।[1] ये दो कारक परिस्थिति में सम्मिलित व्यक्तियों की संख्या तथा आवेग अनेक रूपों में पारस्परिक अन्तःक्रिया करते हैं। किसी भी परिस्थिति के आकार वाली समस्या के लिए इन दोनों की उपस्थिति आवश्यक है। इन दोनों में से यदि कोई एक कारक पाया जाता है, तो समस्या की सामाजिक प्रकृति महत्वहीन होगी। उदाहरण के रूप मे, किसी समाज के लाखों-करोड़ों लोग चाहे निर्धनता के शिकार क्यों न हों, लेकिन जब तक वे अपनी इस स्थिति को अनुचित या परिवर्तनीय नहीं समझते हैं, तब तक उनकी निर्धनता एक बड़ी सामाजिक समस्या नही है।

वर्तमान भारत में प्रजातान्त्रिक मूल्यों तथा समाजवादी विचारधारा के प्रसार ने लोगों को निर्धनता के प्रति जागरूक बना दिया है और वे यह अनुभव करने लगे हैं कि निर्धनता का बना रहना अनुचित है और इसे प्रयत्न द्वारा कम अथवा समाप्त किया जा सकता है। यही कारण है कि इसने आजकल बड़े आकार की समस्या का रूप ग्रहण कर लिया है। यह कहा जा सकता है कि **एक सामाजिक समस्या का आकार उस समय सबसे अधिक होता है जब लोग काफी संख्या में तीव्रता से उत्तेजित हो उठते हैं और इसलिए कोई कार्यवाही करने को प्रस्तुत हो जाते है।**

सामाजिक समस्याओं का माप
(MEASUREMENT OF SOCIAL PROBLEMS)

सामाजिक समस्याओं को मापना और उनकी प्रकृति का पता लगाना वास्तव में एक कठिन कार्य है। इसका कारण यह है कि जो दशा या स्थिति एक समाज में सामाजिक समस्या के रूप में मानी जाती है, वही दूसरे समाज में सामान्य तथ्य के रूप मे मानी जा सकती है। इसके अलावा एक काल या समय विशेष में जो दशा सामाजिक समस्या के रूप में चित्रित की जाती है, वही किसी दूसरे काल में सामान्य स्थिति मानी जा सकती है। इसके अतिरिक्त, एक ही समाज के भिन्न-भिन्न लोग किसी दशा या स्थिति को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से देखते है, कुछ उसे समस्या के रूप में मानते हैं जबकि अन्य सामान्य परिस्थिति के रूप में। इन कठिनाइयों के उपरान्त भी सामाजिक समस्या को मापा जा सकता है और इसके माप की तीन विधियां या आधार हो सकते हैं जो इस प्रकार हैं .

(1) भावात्मक आधार (Emotional Basis)—सामाजिक समस्या और भावना का एक-दूसरे के साथ निकट का सम्बन्ध पाया जाता है। किसी भी दशा को उसी समय सामाजिक समस्या माना जायेगा जब वह जनसाधारण की भावनाओ के प्रतिकूल हो। जन-भावनाएं किसी दशा या स्थिति के जितनी अधिक प्रतिकूल होगी, सामाजिक समस्या भी उतनी ही अधिक गम्भीर होगी। वर्तमान में अनेक कारणो से नारी के प्रति पुरुष की भावनाओं में परिवर्तन आने से वेश्यावृत्ति को एक सामाजिक समस्या के रूप में देखा जाता है। किसी समय शादी-विवाह तथा सामाजिक उत्सवो के अवसर पर वेश्याओं के नाच-गानों को उचित समझा जाता था। उस समय वेश्यावृत्ति सामाजिक समस्या के रूप में नही मानी जाती थी। वास्तव में जन-सामान्य की भावनाओं के पीछे नैतिकता की धारणा पायी जाती है जिसके आधार पर उचित-अनुचित का भेद किया जाता है। जो व्यवहार या दशा नैतिक दृष्टि से अनुचित समझे जाते है, जन-भावनाएं उनके प्रति काफी प्रतिकूल होती हैं और उन्हें सामाजिक

1 Nisbet R. A., *Study of Social Problems* in R.K. Merton & R. A. Nisbet (ed) Contemporary Social Problems, Quoted by Erwino Smigel, *op cit.*, p 42

समस्या के रूप में देखा जाता है। इससे स्पष्ट है कि जब समाज के अधिकांश लोग किसी व्यवहार को नैतिक दृष्टि से अनुचित समझते है, तब वह व्यवहार सामाजिक समस्या माना जाता है। सामाजिक समस्याओं के माप का यह आधार दोषपूर्ण है क्योंकि भावनाएं मूलत: व्यक्तिगत होती है, न कि सामूहिक। अत: भावनाओं को मापना और उनके आधार पर किसी सामाजिक समस्या की गम्भीरता का पता लगाना कठिन है।

(2) सांस्कृतिक आधार (Cultural Basis)—जो स्थिति या व्यवहार एक समाज विशेष की सांस्कृतिक विशेषताओं या परम्पराओं के प्रतिकूल होता है, उसे सामाजिक समस्या के रूप में देखा जाता है। प्रत्येक समाज की संस्कृति के अन्तर्गत कुछ मूल्य, आचरण के तरीके तथा आदर्श-नियम आदि आते है। समाज के सभी सदस्यों से इन सांस्कृतिक विशेषताओं को बनाये रखने की आशा की जाती है। जब किसी समाज मे काफी लोग सांस्कृतिक मूल्यो, आदर्श-नियमो और मान्य व्यवहार प्रतिमानो के विपरीत आचरण करने लगते है तो ऐसे व्यवहार को सामाजिक समस्या माना जाता है। वर्तमान मे हमारे सांस्कृतिक मूल्यो में परिवर्तन आया है, आदर्श नियम भी कुछ बदले हैं तथा कुछ नवीन व्यवहार-प्रतिमान पनपे है। यही कारण है कि आज अस्पृश्यता, बाल-विवाह, दहेज-प्रथा तथा विधवा-विवाह निषेध आदि को सामाजिक समस्याए माना जाता है। किसी समय ये समस्याओं के रूप में नहीं थी क्योंकि इनसे सम्बन्धित व्यवहार को सांस्कृतिक विशेषताओं के अनुरूप माना जाता था, उचित समझा जाता था। परन्तु आज ऐसा व्यवहार हमारे बदले हुए सांस्कृतिक मूल्यो के विपरीत समझा जाता है और इसी कारण वह समस्या की श्रेणी मे आता है। सामाजिक समस्या के माप के सांस्कृतिक आधार मे एक प्रमुख कमी यह है कि सांस्कृतिक मूल्य भी एक भावनात्मक तथ्य ही है। इसके आधार पर किसी सामाजिक समस्या की गम्भीरता का अनुभव तो किया जा सकता है परन्तु उस गम्भीरता को मापना सम्भव नहीं है।

(3) सांख्यिकीय आधार (Statistical Method)—सामाजिक समस्याओं को मापने मे आजकल सांख्यिकीय विधि का प्रयोग दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। यह समस्याओ के माप का एक निश्चित, सुस्पष्ट और वैज्ञानिक आधार है। इसके द्वारा यह पता लगाया जाता है कि किसी व्यवहार या स्थिति का जनसाधारण पर क्या प्रभाव पड़ता है, इससे कितनी मात्रा मे लोग प्रभावित हैं। इस सम्बन्ध में तथ्यों को एकत्रित करने या सांख्यिकी (Statistics) प्राप्त करने हेतु सरकारी, अर्द्ध-सरकारी एवं गैर-सरकारी संगठनों या कुछ विद्वानो द्वारा सर्वेक्षण किये जाते है। ऐसे सर्वेक्षणो से किसी स्थिति या व्यवहार विशेष के सम्बन्ध मे लोगो की प्रतिक्रिया का पता चलता है, उनकी अभिवृत्तियो के सम्बन्ध में जानकारी मिलती है, यह ज्ञात होता है कि लोग उसे किस रूप में देखते हैं। आज सांख्यिकीय विधि की सहायता से यह पता लगाया जा सकता है कि कितने लोग बेकारी और निर्धनता की समस्या से पीडित है, लोगो मे मद्यपान की प्रवृत्ति किस मात्रा में पायी जाती है, कितने लोग विधवा-विवाह को उचित समझते हैं और कितने अनुचित, कितनी विधवाएं विवाह करना चाहती है और कितनी नही। इस विधि से यह जानकारी प्राप्त की जा सकती है कि किसी समस्या का समाज के किस-किस वर्ग के लोगों पर क्या प्रभाव पड़ता है तथा इससे कौन-कौन कितने गम्भीर रूप से प्रभावित हैं। इस प्रकार के तथ्य या आंकडे एकत्रित करके किसी सामाजिक समस्या की गम्भीरता को मापा जा सकता है और उसे हल करने के लिए ठोस कदम उठाये जा सकते हैं। अन्य विधियों या आधारों की तुलना में यह विधि अधिक विकसित और प्रामाणिक है।

विचलन
(DEVIANCE)

सामान्यतः विचलन को अनुरूपता के विपरीत माना जाता है। सभी मानव समाजों मे व्यवहार के कुछ निश्चित प्रतिमान एवं सामाजिक मानदण्ड पाये जाते हैं। इन सामाजिक प्रतिमानों एवं मानदण्डों के विपरीत आचरण करने को ही सामान्यतः विचलन माना जाता है। संयुक्त राज्य अमरीका में विचलन का अध्ययन कुछ विशिष्ट समस्याओं जैसे अपराध, बाल-अपराध, वेश्यावृत्ति, सफेदपोश-अपराध एवं नशावृत्ति आदि के सन्दर्भ में प्रारम्भ हुआ और इन्ही समस्याओं तक सीमित रहा। ये समस्याएं निम्न वर्ग और विशेषतः उद्योगों मे काम करने वाले श्रमिकों तक सीमित थीं। शिकागो विश्वविद्यालय में इस क्षेत्र मे बहुत कार्य हुआ क्योंकि शिकागो शहर इन समस्याओं के अध्ययन के लिए व्यापक क्षेत्र प्रदान करता रहा। इस प्रकार के अध्ययनों के पीछे समाजशास्त्रियों में यह धारणा थी कि विचलन के लिए स्वयं समाज उत्तरदायी है न कि व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक लक्षण। क्लिफोर्ड शा, ग्लेक्स, रिचार्ड क्लोवार्ड तथा लॉयड ओहलिन एव सदरलैण्ड आदि विद्वानों ने विभिन्न प्रकार के अपराधों का अध्ययन विचलन के रूप में ही किया।

विचलन (विपथगमन) का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Deviance)

जॉनसन लिखते है, "विपथगामी व्यवहार केवल ऐसा व्यवहार नहीं है जिसमें किसी मानदण्ड का उल्लंघन होता है। यह ऐसा व्यवहार है जो उस मानदण्ड का उल्लघन करता है जिसकी ओर कर्ता उस समय अभिमुख हो, यह जान-बूझकर किया गया उल्लंघन है।"[1]

जॉनसन की इस परिभाषा में विचलन में तीन तत्वों पर जोर दिया गया है—(i) सामाजिक मानदण्ड, (ii) मानदण्डों का व्यक्ति को ज्ञान होना, (iii) जान-बूझकर मानदण्डों का उल्लंघन करना अर्थात विचलन उसी व्यवहार को कहेंगे जब एक व्यक्ति उन सामाजिक मानदण्डों का जान-बूझकर उल्लंघन करता है जिसका उसे ज्ञान है।

रॉबर्ट बेल ने विचलन को सांख्यिकीय आधार पर समझाते हुए लिखा है, "समाज में औसत व्यवहार से बहुत अधिक भिन्नता प्रकट करना ही विचलन है।"

सिम्मन्स (Simmons) लिखते हैं, "अगर आप औसत के लगभग निकट है तो आप ठीक हैं, पर यदि आप औसत से बहुत दूर हैं तो आप निश्चय ही ठीक नहीं है।"[2] यही विचलन की स्थिति है।

एलेक्स इंकेल्स के अनुसार, "विचलन का तात्पर्य न तो सामान्य रूप से स्वीकृत मानक से हट जाने और न अल्पसंख्यक विचार रखने से है। यह तो सांख्यिकीय विचलन है। सामाजिक विचलन तब पैदा होता है जब स्वीकृत मानदण्डों से दूर हट जाते हैं जिसे समाज गम्भीर समझता है और इतना गम्भीर कि उसे रोकने या नियन्त्रित करने के लिए कुछ उपाय अपनाने पडते हैं।"[3]

1 जॉनसन, समाजशास्त्र।
2 Simmons, *Deviants*, p. 21
3 Alex Inkeles, *What is Sociology*, p 80

थियोडोरसन एवं थियोडोरसन लिखते हैं—"विचलन का अर्थ सामाजिक मानदण्डों के प्रति प्रतिरूपता (Non-confirmity) है।"[1] विचलन की परिभाषा एवं सीमा को वताते हुए **कोहन** लिखते है, "विचलन से मेरा तात्पर्य अपराध व वाल-अपराध से ही नहीं वरन् उस प्रत्येक व्यवहार से है जो सामान्य रूप से स्वीकृत आचरण का उल्लंघन है। इसके अन्तर्गत उद्वेगवश जीवन-साथी की हत्या से लेकर किसी राजनेता की योजनावद्ध हत्या तक आ जाती है। सरकारी कर्मचारियों के भ्रष्ट आचरणो से लेकर परीक्षा में छात्रो द्वारा किये गये अपराध भी विपथगमन है। *विपथगमन के कई प्रकार है—व्यापार के नियमों का उल्लंघन, आत्महत्या,* टैक्स से वचना और वीमा की राशि गलत रूप से पा लेना आदि। एक स्थिति यह है कि इसका क्षेत्र इतना व्यापक व विवादास्पद है कि वेश्यावृत्ति का समाजशास्त्र, गबन का समाजशास्त्र, नशाखोरी का समाजशास्त्र आदि इसके अनेक भाग हो सकते है लेकिन "मै इस चरम स्थिति से भी सहमत नही हूं। किसी समय विपथगमन अधिक है तो शेष प्रकार के विपथगमन कम दृष्टिगत होते है।"[2]

फ्रीडमेन और **डूब**[3] के अनुसार विचलित व्यक्ति वह है जो उस समूह के शेष सदस्यो से भिन्न होता है जिससे वह सम्वद्ध होता है। समूह के आदर्शो से भिन्न रूप में व्यवहार करना ही विचलन है।

विचलन की परिभाषा सदैव ही विशिष्ट मानदण्डों के सन्दर्भ में ही की जाती है। एक समूह एव समाज मे जो व्यवहार विचलन है वह दूसरे मे नही। आधुनिक जटिल समाजो में समूहों की अधिकता इतनी अधिक है कि एक समूह के मानदण्ड कई वार दूसरे के विपरीत होते हैं। अतः एक ही व्यवहार एक समूह द्वारा अनुरूप व दूसरे समूह द्वारा विचलन माना जाता है। *विचलित व्यवहार तव ही मानना चाहिए जव यह जान-वूझकर किया जाय अर्थात* जव कर्ता को सामाजिक मानदण्डो का ज्ञान हो और वह उनका जानवूझकर उल्लंघन करे। मानदण्डो के ज्ञान के अभाव मे कर्ता द्वारा उनके विपरीत किया गया व्यवहार विचलन नहीं माना जायेगा। किन्तु सदैव ही यह वात सही नही है। कानून के ज्ञान के अभाव मे उनका उल्लंघन विचलन कहलायेगा ही। विचलित व्यवहार में मात्रा का प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण है। छोटे-से सामाजिक आदर्श के उल्लंघन से लेकर वडे-बड़े कानूनो तक को तोडना विचलन है। जब विचलन वैयक्तिक होता है तो वह कर्ता के व्यक्तित्व को ही प्रभावित करता है, किन्तु जव वह सामाजिक होता है तव इससे समाज एवं सामाजिक संगठन को खतरा पैदा हो जाता है।

विचलन की विशेषताएं (Characteristics of Deviance)

विचलन की निम्नांकित विशेषताओं के आधार पर हम इस अवधारणा को और अधिक स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं :

(1) विचलन सामाजिक मानदण्डों (Norms) से बहुत अधिक दूर हटना है—प्रत्येक समाज मे सामाजिक मानदण्डों की थोड़ी-बहुत अवहेलना तो अनदेखी कर दी जाती है किन्तु जब यह अवहेलना समाज व्यवस्था में विघटन पैदा करने या समाज में खतरा उत्पन्न करने लग

1 *Deviance—Non-conformity to Social Norms*, Theodorson and Theodorson, *A Modern Dictionary of Sociology*, p 111.
2 Cohen A. K., *Deviant Behaviour and Its Control*, Edited in American Sociology, pp 236-237
3 Freedman and Doob, *Deviancy*, Academic, N Y, 1968

जाय तो उसे विचलन कहा जाता है। उदाहरण के लिए, घर में बच्चे द्वारा बिना पूछे केला उठाकर खा लेना उतना गम्भीर व्यवहार नहीं माना जाता है जितना कि घर से आभूषण चुराना। इस प्रकार विचलन में व्यक्ति इस प्रकार का व्यवहार करता है जो सामाजिक मानदण्डो से बहुत हट कर हो।

(2) विचलन वैयक्तिक एवं सामाजिक दोनों स्तरो पर हो सकता है—एक व्यक्ति जब सामाजिक मानदण्डों के विपरीत आचरण करे तो वह वैयक्तिक विचलन है। यदि ऐसा व्यवहार सम्पूर्ण समूह या समुदाय द्वारा किया जाय तो यह सामाजिक स्तर का विचलन है।

(3) विचलन का सम्बन्ध एक विशिष्ट समाज एवं संस्कृति से है—चूंकि प्रत्येक समाज एवं संस्कृति मे भिन्न-भिन्न प्रकार के सामाजिक मानदण्ड पाये जाते हैं, अतः एक समाज व संस्कृति में जिसे विचलन कहते हैं, उसे दूसरे समाज में भी विचलन माना जाय, यह आवश्यक नही है, जैसे अन्तर्जातीय विवाह भारत मे विचलन है किन्तु अमरीका में नहीं। इस प्रकार से एक ही समाज में एक व्यवहार को एक समूह विचलन मानता है तो दूसरा समूह नही।

(4) विचलन नियन्त्रण को जन्म देता है—चूंकि विचलन के कारण समाज में समस्याएं पैदा होती हैं, समाज व्यवस्था को खतरा उत्पन्न हो जाता है, इसलिए ऐसे व्यवहारों को रोकने के लिए प्रत्येक समाज नियन्त्रण की कुछ व्यवस्था करता है। पुलिस, जेल, न्यायालय आदि इसी नियन्त्रण व्यवस्था के अंग हैं।

विचलन के कारण (Causes of Deviance)

एक व्यक्ति सदैव ही सामाजिक आदर्शों का उल्लंघन नही करता, कुछ विशिष्ट कारण इसके लिए उत्तरदायी हैं। जॉनसन ने उन कारणो का उल्लेख किया है जो विचलन को प्रोत्साहन देते है या उसके लिए उत्तरदायी हैं :

(1) दोषपूर्ण समाजीकरण—जब व्यक्ति को सामाजिक मूल्यो की दोषपूर्ण शिक्षा दी जाती है या उसका समुचित समाजीकरण नहीं किया जाता है तब वह विपथगामी व्यवहार करता है। अपूर्ण एवं दोषपूर्ण समाजीकरण विचलन के लिए उत्तरदायी है।

(2) दुर्बल अनुशास्तियाँ (Weak Sanctions)—अनुशास्तियों से तात्पर्य उस व्यवस्था से है जिसमें व्यक्ति द्वारा 'अनुरूपता' प्रकट करने या समाज स्वीकृत व्यवहार करने पर पुरस्कार एवं विचलित व्यवहार करने पर दण्ड दिया जाता है। जब व्यक्ति को उसके उचित व्यवहार का उपयुक्त पुरस्कार एवं अनुचित व्यवहार का दण्ड नहीं मिलता है तो वह विचलन करने लगता है। तब उसमें यह धारणा पैदा होती है कि यहां तो सब ऐसे ही चलता है।

(3) कानून को लागू करने में कमी—अनुचित व्यवहार करने पर समाज में दण्ड की व्यवस्था तो हो किन्तु जब यह व्यवस्था निष्क्रिय या उदासीन हो अथवा उसे लागू करने वालों की संख्या कम हो तो विचलित व्यवहार बढ़ता है। उपर्युक्त तीनों कारक सफेदपोश अपराध के लिए उत्तरदायी है। जब अपराधियों को अपराध करने पर पकड़ा जाय या पकड़ने पर रिश्वत लेकर छोड़ दिया जाय तो इससे विचलन को बढ़ावा मिलता है।

(4) तार्किकीकरण की सरलता (Easiness of Rationalization)—विचलित व्यवहार में तब भी वृद्धि होती है जब हम सरल एवं गलत तर्क द्वारा उसे सही घोषित करने की चेष्टा करते है। उदाहरणार्थ, कोई डाकू अपनी डकैती के लिए यह तर्क दे कि वह लूट के माल को गरीबों में बांटता है, शोषण से एकत्रित धन का समान वितरण करता है। द्वितीय विश्वयुद्ध में कई स्त्रियो ने अपने वेश्यावृत्ति के व्यवसाय को उचित ठहराने के लिए यह

दलील दी कि वह योद्धाओं को आराम देती हैं। उन्होंने अपने आप को 'विक्ट्री गर्ल्स' कहना शुरू किया और वेश्यावृत्ति को चालू रखा।

(5) सामाजिक मानदण्डों की अनिश्चित सीमा—पारसन्स का मत है कि क्रान्तिकारी राजनीतिक कोटि का विचलन समाज के वैध मूल्यों और अपने बीच की खाई को सामान्यतया पाट देता है, जैसे देशभक्ति या स्वतन्त्रता का क्षेत्र स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं है। सामान्यतः किसी व्यक्ति की हत्या करना विचलन है किन्तु युद्ध के दौरान शत्रु पक्ष के लोगों की हत्या करना विचलन नहीं माना जायेगा।

(6) उल्लंघनकारी व्यवहार की गोपनीयता—जिस सामाजिक मानदण्ड का उल्लंघन हो रहा हो वह समाज के सामने स्पष्ट होना चाहिए वरना वह अन्दर ही अन्दर बढता जाता है। मर्टन ने अनुरूपता और सामाजिक नियन्त्रण के लिए खुले रूप में व्यवहार करने पर इसलिए ही बार-बार जोर दिया है।

[illegible] एवं भ्रष्ट तरीको [illegible] वेचलन की ओर [illegible] तो लोग कानून में आस्था खो देते हैं। जब पुलिस का अपराधियो से गुप्त समझौता होता है तो वह अपराधियो को उन कार्यो के लिए भी क्षमा कर देती है जिनको न होने देने का उत्तरदायित्व उसका है। नीग्रो लोगों में ऊंची अपराध की दर का कारण गोरे पुलिसमैन द्वारा नीग्रो के द्वारा नीग्रो पर किये गये अपराधों को या तो टाल दिया जाना है या उन्हें गम्भीरता से नही लिया जाना है। कानून का संरक्षण न मिलने के कारण लोग कानून में श्रद्धा खो देते है और अपराधी व्यवहार करने लगते हैं।

(8) अपराध के शिकार व्यक्ति का सहयोग (Co-operation of the Victim)—जिस व्यक्ति के प्रति अपराध होता है, यदि वही व्यक्ति कुछ नही करता है तो इससे अपराधी को प्रोत्साहन मिलता है और अपराध करने की ओर उसका रुझान बना रहता है।

(9) सामाजिक नियन्त्रण के अभिकर्ताओ का उभय-भाव (Ambivalence of the Agents of Social Control)—जिन लोगो पर समाज में नियन्त्रण बनाये रखने का भार है, यदि वे ही उदासीन हो तो विचलन को बढ़ावा मिलता है। उदाहरणार्थ, पिता पुत्र के, अध्यापक छात्र के तथा पुलिस नागरिकों के गलत व्यवहार को देखते रहें और उन्हें कुछ नही कहे तो इससे भी विचलन मे वृद्धि होती है।

(10) उप-संस्कृति द्वारा विचलन का वैधकरण (Sub culture Legitimation of Deviation)—जब किसी समूह की संस्कृति किसी विचलित व्यवहार को सही मान लेती है तब भी विचलन बढता है। उदाहरण के लिए, जब चोरों, डकैतो एवं गुण्डों के गिरोह द्वारा उन व्यवहारों को सही करार दिया जाता है जिसे हम विचलित व्यवहार कहते है, तब विचलन मे वृद्धि होती है।

(11) विचलित समूहों के प्रति वफादारी की भावना (Sentiments of Loyalty to Deviant Groups)—विचलन के बढने का एक कारण यह भी है कि जो समूह विचलित व्यवहार करते हैं, वे अपने सदस्यों को समूह के प्रति वफादार बने रहने की प्रेरणा देते रहते हैं। जब एक व्यक्ति सन्मार्ग पर आना चाहता है और इसके लिए वह अपने अपराधी समूह को छोडता है तो अपने अपराध के साझेदारों के प्रति बेवफाई की भावना उसे कचोटने लगती

है। विचलित समूह अपने गैर वफादार सदस्यों के प्रति बड़ा कठोर व्यवहार करते हैं। समूह त्याग विचलित समूह की दृढ़ता को ही नष्ट कर सकता है।

(12) इड, अहम् एवं पराअहम् मे संघर्ष (Conflict between Id, Ego and Super-ego)—मनोविश्लेषकों का मत है कि विचलन इड और अहम् तथा इड और पराअहम् के बीच द्वन्द्व होने के कारण होता है। उदाहरण के लिए, अपराध तभी होता है जब व्यक्ति की इड प्रवृत्तियों पर पराअहम् का नियन्त्रण शिथिल हो जाता है।

विचलन के कुछ भी कारण हों किन्तु यह सामाजिक स्थायित्व के लिए खतरा होता है। कोई समूह केवल उसी समय ठीक चल सकता है जब सामाजिक जीवन सुव्यवस्थित हो और उसमें एक निश्चितता का वातावरण हो। यदि बहुत बड़ी संख्या में लोग आशा के अनुरूप व्यवहार करने में असफल रहते है तो समूह अस्त-व्यस्त हो जाता है और समाज व्यवस्था नष्ट हो जाती है।

दूसरी ओर विचलन बदली हुई परिस्थितियों के अनुरूप सामाजिक आदर्शो को ढालने का एक तरीका भी हो सकता है जिससे कि परिवर्तनशील परिस्थितियों में समूह कायम रह सके। इस प्रकार का विचलन अवश्य ही रचनात्मक होता है। बाल अपराध, भिक्षावृत्ति, वेश्यावृत्ति, मद्यपान, मादक द्रव्यों का सेवन, भगोड़ापन आदि सामूहिक जीवन के लिए ध्वंसात्मक विचलित व्यवहार हैं जबकि बाल-विवाह, विधवा पुनर्विवाह निषेध एवं दहेज-प्रथा आदि को समाप्त करने के लिए किया जाने वाला आन्दोलन सकारात्मक विचलन है।

विचलन (विपथगमन) के स्वरूप (Forms of Deviation)

प्रत्येक समाज अपने सदस्यों के लिए कुछ निश्चित उद्देश्य तय करता है। [illegible] इन उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए साधन भी बताता है। समाज द्वारा निर्धारित [illegible] को समाज द्वारा निर्धारित साधनों द्वारा प्राप्त करना अनुरूपता है किन्तु इनमें यदि कोई [illegible], असन्तुलन व तालमेल नही बैठता है तो विचलन उत्पन्न होता है। इस आधार [illegible], डेबिनेयर एव स्टीफेनसन आदि ने चार प्रकार के विचलन का उल्लेख किया है।

(1) प्रथम प्रकार का विचलन वह है जिसमें व्यक्ति [illegible] की पूर्ति के लिए समाज द्वारा स्वीकृत साधनों का प्रयोग नहीं [illegible] ऐसे साधन काम में लाते हैं जिनको समाज मान्यता [illegible] के लिए, [illegible] सफल होने के लिए नकल करना, धनवान बनने के [illegible] प्रकार का विचलन है। मर्टन इसे 'नवाचार' ([illegible] है।

(2) दूसरे प्रकार के विचलन में व्यक्ति [illegible] हैं किन्तु वे समाज स्वीकृत उद्देश्यों को [illegible] सन्तोष प्राप्त कर लेते हैं कि उन्होंने [illegible] में लोग उद्देश्यों को प्राप्त करने की [illegible] है। मर्टन इसे 'संस्कारवाद' (Ri[illegible] के बजाय उन तरीकों पर [illegible]

(3) तीसरे प्रकार [illegible] प्रति उदासीन होते हैं। [illegible] अनुकूलन के प्रति [illegible]

होते। (They are in the System but not for it)। मर्टन इसे प्रत्यावर्तनता (retreatism) कहते हैं। शराबी, भिखारी और पागल इसी प्रकार के विचलित व्यक्ति है।

(4) चौथे प्रकार के विचलन में व्यक्ति समाज द्वारा निर्धारित उद्देश्यों एवं साधनों पर ही आवश्यकता एवं अपेक्षा से अधिक जोर देते है। ऐसे व्यक्ति स्वयं से और दूसरों से भी बहुत अधिक अपेक्षाएं रखते हैं और साधनों एवं साध्य पर कठोर नजर रखते हैं। यह स्थिति अति-अनुकूलन (over-conformity) की है। इस प्रकार का विचलन धर्म-परिवर्तन कर नये धर्म को अपनाने वालों मे देखा जा सकता है।

स्पष्ट है कि विचलन या विचलित व्यवहार अनेक सामाजिक समस्याओं के लिए उत्तरदायी है।

सामाजिक समस्याएं, सामाजिक विघटन तथा वैयक्तिक विघटन
(SOCIAL PROBLEMS, SOCIAL DISORGANIZATION AND INDIVIDUAL DISORGANIZATION)

सामाजिक विघटन को समझने के लिए सामाजिक संगठन को समझना आवश्यक है। इलियट और मैरिल ने बतलाया है कि सामाजिक संगठन वह दशा अथवा स्थिति है, जिसमें किसी समाज की विभिन्न संस्थाएं अपने मान्यता प्राप्त या पूर्व-निर्धारित लक्ष्यों के अनुसार कार्य करती हैं। सामाजिक संगठन की स्थिति में एक समाज के विभिन्न तत्वो का संचालन सुव्यवस्थित ढंग से होता रहता है। इस रूप मे एक समुदाय, धार्मिक अथवा राजनीतिक इकाई या समाज विशेष का अपना सामाजिक संगठन होता है। इलियट व मैरिल के अनुसार सामाजिक संगठन सामाजिक लक्ष्यो की सामान्य परिभाषाओ और उन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सामान्य रूप से स्वीकृत कार्यक्रम पर निर्भर करता है।[1] प्रत्येक समाज मे सामाजिक सगठन भिन्न-भिन्न अंशों में पाया जाता है। कोई भी ऐसा समाज दिखलायी नहीं पडता जहां सामाजिक संगठन पूर्ण रूप में पाया जाता हो, अर्थात् जहां एक समाज के सभी सदस्य सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति के प्रयत्न मे पूरी तरह एक-दूसरे के साथ सहयोगात्मक सम्बन्ध बनाये हुए अपनी भूमिकाएं निभाते हों। पूर्ण सामाजिक संगठन का तात्पर्य सर्वसम्मतता और व्यवहार प्रतिमानों में स्थायित्व से है जो आज के तीव्र गति से परिवर्तनीय समाजों में सम्भव नहीं है। यहाँ हमें इस बात को ध्यान में रखना है कि सामाजिक संगठन कोई स्थिर या गतिहीन व्यवस्था नहीं है। इस सम्बन्ध में मावरर ने लिखा है कि सामाजिक संगठन कोई स्थिर, गतिहीन वस्तु नहीं है जो एक बार स्थापित हो जाने पर अपरिवर्तित बनी रहती हो। एक अर्थ में तो यह एक उप-कल्पना (hypothesis), एक आदर्श रचना (ideal construct) है जो प्रत्येक समाज में सतत विद्यमान परिवर्तनशील पहलुओ को नही बल्कि संस्कृति के सापेक्षतः परिवर्तनशील प्रतिमानों को अधिक महत्व देती है।[2]

सामाजिक संगठन को समझ लेने के बाद अब हम यहां सामाजिक विघटन को समझने का प्रयत्न करेंगे।

सामाजिक विघटन सामाजिक संगठन की विपरीत स्थिति है। इस अवस्था में सामाजिक नियन्त्रण शिथिल पड़ जाता है और विभिन्न व्यक्ति और संस्थाएं मनमाने ढंग से कार्य करने लगते हैं। इस स्थिति में समूह सम्बन्ध टूट जाते हैं, व्यक्तियों और समूह के पारस्परिक सम्बन्ध

1 Elliott & Merrill, *Social Disorganization*, p. 4
2 E. R. Mowrer, *Disorganization - Personal and Social*, p 3.

विकृत हो जाते है। अन्य शब्दों मे, सामाजिक विघटन का तात्पर्य व्यवस्था के टूट जाने अथवा सामाजिक संरचना के विभिन्न भागों में एकता के अभाव से है।

सामाजिक विघटन का अर्थ स्पष्ट करते हुए इलियट और मैरिल ने बताया है, "सामाजिक विघटन एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक समूह के सदस्यो के बीच सम्बन्ध टूट जाते या समाप्त हो जाते हैं।"[1]

लैंडिस के अनुसार, "सामाजिक नियन्त्रण की व्यवस्था का भंग होना और विश्रृंखलता उत्पन्न हो जाना ही सामाजिक विघटन है।"[2]

न्यूमेयर के अनुसार, "जब समूह का ऐकमत्य तथा उसके उद्देश्य की एकता भंग हो जाय, सामाजिक संरचना का सन्तुलन अस्त-व्यस्त हो जाय और समाज के क्रियाशील सम्बन्ध टूट जायं तो मानना चाहिए कि सामाजिक विघटन के लक्षण उपस्थित हो गये है।"[3]

थॉमस एवं जैननिकी के अनुसार, "सामाजिक विघटन समूह के सदस्यों पर से समाज के मौजूदा नियमों के प्रभाव का कम होना है।"[4]

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सामाजिक विघटन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत समूह अथवा समाज के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्ध टूटने लगते हैं और उनके व्यवहार को नियन्त्रित करने वाले आदर्शों एवं सामाजिक नियमों का प्रभाव शिथिल होने लगता है। परिणामस्वरूप सामाजिक संरचना का स्वरूप बिगड़ जाता है और संगठन को चोट पहुंचती है।

सामाजिक विघटन की प्रकृति (Nature of Social Disorganization)

कोई भी ऐसा समाज दिखलायी नही देता जिसमें सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक विघटन बिलकुल नहीं पाया जाता हो। सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक विघटन तथा वैयक्तिक विघटन सभी की उत्पत्ति का स्रोत व्यक्तियों के असंगत या भिन्न-भिन्न व्यवहार है। सरल समाजों में विभिन्न व्यक्तियों के व्यवहारों में भिन्नता बहुत कम होती है, जबकि जटिल समाजों में यह व्यबहार-भिन्नता काफी होती है। इसी के परिणामस्वरूप सामाजिक व्यवस्था में विघटन की स्थिति उत्पन्न होती है। सामाजिक विघटन सामाजिक परिवर्तन के उन पक्षों से सम्बन्धित है जिनके परिणामस्वरूप सामाजिक संस्थाओं एवं उनके बीच अन्तर-सम्बन्धों के प्रतिमानों से अस्त-व्यस्तता उत्पन्न हो जाती है।

सामाजिक विघटन की प्रकृति समाज मे अशान्ति व अस्थिरता लाने वाली है। सामाजिक विघटन की दशा में समाज में प्रतियोगिता एवं स्पर्द्धा इतनी बढ जाती है कि सदस्यो की भूमिकाओं में महत्वपूर्ण परिवर्तन होने लगते हैं। सामाजिक विघटन के दौरान सामाजिक परिवर्तन हिंसात्मक रूप ग्रहण कर सकता है। सामाजिक विघटन की स्थिति में किसी व्यवस्था के निर्णायक तत्व अपनी जगह से हट जाते हैं, उनमें समन्वय की प्रवृत्ति कमजोर पड़ जाती है और सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति में बाधा उपस्थित होती है। जब सामाजिक शक्तियों के सन्तुलन में परिवर्तन होता है, तब सामाजिक विघटन की दशा उत्पन्न होती है। इस अवस्था में सामाजिक संरचना अस्त-व्यस्त हो जाती है तथा परिणामस्वरूप सामाजिक नियन्त्रण के तरीके असफल

1 "Social disorganization is a process by which the relationship between members of a group are broken or dissolved."
—Elliott and Merrill, *Social Disorganization*, p 20

2 P. H. Landis, *An Introduction to Sociology*, p. 612.

3 Martin H Neumeyer, *Social Problems and the Changing Society*, p 16

4 Thomas and Znaniecki, *The Polish Peasant in Europe and America*, Vol. 4, p. 2.

रहते है और व्यवहार के प्राचीन ढंग अपनी उपयोगिता खो देते हैं। सामाजिक विघटन के अधिक तीव्र हो जाने पर नयी समाज-व्यवस्था की स्थापना की प्रवृत्ति को बल मिलता है। इस दशा में व्यक्ति को नवीन व्यवस्था के अनुरूप अपने व्यवहारों को ढालना पड़ता है।

सामाजिक विघटन एक प्रक्रिया के रूप में (Social Disorganization as a Process)

सामाजिक विघटन कोई स्थिर दशा न होकर एक परिवर्तनशील स्थिति है। यह परिवर्तन की निरन्तरता को व्यक्त करता है। सामाजिक परिवर्तन के समान ही सामाजिक विघटन एक निरन्तर प्रक्रिया है जो सभी समाजों मे हर समय चलती है। ऐसा कोई भी समाज दिखायी नहीं पड़ता जिसकी सामाजिक संरचना मे पूर्ण सन्तुलन व व्यवस्था पायी जाती हो। सभी समाजो में कुछ ऐसे कारण मौजूद रहे हैं जिन्होंने सामाजिक संरचना को अस्त-व्यस्त करने का प्रयत्न किया है। इन कारणो में अत्यधिक प्रतिस्पर्धा, संघर्ष, श्रम-विभाजन व सामाजिक विभेद आदि प्रमुख है। इन सबके तीव्र होने पर सामाजिक क्रियाएं कम प्रभावपूर्ण और संगठनात्मक सामाजिक प्रक्रियाए जैसे सहयोग, व्यवस्थापन तथा सात्मीकरण अधिक क्रियाशील हो जाती है तब सामाजिक विघटन पीछे हटता है। इस समय प्रवृत्ति विघटन से पुनः संगठन की ओर होती है।

सामाजिक विघटन किस प्रकार एक प्रक्रिया के रूप में है, इस सम्बन्ध में न्यूमेयर ने बताया है कि सामाजिक विघटन केवल एक असन्तुलित अवस्था ही नही है क्योंकि यह प्रमुखत एक प्रक्रिया है। इस रूप में यह उन घटनाओ के क्रम और उनकी उपस्थिति को व्यक्त करता है जो कि व्यक्तियो एवं समूहो की स्वाभाविक क्रियाशीलता में बाधा डालते हैं। आगे आपने लिखा है कि सामाजिक विघटन एक अवस्था से कुछ अधिक है, यह मौलिक रूप मे एक प्रक्रिया या प्रक्रियाओ का एक क्रम है। घटनाओ के इस क्रम जिससे यह प्रक्रिया निर्मित होती है, के अन्तर्गत संघर्ष, अत्यधिक प्रतिस्पर्धा, सामाजिक विभेद और अन्य विघटनकारी उप-प्रक्रियाए आती है।[1]

स्पष्ट है कि सामाजिक विघटन थोडी-बहुत मात्रा में सभी समाजो में हर समय एक प्रक्रिया के रूप मे पाया जाता है। अतः यह कोई स्थिर दशा न होकर सामाजिक संरचना के अन्तर्गत एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। इतना अवश्य है कि किसी समाज विशेष या समय विशेष मे इसका प्रभाव कम या ज्यादा हो सकता है। परन्तु सगठित समाज में भी विघटन के कुछ न कुछ तत्व सदैव मौजूद अवश्य रहते है। इसके विपरीत, विघटित से विघटित समाज में भी सगठन के कुछ तत्व सदैव पाये जाते है।

सामाजिक विघटन के लक्षण (Symptoms of Social Disorganization)

निम्नलिखित लक्षणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि किसी समाज में सामाजिक विघटन है या नहीं :

(1) ऐकमत्य का ह्रास (Decline of Consensus)—ऐकमत्य का होना सामाजिक संगठन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसके अभाव में स्पर्द्धा एवं संघर्ष को प्रोत्साहन मिलता है और सामाजिक संगठन टूटने लगता है। जब सामाजिक जीवन से सम्बन्धित महत्वपूर्ण विषयो पर अधिकांश सदस्यो मे मत-भिन्नता हो, वे समान दृष्टिकोण से नहीं सोचते हों और सामाजिक समस्याओ को हल करने हेतु सामान्य प्रयत्नों को नहीं लगाते हों तो समझना

1 Martin H Neumeyer, *op cit*, pp 9-17.

चाहिए कि समाज में सामाजिक विघटन व्याप्त है। महत्वपूर्ण प्रश्नों पर लोगो में ऐकमत्य के अभाव के फलस्वरूप तनाव व संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है। यह स्थिति सामाजिक विघटन की परिचायक है।

(2) **सामाजिक नियन्त्रण के साधनों का प्रभाव कम होना** (Lesser Effectiveness of the means of Social Control)—समाज मे व्यवस्था बनाये रखने की दृष्टि से सामाजिक नियन्त्रण के साधनों का होना आवश्यक है। ये साधन व्यक्ति एवं समूह के व्यवहार को इस प्रकार नियन्त्रित करते है कि दूसरे के कार्यो मे किसी प्रकार की कोई बाधा न पडे। जब सामाजिक नियन्त्रण के विभिन्न साधनों जैसे जनरीतियों, प्रथाओं, रूढियों, धर्म एवं विश्वास आदि का लोगो के व्यवहारों को नियन्त्रित करने की दृष्टि से प्रभाव शिथिल पड जाता है तो व्यक्ति और समूह मनमाने ढंग से अपने लक्ष्यों की पूर्ति में लग जाते है। इससे दूसरों के लक्ष्य-प्राप्ति के मार्ग में बाधा पड़ती है और संघर्ष होने लगता है। ऐसी स्थिति में सामाजिक सन्तुलन बिगड़ जाता है। परिणामस्वरूप सामाजिक विघटन पनपता है। अत. सामाजिक नियन्त्रण के साधनों के प्रभाव में कमी आना सामाजिक विघटन का सूचक है।

(3) **व्यक्तिवाद पर जोर** (Emphasis on Individualism)—सामूहिकता की भावना ही व्यक्ति को समाज की दृष्टि से सोचने-विचारने और कार्य करने की प्रेरणा देती है। यही भावना व्यक्तियों को समूह में एकता के सूत्र में बांधे रखती है और उन्हें समूह के व्यवहार-प्रतिमानों के अनुसार आचरण करने को बाध्य करती है। लेकिन जब व्यक्ति समूह के स्थान पर 'मैं' को एवं सामान्य लक्ष्यों के स्थान पर व्यक्तिगत स्वार्थो को महत्व देने लगता है तो इसका तात्पर्य यह है कि उसके द्वारा समूह की उपेक्षा की जा रही है। जब समाज के अधिकांश व्यक्ति इस प्रकार अपने-अपने स्वार्थों की पूर्ति में लग जाते हैं और समूह अथवा समाज की चिन्ता नहीं करते तो, समझ लेना चाहिए कि सामाजिक विघटन आरम्भ हो चुका है। जहां व्यक्तिवाद पर जितना ज्यादा जोर दिया जाता है, वहां सामाजिक विघटन की उतनी ही अधिक सम्भावना रहती है।

(4) **सामूहिक आदर्शों का महत्व कम होना** (Lesser Importance of Collective Ideals)—सामाजिक संगठन उसी समय तक दृढ़ बना रह सकता है जब तक समूह के सदस्य समूह के लिए त्याग करने एवं अपने स्वार्थों की बलि देने को तैयार हों। जब व्यक्ति सामूहिक आदर्शों की चिन्ता नहीं करते, जब वे व्यक्तिगत स्वार्थों को ही सब कुछ समझ लेते हैं, तो सामान्य हितों की पूर्ति में बाधा पड़ती है। इसके फलस्वरूप सामाजिक विघटन की स्थिति पनपती है।

✓(5) **रूढ़ियों एवं संस्थाओं का संघर्ष** (Conflict of Mores and Institutions)—सामाजिक संरचना के अन्तर्गत अनेक संस्थाएं एवं उनसे सम्बन्धित रूढ़ियां पायी जाती हैं। इन दोनों के बीच सहयोगपूर्ण सम्बन्ध ही सामाजिक संगठन का मुख्य आधार है। विवाह, परिवार, जाति, स्कूल, धर्म-संघ आदि महत्वपूर्ण संस्थाएं हैं। जब सामाजिक संस्थाएं सामाजिक परिवर्तन के फलस्वरूप बदल जाती हैं परन्तु उससे सम्बन्धित रूढ़ियां ज्यो-की-त्यों बनी रहती हैं तो इन दोनों में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। यह स्थिति ही सामाजिक विघटन के लिए अनुकूल परिस्थितियां पैदा करती है।

(6) **कार्यों का एक समिति से दूसरी को हस्तान्तरण** (Transfer of Functions from One Group to Another)—मनुष्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक समूह

अथवा समितिया गठित की जाती हैं। इनमें से प्रत्येक समिति की सामाजिक संरचना में एक निश्चित स्थिति और कुछ कार्य होते हैं। जब सभी समितियां अपने नियत कार्यो को करती है और अन्य समितियो के कार्यो मे हस्तक्षेप नही करती है तो सामाजिक संगठन बना रहता है। इसके विपरीत, जब समितियां अन्य समितियो के कार्यो को करने लगती हैं, दूसरों के कार्यो मे हस्तक्षेप करती है अथवा किसी समिति के द्वारा अन्य के कार्यो को छीन लिया जाता है तो सामाजिक विघटन की स्थिति उत्पन्न होती है। समितियों के कार्यो के हस्तान्तरण से नवीन परिस्थितियां पैदा हो जाती है जिनसे कई बार ये समितियां और समाज के सदस्य अनुकूलन नही कर पाते। परिणामस्वरूप सामाजिक विघटन को बढावा मिलता है।

(7) **प्रस्थिति तथा भूमिका की अनिश्चितता** (Uncertainty of Status and Role)—पारसन्स ने इसे सामाजिक विघटन का एक मुख्य लक्षण माना है। जहां समाज के अधिकतर लोगो की प्रस्थितियो और भूमिकाओं के बीच असन्तुलन पाया जाता है, वहां सामाजिक विघटन की दशा पायी जाती है। आज अधिकांश शिक्षित महिलाओं की प्रस्थिति और भूमिका मे सन्तुलन का अभाव है, एक अनिश्चितता व्याप्त है। वह गृहिणी के रूप मे कार्य करे, नौकरी करे, सामाजिक कार्यकर्ता बने, क्या करे और क्या नही करे, इस सम्बन्ध मे निश्चितता का अभाव पाया जाता है। ऐसी स्थिति में असन्तोष और निराशा बढती है जो सामाजिक विघटन के लिए उत्तरदायी है।

(8) **सामाजिक परिवर्तन की तेज गति** (Fast Speed of Social Change)—जब सामाजिक परिवर्तन की गति तीव्र होती है तो समितियो एवं व्यक्तियो के सम्मुख अनुकूलन की कठिनाई उपस्थित हो जाती है। ये बदली हुई परिस्थितियों मे शीघ्रता से अनुकूलन नही कर पाते। फलस्वरूप सामाजिक विघटन को बल मिलता है। फेरिस ने सामाजिक विघटन के आठ लक्षण बताये है जो इस प्रकार है—(1) दिखावा या औपचारिकता, (2) पवित्र तत्वों का ह्रास, (3) स्वार्थ और रुचियों मे वैयक्तिकता, (4) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता एव अधिकारों पर बल, (5) सुख सम्बन्धी व्यवहार, (6) जनसख्या में विभिन्नता, (7) पारस्परिक अविश्वास, तथा (8) अशांतिपूर्ण घटनाएं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सहयोग, त्याग, कष्ट-सहन, पावित्र्य एवं परार्थवाद का प्रभाव जब घटने लगता है तब आपसी सामजस्य समाप्त होने लगता है और व्यक्ति को स्वार्थवाद आ घेरता है। व्यक्ति अपने लिए सब कुछ चाहने लगता है और दूसरो की तनिक भी परवाह नही करता है। व्यक्ति सामूहिक हित की चिन्ता नहीं करते हुए अपनी स्वार्थ-पूर्ति मे इस प्रकार लग जाता है कि सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति मे बाधा पड़ने लगती है। जब किसी समाज मे ऐसी स्थिति प्रारम्भ हो जाती है तो धीरे-धीरे मतभेद, तनाव, कलह एवं संघर्ष आदि बढने लगते है। ये सब लक्षण सामाजिक विघटन की स्थिति को प्रकट करते है।

सामाजिक संगठन और सामाजिक विघटन के अर्थ से भली-भांति स्पष्ट है कि ये दोनो सापेक्ष अवधारणाएं हैं। जैसे-जैसे समाजो मे जटिलता बढती है और सामाजिक परिवर्तन की गति तीव्र होती जाती है, वैसे-वैसे सामाजिक सामंजस्य के दबाव और तनाव अधिकाधिक गहन होते जाते है। यदि इनसे छुटकारा प्राप्त नही किया जाता है तो सामाजिक विघटन की मात्रा में वृद्धि होती रहती है। ऐसी स्थिति में सामाजिक अव्यवस्था से सापेक्ष व्यवस्था और न' मतैक्य स्थापित करने का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण बन जाता है।

वैयक्तिक विघटन : अर्थ एवं परिभाषा
(PERSONAL DISORGANIZATION : MEANING AND DEFINITION)

समाज प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा करता है कि वह व्यवहार के मान्य प्रतिमानों के अनुसार आचरण करे। लेकिन जब वह ऐसा नही कर पाता है तो उसमें निराशा, द्वेष, हिंसा एवं अपराधी प्रवृत्ति विकसित हो जाती है। यह स्थिति वैयक्तिक विघटन को व्यक्त करती है।

वैयक्तिक विघटन का अर्थ व्यक्ति के जीवन संगठन का अव्यवस्थित होना है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति के व्यक्तित्व का समाज की मान्यताओ के अनुरूप विकास नही हो पाता है। इस प्रकार का असन्तुलित व्यक्तित्व विघटन के लिए उत्तरदायी है। वैयक्तिक विघटन वह स्थिति है जिसमे असन्तुलित व्यक्तित्व के कारण व्यक्ति समाज द्वारा मान्य व्यवहार प्रतिमानों के विपरीत आचरण करता है।

वैयक्तिक विघटन को परिभाषित करते हुए इलियट और मैरिल ने लिखा है, "समाज के नियमो एवं समाज के साथ तादात्मीकरण न होना ही वैयक्तिक विघटन है।"[1]

मावरर के अनुसार, "सभी वैयक्तिक विघटन व्यक्ति के उन आचरणो का प्रतिनिधित्व करता है जो संस्कृति द्वारा स्वीकृत आदर्श प्रतिमान से इतना अधिक विचलित होते है कि उन्हें सामाजिक दृष्टि से अमान्य माना जाता है।"[2]

लैमर्ट ने बताया कि वैयक्तिक विघटन वह दशा या प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अपनी मुख्य भूमिका के चारो ओर अपने व्यवहार को सुस्थिर नही कर पाता है। उसकी भूमिका के चुनाव की प्रक्रिया मे संघर्ष या भ्रम बना रहता है। ऐसा विघटन कुछ समय के लिए भी हो सकता है और निरन्तर भी बना रह सकता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि (i) वैयक्तिक विघटन **व्यक्ति के व्यक्तित्व की असन्तुलित अवस्था है, (ii) इसमें व्यक्ति समाज एवं संस्कृति द्वारा स्वीकृत आदर्श-प्रतिमानों के प्रतिकूल आचरण करता है, (iii) सामाजिक दृष्टि से इसमे व्यक्ति अपने जीवन-संगठन में व्यवधान उत्पन्न करके उसे भंग कर लेता है,** (iv) वैयक्तिक विघटन की स्थिति में व्यक्ति के अन्य व्यक्तियो, परिवार, मित्रो, साथियों एवं समाज के साथ सम्बन्ध ढीले पड जाते है। विघटित व्यक्तित्व वाला व्यक्ति समाज की अपेक्षाओ के अनुकूल भूमिका नही निभा पाता है। ऐसा व्यक्ति समूह से कट जाता है, अपने को अकेला महसूस करता है, भावनात्मक दृष्टि से अपने को असुरक्षित पाता है।

वैयक्तिक विघटन की स्थिति में समाज के सदस्यों के व्यक्तित्वों में परस्पर विरोध उत्पन्न हो जाते है। सामाजिक विघटन के कारण सामाजिक सम्बन्धों में अस्पष्टता, परस्पर विरोध तथा संघर्ष पाया जाता है। ये ऐसी विशेषताएं है जो परिवार, आर्थिक व्यवस्था, शिक्षण संस्था अथवा राज्य तक में दिखलायी पड़ती हैं। आधुनिक समाज में पाये जाने वाले अन्तर्विरोध समाज के सदस्यों के व्यक्तित्व में विरोध उत्पन्न कर देते है। सामाजिक विघटन के फलस्वरूप उत्पन्न इन अन्तर्विरोधों के कारण अनेक व्यक्तियों के महत्वपूर्ण समूह सम्पर्क टूट जाते हैं, व्यक्तिगत सुरक्षा की चेतना समाप्त हो जाती है और यहां तक कि स्वयं जीवन के प्रति उनकी रुचि शिथिल पड़ जाती है। ऐसे लोग जीवन से ऊब जाते है। सामाजिक विघटन के कारण व्यक्तियों के एक कार्यात्मक समग्र के रूप मे पाये जाने वाले आपसी सम्बन्ध छिन्न-भिन्न होने लगते है।

1 Elliott and Merrill, *op cit.*, p. 53
2 E R. Mowrer, *op cit.*, p 72

ऐसी स्थिति में व्यक्ति अपनी भूमिकाएं ठीक प्रकार से नही निभा पाते। एक विघटित समाज ऐसे लोगों से ही मिल कर बना होता है जिनके जीवन कम अथवा अधिक मात्रा में विघटित होते है। इलियट तथा मैरिल ने लिखा है कि एक ऐसे समाज में जिसकी संरचना गम्भीर रूप से विघटित है, पूर्णतः संगठित व्यक्तियों का बहुत अधिक संख्या में पाया जाना असम्भव है। एक अस्त-व्यस्त, विघटित तथा विखण्डित समाज अनिवार्यतः अस्त-व्यस्त, विघटित तथा विखण्डित व्यक्तित्वो को उत्पन्न करता है। व्यक्तित्व सामाजिक पृष्ठभूमि में ही विकसित होता है जहां व्यक्ति समूह के अन्य सदस्यो से व्यवहार के स्वीकृत प्रतिमान सीखता है। जब ये प्रतिमान अस्त-व्यस्त हो जाते है, जब व्यक्ति यह नहीं जान पाता कि उससे क्या आशा की जाती है, जब वे सम्बन्ध जो उसे उसके परिवार, मित्रो तथा साथियों से बांधते है, स्वयं टूट जाते है, तब एक पूर्णतः सगठित व्यक्तित्व के विकास के अवसर वास्तव में बहुत कम होते हैं। संक्षेप मे, यह कहा जा सकता है कि **व्यक्ति विवश होकर उस समाज की दशा को प्रतिबिम्बित करता है जिसकी वह उपज है।**[1] ऐसे व्यक्ति व्यक्तिगत विघटन के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

व्यक्तिगत विघटन और सामाजिक विघटन में घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। विघटित व्यक्ति जब अपने व्यवहार के द्वारा दूसरों को प्रभावित करता है, तो वह विघटन को और अधिक बढाता है। विघटित व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों के सन्दर्भ में अपनी भूमिकाओं को ठीक प्रकार से निभाने मे असमर्थ रहता है और सामाजिक विघटन को बढाने में सहायता पहुंचाता है। उदाहरण के रूप मे, एक स्नायुरोगी पत्नी (Neurotic wife) जो अपनी भूमिका ठीक तरह से नही निभा पाती है, अपने पति और बच्चो को विघटित करने में योग देती है। जहां विघटित व्यक्ति सामाजिक विघटन को बढ़ाने में योग देता है, वहां सामाजिक विघटन भी व्यक्ति के जीवन को विघटित कर देता है। उदाहरण के रूप में, एक ऐसा समाज जहां बेकारी काफी मात्रा मे पायी जाती है, व्यक्तिगत और पारिवारिक विघटन के लिए उत्तरदायी होता है।

सामाजिक समस्याओं और सामाजिक विघटन के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। जब समाज में सामाजिक समस्याएं उग्र रूप धारण कर लेती है तो ऐसा समाज एक एकीकृत कार्यात्मक समग्र के रूप मे कार्य नहीं कर पाता और उसकी प्रगति में बाधा उत्पन्न हो जाती है। ऐसी दशा में सामाजिक विघटन उत्पन्न होता है। वैयक्तिक विघटन और सामाजिक समस्याओं के मध्य भी एक गहरा सम्बन्ध है। वैयक्तिक विघटन की अवस्था मे व्यक्ति समाज के आदर्श-नियमो के अनुरूप व्यवहार नही कर पाता। वह यह निश्चित करने में असमर्थ रहता है कि उससे क्या अपेक्षाएं की जा रही है। दुविधा की स्थिति में वह अपनी भूमिकाएं ठीक से नहीं निभा पाता। ऐसी दशा में समाज में अनेक सामाजिक समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। इस स्थिति का चित्रण करते हुए वीन्सवर्ग ने बतलाया है कि जो व्यक्ति समाज के आदर्शो के अनुरूप रहता है, वह सामाजिक दृष्टि से सामान्य व्यक्ति होता है और परिणामस्वरूप अपने आपको सामान्य समझता है। परन्तु जो व्यक्ति आदर्श का उल्लंघन करते हुए पकड लिया जाता है, वह पदच्युत कहलाता है। पदच्युत व्यक्ति चाहे वह किसी भी समूह का सदस्य अथवा अकेला हो, सामाजिक समस्या का प्रतिनिधि है।[2]

1 *Ibid*, pp 39-40
2 Weinsberg, *Social Problems in Our Times*, p 8.

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि **सामाजिक समस्याएं, सामाजिक विघटन और वैयक्तिक विघटन एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं।** एक विघटित व्यक्ति दूसरे व्यक्तियो को अपने व्यवहार द्वारा प्रभावित करता है जिसके फलस्वरूप सामाजिक समस्याएं पैदा होती हैं और सामाजिक समस्याओं के उग्र रूप धारण करने पर समाज में सामाजिक विघटन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

सामाजिक समस्याओं के कारण
(CAUSES OF SOCIAL PROBLEMS)

व्यक्तिगत और सामाजिक विघटन सामाजिक समस्याओं को जन्म देते है। इस सम्बन्ध मे **प्रो. टिम्स** का कहना है कि **सामाजिक समस्याओं को जन्म देने वाली अवस्थाओ को सामाजिक रोग, सामाजिक विघटन, मतभेद और विचलन की अवस्थाएं कहा गया है।**[1] वीवर के अनुसार सामाजिक समस्याओं का प्रमुख कारण, जैसा कि समाजशास्त्रियों ने पाया है, समाज में अन्तर्निहित मानवीय आवश्यकताओं का नैराश्य है जिसने प्रौद्योगिकी को प्रायः क्रान्तिकारी अंकों में परिवर्तित कर दिया है, विना सामाजिक संगठन में तुलनात्मक परिवर्तन किये।[2] समाजशास्त्रियों की मान्यता है कि प्रौद्योगिक परिवर्तनों के प्रभाव के फलस्वरूप संस्कृति का भौतिक पक्ष बदल जाता है। **डब्ल्यू. बी. ऑगबर्न** ने इसे सांस्कृतिक विलम्बना (cultural lag) माना है। संस्कृति के विभिन्न पक्षों मे परिवर्तन की अलग-अलग दर चिन्ता अथवा तनाव उत्पन्न करती है जो सामाजिक विघटन की दशा के लिए उत्तरदाई है। अतः यह कहा जा सकता है कि **सामाजिक परिवर्तन, सांस्कृतिक विलम्बना तथा सामाजिक विघटन सामाजिक समस्याओं के कारणों की व्याख्या प्रस्तुत करने में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।**

आजकल यह माना जाता है कि सभी सामाजिक समस्याएं पारस्परिक रूप से सम्बन्धित है और किसी भी समस्या को अन्य समस्याओ से पूर्णतः पृथक् करके नही समझा जा सकता है। अतः सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण एक सामाजिक संरचना मे चल रही सामाजिक प्रक्रियाओं के सन्दर्भ में किया जाना चाहिए। सामाजिक प्रक्रिया का तात्पर्य एक समूह के जीवन में होने वाले परिवर्तनों से है।

राब तथा सैल्जनिक ने सामाजिक समस्याओ के पांच कारणों का उल्लेख किया है जो निम्नलिखित हैं :

(1) जब किसी संगठित समाज के सदस्यों के सम्बन्धों को व्यवस्थित करने की योग्यता समाप्त होने लगती है अथवा समाप्त होती प्रतीत होती है तो सामाजिक समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं।

(2) जब समाज की संस्थाएं विचलित होने लगती हैं तो सामाजिक समस्याएं उठ खड़ी होती हैं।

(3) जब किसी समाज के लोग कानूनों का उल्लंघन करने लगते है तो सामाजिक समस्याएं उभरने लगती हैं।

(4) जब लोगों की अपेक्षाओं का ढांचा लड़खड़ाने लगता है तो सामाजिक समस्याएं पैदा हो जाती हैं।

1 Noel Timms, *A Sociological Approach to Social Problems*, p. 20.
2 W. Wallace Weaver, *op cit*, p. 38.

(5) जब समाज के मूल्यों का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होना रुक जाता है तो ऐसी दशा मे सामाजिक समस्याएं उत्पन्न होने लगती हैं।

पाल लैण्डिस ने सामाजिक समस्याओं के चार कारण बताये हैं जो इस प्रकार हैं :

(1) व्यक्तिगत समायोजन में असफलता।

(2) सामाजिक संरचनाओं मे दोष पैदा होना।

(3) संस्थागत समायोजन में असफलता।

(4) सामाजिक नीति में संस्थात्मक विलम्बनाएं।

सामाजिक समस्याएं और सैद्धान्तिक अवधारणाएं
(SOCIAL PROBLEMS AND THEORETICAL FRAME OF REFERENCE)

विभिन्न सामाजिक समस्याओ के मध्य न केवल पारस्परिक सम्बन्ध ही पाया जाता है, बल्कि उनका सामान्य आधार भी होता है। इस सामान्य आधार को दृष्टि में रखकर ही चार दृष्टिकोण प्रस्तुत किये गये हैं। सैद्धान्तिक अवधारणाओं के रूप में ये दृष्टिकोण निम्न हैं :

(1) सामाजिक विघटन का सिद्धान्त (2) सांस्कृतिक विलम्बना का सिद्धान्त

(3) मूल्य संघर्ष का सिद्धान्त (4) वैयक्तिक विचलन का सिद्धान्त

(1) सामाजिक विघटन का सिद्धान्त (Theory of Social Disorganization)—कुछ विद्वानो की मान्यता है कि सामाजिक विघटन के कारण सामाजिक समस्याएं उत्पन्न होती हैं। रोलॉण्ड वारेन ने सामाजिक विघटन को एक ऐसी स्थिति माना है जिसमे मतैक्य का अभाव, संस्थाओं के एकीकरण की कमी और सामाजिक नियन्त्रण के अपर्याप्त साधन पाये जाते हैं। मतैक्य के अभाव में समूह के लक्ष्यो के प्रति मतभेद और परस्पर विरोधी भावनात्मक धारणाएं पायी जाती हैं। यह स्थिति विभिन्न संस्थाओं के कार्य-संचालन में बाधा डालती है और ये संस्थाएं एक-दूसरे के विपरीत कार्य करने लगती है और एक ऐसी दशा उत्पन्न हो जाती है जिससे व्यक्ति समाज के नियमों के अनुसार कार्य नहीं कर पाते है।

भूतकालीन समाजो में सापेक्ष रूप में स्थिरता, सामाजिक परिवर्तन की बहुत धीमी गति और व्यक्ति की प्रस्थिति तथा भूमिका में स्पष्टता थी एवं लोग मान्यता-प्राप्त रीतियो से अपनी [illegible]

जाने लगा। व्यवहार के परम्परागत नियमों का प्रभाव कम होने लगा और ये व्यक्तियों के व्यवहारों को नियन्त्रित करने मे असफल रहे। इस अव्यवस्थित स्थिति में नवीन नियमों को पूरी तरह स्वीकार नहीं किया गया और लोग मूल्यों तथा नैतिकता की परवाह किये बिना व्यवहार करने लगे। यह स्थिति सामाजिक विघटन की स्थिति थी जो अनेक सामाजिक समस्याओं के लिए उत्तरदायी थी। फैरिस ने सामाजिक विघटन के लक्षणों के रूप में पवित्र तत्वों के ह्रास, स्वार्थों एवं रुचियों में व्यक्तिवादिता, वैयक्तिक स्वतन्त्रता एवं व्यक्तिगत अधिकारों पर बल, भौतिक सुख सम्बन्धी व्यवहार, एक-दूसरे पर अविश्वास और अशान्ति उत्पन्न करने वाले तत्व, आदि पर जोर दिया है।[1]

1 Faris, Robert, E. L., *Social Disorganization*, p 19

रावर्ट फैरिस तथा कुछ अन्य विद्वानों ने सामाजिक विघटन को सामाजिक समस्याओं का प्रमुख कारण नहीं माना है। इस सम्बन्ध में फैरिस ने लिखा है कि सामाजिक विघटन का सिद्धान्त उस परिस्थिति की स्पष्ट व्याख्या नहीं करता जिसमे सामाजिक समस्या उत्पन्न होती है। यह सिद्धान्त उन स्थितियों को स्पष्ट करने में असमर्थ रहा है जो सामाजिक समस्याओं को जन्म देती है। किसी समाज में सामाजिक विघटन के नहीं होने पर भी सामाजिक आदर्शो से विचलन की स्थिति या सामाजिक समस्याएं पायी जा सकती है। इससे हमें यह नही समझ लेना चाहिए कि सामाजिक विघटन और सामाजिक समस्याओ में आपस मे कोई सम्बन्ध नही पाया जाता है। यद्यपि सामाजिक विघटन का सिद्धान्त सभी सामाजिक समस्याओ की पूर्ण व्याख्या नहीं है परन्तु उनमें से बहुत-सी समस्याओं को कम से कम आंशिक रूप मे अवश्य समझाता है।

(2) सांस्कृतिक विलम्वना का सिद्धान्त (Theory of Cultural Lag)—सामाजिक परिवर्तन सम्बन्धी समाजशास्त्रीय अध्ययनों से पता चलता है कि सामाजिक समस्याएं कैसे उत्पन्न होती हैं? परिवर्तन सामाजिक व्यवहार की एक सार्वभौमिक विशेषता है। संस्कृति के विभिन्न पक्षों में परिवर्तन की असमान दर सामाजिक समस्याओ को जन्म देती है। अनेक विद्वानो के द्वारा इस प्रकार की व्याख्याएं प्रस्तुत की गयी हैं जिनमें **विलियम एम. ऑगवर्न** की 'सांस्कृतिक विलम्वना' की अवधारणा प्रमुख है। सांस्कृतिक विलम्वना सम्वन्धी उपकल्पना तीन वातों पर आधारित है—(1) संस्कृति के अनेक पक्ष या वर्ग गति की भिन्न-भिन्न दरो के अनुसार परिवर्तित होते हैं : (2) संस्कृति के भौतिक पक्ष अभौतिक या वैचारिक पक्षो की तुलना में अधिक तेजी से परिवर्तित होते हैं, और (3) भौतिक परिवर्तनों को अपनाने और उनके अनुरूप सामाजिक संस्थाओं के विकसित होने के वीच विलम्वना के क्षेत्र में सामाजिक समस्याएं उत्पन्न होती हैं। ऑगवर्न ने श्रमिक क्षति-पूर्ति अधिनियम, 1923 (Workmen's Compensation Act, 1923) के उदाहरण द्वारा यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि किस प्रकार सांस्कृतिक विलम्वना ऐसी परिस्थिति को उत्पन्न करने में योग देती है जो सामाजिक समस्याओं के लिए उत्तरदायी है। आपने वताया है कि औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप लोगों को वड़े-वड़े कारखानों में काम करना पड़ा जहां वहुत-से श्रमिक समय-समय पर दुर्घटनाग्रस्त हुए। ऐसी स्थिति में उनकी शारीरिक निर्योग्यता के कारण परिवार के भरण-पोषण की समस्या उत्पन्न हुई। औद्योगीकरण के विकास के काफी समय पश्चात् कारखानों में दुर्घटनाग्रस्त होने की स्थिति में श्रमिक को क्षति-पूर्ति के रूप में कुछ धन-राशि दिलाने का प्रावधान किया गया। भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में औद्योगीकरण के विकास तथा श्रमिक क्षति-पूर्ति अधिनियम, 1923 के पारित होने के वीच के काल को सांस्कृतिक विलम्वना काल कहा जायेगा। यहां स्थिति और आवश्यकता के मध्य एक तनाव पाया जाता है।

आज के गतिशील समाजों में आधुनिक औद्योगिक विकास ने व्यक्तियों की आवश्यकताओं को बदल दिया है और ऐसी स्थिति में सामाजिक संगठनो के नवीन स्वरूपों के विकास की आवश्यकता है। संस्कृति के भौतिक क्षेत्र मे होने वाले परिवर्तनों को शीघ्रता से अपना लेने और उनके अनुरूप होने वाले वैचारिक परिवर्तनों या अभौतिक संस्कृति के पहलुओं मे परिवर्तन की दर के धीमी होने और शीघ्रता से इनको लोगों के द्वारा स्वीकार नही किये जाने के कारण सांस्कृतिक विलम्वना की स्थिति उत्पन्न होती है। इस संक्रान्ति काल में अस्त-व्यस्तता एवं संघर्ष की स्थिति पनपती है जो सामाजिक समस्याओ के लिए उत्तरदायी

है। वर्तमान में भारत मे बेकारी की समस्या पायी जाती है परन्तु बेकार लोगों को आर्थिक एवं सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने हेतु बेरोजगारी बीमा योजना प्रारम्भ नहीं की गयी है। यहां बेकारी की स्थिति और बेकार व्यक्तियों को सुरक्षा प्रदान करने की आवश्यकता के बीच एक तनाव पाया जाता है जो सांस्कृतिक विलम्बना है। बेकार व्यक्ति अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु सामाजिक नियमों के विपरीत आचरण कर सकता है और समाज में अपराध के रूप में सामाजिक समस्या उत्पन्न हो सकती है। वास्तविकता यह है कि गतिशील समाजो में परिवर्तन की गति इतनी तीव्र होती है कि ऐसे लोगों की संख्या बढ़ती जाती है जो सन्तोषप्रद ढंग से सामंजस्य स्थापित करने मे असमर्थ रहते हैं। ऐसी स्थिति में सामाजिक समस्याएं उठ खडी होती है। ऑगबर्न ने सांस्कृतिक विलम्बना के कारणों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि रूढ़िवादिता, नये विचारों के प्रति आशंका, अतीत के प्रति लगाव, निहित स्वार्थ एवं नवीन विचारों की जांच मे कठिनाई सांस्कृतिक विलम्बना के लिए उत्तरदायी हैं।

यहां हमें इस बात को भी ध्यान में रखना है कि सांस्कृतिक विलम्बना के आधार पर केवल कुछ सामाजिक समस्याओं की उत्पत्ति को ही समझाया जा सकता है, सबकी उत्पत्ति को नही। स्थायी प्रकृति के समाजों में भी जहां सांस्कृतिक विलम्बना नहीं पायी जाती, निर्धनता दिखलायी पडती है। इसके बावजूद भी यह स्वीकार करना ही पडेगा कि संस्कृति के कुछ पहलू अन्य की तुलना में अधिक तेजी से बदलते हैं जो सामंजस्य की समस्या पैदा करते है।

(3) **मूल्यों में संघर्ष का सिद्धान्त** (Value Conflict Theory)—मूल्यों का हमारे जीवन मे बडा महत्व है। मूल्यों के आधार पर ही यह निश्चित होता है कि हमें कौन-सा काम करना चाहिए और कौन-सा नहीं। समाज में कुछ मूल्य अन्य की तुलना मे अधिक महत्वपूर्ण होते है। इसके अतिरिक्त, भिन्न-भिन्न समूहो के अलग-अलग मूल्यों के होने से मूल्य सम्बन्धी अन्तर पाये जाते हैं। मूल्यों के इसी अन्तर या इनमें पाये जाने वाले मतभेद या मूल्यो के सामान्य अर्थो के बदल जाने से सामाजिक समस्याएं पैदा होती है। विभिन्न पारिवारिक समस्याओं का एक मूल कारण पुरानी तथा नयी अथवा प्रौढ़ एवं युवा पीढ़ी के मूल्यों का आपसी संघर्ष है। इस सम्बन्ध में **क्यूबर** तथा **हारपर** ने लिखा है कि प्रौढ पीढ़ी के मूल्य विवाह की पवित्रता, रूढ़ियो में निष्ठा, परम्परा के अनुसार कर्ता का सर्वाधिकार सम्पन्न व्यक्ति होना, आदि को महत्व देते है, जबकि युवा पीढी के मूल्य अधिनायकवाद, व्यक्तिगत योग्यता तथा समान अधिकार आदि पर जोर देते हैं।

जनसंख्या के विभिन्न खण्डों में मूल्यों के संघर्ष के कारण ही बाल-श्रम, निम्न वेतन, असंगठित श्रमिक या बेकार व्यक्तियो की परिस्थिति, विवाह-विच्छेद, तथा प्रजातीय विभेदीकरण सम्बन्धी समस्याएं उत्पन्न होती हैं। मूल्यों में संघर्ष के कारण ही पूंजीवाद से सम्बन्धित समस्याएं पायी जाती हैं। कुछ व्यक्ति यह मानते है कि पूंजीवादी व्यवस्था उत्तम है क्योंकि इसमें व्यक्ति को अल्पव्ययिता, कठोर परिश्रम एवं अधिकाधिक लाभ कमाने के लिए प्रोत्साहन मिलता है। दूसरी ओर ऐसे व्यक्ति भी हैं जो यह समझते हैं कि पूंजीवादी व्यवस्था में कुछ ही पूंजीपतियों को लाभ मिलता है और शेष का शोषण होता है। मूल्यों सम्बन्धी इसी मतभेद या टकराव के कारण सामाजिक समस्याएं उत्पन्न होती हैं। फुल्लर का कथन है कि हमारे स्वार्थ के कारण अपराध बढ़ते हैं तथा पूंजीपतियों की अधिकाधिक मुनाफाखोरी के कारण श्रमिकों में बेकारी उत्पन्न होती है। मूल्यों में संघर्ष से नैतिक अस्त-व्यस्तता को प्रोत्साहन मिलता है और ऐसी

स्थिति में व्यक्ति विचलित प्रकार का व्यवहार-करने लगते है जो सामाजिक समस्याओं के लिए उत्तरदायी है।

इस सिद्धान्त की सबसे बड़ी कमी यह है कि केवल मूल्यों के संघर्ष के आधार पर सभी सामाजिक समस्याओ को नहीं समझाया जा सकता है। लोग सम्पति सम्बन्धी अपराध केवल इस कारण नहीं करते कि कुछ संस्कृतियों में धन को सांस्कृतिक लक्ष्य के रूप में विशेष महत्व दिया जाता है। अपराध की समस्या को केवल मूल्यों के संघर्ष के आधार पर स्पष्ट नहीं किया जा सकता। यहां इतना अवश्य कहा जा सकता है कि मूल्यों में संघर्ष अनेक सामाजिक समस्याओं को जन्म देने में योग देता है, परन्तु यह स्वीकार नही किया जा सकता कि केवल मूल्य-संघर्ष के कारण ही सब प्रकार की सामाजिक समस्याएं उत्पन्न होती हैं।

(4) **वैयक्तिक विचलन का सिद्धान्त** (Theory of Personal Deviation)—यहां पर यह पता लगाने की कोशिश की जाती है कि विचलन कैसे विकसित होता है और यह किस प्रकार सामाजिक समस्याओं को जन्म देता है। वैयक्तिक विचलन के अन्तर्गत उन व्यक्तियों की प्रेरणाओं और व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है जो समस्याओं को उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। **वे लोग विचलित व्यक्ति कहलाते हैं जिनका व्यवहार सामाजिक समस्याओं की उत्पत्ति में योग देता है।** मार्शल क्लीनार्ड ने विचलित व्यवहार का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है कि यह मुख्यतः कुछ किस्म के समूह आदर्श-प्रतिमानों (Norms) का उल्लंघन ही होता है। एक विचलित कार्य ऐसा व्यवहार है जो एक विशेष प्रकार से निर्धारित होता है....समाज की प्रतिक्रिया जो उस व्यवहार को नामांकित कर देने की सीमा तक भी की जा सकती है, इस विचलित व्यवहार के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है।[1] क्लीनार्ड के अनुसार विचलित व्यवहार के अध्ययन में समाज की यह प्रतिक्रिया जिसमे आदर्शो का उल्लंघन करने वालों को विशेष दण्ड दिये जाते हैं, एक महत्वपूर्ण पक्ष है। **विचलित व्यवहार की श्रेणी में केवल उन्हीं व्यवहारों को रखा जाता है जो समाज द्वारा पूर्णतः अस्वीकृत हो और जो समुदाय की सहनशीलता की सीमा को पर्याप्त मात्रा में पार कर जाएं।** अतः क्लीनार्ड के अनुसार, आदर्शो से विचलित होने के अन्तर्गत अपराध, वेश्यावृत्ति, समलैंगिक व्यवहार, मादक वस्तुओं का सेवन, मदिरापान, मानसिक दोष, आत्महत्या, वैवाहिक तथा पारिवारिक असमायोजन, अल्पसंख्यकों के प्रति भेद-भाव आदि व्यवहारों को भी सम्मिलित किया जाता है।

मिलर (Miller) विचलित व्यवहार को समाजीकरण की प्रक्रिया का ही एक अंग मानते हैं। विचलित व्यवहार व्यक्त करने वाला व्यक्ति समूह की स्वीकृत संस्कृति के विपरीत मूल्यों को समूह में सीखता है। विचलित व्यवहार यकायक ही नहीं सीखा जाता अपितु धीरे-धीरे समाजीकरण के द्वारा व्यक्तित्व में ढलता है। मिलर की मान्यता है कि निम्न वर्ग के व्यक्तियों को अवसर प्राप्त न होने के कारण अपराधी विकल्पों का आश्रय लेना पड़ता है लेकिन मेट्जा ने इस बात को स्वीकार नही किया है और इसकी तीव्र आलोचना की है।

व्यक्ति के द्वारा विचलित प्रकार का व्यवहार व्यक्त करने के मुख्य रूप से दो कारण माने जाते हैं : (1) समाज द्वारा मान्यता-प्राप्त नियमों के पालन की असमर्थता तथा (2) समाज द्वारा मान्यता-प्राप्त नियमों के पालन में असफलता। स्पष्ट है कि वैयक्तिक विघटन उन लोगों में पाया जाता है अथवा यों कहा जा सकता है कि **विचलित व्यवहार वे लोग व्यक्त करते हैं**

1 Marshall B Clinard, *Sociology of Deviant Behaviour*, p. 28.

जिनका समाजीकरण ठीक प्रकार से नहीं हुआ होता है। वैयक्तिक विचलन के दो प्रमुख प्रकार पाये जाते है : (1) समाज मे मान्यता प्राप्त नियमों से विचलन एवं (2) स्वयं उत्पन्न किये हुए नियमो वाली विचलित उपसंस्कृतियों का पाया जाना। सामाजिक समस्याओं के अध्ययन में वैयक्तिक विचलन की विधि का प्रयोग हॉर्टन तथा लेस्ले ने किया है। यहां जिन प्रमुख प्रश्नो पर विचार करना है, वे इस प्रकार है : कौन-से व्यक्ति एवं समूह नियमों से विचलित होते हैं? क्या विचलित व्यक्ति समाज के लिए समस्या उत्पन्न करते है अथवा वे स्वयं समस्या के रूप में है? यदि ये लोग समस्या उत्पन्न करते हैं तो किस प्रकार? ऐसी कौन-सी अभिप्रेरणाएं हैं जो व्यक्तियों को विचलित व्यवहार के लिए प्रेरित अथवा वाध्य करती है? विचलित प्रकार का व्यवहार प्रदर्शित करने वाले व्यक्तियों के पुनः समाजीकरण के लिए क्या किया जा सकता है?

उपर्युक्त चार सिद्धान्तों में से प्रत्येक सिद्धान्त सामाजिक समस्या को अति सरल ढंग से समझाने का प्रयत्न करता है और प्रत्येक किसी एक कारक पर जोर देता है। वास्तविकता यह है कि सामाजिक समस्याओं की उत्पत्ति को इतने सरल प्रकार से नहीं समझाया जा सकता। ये सभी सिद्धान्त मानते हैं कि विभिन्न सामाजिक समस्याओं के बीच एक सम्बन्ध अवश्य पाया जाता है। सभी सामाजिक समस्याएं समाज से ही उत्पन्न होती हैं और इनके मूल में कोई सामान्य कारक अवश्य है जिसका स्पष्टीकरण इन सिद्धान्तो के माध्यम से नही किया जा सकता है।

भारत में सामाजिक समस्याएं
(SOCIAL PROBLEMS IN INDIA)

वर्तमान समय में भारत में अनेक सामाजिक समस्याएं पायी जाती है। यद्यपि भारतवर्ष एक स्वतन्त्र गणराज्य है जिसने धर्म-निरपेक्ष, प्रजातन्त्र तथा आर्थिक समानता के प्रगतिशील मूल्यों को स्वीकार किया है, परन्तु यहां निर्धनता पायी जाती है, गरीव-अमीर के बीच एक बहुत बड़ी खाई दिखलायी पड़ती है। यहां धर्म, भाषा, प्रजाति, जाति तथा क्षेत्रीयता के आधार पर अनेक भेद-भाव पाये जाते है। व्यक्ति-व्यक्ति में सामाजिक और आर्थिक आधार पर ऊंच-नीच का एक संस्तरण पाया जाता है, जातिवाद, अस्पृश्यता, भाषावाद, प्रान्तीयता, साम्प्रदायिकता, युवाविक्षोभ तथा बेकारी आदि समस्याएं यहां मौजूद है। यहां बाल-अपराधी और प्रौढ़-अपराधी भी पाये जाते हैं जो समाज के सम्मुख समस्या उत्पन्न करते हैं। यहां जनसंख्या की बढोत्तरी भी तेजी के साथ होती जा रही है। निरक्षरता, निम्न जीवन-स्तर, शराबखोरी, जुआ, वेश्यावृत्ति और राजनीतिक एवं प्रशासनिक भ्रष्टाचार की समस्याओं का भी देशवासियो को सामना करना पड़ रहा है। यहां औद्योगीकरण एवं नगरीकरण से सम्बन्धित समस्याएं भी गम्भीर रूप धारण करती जा रही हैं।

इन समस्याओं पर प्रस्तुत पुस्तक में समाजशास्त्रीय-तार्किक दृष्टिकोण से विचार किया गया है। यहां इतना कहना काफी है कि भारतवर्ष काफी लम्बे समय तक अंग्रेजो के अधीन रहा जिन्होने इस देश की समस्याओं को हल करने और विकास कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने में अपने निहित स्वार्थों के कारण विशेष रुचि नही ली। स्वतन्त्र भारत मे भी जितना ध्यान इन समस्याओं पर दिया जाना चाहिए था, नहीं दिया जा सका। समस्याओं का निवारण इस तथ्य पर आधारित है कि किसी समाज विशेष का नेतृत्व उन समस्याओं को हल करने के

प्रति कितना दृढ़ संकल्प और देशवासियों में समस्याओं के प्रति जनचेतना जाग्रत करने मे कितना समर्थ है। कानून वना देने मात्र से सामाजिक समस्याओं से छुटकारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। आज देश में दहेज विरोधी कानून है परन्तु समाज दहेज-प्रथा से छुटकारा प्राप्त नहीं कर सका है।

सामाजिक समस्याओं का निवारण
(REMOVAL OF SOCIAL PROBLEMS)

यहां एक प्रश्न उठता है कि क्या सामाजिक समस्याओं को हल किया जा सकता है, क्या इनका निवारण सम्भव है? इसका उत्तर हां में दिया जा सकता है। विश्व के सामाजिक समस्याओं के इतिहास का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि वास्तव में वहुत-सी सामाजिक समस्याओ को समय-समय पर हल किया गया। गुलामी की प्रथा से लोगों को मुक्त कराया जा सका। प्रतिदिन वारह घण्टे तथा सप्ताह में सात दिन तक मजदूरो से काम लेने की समस्या को हल किया जा सका। इसी प्रकार वाल-श्रम की समस्या का निवारण सम्भव हुआ। आज अनेक देशों ने निर्धनता अथवा अभाव की स्थिति पर काफी नियन्त्रण प्राप्त कर लिया है और वहुत-से देश इस दिशा मे आगे वढ़ रहे हैं। वर्तमान मे अनेक वीमारियों की रोकथाम का भी सफलतापूर्वक प्रयत्न किया जा सका है। कुछ विद्वानों की यह भी मान्यता है कि परिस्थितियों के वदलने के साथ-साथ नवीन समस्याएं उठ खड़ी होती हैं। ऐसी स्थिति में पुरानी समस्याओं का स्थान नवीन समस्याएं ले लेती हैं। इस दृष्टि से सामाजिक समस्याएं हल नहीं होती, वल्कि उनके स्थान पर नवीन समस्याएं उठ खड़ी होती हैं। यहां इस सम्वन्ध में इतना कहना ही पर्याप्त है कि सामाजिक समस्याओं को हल करने के लिए काफी कुछ किया जा सकता है लेकिन यह सव कुछ निश्चित सीमाओं में ही सम्भव है।

यहां सामाजिक समस्याओं को हल करने के लिए तीन दृष्टिकोणों पर विचार करना आवश्यक है।

प्रथम, वहुकारवादी दृष्टिकोण (Multiple factors approach) के अनुसार यह माना जाता है कि किसी भी सामाजिक समस्या का जन्म अनेक कारकों के फलस्वरूप होता है। सामाजिक समस्या के लिए कोई एक कारक उत्तरदायी नही है। उदाहरण के रूप में, यह नहीं माना जा सकता कि केवल निर्धनता के कारण ही सम्पत्ति के विरुद्ध अपराध होते हैं। यदि ऐसा होता तो अनेक धनी व्यक्तियों के द्वारा अपराध क्यों किये जाते? इसी प्रकार वेकारी अथवा छात्र असन्तोष के पीछे कोई एक ही कारण नहीं पाया जाता।

द्वितीय, पारस्परिक सम्वन्ध (Inter-relatedness) का तात्पर्य विभिन्न सामाजिक समस्याओ के एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्वन्धित होने से है। यदि हम किसी एक समस्या को पृथक्करण में सुलझाना चाहें, तो यह सम्भव नहीं है। उदाहरण के रूप में, अस्पृश्यता निवारण के लिए यह आवश्यक है कि अस्पृश्य या अछूत समझे जाने वालों को आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति के अवसर प्रदान किये जायं। परन्तु इसके साथ ही यह भी अनिवार्य है कि अन्य जातियों के लोगों में उनके प्रति पायी जाने वाली पूर्व-निर्धारित धारणाओं को दूर किया जाय। यह शिक्षा के माध्यम से अज्ञानता को दूर करने से ही सम्भव है। इसके साथ ही अस्पृश्यता निवारण से सम्वन्धित कानून को कठोरतापूर्वक लागू करने की आवश्यकता भी है। अस्पृश्यों द्वारा अपनाये जाने वाले व्यवसायों के आधुनिकीकरण की ओर भी ध्यान दिया

जाना चाहिए ताकि इन लोगों के व्यवसाय को घृणित अथवा अपमानजनक न माना जाय। स्पष्ट है कि किसी भी समस्या को हल करने के लिए उससे सम्बन्धित अन्य समस्याओं के निराकरण की ओर ध्यान देना भी आवश्यक है।

तृतीय, सापेक्षिकता (Relativity) का तात्पर्य यह है कि सामाजिक समस्या का स्थान एवं समय के साथ गहरा सम्बन्ध पाया जाता है। यह सम्भव है कि आज भारत में जिस स्थिति या दशा को एक सामाजिक समस्या के रूप में माना जाता है, वह कुछ समय पूर्व उस रूप मे नही मानी जाती हो। उदाहरण के रूप में, आज अस्पृश्यता को एक गम्भीर सामाजिक समस्या माना जाता है लेकिन भूतकाल में यह समस्या नहीं समझी जाती थी। अमरीका तथा अफ्रीका मे प्रजातीय-भेदभाव समस्या के रूप में है, परन्तु भारत में नही। आज जिसे लोग सामाजिक समस्या के रूप में देखते है, सम्भव है यही स्थिति निकट भविष्य में सामान्य स्थिति बन जाय और लोग उसे समस्या नहीं मानें। किसी स्थिति को समस्या के रूप में देखना समाज विशेष के लोगों के दृष्टिकोण पर भी निर्भर करता है।

उपर्युक्त तीन दृष्टिकोणों के आधार पर ही सामाजिक समस्याओं से छुटकारा प्राप्त करना सम्भव है। परन्तु फिर भी किसी ऐसे समाज की कल्पना करना कठिन है जो समस्याओं से पूर्णतः मुक्त हो। इतना अवश्य है कि अलग-अलग कालों और समाजों में सामाजिक समस्याओं की मात्रा और गम्भीरता में अन्तर अवश्य पाया जाता है। किसी सामाजिक समस्या को हल करने मे नेताओ की प्रमुख भूमिका होती है। वे स्वयं के उदाहरण द्वारा जनता को समस्या के निराकरण के सम्बन्ध में स्वस्थ विचार प्रदान कर और समस्या को हल करने मे सफलता-प्राप्ति के पूर्व सफलता की एक हवा या वातावरण तैयार कर लोगों में एक सामूहिक अभिरुचि उत्पन्न कर सकते हैं। ऐसा होने पर लोगो में आवश्यक धारणाएं निर्मित हो पायेंगी और सामाजिक समस्याओं के निराकरण में वे सक्रिय योग दे सकेंगे।

सामाजिक समस्याओं को हल करने में कुछ कठिनाइयां भी आती है जिनके सम्बन्ध मे जॉनसन तथा अन्य विद्वानों ने विचार व्यक्त किये हैं। जॉनसन[1] ने बतलाया है : (i) शक्तिशाली मनोभाव (Sentiments) तथा निहित स्वार्थों द्वारा समर्थित सामाजिक संरचना सामाजिक समस्याओं को हल करने मे कठिनाई पैदा करती है। सामाजिक समस्या के बने रहने से कुछ शक्तिशाली लोगों के स्वार्थो की पूर्ति होती है। ऐसे लोग बाहरी तौर पर उस समस्या के हल में रुचि दिखाते है परन्तु आन्तरिक रूप से उनका प्रयत्न यही रहता है कि समस्या समस्या ही बनी रहे। इसके उदाहरण के रूप में, अमरीका में पायी जाने वाली प्रजातीय भेदभाव की समस्या का उल्लेख किया जा सकता है। (ii) सामाजिक समस्या के हल में कठिनाई यह आती है कि निहित स्वार्थ वाले लोगों के द्वारा यह तर्क दिया जाता है कि समस्या के निराकरण के लिए प्रस्तावित सुझाव समस्या को हल करने के बजाय उसे और अधिक गम्भीर बना देंगे। (iii) समस्या को हल करने में तीसरी कठिनाई धीरे-धीरे पीछे की ओर मुड़ने या कार्य करने से सम्बन्धित है। कई लोग काफी समय तक समस्या को समस्या के रूप में मानने को तैयार नहीं होते। भारत में लोग राजनीतिक और प्रशासनिक भ्रष्टाचार को मानने को तैयार नहीं थे। अब लोग यह स्वीकार करने लगे हैं कि वास्तव में व्यापक पैमाने पर भ्रष्टाचार व्याप्त है और

[1] Johnson Harry M., *Sociology—A Systematic Introduction*, p. 640.

उसे दूर करने की आवश्यकता है। भ्रष्टाचार का उन्मूलन उसी समय सम्भव है जब इसे समस्या के रूप में समझा जाय और धीरे-धीरे कार्य करने की प्रवृत्ति को छोडा जाय।

सामाजिक समस्याओं के प्रति समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण
(SOCIOLOGICAL PERSPECTIVE TOWARDS SOCIAL PROBLEMS)

सामाजिक समस्याओं के निराकरण के सम्बन्ध में वाल्श तथा फर्फे ने लिखा है कि प्रत्येक समस्या का निवारण अवलोकन, निर्णय अथवा तथ्यों के विश्लेषण और सामाजिक क्रिया एवं सामाजिक कार्य के द्वारा सम्भव है।[1] अवलोकन का तात्पर्य वैज्ञानिक विधियों को काम में लेते हुए तथ्यों को एकत्रित करने से है। निर्णय का अर्थ प्राप्त किये गये तथ्यो के विश्लेषण से है, अर्थात यहां तथ्यों के आधार पर यह पता लगाने का प्रयत्न किया जाता है कि सामाजिक समस्याओं को उत्पन्न करने में कौन-सी सामाजिक घटनाएं विशेषत' महत्वपूर्ण हैं। क्रिया के अन्तर्गत यह निश्चित किया जाता है कि सामाजिक समस्या के निवारण के लिए कहां सामाजिक क्रिया (Social Action) की और कहां सामाजिक कार्य (Social Work) की आवश्यकता है। यहां हमें इस बात को प्रमुखतः ध्यान में रखना होगा कि किसी भी सामाजिक समस्या को हल करने के लिए व्यक्ति और समूह दोनो का सक्रिय सहयोग आवश्यक है।

समाजशास्त्री समूह-तथ्यों का आनुभविक पद्धतियों के माध्यम से वैज्ञानिक विश्लेषण करता है। वह विशिष्ट घटनाओं के अध्ययन के आधार पर सामान्य निष्कर्षो तक पहुंचता है। वह उन कारकों का विश्लेषण करता है तो सामाजिक समस्याओं को उत्पन्न करने में योग देते हैं। वह प्रश्नावली, अनुसूची, सहभागिक अथवा असहभागिक अवलोकन, विषय-वस्तु विश्लेषण (Content Analysis) आदि पद्धतियों का प्रयोग करता हुआ उन प्रमाणों को एकत्रित करता है जो सामाजिक समस्याओं को जन्म देते हैं। समाजशास्त्री अपने प्रशिक्षण तथा विशेषीकृत ज्ञान के आधार पर किसी सामाजिक समस्या के विस्तार, प्रभाव-क्षेत्र, उसकी उत्पत्ति और विकास तथा उन समाजशास्त्रीय कारकों के सम्बन्ध में जो समस्या को जन्म देने में महत्वपूर्ण हैं, सही जानकारी प्रदान कर पाता है।

सामाजिक समस्याओं के प्रति समाजशास्त्रियों का दृष्टिकोण दर्शनशास्त्री, नीतिशास्त्री, अर्थशास्त्री एवं सामाजिक मनोवैज्ञानिक से भिन्न प्रकार का होता है। वह क्या है, का यथावत् चित्रण करता है। वह सामाजिक परिवर्तन की एक प्रक्रिया के रूप में सामाजिक समस्या को देखता है। समाजशास्त्री वस्तुनिष्ठ तरीके से तथ्यों का विश्लेषण करता है और सामाजिक समस्याओं के पीछे पाये जाने वाले कार्य-कारण सम्बन्धों का पता लगाने की कोशिश करता है। वह अपने दृष्टिकोण में सर्वत्र समाजशास्त्रीय-तार्किकता को बनाये रखता है। वह जानता है कि जब कभी समाज संक्रान्ति की स्थिति से गुजरता है तो एक ओर परम्परागत जीवन के ढंग और दूसरी ओर रहन-सहन तथा विचार करने के आधुनिक तरीकों में टकराव की स्थिति पैदा होती है। यह स्थिति ही अनेक प्रकार की सामाजिक समस्याओं के लिए उत्तरदायी है। समाजशास्त्री वैज्ञानिक पद्धतियों को काम में लेता हुआ न केवल सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण ही करता है, बल्कि उन्हें हल करने के लिए सामूहिक उपचारात्मक प्रयत्नों का मूल्यांकन भी करता है।

1 Wash and Furfey, *op. cit.*, pp 23-59.

सामाजिक समस्याओं को हल करने में समाजशास्त्री विविध रूपों में अपनी भूमिका निभा सकता है। सर्वप्रथम वह कार्य-कारण सम्बन्धों का पता लगाने की दृष्टि से अनुसन्धान कर सकता है, और इस प्रकार सामाजिक समस्याओ के सम्बन्ध में अपनी समझ को बढ़ा सकता है। द्वितीय, एक अध्यापक के रूप में अपनी भूमिका के माध्यम से तथा साधारण जनता के लिए अपने भाषण तथा लेखन से वह लोगो को सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूक बना सकता है। तृतीय, विशिष्ट समस्याओं को हल करने के लिए वह कार्यक्रम सुझा सकता है। चतुर्थ, वह परिवार, विवाह, स्थानीय समुदाय के विकास तथा उद्योग से सम्बन्धित समितियों आदि मे सलाहकार के रूप में कार्य कर सकता है।

सामाजिक समस्याओं का अध्ययन क्यों?

प्रश्न उठता है कि हमें सामाजिक समस्याओं का अध्ययन क्यो करना चाहिए? इस सम्बन्ध मे शेपर्ड एवं वॉस ने तीन कारणो का उल्लेख किया है। **प्रथम**, सामाजिक समस्याओं के अध्ययन के द्वारा हम सामाजिक समस्याओं को समझने एवं उन्हे हल करने के लिए समाज-वैज्ञानिको की भूमिका से परिचित हो सकते हैं। **द्वितीय**, सामाजिक समस्याओं का ज्ञान लोगो को इस बात की जानकारी प्रदान करता है कि अवांछनीय सामाजिक दशा उनके दैनिक जीवन को कैसे प्रभावित करती है। **तृतीय**, सामाजिक समस्याओ के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि सामाजिक विचलन (Social Deviance) के कारण ही समस्याएं पैदा नहीं होतीं बल्कि कई बार सामाजिक अपेक्षाओं को पूरा करने से भी सामाजिक समस्याएं जन्म लेती हैं।

सामाजिक समस्याओं के क्षेत्र में प्रमुख समाजशास्त्रीय निष्कर्ष
(MAJOR SOCIOLOGICAL FINDINGS IN THE FIELD OF SOCIAL PROBLEMS)

वीनबर्ग[1] ने इस सम्बन्ध में तीन निष्कर्षो की ओर लोगो का ध्यान आकृष्ट किया है : (i) व्यक्ति को वंशानुसंक्रमण के बजाय पर्यावरण की उपज के रूप में पुनः परिभाषित किया गया है, और विचलित व्यवहार के अनेक स्वरूपों को सीखा हुआ माना गया है, न कि जन्मजात। बाल-अपराधी एवं अपराधी उनके स्वयं के सामाजिक अनुभवो की उपज हैं, अल्प-संख्यक समूह को अब जन्मजात रूप से हीन नहीं समझा जाता, बल्कि सामाजिक तथा शैक्षणिक दृष्टि से वंचित माना जाता है। (ii) इन निष्कर्षो का तात्पर्य है कि समस्या-मूलक व्यवहार को समूह तथा संस्थात्मक प्रभावो को परिवर्तित एवं कम करके बदला जा सकता है। उदाहरण के रूप मे, बाल-अपराध या प्रजातीय संघर्ष कुछ सामाजिक प्रक्रियाओ का परिणाम है और इन प्रक्रियाओं को समझकर, समस्या-मूलक व्यवहार का शीघ्र ही पता लगाया जा सकता है, उसका उपचार किया और रोका जा सकता है। (iii) समस्यामूलक व्यवहार के प्रति इस परिवर्तित दृष्टिकोण ने विचलित व्यवहार व्यक्त करने वालों की परिभाषा को बदल दिया है। अब उन्हें रोगी, सांस्कृतिक रूप से गलत निर्देशित अथवा सुविधाओं से वंचित माना जाता है।

उपर्युक्त समाजशास्त्रीय निष्कर्ष सामाजिक समस्याओ के निराकरण में विशेष योग देते हैं। अब यह अनुभव किया जाने लगा है कि समूह मनोबल (Group morale) के पर्याप्त मे पाये जाने की अवस्था में सामाजिक समस्याओ को हल किया जा सकता है। एक

1. Kirson Weinberg, *op. cit.*, p 82

समाज का मनोबल या आत्म-विश्वास न केवल सामान्य जनता पर निर्भर करता है, बल्कि उस नेतृत्व पर भी जो अपनी समस्याओं को हर-सम्भव नवीन प्रविधियो को काम में लेते हुए हल करने के लिए पूर्णतः इच्छुक हो। यहां हमें इस बात को भी ध्यान में रखना है कि सामाजिक समस्याओं के निवारण हेतु नियोजित परिवर्तन के प्रयत्न का जनता विरोध भी कर सकती है। ऐसी स्थिति में सामाजिक वैज्ञानिक एवं प्रशासक को समुदाय के लोगों की परम्पराओं एवं प्रथाओं को ध्यान में रखना होगा वरना उत्तम से उत्तम कार्यक्रम के असफल होने की सम्भावना रहेगी। यहां श्री संजय गांधी के पांच-सूत्री कार्यक्रम का उदाहरण दिया जा सकता है। आपातकाल के दौरान परिवार नियोजन के लिए नसबन्दी कार्यक्रम को बड़े उत्साह के साथ चलाया गया परन्तु लोक परम्पराओं एवं जन-भावनाओं की उपेक्षा की गयी। परिणामस्वरूप परिवार नियोजन के विरुद्ध प्रबल जन-आक्रोश प्रकट हुआ। सामाजिक समस्याओं के निवारण हेतु बुद्धिमत्तापूर्ण कानून बनाये जाने चाहिए तथा उन्हें प्रभावपूर्ण ढंग से लागू किया जाना चाहिए। कानून उसी समय अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल हो सकता है जब लोगो मे उसके प्रति आदर के भाव जाग्रत किये जायें और उसके पालन के सम्बन्ध में उन्हें सही जानकारी दी जाय।

प्रश्न

1. सामाजिक समस्या से आप क्या समझते है? भारतीय समाज से उदाहरण देकर इसे समझाइए। (राज., 1992, 94)
2. सामाजिक समस्या की अवधारणा स्पष्ट कीजिए। आधुनिक भारत की सामाजिक समस्याओं के लिए उत्तरदायी कारकों की विवेचना कीजिए। (अजमेर, 1991)
3. सामाजिक समस्या की अवधारणा की परिभाषा कीजिए। व्यक्तिगत समस्या तथा सामाजिक समस्या मे क्या अन्तर है? (अजमेर, 1989, 90, 95; राज., 1993)
4. सामाजिक समस्या की परिभाषा कीजिए। एक समाज में सामाजिक समस्या कैसे पैदा होती है? (राज., 1995)
5 सामाजिक और व्यक्तिगत समस्या में अन्तर कीजिए। सामाजिक समस्याओ के कारणो को स्पष्ट कीजिए। (राज., 1987)
6 सामाजिक विचलन से आप क्या समझते हैं? सामाजिक विचलन एव सामाजिक समस्या में क्या सम्बन्ध है?
7. सामाजिक समस्याओं की अवधारणा की विवेचना कीजिए तथा उनकी विशेषताएँ बताइए। (अजमेर, 1993; राज., 1995)
8. सामाजिक समस्या की परिभाषा कीजिए तथा इसकी सैद्धान्तिक अवधारणाओं की व्याख्या कीजिए। (राज., 1996)
9. सामाजिक विघटन से आप क्या समझते हैं? इसके कारणों को स्पष्ट कीजिए। (अजमेर
10 समकालीन भारत की समस्याओं में से किन समस्याओं को आप सामाजिक कारण देकर स्पष्ट कीजिए। (
11. 'सामाजिक समस्या' से आप क्या समझते है? आधुनिक भारत की सामाजिक लिए कौन-से कारक उत्तरदायी है? (

2

अपराध

[CRIME]

प्रत्येक समाज मे हर समय कुछ ऐसे व्यक्ति मौजूद रहे हैं जो समाज द्वारा स्वीकृत नियमो और आदर्शों के विपरीत व्यवहार करते रहे है। अपराध का पूर्णतया उन्मूलन केवल एक कल्पना मात्र है। अपराध के जन्म की कहानी समाज के जन्म के साथ जुड़ी हुई है, अतः जब तक समाज रहेगा, अपराध भी रहेगा। इतना अवश्य है कि इसकी मात्रा कम या ज्यादा हो सकती है। यहां यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि समाज के विकास और उसमे जटिलता की वृद्धि के साथ-साथ अपराध की दर भी बढी है। यह बात अमरीका तथा अनेक अन्य देशों के उदाहरणों से प्रमाणित होती है। जहां एक ओर अमरीका की गणना विश्व के सर्वाधिक विकसित एवं सभ्य देशों में की जाती है, वहीं दूसरी ओर दुनिया में सबसे अधिक अपराध भी उसी देश में होते है।

प्रत्येक समाज अपनी सामाजिक संरचना और व्यवस्था को बनाये रखने एवं ठीक प्रकार से चलाने के लिए कुछ नियमों, प्रथाओं, रूढियों, जनरीतियों एवं सामाजिक मानदण्डो को विकसित करता है। इनमें से कुछ के विपरीत आचरण करने पर निन्दा की जाती है, कुछ का उल्लंघन अनैतिक माना जाता है, तो व्यवहार के कुछ प्रतिमानो के विरुद्ध कार्य करने पर समाज द्वारा कठोर दण्ड दिया जाता है। यद्यपि अपराध एक सार्वभौमिक तथ्य है, फिर भी समय, स्थान और परिस्थिति के अनुसार इसकी अवधारणा बदलती रही है। एक ही कार्य एक स्थान पर अपराध माना जाता है किन्तु दूसरे स्थान पर उसी के लिए पुरस्कृत किया जाता है। साधारणतः, यदि कोई किसी की हत्या कर देता है तो हत्यारे को मृत्युदण्ड या आजीवन कारावास की सजा दी जाती है, जबकि युद्ध में अधिकाधिक दुश्मनों को मारने वाले को राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित किया जाता है। जाति के बाहर विवाह करना कभी अपराध माना जाता था परन्तु आज नहीं। सती प्रथा, बाल-विवाह और दहेज-प्रथा किसी समय उचित ही नहीं बल्कि सम्माननीय व्यवहार माने जाते थे किन्तु आज ये व्यवहार कानून की दृष्टि से दण्डनीय हैं। हिन्दुओं में बहुपत्नीत्व किसी समय सामाजिक प्रतिष्ठा का सूचक था, किन्तु वर्तमान में कानूनी दृष्टि से अपराध है।

अपराध की अवधारणा राज्य के विकास के साथ-साथ स्पष्ट होती गयी। अति प्राचीन समय में और आज भी आदिम समाजो तथा ग्रामीणों में यह विश्वास है कि अपराध ईश्वरीय नियमो का उल्लंघन है, अतः वह पाप है। यदि कोई व्यक्ति समाज की नजर से बच भी

जाये फिर भी वह ईश्वर के द्वारा इस लोक या परलोक में दण्ड अवश्य पायेगा। धर्म एवं नैतिकता का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। अतः अपराध को नैतिक दृष्टि से ऐसा कार्य समझा गया जिसे नीतिशास्त्र अनैतिक मानता है। सामाजिक दृष्टि से अपराध में समाज के नियमो का उल्लंघन होता है और उससे समाज को हानि होती है। बीसवी सदी में अपराध के प्रति तार्किक एवं सामाजिक दृष्टिकोण विकसित हुआ जिसके अनुसार अपराध को समाज-विरोधी कार्य माना गया। राज्य के शक्ति ग्रहण करने के साथ-साथ व्यक्ति के व्यवहारो को राज्य के नियमों से सम्बद्ध किया गया और ऐसे सभी कार्य जिनसे राज्य के नियमो का उल्लंघन होता हो, अपराध माने जाने लगे। इस प्रकार अपराध का सम्बन्ध समय-समय पर धर्म, नैतिकता, समाज और राज्य से जोड़ा जाता रहा है। यही कारण है कि अपराध की व्याख्या देश, काल और परिस्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार से की जाती रही है। हम यहां अपराध की सामाजिक एवं वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करेंगे।

अपराध : एक समाजशास्त्रीय अवधारणा
(CRIME : A SOCIOLOGICAL CONCEPT)

अपराध की समाजशास्त्रीय व्याख्या अति प्राचीन है। सामाजिक एवं समाजशास्त्रीय दृष्टि से वे व्यवहार जो समाज विरोधी है, अपराध कहे जाते हैं। समाजशास्त्रीय व्याख्या मे अपराध की परिस्थितियों पर अधिक जोर दिया जाता है और यह जानने का प्रयास किया जाता है कि वे कौन-सी परिस्थितियां हैं जो व्यक्ति को अपराध के लिए प्रेरित करती है। यह व्याख्या अपराध के परिणामो पर जोर नहीं देती। इसलिए इसका सम्बन्ध दण्ड के बजाय सुधार से अधिक है जबकि अपराध की कानूनी व्याख्या अपराध के परिणाम और दण्ड से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है। अनेक विद्वानों ने अपराध को सामाजिक दृष्टिकोण से परिभाषित किया है।

बार्नस एवं टीटर्स लिखते है, "अपराध एक ऐसी क्रिया है जिसको समूह पर्याप्त रूप से खतरनाक समझता हो तथा ऐसे कार्य के लिए अपराधी को दण्डित करने और रोकथाम करने के लिए एक निश्चयात्मक सामूहिक प्रक्रिया की आवश्यकता हो।"[1]

✓इलियट और मैरिल के अनुसार, "समाज विरोधी व्यवहार जो कि समूह द्वारा स्वीकार किया जाता है जिसके लिए समूह दण्ड निर्धारित करता है, अपराध के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"[2]

मॉवरर "अपराध को सामाजिक मानदण्डों का उल्लंघन (Violation of Social Norms) मानते हैं।"[3]

काल्डवेल के अनुसार, "अपराध किसी निश्चित स्थान व समय पर संगठित समाज-सम्मत मूल्यों के संग्रह का उल्लंघन है।"[4]

1 "A crime is an act which the group regards as suff... [illegible]

2 [illegible] which it attaches penalties."
—Elliott & Merrill, *Social Disorganization*, pp 542-4[illegible]

3 E. R. Mowrer, *Disorganization—Personal & Social*, p 133.

4 Caldwell, *Criminology*, p 4.

क्लिनार्ड, "अपराध को सामाजिक नियमों से विचलन (Deviation from Social Norms) मानते हैं।"[1]

डॉ. हैकरवाल ने अपराध के सामाजिक पक्ष को प्रस्तुत करते हुए लिखा है, "सामाजिक दृष्टिकोण से अपराध व्यक्ति का ऐसा व्यवहार है जो उन मानव सम्बन्धों की व्यवस्था में बाधा डालता है जिन्हें समाज अपने अस्तित्व के लिए प्राथमिक दशा के रूप में स्वीकार करता है।"[2]

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं में **अपराध को समाज-विरोधी व्यवहार के रूप में व्यक्त किया गया है।**

किसी व्यवहार को सामाजिक दृष्टि से अपराध ठहराने के लिए **सदरलैण्ड**[3] तीन बातों को आवश्यक मानते हैं—(i) एक मूल्य (value) जिसे एक समूह या उसके किसी भाग द्वारा महत्वपूर्ण माना जाता हो, (ii) इस समूह में एक दूसरे भाग का होना जो कि उस मूल्य के अधिक या कम विरोध में हो और इस कारण उसके लिए घातक सिद्ध हो, (iii) एक सुस्पष्ट या उचित दण्ड व्यवस्था का होना जिसे कि उस मूल्य का आदर करने वाले मूल्यों का अनादर करने वालों पर लागू करें।

टाफ्ट ने सामाजिक दृष्टि से अपराध में दो बातों को सम्मिलित किया है—(i) सामाजिक दृष्टि से वे कार्य अपराध है जिन्हे करने की समाज द्वारा मनाही है। ऐसे कार्य समाज द्वारा पाप, अनैतिक, दुराचार एवं परम्पराओं को तोड़ने वाले समझे जाते हैं। समाज द्वारा निषिद्ध कार्यों को करने वाले को समाज अनौपचारिक रूप से दण्ड देता है जैसे उसका अपमान करना, मजाक उड़ाना, सामाजिक बहिष्कार करना, आदि। यही नहीं, ऐसे कार्य करने वाले व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा भी गिर जाती है। अपराध की गम्भीरता का मूल्यांकन अपराधी क्रिया के समाज पर पड़ने वाले प्रभाव के आधार पर किया जाता है।

(ii) सामाजिक दृष्टि से अपराध व्यक्ति के भूतकाल के कार्यों की अपेक्षा भविष्य के कार्यों से अधिक सम्बन्धित है, कानून व्यक्ति को उसकी भूतकाल की अपराधी-क्रियाओं के लिए अधिक दण्ड देता है—उसमें बदले की भावना दिखायी देती है, जबकि सामाजिक दृष्टिकोण से अपराध एक ऐसी क्रिया है जो भविष्य में समाज के लिए हानिप्रद हो सकती है। **टाफ्ट** के ही शब्दों में, "सामाजिक दृष्टिकोण से दण्ड का उद्देश्य हिसाब को बराबर करना *नहीं है और न ही अपराधी से बदला लेना है, अपितु इस सम्बन्ध मे निश्चित होना है कि* वह अपने अपराधों को दोहरायेगा नही। दण्ड को तभी व्यवहार में लाया जायेगा जबकि पुनरावृत्ति को रोकने का वही एकमात्र रास्ता हो या जब यह आशा हो कि दण्ड दूसरे को अपराध करने से रोकेगा।"[4]

सामाजिक या समाजशास्त्रीय दृष्टि से अपराध के निम्नांकित पक्ष हैं :

(i) अपराध मानवीय सम्बन्धों में बाधा पैदा करता है।

(ii) अपराध का निर्धारण प्रचलित सामाजिक मूल्यों एवं आदर्शों के आधार पर होता है। वे कार्य जो सामाजिक मूल्य एवं आदर्शों को तोड़ते हैं अपराध समझे जाते है।

(iii) अपराध समाज व्यवस्था एवं एकता के लिए खतरनाक समझा जाता है।

1 Clinard, *Sociology of Deviant Behaviour*, p 22.
2 Haikerwal, *Economic and Social Aspects of Crime in India*, 1927, p 27.
3 H. Sutherland, *op. cit.*, p. 15
4 Taft, *op. cit*, p 9.

(iv) वह कार्य अपराध है जिसके प्रति सामाजिक प्रतिक्रिया हो, समाज द्वारा जिसके लिए विरोध प्रकट किया जाता हो।

(v) अपराध के लिए समाज द्वारा दण्ड की व्यवस्था की जाती है जिससे कि भविष्य में इस प्रकार के व्यवहार दोहराये नहीं जायं।

स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी समाज का सदस्य होता है तथा उससे समाज द्वारा निर्धारित रीति-रिवाजों, प्रथाओ, मूल्यों और आदर्शो के अनुरूप व्यवहार करने की अपेक्षा की जाती है। नियमों के पालन से समाज सुचारु रूप से चलता है और स्वयं व्यक्ति की सुरक्षा बनी रहती है एवं उसके हितों की पूर्ति होती है। समाज में विभिन्न रुचियो वाले व्यक्ति होते हैं। अतः व्यक्तिगत स्वार्थ-पूर्ति एवं रुचियों की भिन्नता के कारण जब कुछ व्यक्ति समाज द्वारा निर्धारित नियमों का उल्लघन करते हैं तो अपराध पनपता है। समाज ऐसे व्यक्तियों के लिए दण्ड की व्यवस्था करता है, यद्यपि प्रत्येक असामाजिक व्यवहार अपराध की श्रेणी में नहीं आता। सन्तान द्वारा माता-पिता की किसी आज्ञा का उल्लंघन या ऊंची जाति के व्यक्ति द्वारा निम्न जाति के व्यक्ति के साथ बैठकर बीड़ी-सिगरेट पीना उतना गम्भीर अपराध नहीं कहा जा सकता जितना कि अपनी जाति के बाहर विवाह करना। अतः कुछ प्रकार के सामाजिक व्यवहार तो समाज सहन कर लेता है, कुछ के लिए हल्की निन्दा या आलोचना करता है किन्तु कुछ के लिए जुर्माना और कठोर दण्ड की व्यवस्था भी करता है।

अपराध : एक कानूनी अवधारणा
(CRIME A LEGAL CONCEPT)

कानूनी दृष्टि से अपराध की व्याख्या अपेक्षाकृत देर से विकसित हुई। इस व्याख्या के अनुसार वे सारे कार्य जो किसी समय विशेष में किसी राज्य में संविधान, अपराधी संहिता (Criminal Code) या राज्य के नियमों के विपरीत घोषित किये गये हों, अपराध कहलायेंगे। अपराध की कानूनी व्याख्या अपराध के परिणाम और दण्ड पर अधिक जोर देती है। वर्तमान समय के समाजों में अपराध की वैधानिक व्याख्या ही स्वीकार की जाती है। यही नहीं, बल्कि अपराधशास्त्र में शोध कार्य के लिए वैधानिक परिभाषा ही स्वीकार की गयी है। कानूनी दृष्टि से अपराध की परिभाषा इस प्रकार है :

टाफ्ट के अनुसार, "वैधानिक रूप से अपराध एक ऐसी क्रिया है जो कानून के अनुसार दण्डनीय है।"[1]

सेठना ने लिखा है, "अपराध वह कार्य या त्रुटि है, जिसके लिए कानून दण्ड देता है।"[2]

मॉवरर का कहना है, "अपराध वह कार्य है जिससे कानून का उल्लंघन होता है।"[3]

बीयर के अनुसार, "अपराध राज्य द्वारा परिभाषित एक निषिद्ध व्यवहार है। यह राज्य द्वारा उल्लेखित नियमों का उल्लंघन है।"[4]

1 "Legally a crime is an act made punishable by law"
—Taft, D. R. *Criminology*, 1956

2 "Crime is an act or omission which the law thinks fit to punish"
M. J. Sethna, Society and the Criminal, p. 195

3 "

लैंडिस एण्ड लैंडिस के अनुसार, "अपराध वह कार्य है जिसे राज्य ने सामूहिक कल्याण के लिए हानिकारक घोषित किया है और जिसके लिए दण्ड देने हेतु राज्य शक्ति रखता है।"[1]

हैकरवाल के अनुसार, "कानून के दृष्टिकोण से अपराध कानून का उल्लंघन है।"[2]

गिलिन और गिलिन का मत है, "कानून के दृष्टिकोण से अपराध किसी देश के कानून के विरुद्ध कार्यवाही है।"[3]

टैपन के अनुसार, "अपराध अपराधी कानून के उल्लंघन का इरादतन कार्य है जो बिना औचित्य अथवा प्रतिरक्षा के किया जाता है।"[4]

ब्लैकस्टोन के अनुसार, "किसी भी सार्वजनिक कानून की अवज्ञा अथवा उल्लंघन से सम्बन्धित व्यवहार ही अपराध है।"[5]

उपर्युक्त परिभाषाओं में इस बात पर जोर दिया गया है कि केवल वे ही कार्य या व्यवहार अपराध माने जायेंगे जो किसी देश के प्रचलित कानूनों के विपरीत हो। कानून का निर्माण सार्वजनिक हित के लिए किया जाता है, व्यक्तिगत हित के लिए नही। कानूनी दृष्टि से अपराध ऐसा कार्य है जिससे सम्पूर्ण समाज या समुदाय को हानि होती है न कि व्यक्ति विशेष को। व्यक्ति को हानि पहुंचाना 'टॉर्ट' कहलाता है। राज्य का यह कर्तव्य है कि ऐसे व्यक्ति को दण्डित करे जिसने कानून का उल्लंघन कर समाज को हानि पहुंचायी है। देश की न्याय-व्यवस्था ही यह तय करती है कि व्यक्ति ने अपराध किया है या नहीं। कानून का उल्लंघन करने पर भी यदि न्यायालय किसी को निर्दोष घोषित करता है तो वह अपराधी नहीं माना जायेगा। अपराध निर्धारण करते समय न्यायालय अपराध के उद्देश्य को भी ध्यान में रखता है और दण्ड निर्धारण में भी यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है। अपराध की कानूनी अवधारणा का सम्बन्ध प्रमुख छः बातों से है :

(i) अपराध किसी भी समाज में एक समय विशेष में प्रचलित कानूनों का उल्लंघन है। अपराध में समय एक महत्वपूर्ण तत्व है। एक समय में जो कार्य अपराध कहलाता है, वही दूसरे समय में अपराध नहीं भी हो सकता है। शराबबन्दी लागू होने से पूर्व शराब पीना अपराध नहीं था किन्तु जिन राज्यों में नशाबन्दी हो गयी है, वहां अब शराब पीना जुर्म है।

(ii) अपराध का निर्धारण न्यायालय करता है। किसी व्यक्ति पर अभियोग लगाया जाता है तो न्यायालय ही यह देखता है कि व्यक्ति ने किसी कानून को तोड़ा है या नहीं। न्यायालय अपराध निर्धारण करने के लिए प्रमाणों को देखता है तथा वादी एवं प्रतिवादी दोनों की सुनवाई करता है।

(iii) अपराध में अपराधी इरादा होना आवश्यक है। अपराध ऐसा कार्य है जिसे व्यक्ति सामान्यतः जान-बूझकर समाज को हानि पहुंचाने के इरादे से करता है। अनजाने मे अथवा

1 "Crime is an act which the state has declared harmful to group welfare and which the state has power to punish" —Landis and Landis, *Social Living*, p 146.
2 "From legal point of view, crime is a violation of law." —Haikerwal, *Economic and Social Aspects of Crime in India*, p 17.
3 "From the legal point of view, crime is an offence against law of the land" —Gillin and Gillin, *Cultural Sociology*, p 764
4 "Crime is an intentional act in violation of criminal law committed without defence or justification." —P. W Tappan, *Crime, Justice and Correction*
W Blackstone, *Commentaries*, Vol IV, p 5.

भूल से किया गया कार्य उतना गम्भीर अपराध नहीं माना जाता जितना कि पूर्व इरादे से किया गया कार्य।

(iv) अपराध करने का विचार ही अपराध नहीं है वरन् इसमें व्यक्ति द्वारा कानून-विरोधी व्यवहार प्रकट करना भी आवश्यक है क्योंकि प्रकट क्रिया को ही कानूनी या गैर-कानूनी ठहराया जा सकता है।

(v) अपराध का सम्बन्ध दण्ड से भी है। अपराधी के लिए राज्य दण्ड की व्यवस्था करता है। जिस कार्य के लिए दण्ड नहीं दिया जाता, उसे राज्य कानून विरोधी या समाज के लिए हानिप्रद नहीं मानता।

(vi) अपराध का सम्बन्ध सामूहिक हित एवं कल्याण से भी है। जो कार्य समूह कल्याण को ठेस पहुंचाते हैं, राज्य उन्हें कानूनन अपराध घोषित करता है।

हाल्सबरी, सेठना एवं अन्य अपराधशास्त्रियों ने अपनी परिभाषाओं में उपर्युक्त तथ्यों को सम्मिलित किया है। हाल्सबरी लिखते है, "अपराध एक अवैधानिक त्रुटि है जो जनता के विरुद्ध है और जिसके लिए अभियुक्त को कानूनी दण्ड दिया जाता है।"[1] सेठना भी इन्ही पक्षों को ध्यान में रखते हुए कहते है, "अपराध कोई भी वह कार्य अथवा त्रुटि है जो किसी विशेष समय पर राज्य द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार दण्डनीय है, इनका सम्बन्ध चाहे पाप से हो अथवा नहीं।"[2]

यहां हमने अपराध की सामाजिक और कानूनी अवधारणा का उल्लेख किया है। कई बार सामाजिक और कानूनी दृष्टिकोण से किसी एक ही कार्य को अपराध माना जाता है। किन्तु कई बार इन दृष्टिकोणों में टकराव पाया जाता है। मृत्युभोज सामाजिक दृष्टि से अपराध नहीं है किन्तु कानूनन अपराध है। अन्तर्जातीय विवाह कानून की दृष्टि से अपराध नही है किन्तु सामाजिक दृष्टि से अर्थात् जातीय नियमों के अनुसार अपराध है। चोरी सामाजिक और कानूनी दोनों ही दृष्टियों से अपराध है।

अपराध को अधिक स्पष्टतः समझने के लिए उसके लक्षणों को समझना आवश्यक है।

अपराध के लक्षण
(CHARACTERISTICS OF CRIME)

01

जिरोम हाल[3] ने उन विशेषताओं का उल्लेख किया है जिनके आधार पर किसी मानवीय व्यवहार को अपराध घोषित किया जाता है। वे निम्न प्रकार हैं :

(1) हानि (Harm)—अपराधी क्रिया का वाह्य परिणाम ऐसा होना चाहिए जिससे अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों की शारीरिक, मानसिक या आर्थिक हानि हो। इस प्रकार अपराध में समाज को नुकसान होता है।

(2) क्रिया (Action)—जब कोई व्यक्ति अपराधी क्रिया न करे और अपराध करने का केवल मन में विचार ही रखे, तब तक इसे अपराध नहीं माना जायेगा। अपराध के लिए सोच लेना ही पर्याप्त नहीं वरन् इरादे या विचार का क्रिया के रूप में वाह्य प्रकाशन भी आवश्यक है।

(3) कानून के द्वारा निषेध (Prohibited by Law)—कोई भी कार्य तब तक अपराध नहीं माना जायेगा जब तक कि उस देश का कानून उसे अवैधानिक घोषित न करे। अतः

1 [illegible]
2
3

कई बार एक कार्य समाज की दृष्टि से असामाजिक होते हुए भी, यदि कानून ने उसे स्वीकार किया है, तो अपराध नहीं माना जायेगा। अन्तर्जातीय विवाह सामाजिक दृष्टि से साधारणतः अनुचित माना जाता है किन्तु कानूनी दृष्टि से अपराध नहीं है। इसलिए जब तक देश के प्रचलित कानून ही किसी समाज-विरोधी कार्य को अपराध घोषित न करें, तब तक हम उसे अपराध की श्रेणी मे नहीं रख सकते।

(4) **अपराधी उद्देश्य (Criminal Intention)**—अपराध निर्धारण में अपराधी उद्देश्य एक महत्वपूर्ण पहलू है। जान-बूझकर इरादतन किया हुआ कानून-विरोधी कार्य अपराध है। अनजाने में बिना इरादे के या भूल से किये हुए कार्य को हम अपराध तो मानते हैं किन्तु उतना गम्भीर नही जितना कि पूर्व इरादे से किये गये कार्य को। दण्ड निर्धारित करते समय न्यायाधीश इस बात का भी ध्यान रखते है कि अपराधी द्वारा अपराध जान-बूझकर किया गया है या परिस्थितिवश अथवा अनजाने मे।

(5) **उद्देश्य और व्यवहार में सह-सम्बन्ध (Co-relation between Intention and Behaviour)**—अपराध के लिए अपराधी उद्देश्य के साथ ही क्रिया का होना भी आवश्यक है। उद्देश्य-विहीन क्रिया या क्रिया-विहीन उद्देश्य अपराध नही होगा। दोनों का प्रकाशन साथ-साथ होना चाहिए।

(6) **व्यवहार और हानि में सह-सम्बन्ध (Co-relation between Behaviour and Harm)**—हानि और व्यक्ति का व्यवहार भी सह-सम्बन्धित होना चाहिए। हत्या अपराध है किन्तु जब तक हत्यारे का पता नहीं चले अपराध का निर्धारण नही होगा। अतः हानि और व्यवहार दोनों ज्ञात होने पर ही अपराध का पता लगाया जा सकता है।

(7) **दण्ड (Punishment)**—अपराध करने पर राज्य या समाज अपराधी को दण्ड देता है। यह दण्ड शारीरिक कष्ट या जुर्माना आदि के रूप में हो सकता है। दण्ड के भय से ही कानून का पालन होता है। बिना दण्ड के कानून खाली नाम है। बिना शक्ति के कानून ऐसी आग है जो न जलाती है और न रोशनी ही देती है।

अपराध का वर्गीकरण
(CLASSIFICATION OF CRIME)

मानव व्यवहारों मे भिन्नता के कारण अपराधों में भी विविधता पायी जाती है। अपराधशास्त्रियों ने अपराध की व्याख्या और विश्लेषण करने के लिए अपराध और अपराधियों का समय-समय पर वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। हम यहां कुछ विद्वानों के वर्गीकरणों का उल्लेख करेंगे :

सदरलैण्ड का वर्गीकरण (Sutherland's Classification)

सदरलैण्ड[1] ने अपराध की गम्भीरता को ध्यान में रखकर उसे दो भागों में बांटा है—साधारण अपराध और जघन्य अपराध।

साधारण अपराध (Misdemeanors)—चोरी, मारपीट, शराब पीना आदि साधारण अपराध हैं। ऐसे अपराध करने पर अधिक कठोर दण्ड नहीं दिया जाता है और अपराधी को चेतावनी देकर, कम दण्ड देकर या परिवीक्षा पर छोड़ दिया जाता है।

1 Sutherland, *Principles of Criminology*, p 16

जघन्य अपराध (Felonies)—हत्या, बलात्कार, डकैती, अपहरण, राजद्रोह, आदि गम्भीर अपराध हैं जिनके लिए राज्य मृत्यु दण्ड अथवा आजीवन कारावास आदि के रूप में कठोर दण्ड की व्यवस्था करता है। टैपन और जेम्स स्टीफेन ने सदरलैण्ड के इस वर्गीकरण को उपयुक्त नहीं माना है क्योंकि (i) एक ही अपराध एक देश में साधारण हो सकता है जबकि दूसरे देश में जघन्य। (ii) साधारण अपराधों के परिणाम कभी-कभी गम्भीर हो सकते है। (iii) यह वर्गीकरण ऐसा भ्रम उत्पन्न करता है कि जघन्य अपराध करने वाला व्यक्ति भयकर और क्रूर है तथा उसका सुधार सम्भव नही है।

क्लिनार्ड और क्वीने का वर्गीकरण (Clinard and Quinney's Classification)

क्लिनार्ड और क्वीने[1] ने निम्नांकित आठ प्रकार के अपराधों का उल्लेख किया है :

(i) **हिंसात्मक व्यक्तिगत अपराध (Violent Personal Crime)**—आक्रमण, बलात्कार और हत्या आदि अपराध इस श्रेणी में आते हैं। ऐसे अपराधों की समाज मे कटु आलोचना एवं भर्त्सना की जाती है और राज्य इनके लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था करता है।

(ii) **सम्पत्ति सम्बन्धी आकस्मिक अपराध (Occasional Property Crime)**—ऐसे अपराधों में धन-लाभ मूल उद्देश्य होता है। दस्तावेजों पर जाली हस्ताक्षर करना, चेक पर झूठे हस्ताक्षर कर उसे भुनाना, कलात्मक वस्तुओं को पार करना एवं दुकानों पर चोरी करना आदि इस श्रेणी के अपराधों में आते हैं।

(iii) **व्यावसायिक अपराध (Occupational Crime)**—कई व्यक्ति अपने व्यवसाय के दौरान ही अपराध करते हैं, जैसे मिलावट करना, कालाबाजारी करना, गबन और झूठे विज्ञापन देना, आदि। ऐसे अपराध समाज के उच्च एवं प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा अधिक किये जाते हैं।

(iv) **राजनीतिक अपराध (Political Crime)**—इनका उद्देश्य राजनीतिक लाभ प्राप्त करना होता है, जैसे जासूसी, तोड़-फोड़, राजद्रोह, आदि।

(v) **सार्वजनिक व्यवस्था सम्बन्धी अपराध (Public Order Crime)**—आवारागर्दी, वेश्यावृत्ति, सड़क के नियमों का पालन न करना, शराब पीकर बखेड़ा खड़ा करना, समलैंगिकता, आदि ऐसे अपराध हैं जो सार्वजनिक रूप से अव्यवस्था पैदा करते हैं।

(vi) **परम्परागत अपराध (Conventional Crime)**—डकैती, लूटमार, अपहरण और गिरोह तथा संगठन बनाकर अपराध करना या चोरी करना इस श्रेणी के अपराध हैं। जीविकोपार्जन के अन्य साधनों के साथ ही इन अपराधी कार्यों को भी किया जाता है।

(vii) **संगठित अपराध (Organized Crime)**—इनमें कई व्यक्तियों द्वारा मिलकर एक संगठन बनाया जाता है और योजनाबद्ध रूप से अपराध किया जाता है। विभिन्न देशो के बीच सोना, अफीम, गांजा, चरस आदि का व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय अपराधी गिरोह द्वारा किया जाता है।

(viii) **पेशेवर अपराध (Professional Crime)**—इस श्रेणी मे वे अपराध आते हैं जिनको व्यक्ति व्यवसाय के रूप में ही करता है। जेब काटना, चोरी करना, उठाईगीरी करना, नकली नोट छापना, आदि इसी श्रेणी के अन्तर्गत आने वाले अपराध हैं।

1 Clinard and Quinney, *Criminal Behaviour System—A Typology*, pp. 14-48

सांख्यिकीय आधार पर वर्गीकरण (Classification on the Basis of Statistics)

सरकार ने अपराधों की संख्या के आधार पर अपराध को प्रमुखतः पांच भागों में बांटा है :

व्यक्ति के विरुद्ध अपराध (Crime against Person); जैसे हत्या, मारपीट, बलात्कार, आदि।

सम्पत्ति के विरुद्ध अपराध (Crime against Property) में चोरी, डकैती, लूट, आदि आते है।

राज्य के विरुद्ध अपराध (Crime against State); जैसे राजद्रोह, जासूसी, आदि।

व्यवस्था के विरुद्ध अपराध (Crime against Order); जैसे मदिरापान, जुआ, वेश्यावृति और उपद्रव फैलाना, आदि।

न्याय के विरुद्ध अपराध (Crime against Justice); जैसे अपराधी घोषित होने पर सजा न भुगतना, न्यायालय का अपमान करना, आदि।

भारत मे तीन प्रकार के अपराध माने गये हैं :

(i) भारतीय दण्ड विधान (Indian Penal Code) द्वारा दण्डनीय अपराध जैसे हत्या, मारपीट, अपहरण, चोरी, लूट, सार्वजनिक अशान्ति पैदा करना, मान-हानि, विश्वासघात, धोखा, आदि।

(ii) दण्ड प्रक्रिया संहिता (Code of Criminal Procedure) द्वारा दण्डनीय अपराध जैसे दुर्व्यवहार करना और शान्ति भंग करना।

(iii) ऐसे अपराध जो स्थानीय एवं विशिष्ट कानूनों के द्वारा दण्डनीय हैं जैसे उन राज्यों में शराब पीना, जहां पूर्ण नशाबन्दी लागू कर दी गयी है, अपराध है जबकि अन्य राज्यो मे नहीं।

उपर्युक्त वर्गीकरण से स्पष्ट है कि विभिन्न अपराधशास्त्रियों ने अपराध के वर्गीकरण के विभिन्न आधार अपनाये हैं। किसी ने उद्देश्य को आधार माना है, तो किसी ने गम्भीरता और संख्या को, तो किसी ने वैधानिकता को।

अपराधी कौन
(WHO IS CRIMINAL)

सामान्य रूप से अपराधी उसे माना जाता है जो समाज के नियमों की अवहेलना करता है, अनैतिक और धर्म के विरुद्ध कार्य करता है, तथा राज्य के नियमों के विरुद्ध आचरण करता है। इलियट और मैरिल कहते हैं, "तकनीकी तौर पर अपराधी वह है जो दण्डनीय दुर्व्यवहार करे।"[1] टाफ्ट भी ऐसे व्यक्ति को अपराधी मानते है जिसने कानून निषिद्ध व्यवहार किया है।[2] कुछ लोगो की मान्यता है कि अपराधी मानसिक रूप से अयोग्य और भावात्मक रूप से अव्यवस्थित व्यक्ति है, परिस्थितियों के साथ उसका सामंजस्य नहीं हुआ है तथा उसमें सांस्कृतिक तथा नैतिक शिक्षा का अभाव है। कानूनी रूप से हम उसी व्यक्ति को अपराधी कहते हैं जिसको न्यायालय ने दोषी ठहराया है और दण्ड की आज्ञा दी है। सामाजिक दृष्टि

1 "Technically the criminal is one guilty of a criminal offence."
—Elliott and Merrill, *op cit*, p 91

2 "A criminal is one who has committed such a legally forbidden act."
—D. R. Taft, *Criminology*, 1959

से हर कानून के उल्लंघनकर्ता को अपराधी नहीं माना जाता। अंग्रेजों के शासन काल में अंग्रेजी सत्ता को हटाने हेतु विविध गतिविधियां—सत्याग्रह एवं आन्दोलन आदि अपराध थे किन्तु हम सामाजिक दृष्टि से उनको अपराध नहीं कह सकते।

अपराधियों के अध्ययनों में अपराधी की कानूनी परिभाषा ही स्वीकार की गयी है। इस सन्दर्भ में एक समस्या यह है कि कोई भी कानून यह घोषित नहीं करता कि कोई भी व्यक्ति कितने समय तक अपराधी कहलायेगा? क्या केवल अपराध करने के दौरान या दण्ड पाने की अवधि तक या आजीवन?

टाफ्ट ने एक व्यक्ति को अपराधी ठहराने के लिए कुछ आधारों का उल्लेख किया है जो निम्नवत् हैं :

(1) **उपयुक्त आयु (Competent Age)**—किसी भी व्यक्ति को अपराधी घोषित करने से पूर्व उसकी आयु का भी ध्यान रखा जाता है। इंगलैण्ड के कानून के अनुसार यह आयु 7 वर्ष है। अमरीका में व्यक्ति की आयु और उसकी लम्बाई एव शारीरिक बनावट देखकर ही उसे अपराधी घोषित किया जाता है। सामान्यतः किसी भी देश में 6 या 7 वर्ष से कम की आयु के बालक द्वारा किया गया कानून विरोधी कार्य अपराध नहीं माना जाता क्योंकि ऐसा माना जाता है कि इस आयु तक बच्चे में अपराधी भावना का उदय नही हो पाता, वह अच्छाई और बुराई में अन्तर नही कर पाता। अतः इस भावना के उदय के बाद ही किसी को अपराधी कहा जा सकता है।

(2) **स्वेच्छ क्रिया (Voluntary Act)**—किसी भी व्यक्ति को अपराधी उसी समय माना जायेगा जब उसने अपनी इच्छा से कानून विरोधी कार्य किया हो, न कि किसी दबाव के कारण। एक व्यक्ति रात्रि को ताला बनाने वाले को घर से उठा ले जाता है और उसे किसी के यहां तिजोरी खोलने को कहता है और ऐसा न करने पर उसे जान से मारने की धमकी देता है। ऐसी स्थिति में वह यदि तिजोरी का ताला खोलता है तो उसका यह कार्य अपराध नहीं कहलायेगा क्योंकि यहां उसे अपराध के लिए बाध्य किया गया है। किन्तु दवाव का निश्चय भी न्यायालय ही करता है।

(3) **अपराधी इरादा (Criminal Intent)**—अपराध का कार्य व्यक्ति द्वारा जान-बूझकर अपराधी इरादे से किया जाना चाहिए यद्यपि लापरवाही और कानून के प्रति अनभिज्ञता क्षमा-योग्य नहीं है।

(4) **अपराध कानूनी रूप से राज्य के लिए हानिप्रद होना चाहिए (Crime must be classed legally as an act injurious to the State)**—अपराध से राज्य को हानि होनी चाहिए। व्यक्ति के विरुद्ध किया गया कार्य अपराध की श्रेणी में नहीं आता वरन् उसे दुष्कृति (Tort) कहा जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कानूनी दृष्टि से अपराधी वह है जिसने इच्छापूर्वक बुरी नीयत से ऐसे कार्य किये हों जो दण्डनीय हैं।

अपराधियों का वर्गीकरण
(CLASSIFICATION OF CRIMINALS)

अपराध की भांति ही अपराधशास्त्रियों ने अपराधियों का भी विभिन्न प्रकार से वर्गीकरण किया है। यहां कुछ विद्वानों के वर्गीकरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं :

(I) सदरलैण्ड का वर्गीकरण (Sutherland's Classification)

सदरलैण्ड[1] ने अपराधियों को दो भागों में बांटा है—निम्नवर्गीय अपराधी और श्वेत-वस्त्रधारीअपराधी।

निम्नवर्गीय अपराधी (Lower Criminal)—ये वे व्यक्ति हैं जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नही है, दरिद्र या गरीब हैं, मजदूरी करते हैं और धन के अभाव में न्याय प्राप्त करने में असमर्थ है, अतः वे शीघ्र ही पुलिस की निगाह में आ जाते हैं।

श्वेत-वस्त्रधारी अपराधी (White Collar Criminals)—अमेरिकन अपराधशास्त्री सदरलैण्ड ने अपने अध्ययन मे अपराधियों को प्रमुखतः दो भागों में बांटा—एक, निम्नवर्गीय अपराधी जो गरीब एवं निम्न वर्ग के होते है और शीघ्र ही पकड़ लिये जाते है। दूसरे, सफेदपोश अपराधी जो प्रतिष्ठित एवं उच्च वर्ग के होते हैं, आर्थिक लाभ के लिए अपराध करते हैं तथा साधन-सम्पन्न होने के कारण पकड में नहीं आते एवं दण्ड से बच जाते हैं।

श्वेतवसन अपराध की परिभाषा करते हुए सदरलैण्ड लिखते हैं, "श्वेतवसन अपराध प्रतिष्ठित एवं उच्च सामाजिक प्रस्थिति धारण करने वाले व्यक्ति द्वारा उसके व्यवसाय के दौरान किया जाता है।"[2] सदरलैण्ड की इस परिभाषा से दो बातें स्पष्ट है : (i) श्वेतवसनअपराधी समाज में प्रतिष्ठित व्यक्ति होते है, (ii) ये व्यक्ति अपने व्यवसाय के दौरान अपराधी कार्य करते है, जैसे डॉक्टर भ्रूण हत्या करने में सहायता करें या प्राध्यापक पैसे लेकर परीक्षा प्रश्न-पत्र बताने का कार्य करें तो वह श्वेतवसन अपराध कहलायेगा।

क्लीनार्ड श्वेतवसन अपराध की परिभाषा देते हुए लिखते हैं, "कानून का वह उल्लंघन जो मुख्यतः व्यापारियों, पेशेवर व्यक्तियों एवं राजनीतिज्ञों, जैसे समूहो में उनके व्यवसाय के सम्बन्ध में पाया जाता है।[3]

सदरलैण्ड ने श्वेतवसन अपराध की निम्नांकित विशेषताओं का उल्लेख किया है :

(1) श्वेतवसन अपराध समाज के उच्च सामाजिक-आर्थिक वर्ग के सदस्यों द्वारा किया जाता है। (2) इस प्रकार का अपराध अपराधी अपने व्यवसाय के दौरान ही कानून को भंग करके करता है। (3) इस प्रकार के अपराधी चूंकि सामर्थ्यवान होते हैं, अतः कानून तोड़ने पर भी इनकी सामाजिक प्रतिठा पर कोई आंच नहीं आती है और ये समाज में ऊंचा सिर करके चलते है। (4) इस प्रकार के अपराधी अपने ऊंचे पद के कारण अपने हित के कानून बनवाने के लिए संसद सदस्यों एवं कानून निर्माताओं पर दबाव डालते हैं और ऐसे कानूनों के पारित होने का विरोध करते हैं जो उनके हितों के प्रतिकूल हों। (5) श्वेतवसनअपराधी इस प्रकार का दिखावा करते हैं कि उन्हें समाज-सेवा एवं समाज कल्याण मे विशेष रुचि है। इसके लिए वे सार्वजनिक संस्थाओं से अपना सम्पर्क रखते है, उन्हे चन्दा देते हैं जिससे कि ये संस्थाएं उनके गुणगान करें और उनके विरुद्ध प्रचार न करें। (6) श्वेतवसनअपराधी अपने धन व पद के कारण न्यायाधीशों को अपने पक्ष में कर लेते हैं, उनसे सम्पर्क रखते हैं, उन्हें भेट देते रहते है ताकि अवसर आने पर उनसे अपने पक्ष में निर्णय करा सकें। (7) श्वेतवसन अपराधियों पर कोई भी कानूनी कार्यवाही इसलिए नहीं हो पाती कि उनके

1 Sutherland, "White Collar Criminality", *American Sociological Review*, Feb 1940, pp 1-12.
2 Sutherland, *White Collar Crime*, 1949, p 19.
3 Clinard, *The Black Market : A Study of White Collar Crime* (1952), p. 29.

विरुद्ध कोई संगठित कदम नही उठाये जाते तथा उनके द्वारा पहुंचायी गयी हानि कई भागों मे बंट जाती है। (8) श्वेतवसन अपराध आर्थिक प्रकृति के होते हैं जिनका उद्देश्य अधिकाधिक लाभ कमाना और भौतिक सुख-सुविधाएं प्राप्त करना होता है (9) श्वेतवसन अपराध विश्वासघात पर आधारित है। सदरलैण्ड कहते है कि श्वेतवसन अपराध विश्वास के उल्लंघन पर आधारित है। उदाहरण के लिए, साहूकार लोग अनपढ़ व्यक्तियों को कम पैसा देकर अधिक पर हस्ताक्षर करा लेते हैं। अनपढ़, गरीब एवं किसान लोगों के विश्वास का साहूकार नाजायज फायदा उठाते हैं। (10) श्वेतवसन अपराध कानून को लागू करने में भेदभाव पर आधारित है। देश में कानून सभी के लिए समान रूप से बने होने पर भी धनी, प्रतिष्ठित एवं अधिकारियों से सम्पर्क रखने वाले व्यक्ति कानून का उल्लंघन करने पर भी साफ बच जाते है। (11) इस प्रकार के अपराध मुख्यतः चिकित्सकों, कानूनवेत्ताओं, शिक्षा अधिकारियों, व्यापारियों, संसद सदस्यों, राजनेताओ, इंजीनियरों एवं उद्योगपतियों, आदि के द्वारा किये जाते हैं।

(II) लोम्ब्रोसो का वर्गीकरण (Lombroso's Classification)

लोम्ब्रोसो[1] ने अपराधियों को प्रमुखतः चार भागों में बांटा है :

(1) जन्मजात अपराधी (Born Criminal)—ऐसे अपराधियों मे जन्म से ही कुछ शारीरिक लक्षण ऐसे होते हैं जिनके आधार पर उन्हें पहचाना जा सकता है। लोम्ब्रोसो ने 15 विभिन्न शारीरिक लक्षणों का उल्लेख किया है और कहा है कि यदि इनमें से पांच लक्षण किसी व्यक्ति में पाये जाते है तो वह अवश्य ही अपराध करेगा। उनकी मान्यता थी कि अपराधी विशेषताएं व्यक्ति को वंशानुक्रमण से प्राप्त होती हैं।

(2) पागल अपराधी (Insane Criminal)—इस श्रेणी में वे अपराधी आते है जो मानसिक रूप से किसी न किसी बीमारी से ग्रस्त होते हैं और उनका मस्तिष्क दुर्बल हो जाता है। वे मानसिक असन्तुलन के कारण अपराध करते हैं।

(3) आवेगयुक्त अपराधी (Criminal by Passion)—इस श्रेणी में वे व्यक्ति आते हैं जो शीघ्र ही आवेग के वशीभूत हो जाते हैं जिनमें मामूली बात पर मानसिक तनाव उत्पन्न हो जाता है तथा जो शीघ्र ही घातक हमला तक कर बैठते हैं। ऐसे व्यक्ति यौन-तृप्ति की लालसा के कारण भी अपराध करते हैं।

(4) आकस्मिक अपराधी (Occasional Criminal)—इस श्रेणी में वे व्यक्ति आते है जो शारीरिक व मानसिक दोषों से ग्रसित नहीं होते वरन् परिस्थितियोंवश ही अपराध करते है। इन अपराधियों को लोम्ब्रोसो ने तीन उप-भागों में बांटा है :

(i) अर्द्ध या नकली अपराधी (Pseudo Criminal)—ऐसे अपराधी खतरनाक नहीं होते वरन् ये आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए या अनापेक्षित परिस्थितियों के कारण ही अपराध करते हैं।

(ii) आदतन अपराधी (Habitual Criminal)—ये व्यक्ति जन्मजात अपराधी तो नहीं होते किन्तु प्रतिकूल वातावरण के कारण अपराध करते हैं।

1 Cesare Lombroso, *Crime, Its Causes and Remedies*, by H. P Harton, 1911

(iii) अपराधीसम (Criminaloid)—इस श्रेणी में ये व्यक्ति आते हैं जो जन्मजात अपराधी और ईमानदार व्यक्ति के बीच के होते हैं। परीक्षण करने पर ऐसे व्यक्ति आत्मक्षत (degenerated) पाये गये।

(III) हेज का वर्गीकरण (Classification of Hedge)

हेज ने अपराधियो को चार भागों में बांटा है :

(1) प्रथम अपराधी (First Criminal)—जो पहली बार अपराध करता है।

(2) आकस्मिक अपराधी (Occasional Criminal)—जो कभी-कभी परिस्थितियों के दवाव में आकर अपराध करता है।

(3) आदतन अपराधी (Habitual Criminal)—जो आदत के वशीभूत होकर अपराध करते है, चाहे उन्हें लाभ हो या न हो।

(4) पेशेवर अपराधी (Professional Criminal)—जो आजीविका के साधन के रूप में अपराध करते हैं और अपराध ही जिनका व्यवसाय बन जाता है। वे या तो अपने लिए या किसी संगठन के लिए अपराध करते हैं। एक गिरोह के रूप में अपराध करने वाले पेशेवर अपराधियो की संख्या वर्तमान में वढ़ती जा रही है।

उपर्युक्त वर्गीकरणो से स्पष्ट है कि विद्वानों ने विभिन्न आधारों को ध्यान में रखकर अपराधियो का वर्गीकरण किया है किन्तु किसी ने भी अपराधियों का सर्वमान्य वर्गीकरण प्रस्तुत नही किया है। वर्गीकरण के प्रमुख आधारों में अपराधी की आयु, उद्देश्य, अपराध की प्रवृत्ति एवं परिस्थितियां आदि प्रमुख है। अपराधियों का उचित वर्गीकरण हमें उनकी प्रवृत्तियो, उद्देश्यों, प्रकृति आदि को समझने में योग देता है। अपराध के सिद्धान्तों के निर्माण में भी अपराधियों का वर्गीकरण एक महत्वपूर्ण पहलू है।

अपराध के कारण सम्बन्धी सिद्धान्त (THEORIES OF CAUSATION OF CRIME)

समाज मे अपराध के क्या कारण हैं? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए समय-समय पर अनेक विद्वानों ने अपने सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं जिन्हें हम अपराध के कारण सम्बन्धी सिद्धान्त के नाम से पुकारते है। हम यहां प्रमुख सिद्धान्तों का संक्षेप में उल्लेख करेंगे।

शास्त्रीय सिद्धान्त (Classical Theory)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन 18वीं सदी के अन्त में हुआ। इसके प्रमुख समर्थकों मे वैकरिया, बेन्थम और फ्यूअरबेक थे। ये सिद्धान्तवादी सुखवादी दर्शन से प्रभावित थे। इस दर्शन की यह मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति किसी भी कार्य को करने से पूर्व उससे मिलने वाले सुख व दुख का हिसाव लगाता है और वही कार्य करता है जिससे उसको सुख मिलता है। एक अपराधी भी अपराध इसलिए करता है कि उसे अपराध करने पर दुख की तुलना मे सुख अधिक मिलता है।

इस सिद्धान्त को सर्वप्रथम इटली के अपराधशास्त्री वैकरिया ने प्रस्तुत किया। अपराध के प्रति वैकरिया की धारणा के मूल आधार ये थे :

(i) अधिकांश लोगों का अधिकांश सुख। (ii) अपराध करते समय व्यक्ति दुख की तुलना मे सुख का अधिक अनुभव करता है। (iii) अपराध का अर्थ है समाज को हानि पहुचाना और क्षति की मात्रा ही अपराध की मात्रा निर्धारित करती है।

भौगोलिक सिद्धान्त (Geographical Theory)

इस सिद्धान्त से सम्बन्धित अभिमत का प्रचलन 18वीं सदी से 20वीं सदी तक रहा है। भूगोलवेत्ताओं ने भौगोलिक पर्यावरण, भूमि की रचना, वर्षा, तापमान, जलवायु, आदि को अपराध के लिए उत्तरदायी ठहराया है। इसके प्रमुख समर्थकों में क्वेटलेट, ग्वेरी, माण्टेस्क्यू, डेक्स्टर, लैकेसन, कोहन और क्रोपोटकिन आदि हैं।

फ्रांस के क्वेटलेट और ग्वेरी ने अपराध का ताप सम्बन्धी सिद्धान्त (Thermic Law of Crime) दिया। उन्होंने कहा कि गर्मियों में व्यक्ति के विरुद्ध अपराध और सर्दियों में सम्पत्ति के विरुद्ध अपराध अधिक होते हैं। उपजाऊ भूमि, अनुकूल वर्षा एवं प्राकृतिक साधनों की अधिकता होने पर अपराध कम होंगे और इनके विपरीत परिस्थितियों में अपराध अधिक होंगे। उनकी मान्यता थी कि भौगोलिक पर्यावरण मानव व्यवहार को भी प्रभावित करता है।

फ्रांस के मॉण्टेस्क्यू ने अपनी पुस्तक 'क़ानून की आत्मा' (*Spirit of Laws*) में लिखा है कि "ज्यों-ज्यों हम भूमध्य रेखा के पास जाते हैं, अपराध बढ़ते जाते हैं। ध्रुवों की ओर शराब पीकर किये जाने वाले अपराधों की संख्या अधिक है।"[1] डेक्स्टर[2] (Dexter) ने मौसमी तत्वों जैसे तापक्रम, नमी, वायुमण्डल का दवाव आदि के आधार पर अपराधी प्रवृत्ति का अध्ययन किया और कहा कि आर्द्रता के बढ़ने पर हिंसा के अपराध घटते हैं। वायु के दबाव के साथ हिंसा के अपराध बढ़ते हैं। गर्मियों में लड़ाई-झगड़े व आक्रमण के अपराध अधिक होते हैं तथा वर्षाकाल में हिंसात्मक अपराध कम होते हैं। लैकेसन ने अपराध सम्बन्धी एक कैलेण्डर बनाया और यह दर्शाया कि किस महीने में कौन-सी अपराध होते हैं। लोम्ब्रोसो ने कहा कि समतल भूमि में अपराध कम और घाटियों में पहाड़ की चोटियों पर अधिक होते हैं।

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि भौगोलिक पर्यावरण का प्रभाव मानव स्वभाव पर पड़ता है, किन्तु पर्यावरण और अपराध का सीधा सम्बन्ध नहीं है। यदि भौगोलिक कारक ही अपराध के लिए उत्तरदायी है तो क्या कारण है कि एक ही प्रकार के भौगोलिक पर्यावरण के रहने पर एक व्यक्ति अपराध करता है और दूसरा नहीं। साथ ही इस सिद्धान्त में सामाजिक कारकों की उपेक्षा की गयी है।

प्रारूपवादी सम्प्रदाय (इटैलियन सम्प्रदाय) : अपराधी जन्मजात होते हैं [Typological School (Italian School) : Criminals are Born]

इस सम्प्रदाय की मान्यता है कि अपराधी का एक विशेष प्रारूप (Type) होता है जिसे देखकर ही उसे पहचाना जा सकता है। उसकी शारीरिक रचना सामान्य व्यक्तियों से भिन्न होती है। ये शारीरिक विशेषताएं अपराधी को वंशानुक्रमण में मिलती हैं। इस सम्प्रदाय के समर्थकों में लोम्ब्रोसो, गैरोफैलो और एनरिकोफेरी प्रमुख हैं। चूंकि ये सभी विद्वान इटली के निवासी थे, अतः इस सम्प्रदाय का नामकरण इसी आधार पर किया गया।

इस सम्प्रदाय के लोगों ने अपराध के कारणो की व्याख्या अपराधी की शरीर रचना के आधार पर की है। साथ ही यहां अपराधी की मानसिक विशेषताओं को भी अपराध के लिए उत्तरदायी माना गया है। मानसिक विशेषताओं के निर्धारण में शरीर पर की जाने वाली गुदवायी एक महत्वपूर्ण पक्ष माना गया है।

1 Montesquie, quoted by Barnes and Teeters, *op. cit.*, p. 143
2 E. G Dexter, *Weather Influence*, pp 142-52.

लोम्ब्रोसो[1] इटली की सेना मे डाक्टर थे। अपने सेवाकाल के दौरान उन्होंने देखा कि कुछ सैनिक अनुशासन-प्रिय हैं किन्तु कुछ उद्दण्ड हैं। अपराधी सैनिकों की शरीर रचना और सामान्य सैनिको की शरीर रचना मे उल्लेखनीय अन्तर थे। अपराधी सैनिकों ने अपने शरीर पर भद्दी और उत्तेजक तस्वीरें गुदवा रखी थी जबकि साधारण सैनिकों ने सरल तस्वीरें। ये तस्वीरें उनके स्वभाव की सूचक थीं। उन्होने इटली की जेलो का भी अध्ययन किया और पाया कि शरीर रचना और मानसिक विशेषताओं में घनिष्ठ सम्बन्ध है। उन्होंने उस समय के एक प्रसिद्ध डाकू की खोपड़ी और मस्तिष्क का अध्ययन किया तो पाया कि उसमें अनेक विचित्रताएं हैं जो साधारण मनुष्यो मे नहीं होतीं। इसके अतिरिक्त, उन्होंने 283 अपराधियों की खोपड़ियो का अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अपराधियों की शारीरिक रचना आदिमानव और पशुओं से बहुत कुछ मिलती है। इसलिए ही उनमे जंगलीपन और पशुता के गुण हैं जो उन्हे अपराध के लिए प्रेरित करते हैं। ये शारीरिक विशेषताएं वंशानुक्रमण में मिलती हैं और अपराधी को विशेष रूप प्रदान करती हैं। यही कारण है कि अपराधी जन्मजात होते हैं। उन्होंने तो अपराधियो की खोपड़ी, सिर, नाक, कान, आंख, ठुड्डी, बाल, ओंठ, दांत, आदि का वर्णन करके बताया कि इनकी किस प्रकार की रचना होने पर एक व्यक्ति अपराधी होगा; हत्या, यौन-अपराध और आदतन अपराधी के शरीर की बनावट कैसी होगी। उन्होने लगभग 15 शारीरिक अनियमितताओं का उल्लेख किया और बतलाया कि जिसमें इनमे से 5 अनियमितताएं होंगी, वह निश्चित रूप से अपराधी होगा। आपने अपराधियों को चार भागों में बांटा है—जन्मजात, पागल, कामुक और आकस्मिक। वे अपराधियों को दण्ड देने के साथ-साथ बाल-अपराधियों के सुधार के पक्ष में भी थे। लोम्ब्रोसो पहले अपराधशास्त्री थे जिन्होंने अपराध विज्ञान के क्षेत्र में वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किये।

गैरोफैलो (Garofalo) लोम्ब्रोसो के विचारों से प्रभावित होकर उसके समर्थक थे। उन्होंने भी यह स्वीकार किया कि अपराधी एक 'प्रारूप' होता है किन्तु वे शारीरिक विशेषताओं के स्थान पर मानसिक विशेषताओं का उल्लेख करते हैं। उन्होंने कहा कि अपराधियों में दया और ईमानदारी की भावना का अभाव होता है। ईमानदारी के अभाव के कारण वह सम्पत्ति के विरुद्ध और दया के अभाव के कारण व्यक्ति के विरुद्ध अपराध करता है।

एनरिको फेरी (Enrico Ferrie) लोम्ब्रोसो का शिष्य था। आपने अपराधियों की शारीरिक एवं मानसिक विशेषताओं के साथ-साथ भौतिक व सामाजिक पर्यावरण को भी अपराध के लिए उत्तरदायी माना है। इस दृष्टि से वे आधुनिक सिद्धान्तों के नजदीक हैं। वे लिखते हैं, "जिस प्रकार एक निश्चित तापक्रम में पानी का एक पिण्ड रसायन वस्तु की एक निश्चित मात्रा को घुला देगा, उसी प्रकार निश्चित व्यक्ति और भौतिक दशाओं के साथ एक निश्चित सामाजिक पर्यावरण में, एक निश्चित संख्या में, न कम और न ही अधिक अपराध किये जायेंगे।"[2]

इटैलियन सम्प्रदाय की अनेक विद्वानो ने आलोचना की है। उनमें डॉ. गोरिंग और थार्स्टन सेलन प्रमुख है। गोरिंग[3] ने 12 वर्ष तक तीन हजार अपराधियों का अध्ययन करके बताया कि अपराधी और गैर-अपराधी की शरीर रचना में कोई अन्तर नहीं होता। यदि अपराधी

1 C Lombroso, *The Criminal Man*, pp. ix-xx.
2 T. Ferrie, quoted by D R. Taft, *Criminology*, 1959, p 80.
3 Charles Goring, *The English Convict : A Statistical Study*, 1913, p. 173.

आदिमानव का प्रारूप है तो क्या सभी आदि मानव अपराधी थे? आज यह भी कोई नहीं मानता कि अपराधी जन्मजात होते हैं और उन्हें शारीरिक एवं मानसिक लक्षण वंशानुक्रमण में मिलते हैं। गैरोफैलो की यह बात भी स्वीकार नहीं की जा सकती कि अपराधियों में दया और ईमानदारी का अभाव होता है।

समालोचना (Criticism)

(1) आज कोई भी इस बात को स्वीकार नहीं करता कि अपराधी जन्मजात होते है। इसे स्वीकार करने का अर्थ है कि हम चाहे दण्ड एवं सुधार के कितने ही प्रयास करें अपराधी को ठीक नहीं किया जा सकता क्योंकि वह जन्म से ही अपराधी विशेषताएं लेकर पैदा हुआ है।

(2) लोम्ब्रोसो ने अपराध के लिए सामाजिक परिस्थितियों के प्रभाव को ध्यान में नही रखा। बुरे साथी, बुरा पड़ौस, गन्दी वस्ती, शिक्षण संस्थाओ का वातावरण, अपराधी क्षेत्र, बेकारी, निर्धनता, अश्लील साहित्य, आदि अनेक परिस्थितियां अपराध के लिए उत्तरदायी हैं न कि केवल शारीरिक विशेषताएं।

(3) लोम्ब्रोसो एवं उनके साथियों का अध्ययन-क्षेत्र सीमित था, अतः उनके निष्कर्ष सही नहीं माने जा सकते। सदरलैण्ड का मत है कि लोम्ब्रोसो और उनके अनुयायियों ने अपराधियों एवं गैर-अपराधियों की तुलना कभी सावधानी से नहीं की और अपराधियों को जिन जंगली लोगों से मिलता-जुलता माना गया, उन जंगलियों के सम्बन्ध में भी उनको ज्ञान कम था।"[1]

(4) लोम्ब्रोसो द्वारा शारीरिक लक्षणों के आधार पर अपराधियों को गैर अपराधियों से अलग करना अवैज्ञानिक है। चार्ल्स गोरिंग ने तो 12 वर्ष के अपराधियों के अपने अध्ययन में यह पाया कि दोनों में शारीरिक दृष्टि से आश्चर्यजनक समानता है। अतः शारीरिक अपराधी प्रारूप जैसी कोई चीज नहीं होती।[2]

(5) गैरोफैलो की यह बात भी उपयुक्त प्रतीत नहीं होती है कि अपराधियों में दया व ईमानदारी की भावना नहीं होती। कई डाकू डाका डालकर सम्पत्ति को गरीबों में लुटा देते हैं। जेबकतरों के पारस्परिक सौदे भी विश्वास एवं ईमानदारी पर आधारित होते हैं।

समाजशास्त्रीय सिद्धान्त : अपराधी जन्मजात नहीं होते वरन् बनाये जाते हैं (Sociological Theories : Criminals are not Born but Made)

19वीं सदी में समाजशास्त्रीय अभिमत और भौगोलिक अभिमत का साथ-साथ उदय हुआ। दोनों ने ही पर्यावरण को अपराध का कारण माना। किन्तु भौगोलिक अभिमत पर्यावरण को महत्वपूर्ण मानता है जबकि समाजशास्त्रीय अभिमत सामाजिक-सांस्कृतिक पर्यावरण को। सदरलैण्ड लिखते हैं कि इस सिद्धान्त का केन्द्रीय तत्व यह है कि अपराध उन्हीं प्रक्रियाओ का फल है जिनमें दूसरे प्रकार के सामाजिक व्यवहार उत्पन्न होते हैं।[3] टाफ्ट लिखते हैं कि समाजशास्त्रीय सम्प्रदाय मुख्य रूप से सामूहिक जीवन के प्रभाव, सामाजिक दृष्टिकोण और

1 E. H. Sutherland, *op. cit.*, p. 55
2 Charles Goring, *The English Convict*, London, pp. 99-100.
3 "The central thesis of the sociological school is that criminal behaviour results from the same process as other social behavoiur."
—E. Sutherland, *Principles of Criminology*, p. 57.

व्यवहार के सामूहिक प्रतिमानों से सम्बन्धित है, इसके साथ ही यह व्यक्ति के सामाजिक पद एवं भूमिका और इस सम्बन्ध में उसकी धारणा और इसके अतिरिक्त सामाजिक परिस्थितियों तथा सम्बन्धों से सम्बन्धित है।[1] 19वीं सदी में गैब्रियल टार्डे ने शरीर-रचना सम्प्रदाय की आलोचना की और 'अनुकरण' (Imitation) के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया। आपके अनुसार *व्यक्ति का व्यवहार सामाजिक अनुकरण द्वारा सम्भव होता है।* यदि कोई चोरी करना सीखता है तो वह भी किसी का अनुकरण कर रहा होता है। **समाजशास्त्रीय अभिमत की मान्यता है कि अपराधी प्रवृत्ति जन्मजात नहीं है वरन् सीखा हुआ व्यवहार है।** एक गैर-अपराधी व्यक्ति जब अपराधियों के सम्पर्क में आता है तो वह भी अपराध करना सीखता है। स्यकैवन अपराधी व्यवहार को सामूहिक साहचर्य का प्रतिमान मानते हैं। विभिन्न समाजशास्त्रियों ने अलग-अलग सामाजिक कारकों को अपराध के लिए उत्तरदायी ठहराया है। हम यहां उनमें से कुछ के विचारों का उल्लेख करेंगे।

1. **सदरलैण्ड का मत**—सदरलैण्ड अमरीका के प्रसिद्ध समाजशास्त्री हैं जिन्होंने अपनी पुस्तक **'अपराधशास्त्र के सिद्धान्त'** (*Principles of Criminology*) में सर्वप्रथम अपराध की वैज्ञानिक आधार पर सामाजिक व्याख्या प्रस्तुत की। आपने अपराध का कारण अपराधी लोगों से सम्पर्क माना है और अपराध पर सन् 1939 में **विभेदक या विभिन्न सम्पर्क** (Differential Association) **का सिद्धान्त** प्रस्तुत किया। आपने अपराध की दो व्याख्याएं प्रस्तुत कीं—(i) परिस्थिति सम्बन्धी व्याख्या, और (ii) जन्म सम्बन्धी या ऐतिहासिक व्याख्या। परिस्थिति सम्बन्धी व्याख्या में अपराध को परिस्थितियों का प्रतिफल माना जाता है। उदाहरण के लिए, एक नौकर घर पर मालकिन के अभाव में उसके आभूषण चुरा कर ले जाता है। इसका अर्थ *यह हुआ कि मालकिन की अनुपस्थिति ने नौकर को चोरी करने के लिए अनुकूल परिस्थिति* प्रदान की। ऐतिहासिक या जन्म सम्बन्धी व्याख्या अपराध को उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में देखती है। इसका तात्पर्य यह है कि *अपराधी कार्य परिस्थिति के परिणामस्वरूप नहीं किया गया वरन्* वह एक लम्बे समय की सीख का परिणाम है जो व्यक्ति ने अपराधी लोगों के सम्पर्क में आकर सीखा। सदरलैण्ड इसी मत को स्वीकार करते हैं। वे मानते हैं कि अधिकांश व्यक्ति अपराधी व्यवहार अपराधी प्रतिमानों के सम्पर्क में आकर सीख जाते हैं। अन्य शब्दों में, व्यक्ति अपराधी इसलिए बनते हैं कि वे अपने दैनिक जीवन में अपराधी या अर्द्ध-अपराधियों के सम्पर्क में गैर-अपराधियों की तुलना में अधिक आते हैं। **सदरलैण्ड अपराध को संगति और सीख का परिणाम मानते हैं।** आपने तीन प्रकार की संगति मानी हैं—व्यक्तिगत मित्रता, निष्क्रिय समूहों की सदस्यता (जैसे किसी भाषण या श्रोता-समूह में भाग लेना) तथा अन्तःक्रियात्मक समूह (जैसे खेल का मैदान, गैंग और क्लब आदि) से उत्पन्न संगति। संगति में आने पर व्यक्ति में सुझाव-ग्रहणशीलता बढ़ जाती है और वह नेता की पूजा व अनुकरण को महत्व देने लगता है। किसी भी बुरी संगति में आने पर व्यक्ति में कई प्रकार की अपराधी आदतें उत्पन्न होती हैं, जैसे वह समुदाय के प्रति संघर्षशील दृष्टिकोण को अपनाता है, उसमें विध्वंसक प्रवृत्तियां पैदा होती हैं और वह अपराधी नेता द्वारा प्रशिक्षण प्राप्त कर गैंग की अपराधी संहिता को अपना लेता है, आदि। एक मिलनसार व्यक्ति अमिलनसार की तुलना में अपराध शीघ्र सीख लेता है। सदरलैण्ड के सिद्धान्त की अग्रांकित प्रमुख उपकल्पनाएं हैं :

1 Taft, D. R., *Criminology*, 1959, p. 84

(i) अपराधी व्यवहार सीखा जाता है, वंशानुक्रमण में प्राप्त नही होता है।

(ii) अपराधी व्यवहार अन्य लोगों से अन्तःक्रिया द्वारा या संचार के माध्यम से ग्रहण किया जाता है।

(iii) अपराधी व्यवहार प्राथमिक समूहों के सम्पर्क की देन है।

(iv) अपराध मे एक व्यक्ति अपराध की विधियां, प्रेरणा, मनोवृतियां आदि सीखता है।

(v) अपराध की प्रेरक शक्तियों को व्यक्ति कानूनी संहिताओ (Legal Codes) की स्वीकृत या अस्वीकृत परिभाषाओं द्वारा सीखता है। एक अपराधी कानून की अनुकूल परिभाषाओं के स्थान पर प्रतिकूल परिभाषाओं को अधिक अपनाता है अर्थात् वह गैर-अपराधी प्रतिमानों की तुलना में अपराधी प्रतिमानों के सम्पर्क में अधिक आता है।

(vi) सम्पर्क भी समय, तीव्रता, प्राथमिकता और पुनरावृत्ति के आधार पर भिन्न-भिन्न होता है। एक व्यक्ति अपराधी बनेगा या नहीं, यह इस बात पर भी बहुत निर्भर करता है कि वह कितने समय तक कितनी तीव्रता से और कितनी बार अपराधियों के सम्पर्क में रहा।

(vii) अपराधी व्यवहार सीखने की विधियों एवं कानून-सम्मत व्यवहार सीखने की विधियों में समानता है।

(viii) अपराधी और गैर-अपराधी व्यवहार सामान्य आवश्यकताओं और मूल्यों की अभिव्यक्ति है। इसीलिए केवल आवश्यकता व मूल्यों के आधार पर ही अपराध को नहीं समझा जा सकता है।

(ix) सदरलैण्ड की मान्यता है कि संगठित समाज में असंगठित समाज की तुलना में अपराध कम होते हैं। सामाजिक गतिशीलता और सामाजिक परिवर्तन समाज में असामंजस्य को जन्म देते हैं जिसके परिणामस्वरूप अपराध होते हैं।

आलोचना—सदरलैण्ड के उपर्युक्त सिद्धान्त की अनेक विद्वानों ने आलोचना की है। सदरलैण्ड ने अपने सिद्धान्त में भौगोलिक, मनोवैज्ञानिक तथा प्राणीशास्त्रीय कारणों की उपेक्षा की है।

यह आवश्यक नहीं है कि संगति के कारण ही अपराध सीखा जाय। इसे संगति में आने से पूर्व और बाद में भी सीखा जा सकता है।

इस सिद्धान्त में प्राथमिक समूहों पर अधिक जोर देकर द्वैतीयक समूहों के महत्व को भुला दिया गया है।

जार्ज वोल्ड का कहना है कि अपराधियों के सम्पर्क में आने पर कुछ ही व्यक्ति अपराधी बनते हैं, शेष क्यों नहीं?

इस सिद्धान्त मे सीखने की प्रक्रिया को अत्यधिक सरल रूप में प्रस्तुत किया गया है।

क्लारेन्स रे जेफरो का कहना है कि यह सिद्धान्त यह नही बताता कि आयु, लिंग एवं नगरीय तथा ग्रामीण क्षेत्र के आधार पर अपराध की दरों में भिन्नता क्यों है?

डेनियल ग्लेजर[1] ने सदरलैण्ड के सिद्धान्त को संशोधित कर 'विभिन्न तादात्मीकरण' (Differential Identification) का सिद्धान्त दिया और बताया कि अपराधियों के सम्पर्क में आने पर भी सभी व्यक्ति अपराधी इसलिए नहीं बन पाते क्योंकि उनके सन्दर्भ-समूह

1 Denial Glazer, *Criminology—Theories and Behaviour Images*, American Journal of Sociology, March 1956, p 440

(Reference group) भिन्न-भिन्न होते हैं। एक व्यक्ति उसी सन्दर्भ-समूह के अनुसार अपने व्यवहार को ढालने का प्रयास करता है जो उसके लिए सकारात्मक होता है और जिसको वह अपने अनुकूल मानता है।

II **क्लोवार्ड और ओहलिन का सिद्धान्त** (Cloward and Ohlin's Theory)—क्लोवार्ड और ओहलिन[1] का सिद्धान्त दुर्खीम एवं मर्टन के व्याधिकी (Anomie) तथा क्लिफोर्ड शा और सदरलैण्ड के सिद्धान्तों पर आधारित है। इसे **'विभिन्न अवसर का सिद्धान्त'** (Differential Opportunity Theory) कहा गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार एक व्यक्ति अपनी इच्छाओं की पूर्ति जब वैध साधनों से नही कर पाता है तो वह गैर-कानूनी साधनो का सहारा लेता है। किन्तु ये गैर कानूनी साधन भी सभी व्यक्तियों को उपलब्ध नही होते। प्रमुखतः निम्न वर्ग के युवा लोग जब मध्यम वर्ग के मूल्यों और उद्देश्यो को वैध तरीको से प्राप्त नहीं कर पाते तो वे अवैध तरीके प्रयोग मे लाते हैं। अवैध साधनो की उपलब्धि में अन्तर के कारण ही अपराध की मात्रा मे भी अन्तर पाया जाता है।

क्लोवार्ड और ओहलिन ने **अपराधी उप-संस्कृति** (Delinquent Sub-culture) की अवधारणा भी दी। अपराधी उप-सस्कृति में अपराध केन्द्र-विन्दु होता है और अपराधी क्रियाओं का इस संस्कृति द्वारा समर्थन किया जाता है। अपराधी उप-संस्कृति के तीन प्रकार है :

(i) **अपराधी उप-संस्कृति**—इसमें अपराधी गिरोह भौतिक लाभ के लिए अवैध साधनो जैसे चोरी, कपट, धोखा आदि का सहारा लेता है। ये लोग हिंसा का प्रयोग नही करते। ये साधारणत· समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति होते है।

(ii) **संघर्ष उप-संस्कृति**—इसमें गिरोह धमकी, मारपीट, हत्या, आदि का सहारा लेते हैं।

(iii) **अपक्रमण वाली उप-संस्कृति** (Retreatist Sub culture)—इसमें नशीली वस्तुओं जैसे शराव, अफीम, गाजा, चरस, आदि का प्रयोग किया जाता है।

क्लोवार्ड-ओहलिन का मत है कि अपराधी उप-संस्कृति में निम्न वर्ग के लोग अपनी आर्थिक स्थिति को ऊंचा उठाने के लिए सम्मिलित होते है। इसका कारण यह है कि वे रूढ़िगत नियमों का पालन करके अपने लक्ष्यों की प्राप्ति करना व्यावहारिक दृष्टि से कठिन मानते हैं

आलोचना—(i) क्लोवार्ड-ओहलिन द्वारा अवसरों को वैध और अवैध मे विभक्त करना उचित नही है क्योंकि एक ही अवसर एक व्यक्ति के लिए वैध है तो दूसरे के लिए अवैध।

(ii) यह सिद्धान्त केवल अपराधी उप-संस्कृति द्वारा समर्थित क्रियाओं की ही व्याख्या करता है, सभी प्रकार के अपराधो की नही।

III. **मर्टन का व्याधिकी (एनामी) सिद्धान्त** (Merton's Anomie Theory)—मर्टन ने एनामी की अवधारणा दुर्खीम से ग्रहण की। दुर्खीम ने ही सर्वप्रथम एनामी की अवधारणा का प्रयोग समाज मे श्रम-विभाजन को स्पष्ट करने के दौरान किया था। दुर्खीम की मान्यता है कि जब व्यक्ति की आकांक्षाएं असीमित हो जाती हैं और जब उन पर नियन्त्रण शिथिल हो जाता है तो उनकी पूर्ति भी असम्भव हो जाती है। असीमित आकांक्षाएं व्यक्ति पर समाज-विरोधी व्यवहार के लिए दवाव डालती हैं जिससे नियमहीनता पैदा होती है। आपकी मान्यता है कि समाज में श्रम-विभाजन के बढ़ने पर समाज के विभिन्न अंगों में सामजस्य नहीं रह पाता और समाज की एकता घट जाती है तथा विभिन्न वर्गों में परस्पर संघर्ष उत्पन्न हो जाता है

1 R Cloward and L Ohlin, *Delinquency and Opportunity : A Theory of Delniquent Gang*, 1966, pp 142-152.

इससे समाज में नियमहीनता या व्याधिकी (Anomie) की स्थिति पैदा हो जाती है। सामाजिक नियन्त्रण के अभाव की यह स्थिति ही अपराध को जन्म देने के लिए उत्तरदायी है।

दुर्खीम के इस सिद्धान्त को मर्टन[1] ने और अधिक विकसित किया। आपने बतलाया कि प्रत्येक समाज में कुछ सांस्कृतिक लक्ष्य होते है। इन सांस्कृतिक लक्ष्यों को किस तरह से प्राप्त किया जा सकता है, इसके संस्थागत साधन भी समाज द्वारा स्वीकृत और निश्चित होते हैं। जब सांस्कृतिक लक्ष्यों और संस्थागत साधनों में सामंजस्य नहीं होता है तो ऐसी स्थिति को मर्टन व्याधिकी (एनामी) कहते हैं। यह स्थिति ही व्यक्ति पर अपराध करने के लिए दबाव डालती है। इसे हम एक उदाहरण द्वारा समझ सकते है। धन कमाकर सामाजिक स्थिति को ऊंचा उठाना हमारी संस्कृति द्वारा निर्धारित लक्ष्य है। साथ ही समाज यह भी कहता है कि धन ईमानदारी और वैध साधनों द्वारा कमाया जाय। किन्तु यदि कोई व्यक्ति चोरी, कालाबाजारी, मिलावट, आदि के द्वारा पैसा कमाकर उच्च सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करता है तो उन लोगो में जो ईमानदारी से धन अर्जन कर रहे हैं, क्षोभ पैदा होता है। यदि अधिकांश व्यक्ति धन कमाने के लिए संस्थागत तरीकों के विपरीत तरीके काम में लेते हैं तो समाज मे नियमहीनता की स्थिति पैदा होगी जो अन्य लोगों को भी अपराध करने के लिए प्रेरित करेगी। इस प्रकार अपराध एक प्रस्तुत परिस्थिति के प्रति प्रतिक्रिया है। इस सिद्धान्त की प्रमुख कमी यह है कि मर्टन ने सामाजिक नियन्त्रण को आवश्यक महत्व नही दिया है।

IV. टाफ्ट का सिद्धान्त (Taft's Theory)—टाफ्ट अपराध के लिए संस्कृति को उत्तरदायी मानते हैं। उनके अनुसार कोई भी संस्कृति जो भौतिकवादी और प्रतिस्पर्द्धा वाली होगी तथा जिसमें प्रतिष्ठा और प्रस्थिति (prestige and status) की होड़ लगी होगी वहां अपराध अधिक होंगे।[2] ऐसी संस्कृति में 'तुम्हारे पास क्या है' (What you have) का महत्व नहीं होता वरन् 'तुम क्या प्रदर्शन करते हो' (What you show) और किस उत्कृष्ट वस्तु का उपभोग करते हो (conspicuous consumption), का अधिक महत्व होता है। ऐसी संस्कृति प्रतिस्पर्द्धा पैदा करती है और जो प्रतिस्पर्द्धा में पिछड़ जाते है उनमें निराशा पैदा होती है जिसके परिणामस्वरूप उनमें प्रतिस्पर्द्धा, दिखावा, उत्कृष्ट वस्तु का उपभोग, भौतिकवाद, उच्च पद का महत्व एवं कानून की अवहेलना, आदि लक्षण देखने को मिलते है। थार्स्टेन वेब्लिन, मैबिल इलियट, क्लिनार्ड एवं मिल्टन, बैरन, आदि ने भी संस्कृति को ही अपराध के लिए उत्तरदायी माना है।

V. क्लिफोर्ड शा का सिद्धान्त (Theory of Clefford Shaw)—क्लिफोर्ड शा[3] ने अपराध के लिए परिस्थितियों की दशाओं (ecological conditions) को उत्तरदायी ठहराया है और अपराधी क्षेत्र (Delinquency area) की अवधारणा दी। आपने कहा कि अपराध किसी भी नगर के केन्द्र में अधिक होते हैं। ज्यों-ज्यों हम इस केन्द्र से दूर होते जाते हैं, अपराध घटते जाते है। नगर के मध्य में ही अपराध अधिक क्यों होते हैं, इसका कारण बताते हुए आप कहते हैं कि ये स्थान भीड़-भाड-युक्त होते है, जहां लोग बेफिक्र होकर मस्ती में घूमते हैं जिसका लाभ अपराधी लोग उठाते हैं। आपने अपने अध्ययन में अपराधी प्रवृत्तियों की बाहुल्यता उन क्षेत्रों में अधिक पायी जहां मकानो का अभाव, गन्दी बस्तियां और व्यक्तिगत

1 ..
2 .
3 . .. .. .

सम्बन्धो की कमी थी' बेकारी व निर्धनता, विदेशी पर्यटकों का आवागमन, नियन्त्रण का अभाव एवं नगर का न्द्रीय भाग भी अपराध बढ़ाने में योग देते हैं। सदरलैण्ड के अनुसार शा का यह मत सदा सही नहीं है कि एक व्यक्ति इसलिए अपराध करता है कि वह अपराध क्षेत्र में रहता है वरन् निराशा और विघटित व्यक्तित्व के कारण भी अपराध होते हैं।

VI बहुकारकवादी सिद्धान्त (Multiple Factors Theory)—अनेक विद्वानों ने अपराध के लिए किसी एक ही कारक को नहीं वरन् अनेक कारकों की सह-उपस्थिति को उत्तरदायी माना है। एगरिको फेरी व हिली इसके समर्थक हैं। बहुकारक की धारणा का विकास 19वीं सदी में संकुचित धारणाओ के सिद्धान्त की प्रतिक्रियास्वरूप हुआ। इसके प्रमुख समर्थक इंगलैण्ड के अपराधशास्त्री सिरिल बर्ट[1] है। आपकी मान्यता है कि अब तक अपराधशास्त्रियों द्वारा दी गयी सम्भावित व्याख्याएं अत्यधिक संकुचित हैं। सामान्य रूप से कभी-कभी वह (अपराधशास्त्री) चार-पांच सर्वव्यापी प्रमुख कारणों से, तो कभी-कभी एक से ज्यादा नहीं, की खोज से सन्तुष्ट हो जाता है। अपराध अनेक कारणों के मिलने से घटित होता है। सब मिलाकर लगभग 170 विशिष्ट परिस्थितियां पायी गयी है जिनमें से प्रत्येक बच्चे के अप्रत्याशित व्यवहार के लिए उत्तरदायी हो सकती हैं। उन्होंने प्रमुख छः कारकों का उल्लेख किया है—आनुवंशिक, पर्यावरण सम्बन्धी, शारीरिक, बुद्धि सम्बन्धी, स्वभाव सम्बन्धी तथा संवेग और मनोग्रन्थि सम्बन्धी कारक।

टाफ्ट ने अपराध के लिए एकाधिक शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और पर्यावरण सम्बन्धी कारकों को महत्वपूर्ण माना है।

इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए एलबर्ट कोहन लिखते हैं कि बहुकारकवाद में 'एक प्रभावक' को अलग नहीं किया गया है। कई बार एक सिद्धान्त में अनेक प्रभावकों को सम्मिलित किया जाता है। बहुकारकवादियों ने प्रभावकों (factors) एवं कारणो (causes) में भेद नहीं किया है।

अपराध के कारक
(FACTORS OF CRIME)

अपराध किसी एक कारक के परिणामस्वरूप घटित नहीं होता वरन् अनेक कारकों की अन्त क्रिया के फलस्वरूप घटित होता है। प्राकृतिक दशाएं, शारीरिक एवं मानसिक दोष, आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियां सम्मिलित रूप में अथवा पृथक रूप में अपराध के लिए उत्तरदायी है। हम भौगोलिक कारको का पहले उल्लेख कर चुके है। अन्य कारको का यहां उल्लेख किया जा रहा है :

I. शारीरिक कारक (Physical Factors)

लोम्ब्रोसो ने अपराध के लिए शारीरिक कारकों को उत्तरदायी ठहराया। कुछ विद्वानों ने एण्डोक्रिन ग्रन्थियों के असन्तुलित कार्य को अपराध के लिए उत्तरदायी माना।

(क) पैतृकता (Heredity)—कई विद्वानों ने अपने अध्ययनों में यह पाया कि अपराधी माता-पिता की सन्तानें भी अपराधी थीं। गोरिंग ने सन् 1913 में 3,000 अपराधियों का अध्ययन करके पाया कि माता-पिता से दूर रहने पर भी उनकी सन्तानों ने वही अपराध किये जो उनके माता-पिता ने किये थे। कई विद्वानों ने प्रसिद्ध और कुख्यात परिवारों का

Albert Cohen, *Deviance and Control*, 1966, and *Delinquent Boys*, 1955.

अध्ययन वंशानुक्रमण के आधार पर किया। विनशिप ने एडवर्ड परिवार का अध्ययन करके बताया कि इसके कोई पूर्वज अपराधी नहीं थे। अतः इसके वंशजों ने भी अपराध नहीं किये थे। डुग्डेल व इसाब्रुक ने ज्यूक परिवार का और गोडार्ड ने सन् 1912 में काली कैक परिवारों का अध्ययन करके पता लगाया कि उनके सभी वंशज अपराधी थे। अपराध का वंशानुक्रमण से सहसम्बन्ध ज्ञात करने के लिए लैंग, फ्रीमैन, न्यूमैन और हलजिंगर ने भी समान और असमान जुड़वां बच्चों के अध्ययन किये। सभी ने अपराध के लिए वंशानुक्रमण को उत्तरदायी ठहराया है किन्तु अपराध को हम वंशानुक्रमण का ही परिणाम नहीं मान सकते। सामाजिक परिस्थितियां भी इसके लिए उत्तरदायी है।

(ख) शारीरिक अयोग्यता—कुछ विद्वानों ने शारीरिक स्थिति को भी अपराध के लिए उत्तरदायी माना है। राल्फ बाने ने यह बताया कि अपराध और शारीरिक कुरूपता के बीच सम्बन्ध है क्योंकि इससे उनमें हीनता की भावना पैदा होती है जिसकी क्षतिपूर्ति वे अपराध द्वारा करते हैं। साधारणतः यह माना जाता है कि छोटा कद, विकृत त्वचा, मुड़े हुए हाथ और पांव, बडे कान, कमजोर दृष्टि, अधिक मोटापा तथा बड़ा सिर उन लोगो मे गम्भीर व्यक्तित्व सम्बन्धी अथवा संवेगात्मक कठिनाइयां पैदा करते हैं जो कि इनसे ग्रसित होते हैं। उनमें क्षतिपूर्ति का सिद्धान्त कार्य करता है जिसके परिणामस्वरूप वे अपराध करते हैं।[1]

(ग) बीमारी—अधिक समय तक बीमार रहने से व्यक्ति में चिड़चिड़ापन व निराशा पैदा हो जाती है जोकि आगे चलकर अपराध को जन्म देती है। इसी प्रकार से किसी व्यक्ति के शरीर मे अधिक शक्ति, कमजोरी, शरीर का अत्यधिक विकास और अविकसित अंग आदि उसमें हीन भावना के लिए उत्तरदायी हैं। यह हीन भावना ही व्यक्ति को अपराध की ओर अग्रसर करती है।

(घ) आयु (Age)—अपराध एवं आयु में भी सह-सम्बन्ध पाया जाता है। सामान्यतः 20 से 24 वर्ष की आयु में ही अपराध अधिक किये जाते है, बचपन एवं वृद्धावस्था में कम। इंगलैण्ड में पुरुषों द्वारा सर्वाधिक अपराध 12 से 15 वर्ष की आयु में तथा स्त्रियों द्वारा 16 से 17 वर्ष की आयु में किये जाते हैं।[2] इसकी तुलना मे अमरीका में 18 से 24 वर्ष की आयु में अपराध अधिक हुए हैं। अपराध की प्रकृति के साथ-साथ अपराधियों की आयु में भी अन्तर पाया जाता है। हत्या एवं डकैती युवा लोगों द्वारा अधिक की जाती है, बच्चों द्वारा छोटे-मोटे झगड़ों एवं चोरियों तथा वृद्धों द्वारा यौन सम्बन्धी अपराध अधिक किये जाते हैं। आयु का सम्बन्ध शारीरिक विकास से है। पूर्ण विकसित व्यक्ति ऐसे अपराध अधिक करता है जिनमें शारीरिक शक्ति की अधिक आवश्यकता होती है।

(च) लिंग (Sex)—स्त्री और पुरुषों में भी अपराध की दर भिन्न-भिन्न पायी जाती है। अमरीका में स्त्रियों की तुलना में पुरुषों में दस गुना अपराध अधिक पाया जाता है। लिंग के आधार पर अपराध में भिन्नता होने का कारण यह है कि स्त्रियों का कार्यक्षेत्र घर है जबकि पुरुष घर से बाहर रहते है। स्त्री पर समाज एवं परिवार का नियन्त्रण पुरुषों की अपेक्षा अधिक पाया जाता है। घर से बाहर रहने के कारण पुरुष अधिक स्वतन्त्र हैं। परिवार की जिम्मेदारी वहन करने के कारण कई बार पुरुषों को मजबूरी में भी अपराध करना पड़ता है।

1 Taft. D. R., *Criminology*, 1959

2 E. H. Sutherland, *op cit.*, p. 109.

सम्बन्धों की कमी थी' बेकारी व निर्धनता, विदेशी पर्यटकों का आवागमन, नियन्त्रण का अभाव एव नगर का न्द्रीय भाग भी अपराध बढ़ाने में योग देते हैं। सदरलैण्ड के अनुसा शा का यह मत सदा सही नहीं है कि एक व्यक्ति इसलिए अपराध करता है कि वह अपराध क्षेत्र में रहता है वरन् निराशा और विघटित व्यक्तित्व के कारण भी अपराध होते हैं।

VI बहुकारकवादी सिद्धान्त (Multiple Factors Theory)—अनेक विद्वानों ने अपराध के लिए किसी एक ही कारक को नहीं वरन् अनेक कारकों की सह-उपस्थिति को उत्तरदायी माना है। एगरिको फेरी व हिली इसके समर्थक हैं। बहुकारक की धारणा का विकास 19वीं सदी में सकुचित धारणाओ के सिद्धान्त की प्रतिक्रियास्वरूप हुआ। इसके प्रमुख समर्थक इंगलैण्ड के अपराधशास्त्री सिरिल बर्ट[1] है। आपकी मान्यता है कि अब तक अपराधशास्त्रियों द्वारा दी गयी सम्भावित व्याख्याएं अत्यधिक संकुचित हैं। सामान्य रूप से कभी-कभी वह (अपराधशास्त्री) चार-पांच सर्वव्यापी प्रमुख कारणों से, तो कभी-कभी एक से ज्यादा नहीं, की खोज से सन्तुष्ट हो जाता है। अपराध अनेक कारणों के मिलने से घटित होता है। सब मिलाकर लगभग 170 विशिष्ट परिस्थितियां पायी गयी हैं जिनमें से प्रत्येक बच्चे के अप्रत्याशित व्यवहार के लिए उत्तरदायी हो सकती हैं। उन्होंने प्रमुख छः कारकों का उल्लेख किया है—आनुवंशिक, पर्यावरण सम्बन्धी, शारीरिक, बुद्धि सम्बन्धी, स्वभाव सम्बन्धी तथा संवेग और मनोग्रन्थि सम्बन्धी कारक।

टाफ्ट ने अपराध के लिए एकाधिक शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और पर्यावरण सम्बन्धी कारकों को महत्वपूर्ण माना है।

इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए एल्बर्ट कोहन लिखते हैं कि बहुकारकवाद मे 'एक प्रभावक' को अलग नही किया गया है। कई बार एक सिद्धान्त मे अनेक प्रभावकों को सम्मिलित किया जाता है। बहुकारकवादियों ने प्रभावकों (factors) एवं कारणों (causes) मे भेद नहीं किया है।

अपराध के कारक
(FACTORS OF CRIME)

अपराध किसी एक कारक के परिणामस्वरूप घटित नहीं होता वरन् अनेक कारकों की अन्तःक्रिया के फलस्वरूप घटित होता है। प्राकृतिक दशाएं, शारीरिक एवं मानसिक दोष, आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियां सम्मिलित रूप में अथवा पृथक रूप में अपराध के लिए उत्तरदायी है। हम भौगोलिक कारकों का पहले उल्लेख कर चुके हैं। अन्य कारकों का यहां उल्लेख किया जा रहा है :

I. शारीरिक कारक (Physical Factors)

लोम्ब्रोसो ने अपराध के लिए शारीरिक कारकों को उत्तरदायी ठहराया। कुछ विद्वानों ने एण्डोक्रिन ग्रन्थियों के असन्तुलित कार्य को अपराध के लिए उत्तरदायी माना।

(क) पैतृकता (Heredity)—कई विद्वानों ने अपने अध्ययनों में यह पाया कि अपराधी माता-पिता की सन्तानें भी अपराधी थीं। गोरिंग ने सन् 1913 में 3,000 अपराधियों का अध्ययन करके पाया कि माता-पिता से दूर रहने पर भी उनकी सन्तानों ने वही अपराध किये जो उनके माता-पिता ने किये थे। कई विद्वानो ने प्रसिद्ध और कुख्यात परिवारों का

Albert Cohen, *Deviance and Control*, 1966, and *Delinquent Boys*, 1955

अध्ययन वंशानुक्रमण के आधार पर किया। विनशिप ने एडवर्ड परिवार का अध्ययन करके बताया कि इसके कोई पूर्वज अपराधी नहीं थे। अतः इसके वंशजों ने भी अपराध नहीं किये थे।डुग्डेल व इस्ताब्रुक ने ज्यूक परिवार का और गोडार्ड ने सन् 1912 में काली कैक परिवारों का अध्ययन करके पता लगाया कि उनके सभी वंशज अपराधी थे। अपराध का वंशानुक्रमण से सहसम्बन्ध ज्ञात करने के लिए लैंग, फ्रीमैन, न्यूमैन और हलजिंगर ने भी समान और असमान जुड़वां बच्चों के अध्ययन किये। सभी ने अपराध के लिए वंशानुक्रमण को उत्तरदायी ठहराया है किन्तु अपराध को हम वंशानुक्रमण का ही परिणाम नहीं मान सकते। सामाजिक परिस्थितियां भी इसके लिए उत्तरदायी है।

(ख) शारीरिक अयोग्यता—कुछ विद्वानों ने शारीरिक स्थिति को भी अपराध के लिए उत्तरदायी माना है। राल्फ बाने ने यह बताया कि अपराध और शारीरिक कुरूपता के बीच सम्बन्ध है क्योंकि इससे उनमें हीनता की भावना पैदा होती है जिसकी क्षतिपूर्ति वे अपराध द्वारा करते हैं। साधारणतः यह माना जाता है कि छोटा कद, विकृत त्वचा, मुड़े हुए हाथ और पांव, बड़े कान, कमजोर दृष्टि, अधिक मोटापा तथा बड़ा सिर उन लोगों में गम्भीर व्यक्तित्व सम्बन्धी अथवा संवेगात्मक कठिनाइयां पैदा करते हैं जो कि इनसे ग्रसित होते हैं। उनमें क्षतिपूर्ति का सिद्धान्त कार्य करता है जिसके परिणामस्वरूप वे अपराध करते है।[1]

(ग) बीमारी—अधिक समय तक बीमार रहने से व्यक्ति में चिड़चिड़ापन व निराशा पैदा हो जाती है जोकि आगे चलकर अपराध को जन्म देती है। इसी प्रकार से किसी व्यक्ति के शरीर में अधिक शक्ति, कमजोरी, शरीर का अत्यधिक विकास और अविकसित अंग आदि उसमें हीन भावना के लिए उत्तरदायी है। यह हीन भावना ही व्यक्ति को अपराध की ओर अग्रसर करती है।

(घ) आयु (Age)—अपराध एवं आयु में भी सह-सम्बन्ध पाया जाता है। सामान्यतः 20 से 24 वर्ष की आयु में ही अपराध अधिक किये जाते हैं, बचपन एवं वृद्धावस्था में कम। इंगलैण्ड में पुरुषों द्वारा सर्वाधिक अपराध 12 से 15 वर्ष की आयु में तथा स्त्रियो द्वारा 16 से 17 वर्ष की आयु में किये जाते हैं।[2] इसकी तुलना में अमरीका में 18 से 24 वर्ष की आयु में अपराध अधिक हुए हैं। अपराध की प्रकृति के साथ-साथ अपराधियों की आयु में भी अन्तर पाया जाता है। हत्या एवं डकैती युवा लोगों द्वारा अधिक की जाती है, बच्चों द्वारा छोटे-मोटे झगड़ों एवं चोरियों तथा वृद्धों द्वारा यौन सम्बन्धी अपराध अधिक किये जाते हैं। आयु का सम्बन्ध शारीरिक विकास से है। पूर्ण विकसित व्यक्ति ऐसे अपराध अधिक करता है जिनमें शारीरिक शक्ति की अधिक आवश्यकता होती है।

(च) लिंग (Sex)—स्त्री और पुरुषों मे भी अपराध की दर भिन्न-भिन्न पायी जाती है। अमरीका मे स्त्रियों की तुलना में पुरुषो में दस गुना अपराध अधिक पाया जाता है। लिंग के आधार पर अपराध मे भिन्नता होने का कारण यह है कि स्त्रियों का कार्यक्षेत्र घर है जबकि पुरुष घर से बाहर रहते हैं। स्त्री पर समाज एवं परिवार का नियन्त्रण पुरुषों की अपेक्षा अधिक पाया जाता है। घर से बाहर रहने के कारण पुरुष अधिक स्वतन्त्र है। परिवार की जिम्मेदारी वहन करने के कारण कई बार पुरुषों को मजबूरी में भी अपराध करना पडता है।

1 Taft. D R., *Criminology*, 1959.

2 E. H Sutherland, *op. cit.*, p 109.

स्त्रियों द्वारा यौन सम्बन्धी अपराध अधिक किये जाते हैं तो पुरुषों द्वारा आर्थिक अपराध। भारत में भी स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष अधिक अपराध करते हैं।

(छ) अन्तःस्रावी ग्रन्थियां (Endocrine Glands)—हमारे शरीर मे कुछ ग्रन्थियां ऐसी हैं जो विशिष्ट प्रकार के रसो का स्राव करती हैं। यदि यह स्राव आवश्यकता से कम व अधिक होता है तो इसका प्रभाव शारीरिक क्रियाओं पर पडता है, व्यक्ति में संवेग की मात्रा इसी से तय होती है। संवेग अपराध के लिए उत्तरदायी है। उदाहरण के लिए, यदि यौन ग्रन्थियो से रस स्राव अधिक होता है तो व्यक्ति में कामोत्तेजना बढ़ती है और व्यक्ति यौन सम्बन्धी अपराध करता है।

II. मानसिक कारक (Psychological Factors)

मानसिक कारक भी अपराध के लिए उत्तरदायी हैं :

(क) मन्द बुद्धि—जो व्यक्ति मन्द बुद्धि के होते हैं वे उचित व अनुचित व्यवहार में भेद नही कर पाते हैं। कई बार व्यक्ति की शारीरिक आयु तो अधिक होती है किन्तु मानसिक आयु कम होती है, वे न्यूरोटिक साइकोपैथिक रोगों से ग्रस्त होते हैं। ऐसे व्यक्ति अपराध के लिए प्रेरित होते हैं।

(ख) भावात्मक अस्थिरता—अत्यधिक भावुक होने पर व्यक्ति शीघ्र ही उत्तेजित हो जाता है और व्याकुलता पैदा होती है जिससे परिणामस्वरूप वह अपराध करता है। हीनता की भावना भी व्यक्ति को अपराध के लिए प्रेरित करती है। भय भी व्यक्ति में अपराधी भावना उत्पन्न करता है। मानसिक तनाव और संघर्ष भी व्यक्ति में असामाजिक व्यवहार उत्पन्न करते है।

III. पारिवारिक दशाएं (Family Conditions)

परिवार ही समाज की मौलिक इकाई है। व्यक्ति परिवार में ही जन्म लेता है, पलता है और बडा होता है। परिवार ही बच्चे का समाजीकरण करता है, उस पर नियन्त्रण रखता है, उसमे प्रेम, सहयोग, सहनशीलता, त्याग, देशभक्ति आदि गुणों को जागृत करता है। परिवार समाज का केन्द्रक एवं मानवता का पोषण करने वाली नर्सरी है। अत: परिवार के सदस्य एवं पर्यावरण ही यह तय करते है कि बच्चा अपराधी होगा या देश का योग्य नागरिक। घर एवं परिवार की विभिन्न दशाएं ही अपराध का निर्धारण करती हैं। अपराध एवं परिवार का सम्बन्ध हम इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं :

(क) असन्तुलित परिवार (Imbalanced Family)—जब परिवार के सदस्यों के कार्यों मे कोई ताल-मेल एवं सन्तुलन न हो तो इसका प्रभाव व्यक्ति के व्यक्तित्व पर भी पडता है। सन्तुलित परिवार ही सन्तुलित व्यक्तित्व को जन्म देता है। असन्तुलन होने पर पारिवारिक तनाव, संघर्ष, परित्याग एवं अशान्ति पैदा होती है। व्यक्ति परेशानी से बचने के लिए घर से भागना चाहता है और घर से बाहर स्वच्छन्द होने पर अपराधी कार्यों में लग सकता है।

(ख) टूटे परिवार (Broken Homes)—टूटे परिवार भी अपराध को जन्म देते हैं। परिवार दो प्रकार से टूट सकते हैं—(i) भौतिक रूप से—जब परिवार मे संरक्षक, माता-पिता, पति-पत्नी आदि में से किसी की मृत्यु हो जाय। (ii) मानसिक रूप से—जब साथ-साथ रहते भी माता-पिता या परिवार के सदस्यो मे परस्पर तनाव एवं संघर्ष की स्थिति बनी रहे।

दोनों ही अवस्थाओं का व्यक्ति पर बुरा प्रभाव पड़ता है। तलाक-शुदा व्यक्ति एवं पारिवारिक जीवन में दुखी व्यक्ति अपराध अधिक करते है।

(ग) नियन्त्रण का अभाव (Lack of Control)—जिन परिवारो में माता-पिता एवं संरक्षको का परिवार के सदस्यों पर नियन्त्रण नहीं होता है, उनमें भी अपराध अधिक होते है।

(घ) अपराधी परिवार (Criminal Home)—जिन परिवारो मे लोग अपराधी कार्यो से ही जीवन-यापन करते है या जिसके अधिकांश सदस्य, माता-पिता, भाई-बहिन, आदि अनैतिक कार्यो में लगे होते हैं, ऐसे परिवार में बच्चों को अपराध की प्रेरणा मिलती है, वे बिगड़ जाते हैं तथा अपराध में संलग्न हो जाते हैं।

(च) अनैतिक परिवार (Immoral Home)—जिन परिवारो मे नैतिकता को महत्व नही दिया जाता; जिनमें चोरी, बेईमानी, भ्रष्टाचार, शराबवृत्ति, वेश्यावृत्ति, नियमहीनता, रिश्वत आदि को बढ़ावा दिया जाता है, उनमें भी अपराधो की बहुलता होती है।

इसी प्रकार व्यक्ति को जब घर में अधिक लाड़-प्यार मिलता है तो वह बिगड़ जाता है या उसका तिरस्कार किया जाता है तब भी वह आक्रामक, उग्र एवं कठोर हो जाता है। इसी प्रकार से माता-पिता जब घर से बाहर कमाने चले जाते है तो सदस्यो पर नियन्त्रण रखने वाला कोई नहीं होता है, वे आवारागर्दी करने लगते हैं तथा बिगड जाते है।

IV. आर्थिक परिस्थितियां (Economic Conditions)

अपराध एवं आर्थिक परिस्थितियो के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है। भारत में अधिकांश अपराध आर्थिक परिस्थितियों के कारण ही किये जाते है। वे आर्थिक परिस्थितियां जो अपराध के लिए उत्तरदायी हैं, इस प्रकार है :

(क) निर्धनता (Poverty)—गरीबी अपराध का सबसे बड़ा कारण है। गरीब होने पर व्यक्ति अपनी आवश्यक आवश्यकताओं की भी पूर्ति नही कर पाता। ऐसी स्थिति में वह समाज के प्रति कटु भाव पैदा कर लेता है और बदले की भावना से प्रेरित होकर अपराध करता है। फोर्नासारी डी वर्सी ने अपने इटली के अध्ययन में यह पाया कि लगभग 85 प्रतिशत अपराधी गरीब वर्ग के थे। बोजर, साइरिल बर्ट, टैपन आदि ने अपने अध्ययन में निर्धनता को अपराध के लिए उत्तरदायी पाया। ऑगबर्न, काल्डवेल तथा शॉह एवं मैके के अध्ययन भी निर्धनता एवं अपराध में सह-सम्बन्ध प्रकट करते है।

(ख) आर्थिक संकट (Economic Crisis)—आर्थिक संकट के समय महंगाई बढ़ जाती है, उद्योग-धन्धे ठप्प हो जाते हैं और लोगों के पास जीवन-यापन के साधन नहीं रहते। ऐसी स्थिति में अपराध की दर में वृद्धि हो जाती है। जब 1929-32 में विश्वव्यापी मन्दी आयी थी तो सभी देशों मे विभिन्न प्रकार के अपराधों की संख्या में बढ़ोत्तरी हो गयी थी।

(ग) बेकारी (Unemployment)—बेकार व्यक्ति अपनी तथा अपने आश्रितों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ होता है। उसके जीवन में निराशा घर करती जाती है, वह चिन्तित रहने लगता है, उसका शरीर क्षीण हो जाता है। इन स्थितियों से मुक्ति पाने के लिए बेकार व्यक्ति अपराधी कार्यों द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करना प्रारम्भ कर देता है।

(घ) व्यापार चक्र (Business Cycle)—व्यापार में उतार-चढाव तथा तेजी मन्दी के साथ-साथ अपराधों में भी उतार-चढाव आता है।

(च) आर्थिक प्रतियोगिता (Economic Competition)—आर्थिक प्रतियोगिता आज के युग की विशेषता है। प्रत्येक व्यक्ति अधिकाधिक लाभ कमाना चाहता है। परिणामस्वरूप गला-काट प्रतियोगिता होती है। वैधानिक एवं गैर-वैधानिक तरीकों से व्यक्ति सफल व्यवसायी बनना चाहता है और इसी दौरान वह कई कानूनों का उल्लंघन भी करता है। आज मिलावटी वस्तुए विकने का सबसे बड़ा कारण आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा ही है।

(छ) अकाल (Famine)—बाढ, भूचाल, अकाल आदि की दशा में भी व्यक्ति के हाथ से जीवन-यापन के साधन छिन जाते हैं, वह बेसहारा हो जाता है, उसकी आर्थिक स्थिति बिगड़ जाती है, और वह अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए अपराध का सहारा लेता है।

V मनोरंजन

वर्तमान में मनोरंजन का व्यापारीकरण हुआ है। समाचार-पत्र सनसनीखेज खबरें छापते हैं। अश्लील, उत्तेजक और जासूसी उपन्यास का व्यक्ति के मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पडता है। सिनेमा में अपराधी को कभी-कभी आकर्षक बनाकर या प्रतिष्ठित बनाकर दिखाया जाता है या उसके प्रति सहानुभूति प्रकट की जाती है। अर्द्धनग्न नायिकाओं के चित्र देखने पर यौन भावनाएं भड़कती हैं जो यौन-अपराधों के लिए उत्तरदायी हैं।

VI युद्ध

युद्ध के कारण कई परिवार नष्ट हो जाते है, बच्चे एवं स्त्रियां अनाथ हो जाते हैं, तथा परिवार में नियन्त्रण रखने वाला कोई शेष नहीं बचता। अतः बच्चे अपराधी हो जाते हैं एवं स्त्रियां भरण-पोषण के लिए वेश्यावृत्ति तक अपना लेती हैं। पिछले दो महायुद्धों के दौरान विश्व मे अपराध की दरें बढी थीं। काला-बाजारी, मुनाफाखोरी तथा चोरी-छिपे माल ले जाने की प्रवृत्ति मे युद्ध के दिनों में विशेष वृद्धि होती है।

VII. न्याय एवं पुलिस व्यवस्था

वर्तमान में न्याय प्राप्त करना बहुत कठिन और महंगा कार्य है। राजनीतिक दल जब अपराधियों को संरक्षण देते हैं तो अन्य लोगो में भी अपराध की प्रवृत्ति पनपती है। पुलिस भी अपराधियों की रोकथाम में कोई विशेष रुचि नही दिखाती, वरन् कई बार तो पुलिस की अपरोक्ष स्वीकृति से ही अपराध होते है। जेलों का अनुपयुक्त वातावरण भी कच्चे अपराधी को दक्ष अपराधी बना देता है।

VIII. औद्योगीकरण (Industrialization)

मशीनों के द्वारा उत्पादन ने औद्योगीकरण को जन्म दिया। औद्योगीकरण ने हमारे परम्परागत सामाजिक जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन कर दिये। इसके कारण बड़े-बड़े नगरों का विकास हुआ, लोगों में गतिशीलता बढी, जाति का नियन्त्रण शिथिल हुआ, संयुक्त परिवार टूटे, सामुदायिक जीवन का ह्रास हुआ। मिल-मालिकों एवं मजदूरों के बीच संघर्ष बढ़ा, आये दिन हड़ताल, तोड़फोड, घेराव, तालाबन्दी और आगजनी जैसे सामूहिक अपराध होने लगे। औद्योगिक केन्द्रों में वेश्यावृत्ति, जुआखोरी एवं शराब-वृत्ति मे वृद्धि हुई है। धन का महत्व बढ़ जाने के कारण हर व्यक्ति लालच के कारण अनैतिक तरीकों से भी धन कमाना चाहता है। धन का असमान वितरण बढ़ा, गरीब अधिक गरीब एवं अमीर अधिक अमीर बने तथा पूंजीपति मजदूरों का शोषण करने लगे। मशीन के कारण अधिक उत्पादन होने से जब बाजार माल भर जाता है तो मन्दी आती है, आर्थिक संकट उत्पन्न होते हैं, कारखाने बन्द करने

पड़ते हैं, बेकारी बढ़ती है, रोजी-रोटी के लिए घर के सभी सदस्य काम पर जाने लगते है। परिणामस्वरूप उनमें स्वच्छन्दता पैदा हो जाती है तथा यौन अनाचार बढ़ता है। गन्दी औद्योगिक बस्तियां एवं भीड़भाड़-युक्त वातावरण अपराध के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि तैयार करते हैं।

IX. नगरीकरण (Urbanization)

औद्योगीकरण एवं नगरीकरण परस्पर सम्बन्धित प्रक्रियाएं है। इसलिए जो परिस्थितियां औद्योगीकरण के कारण अपराध के लिए उत्तरदायी हैं, लगभग वे ही परिस्थितियां नगरो में मौजूद हैं। नगरों मे संयुक्त परिवार का विघटन पाया जाता है, वहा पर आवास सुविधाओ का अभाव है, नवीनता का आकर्षण एवं फैशन नगरीय जीवन की विशेषताएं है। व्यापारिक मनोरंजन, स्त्री-पुरुषों के अनुपात में अन्तर, स्त्रियों को मिलने वाली स्वतन्त्रता, नैतिकता के बदलते प्रतिमान, आदि सभी नगरीय जीवन में अपराध को जन्म देने में सहायक है।

X. समाचार-पत्र (Newspapers)

समाचार-पत्र भी अपराधों को जन्म देने के लिए उत्तरदायी हैं। इनमें अपराधी घटनाओं को बड़े-बड़े अक्षरों में मुखपृष्ठ पर छापा जाता है, अपराध की विधि का उल्लेख किया जाता है जिससे अन्य लोग भी अपराध सीखते हैं। गीता एवं संजय के हत्यारे रंगा एवं बिल्ला एवं दस्यु सुन्दरी फूलनदेवी के निर्मम हत्याकाण्डों को सभी अखबारों ने मुखपृष्ठ पर प्राथमिकता दी थी।

XI. धर्म (Religion)

जहां एक तरफ धर्म लोगों में एकीकरण एवं संगठन पैदा करता है, वहीं दूसरी तरफ साम्प्रदायिक तनाव एवं दंगों को भी जन्म देता है। धार्मिक कट्टरता खूनखराबा कराती है। भारत में हिन्दू-मुसलमानों के बीच अनेक बार संघर्ष हुए हैं। 1978 एवं 1979 में हुए अलीगढ़ के दंगों, अप्रैल 1979 में हुए जमशेदपुर के दंगों, 1980 में मुरादाबाद व 1981 में बिहारशरीफ के तथा 1989-90 में गुजरात के साम्प्रदायिक दंगों की रक्त-रंजित यादें अभी ताजा ही हैं।

XII. गतिशीलता (Mobility)

जब व्यक्ति एक स्थान छोड़कर दूसरे स्थान पर जाता है तो अव्यवस्था उत्पन्न होती है, नियन्त्रण में शिथिलता आती है, नवीन संस्कृति से सामंजस्य करना पड़ता है, नवीन मूल्यो से अनुकूलन करना पड़ता है और ये सभी स्थितियां व्यक्ति मे असन्तुलन पैदा करती हैं, उसके स्थापित मूल्यों मे भ्रम पैदा हो जाता है और व्यक्ति अपराध की ओर अग्रसर हो जाता है।

XIII. राजनीतिक संस्थाएं (Political Institutions)

जब राजनीतिक संस्थाओं जैसे संसद, सरकार, कानून, सरकारी विभागों, आदि में अव्यवस्था उत्पन्न होती है, अस्थिरता बढ़ती है एवं नियन्त्रण शिथिल हो जाता है तब भी अपराध जन्म लेते हैं। जब राजनेता एवं सरकारी अधिकारी भ्रष्ट हो जाते हैं तो अन्य लोग भी उनका अनुकरण करते हैं जिससे अपराध को बढ़ावा मिलता है।

इन कारकों के अतिरिक्त सामाजिक विघटन, सामाजिक प्रतियोगिता, संघर्ष, रीति-रिवाज एवं प्रथाएं आदि भी अपराध को जन्म देने के लिए उत्तरदायी हैं। शराब पीकर भी व्यक्ति अपराध करता है। कई व्यक्ति मार-पीट, आक्रमण, हत्या, यौन अपराध, आदि के

लिए शराब का सहारा लेते हैं। अमरीका में हुए अध्ययन इस यात को स्पष्ट करते हैं कि वहा अधिकांश अपराधी मद्य सेवन करते थे।

अशिक्षा ने भी लोगो को अपने उत्तरदायित्व को समझने और उनके पर्याप्त समाजीकरण में वाधा उत्पन्न की है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अपराध किसी एक ही कारक का परिणाम नहीं वरन् अनेक कारको का प्रतिफल है।

भारत में अपराध
(CRIME IN INDIA)

भारत मे अपराध की कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो कुछ मायने में दूसरे देशों से मिलती-जुलती है, तो कुछ मायने में भिन्न। ये प्रमुख विशेषताएं निम्नांकित हैं :

(1) यहां स्त्रियों की तुलना में पुरुषों द्वारा अपराध अधिक किये जाते हैं। प्रति सौ अपराधियों में पुरुष अपराधियों की संख्या 97 तथा महिला अपराधियों की 3 है।

(2) गांवों की तुलना मे नगरों में अपराध अधिक होते हैं।

(3) वालकों की तुलना में युवको द्वारा अपराध अधिक किये जाते हैं। यहां 18 से 30 वर्ष के आयु-वर्ग मे अपराध की दर सर्वाधिक (49%) है।

(4) भारत में जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ अपराधों में भी वृद्धि हुई है।

(5) कुल ज्ञातव्य अपराधों में से करीव 38% अपराध उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा राजस्थान मे होते है।

(6) क्लीनार्ड की मान्यता है कि औद्योगीकरण एवं नगरीकरण की वृद्धि के साथ-साथ अपराधों की संख्या में भी वृद्धि होती है। भारत में प्रतिवर्ष भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत ज्ञातव्य अपराध करीव 14.5 लाख होते हैं। स्थानीय तथा विशेष नियमों के अन्तर्गत प्रति वर्ष करीव 37.7 लाख अपराध होते हैं। इस प्रकार भारत मे ज्ञातव्य अपराधों की संख्या एक लाख जनसंख्या पर 180 है। अपराधों की वृद्धि का एक कारण यह भी है कि पहले अधिकांश झगड़े गांवों में ही जाति-पंचायतों एवं ग्राम पंचायतो द्वारा सुलझा दिये जाते थे किन्तु अब इनका प्रभाव इस दृष्टि से शिथिल हुआ है और मुकदमों का न्यायालयों में पंजीयन वढ़ गया है। भारत में औद्योगीकरण एवं नगरीकरण की प्रक्रियाओं ने अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन लाने में योग दिया है जिससे निराशा व विक्षोभ की दशा पैदा हुई है, जिसने अपराध को प्रोत्साहन दिया है। साथ ही हमने विदेशों की नकल की है और इस प्रवृत्ति ने भी अपराधों को वढ़ावा दिया है। वड़े शहरों जैसे चेन्नई, वंगलौर, कानपुर, मुम्वई, दिल्ली, कलकत्ता में अन्य शहरो की तुलना मे अपराध अधिक होते हैं।

(7) हमारे यहां सर्वाधिक अपराध आर्थिक प्रकार के हैं जिनमें चोरी, सेंधमारी तथा डाकाजनी, आदि प्रमुख हैं। भारत में सम्पूर्ण ज्ञातव्य अपराधों में से 33% सम्पत्ति के विरुद्ध या आर्थिक प्रकार के अपराध होते हैं। इससे स्पष्ट है कि यहां अपराध के लिए आर्थिक कारकों का प्रभाव अधिक है। अधिकांशतः हमारे यहां, डाका, लूटमार, हत्याएं, जमीन के झगडे, वलात्कार, गुण्डागर्दी, संगठित अपराध, श्वेत-वसन अपराध एवं वाल अपराधों की संख्या वढी है। प्रत्येक 6-7 अपराधों मे एक मामला हत्या और डाकाजनी का होता है। अपराधो की संख्या की दृष्टि से भारत का विश्व के देशों में छठा स्थान है। अन्य देशों की तुलना में हमारे यहां की संख्या भी कम है।

(8) भारत में अपराध सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यहां सामान्यतः सामाजिक-आर्थिक समूहों में अपराध की दर सर्वाधिक है।

(9) अपराध सम्बन्धी अध्ययनों से यह तथ्य भी प्रकाश मे आया है कि पिछले कुछ वर्षों में संगठित समूहों या गिरोहों द्वारा किये जाने वाले अपराधों जैसे नशीले पदार्थो का वितरण, वेश्यावृत्ति के लिए लड़कियां उपलब्ध कराना, सोने की तस्करी, आदि में वृद्धि हुई है।

राजस्थान में पिछले वर्षों की तुलना में वर्तमान में अपराध बढ़े हैं। इनमे से अधिकांश अपराध आगजनी, डाकाजनी, लूटपाट, हत्या, तोड़-फोड़ तथा चोरी से सम्बन्धित है। अपराध में इस वृद्धि का कारण अकाल पडने से भारी मात्रा में पशुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना, औद्योगीकरण की वृद्धि, छात्र असन्तोष तथा सरकारी कर्मचारियों की हडताल, आदि है। मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, आन्ध्र प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश में मानव बलि के अपराध भी हुए हैं।

भारत में भी अपराध के वही कारण हैं जिनका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। फिर भी यहां की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियां अन्य देशों से भिन्न हैं। अतः कुछ मात्रा में यहां अपराध-सम्बन्धी कारणों में भिन्नता पायी जाती है।

भारत में अपराध के कारण (Causes of Crime in India)

संयुक्त-परिवार के विघटन के कारण पारिवारिक नियन्त्रण में शिथिलता आयी है।

अनमेल विवाह के कारण पति-पत्नी के व्यवहारों में साम्यता नहीं आ पाती जो निराशा के लिए और निराशा अपराध के लिए उत्तरदायी है। विधवा विवाह निषेध ने यौन अपराधों में वृद्धि की है। दहेज प्रथा के कारण आर्थिक और यौन-अपराधों में वृद्धि हुई है। कई सामाजिक प्रथाएं भी अपराध के लिए उत्तरदायी हैं, जैसे देवदासी प्रथा, भगा ले जाने की प्रथा, पर्दा प्रथा, कुलीन विवाह, बहुपत्नी व बहुपति प्रथा, नरबलि, मृत्यु-भोज, आदि। विवाह के मूल्यों व आदर्शों में परिवर्तन के कारण पृथक्करण और तलाकों की संख्या में वृद्धि हुई है। इससे स्त्रियों मे भी नियन्त्रण शिथिल हुआ और वे स्वच्छन्द प्रकृति की हुई हैं तथा अपराधी कार्यों में भी भाग लेने लगी हैं।

बढ़ती जनसंख्या ने भी अपराध को जन्म दिया है। अकाल, अतिवृष्टि, गरीबी एवं ऋण ने भी अपराधो को जन्म दिया है।

बढते हुए औद्योगीकरण के कारण उद्योग सम्बन्धी नवीन अपराधों ने जन्म लिया है जैसे हड़ताल, तोड़फोड़, तालाबन्दी, आगजनी, घेराव, आदि। औद्योगिक नगरों में जुआखोरी, शराबखोरी एवं वेश्यावृत्ति बढ़ी है।

बेकारी के कारण चोरी में वृद्धि हुई है। कालाबाजारी, मुनाफ़ाख़ोरी, चोरी-छिपे माल ले जाने व जखीरेबाजी (*hoarding*) के अपराध भी बढ़े हैं।

वर्तमान में साहित्य में जासूसी उपन्यासों, भड़काने वाली सनसनीखेज खबरों और सत्य कथाओं, पत्र-पत्रिकाओं आदि ने भी अपराध को बढ़ावा दिया है।

चलचित्रों में भद्दे, भौंड़े, नग्न और अर्द्ध-नग्न दृश्यों तथा चोरी, डाके व अपराध के दृश्यों ने एवं अश्लील गानों ने भी अपराधों को बढ़ावा दिया है।

बढ़ती शिक्षा ने श्वेतपोश अपराधों में वृद्धि की है। बढ़ते हुए फैशन एवं अंग-प्रदर्शन ने यौन-अपराधों के लिए उत्तेजना का कार्य किया है।

भारत में कुछ जनजातियां तो ऐसी हैं कि वे अपराध को ही एक पेशे के रूप में अपनाये हुए है। इन्हे हम भूतपूर्व अपराधी जनजातियां (Ex-criminal Tribes) कहते हैं।

अन्ध-विश्वासो, धार्मिक आडम्वरों एवं कुरीतियों के कारण भी भारत में अनेक अपराधी घटनाएं होती हैं।

फसले खराव होने, आर्थिक मन्दी आने, परिवार द्वारा वच्चों के भरण-पोषण की सुविधाएं न होने एव सयुक्त परिवार के विघटन के कारण नियन्त्रण में शिथिलता आ जाने के कारण भी भारत में अपराधों में वृद्धि हुई है।

भारत में ग्रामीण एवं नगरीय अपराधों की प्रकृति में भी अन्तर पाया जाता है। ग्रामीण अपराधों का सम्वन्ध जाति, जमीन वंटवारा, पुश्तैनी वैर, पशुओं की चोरी, ऋण, मार-पीट, आगजनी, शिशु हत्या, यौन अपराध एवं शराव वनाने, आदि से अधिक है। नगरों में ठगी, वैंक लूटने, जालसाजी, हड़ताल, तोड़-फोड, घूंस, काला-वाजारी, स्मगलिंग, विश्वासघात, आत्महत्या, सड़क के नियम भंग करने, गवन, मानहानि, षड्यन्त्र, खोटे वांट एवं सिक्के चलाने, जाली डाक टिकट वनाने, आदि से सम्वन्धित अपराध अधिक होते हैं।

यहां भारत में अपराध के कारणों का संक्षेप में ही उल्लेख किया गया है। सविस्तार उल्लेख के लिए इसी अध्याय में पूर्व में वर्णित 'अपराध के कारक' शीर्षक देखिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारा देश एक संक्रमण अवस्था से गुजर रहा है और यहां अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक परिवर्तन घटित हो रहे हैं जिनके परिणामस्वरूप अपराधों में वृद्धि हुई है।

दण्ड व्यवस्था
(PUNISHMENT SYSTEM)

अपराधी को अपने किये हुए कार्यों का प्रतिफल मिलना चाहिए ताकि अन्य व्यक्ति उस प्रकार के कार्य करने से डरते रहें तथा अपराधी भविष्य में इस प्रकार के व्यवहारों की पुनरावृत्ति न करें। इसलिए समाज व राज्य अपराधी के लिए दण्ड की व्यवस्था करते हैं। दण्ड नहीं देने से अन्य लोगों में अपराधी प्रवृत्ति के वढ़ने और कानून तथा न्याय की अवहेलना करने की सम्भावना रहती है। दण्ड द्वारा अपराधी को सुधारने का प्रयास भी किया जाता है। नीमेसिस की मान्यता है कि "दण्ड का मुख्य उद्देश्य अपराधी के मस्तिष्क में यह वात वैठाना है कि अच्छे कार्य के लिए सदैव पुरस्कार मिलता है और वुरे कार्य के लिए उसे उसका वैसा ही फल भुगतना होता है।"[1] कुछ लोग अपराधी को दण्ड देना नैतिक और धार्मिक दृष्टि से उचित मानते हैं।

दण्ड को परिभाषित करते हुए सेटना लिखते हैं :

"दण्ड एक प्रकार की सामाजिक निन्दा है और इसमे आवश्यक नहीं कि पीड़ा या कष्ट सम्मिलित हो।"[2]

1 "The object of punishment is to bring home to the mind of the wrong doer that a good act is always rewarded and a bad one meet its own merited fate." —*Nemesis*

"Punishment is some sort of social censure, and not necessarily the involving or fliction of Physical Pain." —M. J Sethna, *op cit.*, p 205.

कॉनसाइज डिक्शनरी के अनुसार "दण्ड में दर्द, जुर्माना, ईश्वर व न्यायानुसार दण्ड, शारीरिक पीडा अथवा डांट-फटकार सम्मिलित हैं।"[1]

टाफ्ट के अनुसार, "हम दण्ड की परिभाषा उस जागरूक दबाव के रूप में कर सकते हैं जो समाज की शान्ति भंग करने वाले व्यक्ति को अवांछनीय अनुभवों वाला कष्ट देता है। यह कष्ट हमेशा ही उस व्यक्ति के हित में नहीं होता है।"[2]

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि दण्ड अपराधी को राज्य या समाज द्वारा दिया जाता है। दण्ड में किसी न किसी प्रकार का कष्ट अवश्य होता है और यह शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक कष्ट के रूप में दिया जा सकता है। दण्ड का उद्देश्य और प्रभाव क्या हो, इस बात को लेकर विद्वानों में मतभेद है। इसी आधार पर दण्ड के भिन्न-भिन्न सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं। मैक कनल ने दण्ड के पांच सिद्धान्त बताये हैं। हम उनका यहां संक्षेप में उल्लेख करेंगे :

(1) प्रायश्चित का सिद्धान्त (Theory of Expiation)—यह सिद्धान्त धर्म पर आधारित है। धार्मिक दृष्टिकोण से अपराध पाप है जिसका अपराधी को प्रायश्चित करना चाहिए। दण्ड प्रायश्चित का ही रूप है। हमारे यहां धर्मशास्त्रों और पुराणों में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जो इस बात को प्रकट करते हैं कि व्यक्ति ने कोई बुरा कार्य किया और उसके प्रायश्चित स्वरूप उसने दण्ड भुगता। इन्द्र ने गौतम की नारी के साथ दुर्व्यवहार किया तो उसे प्रायश्चित के रूप में दण्ड भुगतना पड़ा। वर्तमान में यह सिद्धान्त किसी भी राज्य द्वारा नहीं अपनाया गया है।

(2) प्रतिशोधात्मक सिद्धान्त (Retributive Theory)—यह सिद्धान्त 'जैसे के साथ तैसा', 'आंख के बदले आंख' और दांत के बदले दांत (Tit for tat, eye for eye, teeth for teeth) पर आधारित है। इस सिद्धान्त के समर्थक अरस्तू, दार्शनिक काण्ट, स्टीफेन, बोसांके, ब्रेडेल, आदि हैं। यह सिद्धान्त प्राकृतिक नियम और नैतिक न्याय पर आधारित है जो यह विश्वास करता है कि अच्छे कार्य का फल अच्छा और बुरे कार्य का फल बुरा होता है। दण्ड के द्वारा अपराधियों का सुधार किया जाता है, बदला नहीं लिया जाता। ऐसा माना जाता है कि दण्ड से व्यक्ति के अधिकारों का अपहरण नहीं होता वरन् जो उसने कमाया है, वही उसे मिल रहा है।

(3) प्रतिरोधात्मक सिद्धान्त (Deterrent Theory)—यह सिद्धान्त सुखवादी दर्शन पर आधारित है। इसके समर्थकों में बैकरिया, बेन्थम और जान स्टुअर्ट मिल आदि हैं। सुखवादी दार्शनिकों का मत था कि एक व्यक्ति को इतना दण्ड दिया जाय कि वह अपराध से मिलने वाले सुख की तुलना मे अधिक हो ताकि वह भविष्य में अपराध न करे। इस सिद्धान्त के अनुसार अपराधी को दण्ड देकर भविष्य में पुनः ऐसा करने से रोकने के साथ-साथ दूसरे लोगों के मन में भी अपराध के लिए भय उत्पन्न करना है। इस प्रकार दण्ड द्वारा भविष्य में होने वाले अपराधों को रोकने का प्रयत्न किया जाता है। यह सिद्धान्त सही नहीं है क्योंकि

1 "Punishment involves the infliction of pain of forfeiture, the judicial visitation with a penalty, chastisement or castigation."

—Annandale C., *The Large-Type Concise English Dictionary.*

2 "We may define punishment as the conscious infliction upon a disturbing individual of undesired experiences not in the interest of his welfare."

—Taft, D. R., *Criminology.*

दण्ड के भय से अपराध कम नही हुए हैं। कई देशों में मृत्यु-दण्ड समाप्त कर दिया गया फिर भी वहां अपराधों की संख्या मे वृद्धि नहीं हुई है।

(4) निरोधात्मक सिद्धान्त (Preventive Theory)—इस सिद्धान्त की मान्यता है कि अपराधियों को अपराध करने से रोका जाय। उसका एक तरीका यह है कि उन्हें समाज से अलग करके कारावास में डाल दिया जाय या फिर मृत्यु-दण्ड देकर समाप्त ही कर दिया जाय। इस सिद्धान्त को मानने वालो में लोम्ब्रोसो, उसके सहयोगी एवं प्रारूपवादी सम्प्रदाय के विद्वान आते हैं।

(5) सुधारात्मक सिद्धान्त (Reformative Theory)—उपर्युक्त सभी सिद्धान्तो के आधार पर भी जब समाज मे अपराध की दर में कमी नहीं हुई तो वर्तमान में अपराधियों के सुधार पर जोर दिया गया। यह सिद्धान्त वंशानुक्रमण को अपराध का कारण नही मानता। इस सिद्धान्त को मानने वाले अपराध को एक रोग समझते हैं जिसे उचित उपचार द्वारा ठीक किया जा सकता है। अतः अपराधियो के सामाजिक वातावरण को सुधारा जाय, उनके प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया जाय तथा उन्हें पुनः देश का सुनागरिक बनाया जाय। इस सिद्धान्त के कारण ही वर्तमान में अनेक देशों ने मृत्यु-दण्ड समाप्त कर दिया है और अपराधियो को जेल मे विभिन्न प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाने लगा है।

अपराधों की रोकथाम
(PREVENTION OF CRIME)

समाज अपने को अपराधों से मुक्त कैसे रख सकता है, यह उसके सामने एक बड़ी समस्या रही है। इसके लिए समय-समय पर अनेक उपाय किये गये हैं। प्रारम्भ से ही दण्ड की व्यवस्था द्वारा अपराध रोकने का प्रयास किया गया है। जेल प्रणाली, परिवीक्षा और पैरोल तथा उत्तर-संरक्षण सेवाओं आदि के माध्यम से इस दिशा में प्रयत्न किये गये हैं। दण्ड के बारे में ऊपर विचार किया जा चुका है। अतः हम यहां जेल व्यवस्था, परिवीक्षा, पैरोल तथा संरक्षण सेवाओं का उल्लेख करेंगे।

जेल व्यवस्था
(JAIL SYSTEM)

जेल एक ऐसा स्थान है जहां अपराधी को समाज से पृथक् रखा जाता है और उसमें अपराध के प्रति पश्चात्ताप की भावना पैदा की जाती है। उसे यह महसूस करने का अवसर प्रदान किया जाता है कि जिस समाज को उसने हानि पहुंचाई है, उसके नियमो की अवहेलना करने पर व्यक्ति का कोई अस्तित्व नही है। अपराधियो को जेल में रखकर उनमें सुधार किया जाता है तथा समाज ऐसे व्यक्तियों को उनकी त्रुटि के कारण कहीं समाप्त न कर दे, इसलिए उनकी रक्षा भी की जाती है।

प्राचीन समय मे जेलें अंधेरी कोठरियां हुआ करती थी। वहां का वातावरण अस्वास्थ्यकर होता था। उस समय लिंग, आयु और अपराध की प्रकृति के आधार पर अलग-अलग जेलों की व्यवस्था नहीं थी। वहां अपराधियों को कठोर दण्ड दिया जाता था तथा खाने-पीने की उचित व्यवस्था नहीं थी। अंग्रेजों के काल में लार्ड मैकाले प्रथम व्यक्ति थे जिन्होने जेलों मे व्याप्त अव्यवस्था की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया और सन् 1838 में प्रथम जेल सुधार समिति का गठन किया। सन् 1862 में द्वितीय जेल सुधार समिति बनी। उसके बाद समय-समय

पर इस प्रकार की समितियो का गठन किया जाता रहा, 1919-20 में भारतीय बन्दीगृह सुधार समिति का निर्माण किया गया जिसने अनेक सुधारों की सिफारिश की जैसे बन्दीगृहों की देख-भाल प्रशिक्षित अधिकारी करें, बन्दियों को चिकित्सा की सुविधाएं दी जायं, उन्हें कोड़ों की सजा न दी जाय, पत्र लिखने और सम्बन्धियो से मिलने की छूट दी जाय, पौष्टिक आहार दिया जाय, पढ़ने-लिखने की सुविधा दी जाए तथा पैरोल पर छोड़ने एवं अपराधियों को उनके अपराध के अनुसार अलग-अलग रखने आदि की व्यवस्था की जाय।

सन् 1946 में भी जेल सुधार समिति की स्थापना की गयी जिसने अपराधियों का वर्गीकरण बाल अपराधी, युवा अपराधी, महिला अपराधी, आकस्मिक अपराधी एवं मनोवैज्ञानिक व शारीरिक रूप से विकृत अपराधी के रूप में किया। सन् 1956 मे काले पानी की सजा समाप्त कर दी गयी।

वर्तमान में हमारे देश में तीन प्रकार की जेलें पायी जाती है : प्राचीर-विहीन जेलें (Wall-less Prisons), बाल जेलें (Juvenile Jails) तथा अधिक सुरक्षा वाली जेले।

(i) प्राचीर विहीन जेलें—डॉ. सम्पूर्णानन्द के सुप्रयासों के परिणामस्वरूप सन् 1952-53 में चन्द्रप्रभा नदी पर अपराधियों का एक शिविर लगाया गया जिसमें उनके भोजन, वस्त्र, शिक्षा और मनोरंजन की व्यवस्था की गयी। ऐसे शिविरों मे अपराधियो को बन्दी बनाकर नहीं रखा जाता है और न ही उनके लिए चौकीदारी की व्यवस्था की जाती है। ये अपने परिवार को भी वहां अपने साथ रख सकते हैं। ये अपराधी पैसा कमाकर अपना खर्च चलाते हैं। ऐसे शिविरों में केवल उन्हीं अपराधियों को रखा जाता है जिनकी आयु 21 से 50 वर्ष के बीच हो तथा जिनकी सजा की अवधि नौ माह से कम न हो और जो अपनी सजा का 1/3 भाग साधारण जेलों में काट चुके हों एवं साथ ही जो अच्छे आचरण का प्रमाण देते हों तथा जो शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से सक्षम हों। ऐसी जेलों का उद्देश्य अपराधी में आत्म-निर्भरता और उत्तरदायित्व की भावना विकसित करना है। राजस्थान में इस प्रकार की तीन जेलें दुर्गापुर, सांगानेर एवं अनूपगढ़ में हैं। उत्तर प्रदेश में बनारस, नैनीताल तथा मिर्जापुर जिलों में कई प्राचीर-विहीन जेलें हैं। भारत में अन्य प्रान्तों जैसे केरल, मद्रास तथा गुजरात में भी इस प्रकार की जेलों की व्यवस्था की गई है। भारत में 17 राज्यों में 31 प्राचीर-विहीन जेले है। कुछ खुली जेलों में कृषि का तो कुछ में उद्योगो का तो कुछ में दोनों का प्रशिक्षण दिया जाता है।

(ii) बाल बन्दीगृह—इन बन्दीगृहों में बाल-अपराधियों को रखा जाता है तथा उनका मानसिक विश्लेषण करके सुधार का प्रयास किया जाता है। उत्तर प्रदेश में इस प्रकार के कई बन्दीगृह हैं जो आगरा, बरेली, नैनी, बनारस, लखनऊ, फतहगढ़ और अन्य स्थानों पर स्थित हैं। सजा की अवधि एवं उनमें निवास की क्षमता के आधार पर इन जेलो को विभिन्न भागो में बांटा गया है।

(iii) अधिक सुरक्षा वाली जेलें—इनमें उन अपराधियों को रखा जाता है जो दण्ड भुगत रहे हैं और जिनके विरुद्ध अदालतों में मुकदमे चल रहे हैं। ऐसे अपराधियों को यहां कृषि कार्यों, निवाड व दरी बनाने, सुथारी एवं लुहारी, आदि का प्रशिक्षण दिया जाता है। इन जेलों में बन्दियो को काम के बदले पैसे देने का प्रावधान भी है। अधिक सुरक्षा वाली जेलें भी तीन प्रकार की हैं—(i) केन्द्रीय कारागृह, (ii) जिला कारागृह, (iii) उप-कारागृह। अधिक सुरक्षा

वाली जेल वर्तमान में भारत में 1200 है, इनमें से 6% केन्द्रीय, 18% जिला और 75% उप-जेलें तथा 1% विशिष्ट जेलें है। प्रतिवर्ष 14 5 लाख अपराधियों को जेल भेजा जाता है।

भारत मे जेल व्यवस्था में सुधार कार्यक्रमों के अन्तर्गत कुछ और भी कदम उठाये गये है। अव अपराधियो का वर्गीकरण किया जाता है। किसी भी जेल में रखने से पूर्व उनके जीवन-इतिहास, आदतों, प्रकृति आदि को ज्ञात किया जाता है। इसके वाद जो अपराधी जिस जेल मे भेजने योग्य होता है, उसे वहीं रखा जाता है। जेल में दण्ड भुगतने के दौरान अपराधियों को विभिन्न प्रकार का प्रशिक्षण भी दिया जाता है ताकि जेल से छुटकारा पाने के वाद वे किसी व्यवसाय द्वारा अपना जीवनयापन कर सकें और अपराधी कार्यो से मुक्ति पा सके।

परिवीक्षा
(PROBATION)

परिवीक्षा में अपराधी को सजा के वदले सशर्त मुक्त कर दिया जाता है और उससे अपेक्षा की जाती है कि वह परिवीक्षा की अवधि में अपना आचरण उत्तम रखेगा। इलियट के अनुसार, "परिवीक्षा इस प्रकार, दण्ड देने वाली संस्था से इस शर्त पर कि अपराधी अच्छा व्यवहार करेगा, मुक्ति मिलने को कहते हैं।"[1]

सदरलैण्ड के अनुसार, "परिवीक्षा दण्डनीय ठहराये गये अपराधी की उस समय की अवस्था है जिसमें अपराधी की सजा को मुअत्तिल करा दिया गया है और जिसमें अच्छा व्यवहार बनाये रखने की शर्त के साथ अपराधी को स्वतन्त्रता दे दी जाती है। इसके साथ ही राज्य अपने व्यक्तिगत निरीक्षण के द्वारा अपराधी को अच्छा व्यवहार वनाये रखने में सहायता देने का प्रयास करता है।"[2]

इस प्रकार प्रथम अपराधी को दण्ड के वजाय परिवीक्षा पर छोड़ा जाता है। दण्ड सुनाने के वाद ही अपराधी को परिवीक्षा पर छोड़ा जाता है। छूटने से पूर्व उसे परिवीक्षा काल में उत्तम आचरण रखने का प्रमाण-पत्र देना होता है। अपराधी को सरकार की ओर से निर्देशन एवं सहायता प्रदान की जाती है ताकि वह समाज से सामंजस्य स्थापित कर सके। परिवीक्षा अधिकारी सरकार की ओर से परिवीक्षा पर छोड़े गये अपराधियो की देख-रेख करता है। वही अपराधी की छानवीन कर प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है। भारत मे सन् 1888 में अपराधियों को परिवीक्षा पर छोड़ने की व्यवस्था की गयी थी। सन् 1958 में भारत सरकार ने परिवीक्षा अधिनियम पास किया जिसके आधार पर विभिन्न राज्यो ने अलग-अलग अधिनियम पारित किये। अलग-अलग राज्यों मे परिवीक्षा को कल्याण विभाग व कानून विभाग से सम्बन्धित किया गया है। सन् 1967 से ही राजस्थान में प्रत्येक जिले में एक परिवीक्षा अधिकारी की नियुक्ति की गयी है। साधारणतः समाज-कल्याण अधिकारी ही परिवीक्षा का कार्य संभालते हैं। परिवीक्षा अधिकारी दो कार्य करते हैं:प्रोवेशन पर छोड़े गये व्यक्ति के वारे में सामाजिक

1 "Probation is thus the conditional release from commitment to a penal institution, contingent upon good behaviour." —Elliot, *Crime in Modern Society*, p 533.

2 "Probation is the status of a convicted offender during a period of suspension of the sentence in which he is given liberty conditioned on his good behaviour and in which the state by personal supervision attempts to assist him to maintain good behaviour."

—Sutherland, F. H. & Cressey, D. R., *Principles of Criminology*, p 442.

छान-बीन एवं उसकी देखरेख। भारत में 500 से अधिक परिवीक्षा अधिकारी हैं। चेन्नई में 1937 में तथा उत्तर प्रदेश में 1938 में परिवीक्षा अधिनियम पारित किया गया था।

परिवीक्षा पर छोड़ने से अनेक लाभ होते हैं। अपराधी की मनोवृत्ति में परिवर्तन होता है और उसे भविष्य में समाज-विरोधी कार्य न करने का प्रोत्साहन मिलता है। वह जेल के दूषित वातावरण से बच जाता है। उसमें अनुशासन की भावना उत्पन्न होती है। साथ ही इससे राज्य को आर्थिक लाभ भी होता है क्योंकि जेल में रखने पर उस पर खर्चा होता है जो परिवीक्षा पर छोड़ने से बच जाता है।

कुछ लोग यह आशंका व्यक्त करते हैं कि अपराधी जिस पर्यावरण की देन है, परवीक्षा पर छोड़ने से वह पुनः उसी पर्यावरण में चला जाता है। अत· उसके सुधरने की आशा नही की जा सकती।"

पैरोल
(PAROLE)

पैरोल पर उन अपराधियों को छोडा जाता है जिन्हे लम्बी अवधि की सजा मिली हो और उसका कुछ भाग वे काट चुके हों। सजा काटने के दौरान यदि अपराधी का आचरण अच्छा रहता है तो अधिकारी की सिफारिश पर उसे शेष सजा से मुक्ति मिल जाती है। पैरोल की परिभाषा करते हुए इलियट लिखते हैं, **"पैरोल अपराधी के कारागार या सुधारालय से उसकी समयावधि से पूर्व ही मुक्ति को कहते हैं, ऐसा पैरोल अधिकारी की सिफारिश पर होता है।"**[1]

पैरोल का उद्देश्य भी अपराधी का सुधार करना है। पैरोल पर छूटने वाले से अपेक्षा की जाती है कि वह कुछ शर्तों का पालन करेगा। ऐसा न करने पर उसे पुनः दण्ड भुगतने को कहा जाता है। पैरोली की देखभाल के लिए पैरोल अधिकारी होता है। पैरोल से भी राज्य के खर्चे में कमी आती है तथा अच्छे आचरण को बढ़ावा मिलता है। जेल के दूषित वातावरण से अपराधी को शीघ्र मुक्ति मिल जाती है और उसे समाज से सामंजस्य करने का अवसर मिल जाता है।

परिवीक्षा व पैरोल मे निम्नलिखित अन्तर है :

(i) परिवीक्षा पर प्रथम अपराधी को छोड़ा जाता है जबकि पैरोल मे अपराधी को सजा का कुछ भाग काटना पड़ता है।

(ii) परिवीक्षा मे दण्ड नहीं दिया जाता है जबकि पैरोल में दण्ड दिया जाता है।

(iii) परिवीक्षा न्यायालय द्वारा स्वीकृत किया जाता है जबकि पैरोल एक प्रशासकीय इकाई द्वारा।

(iv) परिवीक्षा में दण्ड की भावना कम व सुधार की भावना अधिक होती है जबकि पैरोल में दण्ड का तत्व प्रमुख रूप से पाया जाता है।

उत्तर-संरक्षण सेवाएं
(AFTER-CARE SERVICES)

उत्तर-संरक्षण सेवाओं का सम्बन्ध अपराधी के जेल से छूटने के बाद के जीवन से है। जेल से छूटने के बाद अपराधी के सामने यह समस्या आती है कि वह क्या करे, परिवार,

1 "Parole may be defined as the conditional release of prisoner from a prison or reformatory prior to the expiration of his sentence, on the recommendations of parole authority" —Elliott, *op cit.*, p 729

समुदाय और समाज मे उचित स्थान कैसे प्राप्त करे ? जब एक अपराधी जेल से छूटने के बाद समाज के साथ सामंजस्य नही कर पाता और समाज उसे स्वीकार नहीं करता है तो वह पुनः अपराध करता है। अपराधी को सामाजिक, मानसिक और आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से ही उत्तर-संरक्षण सेवाएं प्रारम्भ की गयी है। इन सेवाओं के पीछे यह भावना होती है कि अपराधी को एक रोगी की तरह समझा जाय और उसका इस प्रकार से उपचार किया जाय कि वह पुनः अपराध की ओर प्रवृत्त न हो। जेल से छूटने के बाद वह देखता है कि वह दुनिया जिसमे वह जेल में जाने से पहले रहता था बहुत बदल गयी है और उसे वह सम्मान नहीं मिल पा रहा जो कभी मिला करता था। अब लोग उसकी ओर उंगली उठाते हैं, ताने देते हैं और उससे घृणा करते हैं। वह उत्तेजित हो उठता है और पुनः अपराध करने लगता है। अपराधी को इस प्रकार की मनःस्थिति से छुटकारा दिलाना, उसे आर्थिक संरक्षण देना और पुन समाज का योग्य नागरिक बनाने के लिए योजनाबद्ध कार्य करना उत्तर-संरक्षण सेवाओ का मूल उद्देश्य है। उत्तर-संरक्षण सेवाओं में अपराधी की सहायता की जाती है ताकि वह स्वयं अपनी सहायता कर सके। साथ ही उसके पुनर्वास का कार्य भी किया जाता है।

भारत में गैर-सरकारी तौर पर उत्तर-संरक्षण सेवा का कार्य सन् 1894 में उत्तर प्रदेश में प्रारम्भ हुआ। हमारे यहां अधिकांशतः उत्तर-संरक्षण सेवा का कार्य गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा ही किया जा रहा है क्योंकि सरकार ने इस ओर विशेष रुचि नही दिखायी है। चेन्नई में ऐसी अनेक संस्थाएं हैं जो इस प्रकार की सेवा में रत हैं जैसे—चेन्नई बन्दी मुक्ति सहायता समाज, आर्कोट बन्दी मुक्ति सहायता समाज, आदि। इसके अतिरिक्त वेलार, विटूर, कोयम्बटूर, गोदावरी, कोरापुट, मालाबार, त्रिचनापल्ली, आदि स्थानों पर भी इस प्रकार की समितियां बनी हुई हैं। मुम्बई में सन् 1946 से मुम्बई प्रदेश बन्दी मुक्ति समिति कार्य कर रही है। राजस्थान में इस प्रकार की सेवाएं नहीं हैं।

सन् 1954 मे भारत सरकार ने उत्तर-संरक्षण सेवाओं के सम्बन्ध में सिफारिश करने हेतु डॉ. एम. एस. गोरे की अध्यक्षता में एक समिति स्थापित की जिसे न केवल अपराधियों के लिए वरन् भिखारियों, अनाथों, विधवाओं, उपेक्षितों और अपाहिज लोगों के संरक्षण के लिए भी सुझाव देने का कार्य सौंपा गया। इस समिति ने कई सुझाव दिये जैसे अपराधियों से उनके जेल से छूटने के बाद नौकरी के लिए आवेदन पत्र दिलाना, उन्हें नौकरी दिलाना, रोजगार के अवसर देना और ऋण देना, उद्योग-धन्धे खुलवाना, आदि। साथ ही यह भी सिफारिश की गयी कि ऐसे अपराधियों के लिए उत्तर-संरक्षण होस्टल खोले जायें, उन्हें कानूनी सहायता प्रदान की जाय तथा भविष्य के लिए पथ-प्रदर्शन, परामर्श व सुरक्षा की सुविधाएं दी जायें। केन्द्रीय व प्रान्तीय स्तर पर भिन्न-भिन्न समितियों की व्यवस्था की जाय जो उत्तर-संरक्षण सेवाओं की देख-रेख और व्यवस्था करे। वर्तमान में भारत में 68 शरणालयों एवं 56 संगठनों के द्वारा अपराधियों को पुनर्वास सम्बन्धी सुविधाएं प्रदान की जा रही हैं।



अपराधों की रोकथाम हेतु कुछ सुझाव
(SUGGESTIONS FOR CRIME PREVENTION)

अपराध निरोध के लिए दण्ड, जेल, परिवीक्षा एवं पैरोल तथा उत्तर-संरक्षण सेवाओ के अतिरिक्त कुछ अन्य सुझाव अग्र प्रकार से दिये जा सकते हैं :

(1) **पूर्व-बाल अपराधियों की खोज**—एक अंग्रेजी कहावत है 'बुराई को जन्मते ही कुचल दो' (Nip the evil in the bud)। हमें भी ऐसे बच्चों को खोजना होगा जिनके आगे चलकर अपराधी बनने की सम्भावना है। उनको पहले ही ऐसी परिस्थितियां प्रदान की जायं कि वे आगे चलकर अपराधी नहीं बनें। ऐसे बच्चे आवारागर्दी करने वाले भगोड़े प्रवृत्ति के होते है जिन्हें हम गन्दी बस्तियों में ढूंढ सकते हैं। कहा जाता है, 'इलाज से बीमारी की रोकथाम अच्छी है' (Prevention is better than cure)। इसलिए पूर्व-बाल अपराधियों को सुधार कर ही हम अपराध को रोक सकते है।

(2) **मार्ग-दर्शन**—अपराधियों को जेल मे इस प्रकार का मार्गदर्शन प्रदान किया जाय कि वे जेल से छूटने के बाद अपराध नही करे। अपराधियों पर अनुसन्धान किये जाने चाहिए और अपराध के सही कारणो का पता लगाया जाना चाहिए। बच्चों की आवश्यकताओ का पता लगा कर उन्हें पूरा करने के कार्यक्रम बनाये जायें। परिवार एवं स्कूल से घनिष्ठ सम्बन्ध बनाये रखे जाय तथा अभिभावकों को उनके दायित्वों का ज्ञान कराया जाय।

(3) **समितियो का निर्माण**—ऐसी सामुदायिक एवं पड़ौस समितियों का निर्माण किया जाय जो समुदाय की उन परिस्थितियों का पता लगायें जो अपराध के लिए उत्तरदायी हैं।

(4) **परिवार का पुनर्गठन**—अपराधी व्यक्ति विघटित एवं टूटे परिवारों से आते हैं। अतः ऐसे उपाय अपनाये जायें जिससे परिवार के सदस्यों में प्रेम, सहयोग एवं नियन्त्रण में वृद्धि हो तथा पारिवारिक तनाव, संघर्ष एवं विघटन की समाप्ति हो।

(5) **स्वस्थ मनोरंजन**—वर्तमान युग का अस्वस्थ एवं व्यापारिक मनोरंजन भी अपराध को जन्म देता है। भद्दे, भौंडे तथा नग्न व अर्द्ध-नग्न चित्र, अपराध से परिपूर्ण फिल्में, जासूसी उपन्यास एवं सस्ता साहित्य, नाच घर, नाइट क्लब, कैबरे, आदि सभी व्यक्ति के पतन के लिए उत्तरदायी हैं। इन सभी पर कठोर कानूनी पाबन्दी लगाई जानी चाहिए।

(6) **स्वस्थ निवास**—गन्दी बस्तियां एवं भीड़-भाड युक्त मकान भी अपराध के लिए उत्तरदायी है। अतः सरकार को पर्याप्त मात्रा में नियोजित बस्तियों का निर्माण करना चाहिए तथा मकान बनाने के लिए ऋण की सुविधाएं उपलब्ध करायी जानी चाहिए।

(7) स्कूलों के वातावरण में सुधार किया जाना चाहिए क्योंकि शिक्षण-संस्थाओं में ही मानवता ढलती है एवं व्यक्ति में नैतिकता की भावनाएं पनपती हैं। यहीं व्यक्ति के चरित्र का गठन होता है।

(8) **जेल की दशाएं सुधारी जायें**, उनमें चिकित्सा सेवा, स्वस्थ वातावरण एवं निवास की उचित व्यवस्था की जाय तथा अपराधियों के साथ सहानुभूतिपूर्ण एवं प्रेमपूर्ण व्यवहार किया जाय।

(9) अपराधियों को सुधारने के लिए **मनःचिकित्सकों एवं समाजशास्त्रियों की सहायता** ली जाय ताकि वे भविष्य में अपराधो की पुनरावृत्ति न करें।

(10) **दण्ड का निर्धारण अपराध की परिस्थितियों को देखकर किया जाय।**

(11) भिन्न-भिन्न प्रकार के अपराधियों के लिए **अलग-अलग प्रकार के बन्दी गृह** हों जैसे प्रथम अपराधी को आदतन अपराधी के साथ रखने से उसके बिगड़ने के अधिक अवसर रहते हैं।

(12) **जनमत में परिवर्तन** कर ऐसी प्रवृत्तियो का बहिष्कार किया जाय जो समाज-विरोधी कार्यों को जन्म देती हों।

(13) अपराधिय को ऋण एवं प्रशिक्षण की सुविधाएं दी जायं ताकि वे अपना व्यवसाय चला सकें और अपर ाी कार्यों से मुक्ति पा सकें।

(14) जेल में ापराधियों को काम दिया जाय एवं उससे प्राप्त धन में से आधा भाग उनके परिवार वालों को दिया जाय ताकि उनके आश्रितों का भरण-पोषण होता रहे।

(15) न्याय न केवल सस्ता हो बल्कि साथ ही उसे शीघ्र उपलब्ध कराने की व्यवस्था भी की जानी चाहिए।

(16) अपराधी जनजातियों के सुधार के लिए योजनाबद्ध प्रयत्न किये जाये।

(17) समाज में व्याप्त बेकारी एवं गरीबी की समस्या का शीघ्र उन्मूलन किया जाय क्योंकि निर्धनता ही प्रमुखतः अपराधो की जड़ है।

प्रश्न

1 अपराध के विभिन्न कारकों की व्याख्या कीजिए। (राज., 1992)

2 अपराध की परिभाषा दीजिए एवं अपराध के किन्ही दो सिद्धान्तों को समझाइए। (राज., 1995)

3 "अपराधी जन्म नहीं लेते, बनाये जाते हैं।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

4 अपराध की परिभाषा करते हुए उसके समाजशास्त्रीय सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए। (राज., 1993, 94)

5 अपराध की परिभाषा कीजिए और उसके महत्वपूर्ण कारकों की व्याख्या कीजिए।

6 संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :
   (1) परिवीक्षा।
   (2) जन्मजात अपराधी।
   (3) सफेद पोश (श्वेतवस्त्रधारी) अपराध। (राज., 1993)

7. अपराध को स्पष्ट कीजिए। अपराध के बारे मे सदरलैण्ड के विचार बताइए। (राज., 1987)

8. अपराध के समाजशास्त्रीय कारणो का विवेचन कीजिए। (राज., 1988)

9 अपराध एक खतरनाक समाज विरोधी व्यवहार है। इसकी पूर्ण विवेचना कीजिए एवं स्पष्ट कीजिए कि अपराध क्या है? (अजमेर, 1989)

10 अपराध को परिभाषित कीजिए। अपराध और बाल-अपराध में अन्तर बताइए। (अजमेर, 1991, 97, राज., 1995)

11. अपराध से आप क्या समझते हैं? अपराध की कानूनी और सामाजिक अवधारणाओं को समझाइए। (अजमेर, 1995)

12 अपराध की समाजशास्त्रीय परिभाषा करते हुए इसके विभिन्न कारको की विवेचना कीजिए। (राज., 1996)

3

बाल-अपराध

[JUVENILE DELINQUENCY]

बाल-अपराध सामाजिक और वैयक्तिक विघटन का परिणाम है। हाल ही में बाल-अपराध विज्ञान एक अलग विज्ञान के रूप में प्रारम्भ हुआ है। यह समाज-विज्ञान की वह शाखा है जो बच्चों के समाज-विरोधी व्यवहार का अध्ययन करती है।[1] बच्चों में नटखटपन एक सार्वभौमिक तथ्य है। किन्तु जब यह नटखटपन समाज की मान्यताओं को भंग करने लगता है तो यह बाल-अपराध के नाम से जाना जाता है।[2] बाल-अपराध की समस्या कोई पृथक् समस्या नहीं वरन् यह सामाजिक परिवर्तन और समाज में असामंजस्य का ही परिणाम है। पश्चिमी देशों में औद्योगीकरण के प्रभाव से सामाजिक संरचना एवं सामाजिक मूल्यो में परिवर्तन आ रहे हैं। परिणामस्वरूप वहां बाल-अपराधों की समस्या उत्पन्न हुई है। भारतीय समाज में ग्रामीण विशेषताएं व्याप्त है और इसे अपनी परम्पराओं से घनिष्ठ लगाव है। अतः यहां बाल-अपराध की भीषण समस्या नहीं है। किन्तु अब शहरों के विकास एवं ग्रामीण जनता का शहरों की ओर आगमन तथा सुंयक्त परिवार के विघटन से नियन्त्रण में शिथिलता आयी है एवं पड़ोस का प्रभाव भी क्षीण हुआ है। कुछ समय पूर्व तक परिवार द्वारा प्राप्त सामाजिक और आर्थिक सहायता के अतिरिक्त जो मानवीय सुरक्षा मिलती थी वह अब कम होती जा रही है। आर्थिक अभाव के कारण बच्चों की उचित देख-रेख नहीं हो पाती और उचित समाजीकरण के अभाव में बच्चा समाज-विरोधी हो जाता है। बच्चे कोमल पौधे की तरह हैं जिनका सफलतापूर्वक फलना एवं फूलना नाजुक पालन-पोषण पर निर्भर करता है।[3] कुछ समय पूर्व तक युवा-अपराधियों और बाल-अपराधियों में कोई भेद नही किया जाता था और दोनों को समान रूप से दण्डित किया जाता था। प्राचीन मोजिक नियमों (*Mosaic laws*) में ऐसे पुत्र को जो माता-पिता का कहना नहीं मानता या अनादर करता था, मौत की सजा दी जाती थी। सन् 1883 में इंगलैण्ड में एक बच्चे को दो पेन्स की चित्रकारी चुराने के अपराध

1 "It may be defined as that branch of social science which studies the anti-social behaviour of children."
—Sushil Chandra, *Juvenile Delinquency in India* by Dr. R. S Singh, p 1.

2 "Crime may be rare, but naughtiness is universal." —Burt, *Young Delinquent*

3 "Children are as tender plants whose successful blooming depends on delicate cultivation." —Jones, *Juvenile Delinquency and the Law*, p 9.

में फांसी की सजा दी गयी।[1] उस समय के कानून के संरक्षक व निर्माता समाज रक्षा के लिए इस प्रकार के दण्ड को आवश्यक मानते थे। किन्तु वर्तमान मे अपराधी बच्चे को दण्ड न देकर उसका सुधार एवं पुनर्वास किया जाता है क्योंकि इसके अभाव में बाल-अपराधी ही आगे चलकर युवा अपराधी बनते है। हम यहां बाल-अपराध की परिभाषा, कारण और उन्हें सुधारने के विभिन्न उपायो का उल्लेख करेगे।

बाल-अपराध : परिभाषा और अर्थ
(JUVENILE DELINQUENCY : DEFINITION AND MEANING)

जब किसी बच्चे द्वारा कोई कानून-विरोधी या समाज-विरोधी कार्य किया जाता है तो उसे बाल-अपराध कहते है। इंगलैण्ड के न्यायवेत्ताओं ने अपराध के सम्बन्ध में एक कहावत को जन्म दिया। '*Non estrants insments sit rea.*' (*i e.*, nobody can be convicted as guilty unless it can be proved that he has guilty mind.) जिसका अर्थ है—*किसी भी व्यक्ति को उस समय तक अपराधी नहीं ठहराया जा सकता जब तक यह सिद्ध न हो जाय कि उसका अपराधी इरादा था।* एक और कहावत यह भी प्रचलित है '*annu pubertatis*' (*i e.*, unless a person has attained the age of fourteen years, the law could not presume that he acted with criminal intent) अर्थात जब तक कोई व्यक्ति चौदह वर्ष की आयु प्राप्त नहीं कर लेता तब तक कानून यह नही मानेगा कि उसने अपराधी इरादे से व्यवहार किया। जब तक बच्चे में अच्छे-बुरे के बीच भेद करने की भावना नहीं आ जाती, उसके द्वारा किया गया समाज-विरोधी कार्य अपराध नही कहलायेगा। बाल-अपराध का निर्धारण करने में आयु भी एक महत्वपूर्ण तथ्य है। भिन्न-भिन्न देशों मे बाल-अपराधियों के लिए अलग-अलग आयु निर्धारित की गयी है। अधिकांश देशो में 7 वर्ष से कम की आयु के बालक द्वारा किया गया कानून व समाज विरोधी कार्य अपराध नहीं *माना जाता है क्योंकि इस समय तक बालक में अच्छे-बुरे के भेद की समझ उत्पन्न नहीं होती है।* बाल-अपराध की अधिकतम आयु 18 से लेकर 20 वर्ष तक है। इसके बाद की आयु वाले व्यक्ति द्वारा किया गया समाज-विरोधी कार्य युवा अपराध में गिना जाता है। किन्तु समाजशास्त्री आयु को अधिक महत्व नही देते क्योंकि व्यक्ति की मानसिक एवं सामाजिक परिपक्वता सदा ही ,आयु से प्रभावित नहीं होती। अतः कुछ विद्वान, बालक द्वारा प्रकट व्यवहार की प्रवृत्ति को बाल-अपराध के लिए आधार मानते है, जैसे आवारागर्दी करना, स्कूल से अनुपस्थित रहना, माता-पिता एवं संरक्षकों की आज्ञा न मानना. अश्लील भाषा का प्रयोग करना, वेश्याओं, जुआखोरों एवं चरित्रहीन व्यक्तियों से सम्पर्क रखना, आदि। किन्तु जब तक कोई अन्य वैध तरीका सर्व-सम्मति से स्वीकार नहीं कर लिया जाता तब तक आयु को ही बाल-अपराध का निर्धारक आधार माना जायेगा। सेठना के अनुसार, "बाल-अपराध के अन्तर्गत किसी बालक या ऐसे तरुण व्यक्ति के गलत कार्य आते हैं जोकि सम्बन्धित स्थान के कानून (जो उस समय लागू हो) के द्वारा निर्दिष्ट आयु सीमा के अन्दर आते हों।"[2]

1 Quoted by Calvert, *Capital Punishment in the 20th Century*, p 5.
2 "Juvenile Delinquency involves wrong-doing by a child or by a young person who is under an age specified by the law (for the time being in force) of the place concerned." —M. J. Sethna, *Society and the Criminal*, p 315

सिरिल बर्ट का कहना है—"तकनीकी दृष्टि से एक बालक को उस समय अपराधी माना जाता है जब उसकी समाज-विरोधी प्रवृत्तियां इतनी गम्भीर दिखायी दें कि उसके विरुद्ध वैधानिक कार्यवाही की जाती है या की जानी चाहिए।"[1]

अमरीका की राष्ट्रीय परिवीक्षा समिति ने बाल-अपराधी ऐसे व्यक्ति को कहा है जो (i) राज्य के कानून, ऑर्डिनेन्स या राज्य के उपखण्डों के नियमों की अवहेलना करता हो। (ii) जो आदतन आज्ञाओं को न मानने वाला हो और अपने माता-पिता एवं संरक्षक आदि के नियन्त्रण में न हो। (iii) जो स्कूल एवं घर से भागने का आदी हो। (iv) जो स्वय की और दूसरों की नैतिकता एवं स्वास्थ्य को हानि पहुंचाता हो।"[2]

न्यूमेयर के अनुसार, "एक बाल अपराधी निर्धारित आयु से कम आयु का वह व्यक्ति है जो समाज-विरोधी कार्य करने का दोषी है और जिसका दुराचरण कानून का उल्लंघन है।"[3]

प्रो. शेल्डन के अनुसार, "बालक द्वारा एक सामान्य सीमा से भी अधिक गम्भीर अपराध करना ही बाल अपराध है।"

के. फ्राइडलैण्डर के अनुसार, "बाल-अपराधी वह बच्चा है जिसकी मनोवृति कानून को भंग करने वाली हो अथवा कानून को भंग करने का संकेत करती हो।"[4]

गिलिन एवं गिलिन के अनुसार, "समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से एक बाल-अपराधी वह व्यक्ति है जिसके व्यवहार को समाज अपने लिए हानिकारक समझता है और इसलिए वह उसके द्वारा निषिद्ध होता है।"[5]

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि राज्य द्वारा निर्धारित आयु समूह के बच्चे द्वारा किया गया कानून विरोधी कार्य बाल-अपराध है। प्रत्येक देश में आयु सीमा भिन्न-भिन्न होने के कारण बाल-अपराधियों की संख्या में भी अन्तर पाया जाता है। 19 वर्ष की आयु वाले व्यक्ति द्वारा किया गया कानून-विरोधी कार्य भारत में बाल-अपराध की श्रेणी में नही आता क्योंकि हमारे यहां 18 वर्ष तक की आयु सीमा के अपराधी को ही बाल-अपराधी मानते हैं, जबकि जापान में वही व्यक्ति बाल अपराधी माना जायेगा क्योंकि वहां बाल-अपराधी की अधिकतम आयु 21 वर्ष है। भारत के विभिन्न प्रान्तों मे बाल-अपराध की अधिकतम आयु सीमा में भी अन्तर रहा है।

भारत में बाल-अपराध के निर्धारण में निम्नांकित तथ्य महत्वपूर्ण है .

(1) कोई भी बच्चा जिसकी आयु 7 वर्ष से कम है और जो कानून विरोधी व्यवहार करता है तो वह बाल-अपराधी नहीं माना जायेगा क्योंकि ऐसे बच्चे अबोध होते है, उन्हें उचित-अनुचित का ज्ञान नहीं होता।

---

1 "A child is to be regarded technically, as a delinquent when his anti-social [illegible]

2 [illegible]

3 [illegible] misconduct is an infraction of the Law"

—Neumeyer, *Juvenile Delinquency in Modern Society*, 1955.

4 K. Friedlender, *The Psycho-analytical Approach to Juvenile Delinquency*, p 77.

5 "Sociologically a juvenile delinquent is one who is guilty of an act believed, to be injurious to society and therefore prohibited."

—Gillin and Gillin, *Cultural Sociology*, p 786.

(2) भारत में बाल-न्याय अधिनियम, 1986 (Juvenile Justice Act, 1986) जो कि अक्टूबर 1987 से लागू किया गया, के अनुसार 16 वर्ष तक की आयु के लड़कों एवं 18 वर्ष तक की आयु की लड़कियों को अपराध करने पर बाल-अपराधी की श्रेणी में सम्मिलित किया गया है। बाल-अपराधी के निर्धारण में मूल बात यह है कि कानून द्वारा बालक किसे माना गया है। इस अधिनियम से पूर्व केन्द्र एवं राज्यों में बाल-अपराधियों की आयु मे भिन्नता पायी जाती थी।

(3) केवल आयु ही बाल-अपराध को निर्धारित नही करती वरन् इसमें अपराध की गम्भीरता भी महत्वपूर्ण पक्ष है। 7 से 16 वर्ष का लड़का एवं 7 से 18 वर्ष की लड़की द्वारा कोई भी ऐसा अपराध न किया गया हो जिसके लिए राज्य मृत्यु-दण्ड अथवा आजीवन कारावास देता हो जैसे हत्या, देशद्रोह, घातक आक्रमण, आदि तो वह बाल अपराधी माना जायेगा।

अपराध और बाल-अपराध में अन्तर
(DIFFERENCE BETWEEN CRIME AND DELINQUENCY)

बाल-अपराध और अपराध दोनो मे ही समाज और राज्य के प्रचलित नियमों का ही उल्लंघन होता है, फिर भी इन दोनो मे निम्नलिखित अन्तर है :

(i) आयु भेद—बाल-अपराध कम आयु के बालकों (अधिकांशतः 7 वर्ष से लेकर लड़कों के लिए 16 वर्ष तक और लडकियों के लिए 18 वर्ष तक) द्वारा किया जाता है जबकि अपराध युवा व्यक्ति (अधिकांशत. 21 वर्ष या उससे ऊपर की आयु के व्यक्ति) द्वारा।

(ii) पृष्ठभूमि में भेद—बाल-अपराध युवा अपराध के लिए पृष्ठभूमि तैयार करता है। बाल-अपराधी ही आगे चलकर अपराधी बनते हैं।

(iii) समझ का भेद—बाल-अपराधी कोमल मस्तिष्क के कारण अपराध की गम्भीरता को पूरी तरह से नहीं समझ पाते जबकि युवा-अपराधी अपराध के परिणामो को भली-भांति समझते हैं।

(iv) सुधार के आधार पर भेद—बाल-अपराधी का सुधार सरल एवं सम्भव है क्योंकि बच्चे के अपरिपक्व मस्तिष्क को किसी भी दिशा में मोडा जा सकता है जबकि युवा अपराध मे सुधार की सम्भावना कम होती है।

(v) दण्ड में भेद—बाल-अपराधी को दण्ड के स्थान पर सुधारालय भेजा जाता है जबकि अपराधी को उसके अपराध की प्रकृति के अनुसार दण्ड दिया जाता है।

(vi) कारण भेद—बाल-अपराधी मे अपराध के कारणों को ढूंढना सरल है क्योंकि उसने अपराधी कार्य प्रारम्भ ही किया होता है जबकि युवा अपराधी के अपराध के कारणो का पता लगाना अपेक्षतया कठिन कार्य है क्योंकि उसके पीछे एक लम्बा इतिहास होता है।

(vii) बाल-अपराधियों एवं युवा-अपराधियों द्वारा किये गये अपराधों की प्रकृति, प्रकार और मात्रा में भी अन्तर होता है।

(viii) प्रशिक्षण में भेद—कभी-कभी युवा-अपराधी संगठित अपराध या व्यावसायिक अपराध मे बाल-अपराधियों का सहारा लेते हैं। इस तरह से युवा अपराधी बाल-अपराधियो को प्रशिक्षण देते है जबकि सामान्यतः कोई भी युवा अपराधी बाल-अपराधी से अपराध का प्रशिक्षण ं लेता।

(ix) उपयोगिता में भेद—कोहन की मान्यता है कि वाल-अपराध में अनुपयोगिता की मात्रा अधिक होती है अर्थात् वच्चा सदा ही किसी लाभ के लिए अपराध नही करता वरन् अज्ञानता के कारण भी करता है, जैसे वच्चे द्वारा किसी कक्षा के छात्र की पुस्तक चुराकर फाड देना। इस कार्य में उसे लाभ प्राप्त नहीं होता है।

(x) उद्देश्यों में भेद—कई वच्चों द्वारा हंसी-मजाक या द्वेष के कारण ऐसे कार्य कर लिये जाते हैं जो अपराध की श्रेणी में आते हैं जैसे पत्थर फेंकने पर किसी के चोट लगना या किसी वस्तु का टूट जाना जवकि अपराध में संगठित एवं योजनावद्ध रूप से कार्य किया जाता है।

(xi) प्रभाव में अन्तर—वाल-अपराध अधिकांशतः वैयक्तिक विघटन का सूचक है जवकि अपराध से सम्पूर्ण समाज व राष्ट्र को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक हानि उठानी पड़ती है।

भारत में वाल-अपराध
(JUVENILE DELINQUENCY IN INDIA)

भारत में वाल-अपराध सम्वन्धी आंकड़ों में अनेक कमियां है। कई वार वाल-अपराधियो के अपराध पुलिस में दर्ज नहीं कराये जाते। समाज के समृद्ध एवं धनी लोगों के वच्चो द्वारा किये गये अपराधों का भी साधारणतः उल्लेख नहीं किया जाता क्योंकि उन्हें आवश्यक संरक्षण प्राप्त है जवकि गरीवों के वच्चों को छोटे-छोटे अपराधों के लिए दण्डित किया जाता है। वाल-अपराधी के अनुपयुक्त आंकड़ों के लिए पुलिस द्वारा अपराधियों को पकड़ने में अरुचि, उनका अनुपयुक्त प्रशिक्षण, अक्षमता एवं जनता द्वारा सहयोग का अभाव भी उत्तरदायी है। अतः जितने मुकदमे दर्ज किये जाते हैं, वाल-अपराध की संख्या साधारणतः उनसे कई गुना अधिक होती है। विभिन्न स्रोतों द्वारा संकलित आंकड़ों एव न्यायालयों के आंकडों में भी अन्तर है। भारत में विभिन्न प्रान्तों में कल्याणकारी कार्यक्रमों की भिन्नता, राज्यों के पास आंकड़े-संकलन की अपूर्ण सुविधाएं एवं प्रशासन द्वारा वाल-कल्याण में पूर्ण रुचि का अभाव आदि भी वाल-अपराध सम्वन्धी आंकड़ो की अपर्याप्तता के लिए उत्तरदायी है। फिर भी इतना अवश्य है कि प्रति वर्ष भारत में करीव 80 से 90 हजार तक वाल-अपराधियों को न्यायालय के सम्मुख उपस्थित किया जाता है जो कि वाल-अपराधियों की वास्तविक संख्या से काफी कम है। **भारत में वाल-अपराध की निम्नांकित विशेषताएं है :**

(1) गांवों की तुलना में वाल-अपराध शहरों में अधिक होते है। शहरी क्षेत्रों में भी वड़े-वड़े शहर जैसे दिल्ली, मद्रास, वम्वई, कलकत्ता, चण्डीगढ, कानपुर आदि मे वाल-अपराध अधिक होते है। शहरों में वाल-अपराध अधिक होने के कई कारण है जैसे वहां जव माता एवं पिता दोनो ही काम पर चले जाते हैं तो घर में वच्चों पर नियन्त्रण रखने वाला कोई नहीं होता, वे आवारागर्दी करने लगते हैं। शहरों में वच्चों से वेश्यावृत्ति में सहायता पहुंचाने, भीख मांगने, आदि का कार्य भी करवाया जाता है। शहर का भीड़-भाडयुक्त वातावरण, गन्दी वस्तियां, अश्लील एवं अपराधी चलचित्र, अति सम्पन्नता के प्रति आक्रोश, वेकारी एवं नितान्त गरीवी, आदि वाल-अपराध को प्रोत्साहित करते हैं।

(2) लड़कों में लड़कियों की तुलना में वाल-अपराध अधिक पाये जाते हैं। हंसा सेठ के वम्वई राज्य के अध्ययन मे 91.2% अपराध लड़कों द्वारा किये गये थे।[1] रटनशा के पूना के अध्ययन में लड़के व लड़कियों के अपराध का अनुपात 16.1 : 1 था। डा. मनशारत के

1 Hansa Seth, *Juvenile Delinquency in Indian Setting*, p 60

अध्ययन में यह अनुपात 11 · 1 का था। इस अन्तर का कारण यह है कि भारतीय सं मे लड़कियों पर परिवार का नियन्त्रण अधिक होता है। लड़कों में शारीरिक शक्ति की अधि मुक्त वातावरण में रहने तथा वाह्य जीवन में भाग लेने के कारण अपराध करने की प्रवृ अधिक पायी जाती है। नवीन आकडे यह वताते हैं कि वाल-अपराध की प्रवृत्ति पिछले वर्षो मे लड़को की तुलना मे लडकियो में दुगनी रही है। लड़कियों में पिछले 10 वर्षों 216% एवं लडको में 108% अपराधों की वृद्धि हुई। जिस प्रकार के अपराधों मे वृद्धि है उनमे चोरी, शरावपृत्ति एवं जुआ खेलने से सम्वन्धित अपराध अधिक हैं। 1987 तक अप मे प्रवृत्त लडकियो का प्रतिशत 6 से 7 तक था जो 1988 में वढ़ कर 13 4 हो गया। इस कारण वाल-अपराधियो की परिभाषा में परिवर्तन है अर्थात् अव 16 से 18 वर्ष की अ समूह की लडकियों को भी वाल-अपराधी माना गया है।

(3) महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, विहार तथा आन्ध्र प्रदेश में कुल वाल-अपराधों का 68 भाग आता है। (भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत)। स्थानीय तथा विशेष कानून के अन्त महाराष्ट्र तथा तमिलनाडु मे कुल अपराधों का 73% भाग आता है।

(4) भारत में अधिकतर वाल-अपराधों मे आर्थिक प्रकृति के अपराध जैसे चोरी, सेधमा आदि होते हैं। इसका कारण यहां की गरीवी और परिवार की छिन्न-भिन्न अवस्था, ग वस्तियां, अकाल, वाढ, वेकारी, आदि है। लड़कों द्वारा आर्थिक अपराध अधिक किये जाते जवकि लड़कियो द्वारा यौन सम्वन्धी अपराध। हंसा सेठ के अध्ययन में 86 2% लड़कियो यौन अपराध किये थे।[1] विभिन्न अध्ययनो से ज्ञात होता है कि वाल-अपराध की सर्वाधिक समाज के आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टि से निम्नतम समूहों में पायी जाती है। वाल-अपराधि द्वारा किये जाने वाले सर्वाधिक अपराध सम्पत्ति के विरुद्ध (36%) थे। इनमें चोरी, ठगी, एवं डकैती, आदि अपराध प्रमुख है।

(5) वाल-अपराधी व्यक्तिगत रूप से अपराध कम करते हैं। वे किसी अपराधी गि के साथ मिलकर ही अपराध करते है। यह गिरोह उन्हें प्रशिक्षण देता एवं संरक्षण प्र करता है।

(6) अधिकांश वाल-अपराध 14 से 16 वर्ष की आयु में ही किये जाते हैं। हसा के अध्ययन में 14 व 15 वर्ष की आयु में अपराध अधिक किये गये।[2] रटनशा[3] के अध्य मे 14 वर्ष की आयु में, क्लिफोर्ड मैनशारट[4] के अध्ययन में 12 वर्ष के लड़को एवं 14 की लड़कियो ने अधिक अपराध किये थे। डॉ. मानहीम, फोर्टेस, वेजहाट आदि के अध्य में 13 वर्ष की आयु में, और हीली व्रूनर के अध्ययन में 12 से 14 वर्ष की आयु में अप किये गये। 12 से 16 वर्ष की आयु समूह में वाल अपराधियों की संख्या सर्वाधिक पायी ज है। यह आयु स्कूल छोड़ने की है। इस समय पुरुषत्व आता है और साहसी प्रवृत्ति पैदा है तथा वालक नियन्त्रण को तोड़कर मुक्त रहना चाहता है। इसीलिए इस आयु मे अप अधिक किये जाते हैं।

(7) शिक्षितों की तुलना में अशिक्षित वालकों द्वारा अपराध अधिक किये जाते हैं। सेठ के अध्ययन मे 43.5% वाल-अपराधी अशिक्षित थे, 31.2% लिखना-पढ़ना जानते

1 Hansa Seth, *op cit*, p 138
2 *Ibid*, p 133
3 Mrs. Ruttonsha, *Juvenile Delinquency and Destitution in Poona*, p 47.
4 fford Manshardt, *The Delinquent Child in India*, p 20

9.8 प्राथमिक शिक्षा प्राप्त थे। 1.5% सैकण्ड्री तक पढ़े हुए थे एवं 14% की शिक्षा का पता नहीं था। एस. सी. वर्मा के अध्ययन में कानपुर में 62.67% व लखनऊ में 70% बाल-अपराधी अशिक्षित थे।[1] भारत में करीब 42% वाल-अपराधी अशिक्षित पाये गये तथा 52% प्राथमिक, मिडिल या सैकन्ड्री कक्षा और केवल 6% ही हाईस्कूल या इससे ऊपर तक की शिक्षा प्राप्त थे।

(8) वर्ष 1988 में भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत 24,827 तथा स्थानीय और विशेष नियमों के अन्तर्गत 25,468 बाल-अपराध हुए।

(9) भारत में कुल ज्ञातव्य अपराधों का 2% भाग बाल-अपराधों का है।

बाल-अपराध के कारण
(CAUSES OF JUVENILE DELINQUENCY)

जिस प्रकार अपराध के लिए किसी एक कारक को हम उत्तरदायी नहीं मान सकते, उसी प्रकार बाल-अपराध के लिए भी कोई एक कारक उत्तरदायी नहीं है। यदि हम किसी एक ही कारक को बाल-अपराध के लिए इंगित करते है तो यह एक बहुत बड़ी त्रुटि है।[2] किसी भी समस्या को हल करने के लिए उसके कारणों को जानना आवश्यक है जैसा कि टैगोर ने कहा था, "यदि हम किसी बुराई के कारणों को जान लेते हैं तो आधा हल प्राप्त कर लेते हैं।"[3]

यहां हम बाल-अपराध के प्रमुख कारणों का उल्लेख करेंगे :

(I) पारिवारिक कारण (Famlial Causes)

परिवार का व्यक्ति के जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। जन्म के बाद बच्चे का सर्वप्रथम सम्पर्क परिवार के सदस्यों से होता है। वह अपने माता-पिता एवं भाई-बहिनों के व्यवहारों से प्रभावित होता है। परिवार का वातावरण, आर्थिक परिस्थितियां, शैक्षणिक स्तर, नैतिकता, आदि का बच्चे के व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान होता है। जब माता-पिता बच्चों के प्रति अपने दायित्वों का निर्वाह करने मे असमर्थ रहते हैं, तो बच्चों से भी श्रेष्ठ नागरिक बनने की अपेक्षा नहीं की जा सकती। परिवार ही बच्चे की प्रथम पाठशाला है। अतः जिन व्यवहारों को वह बचपन में परिवार से ग्रहण करता है, वे उसमें जीवन-पर्यन्त बने रहते हैं। परिवार से सम्बन्धित कई कारण बालक को अपराधी बनाने के लिए उत्तरदायी हैं :

(1) भौतिक वंशानुक्रमण (Physical heredity)—बच्चे के शरीर और स्वास्थ्य का सम्बन्ध उसके वंशानुक्रमण से भी है जोकि उसकी शारीरिक और सामाजिक भूमिकाओ को प्रभावित करता है। इटली के अपराधशास्त्री लोम्ब्रोसो ने तो अपराधी प्रवृत्ति को व्यक्ति की शारीरिक विशेषताओं से जनित ही माना था। क्या अपराध वंशानुक्रमण में मिलता है? इस अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न अपराधशास्त्रियों ने कई प्रसिद्ध और क्षत परिवारों के वंशानुक्रमण का अध्ययन किया। गोडार्ड, रिचार्ड, डुग्डेल एवं इस्टा ब्रूक ने कालिकाक

1 S. C. Verma, "The Social and Economic Background at Juvenile Delinquency in Lucknow and Kanpur (Ph. D. dissertation), quoted by Sushil Chandra, *Sociology* [illegible]

2 [illegible]

alone. —Dr. R. S Singh, op. cit., [illegible]

3 "The evil is half cured whose cause we know"
—Tagore, quoted by Dr. R. S [illegible]

और ज्यूक (Kalikak and Jukes) परिवारों का अध्ययन करने पर पाया कि ये परिवार शारीरिक दृष्टि से क्षत (Degenerated) थे तथा इन परिवारों की सभी पीढ़ियां अपराधी थीं। भारत में भूतपूर्व अपराधी जन-जातियों (Ex-criminal tribes) को भी वंशानुक्रमण के आधार पर ही अपराधी घोषित किया गया था। अपराध को वंशानुक्रमण की देन मानने वाले विद्वान मेण्डल के वशानुक्रमण के सिद्धान्त से प्रभावित थे।

किन्तु वर्तमान मे अपराधशास्त्र में इस अवधारणा का बहिष्कार किया गया है। बर्ट और गिलिन ने अपने अध्ययनों मे बाल-अपराध को वंशानुक्रमण से सम्बन्धित नहीं पाया। गिलिन लिखते है, "अपराध वंशानुक्रमण में प्राप्त नही किया जा सकता।"[1]

(2) टूटे परिवार (Broken home)—परिवार दो प्रकार से टूट सकते हैं :

(अ) भौतिक रूप से (Physically) तथा (ब) मानसिक रूप से (Mentally)

भौतिक रूप से परिवार के टूटने का अर्थ है—परिवार के सदस्य की मृत्यु हो जाना, लम्बे समय तक अस्पताल, जेल, सेना आदि में रहने के कारण अथवा तलाक और पृथक्करण के कारण सदस्यों का परिवार मे साथ-साथ नहीं रहना है।

मानसिक रूप से परिवार के टूटने का अर्थ है—सदस्य एक साथ तो रहते हैं किन्तु उनमें मनमुटाव, मानसिक संघर्ष एवं तनाव पाया जाता है।

हंसा सेठ के मुम्बई के अध्ययन में 47.4%, कार सैण्डर्स के अध्ययन में 29%, बर्ट के अध्ययन में 58%, बेजहॉट के अध्ययन में 44.5%, डॉ. सुलेन्जर के ओमाहा अध्ययन में 50 71% , डॉ. मैरिल के अध्ययन में 50 7%, डॉ. मेनहीम के अध्ययन में 39 4%, ग्लूक के अध्ययन मे 84 8% बालक टूटे परिवारों के थे।[2] बर्ट ने बताया कि टूटे परिवारों मे एक बात समान रूप से पायी गयी कि वे सभी शराब का प्रयोग करते थे। शराबखोरी के कारण परिवार की आर्थिक स्थिति कमजोर हो जाती है, सदस्यों का स्वास्थ्य गिर जाता है और अनुशासन कमजोर हो जाता है। ऐसे परिवार को पड़ोसी भी घृणा की दृष्टि से देखते हैं। अपराधी लड़कियों पर किये गये अध्ययन यह स्पष्ट करते हैं कि वे अधिकांशतः टूटे परिवारों से ही आती हैं। कुमारी इलियट के अध्ययन में 61% लड़कियां भग्न परिवारों की थीं और उनके माता-पिता के विरुद्ध अनैतिकता के आरोप थे।[3] कुमार लम्पकिन के भग्न परिवारों के अध्ययन में 82% और अभग्न परिवारों के 61% अपराधी बालक अनैतिक परिवारों के थे।[4] अनैतिक परिवारों मे बच्चों से यह अपेक्षा नही की जा सकती है कि वे समूह के मूल्यों और नैतिकता के अनुरूप आचरण करेंगे। माता-पिता के अभाव में बच्चों को वैयक्तिक सम्पत्ति की पवित्रता का ज्ञान भी नही हो पाता। यदि माता-पिता बच्चों की छोटी-छोटी चीजे चुराने की आदत पर उन्हें दण्ड नहीं देते, तो ऐसी दशा में चोरी को प्रोत्साहन मिलता है।

(3) अपराधी भाई-बहिन (Delinquent Siblings)—यदि परिवार ही अपराध के लिए उत्तरदायी हैं तो परिवार का सभी बच्चों पर समान रूप से प्रभाव पडना चाहिए। किन्तु हम जानते हैं कि यह बात सही नहीं है। प्रत्येक बच्चे का पारिवारिक पर्यावरण भिन्न होता है। माता-पिता का स्नेह सभी बच्चों को कई बार समान रूप से प्राप्त नहीं होता।

1 "Crime as such cannot be inherited" —Gillin, *Criminology & Penology*, p 119
2 Quoted by Hansa Seth, *op cit.*, pp 212-217.
3 M A. Elliot, *Correctional Education and the Delinquent Girls*, pp 26-28.
4 K. D. Lumpkin, *Factors in the Commitment of Correctional School Girls in Wisconsin*, American Journal of Sociology, 37-225-26 (Sept , 1931)

दूसरा बच्चा, पहले बच्चे (first born) की स्थिति ग्रहण करने के लिए प्रयत्न करता है। विभिन्न अध्ययन इस बात को प्रकट करते हैं कि बच्चों मे अपराधी प्रवृत्ति के लिए उनके भाई-बहिनों की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही। हीली और ब्रूनर के अध्ययन में 372 ऐसे परिवार थे जिनमें 2 बच्चे थे, उनमें 20% मामलों में दूसरा बच्चा अपराधी था, 333 ऐसे परिवार थे जिनमें 6 बच्चे थे। उनमें 12% परिवार के बच्चों ने अपराध किये। इलियट के पेनसिलवेनिया के अध्ययन में 31% लड़कियां अपराधी पायी गयी।[1] यह भी पाया गया कि भग्न परिवार में लड़कों की अपेक्षा लड़कियां अधिक अपराधी थीं। लड़कों में भगोडेपन एवं नियन्त्रणहीनता के दोष अधिक थे।

(4) सौतेले माता-पिता (Step Mother or Father)—सौतेले मां या बाप होने पर भी बच्चों को परिवार में जो स्नेह और प्यार मिलना चाहिए, वह नहीं मिल पाता। उनके प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया जाता है। परिणामस्वरूप बच्चे में ऐसे माता-पिता के प्रति विद्रोह की भावना उत्पन्न होती है और वह उनसे घृणा करने लगता है। वह परिवार के दूषित वातावरण से मुक्ति पाने के लिए घर छोड़ देता है और अपराधी बन जाता है। वर्मा के कानपुर और लखनऊ के अध्ययन में 9.33% अपराधी बच्चों के मां या बाप में से एक सौतेला था।[2]

(5) पक्षपात (Favouritism)—परिवार में पक्षपातपूर्ण व्यवहार होने पर भी बच्चो में निराशा और घृणा की भावना जन्म लेती है। यदि परिवार मे किसी बच्चे को विशेष सुविधाएं प्रदान की जाती हैं और दूसरों के प्रति भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जाता है तो ईर्ष्या एवं द्वेष का वातावरण बनता है, भाइयों में परस्पर मनमुटाव और संघर्ष उत्पन्न होता है। अधिक मार और डांट खाने वाला बच्चा परिवार में वयोवृद्ध लोगों का सम्मान करना बन्द कर देता है और उन लोगों की इच्छा के विपरीत कार्य करने लगता है। इस प्रकार भेदभावपूर्ण व्यवहार बच्चे मे अपराधी मनोवृत्ति को जन्म देता है।

(6) दोषपूर्ण अनुशासन (Defective Discipline)—परिवार में बच्चों पर बहुत अधिक नियन्त्रण होने पर वे कठोरता से बचने के लिए भागना चाहते है और ज्यों ही उन्हें अवसर मिलता है, वे उन कार्यों को करने लगते हैं जिनके लिए उन्हें मना किया गया है। कठोर नियन्त्रण से व्यक्तित्व का स्वाभाविक विकास भी रुक जाता है। वह अपनी दबी इच्छाओं की पूर्ति के लिए भी अपराध करता है। इसके विपरीत, बच्चों को अत्यधिक ढील देने एवं अंकुश न रखने पर भी उनमें स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति पैदा होती है। इकलौता पुत्र होने, सबसे छोटा पुत्र होने, कई लड़कियों के बीच एक ही लड़का होने, आदि स्थितियों में बच्चे को अत्यधिक लाड़-प्यार से रखा जाता है। परिणामस्वरूप ऐसे बच्चे का अहम् (Ego) कमजोर हो जाता है। वह अपनी 'इड' प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण नही रख पाता है और बिगड़ जाता है। पिता का माता पर या माता का पिता पर अधिक नियन्त्रण होने पर भी उनमें पारस्परिक टकराव होता रहता है जिससे बच्चों पर कुप्रभाव पडता है।

(7) गरीबी (Poverty)—कई अध्ययन इस बात को प्रकट करते है कि गरीबी ने बच्चों को अपराधी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व किये गये कई अध्ययनों से यह बात स्पष्ट होती है। यह भी देखा गया कि अपराधी बच्चे के

1 M. A. Elliott, *op. cit*, pp. 26-27.
2 S. C. Verma, *op cit.*, Quoted by Sushil Chandra, *op. cit*, pp 48-49

अदक्ष मजदूर थे या कम उम्र में ही कारखाने मे काम करने लग गये थे। अतः प्रलोभनों के सामने वे झुक जाते थे। निम्न सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति होने पर बच्चों में हीनता की भावना पैदा होती है। जोन्स के शब्दों में यह कहा जा सकता है कि "ज्यों-ज्यो आर्थिक स्तर निम्न होगा, त्यों-त्यों बाल-अपराध की दर ऊंची होगी।"[1] कहावत है बुभुक्षितं किं न करोति पापं अर्थात् भूखा क्या पाप नहीं करता। उसके लिए नैतिक आदर्श कोई मूल्य नहीं रखते हैं (A hungry stomach knows no morals)। गरीबी में परिवार अपनी मौलिक आवश्यकताएं, चिकित्सा एवं मनोरंजन की सुविधाएं नहीं जुटा पाता। ऐसी स्थिति मे माता एवं पिता दोनों ही नौकरी करने लगते हैं। माता-पिता के घर के बाहर रहने की अवधि में बच्चे आवारागर्दी करते हैं। उस समय उन पर कोई नियन्त्रण नहीं रह पाता। न्यूमेयर लिखते हैं, "जब पिता रात में काम करते हैं और माता दिन मे अथवा दोनों रात या दिन में काम करते हैं तो बच्चे प्रायः गलियों में ही काम करते हुए मिलते हैं।"[2] बच्चों की आवश्यकताएं जब परिवार में पूरी नहीं होती हैं तो वे बाहर चोरियां करने लगते हैं।

(8) **प्रकार्यात्मक अपर्याप्तता (Functional Inadequacy)**—जब परिवार में अनुपयुक्त रूप से कार्य होता है या उसकी संरचना ही दोषपूर्ण हो तो बच्चे के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं नैतिक विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है। बर्ट ने बताया है कि बुरे परिवारों में एक बात सामान्य रूप से सभी में यह पायी गयी कि वे शराब का प्रयोग करते थे। शराब परिवार की आर्थिक स्थिति कमजोर कर देती है, सदस्यों का स्वास्थ्य गिरा देती है तथा अनुशासन घटाती है। ऐसे परिवार को पड़ोसी भी घृणा की दृष्टि से देखते हैं।

(9) **बच्चे का तिरस्कार (Rejection of the Child)**—पोर्टर फील्ड[3] ने टेक्सास के अध्ययन में यह पाया कि बाल-अपराध के लिए माता-पिता द्वारा बालक का तिरस्कार एक महत्वपूर्ण कारण है। जहां माता-पिता और पड़ौसी बच्चे की वास्तव में सहायता व सुरक्षा करना चाहते थे, वहां ऐसे बालकों के विरुद्ध न्यायालय में बहुत कम ही मामले दर्ज किये गये। परिवार का असुखकर जीवन बच्चे के मानसिक सन्तुलन को इतना बिगाड़ सकता है कि वह अपराध करने लग जाय। जहां परिवार में निरन्तर तनाव एवं संघर्ष की स्थिति हो, वहां बच्चे के अपराधी होने के अधिक अवसर रहते हैं।

(10) **भीड़-भाड़युक्त परिवार (Over crowded Family)**—वर्तमान मे औद्योगीकरण के कारण शहरों की जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। शहरों में रहने की उचित व्यवस्था नहीं है। सारा परिवार छोटे-से मकान अथवा एक कमरे में रहता है। मकानों के ऊंचे किराये और आय की सीमितता के कारण निम्न एवं मध्यम वर्ग के लिए अधिक कमरों वाले मकानों को जुटा पाना प्रायः कठिन होता है। छोटे-छोटे घरों में बच्चों के खेल-कूद व मनोरंजन के लिए उपयुक्त स्थान का अभाव होता है। स्वयं माता-पिता भी चाहते हैं कि बच्चे घर से बाहर ही खेलें। अतः वे घर से बाहर निकल पड़ते हैं जहां नियन्त्रण के अभाव में वे अपराधी बालकों के सम्पर्क में आते हैं। ऐसे परिवारों मे गोपनीय स्थान का भी अभाव होता है। वहां

---

1 [illegible]

2 [illegible]

3 L. Poterfield, *Youth in Trouble*, Ch. 1.

शान्त वातावरण एवं एकान्त की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती। इन सभी का बच्चो के मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(II) व्यक्तिगत कारण (Personal Causes)

पारिवारिक कारकों के अतिरिक्त स्वयं व्यक्ति में ही ऐसी कमियां हो सकती हैं जिनसे कि वह अपराधी व्यवहार को प्रकट करें। व्यक्तिगत कारण इस प्रकार से हैं :

(1) शारीरिक कारक (Physical Factors)—कुछ विद्वान शारीरिक रचना को बाल-अपराध के लिए उत्तरदायी ठहराते हैं। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क रहता है। कमजोर, बीमार और अस्वस्थ बच्चे अपराध की ओर अधिक झुकते हैं। मस्तिष्क व शरीर का घनिष्ठ सम्बन्ध है। क्षीणकाय होने पर व्यक्ति में हीनता की भावना पैदा होती है जो आगे चलकर अपराध को जन्म देती है। सिरिल बर्ट के अध्ययन में 70% बाल-अपराधी किसी न किसी शारीरिक कमी से ग्रसित थे।[1] अपराधियों के बुरे स्वास्थ्य के लिए गरीबी एवं घर में उनकी देख-रेख का अभाव उत्तरदायी पाये गये। कमजोर दृष्टि, बहरापन, अशुद्ध उच्चारण, बच्चे के स्कूली जीवन को असफल बनाते हैं। ये कमियां उसकी मजाक का कारण बनती है और वह क्षतिपूर्ति के रूप में अपराध करता है। कमजोर स्वास्थ्य होने पर नियन्त्रण भी शिथिल हो जाता है।[2] नियन्त्रण का अभाव भी अपराध को जन्म देता है। हूटन ने विभिन्न प्रकार के शारीरिक दोषों का सम्बन्ध भिन्न-भिन्न अपराधों से बताया है।

अल्पकाल की बीमारी में व्यक्ति अपने भूतकाल के सुख के दिनों को याद करता और निराश होता है। लम्बी अवधि की बीमारी भी हीनता की भावना पैदा करती है। कमजोरी डर पैदा करती है और डर से धोखा देने की आदत एवं शर्म उत्पन्न होती है। बीमार व्यक्ति अपने को परिवार एवं मित्रों से पृथक हुआ महसूस करने लगता है। बीमारी के समय बीमार को फल एवं रस प्रदान किये जाते हैं जो स्वस्थ होने पर नहीं दिये जाते। ऐसी दशा में बच्चा उन्हें चुराने लगता है। शारीरिक अपंगता भी अपराध को जन्म देती है। इसी प्रकार से किसी अंग का कम या अधिक विकास व्यक्ति में हीनता की भावना उत्पन्न करता है जो अपराध के लिए उत्तरदायी है।

(2) मानसिक कारण (Psychological Factors)—मनोवैज्ञानिकों और मनोचिकित्सकों ने मानसिक असामान्यताओं को बाल-अपराध के लिए उत्तरदायी माना है। उन्होंने इसे एक कारक के रूप में माना और उसी रूप में दर्शाया है जैसा वे चाहते थे। मानसिक कारकों में मानसिक अयोग्यता तथा भावात्मक अस्थिरता और मानसिक संघर्ष अपराधी प्रकृति के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

(i) मानसिक योग्यता (Mental Ability)—ऐसा माना जाता है कि बाल-अपराधी मानसिक रूप से पिछड़े होते हैं। डा. गोडार्ड[3] ने बताया कि कमजोर मस्तिष्क अपराध के लिए उत्तरदायी है। हीली और ब्रूनर ने शिकागो के अध्ययन में 63% बाल-अपराधियों को ही स्वस्थ मस्तिष्क का पाया, शेष 37% मानसिक कमजोरी एवं बीमारी आदि से ग्रसित थे। कुमारी इलियट के अध्ययन में 41.5% लड़कियां मानसिक रूप से पिछड़ी हुई थी।[4] क्लेरा एफ. चासेस

1 Burt, *The Young Delinquent*.
2 "Poor health means poor control" —*Ibid*.
3 H. H. Goddard, *Feeble Mindedness, Its Causes and Consequences*.
4 Mabel A. Elliott, *op. cit.*, p. 30

ने कोलम्बिया विश्वविद्यालय से सन् 1935 में अपना एक लेख "दी रिलेशन बिट्विन मोरैलिटी एण्ड इण्टलेक्ट" प्रकाशित किया जिसमें यह दर्शाया कि कमजोर मस्तिष्क वाले परिवारों का झुकाव अपराध की ओर अधिक था। मानसिक पिछड़ेपन के कारण उनमें तर्कशक्ति का अभाव होता है। अतः वे शीघ्र ही अपराध की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं किन्तु जेलेनी[1] ने अनेक अध्ययनों की तुलना करने पर पाया कि बाल-अपराधियों की मानसिक क्षमता में कोई उल्लेखनीय कमियां नहीं थीं।

(iii) भावात्मक अस्थिरता और मानसिक संघर्ष (Emotional Instability and Mental Conflict)—मानसिक स्थिरता उच्च अनुकूलन का सूचक है। बर्ट ने अपने शोध में यह पाया कि अपराधियों में भावात्मक अस्थिरता एक महत्वपूर्ण प्रभावक रहा है। उन्होंने 48 1⁄5 बाल-अपराधियों को मानसिक रूप से अस्थिर पाया।[2] हीली और ब्रूनर ने भी 105 अपराधी बच्चों के अध्ययन में यह पाया कि वे मानसिक अस्थिरता एवं असुरक्षा से ग्रसित थे। अधिकांश बाल-अपराधियो में अपराधी भावना के लिए स्कूल के प्रति अनिच्छा, भेद-भाव की भावना तथा भाई-बहिनों एवं खेल के साथियो के प्रति असन्तोष आदि उत्तरदायी थे। मिरियम व वॉटर्स ने सन् 1925 में अपनी एक पुस्तक 'यूथ इन कानफ्लिक्ट' प्रकाशित की। उसमें आप यह लिखा कि घर, स्कूल एवं समुदाय का निरंकुश व्यवहार बच्चों में घृणा की भावना पैदा करता है और वे अपनी मानसिक आवश्यकताएं पूरी नहीं कर पाते।

(III) सामुदायिक कारक (Community Factors)

जिस समुदाय में बच्चा रहता है, यदि उसका वातावरण अनुपयुक्त है तो यह बालक को अपराधी बना सकता है। घर की बुरी दशा बच्चों के लिए असुखकारी और अवांछनीय होती है। गरीबी निम्न आर्थिक व सामाजिक दशा की सूचक है। पारिवारिक और सामुदायिक स्रोतों के अभाव में तथा खेल के स्थानों में घरों की अनुचित व्यवस्था के कारण अपराध पनपते हैं। गन्दी बस्तियों के स्थान पर योजनाबद्ध रूप से बसायी गयी बस्तियों मे (जिनमे खेल के मैदान और अच्छे मकान बने हुए थे) अपराध की दर घटी है। अमरीका में नयी बस्ती 'न्यूहेवन' में 317 नीग्रो परिवारों को बसाया गया था जहां सभी प्रकार की सुविधाएं थीं। जब इस नयी बस्ती की तुलना पुरानी बस्ती से की गयी तो पाया गया कि नयी बस्ती की तुलना में पुरानी बस्ती में अपराध दुगुने थे। नयी बस्ती में अपराध की दर में कमी भी उसी समय हुई जब 1940-44 मे अन्य सभी क्षेत्रो मे अपराध की दर बढ़ी हुई थी। इससे स्पष्ट है कि सामुदायिक वातावरण अपराध को घटाने व बढ़ाने में एक महत्वपूर्ण पहलू है। सामुदायिक कारकों में से कुछ प्रमुख का हम यहां उल्लेख करेंगे :

(1) मनोरंजन (Recreation)—मनोरंजन और बाल-अपराध के सह-सम्बन्ध का भी अध्ययन किया गया है। उचित मनोरंजन की सुविधा होने पर बाल-अपराध की दर में कमी आती है। खाली समय में जब बच्चा न तो स्कूल जाता है और न ही कोई काम करता है तो अपराध की ओर प्रवृत्त होता है जैसा कि कहा जाता है, "खाली दिमाग शैतान का घर होता है।" (Empty mind is devil's workshop)। बडे शहरों में माल रोड, सिनेमा-घर और पार्क आदि ऐसे स्थान होते है जहां मनोरंजन हेतु काफी लोग एकत्रित होते है। बच्चे

1 L. D Zeleny, *Feeble Mindedness and Criminal Conduct*, American Journal of Sociology, 38 : 564-578 (Jan , 1933).
2 Burt, *op cit*, pp 491-492

भी इन स्थानों पर अपना खाली समय व्यतीत करने पहुंच जाते है। ये स्थान अपराध के लिए सुविधाएं प्रदान करते हैं। मनोरंजन के लिए आये व्यक्ति मस्ती के आलम में रहते है और बेपरवाह हो जाते हैं। इसका लाभ उठाकर बच्चे चोरी एवं उठाईगीरी-करते है। सिनेमा में दिखाये जाने वाले मारधाड़, यौन-अनाचार, चोरी एवं डकैती के दृश्य बच्चों के कोमल मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव डालते है। चौकाने वाले एवं उत्तेजक दृश्य बच्चों को आकर्षित करते हैं। जब कभी अवसर आता है तो बच्चा अपराधी उद्देश्य के स्थान पर अपराधी विधियों को सीखता है। पार्क, खेल-कूद और मनोविनोद का अभाव थकान एवं ऊब को जन्म देता है जिससे दैनिक जीवन में असामान्यता पैदा होती है। शिकागो मे किये गये एक सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ कि बाल अपराधियों के लिए मनोरंजन की उचित व्यवस्था की गयी तो उनकी आदतों मे सुधार हुआ।

(2) स्कूल (School)—विद्यालय ज्ञान के मन्दिर हैं जहां मानवता ढाली जाती है। विद्यालय का अनुपयुक्त वातावरण होने पर बच्चे से अच्छा नागरिक बनने की अपेक्षा नही की जा सकती। विद्यालय ही बच्चो के लिए उचित सामाजिक जीवन व्यतीत करने हेतु उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत करता है। शिक्षा का बच्चे पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव पडता है। स्कूल का वातावरण, अध्यापकों का व्यवहार, स्कूल के साथी छात्रों व अध्यापकों के साथ सम्बन्ध, अध्यापकों की प्रभावहीनता, अध्यापक का घर में संघर्ष, उनकी असुरक्षा, बीमारी एवं प्रशिक्षण, पाठ्यक्रम की कठोरता, मनोरंजन एव आराम का अभाव, अयोग्य छात्रों की क्रमोन्नति, घर में अधिक काम तथा आलस्य, आदि कुछ ऐसे कारण है जो बच्चे के कोमल मस्तिष्क को प्रभावित कर उसे अपराधी या अयोग्य नागरिक बनाने में योग देते हैं। कम अंक प्राप्त करने या फेल होने पर बच्चों को स्कूल छुडवा दिया जाता है। बच्चों को जब अपने अपराधी माता-पिता के लिए स्कूल में छेड़ा जाता है तो उनमें हीन भावना पैदा होती है, वे स्कूल छोड़ देते हैं और आक्रामक व्यवहार अपनाते है। अशिक्षा अपराध को बढावा देती है।

(3) अपराधी क्षेत्र (Delinquency Area)—पडोस और अपराधी क्षेत्र मे निवास का भी अपराधी प्रवृत्ति से घनिष्ठ सम्बन्ध है। वेश्याओं के अड्डे, जुआरियों, चोरों, शराबियों और गुण्डों के पास निवास-स्थान होने पर बच्चों के अपराधी होने के अधिक अवसर रहते हैं क्योकि बच्चो में अनुकरण एवं सुझाव-ग्रहणशीलता अधिक होने के कारण अपराधी प्रवृत्तियो के सीखने की सम्भावना रहती है। क्लिफोर्ड शॉ और मैके ने यह बताया कि कई स्थान बच्चो को रखने की दृष्टि से सुरक्षित नही हैं। बाल-अपराधियों से सम्बन्धित अध्ययन इस बात को प्रकट करते हैं कि पड़ोस और स्थानीय दशाओं का अपराध से घनिष्ठ सम्बन्ध है। शॉ और मैके ने विभिन्न शहरों में बाल-अपराध की दरों में विचित्र समानताएं पायी। शहर के केन्द्र एवं व्यापारी क्षेत्र में अपराध अधिक होते हैं। ज्यों-ज्यों शहर के केन्द्र से परिधि की ओर जाते हैं अपराध की दर घटती है। हीली एवं ब्रूनर की मान्यता है कि अपराध के प्रचलित प्रतिमानों से प्रभावित होकर गन्दी बस्तियों के बच्चे अपराध करते हैं।

(4) साथी (Companions)—एक बच्चे को अपराधी बनाने मे उसके साथियो का भी योगदान होता है। अकेलेपन में अपराध सीखने के अवसर बहुत ही कम होते हैं और ऐसा भी मानसिक परिस्थितियों के कारण ही सम्भव है। विभिन्न विद्वानों ने अमरीका में साथियों के प्रभाव का अध्ययन किया।

उपर्युक्त आंकड़ो से स्पष्ट है कि बाल-अपराध में साथियों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। जब बच्चा समूह मे या गिरोह में सम्मिलित होता है तो उसकी वैयक्तिकता समूह में विलीन हो जाती है। बड़े शहरों में रेलवे स्टेशन, बाजार, सार्वजनिक स्थान और भीड़-भाड़युक्त स्थानों पर अपराधी बच्चों की गैंग इधर-उधर घूमती रहती है। अवसर मिलते ही ये लोग जेब काटने, चोरी करने एवं उठाईगीरी करने का काम करते हैं। एक बच्चा अपराध करने के बाद अपनी साहस भरी कहानी दूसरे बच्चों को सुनाता है तो उनके लिए यह प्रेरणा एवं उत्तेजना की बात होती है। साथियो के सम्पर्क से ही एक बच्चा धूम्रपान, शराबवृत्ति, चोरी, जुआ, आदि सीखता है।

(5) **युद्ध (War)**—युद्ध सामाजिक विघटन एवं विनाश उत्पन्न करता है तथा सामान्य पारिवारिक जीवन को नष्ट करता है। एल्सा कास्टेण्डिक ने बाल-अपराध व युद्ध का अध्ययन किया। वे लिखते हैं कि यूरोप में युद्ध के कारण बच्चों की शिक्षा बन्द हो गयी थी। बच्चों के माता-पिता युद्ध कार्य में व्यस्त थे, मां कारखाने में और पिता युद्ध स्थल पर। बच्चों की देख-रेख करने वाला कोई नहीं था। बम गिरने के समय शहर मे लूटपाट मच जाती थी। शान्ति के समय की अपेक्षा इस काल में लडकियो में यौन अपराध बढ़ गये थे। अमरीका मे भी युद्ध के दिनों में बाल-अपराध की दर 50% बढ़ गयी थी। युद्ध के दिनों में सबसे अधिक अपराध यूरोप में गरीबी बढने, मकानो की समस्या, भोजन की कमी और कीमतों के बढ़ने, आदि के कारण हुए थे। इस समय बच्चों का युद्ध-पूर्व नैतिक मूल्यों से अनुकूलन करना कठिन हो गया था।

(6) **अन्य कारण (Other Causes)**—उपर्युक्त कारणो के अतिरिक्त बाल-अपराध के लिए कुछ अन्य कारण भी उत्तरदायी है, जो इस प्रकार है :

(अ) **मूल्यों मे भ्रम (Confusion in Values)**—जब बच्चे के सामने विरोधी मूल्य होते है तो वह यह तय नहीं कर पाता है कि कौन-से मूल्य सही एवं अपनाने योग्य हैं। एक तरफ घर पर बच्चों को गुरुजनों एवं बडो का सम्मान करना सिखाया जाता है, दूसरी तरफ छात्र कॉलेजो में हड़ताल करते है। माता-पिता बच्चों को घर पर सच बोलने एवं चोरी न करने की शिक्षा देते हैं, दूसरी तरफ वही पिता ऑफिस में घूस लेता है, गबन करता है। इस प्रकार के विरोधी मूल्य होने पर बच्चा भ्रम मे पड़ जाता है और वही व्यववहार करने लगता है जो वह लाभप्रद समझता है।

(ब) **सांस्कृतिक भिन्नता एवं संघर्ष (Cultural Difference and Conflict)**—सैलिन ने अपनी पुस्तक '*Culture, Conflict and Crime*' में सांस्कृतिक भिन्नता को अपराध के लिए उत्तरदायी ठहराया है। जब भिन्न-भिन्न संस्कृतियां एक साथ हो या व्यक्ति एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में जाये तो वह दोनों में कई अन्तर देखता है, कई बार उनमें परस्पर संघर्ष पाया जाता है, इसका प्रभाव बालक के कोमल मस्तिष्क पर भी पड़ता है। वह अनिश्चय की स्थिति मे होता है और अपराध कर बैठता है।

(स) **जाति-व्यवस्था (Caste System)**—भारत में हुए अध्ययन इस बात का स्प संकेत करते हैं कि अपराध की दर अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं पिछड़े वर्गो मे अधिक । उनके प्रति बरता जाने वाला भेदभाव, छुआछूत उन्हें अपराध करने के लिए उग्र ब

देता है। भारत सरकार द्वारा किये गये एक अध्ययन में 45% बाल-अपराधी अनुसूचित जातियों व जनजातियों के पाये गये।[1]

(द) नैतिक पतन (Moral Degradation)—वर्तमान समय में राजनेताओं, व्यापारियों, सरकारी कर्मचारियों आदि का नैतिक पतन हुआ है। इसका प्रभाव बच्चों पर भी पड़ता है। वे भी उन्हें आदर्श मानकर उनकी तरह अनैतिक कार्यों में लग जाते हैं।

(य) स्वतन्त्रता में वृद्धि (Increased Freedom)—नवीन समाज व्यवस्था में नियन्त्रण शिथिल हुआ है, लोगों में स्वच्छन्दता बढ़ी है, अनैतिकता, हिप्पीवाद, व्यक्तिवाद, इच्छाओ में वृद्धि, यौन स्वतन्त्रता, आदि के कारण स्वतन्त्रता में वृद्धि हुई और बच्चे उन्मुक्त होकर अपराध करने लगे हैं।

(र) आर्थिक मन्दी (Economic Depression)—आर्थिक संकट एवं कुचक्र आज के युग की विशेषता है। ऐसी स्थिति आने पर व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता, मनोरंजन एवं शिक्षा की उचित व्यवस्था नहीं हो पाती, तब सुविधाएं जुटाने के लिए अपराध का सहारा लिया जाता है।

स्पष्ट है कि बालक को अपराधी बनाने में किसी एक कारक का ही हाथ नहीं होता है। शारीरिक एवं मानसिक रचना, पारिवारिक स्थिति, पड़ोस की दशाएं, मनोरंजन की व्यवस्था, साथियों का सम्पर्क एवं विभिन्न समूहों की सदस्यता तथा निवास की दशाएं आदि कारकों की सह-उपस्थिति ही बालक को अपराधी बनाने में योग देती है।

उपर्युक्त सभी परिस्थितियां बालक एवं बालिकाओं को समान रूप से प्रभावित करती हैं फिर भी दोनों में कुछ अन्तर है। लडकियों का कार्यक्षेत्र घर है अतः घर का प्रभाव उन पर अधिक पड़ता है, वे माता, पत्नी एवं बहिन की भूमिका निभाती हैं, दहेज, सास-ससुर एवं पति के व्यवहार का भी उन पर प्रभाव रहता है, पुरुषों की तुलना में उनका धर्म एवं रूढ़ियों से साधारणतः अधिक लगाव होता है। पुरुषों पर घर के बजाय बाह्य परिस्थितियों का अधिक प्रभाव पड़ता है।

(7) आवारागर्दी (Vagrancy)—आवारापन बाल-अपराध के लिए पृष्ठभूमि प्रदान करता है। 'आवारा' की परिभाषा करते हुए फेयरचाइल्ड लिखते है, "आवारा अप्रतिबन्धित यात्रा करने वाला दरिद्र व्यक्ति है।"[2] निरुद्देश्य सडकों पर इधर-उधर घूमने वाले एवं माता-पिता की बिना आज्ञा के घर से अनुपस्थित रहने वाले, वेश्याओं और जुए के अड्डे पर जाने वाले, रेलवे स्टेशन तथा सार्वजनिक स्थानों पर भीख मांगने एवं छेड़-छाड़ करने वाले बच्चों को आवारा कहा गया है। डॉ. श्रीवास्तव ने आवारा को इस प्रकार परिभाषित किया है, "एक बाल-आवारा 7 से 18 वर्ष की आयु का वह लड़का है जो अपने माता-पिता और संरक्षकों की बिना स्वीकृति के घर से बाहर रहता है और अपने व्यवहार में वैयक्तिक और सामाजिक विघटन के प्रतिमानों को प्रकट करता है।"[3] श्रीवास्तव ने आवारा बालकों को दो श्रेणियों में विभक्त किया है :[4]

1 *The Hindustan Times*, Feb. 20th, 1976.
2 Fairchild, H P, *Dictionary of Sociology*, p 331.
3 S. S. Srivastava, quoted by Sushil Chandra, *Sociology of Deviation in India*, p. 3
4 *Ibid.*, p. 3.

(i) फुटपाथ पर सोने वाले—जो गांवो और अन्य शहरों से आते हैं, वे खुले स्थानों, रेलवे स्टेशन आदि पर सोते हैं। श्रीवास्तव ने 300 वाल-आवाराओं का अध्ययन किया जिनमें से 57 इस श्रेणी के थे

(ii) द्वितीय श्रेणी 5 वाल-आवाराओं को उन्होंने 4 श्रेणियों में बांटा—

(क) जिनका शहर में मकान है पर उनका सम्वन्ध उससे नहीं है।

(ख) जिनका निजी मकान शहर में होने पर भी जो अधिकांश समय वाहर विताते हैं

(ग) शहर मे निजी मकान होने पर भी दिन-भर इधर-उधर घूमते हैं, वे रात को घर लौट आते है।

(घ) जो अनैतिक व अपराधी परिवारो से सम्वन्धित हैं। दूसरी श्रेणी के कुल 243 आवारा थे।

आयु के आधार पर सवसे अधिक 91 आवारा वालक 13 से 14 वर्ष की आयु के थे 42 7% आवारा वालक भग्न परिवारों के और 57.3% सामान्य परिवारों के थे। ये आवारा बालक अपना भोजन यात्रियों से भिक्षा मांग कर, होटलो और विश्राम-गृहों में छोटा-मोटा काम करके, रेलवे स्टेशन से कोयला एकत्रित कर दुकानदारो को वेचकर व चोरी करके प्राप्त करते थे। वच्चो में आवारागर्दी उत्पन्न करने के लिए अनेक सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियां उत्तरदायी हैं। इनमें से प्रमुख है—भिन्न-भिन्न परिवार, अनैतिक परिवार, सौतेले माता-पिता माता-पिता का घर से बाहर कार्य करना, गरीवी, नैतिकता का अभाव, निरीक्षण का अभाव एवं बुरी संगत मे फंस जाना, आदि।

इस प्रकार हम देखते है कि वाल-आवारा और वाल-अपराधी में कई समानताएं हैं आवारा वालक ही वडे होकर अपराधी के रूप में वदल जाते है। आवारापन में सुधार के लिए परिवार का उपयुक्त नियन्त्रण एवं उचित वातावरण, अच्छा पड़ोस, धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा परिवार की आर्थिक स्थिति में सुधार एवं स्वस्थ मनोरंजन की सुविधा, आदि आवश्यक हैं।

(8) **भगोड़ापन (Truancy)**—स्कूल से विना किसी सूचना के भागना ही कक्षा पलायन या भगोडापन कहलाता है। फेयरचाइल्ड के अनुसार, "यह वच्चे का वह अपराध है जिसमें वह विना किसी कारण के स्कूल से अनुपस्थित रहता है।"[1] राजनाथ खन्ना ने लखनऊ के म्युनिसिपल स्कूल मे भगोड़ेपन का अध्ययन किया। भगोड़ेपन को वे इस प्रकार से परिभाषित करते है, "एक भगोड़ा एक ऐसा वालक है जिसकी आयु 6 से 18 वर्ष है जिसका नाम स्कूल के रजिस्टर में दर्ज है, जो जान-बूझकर, इरादे से, अपनी कक्षा के मित्रों, स्कूल के साथियों या अन्य साथियो के प्रोत्साहन के कारण, स्कूल के समय स्कूल के भीतर या वाहर घूमता है या एक पीरियड या कुछ अधिक समय तक पढ़कर विना किसी उचित कारण के छुट्टी लिए घूमता है।"[2]

यह आवश्यक नही कि भगोड़े वच्चे पढ़ने में कमजोर होंगे ही। खन्ना ने अपने अध्ययन में पाया कि 51.3% ऐसे भगोड़े छात्र थे जो फेल नही हुए। 28.7% एक वार, 15.9% दो वार, 2.9% तीन वार, तथा 1.2% चार या अधिक बार फेल हुए थे। अतः हम यह नहीं कह सकते कि भगोडे वच्चे होनहार नही होते। खन्ना ने भगोड़ों को तीन भागों में बांटा है :

1 "The offence of a child is absenting himself from school without acceptable excuse —Fairchild, H. P., *Dictionary of Sociology*, p 324

2 R. N. Khanna, *Juvenile Truancy and the School*, quoted by Sushil Chandra, *op cit.*, p. 9.

देने की बात भी कही गयी। भाग 562 मे प्रथम-अपराधी को सजा से मुक्त करने की ब भी कही गयी यदि उसकी आयु 21 वर्ष से कम हो।

सम्पूर्ण भारत के लिए सन् 1876 में सुधारालय स्कूल अधिनियम (Reformatory School Act) बना जिसमें 1897 में पुनः संशोधन किया गया। यह अधिनियम भारत के अन्य स्थानो पर 15 एवं मुम्बई में 16 वर्ष के बच्चों पर लागू होता था। इस कानून में बाल-अपराधियो को औद्योगिक प्रशिक्षण देने की बात भी कही गयी थी।

20वीं सदी मे सामाजिक सुधार और अपराधी न्याय को प्रान्तो का विषय बना दिया गया। अब अखिल भारतीय स्तर के स्थान पर अलग-अलग प्रान्तों में बाल अधिनियम बने। सन् 1920 में चेन्नई मे, 1922 मे बंगाल में, 1924 में मुम्बई में, 1928 में दिल्ली में, 1941 में मैसूर में, 1945 मे पजाव में, 1949 मे उत्तर प्रदेश में और 1970 में राजस्थान में बाल-अधिनियम बने। सन् 1986 में बाल-न्याय अधिनियम बना जिसने अन्य सभी प्रान्तों में बने कानून का स्थान ले लिया और सभी राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों मे एक-सा नियम लागू हो गया। इस अधिनियम मे उपेक्षित बालकों तथा बाल-अपराधियो के लिए भिन्न-भिन्न तरीके अपनाने की बात कही गई है। बाल-अपराधियो को किसी भी हालत में दूसरे अपराधियों के साथ जेल मे रखने पर रोक लगा दी गई है। 'उपेक्षित बालको' को बाल-गृहो या 'अवलोकन-गृहों' में रखा जायेगा तथा उन्हें बाल-कल्याण बोर्ड के समक्ष लाया जायेगा जबकि बाल-अपराधियों को बाल-न्यायालय के समक्ष। इस अधिनियम मे कहा गया है कि बाल-अपराधियों के लिए विशिष्ट गृह बनाये जायं जिनमें उनके निवास, शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण और चरित्र निर्माण की समुचित व्यवस्था हो। राज्य सरकारों को चाहिए कि वे बाल-अपराधियो के कल्याण एवं पुनर्वास के लिए अलग से वित की व्यवस्था करें तथा एक सलाहकार बोर्ड बनाये इनके लिए 'गृह' बनाने, चलाने एवं आर्थिक साधन जुटाने के बारे में सुझाव दे। इस प्रकार सन् 1850 के बाद से बाल अधिनियम बनाकर समाज-विरोधी व्यवहार व्यक्त करने वाले बालको को प्रशिक्षण देने तथा कुप्रभाव से बचाने के प्रयास किये गये। उनके लिए दण्ड के स्थान पर सुधार को स्वीकार किया गया और यदि सम्भव हो सके तो उन्हें शीघ्र मुक्त करने की बात कही गयी।

बाल न्यायालय (Juvenile Court)

19वीं सदी तक बाल-अपराधियों के साथ युवा अपराधियों की तरह ही व्यवहार किया जाता था। सन् 1899 मे सर्वप्रथम अमरीका के इलिनोज राज्य के शिकागो शहर में बाल-न्यायालय की स्थापना की गयी। इस न्यायालय का मुख्य उद्देश्य यह था कि राज्य उन बच्चों को संरक्षण प्रदान करे जो अपने माता-पिता की लापरवाही के कारण अपराधी बन गये हैं। इन न्यायालयों में बाल अपराधियों की सुनवाई अनौपचारिक विधि से की जाती है। इनमें उनके प्रति बदले की भावना का अभाव होता है। इनके द्वारा बच्चे को संरक्षण एवं पुनर्वास की सुविधा प्रदान की जाती है, बालकों एवं नागरिकों के संवैधानिक अधिकारो की रक्षा की जाती है।

सेठना के शब्दों में, "बाल-न्यायालय, विशेष न्यायालय हैं जिनका उद्देश्य बाल-अपराधियो एवं बालकों जिन्हें संरक्षण की आवश्यकता होती है, को मदद और संरक्षण प्रदान करना है।"[1]

[1] "Juvenile courts are special courts for helping and protecting Juvenile Delinquents and children who need protection."
—Sethna, *op. cit.*, p. 351.

भारत के बाल-न्यायालय ब्रिटिश बाल-न्यायालयों के आदर्शों पर आधारित हैं और वे अमरीका की तरह सुधारात्मक के स्थान पर न्यायिक या अपराधी न्यायालय अधिक है। यद्यपि वे संरक्षकत्व (guardianship) के सिद्धान्तो को स्वीकार करते है फिर भी वे जापान की तरह के सामाजिक एवं व्यापारिक न्यायालय नहीं है। संरचना व प्रशासन की दृष्टि से बाल-न्यायालय भारत मे अपराधी न्यायालय के समान ही है। प्रशासन की दृष्टि से ये राज्य की न्याय व्यवस्था के अंग हैं। युवा-न्यायालयों के न्यायाधीशों मे से ही बाल-न्यायालय के न्यायाधीश भी नियुक्त किये जाते हैं जो सप्ताह मे एक या दो दिन बाल-न्यायालयों में भी सुनवाई करते हैं। बाल-न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय से जुड़े होते हैं और उनकी अपील युवा न्यायालयो मे की जा सकती है।

भारत में पहला बाल-न्यायालय 1922 में कलकत्ता में स्थापित किया गया। उसके बाद मुम्बई में 1927 में व चेन्नई में 1930 में स्थापित किए गये। इनके अतिरिक्त पूना, बेलगांव, नासिक, धारवाड़, बीजापुर, आदि शहरों में तथा कर्नाटक, महाराष्ट्र व गुजरात मे कई स्थानों पर बाल-न्यायालय हैं। मुम्बई में दो प्रकार के बाल-न्यायालय हैं—(i) विशिष्ट न्यायालय। (ii) वे बाल-न्यायालय जिन्हें मुम्बई बाल-अधिनियम के अन्तर्गत अधिकार प्राप्त हैं।

बाल न्यायालय मे एक प्रथम श्रेणी का मजिस्ट्रेट, एक या दो ऑनरेरी लेडी मजिस्ट्रेट, अपराधी बालक, उसके माता-पिता एवं संरक्षक, प्रोबेशन अधिकारी, साधारण पोशाक में पुलिस, कोर्ट का क्लर्क और कभी-कभी वकील भी उपस्थित रहते हैं। इनकी बैठक रिमांड होम मे साधारण तरीके से टेबुल-कुर्सी लगाकर की जाती है जिससे बच्चे को यह महसूस न हो कि वह अपराधी है। सुनवाई करने वालों और बच्चे के बीच अनौपचारिक बातचीत होती है। बाल-न्यायालय का सारा वातावरण इस प्रकार होता है कि बच्चे के मस्तिष्क से कोर्ट का आतंक और भय दूर हो जाय। ज्यों ही कोई बालक अपराध करता है तो पहले उसे रिमांड होम में भेजा जाता है और 24 घण्टे के भीतर उसे बाल-न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। उसकी सुनवाई के समय उस व्यक्ति को भी बुलाया जाता है जिसके प्रति बालक ने अपराध किया है। सुनवाई की कार्यवाही आम अदालतों की तरह ही होती है। इन न्यायालयों की कार्यवाही को अखबारों में छापने की मनाही होती है तथा गोपनीयता बरती जाती है। सुनवाई के बाद अपराधी बालकों को चेतावनी देकर, जुर्माना करके या माता-पिता से बॉण्ड भरवा कर उन्हें सौंप दिया जाता है अथवा उन्हें परिवीक्षा पर छोड़ दिया जाता है या किसी सुधार संस्था, मान्यता-प्राप्त विद्यालय, परिवीक्षा होस्टल आदि में रख दिया जाता है। भारत में 9 राज्यों में 100 से भी अधिक बाल-न्यायालय हैं। उनमे से महाराष्ट्र, गुजरात, चेन्नई, पश्चिमी बंगाल, आंध्र तथा दिल्ली प्रमुख हैं।

कुछ विद्वानों का मत है कि बाल-न्यायालय अधिक उपयोगी नहीं हैं क्योंकि इनमे अपराधियों को मुक्त कर दिया जाता है या कम दण्ड दिया जाता है। अतः अपराध को बढ़ावा मिलता है। कुछ लोग इनकी परम्परागत कार्य-विधि एवं बाल-अपराधियों के लिए संरक्षण की व्यवस्था के अभाव के कारण इन्हें उपयोगी नहीं समझते हैं।

(ब) सुधारात्मक संस्थाएं (Reformative Institutions)

बाल अपराधों को रोकने का दूसरा प्रयास सुधारात्मक संस्थाओं एवं सुधारालयों की स्थापना करके किया गया है जिनमें कुछ समय तक बाल-अपराधियों को रखकर प्रशिक्षण दिया जाता है। हम यहां कुछ ऐसी ही संस्थाओं का उल्लेख करेंगे :

रिमाण्ड होम या अवलोकन गृह (Remand Home or Observation Homes)

अपराध करने के पश्चात् जब पुलिस बच्चों को पकड़ लेती है तो सर्वप्रथम उन्हें रिमाण्ड होम मे ही रखा जाता है। जेल मे रखने पर बालक का सम्पर्क युवा-अपराधियों से होने से उसके अपराधी बन जाने की सम्भावना अधिक रहती है। जब तक बच्चे की अदालती कार्यवाही चलती है, उसे रिमाण्ड होम मे ही रखा जाता है। अनाथ और निराश्रित बच्चों एवं वयस्कों से पृथक किये गये अपराधियो को भी ऐसे गृहो में रखा जाता है।

रिमाण्ड होम मे प्रोबेशन अधिकारी बच्चे की पृष्ठभूमि, सामाजिक वातावरण तथा शारीरिक एव मानसिक दशाओ का अध्ययन करता है। यहां बच्चों को मनोरंजन, शिक्षा एव प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। ऐसे गृहो में बच्चे से सही सूचनाएं प्राप्त की जाती हैं जो वे न्यायाधीश के सम्मुख देने से घबराते हैं। भारत मे दिल्ली एवं अन्य 11 राज्यों में रिमाण्ड होम हैं, जिनमे महाराष्ट्र, गुजरात, मैसूर, आंध्र-प्रदेश, बिहार, कर्नाटक, केरल, उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, तमिलनाडु, आदि प्रमुख हैं। कहीं-कहीं पर जैसे गुजरात, दिल्ली, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आदि मे मनःचिकित्सको द्वारा भी बच्चो का अध्ययन किया जाता है। कहीं-कहीं पर लड़के व लडकियों के लिए अलग-अलग रिमाण्ड होम हैं। 1987 तक भारत मे 139 रिमाण्ड होम थे। इनमें रहने वालो में से 15 से 20 प्रतिशत ही बाल-अपराधी थे, शेष घर-रहित, अनाथ, उपेक्षित, आदि थे।

प्रमाणित विद्यालय (Certified School)

इन विद्यालयो में भी बाल-अपराधियों को रखा जाता है। यह एक प्रकार से औद्योगिक विद्यालय है जिन्हे राज्य की स्वीकृति प्राप्त होती है। पहले बाल-अपराधी को रिमाण्ड होम में रखा जाता है। परिवीक्षा अधिकारी उसके सामाजिक वातावरण एवं पृष्ठभूमि का अध्ययन करके न्यायालय के सम्मुख अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है। इस प्रतिवेदन को ध्यान मे रखते हुए यदि न्यायालय यह महसूस करता है कि उसे किसी सुधार संस्था में रखने की आवश्यकता है तो उसे इस विद्यालय में रखा जाता है। किसी भी बाल-अपराधी को कितने समय तक प्रमाणित स्कूल में रखा जाय, इस बारे मे अलग-अलग राज्यो के अपने-अपने नियम है। इस विद्यालय को छोड़ने से पूर्व उसे एक लाइसेन्स प्रदान किया जाता है और उसे किसी न किसी के संरक्षण में ही छोड़ा जाता है। अधिकांशत. 18 वर्ष की आयु मे बच्चे को रिहा कर दिया जाता है।

मुम्बई, हैदराबाद, चेन्नई, ट्रावनकोर-कोचीन, आदि स्थानों पर इस प्रकार के सरकारी और गैर-सरकारी विद्यालय है। इन विद्यालयों में बच्चों की शिक्षा एवं प्रशिक्षण का प्रबन्ध भी होता है। यहां बच्चो का उनके माता-पिता एवं समाज के साथ सामंजस्य कराने का प्रयत्न किया जाता है। उनके लिए व्यवसाय व नौकरी की खोज भी की जाती है।

बोर्स्टल स्कूल (Borstal School)

इस प्रणाली के जन्मदाता एल्विन रेगिल्स ब्राइस (Alwin Regils Brice) थे। सर्वप्रथम अमरीका के केण्टन प्रान्त में बोर्स्टल नामक स्थान पर इस प्रकार के स्कूल की स्थापना की गयी। सन् 1930 में बिना दीवार वाले बोर्स्टल विकसित हुए। बोर्स्टल एक स्थान है जहां किशोर अपराधियों को, जिनकी आयु 16 से 21 वर्ष हो, रखा जाता है। उन्हे वहां प्रशिक्षण एवं निर्देशन दिये जाते हैं तथा अनुशासन मे रखकर उनका सुधार किया जाता है। भिन्न-भिन्न ... मे इन स्कूलों मे अपराधियो को रखने का समय अलग-अलग है जो 2 से लेकर 5

वर्ष तक है। चेन्नई में 23 वर्ष की आयु तक एवं मुम्बई मे 23 वर्ष के बाद मे अपराधियों को इस संस्था में रखा जाता है। इस संस्था में उन्हीं अपराधियो को प्रवेश दिया जाता है जिनकी सिफारिश अदालत या जेल महानिरीक्षक ने की हो।

अवधि समाप्त होने, अच्छे आचरण का आश्वासन देने एवं भविष्य में अपराध न करने का वचन देने पर अपराधी को इस विद्यालय से मुक्त किया जाता है। यहां अपराधी को मुक्त वातावरण में रखा जाता है। उसकी शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं चारित्रिक क्षमताओ का विकास किया जाता है। उसमें उत्तरदायित्व एवं आत्म-नियन्त्रण की भावना का विकास किया जाता है। उसके लिए जिमनास्टिक, उद्योग-धन्धों के प्रशिक्षण एवं शिक्षा, आदि का प्रबन्ध किया जाता है। ये स्कूल अपराधी का समाज से पुनः सामंजस्य कराने मे योग देते है। एक बोर्स्टल स्कूल के अपराधियों को कई छोटे-छोटे समूहो में बांटा जाता है। प्रत्येक टुकड़ी का एक मॉनीटर होता है। उत्तम आचरण वाले को स्टार प्रदान किया जाता है। इन्हें वर्ष में 15 दिन तक घर जाने का अवकाश दिया जाता है। 1987 तक देश के केवल 9 राज्यों में बोर्स्टल स्कूल थे। तमिलनाडु, आंध्र, बिहार, महाराष्ट्र, केरल, कर्नाटक, पंजाब, मध्य प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश में बोर्स्टल स्कूल हैं। अलग-अलग राज्यों में इनकी क्षमता 100 से लेकर 350 तक पायी जाती है। 1987 तक 1,295 अपराधी बालक इन बोर्स्टल स्कूलों में रह रहे थे। पत्र लिखने, रिश्तेदारों से मिलने, मन पसन्द प्रशिक्षण पाने, बिना निगरानी के बाहर घूमने, आदि की इन्हें छूट होती है। वर्कशाप व मनोरंजन-कक्ष तथा भोजनशाला में काम करने एवं खेल-कूद प्रतियोगिताओं में भाग लेने आदि की भी इन्हें छूट होती है।

परिवीक्षा होस्टल (Probation Hostels)

न्यायालय जब किसी बाल-अपराधी को परिवीक्षण पर छोड़ता है और जब किसी बच्चे के माता-पिता या संरक्षक नही होते हैं तो उन्हें परिवीक्षा होस्टल मे रखा जाता है। ऐसे होस्टल में रहने वाले व्यक्ति को दिन में नौकरी करने एवं घूमने-फिरने की स्वतन्त्रता होती है किन्तु रात्रि को ठीक समय पर वापस यहां पहुंचना उसके लिए अनिवार्य होता है। होस्टल वार्डन इन लोगो की गतिविधियों की निगरानी रखता है।

किशोर बन्दीगृह (Juvenile Jail)

इस प्रकार की जेल बरेली में है जहां 21 वर्ष तक की आयु के अपराधियों को रखा जाता है। उन्हें जेल में शिक्षा एवं विभिन्न व्यवसायों का प्रशिक्षण दिया जाता है। उन्हें जेल से बाहर जाने एवं अध्ययन करने की छूट होती है। इनके लिए कैण्टीन तथा पंचायत की भी व्यवस्था होती है। पंचायत ही सफाई, भोजन एवं मनोरंजन आदि की व्यवस्था करती है। यहां बन्दियों की प्रगति का पूर्ण ब्यौरा रखा जाता है।

रिफोर्मेट्री स्कूल (Reformatory Schools)

इन स्कूलों में 16 वर्ष से कम आयु के उन बच्चों को रखा जाता है जो पहले सजा काट चुके हैं या जिन्होंने गम्भीर अपराध नहीं किये है। सर्वप्रथम इंगलैण्ड में सन् 1854 में रिफोर्मेट्री स्कूल अधिनियम बना। भारत में यह अधिनियम सन् 1897 में बना। इस अधिनियम के अन्तर्गत ऐसे व्यक्ति को किशोर अपराधी माना गया है जिसे कारागार या देश निष्कासन की सजा दी गयी हो और अपराध करने के समय मुम्बई में 16 वर्ष और अन्य राज्यों में 15 वर्ष से कम की आयु का हो। अलग-अलग प्रान्तों में इस प्रकार के स्कूलों में प्रवेश की

शर्तों में अन्तर है क्योंकि अधिनियम की धारा 8 की उपधारा 3 के अधीन राज्यो को अधिकार दिया गया है कि वे प्रवेश सम्बन्धी नियम बनायें।

इस प्रकार के विद्यालयों का उद्देश्य अपराधी बालक का सुधार और पुनर्वास करना है। इन स्कूलो में बच्चों का सुधार करके उनका समाज के साथ सामंजस्य कराया और प्रशिक्षण देकर उन्हें कमाने योग्य बनाया जाता है। इन स्कूलों में अपराधियों का अध्ययन भी किया जाता है। उन्हें शिक्षित किया जाता एवं विभिन्न व्यवसायों का उनकी रुचि के अनुसार उन्हें प्रशिक्षण दिया जाता है। इनके द्वारा निर्मित वस्तुओं को बाजार में बेचकर लाभ को उनके कोष में जमा किया जाता है। इन विद्यालयों में रेडक्रास, स्काउटिंग, कृषि, चमड़े का कार्य, खिलौने, दरी, निवाड़, रस्सी बनाने, बढ़ईगीरी, सिलाई आदि का काम सिखाया जाता है। यहां जिन बच्चों का काम अच्छा होता है, उन्हें वर्ष में 15 दिन तक घर जाने की छुट्टी भी दी जाती है। मुक्त होने के लिए इन्हें अर्जी देनी होती है। समय समाप्त होने पर या किसी अन्य उचित कारण के आधार पर अपराधी को मुक्त कर दिया जाता है। अधिकाधिक 7 एवं कम से कम 3 वर्ष तक अपराधियों को इन विद्यालयों में रखा जा सकता है। 18 वर्ष से कम आयु के बच्चों को सुधार विद्यालयो में नही रखा जाता। जबलपुर, हजारीबाग, लखनऊ, आदि में इस प्रकार के विद्यालय हैं। जेल अधिकारियों का पूर्णतः प्रशिक्षित न होना, मनोवैज्ञानिक ज्ञान का अभाव, विभिन्न प्रकार के व्यवसाय हेतु प्रशिक्षण की सुविधाओं का न होना तथा सुधारालय के जेल विभाग का ही एक अंग होना, आदि कुछ ऐसे कारक है जिनकी वजह से ऐसे विद्यालय अपने उद्देश्यो में पूर्णतः सफल नहीं हो रहे है। बाल-अपराधों की रोकथाम एवं बाल-अपराधियों के सुधार हेतु यह आवश्यक है कि बालकों को परिवार एवं स्कूल में स्वस्थ वातावरण प्रदान किया जाय, अपराध सम्बन्धी कारणों की सही खोज की जाय, तथ्यों का वैज्ञानिक आधार पर विश्लेषण किया जाय और अधिकारियों में अपने कार्य के प्रति पूर्ण निष्ठा और कर्तव्य-परायणता जागृत की जाय।

पोषण गृह तथा सहायक-गृह (Foster Homes and Auxiliary Homes)

पोषण गृहों में 10 वर्ष से कम आयु के बच्चों को रखा जाता है। ये ऐसे बच्चे होते है जिनके माता-पिता में विवाह-विच्छेद या परित्याग हो गया हो या जिनकी मृत्यु हो गई हो, अथवा लम्बे समय की कैद हो गयी हो। ऐसे बच्चे नियन्त्रण के अभाव में आवारागर्दी करते हैं तथा उनके भरण-पोषण की कोई व्यवस्था नहीं होती है। चूंकि 10 वर्ष से कम आयु के बच्चों को प्रमाणित स्कूलों में नहीं रखा जाता, इसलिए उनके लिए पोषण-गृहो की व्यवस्था की गयी है। ऐसे गृहों का उद्देश्य बाल-अपराध को रोकना है। इन गृहों का संचालन स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा किया जाता है और सरकार अपनी ओर से अंशदान प्रदान करती है। इस प्रकार के पोषण-गृह मुम्बई एवं चेन्नई में बहुत हैं। प्रमाणित स्कूलों एवं पोषण-गृहों से जुड़ी हुई संस्था सहायक-गृह है। पहले बच्चे को सहायक-गृह में रखने के बाद ही पोषण-गृह अथवा प्रमाणित स्कूलों में भेजा जाता है। इस संस्था में बच्चों की पृष्ठभूमि का अध्ययन किया जाता है। ये स्वयंसेवी संस्थाओं एवं सरकार दोनों के द्वारा चलाये जाते हैं। इनमें बच्चों को छोटा-मोटा औद्योगिक प्रशिक्षण, स्काउटिंग, प्राथमिक शिक्षा, संगीत, कृषि आदि के शिक्षण की सुविधाएं की जाती हैं। इस संस्था में रहने वाले अधिकतर बालक सामान्यतः अपराध नहीं दोहराते हैं।

उत्तर-संरक्षण संस्थाएं (After-care Institutions)

भारत में तमिलनाडु, महाराष्ट्र, बिहार एवं उत्तर प्रदेश में उत्तर-संरक्षण सेवाओं की व्यवस्था है। जब बच्चा किसी सुधार संस्था में छः माह तक रहता है और उस दौरान उसका व्यवहार अच्छा होता है तो जेल मुख्य निरीक्षक ऐसे बच्चों को उत्तर-संरक्षण संस्था में भेज सकता है। इन संस्थाओं में बच्चों के निवास, भोजन, स्वास्थ्य, चिकित्सा, शिक्षा, औद्योगिक प्रशिक्षण जैसे चटाई, टोकरी, रस्सी, दरी एवं निवाड़ बनाने; सिलाई, कताई व बुनाई, आदि सिखाने की व्यवस्था होती है। इन संस्थाओं का संचालन स्वयंसेवी संगठन करते हैं और केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड उन पर नियन्त्रण रखता है। एक पैरोल अधिकारी इनमें रहने वाले बच्चों की देखभाल करता है। इस प्रकार की संस्थाओं का उद्देश्य दण्ड की अवधि पूरी होने तक बच्चों की देख-रेख करना एवं उन्हें संरक्षण प्रदान करना है।

सुधार कार्यों का मूल्यांकन एवं सुझाव (Evaluation of Reformatory Measures and Suggestions)

विभिन्न देशों की भांति भारत में भी बाल-अपराधियों को सुधारने के लिए अनेक प्रयास किये गये है। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप बहुत कुछ सीमा तक बाल-अपराधियों का सुधार हुआ है, उन्हें संरक्षण मिला है एवं बाल-अपराध की पुनरावृत्ति में कमी आयी है। फिर भी इन प्रयासो में अभी बहुत कमियां हैं जिन्हें दूर करना आवश्यक है। हम यहां बाल-अपराधियों के सुधार के लिए किये गये प्रयासों की कुछ कमियों का उल्लेख करेंगे।

(1) भारत में बाल न्यायालयों की संख्या बहुत कम है और सामान्यतया बाल-अपराधियों को सामान्य न्यायालयों के सम्मुख ही पेश किया जाता है। इससे बालकों के मन में भय पैदा होता है और वे मानसिक सन्तुलन खो बैठते हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि अधिकाधिक बाल-न्यायालयों की सभी राज्यों में स्थापना की जाय।

(2) विभिन्न राज्यों में बाल-अपराधियों की आयु सीमा में भी अन्तर रहा है। कहीं यह 7 से 16 वर्ष तो कहीं 7 से 12 वर्ष और कहीं 7 से 21 वर्ष थी। वर्तमान मे सम्पूर्ण देश में समान नियम लागू है जिसके अनुसार लड़कों के लिए यह आयु सीमा 7 से 16 वर्ष तथा लड़कियों के लिए 7 से 18 वर्ष है।

(3) बाल-अपराधियों के सुधार की संस्थाओं का संचालन अधिकतर स्वयंसेवी संगठनों द्वारा किया जाता है। ये व्यापारी-संस्थाएं हैं, इन पर सरकार के नियन्त्रण का अभाव है, इनका उद्देश्य सेवा नहीं वरन् लाभ कमाना है। आवश्यकता इस बात की है कि इन संस्थाओं की देखरेख एवं नियन्त्रण सरकार द्वारा किया जाय।

(4) बाल-अपराधियों को सुधारने के कार्यक्रमों में लगे व्यक्ति सामान्यतः प्रशिक्षित नहीं होते। वे बाल-मनोविज्ञान तथा बाल-चिकित्सा से परिचित नहीं होते। अतः उनके द्वारा बालकों का उचित उपचार नहीं हो पाता। इसलिए इन संस्थाओं में मन-चिकित्सकों एवं समाजशास्त्रियों का सहयोग लिया जाना चाहिए।

(5) सुधार की जो सुविधाएं दी गयी हैं वे अधिकतर 16 वर्ष तक के बाल-अपराधियों के लिए ही हैं जबकि अधिकांश बाल-अपराध 16 से 21 वर्ष की आयु में किये

जाते हैं। अतः सुविधाओं का 21 वर्ष की आयु के अपराधियों तक विस्तार कि जाना चाहिए।

(6) बाल-अपराधियो के पुनर्वास की सुविधाओं का भी अभाव है। जब तक वे द भुगतते है उन्हे तब तक ही सुधार संस्थाओ का लाभ मिलता है। दण्ड की समाप्त होने के बाद उन पर किसी तरह का कोई ध्यान नहीं दिया ज परिणामस्वरूप वे पुनः अपराधी-कार्यों में लग जाते हैं। अतः उत्तर-संरक्षण मे वृद्धि तथा विस्तार किया जाना सभी दृष्टियो से आवश्यक है।

बालक अपराध की ओर प्रवृत्त नहीं हो, इसके लिए आवश्यक है कि बालकों को स्व मनोरजन के साधन उपलब्ध कराये जायं, अश्लील साहित्य एवं दोषपूर्ण चलचित्रो पर रोक लगायी जाय। बिगडे हुए बच्चों को सुधारने में माता-पिता की मदद करने हेतु बाल केन्द्र गठित किये जायं। बालको को बुरी संगति से बचाया जाय। साधारण अपराध करने वाले बालको को न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत करने के बजाय प्रशिक्षित प्रशासकीय अधिकारी के सम्मुख उपस्थित किया जाना चाहिए। ऐसे अधिकारी बच्चों के सुधार में काफी उपयोगी सिद्ध हो सकते है। साथ ही यह भी आवश्यक है कि बाल-न्यायालयो की संख्या में वृद्धि की जाय। छोटे बालकों के लिए नैतिक शिक्षा की व्यवस्था की जाय। गन्दी बस्तियों का सफाया किया जाय। गरीबी तथा बेकारी को दूर करने के भरसक प्रयास किये जायं।

प्रश्न

1 "बाल-अपराध विखण्डित परिवार की देन है।" इस कथन की भारतीय परिप्रेक्ष्य में व्याख्या कीजिए।

2 भारत में बाल-अपराध को रोकने के ठोस उपाय बतलाइए।

3. बाल-अपराध की परिभाषा दीजिए। भारत मे बाल-अपराध के प्रमुख लक्षण स्पष्ट कीजिए।
(राज., 1992)

4 बाल-अपराध क्या है ? भारत में बाल-अपराध के लिए उत्तरदायी कारणों की विवेचना कीजिए।
(अजमेर, 1989)

5. बाल-न्यायालय पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
(अजमेर, 1990, राज 1994, 95, 96)

6 अपराध की परिभाषा कीजिए। अपराध एवं बाल-अपराध मे भेद स्पष्ट कीजिए।

7 बाल-अपराध का अर्थ समझाइए। बाल-अपराध के पारिवारिक कारणो को स्पष्ट कीजिए।
(अजमेर, 1991, 97; राज., 1995)

8 भारत मे बाल-अपराध के सामाजिक कारणों की विवेचना कीजिए।
(राज., 1993)

9 अपराध एवं बाल-अपराध में अन्तर स्पष्ट करते हुए श्वेत वस्त्रधारी अपराध की व्याख्या कीजिए।
(अजमेर, 1993)
(अजमेर, 1994)

4

जनसंख्या समस्या एवं नियन्त्रण कार्यक्रम

[POPULATION PROBLEM AND PROGRAMMES OF CONTROL]

किसी भी देश की जनसंख्या का घनत्व, बनावट और गुण उस देश की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को प्रभावित करते है। उसकी प्रगति को निर्धारित करने में यह महत्वपूर्ण कारक है। किसी भी देश की जनसंख्या वहां पर उपलब्ध साधनों की तुलना में सन्तुलित होनी चाहिए। अनियन्त्रित जनसंख्या वृद्धि जनसंख्या विस्फोट के लिए उत्तरदायी है। जनाधिक्य साम्राज्यवाद, गरीबी, बेरोजगारी, अपराध, पारिवारिक कष्ट एवं विघटन को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में जन्म देने के लिए उत्तरदायी है। देश के आर्थिक विकास की गति में बढ़ती जनसंख्या बाधक रही है। इसने योजनाबद्ध विकास की गति को धीमा किया है। पिछड़े राष्ट्रों में तो जनसंख्या वृद्धि ने कई गम्भीर समस्याओं को जन्म दिया है जैसे श्रम शक्ति का बेकार होना, छात्र असन्तोष का बढ़ना तथा निर्धनता में वृद्धि होना, आदि। किसी भी देश के भविष्य निर्माण एवं उसे खुशहाल बनाने में वहां की जनसंख्या का महत्वपूर्ण योगदान होता है। जनसंख्या की कमी और अधिकता देश के उत्पादन, आवास-प्रवास, गर्भ-निरोध, आर्थिक विकास, राजनीतिक सम्बन्ध, नियोजित परिवर्तन, सरकार एवं समाज की नीति आदि को प्रभावित करते हैं। हम यहां भारतीय जनसंख्या की वृद्धि, उसको प्रभावित करने वाले कारक एवं उससे उत्पन्न समस्याओं एवं जनसंख्या वृद्धि को रोकने में परिवार कल्याण-कार्यक्रम की भूमिका आदि पर विचार करेंगे।

भारतीय जनसंख्या
(INDIAN POPULATION)

जनसंख्या की दृष्टि से भारत विश्व का दूसरा देश है और क्षेत्रफल की दृष्टि से सातवां। सामान्यतः पश्चिमी देशों की जनसंख्या घट रही है। वहां के राजनीतिज्ञ इस बात से चिन्तित हैं। वहां जनसंख्या वृद्धि के लिए प्रलोभन दिये जा रहे हैं। वहां जनसंख्या घटने के प्रमुख कारण हैं—विवाह की आयु में वृद्धि, जन्म निरोध, विवाहों की संख्या में कमी, आदि। दूसरी ओर भारत सहित एशिया और पिछडे व अविकसित राष्ट्रों में जनसंख्या बढ़ी है जिसने वहां की आर्थिक प्रगति को प्रभावित किया है।

भारत में लगभग 1 करोड़ 70 लाख लोगों की वृद्धि प्रतिवर्ष होती है। भारत की ह वर्ष की वृद्धि दर (1981-91) 23 85 प्रतिशत है। भारत में प्रतिवर्ष लगभग एक आस्ट्रे जितनी जनसंख्या बढ़ जाती है। अनुमान लगाया गया है कि 13.5 करोड़ बढ़ी हुई जनसं के लिए 1 35 लाख प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालय, 10 हजार हायर सैकन्ड्री स्कूल, 5 लाख प्राथमिक एवं माध्यमिक स्कूल अध्यापक, 1.5 लाख हायर सैकेण्ड्री स्कूल अध्याप 4000 अस्पताल, 1,500 प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र, अस्पतालों में मरीजो के लिए 2 ल पलंग, 50 हजार डाक्टर, 25 हजार नर्सें, 20 लाख मीटरी टन अनाज, 25,000 लाख मीट कपडा तथा 2.50 करोड़ मकानो की आवश्यकता होगी।

भारत मे विभिन्न दशकों मे हुई जनसंख्या वृद्धि को हम निम्न तालिका द्वारा स्प द सकते हैं :

भारत में जनसंख्या वृद्धि (1901-1991)[1]

वर्ष	जनसंख्या	दशक	जनसंख्या में प्रतिशत वृद्धि
1901	23,83,96,327		
1911	25,20,93,390	1901-10	5 75
1921	25,13,21,213	1911-20	–0 31
1931	27,89,77,238	1921-30	11.00
1941	31,86,60,580	1931-40	14 22
1951	36,10,88,090	1941-50	13.31
1961	43,92,34,771	1951-60	21.51
1971	54,81,59,652	1961-70	24 80
1981	68,33,29,097	1971-80	24 66
1991	84,63,02,688	1981-90	23.85

उपर्युक्त तालिका से 1901 से 1991 तक की भारत की जनसंख्या-वृद्धि के बारे मे महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की जा सकती है। 1911 से 1921 का समय भारत में जनसंख्या घटने का है क्योंकि इस समय महामारी, प्लेग, हैजा, आदि फैले जिन्होने हजारो लोगों की जाने लीं। 1921 से जनसंख्या बढ़ोत्तरी का समय प्रारम्भ होता है। 1931 से 1941 तक जनसंख्या लगभग स्थिर रही जबकि आगे की दशाब्दियों में वृद्धि दर ऊंची रही। 1931-41 की दशाब्दी एवं 1950-61 की दशाब्दी मे महत्वपूर्ण अन्तर है। 1947 में भारत-विभाजन के कारण एक बड़ी मात्रा में लोग पाकिस्तान से भारत आये जबकि पहले वाले जनसंख्या आंकड़ो में भारत व पाकिस्तान एक ही थे। 1961 में भारत की जनसंख्या 43 करोड़ थी जो 1991 मे बढ़कर 84.63 करोड़ हो गयी।

भारत में समय-समय पर जनसंख्या से सम्बन्धित आंकड़ो को कई प्राकृतिक प्रकोपो और युद्धों ने प्रभावित किया, जैसे 1918 में महामारी फैली, प्रथम व द्वितीय विश्वयुद्ध हुए, 1943 मे दुर्भिक्ष पडा, 1947 में भारत विभाजन हुआ, 1962 में भारत-चीन युद्ध हुआ, 1965 एवं फिर 1971 में भारत-पाक संघर्ष हुए। फिर भी ऊंची जन्म-दर एवं कई अन्य कारणों से जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ती रही। भारत का कुल क्षेत्र 32,80,483 वर्ग किलोमीटर । 1991 की जनगणना के अनुसार भारत का जनसंख्या घनत्व 273 व्यक्ति प्रतिवर्ग

...a, 1994, Govt. of India Publication, p 11.

किलोमीटर है। भारत एक विशाल भूखण्ड है जिसमें प्रान्तीय आधार पर जनसंख्या सम्बन्धी अनेक विषमताएं देखने को मिलती हैं। क्षेत्रफल की दृष्टि से मध्य प्रदेश सबसे बड़ा राज्य है परन्तु जनसंख्या की दृष्टि से उत्तर प्रदेश। 1991 में केरल में जनघनत्व 749, बंगाल में 767, नगालैण्ड में 73, राजस्थान में 129 और अरुणाचल प्रदेश में केवल 10 था। केन्द्र शासित प्रदेशों दिल्ली (6,352) और चण्डीगढ़ (5,632) में जनघनत्व अधिक था।

जनसंख्या के घनत्व को प्रभावित करने में जलवायु, वर्षा की मात्रा, भूमि की परत एवं बनावट तथा सुरक्षा के साधन आदि महत्वपूर्ण कारक हैं। 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में प्रति 1,000 पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या 927 है। 1991 में 74.3 प्रतिशत जनसंख्या गांवों तथा 25.7 प्रतिशत जनसंख्या नगरों में निवास करती है। 1991 की जनगणना के अनुसार देश में साक्षरता का प्रतिशत 52.21 है। पुरुषों में साक्षरता का प्रतिशत 64.13 तथा स्त्रियों में 39.29 है। राजस्थान में साक्षरता का प्रतिशत 38.55 है तथा पुरुषों में 54.99 एवं स्त्रियों में 20.44 है। सर्वाधिक साक्षरता का प्रतिशत केरल में 89.81 है। बाद में इसे शत प्रतिशत साक्षर घोषित कर दिया गया।

भारतीय जनसंख्या से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण पक्ष इस प्रकार हैं :

(1) भारत में प्रति मिनट 48 बच्चे जन्म लेते हैं।

(2) प्रति वर्ष भारत में 90 लाख व्यक्तियों की मृत्यु होती है।

(3) भारत में प्रति वर्ष करीब 1.7 करोड़ जनसंख्या बढ़ती है जो आस्ट्रेलिया की जनसंख्या के लगभग बराबर है।

(4) भारत में विश्व की 16% जनसंख्या निवास करती है। विश्व की सन् 1990-91 में जनसंख्या 4.43 अरब एवं भारत की 1991 में 84.63 करोड़ थी। इस प्रकार विश्व का प्रत्येक छठा व्यक्ति भारतीय है।

(5) भारत में सन् 2001 तक जन्म-दर यही बनी रही तो जनसंख्या 1.1 अरब हो जायेगी।

(6) भारत में सन् 1991 में प्रति हजार जन्म-दर 29.3 और मृत्यु-दर 9.8 थी। इस प्रकार 1981 से 1991 की दशाब्दी में यहां 23.85 व्यक्ति प्रति हजार के हिसाब से जनसंख्या बढ़ी है।

(7) सन् 1991 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या का 74.3 प्रतिशत भाग गांवों में और 25.7 प्रतिशत भाग शहरों में निवास करता है।

जनसंख्या वृद्धि को प्रभावित करने वाले कारक
(FACTORS AFFECTING POPULATION GROWTH)

किसी भी देश की जनसंख्या को घटाने या बढ़ाने में प्रमुखतः तीन कारक उत्तरदायी हैं : (1) जन्म-दर, (2) मृत्यु-दर, एवं (3) आवास-प्रवास। यदि जन्म-दर अधिक है और मृत्यु-दर कम है तो जनसंख्या बढ़ेगी और यदि जन्म-दर कम है और मृत्यु-दर अधिक है तो जनसंख्या घटेगी। इस प्रकार यदि दूसरे देशों से आने वाले लोगों की संख्या विदेशों में जाने वाले लोगों की तुलना में अधिक है तो जनसंख्या बढ़ेगी। इसके विपरीत स्थिति में जनसंख्या घटेगी। हम जनसंख्या निर्धारण में इन तत्वों का भारत के सन्दर्भ में उल्लेख करेंगे।

(1) जन्म-दर—भारत में अन्य देशों की तुलना में जन्म-दर अधिक है। जन्म-दर और मृत्यु-दर के आंकड़ों में पंजीकृत और अनुमानित आधारों पर अन्तर पाया जाता है

देश मे सभी जन्मने और मरने वालो के नाम रजिस्टर में पंजीकृत नहीं कराये जाते। विभि- दशको मे भारत मे अनुमानित जन्म-दर इस प्रकार थी :

दशक	जन्म-दर प्रति हजार
1921-30	46 4
1931-40	45 2
1941-50	39.2
1951-60	41.7
1961-70	41.1
1971-80	36 0
1981-90	29 3
1991-96	27.5 (अनुमानित)

भारत में जन्म-दर 29 3 व्यक्ति प्रति हजार प्रति वर्ष है जो कि विश्व के अन्य देशों की तुलना में चीन को छोडकर सर्वाधिक है। ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रो में भी जन्म-दर में भिन्नता है। शहरो की तुलना मे गांवों मे जन्म-दर अधिक है। यह भिन्नता प्रान्तीय आधार पर देखी जा सकती है, सबसे अधिक जन्म-दर असम की है और सबसे कम तमिलनाडु की।

किसी भी देश की जन्म-दर को प्रभावित करने में वहां की सामाजिक दशाओ, मृत्यु-दर, भ्रूणहत्या, बांझपन, वैयक्तिक स्वतन्त्रता, स्वास्थ्य की दशाएं, महत्वाकांक्षाएं आदि का महत्वपूर्ण योगदान होता है। भारत मे ऊंची जन्म-दर के अनेक कारण हैं जैसे—गर्म जलवायु, बाल विवाह का प्रचलन, मनोरंजन के साधनों का अभाव, संयुक्त परिवार प्रणाली, विवाह की अनिवार्यता, चिकित्सा सुविधाओ में वृद्धि, भाग्यवादिता, आदि। भारत में जन्म-दर को प्रभावित करने में शिक्षा, व्यवसाय, धर्म, ग्रामीण और शहरी निवास, जाति आदि कारकों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

(2) मृत्यु-दर—जन्म-दर की भाति ही मृत्यु-दर के पंजीकृत और अनुमानित आंकडो मे भी भिन्नता पायी जाती है। विभिन्न दशकों मे प्रति हजार व्यक्तियों पर भारत मे मृत्यु-दर इस प्रकार थी :

दशक	मृत्यु दर प्रति हजार अनुमानित
1921-30	36.3
1931-40	31.2
1941-50	27.4
1951-60	22 8
1961-70	18 9
1971-80	14 8
1981-90	9 8
1991-96	9.4 (अनुमानित)

जन्म-दर की तरह मृत्यु-दर भी भारत मे अन्य देशों की तुलना में अधिक है क्योंकि यहां स्वास्थ्य का स्तर और जीवन स्तर निम्न है, पौष्टिक आहार की कमी है तथा चिकित्सा ओ का अभाव है। इनके अतिरिक्त, यहां गरीबी और महामारी का प्रकोप भी रहा है।

1921 से पहले तीन दशकों में अकाल, प्लेग, इन्फ्लुएन्जा आदि के कारण मृत्यु-दर अधिक थी।1921 के बाद से प्रत्येक दशक में मृत्यु दर कम हुई। योजना आयोग का अनुमान था कि 1980 में यह घटकर 9.2 प्रति हजार प्रति वर्ष रह जायेगी। परन्तु वर्तमान में यह 9 8 व्यक्ति प्रति हजार प्रति वर्ष है। सबसे अधिक मृत्यु-दर चार वर्ष तक की आयु के बच्चो में पायी जाती है। आयु की दृष्टि से उस मृत्यु-दर को अच्छ मानते है जो बचपन और युवावस्था में कम तथा वृद्धावस्था में अधिक हो। सबसे अधिक मृत्यु-दर बिहार और असम मे है जबकि सबसे कम मृत्यु-दर केरल में है। भारत में अधिक मृत्यु-दर के लिए अनेक कारण उत्तरदायी हैं जैसे ग़रीबी, प्राकृतिक प्रकोप (भूकम्प, बाढ़, अकाल), संक्रामक रोग, भारत का पाकिस्तान व चीन के साथ युद्ध, औद्योगिक गन्दी बस्तियां एवं चिकित्सा सुविधाओं का अभाव, आदि।

मृत्यु-दर को कम करने के लिए आवश्यक है कि लोगों को समुचित मात्रा में चिकित्सा की सुविधाएं दी जायं, मातृत्व एवं शिशु कल्याण की संस्थाओ की स्थापना की जाय, शिक्षा का प्रसार किया जाय, जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने, सन्तुलित आहार देने एवं उद्योगों में स्वस्थ वातावरण का निर्माण करने हेतु प्रयत्न किये जायं।

(3) आवास प्रवास—आवास प्रवास भी जनसंख्या वृद्धि को प्रभावित करता है। प्राचीनकाल से ही पड़ोसी देशों से भारत में जनसंख्या का आवागमन रहा है और भारतीय व्यापारी, धर्म प्रचारक, आदि दूसरे देशों में जाते रहे हैं। कई भारतीय वर्तमान में व्यापार और उद्योग के कारण बर्मा, श्रीलंका, इण्डोनेशिया, मलाया, थाईलैण्ड, मॉरिशस, ब्राजील और अफ्रीकी देशों में जा बसे हैं। 1924 मे 29 लाख से अधिक भारतीय विदेशों में थे। किन्तु 1930 की मन्दी के कारण कई व्यक्ति पुनः स्वदेश लौट आये। वर्तमान मे लाखो व्यक्ति विदेशों में हैं। किंग्सले डेविस[1] ने भारत एवं पाकिस्तान की जनसंख्या के अध्ययन में बताया है कि 1926-30 में 32.98 लाख व्यक्ति भारत से विदेशों में गये और 24.57 लाख विदेशों से भारत मे आये। 1961 में भारत में कुल 2,95,624 विदेशी निवास कर रहे थे।

भारत में बाह्य देशान्तरण की तुलना मे आन्तरिक देशान्तरण कई गुना अधिक हुआ है जो विभिन्न ग्रामों, शहरों एवं प्रान्तों में परस्पर हुआ। देशान्तर गमन कई सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक समस्याएं पैदा करता है। भूमि का मूल्य, मजदूरी की दर, स्त्री-पुरुषों का अनुपात, अपराध, प्रशासन, आदि इससे प्रभावित होते है।

भारत में जन-विस्फोट
(POPULATION EXPLOSION IN INDIA)

हमने भारत की जनसंख्या-वृद्धि के विभिन्न दशकों के आंकड़ों का अवलोकन किया। साथ ही यहां की जन्म-दर, मृत्यु-दर एवं आवास-प्रवास के तथ्यों का विश्लेषण भी किया। ये सारे तथ्य इस बात के द्योतक हैं कि भारत में प्रतिवर्ष जनसंख्या-वृद्धि बड़ी तेजी से हो रही है जिसने हमारे आर्थिक विकास, प्रशासन, सामाजिक कल्याण, आदि को प्रभावित किया है। भारत आज विश्व में जनसंख्या की दृष्टि से दूसरे नम्बर का देश है। बढ़ती जनसंख्या ने हमारे यहां बेकारी और गरीबी में वृद्धि की है। इसलिए कहा जाता है कि भारत में जन-विस्फोट हो रहा है और यदि इसे समय रहते नियन्त्रित नहीं किया गया तो इसके भयंकर

1 Kingsley Davis, *Population of India and Pakistan*, p 99

परिणाम होगे। भारत मे इस जन-विस्फोट या दूसरे शब्दों में अनियन्त्रित जनसंख्या-वृद्धि के लिए अनेक कारक उत्तरदायी हैं।

भारत में अनियन्त्रित जनसंख्या वृद्धि (जन विस्फोट) के लिए उत्तरदायी कारण

(CAUSES OF UNCONTROLLED POPULATION GROWTH OR EXPLOSION IN INDIA)

भारत में अनियन्त्रित जनसंख्या वृद्धि के लिए उत्तरदायी कारण निम्नलिखित हैं :

(1) गर्म जलवायु—गर्म जलवायु के कारण यहां लड़कियों में शीघ्र ही परिपक्वता आ जाती है और वे कम उम्र मे ही सन्तान पैदा करने के योग्य हो जाती हैं। प्रजनन की प्रक्रिया के लम्बी अवधि तक चलते रहने के कारण अधिक सन्तानें जन्म लेती हैं।

(2) बाल विवाह—बाल-विवाह प्रथा के कारण छोटे-छोटे बच्चों का विवाह करवा दिया जाता है, अतः स्त्रियों के उत्पादन काल (15 से 35 वर्ष की आयु) का पूरा-पूरा उपयोग होता है। इस कारण से भी अधिक संख्या में सन्तानें जन्म लेती हैं। 1931 में 72% विवाह 15 वर्ष से कम की आयु में ही होते थे। लड़के व लड़कियों की विवाह की आयु में भी अन्तर है। लड़कियो की विवाह की औसत आयु सन् 1961 में 16.1 वर्ष, 1971 में 17.2 वर्ष, 1981 में 17.6 वर्ष थी, जबकि लड़कों की 1961 में 21.4 वर्ष, 1971 में 22.2 वर्ष तथा 1981 में 22.6 वर्ष थी। स्पष्ट है कि भारत में अधिकांश लड़कियों का विवाह उस उम्र मे हो जाता है जब वे सामाजिक, मानसिक और शारीरिक दृष्टि से विवाह के योग्य ही नहीं होती हैं।

(3) मनोरंजन के साधनों का अभाव—मनोरंजन के साधनों का अभाव होने के कारण निम्न वर्ग के लोगों और ग्रामीणों में स्त्री ही मनोरंजन का साधन समझी जाती है।

(4) संयुक्त परिवार प्रणाली—संयुक्त परिवार प्रथा के प्रचलन के कारण परिवार के वयोवृद्ध व्यक्ति अपने बेटों और पौत्रो का विवाह अपने सामने ही सम्पन्न होते देखना चाहते हैं। ऐसे परिवारों में बच्चों के लालन-पालन मे भी कोई कठिनाई नहीं होती। साथ ही बड़ा कुटुम्ब समाज में सत्ता, शक्ति एवं प्रतिष्ठा का भी सूचक माना जाता रहा है।

(5) अशिक्षा—शिक्षा के अभाव के कारण लोग जनसंख्या वृद्धि के परिणामों को नहीं समझते और अबाध गति से सन्तानों को जन्म देते हैं।

(6) निम्न जीवन-स्तर—निम्न जीवन-स्तर के कारण लोग यह सोचते हैं कि अधिक सन्तान होगी तो वे भी उत्पादन कार्य में लग कर अधिक धन अर्जित करेंगे और जीवन-स्तर को उन्नत कर सकेंगे। साथ ही यहां निम्न जीवन-स्तर के कारण सन्तानों की शिक्षा-दीक्षा, पालन-पोषण और ऐशो-आराम के लिए अधिक खर्च नहीं करना पड़ता है। अतः यदि परिवार में सन्तानों की संख्या बढती भी है तो किसी को कोई कष्ट नही होता।

(7) परिवार नियोजन के साधनों की जानकारी का अभाव—परिवार नियोजन के साधनों के प्रति पूर्ण जानकारी का अभाव एवं अरुचि भी जनसंख्या-वृद्धि के लिए उत्तरदायी है।

(8) विवाह की अनिवार्यता—विवाह की अनिवार्यता के कारण प्रत्येक भारतीय को अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए विवाह करना होता है। विवाह भारत मे एक संस्कार है और मनुष्य का आवश्यक कर्त्तव्य भी। अतः जब विवाह होगा तो उससे

आवश्यक परिणाम सन्तानोत्पत्ति होगी परन्तु विदेशों में विवाह करना बहुत कुछ व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर है।

(9) पुत्र प्राप्ति को अधिक महत्व—पुत्र को अधिक महत्व देने के कारण तब तक सन्तानोत्पत्ति होती रहती है जब तक कि कोई पुत्र नहीं हो जाय। धर्मशास्त्रों में मोक्ष प्राप्ति के लिए पुत्र की उत्पत्ति को आवश्यक माना गया है।

(10) चिकित्सा सुविधाएं—चिकित्सा की सुविधाओ के कारण भारत में मृत्यु-दर घटी है और जन्म-दर बढ़ी है।

(11) पश्चिम का प्रभाव—पाश्चात्य मूल्यों के बढ़ते प्रभाव के कारण स्त्री-पुरुषों में सहवास की स्वतन्त्रता बढ़ी है।

(12) चलचित्रो, अश्लील साहित्य, तड़क-भड़क एवं चुस्त पोशाक आदि ने यौन उत्तेजना पैदा की है।

(13) भाग्यवादी—भाग्यवादी होने के कारण भारतीय यह समझते हैं कि सन्तान ईश्वर की देन है और जिसने जन्म दिया है खाने को भी वही देगा। साथ ही वे जन्म-दर नियन्त्रण को पाप मानते हैं। इस्लाम धर्म में भी जन्म को अच्छा माना गया है। बाइबिल में भी अधिक जन्म को स्वीकार करते हुए लिखा है कि वृद्धि करो और पृथ्वी को लोगो से भर दो।

(14) जनहानि में कमी—युद्धों और शान्तिकाल में कुछ अपवादों को छोड़कर भारत में जनसंख्या की हानि बहुत कम हुई है। डॉ. चन्द्रशेखर का मत है कि पिछली पांच दशाब्दियों में भारत में कुछ अपवादों को छोड़कर मानव क्षति कम हुई है।[1]

(15) शरणार्थियों का आगमन—भारत में जनसंख्या वृद्धि का एक कारण पड़ोसी देशों से शरणार्थियों का आना भी है। 1947 में भारत विभाजन के कारण तथा दो बार भारत-पाकिस्तान के बीच हुए युद्धो के कारण भी पाकिस्तान एवं बंगला देश से हजारों शरणार्थी भारत आये। बंगलादेश से आये शरणार्थियों ने तो आसाम में विदेशियों की समस्या को जन्म दिया है। फरवरी-मार्च 1985 में श्रीलंका में तमिलों पर हुए अत्याचारों के कारण अनेक शरणार्थी भारत आये।

उपर्युक्त सभी कारणों ने मिलकर भारत में तीव्र जनसख्या-वृद्धि एवं जन-विस्फोट को प्रोत्साहित किया है।

क्या भारत में जनाधिक्य है
(IS INDIA OVER-POPULATED)

हमने पूर्व में जनसंख्या वृद्धि और उसके कारणों का उल्लेख किया। भारत में अन्य देशों की तुलना में गरीबी और बेकारी अधिक है। यहां इसलिए एक प्रश्न पैदा होता है कि क्या भारत में जनाधिक्य है? यह प्रश्न इसलिए भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि माल्थस ने कहा कि यदि मनुष्य बढ़ती जनसंख्या पर कृत्रिम रोक नहीं लगाता है तो प्रकृति क्रूर नियन्त्रण जैसे बाढ़, भूकम्प, अकाल, महामारी, आदि का प्रयोग करती है। भारत में भी समय-समय पर दुर्भिक्ष, युद्ध एवं अकाल की घटनाएं हुई हैं जिसमें मानव क्षति हुई है। भारत में जनाधिक्य को लेकर दो मत पाये जाते हैं : (1) निराशावादी, (2) आशावादी। हम दोनों मतों का यहां उल्लेख करेंगे।

1 Chandra Shekhar, *India's Population.*

निराशावादी दृष्टिकोण

इस मत के समर्थकों में राधाकमल मुखर्जी, ज्ञानचन्द, कार साण्डर्स, पी. के. दत्त, के. एस. डेविस, एस आर. सेन, आदि प्रमुख हैं। कुछ दशकों पूर्व तक भारत में जनाधिक्य नहीं था क्योंकि जनसंख्या बढ़ती भी थी तो बाढ़, भूकम्प, महामारी, आदि से सन्तुलित हो जाती थी परन्तु बाद मे परिस्थितियां बदलीं। सन् 1937 में बर्मा के भारत से अलग होने से चावल तथा गेहूं उत्पादन करने वाला क्षेत्र पृथक् हो गया। सन् 1947 में आजादी के बाद देश का बंटवारा हुआ तो भारत को 82% जनसंख्या मिली, लेकिन चावल पैदा करने वाले क्षेत्र का 68% व गेहूं पैदा करने वाले क्षेत्र का 65% भाग ही प्राप्त हुआ। इससे भी खाद्यान्न की कमी हुई। 1991 में भारत में 84 63 करोड़ लोग थे तथा यहां की जन्म-दर 29 3 व्यक्ति प्रति हजार थी। यहां वर्ष में लगभग 1.70 करोड जनसंख्या बढती है। पिछले 50 वर्षों में यहां जनसंख्या ढाई गुनी हुई है और यदि वृद्धि की यही गति रही तो सन् 2000 तक जनसंख्या चौगुनी हो जायेगी। भारत के पास विश्व की करीब 16% जनसंख्या है जबकि ससार का 2 4 प्रतिशत भू-भाग मात्र ही है। भारत में जनसंख्या की इस भयानक स्थिति को के. के. चक्रवर्ती जन-विस्फोट के नाम से पुकारते है। इसलिए एफ. ऑसबर्न ने कहा है, **"भारत का आन्तरिक शत्रु बढ़ती जनसंख्या है जिसके लिए भारतीय भूमि भोजन नहीं जुटा पाती है।"**[1] वे यह भी जानते है कि जनसंख्या की दृष्टि से भारत संतृप्ति विन्दु (Saturation point) तक पहुंच गया है। डब्ल्यू. बोगल का कहना है—**"जब तक इस बढ़ती जनसंख्या पर नियन्त्रण नहीं लगाया जाता तब तक मां भारती अपनी सन्तानों के लिए भोजन जुटाने में असमर्थ है। वह एक आदर्श मां नहीं रह गयी है।"**[2] भारत में जनाधिक्य को समझने के लिए निम्नलिखित तथ्यों पर विचार करना आवश्यक है :

भूमि का अनुपात—हमारे यहां अन्य देशों की तुलना मे प्रति व्यक्ति भूमि कम है और उससे अधिक लोगों का भरण-पोषण करना पड़ता है। हमारे यहां परिवार विभाजन के साथ ही कृषि-योग्य भूमि छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट जाती है और वह अनुत्पादक हो जाती है भूमिहीन श्रमिकों की संख्या दिनों-दिन बढ रही है। पहले भारत में प्रति व्यक्ति 0 85 एकड़ भू-क्षेत्र था जो घटकर अव 0.70 एकड़ रह गया है।

खाद्यान्न पूर्ति में कमी—हमारे यहां खाद्यान्नों की भी कमी है। अतः कई बार हमे बाहर से अनाज मंगाना होता है। सन् 1951 के बाद यहां जनसंख्या वृद्धि 2 50 की दर से हुई है जबकि खाद्यान्न क्षेत्र मे उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हुई है। अखाद्यान्न फसलों की अच्छी कीमत मिलने के कारण भी खाद्यान्न क्षेत्र घटा है। हर व्यक्ति को प्रतिदिन 16 औंस खाद्यान्न मिलना चाहिए। सन् 1951 में खाद्यान्न पूर्ति 12.8 औंस थी जो 1971 में घटकर 12.1 औंस ही रह गयी। 1981-82 में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 453.9 ग्राम और 1982-83 में 430 4 ग्राम खाद्यान्न मिलता था। यदि हम कैलोरीज में इसे व्यक्त करें तो 1980 मे प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 1880 कैलोरी प्राप्त हो रही थी जबकि अमेरिका में 3,658 कैलोरी, जापान में 2,912 कैलोरी एवं श्रीलंका में 2,238 कैलोरी देने वाला खाद्यान्न मिल रहा था।[3] अतः स्पष्ट है कि यहाँ जनसंख्या वृद्धि और खाद्यान्न पूर्ति में कोई सन्तुलन नही है।

1 "The internal enemy of India is too many people for the land to support."
—Osborn, quoted by J. De Castro, *Geography of Hunger*

2 W Vogal, *Road to Survival*, p 227

3 World Development Report, 1984, pp. 194-195.

भूमि की कम उत्पादकता—खाद्यान्न के अभाव का एक कारण भारत में भूमि की कम उत्पादकता भी है। इंगलैण्ड में भारत से चौगुना उत्पादन प्रति एकड़ होता है। भारत की तुलना में गन्ने की फसल हवाई में तेरह गुना, अमेरिका में ग्यारह गुना और क्यूबा में तीन गुना अधिक है। यहां प्रति एकड़ कम उत्पादन के कई कारण है, जैसे वैज्ञानिक पद्धति से कृषि न करना, उन्नत खाद व बीज का अभाव, सिंचाई के साधनों का अभाव, वर्षा की अनिश्चितता, भूमि का छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजन, ऋणग्रस्तता, दोषपूर्ण भूमि कानून, आदि।

निम्न जीवन-स्तर—गरीबी व निम्न जीवन-स्तर के कारण भूमि पर दबाव बढ़ता है। अन्य देशों की तुलना में यहां प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है। सम्पत्ति का वितरण भी असमान है। कई लोग भिक्षा द्वारा साधु-संन्यासी के रूप में जीवनयापन करते हैं। देश में जनसंख्या-वृद्धि 2.5% की दर से हुई है जबकि राष्ट्रीय आय मे वृद्धि 3% की दर से। भारत में प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पत्ति (GNP) 1981 में 260 डालर थी जबकि संयुक्त राज्य अमरीका में 12,820 डालर। 1989-90 के मूल्यों पर जहां 1980-81 में भारत में प्रति व्यक्ति औसत आय रु. 1,627 थी, वहां 1987-88 में यह रु. 3,284 थी।

उपभोग का ढांचा—भारत में 40 से 64 प्रतिशत खर्च खाद्यान्न पर होता है फिर भी लोगों को अपर्याप्त भोजन ही मिलता है। यहां दो-तिहाई भारतीयों को सन्तुलित भोजन उपलब्ध नहीं हो पाता।

बेकारी—हमारे यहां बेकारी व अर्द्ध-बेकारी अन्य देशों की तुलना में अधिक है। ग्रामीण क्षेत्र में लोग 4-5 महीने बेकार रहते हैं। प्रथम पंचवर्षीय योजना में 55 लाख व्यक्ति बेकार थे। सातवीं योजना में उल्लेख है कि राष्ट्रीय सेम्पल सर्वे के 38वें दौर के अनुसार 1985 में देश मे बेकारों की संख्या 92 लाख होने का अनुमान था। केन्द्रीय श्रम-मंत्रालय के आंकड़ो के अनुसार सन् 1992 में देश में बेरोजगार लोगों की संख्या करीब 2.30 करोड थी जिसके अगले वर्षों में (सन् 2001 तक) 9.40 करोड़ हो जाने की सम्भावना है।[1] वर्तमान में यहां करीब 5 करोड़ व्यक्ति बेकार हैं।

जनसंख्या निरोध का अभाव—बढ़ती जनसंख्या को रोकने के लिए अविवाहित रहना, देर से विवाह करना, आत्म-संयम रखना एवं ब्रह्मचर्य का पालन करना आवश्यक है परन्तु भारत में विवाह एक अनिवार्य संस्कार माना जाता है। यहां मां बनने की उम्र तक एक-चौथाई स्त्रियो का विवाह हो जाता है। देश के अधिकांश लोगों में निरोधक साधनों के प्रचलन की कमी के कारण जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ती जाती है।

उपर्युक्त सभी तथ्यों के सन्दर्भ में निराशावादियों का मत है कि भारत में जनाधिक्य है।

आशावादी दृष्टिकोण

दूसरी ओर सरदार पणिक्कर, कालिन क्लार्क तथा रणदीव आदि का मत है कि भारत में जनाधिक्य नहीं है। वे इसकी पुष्टि के लिए निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करते हैं :

(1) **कृषि उपज में कमी**—अन्य देशों की तुलना मे भारत में कृषि उपज कम है। इसका कारण है खेती करने के प्राचीनतम तरीकों का प्रचलन तथा कृषि के नवीन साधनों, उन्नत बीजों एवं खादों के प्रयोग का अभाव, आदि। यदि कृषि के क्षेत्र में वैज्ञानिक तरीकों का समुचित प्रयोग किया जाय तो उपज बढ़ायी जा सकती है। यहां हरित-क्रान्ति के परिणाम

1 राजस्थान पत्रिका, 14 मई, 1993.

अत्यन्त ही सन्तोषजनक रहे हैं। अतः उपज में वृद्धि होने पर जनसंख्या की ओर भार-स्वरूप नहीं रहेगी।

(2) **अखाद्यान्न पदार्थों का उपयोग**—भारत में अधिकांश लोग अन्न पर ही अपना जीवन व्यतीत करते है क्योंकि यहां अधिकतर लोग शाकाहारी हैं। यदि भोजन में मांस, मछली, अण्डे आदि का उपयोग बढाया जाय तो अन्न की समस्या हल हो सकेगी। भारत में कुल मछली पालन का लगभग 30% भाग का ही हम उपयोग कर पाते हैं। पिछले तीन दशकों मे खाद्यान्नो की वृद्धि दर 3.5% ही रही है,जबकि जनसंख्या वृद्धि दर 2.1% से 2.5% गयी। अत' माल्थस का सिद्धान्त खरा नहीं उतरता है।

(3) **जनसंख्या का कम घनत्व**—सन् 1991 की जनगणना के अनुसार भारत मे जनसंख्या का घनत्व 267 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। यदि हम इसकी तुलना इंगलैण्ड, बेल्जियम, जापान तथा जर्मनी से करे तो पायेगे कि वहां जनघनत्व भारत से ड्यौढ़ा एवं कहीं-कहीं दुगुना तक है। अतः यहां प्रति वर्ग किलोमीटर जनघनत्व बढ़ाने की बहुत अधिक सम्भावना है।

(4) **प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय मे वृद्धि**—प्रति वर्ष भारत की प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हो रही है। यदि भारत में जनाधिक्य होता तो ऐसा सम्भव नही था। डॉ. वी. के. आर वी राव ने सन् 1931 मे प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय 65 रु. बतायी थी। चालू मूल्यो के आधार पर 1950-51 में प्रति व्यक्ति आय 239 रुपए थी जो 1991-92 में बढ़कर 5,529 रुपए हो गयी। बढती हुई राष्ट्रीय आय के आंकडे यह स्पष्ट करते हैं कि भारत मे जनाधिक्य नहीं और आने वाले समय मे आय के बहुत अधिक बढाये जाने की सम्भावना है। ज्यों-ज्यों औद्योगीकरण बढ़ेगा एवं कृषि मे नवीन साधनो का प्रयोग होगा, प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि होगी। यद्यपि कुछ विद्वान इस वृद्धि को मुद्रा प्रसार एवं महंगाई के कारण मानते हैं। उनके अनुसार वास्तविक मुद्रा की क्रय शक्ति कम होने के कारण गिर गयी है।

(5) **जनसंख्या वृद्धि दर में कमी**—पश्चिमी देशों की तुलना में भारत मे जनसख्या-वृद्धि दर कम रही है। यदि हम अन्य देशो की तुलना करे तो ज्ञात होगा कि सन् 1881 से 1931 तक के 50 वर्षो मे अमेरिका में जनसंख्या वृद्धि दर 186%, जापान मे 74% तथा इंगलैण्ड में 54% थी,जबकि भारत में 39%। 1991 में भारत में जनसंख्या वृद्धि-दर 23.5% थी। अब इन देशों में इतनी वृद्धि-दर होने पर भी वहां जनसंख्या की समस्या नहीं है, तो फिर भारत में कैसे हो सकती है? पर यह तर्क उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि उन देशों में धनोपार्जन भी भारत की तुलना मे अधिक बढ़ा है और जीवन-स्तर में भी वृद्धि हुई है।

(6) **प्राकृतिक साधनो का अपूर्ण दोहन**—भारत प्राकृतिक दृष्टि से एक सम्पन्न राष्ट्र है परन्तु इसकी प्राकृतिक सम्पदा का पूर्ण रूप से दोहन नही हुआ है। इसलिए ही अधिकांश कहा जाता है कि भारत एक सम्पन्न राष्ट्र है जिसमें गरीब लोग निवास करते है। अत इस आवश्यक है कि जनसंख्या के वोझ को कम करने के लिए प्रचुर प्राकृतिक साधनों का पूर्ण तरह से दोहन किया जाय।

उपर्युक्त तथ्यो के आधार पर हमें यह नही मान लेना चाहिए कि वास्तव में भारत में जनाधिक्य नहीं है। वर्तमान में साधनों की सीमितता, देश में व्याप्त निर्धनता, बेकारी और निम्न जीवन-स्तर को देखते हुए कहा जा सकता है कि यहां वास्तव में जनाधिक्य है। यह सम्भव है कि भविष्य मे जव देश में उपलब्ध साधनों का पूर्ण उपयोग होने लगे तो जनाधिक्य की समस्या नही रहे।

जनाधिक्य के प्रभाव
(EFFECTS OF OVER-POPULATION)

भारत में वढती जनसंख्या या जनाधिक्य ने अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं प्रशासनिक कठिनाइयां पैदा कर दी है और देश के योजनावद्ध विकास मे वाधा उत्पन्न की है। जनाधिक्य के कारण उत्पन्न विभिन्न समस्याएं इस प्रकार हैं :

(1) जनाधिक्य और आर्थिक विकास—प्रो. कोलिन क्लार्क जनसंख्या-वृद्धि को देश के आर्थिक विकास के लिए हानिकारक मानते हैं क्योंकि वचत का अधिकांश भाग जनसंख्या पर खर्च होने से शुद्ध राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय बहुत ही कम रह जाती है। प्रो. विलार्ड की मान्यता है कि विकासशील राष्ट्रों की जनसख्या की वृद्धि-दर मे कमी होने पर आय में वृद्धि होती है क्योंकि इन देशों में आर्थिक परिस्थितियां विकास के अनुकूल नहीं हैं।

(2) जनसंख्या वृद्धि और पूंजी निर्माण—जनसख्या-वृद्धि के कारण प्रति व्यक्ति प्राकृतिक साधनो में भी कमी हो जाती है और उत्पादकता गिरती है। ऐसी परिस्थिति में पूंजी निर्माण का कार्य एक समस्या वन जाती है। जनाधिक्य वाले देशों में पहले से ही पूजीगत भण्डार मे वृद्धि करना असम्भव है क्योंकि वहां वचत नहीं हो पाती।

(3) जनसंख्या वृद्धि और खाद्य समस्या—जनसंख्या मे तीव्र वृद्धि होने पर पिछडे एवं विकासशील राष्ट्रों में जनसंख्या की मांग के अनुरूप पूर्ति नही हो पाती। अत: वहां भुखमरी की समस्या पैदा होती है और विदेशों से अनाज मंगाना पड़ता है। साथ ही सन्तुलित भोजन प्राप्त न होने के कारण लोगों का पर्याप्त शारीरिक एवं मानसिक विकास नही हो पाता है तथा अनेक वीमारियां पनपती हैं जिसके परिणामस्वरूप मृत्यु-दर में वृद्धि होती है एवं लोगों की कार्यक्षमता गिरती है।

(4) जनसंख्या एवं मूल्य वृद्धि—जनसंख्या के वढने से वस्तुओं की प्रभावपूर्ण मांग में भी वृद्धि हो जाती है किन्तु उसी मात्रा में पूर्ति न होने पर वस्तुओं की कीमतें वढ जाती है। महंगाई के कारण आम परिवार अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने मे असमर्थ रहते हैं।

(5) जनसंख्या-वृद्धि और शिक्षा—जनसंख्या-वृद्धि के साथ-साथ पिछडे राष्ट्रों में निरक्षरों की संख्या वढ़ने की सम्भावना रहती है। 5 से 14 वर्ष की आयु स्कूल जाने की है और यहां सर्वाधिक जनसंख्या भी इसी आयु समूह में आती है अतः जनसंख्या-वृद्धि शिक्षा के विस्तार की समस्या खड़ी कर देती है। इससे देश के लिए शिक्षा पर खर्च वढाना आवश्यक हो जाता है। तेजी से बढ़ती जनसंख्या को गुणात्मक दृष्टि से उत्तम प्रकार की शिक्षा सुविधाएं भी उपलब्ध नहीं करायी जा सकतीं।

(6) जनसंख्या-वृद्धि और आवास-समस्या—जनसंख्या-वृद्धि होने पर लोगों को वसाने और उनके लिए स्वास्थ्यप्रद मकानो की व्यवस्था करने की समस्या पैदा होती है। लोग काफी मात्रा में गांवों से शहरों में आते हैं तथा वहां गन्दी वस्तियों एवं आवास की समस्याओं को वढ़ाने में योग देते है। शहरों में बढ़ती जनसंख्या के कारण वहां विकास योजनाएं अस्त-व्यस्त हो जाती है। वहां पानी, विजली, सफाई, यातायात, प्रशासन, आदि की समस्याएं खड़ी हो जाती हैं।

(7) जनसंख्या-वृद्धि और बेकारी—वढ़ती जनसंख्या किसी देश मे वेकारी, अर्द्ध-वेकारी एवं छिपी बेकारी को जन्म देती है। जनसंख्या तो वढती है किन्तु उसकी तुलना में उपलब्ध

साधनों एवं पूंजी आदि की कमी के कारण अतिरिक्त श्रम की खपत नही हो पाती, फल
वेकारी वढती है।

(8) **जनसंख्या-वृद्धि एवं जीवन-स्तर**—परिवार मे जनसंख्या वढ़ने पर सीमित आय को ही सभी सदस्यो पर खर्च करना होता है। ऐसी स्थिति में सदस्यों के लिए भोजन, वस्त्र, शिक्षा, मनोरंजन, खेल-कूद आदि की सुविधाएं समुचित रूप से नही जुटाई जा सकती। अत: जनसंख्या की अधिकता निम्न जीवन-स्तर के लिए उत्तरदायी है।

(9) **जनसंख्या वृद्धि और गरीबी**—किसी देश में आवश्यकता से अधिक मात्रा में जनसंख्या मे वृद्धि होने पर गरीवी वढनी है। प्रत्येक देश मे प्राकृतिक साधन एवं भूमि सीमित मात्रा में होते है जिनका उपयोग अधिक जनसंख्या के लिए करने पर प्रति व्यक्ति साधनो की उपलब्धि कम हो जाती है। इसका प्रभाव राष्ट्रीय उत्पादन एव राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय पर भी पड़ता है। फलत: देश में सामान्य गरीवी वनी रहती है। इसी प्रकार से परिवार में भी सदस्यों की संख्या अधिक होने पर सभी सदस्यों के लिए सन्तुलित भोजन, वस्त्र, मनोरंजन, शिक्षा, आदि की व्यवस्था नहीं की जा सकती। वढ़ती जनसंख्या भिक्षा-वृत्ति को भी जन्म देती है।

(10) **जनसंख्या वृद्धि और अपराध**—जब किसी देश मे जनसंख्या वृद्धि तीव्र गति से होती है तो सभी के भरण-पोपण के लिए साधन जुटा पाना सम्भव नहीं होता। ऐसी दशा में देश मे गरीवी और वेकारी वढती है। साधनो के अभाव मे लोग अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए अपराध का सहारा लेते है, स्त्रियां वेश्यावृति अपनाती है तथा बच्चे अपराधी गिरोहों मे सम्मिलित हो जाते है। जनसंख्या-वृद्धि के कारण लूटपाट, हत्या, आगजनी, तोड़-फोड़, आन्दोलन, आदि होते है जो सामाजिक अशान्ति पैदा करते है।

(11) **जनसंख्या-वृद्धि एवं परिवार का विघटन**—परिवार में सदस्यों की संख्या वढ़ने पर नियन्त्रण की भी समस्या पैदा हो जाती है। माता-पिता परिवार के सदस्यों के भरण-पोषण की व्यवस्था के लिए घर से वाहर अर्जन करने चले जाते है तो बच्चे नियन्त्रण के अभाव मे मनमानी करने लगते हैं। उनमे उच्छृंखलता पनपती है, पारिवारिक मूल्यो की अवहेलना की जाती है, सदस्यो मे निराशा पैदा होती है और सत्ता की उपेक्षा होने लगती है। ये सभी परिस्थितियां परिवार में विघटन के लिए उत्तरदायी है।

(12) **जनसंख्या-वृद्धि और नागरिक समस्याएं**—जनसंख्या-वृद्धि औद्योगीकरण और नगरीकरण से सम्बन्धित अनेक समस्याओं को जन्म देती है। लोग गांव छोड़ कर शहरों की ओर आने लगते हैं। परिणामस्वरूप उद्योगो एवं नगरों द्वारा जनित सामाजिक समस्याएं पनपती है।

(13) **जनसंख्या-वृद्धि और राजनीति**—जनसंख्या-वृद्धि ने राजनीति को भी प्रभावित किया है। दो विश्वयुद्धों के अनेक कारणो में से एक कारण यह भी था कि जापान, इटली एवं अन्य देशों की जनसंख्या वढ़ रही थी। अत: वढ़ती जनसंख्या को वसाने के लिए दूसरे देशो पर आक्रमण किया गया। इस प्रकार जनसंख्या-वृद्धि युद्ध, साम्राज्यवाद, क्रान्ति, पूंजीवाद, आदि के लिए भी उत्तरदायी है। अधिक जनसंख्या प्रशासकों के सामने प्रशासनिक
स्याएं पैदा कर देती है।

जनसंख्या को नियन्त्रित करने के उपाय
(MEASURES TO CONTROL POPULATION)

भारत में जनसंख्या-वृद्धि ने अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याएं पैदा की हैं, अतः शीघ्रातिशीघ्र इस समस्या को हल करना आवश्यक है अन्यथा हमारे आर्थिक विकास की गति धीमी रहेगी और हमें जन-विस्फोट के परिणाम भुगतने होंगे। अलक घोष कहते है कि भारत में सावधानीपूर्वक जनसंख्या नियोजन की शीघ्र आवश्यकता है अन्यथा जनसंख्या-वृद्धि हमारी आर्थिक वृद्धि को समाप्त कर देगी।[1] अनुमान है कि इस शताब्दी के अन्त तक भारत की जनसंख्या 1 अरब हो जायेगी। अतः यदि जनसंख्या-वृद्धि पर रोक नहीं लगी तो भरण-पोषण की विकट समस्या खड़ी हो जायेगी। इसलिए बढ़ती जनसंख्या को रोकना आवश्यक है। इसके लिए निम्नलिखित सुझाव दिये गये हैं :

(1) **विवाह की आयु में वृद्धि**—जनसंख्या-वृद्धि पर रोक लगाने के लिए बाल-विवाह पर कठोर नियन्त्रण लगा दिया जाय तथा कानूनी रूप से विवाह की आयु बढ़ाकर लड़कियों की 21 वर्ष एवं लड़कों की 24 वर्ष कर दी जाय। अधिक आयु में विवाह होने से लड़कियों के प्रजनन काल का पूरा-पूरा उपयोग नहीं हो पायेगा और जन्म लेने वाली सन्तानों की संख्या कम होगी।

(2) **शिक्षा प्रसार**—अज्ञानता और गरीबी भी अधिक जनसंख्या के लिए उत्तरदायी है। लोगों को नियोजित परिवार के लाभों का ज्ञान करवाया जाय और शिक्षा संस्थाओं में यौन-शिक्षा प्रदान की जाय। शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ परिवार का आकार भी छोटा होगा क्योंकि शिक्षित दम्पति छोटे परिवारों के लाभों को ध्यान में रखते हुए स्वयं ही परिवार नियोजन हेतु साधनों को अपनाने के लिए प्रेरित होंगे।

(3) **गर्भपात**—बढ़ती जनसंख्या को रोकने के लिए गर्भपात की छूट दी जानी चाहिए। इसके लिए गर्भपात के नियमों को और अधिक उदार बनाया जाय। वर्तमान मे गर्भपात की छूट तीन परिस्थितियों में दी गयी है :

(क) जब गर्भ धारण करना मां के जीवन और स्वास्थ्य के लिए खतरा उत्पन्न करता हो।

(ख) जब अपंग सन्तान पैदा होने की सम्भावना हो।

(ग) मानवीय दृष्टिकोण से अर्थात जब किसी लड़की के साथ जबरन यौन सम्बन्ध स्थापित किया गया हो।

सन् 1971 के मेडिकल टर्मिनेशन ऑफ प्रेगनेन्सी एक्ट (Medical Termination of Pregnancy Act) के द्वारा राज्यों को यह अधिकार दिया गया है कि वे पंजीकृत डॉक्टरों को गर्भपात करने की आज्ञा प्रदान कर सकते है।

(4) **संयम**—जो लोग आत्म-संयम में विश्वास रखते हैं, वे जनसंख्या नियन्त्रण के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करने एवं आत्म-संयम रखने की सलाह देते हैं। किन्तु यह विधि कठिन है तथा सभी व्यक्तियों से इसकी अपेक्षा नही की जा सकती।

1 "Careful population planning is an urgent necessity in India or otherwise, population growth would tend to eat up economic growth in a marked manner."
—Alak Ghosh, *Indian Economy, Its Nature and Problems*, p. 175.

(5) मनोरंजन—मनोरंजन के साधनो में वृद्धि करके उन्हें सस्ते दर पर लोगों को उप[लब्ध] कराया जाय। ऐसा होने पर यौन-सम्बन्धी आनन्द को ही मनोरंजन का एकमात्र साधन न समझा जायेगा जिसके परिणामस्वरूप कुछ मात्रा में जनसंख्या नियन्त्रण हो सकेगा।

(6) भूमि व्यवस्था में सुधार—कई विद्वानों का विश्वास है कि यदि हमारी भूमि-व्यवस्था मे सुधार हो जाय तो जनसंख्या समस्या बहुत कुछ सीमा तक हल हो जायेगी। कानूनी रूप से तो जमींदारी प्रथा का उन्मूलन किया जा चुका है,परन्तु व्यवहार में अब भी यह किसी न किसी रूप मे विद्यमान है और इसी कारण किसानो की आर्थिक स्थिति दयनीय है। भूमि की चकबन्दी और उचित वितरण तथा कृषि मे वैज्ञानिक साधनो का प्रयोग आदि इस समस्या को हल करने में बहुत कुछ योग दे सकते हैं।

(7) औद्योगीकरण—कुछ विद्वानो ने औद्योगीकरण को जनसंख्या समस्या की रामबाण दवा माना है। भारत मे औद्योगीकरण का क्षेत्र विस्तृत है और काफी जनसंख्या इसमें खप सकेगी। जिस तरह से 19वी सदी में इंगलैण्ड और यूरोप में औद्योगीकरण और खाद्य-सामग्री के आयात ने बढती जनसंख्या की समस्या को हल किया था, वैसी ही सम्भावना भारत के लिए भी है। फिर भी भारतीय परिस्थितियो में सम्भवतः ये उपाय उतने कारगर सिद्ध न हों क्योंकि आज की और उन दिनों की परिस्थितियों में अन्तर है। औद्योगीकरण ने हमारे यहा कुटीर व्यवसायों मे लगे व्यक्तियों को काफी मात्रा में बेकार कर दिया है। भारत की अधिकांश जनसंख्या निर्धन है और उनकी औद्योगिक मांगें कम है। अतः औद्योगीकरण एवं जनसंख्या की समस्या परस्पर पूरक नही है।

(8) समाजवाद—रूस मे समाजवादी पुनर्निर्माण के कार्यक्रमो से प्रभावित होकर कुछ विद्वानो ने भारत मे भी समाजवाद को जनसंख्या समस्या के निवारण का अचूक इलाज मान्य है। अब तक रूस ने योजनाबद्ध निर्माण से जो प्रगति की है वह प्रशंसनीय है। वहां कृषि, विज्ञान, उद्योग एवं आर्थिक क्षेत्र मे तीव्र वृद्धि हुई है। साथ ही साथ जनसंख्या भी खूब बढ़ी है। वहां के समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ बढ़ती जनसंख्या को आर्थिक प्रगति के लिए आवश्यक मानते है। इसके लिए वहां कई प्रलोभन भी दिये जाते है। परन्तु भारत मे समाजवाद ही बढ़ती जनसंख्या के लिए एकमात्र साधन के रूप मे स्वीकार नहीं किया जा सकता। रूस का क्षेत्रफल भारत से आठ गुना है तथा दोनों देशों की परिस्थितियो में भी पर्याप्त भिन्नता है।

(9) देशान्तरण—प्रतिवर्ष भारत से लोगो को दूसरे देशों में भेजकर, उनके विदेश जाने को प्रोत्साहन देकर तथा विदेशी लोगों के आगमन पर रोक लगाकर भी जनसंख्या समस्या को हल करने का प्रयास किया जा सकता है। किन्तु इसमें कठिनाई यह है कि औसत भारतीय अपना देश छोड़कर बाहर जाना पसन्द नही करता क्योंकि सामाजिक-सांस्कृतिक भिन्नता एवं सामाजिक मूल्य इसमे बाधक हैं। अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और अनुकूल वातावरण के अभाव मे भी यह उपाय कारगर सिद्ध नहीं हो पायेगा। विदेश जाने का एक दुष्परिणाम भी सामने आया है कि विदेश जाने वाले लोगों में अधिकांशतः बुद्धिजीवी वर्ग के लोग जैसे प्राध्यापक, डॉक्टर, इंजीनियर तथा व्यवसायी है। परिणामस्वरूप देश मे उद्यमी एवं बुद्धिजीवी लोगो की कमी का खतरा उत्पन्न हो जाता है।

(10) परिवार नियोजन—जनसख्या नियन्त्रण के लिए सर्वाधिक उपयुक्त विधि परिवार नियोजन के साधनो का प्रयोग है। नियोजित परिवार के लिए कम सन्तानें और एक निश्चित

अवधि के पश्चात् सन्तानें होना अच्छा माना गया है। परिवार नियोजन के अन्तर्गत अवांछित गर्भ को रोकने, बन्ध्याकरण करने, सुरक्षित काल (safe period) का उपयोग करने एवं दवाओ, लूप, निरोध तथा जैली आदि के प्रयोग की सलाह दी जाती है। हम यहां परिवार नियोजन पर पृथक् से विचार करेंगे।

परिवार नियोजन (कल्याण)
[FAMILY PLANNING (WELFARE)]

बढ़ती हुई जनसंख्या को रोकने के लिए नियन्त्रण के अन्य साधनों की उपयोगिता मे तो शंका नही की जा सकती है,लेकिन क्या वे साधन वास्तव में इस ओर महत्वपूर्ण योगदान दे सकेंगे, यह दृढ़ता के साथ नहीं कहा जा सकता। अतः परिवार नियोजन जिसे आजकल परिवार कल्याण का नाम दिया गया है, ही एकमात्र कारगर साधन है जो बढ़ती जनसंख्या की समस्या को हल कर पायेगा। परिवार नियोजन का उद्देश्य गर्भ निरोधक साधनो का प्रचार एवं प्रसार करके जनता को उनका ज्ञान करवाना है जिससे कि विवाहित दम्पत्ति वांछित सन्तानों को ही जन्म दे सके तथा एक सुनियोजित एवं नियन्त्रित परिवार की रचना की जा सके। परिवार नियोजन कार्यक्रम का मुख्य लक्ष्य देश में अनुकूलतम जनसंख्या (optimum population) के स्तर को बनाये रखना है। अनुकूलतम जनसंख्या स्तर वह है जो देश मे अधिकतम उत्पादन, उच्च जीवन-स्तर, राजनीतिक स्थिरता, आर्थिक सुरक्षा, पर्याप्त स्वतन्त्रता और सांस्कृतिक मूल्यों को प्राप्त करने मे सहायता देता है।

परिवार-नियोजन के द्वारा जनसंख्या नियन्त्रण के लिए अनेक साधन अपनाये गये है जिनका उद्देश्य गर्भ-निरोध और गर्भपात है। इसमें से प्रमुख निम्न हैं :

(1) मौखिक गर्भ निरोधक गोलियां—इन्हे महीने में 20 दिन सेवन करना पडता है। भारत में इनकी कीमत अधिक होने तथा ग्रामीणों द्वारा इसे नियमित रूप से सेवन न कर पाने एवं गोलियों के अनुचित प्रभाव के कारण इनका प्रचलन अधिक नहीं हो पाया है।

(2) लूप—इसका उपयोग स्त्रियों के लिए किया जाता है।

(3) निरोध—ये पुरुषों के लिए सस्ते दामों और व्यापक मात्रा में प्रयोग के लिए उपलब्ध कराये गये है।

(4) कृत्रिम तरीके जैसे क्रीम, जैली, फेनिल गोलियां, आदि।

(5) बन्ध्याकरण ऑपरेशन।

(6) यौन-शिक्षा देकर।

(7) परिवार नियोजन सम्बन्धी ज्ञान के प्रसार द्वारा।

(8) गर्भपात।

भारत में परिवार नियोजन (कल्याण) की प्रगति
(PROGRESS OF FAMILY PLANNING)

भारत में 1952 से ही जनसंख्या नियन्त्रण एवं परिवार कल्याण के उद्देश्य से परिवार नियोजन कार्यक्रम का शुभारम्भ किया गया।

परिवार नियोजन पर प्रथम पंचवर्षीय योजना मे 14 लाख रुपये खर्च किये गये जो बहुत कम धनराशि थी। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में 2.16 करोड़ रुपये परिवार नियोजन पर खर्च किये गये। तृतीय पंचवर्षीय योजना में परिवार नियोजन पर 24 86 करोड रुपये, चतुर्थ

पंचवर्षीय योजना में 284.8 करोड़ रुपये, पांचवीं योजना में 408.98 करोड़ रुपये, छठी योजना में 1,800 करोड़ रुपये तथा सातवीं योजना में 3,250 करोड़ रुपये व्यय किये गये।

अप्रैल 1976 में जनसंख्या के बारे में नयी राष्ट्रीय नीति घोषित की गयी। इसकी महत्वपूर्ण बातें इस प्रकार से हैं :

(1) परिवार कल्याण से सम्बन्धित चिकित्सा सेवाओं तथा पुनर्जनन योग्य बनाने वाली सेवाओ की निःशुल्क व्यवस्था।

(2) माता और बच्चे के स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रम को महत्व देना।

(3) महिलाओं के शिक्षा-स्तर मे सुधार लाना।

(4) लड़कों की विवाह की आयु 21 वर्ष एवं लड़कियों की 18 वर्ष करना (जो की जा चुकी है)।

(5) राज्य सरकारों को दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता का 8 प्रतिशत भाग परिवार कल्याण कार्यो पर खर्च करना।

(6) जनसंख्या सम्बन्धी शिक्षा पर अधिक ध्यान देना।

(7) परिवार कल्याण कार्यक्रमो को बढ़ावा देने के लिए केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों द्वारा प्रचार माध्यमों का पूरी तरह प्रयोग करना।

(8) परिवार कल्याण कार्यक्रमों के लिए सरकार, स्वीकृत स्थानीय निकाय, स्वयंसेवी संगठनों, आदि को दान के रूप में दी जाने वाली राशि पर आय-कर में छूट।

(9) परिवार कल्याण कार्यक्रमों को बढ़ावा देने के लिए स्वयंसेवी संस्थाओं और संगठित क्षेत्र का अधिक अच्छे रूप में प्रयोग करना।

(10) प्रजनन, जीव-विज्ञान तथा गर्भ निरोध में अनुसन्धान पर विशेष ध्यान देना।

(11) भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के सभी मन्त्रालयों तथा विभागों को परिवार कल्याण कार्यक्रम से सम्बद्ध करना

(12) राज्यों में परिवार कल्याण कार्यक्रम का गठन और सावधानीपूर्वक प्रचार तथा केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल द्वारा स्थिति की समीक्षा करना।

नयी जनसंख्या नीति के अन्तर्गत परिवार नियोजन के विभिन्न कार्यक्रमों की प्रगति को हम इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं :

(1) **बन्ध्याकरण** (Sterilization)—वन्ध्याकरण का कार्यक्रम पहले भी चल रहा था किन्तु इसकी महत्वपूर्ण उपलब्धि 1976-77 मे रही। वर्ष, 1993-94 में 32.77 लाख नसबन्दी आपरेशन किये गये।

(2) **लूप तथा निरोध** (Loop and Nirodh)—लूप का प्रयोग चतुर्थ पंचवर्षीय योजना से ही विशेष रूप से किया जाने लगा। वर्ष, 1993-94 में 42.94 लाख *IUD* Insertion किये गये। 'न्यू शेयर' और 'रक्षक' नाम से निरोध बाजार में उपलब्ध है।

(3) **गर्भ निरोधक गोलियां** (Oral Pills)—खाने की गर्भ-निरोधक गोलियों का वितरण शहरी केन्द्रों, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों एवं स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा किया गया। ये गोलियां 'माला-डी' (Mala-D) के नाम से बेची जाती है।

(4) **गर्भ समापन** (Termination of Pregnancy)—इस कार्यक्रम के प्रारम्भ होने से सितम्बर 1993 तक 90.6 लाख गर्भपात किये गये हैं। इस कार्य के लिए विभिन्न चिकित्सा...ओं एवं अस्पतालो में 60 प्रजनन विशेषज्ञों को विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O) के

द्वारा आधुनिक तकनीकी प्रशिक्षण दिया गया है। 166 अन्य अस्पतालों में भी यह सुविधा प्रदान की गयी है। भारत में 18 केन्द्रों पर इस सम्बन्ध में अनुसन्धान की व्यवस्था की गयी है।

(5) प्रेरणा तथा शिक्षा (Motivation and Education)—भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम पूर्णतः स्वैच्छिक है। शहरों तथा गांवों में रहने वाले 15.20 करोड़ प्रजनन योग्य दम्पत्तियों तक इस कार्यक्रम को पहुंचाने के लिए व्यापक जनशिक्षण एवं प्रेरणा का कार्य चलाया जा रहा है। इसके लिए रेडियो, समाचार-पत्र, फिल्म, दूरदर्शन, गीत, नाटक आदि के द्वारा प्रचार का कार्य किया जा रहा है। स्कूलों में एवं स्कूल के बाहर प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रमों में जनसंख्या शिक्षण को जोड़ दिया गया है। श्रम संघों, सहकारी समितियों, पंचायतों एवं स्थानीय संगठनों की भी इस कार्य मे सहायता ली जा रही है। जिला स्तर के अधिकारियों, चिकित्सा अधिकारियों, शिक्षकों एवं अन्य लोगों को परिवार कल्याण का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। 10 लाख लोगों को इससे सम्बन्धित साहित्य, पुस्तकें एवं पत्र-पत्रिकाएं भेजी जाती है। विभिन्न राज्यों में 16 अनुसन्धान केन्द्रों की स्थापना की गयी है जो परिवार नियोजन के बारे में नवीन जानकारी एवं साधन खोजते हैं।

सन् 1979 से एक अन्य कार्यक्रम यह चल रहा है कि अस्पतालों में प्रसव या गर्भ समापन के लिए आयी हुई महिलाओं को ऑपरेशन कराने हेतु प्रेरित किया जाता है। इसके अलावा मातृत्व तथा बाल-स्वास्थ्य सेवाओ को परिवार कल्याण कार्यक्रम का एक अनिवार्य अंग बना दिया गया है।

कार्यक्रम का प्रभाव (Impact of Programme)

सन्तानोत्पति करने योग्य करीब 15.20 करोड़ दम्पतियों में से, जिनकी पत्नियों की आयु गर्भ धारण योग्य अर्थात 14 से 44 वर्ष के बीच थी, 43.4 प्रतिशत परिवार कल्याण के किसी न किसी अनुमोदित तरीके द्वारा मार्च 1993 तक सन्तानोत्पत्ति से बच पाये। अनुमान है कि मार्च 1993 तक के कार्य के फलस्वरूप 15.56 करोड़ जन्म रोके गये। परिवार नियोजन कार्यक्रम अपनाने वालों की संख्या प्रति वर्ष बढ़ रही है। 1985-86 में 18.92 करोड़ लोगों ने इसे अपनाया था जबकि 1990-91 में 27.26 करोड़ लोगों ने इससे लाभ उठाया।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में परिवार नियोजन कार्यक्रम पर 3,250 करोड़ रुपये खर्च किये गये। इस योजना मे 'दो बच्चों' के लक्ष्य को प्राप्त करने एवं गर्भधारण करने वाले दम्पत्तियों में से 42% को सुरक्षा प्रदान करने के विशेष प्रयास किये गये। इस प्रयास से सन् 2000 तक जन्म-दर घटकर 21 प्रति हजार और मृत्यु-दर 9 प्रति हजार तथा शिशु मृत्यु-दर 60 प्रति हजार हो जायेगी। कारगर दम्पत्ति सुरक्षा दर 60 प्रतिशत तथा जन्म के समय प्रत्याशित आयु 64 वर्ष होगी। वर्तमान में देश में 21,040 प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र, 1,31,471 उप-केन्द्र तथा 2,297 सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र हैं जो लोगों को परिवार कल्याण सम्बन्धी सुविधाएं प्रदान कर रहे हैं। इस कार्य में अनेक स्वैच्छिक संगठन भी लगे हुए हैं। चीन ने इन कार्यक्रमों के कारण नगरों में एक जोड़े पर एक बच्चा एवं ग्रामों में एक जोड़े पर 2 बच्चों का लक्ष्य प्राप्त कर लिया है। जो इन नियमों का पालन करता है उसे कई प्रोत्साहन एवं नियमों को तोड़ने वाले के लिए दण्ड की व्यवस्था की गई है। नियोजित बच्चे के लिए 14 वर्ष तक की आयु तक शिक्षा एवं पालन-पोषण की व्यवस्था सरकार द्वारा की जाती है। ऐसे

विवाहित जोड़ों को मकान बनाने या मशीनरी लगाने हेतु जमीन दी जाती है। चीन में दे से विवाह करने एवं देर से सन्तानोत्पति के लिए भी प्रोत्साहन दिया जाता है।

परिवार नियोजन कार्यक्रम का मूल्यांकन (EVALUATION OF THE FAMILY PLANNING PROGRAMME)

भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम 1952 में प्रारम्भ हुआ और अब तक इसे लगभ 45 वर्ष पूरे हो चुके। इस अवधि मे विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा करोड़ो रुपये इ कार्यक्रम पर खर्च किये गये। परिवार नियोजन की सर्वाधिक उपलब्धियां 1975 एवं 1976 के वर्षों मे रहीं। इसका कारण यह है कि उस समय देश में आपातकालीन स्थिति की घोषणा की गयी थी। इस दौरान ज्यादतियों एवं जबरन नसबन्दी, आदि के कारण निर्धारित लक्ष्यों से भी ज्यादा की प्राप्ति की गयी। दुर्भाग्यवश इस दौरान बूढ़ो, विधुरों, कुंवारों, पागलों, साधुओं एवं सन्तानोत्पत्ति करने के अयोग्य व्यक्तियों तक का ऑपरेशन कर दिया गया। यह सब दबाव एवं उत्पीडन की स्थिति मे हुआ, स्वैच्छिक रूप से नहीं। अतः इन वर्षों की उपलब्धि को परिवार नियोजन मे भारतीयो की बढ़ती रुचि का सूचक नही माना जा सकता और न ही इसे परिवार नियोजन कार्यक्रम की सफलता कहा जा सकता है। स्पष्ट है कि परिवार नियोजन का कोई भी कार्यक्रम लोगो की भावना को ध्यान में रखकर ही लागू किया जाना चाहिए अन्यथा उसे जन-समर्थन नहीं मिल पायेगा। भारत में परिवार नियोजन के मार्ग में अनेक बाधाएं हैं। हम यहां उन बाधाओं का उल्लेख करेंगे और तत्पश्चात् उन बाधाओ को दूर करने के उपाय सुझायेंगे।

परिवार नियोजन एवं जनसंख्या-वृद्धि को रोकने में बाधाएं (Hindrances to Family Planning and Population Control)

(1) हमारे यहां पुत्र प्राप्ति को विशेष महत्व दिया गया है। पुत्र ही पिता को स्वर्ग प्रदान करता है तथा एक व्यक्ति पुत्र को जन्म देकर अपने पितृ ऋण से उऋण होता है। अतः जब तक किसी को पुत्र प्राप्त नहीं होता वह लड़कियों की संख्या बढ़ाता रहता है। हमारे यहां लड़की की तुलना में लड़के को अधिक महत्त्व दिया जाता है। कई बार लड़की के जन्म को अपशकुन माना जाता है और उन्हें डिग्री के नाम से सम्बोधित किया जाता है। 1987 मे स्वास्थ्य' और परिवार कल्याण मन्त्रालय द्वारा किये गये सर्वेक्षण में अधिकांश जोड़ों ने तीन या अधिक बच्चों की कामना के साथ-साथ यह भी चाहा कि उनमे से कम से कम 2 लड़के हों।

(2) परिवार नियोजन से सम्बन्धित कार्यकर्ताओ के पूर्ण प्रशिक्षित न होने के कारण वे लोगों को समझाने में पूरी तरह सफल नहीं हो पाते।

(3) कभी-कभी ऐसा भी होता है कि बन्ध्याकरण के ऑपरेशन के असफल होने से ऑपरेशन के बाद में भी सन्तान हो जाती है। ऐसी स्थिति में दम्पत्ति की प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचती है और स्त्री-पुरुषों में तनाव एवं तलाक हो जाता है। ऑपरेशन करते समय असावधानी क कारण ऑपरेशन के बिगड़ने पर अन्य लोग भी हतोत्साहित होते हैं।

(4) धार्मिक रूढ़ियां भी परिवार नियोजन एवं जन्म-निरोध में बाधक हैं। कई व्यक्ति न्म-निरोध को पाप समझते हैं। उनका मत है कि सन्तानोत्पत्ति ईश्वरीय देन है। अतः उसे नहीं जाना चाहिए। 1978 में 'ऑपरेशन अनुसन्धान समूह' (Operation Research up) द्वारा मुसलमानों के लिए किये गये सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि उनमें से अधिकांश

स्त्री-पुरुषों को परिवार नियोजन के तरीकों की जानकारी थी, किन्तु वे धार्मिक कारणों एवं साथ ही साधनो की पर्याप्त जानकारी के अभाव के कारण उनका उपयोग नहीं करते हैं।

(5) भाग्यवादी होने के कारण भारतीयो का यह विश्वास है कि हर व्यक्ति को अपने भाग्य मे जो लिखा होता है, वह मिलकर ही रहता है। अतः नया जन्म लेने वाला प्राणी भी अपने भाग्य के अनुसार कुछ-न-कुछ तो प्राप्त करेगा ही। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति अपने साथ दो हाथ दो पैर लेकर जन्मता है जिससे कि वह परिश्रम करके अपना पेट पाल सकता है।

(6) कुछ लोगों की दलील है कि अधिक सन्ताने होने पर बाद वाली सन्तानें बुद्धिमान, वैज्ञानिक एवं राजनीतिज्ञ, आदि होती हैं। इसके लिए वे रवीन्द्रनाथ टैगोर, आइन्सटीन, आदि का उदाहरण देते है। यदि इनके पिता परिवार नियोजन कर लेते तो विश्व को ये महान विभूतियां प्राप्त नहीं होतीं, किन्तु इसे हम अपवाद ही कह सकते हैं। ऐसे भी अनेक उदाहरण हैं जिनमें बाद वाली सन्तानों की तुलना में पहले वाली सन्ताने सुयोग्य थी।

(7) अशिक्षा के कारण कृत्रिम साधनों को अपनाने में अनेक कठिनाइयां है। खन्ना और वर्गीज ने अपने सर्वेक्षण में पाया कि शिक्षा और परिवार नियोजन की स्वीकृति में सीधा सम्बन्ध है। 40% महिलाएं जो प्राथमिक शिक्षा प्राप्त या उससे कम शिक्षित थीं, ने परिवार नियोजन को अस्वीकार किया। साथ ही इन साधनों को अपनाने में पत्नी की अपेक्षा पति के विचार महत्वपूर्ण हैं क्योंकि पुरुष-प्रधान समाज होने के कारण हमारे यहां पति के विचारो का ही प्रभुत्व पाया जाता है। अतः यदि पत्नी परिवार नियोजन चाहे और पति नही चाहे तो ऐसी स्थिति में कठिनाई उत्पन्न हो जाती है।

(8) जनसंख्या-वृद्धि का कृषि व्यवस्था से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। हमारे यहां कृषि पुराने तरीकों से होती है जिसमें अधिक श्रमिकों की आवश्यकता पड़ती है। मजदूरों द्वारा कृषि कराना महंगा कार्य है। इसलिए परिवार के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर ही यह कार्य किया जाता है। अतः जब तक कृषि में क्रान्ति नहीं पायी जाती तब तक वह जनसंख्या-वृद्धि को रोकने में बाधक रहेगी।

(9) परिवार नियोजन के साधनों में बन्ध्याकरण का आपरेशन सबसे अधिक विश्वसनीय साधन है। किन्तु श्रमिक एवं कृषि कार्य करने वाले लोगो का मत है कि इस ऑपरेशन के बाद शारीरिक श्रम नहीं कर सकते। ग्रामीण क्षेत्रों मे परिवार नियोजन के कार्यक्रमों के विरोध का सबसे बड़ा कारण यही विश्वास रहा है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि इस बारे में वैज्ञानिक खोज के आधार पर सही तथ्यों की जानकारी जनता को दी जाय।

(10) कुछ लोग परिवार नियोजन को अनैतिक एवं भ्रष्ट तरीका मानते हैं क्योंकि कृत्रिम साधनों के उपयोग से गर्भ रहने का भय नहीं रहेगा और इससे भ्रष्टाचार के बढ़ने की अधिक सम्भावना रहेगी। इसके विरुद्ध यह कहा जा सकता है कि स्वस्थ पोषण एवं शिक्षण के साधनों की सर्वथा उपेक्षा कर बच्चों की निर्बाध गति से वृद्धि कहां की नैतिकता है।

(11) परिवार नियोजन के प्रति हिन्दुओं की तुलना में मुसलमान अधिक उदासीन हैं। इसके पीछे उनकी भ्रामक धार्मिक मनोवृत्ति है। अतः उन्हें भी इस बात के लिए समझाया जाय कि कोई भी धर्म निर्बाध गति से सन्तान पैदा करने की प्रेरणा नही देता। खन्ना और वर्गीज के सर्वे से यह भी ज्ञात हुआ कि निम्न सामाजिक स्थिति वाली स्त्रियां परिवार नियोजन के साधनों से अधिक अनभिज्ञ थीं। उच्च सामाजिक स्थिति वाली 75% स्त्रियां, मध्यम स्थिति

वाली 56% एवं निम्न स्थिति वाली 19% स्त्रियां परिवार नियोजन के साधनों का उपयो रही थीं।

फरवरी 1990 में 'ऑपरेशन अनुसन्धान समूह' ने देश मे सर्वेक्षण कर जनन प्रतिश के आधार पर देश को 16 जोन एवं 350 जिलों और चार क्षेत्रों में विभाजित किया औ ज्ञात किया कि देश में कुछ क्षेत्र एवं जिले ऐसे हैं जहां परिवार नियोजन का सकारात्म प्रभाव पड़ा है, कुछ में कम और कुछ में बहुत कम प्रभाव पड़ा है। अरुणाचल, बिहा, हरियाणा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और राजस्थान में प्रजनन दर अधिक है। अतः परिवा नियोजन कार्यक्रम को क्षेत्रवार लागू किया जाना चाहिए।

उपर्युक्त सभी बाधाओ को प्रयत्नपूर्वक हल किया जा सकता है। जनसंख्या नियन्त्र का एक मात्र व्यावहारिक हल गर्भ-निरोध के कृत्रिम साधनों का अपनाना ही है। इससे हमारी जन्म-दर घटेगी, जीवन अवधि में वृद्धि होगी, प्रजनन-काल मे होने वाली मृत्यु की दर घटेगी तथा दम्पति के स्वास्थ्य और जीवन-स्तर पर अच्छा प्रभाव पडेगा।

परिवार नियोजन एवं जनसंख्या नियन्त्रण के मार्ग में आने वाली बाधाओं का निराकरण (Removal of Hindrances to Family Planning and Population Control)

परिवार नियोजन के कार्यक्रम को अधिकाधिक सफल बनाने एवं उसके मार्ग मे आने वाली बाधाओ को दूर करने के लिए निम्नांकित उपाय किये जा सकते हैं :

(1) शिक्षा का प्रसार किया जाय ताकि पढ़े-लिखे लोग स्वयं ही परिवार नियोजन अपनायें। ऐसा होने पर उनका जीवन-स्तर ऊंचा उठेगा, विवाह की आयु बढेगी जिसके परिणामस्वरूप सन्तानोत्पत्ति कम होगी।

(2) विवाह की आयु बढ़ाकर लड़को की 24 और लडकियों की 21 वर्ष कर दी जाय।

(3) सामाजिक सुरक्षा की योजनाएं प्रारम्भ की जायं जिसमें बीमारी, वृद्धावस्था, अशक्त अवस्था, बेकारी तथा दुर्घटना के समय लोगो को आर्थिक संरक्षण प्रदान किया जाय। फलस्वरूप व्यक्ति की परिवार पर निर्भरता कम होगी और वह अधिक सन्तानों को जन्म नहीं देगा।

(4) कृषि व औद्योगिक उत्पादन मे नवीन वैज्ञानिक साधनों को बढ़ावा दिया जाय जिससे इन कार्यो में अधिक लोगों की आवश्यकता न होने पर व्यक्ति स्वयं सीमित परिवार रखने के बारे में सोचेगे।

(5) परिवार नियोजन विभाग के कार्यकर्त्ता दक्ष एवं प्रशिक्षित हों तथा अच्छे कार्यकर्ताओं को पुरस्कार देकर प्रोत्साहित किया जाय।

(6) ऑपरेशन आदि कार्यो में पूर्ण सावधानी बरती जाय।

(7) परिवार नियोजन के कार्यक्रमों को अपनाने के लिए लोगों को प्रोत्साहन दिया जाय।

(8) प्रचार एवं प्रसार द्वारा जनता को परिवार नियोजन के साधनों एवं कार्यक्रमो की वैज्ञानिक जानकारी प्रदान की जाय। इसके लिए रेडियो, पत्र-पत्रिकाओं एवं साहित्य का सहारा लिया जाय।

(9) लड़के या लड़की के बीच जन्म सम्बन्धी सामाजिक भेद समाप्त किये जायं ताकि लड़के की आशा में निर्बाध गति से लड़कियों की उत्पत्ति रुक सके।

(10) गर्भपात सम्बन्धी नियमों को और अधिक उदार बनाया जाय जिससे गर्भपात सम्बन्धी सुविधाओं में वृद्धि की जा सके।

(11) कानून के माध्यम से परिवार को सीमित करने का प्रयास किया जाय।

(12) परिवार नियोजन को अधिकाधिक सफल बनाने के लिए दोषपूर्ण व्यक्तियों का बन्ध्याकरण कराया जाय।

(13) मातृ एवं शिशु कल्याण केन्द्रों की अधिकाधिक स्थापना की जाय।

(14) अविवाहित एवं कम बच्चे वाले परिवारों को करो में छूट दी जाय।

(15) रहन-सहन के स्तर को ऊंचा उठाया जाय।

(16) गर्भ-निरोधक दवाओं को कम कीमत पर एवं सरलता से उपलब्ध कराने की व्यवस्था की जाय एवं नये साधनों की खोज की जाय।

(17) परिवार नियोजन सम्बन्धी वैज्ञानिक अनुसन्धानों को बढ़ावा दिया जाय।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर स्पष्ट है कि जनसख्या वृद्धि को सीमित करने के लिए परिवार नियोजन एक कारगर साधन है। परन्तु परिवार नियोजन की सफलता के लिए आवश्यक है कि मानवीय कारकों की अवहेलना न की जाय। परिवार नियोजन कार्यक्रम मे लगे लोगों को ईमानदारी के साथ अपने दायित्व का निर्वाह करना है ताकि यह कार्यक्रम सफल हो सके और तीव्र जनसंख्या-वृद्धि को रोका जा सके। यदि हम आगामी संकटों से बचना चाहते हैं, राष्ट्रीय सम्पत्ति में वृद्धि, जीवन स्तर को ऊंचा उठाना, गरीबी दूर करना, दुख-दैन्य एवं पीड़ाएं घटाना, समाज में शान्ति व्यवस्था कायम करना तथा जच्चा-बच्चा के जीवन को सुखी एवं स्वस्थ बनाना चाहते हैं, तो सबकी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होगी। ऐसा सब कुछ करने के लिए हमें परिवार नियोजन को सफल बनाना होगा।

प्रश्न

1. "भारत में सुनियोजित आर्थिक विकास में सबसे बड़ी बाधा जनसंख्या वृद्धि है।" इस कथन के सन्दर्भ में परिवार नियोजन कार्यक्रम का महत्व एवं मूल्यांकन प्रस्तुत कीजिए।
2. भारत मे परिवार नियोजन कार्यक्रम का महत्व बताइए। इसकी सफलता के लिए कुछ उपयोगी सुझाव दीजिए।
3. भारत मे जनविस्फोट के परिणामों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए। (राज., 1995)
4. भारत में जनसंख्या वृद्धि को नियन्त्रित करने के लिए उपायों का मूल्यांकन कीजिए। (राज., 1988; अजमेर, 1996)
5. जनसंख्या वृद्धि को नियन्त्रित करने में हमारी सरकार द्वारा आरम्भ किये गये राष्ट्रीय प्रोग्रामों का विवरण दीजिए।
6. [illegible]
7. [illegible] आने वाली समस्याओं (बाधाओ) की चर्चा कीजिए। (अजमेर, 1990)
8. भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम की क्या कमियां हैं? इन कमियो को कैसे दूर किया जा सकता है? (राज., 1992; अजमेर, 1989, 97)
9. संक्षेप में भारत मे जनसंख्या विस्फोट के कारण बताइए। भारत में जनसंख्या नियन्त्रण के लिए कौन-कौनसे उपाय किये गये हैं? (अजमेर, 1991)

10 जनसंख्या वृद्धि के क्या परिणाम हैं? इस समस्या का समाधान कैसे किया जा सकता है?

11 भारत में जनसंख्या वृद्धि के लिए उत्तरदायी कारक कौन-कौन से हैं? इनकी विस्तृत विवेचना कीजिए।
(अजमेर, 1993; राज., 1995)

12 भारत मे परिवार नियोजन कार्यक्रम की सफलता का मूल्यांकन कीजिए।
(राज., 1993; अजमेर, 1995)

13 जनसंख्या वृद्धि को नियन्त्रित करने मे हमारी सरकार द्वारा आरम्भ किए गए राष्ट्रीय कार्यक्रमों (प्रोग्रामो) का विवरण दीजिए।
(अजमेर, 1994; राज., 1996)
(राज., 1996)

5

निर्धनता

[POVERTY]

विश्व का सातवां बड़ा देश होने पर भी भारतीय अर्थ-व्यवस्था अल्पविकसित है। स्वतन्त्रता के बाद विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति के बावजूद भी यहां प्राकृतिक एवं मानवीय साधनों का पूरा-पूरा उपयोग नहीं हुआ है और देश आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। भारत सहित सभी अल्प-विकसित देशों के विकास की समस्या आज विश्व के सामने सबसे बड़ी चुनौती है। विश्व-शान्ति, सुव्यवस्था और प्रगति के लिए आवश्यक है कि सभी अल्प-विकसित देशों का विकास किया जाय और गरीब तथा अमीर देशों के बीच व्याप्त खाई को पाटा जाय। भारत जैसे पिछड़े एवं अल्प-विकसित देश के लोगों की प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है। यहां कृषि की प्रधानता है,किन्तु वह भी अनार्थिक व पिछड़ी हुई अवस्था में है, यहां का औद्योगिक ढांचा बड़ा कमजोर है, पूंजी की कमी है और तकनीकी निम्न स्तर की है। यहां उपभोग की वस्तुओं का आयात एवं प्राथमिक वस्तुओं का निर्यात होता है, यहां अल्प रोजगार और छिपी बेकारी विद्यमान है, जनसंख्या की अधिकता है, और आर्थिक व सामाजिक ढांचा पिछड़ा हुआ है। इन सभी कारणों से भारत के विकास की गति बहुत धीमी रही है। भारत के विकास के मार्ग में निम्नलिखित समस्याएं बाधक रही हैं :

(1) गरीबी—भारत में आर्थिक विकास से सम्बन्धित सबसे बड़ी समस्या गरीबी या निर्धनता की है। गरीबी स्वयं गरीबी को जन्म देती है। चूंकि देश गरीब है इसलिए विकास नहीं कर पाता और चूंकि यहां विकास नहीं होता है इसलिए देश में गरीबी है। इस तरह से हम गरीबी से चलकर पुनः गरीबी में पहुंच जाते हैं और यही कारण है कि यहां संचयन का भी अभाव है। फलस्वरूप यहां न तो पूंजी का निर्माण हो पाता है और न ही पूंजी का विनियोग। गरीबी के बारे में विस्तार से चर्चा हम इसी अध्याय में आगे करेंगे।

(2) बेकारी—आर्थिक विकास के मार्ग में एक समस्या बेकारी की है। बेकारी गरीबी व ऋणग्रस्तता को जन्म देती है। इसके कारण लोगों की आय और जीवन-स्तर निम्न होता है। इससे कार्यक्षमता प्रभावित होती है जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन घटता है। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय घटने लगती है। उद्योगों को बन्द करने पर औद्योगिक अशान्ति व आर्थिक संकट पैदा होता है, परिवार व व्यक्ति की आर्थिक दशा बिगड़ जाती है। ऐसी स्थिति में देश के आर्थिक साधनों व प्राकृतिक स्रोतों का पूरी तरह से लाभ नहीं उठाया जा सकता और राष्ट्र आर्थिक दृष्टि से अविकसित बना रहता है।

(3) अशिक्षा—आर्थिक विकास के मार्ग में अशिक्षा भी एक प्रमुख समस्या है। की जनगणना के अनुसार देश में 52.21 प्रतिशत लोग ही शिक्षित हैं। शिक्षा के अभाव अनेक समस्याएं जन्म लेती हैं। इसके अभाव में राष्ट्र का आर्थिक विकास सम्भव न क्योंकि लोगो को देश में उपलब्ध प्राकृतिक भण्डारों, मशीनों को चलाने, व्यवसाय प्र करने,आदि का ज्ञान नही हो सकता। ऐसी स्थिति में उनकी आर्थिक दशा उन्नत नहीं हो पा और इसका प्रतिकूल प्रभाव राष्ट्रीय आय व लाभांश पर भी पड़ता है। अधिकांश अशि व्यक्ति ऋणग्रस्तता व गरीवी मे ही जीवन व्यतीत करते हैं तथा उनका आर्थिक शोषण होता है।

(4) जनाधिक्य—भारत मे जनाधिक्य है। वैसे तो जनसंख्या वृद्धि के कुछ लाभ हैं। जैसे—श्रम-शक्ति मे वृद्धि होती है एवं वाजार का क्षेत्र विकसित होता है, विशेषीकरण वडे पैमाने पर उत्पादन करना सम्भव होता है किन्तु जनाधिक्य आर्थिक विकास के मार्ग वाधा भी उपस्थित करता है। जनाधिक्य के कारण देश मे भूमि व प्राकृतिक संसाधनो पर से दवाव वढा है। पूंजी निर्माण की आवश्यकता महसूस हुई है। प्रो. कोलिन क्लार्क जनसंख्या वृद्धि को देश के आर्थिक विकास के लिए हानिकारक मानते हैं। इसका कारण यह है कि वचत का अधिकांश भाग जनसंख्या पर खर्च होने से शुद्ध राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय वहुत ही कम रह जाती है। जनसंख्या वृद्धि के कारण प्रति व्यक्ति प्राकृतिक साधनो की कमी हो जाती है और उत्पादकता गिरती है। जनसंख्या वृद्धि गरीवी, मूल्य वृद्धि, वेरोजगारी एवं निम्न जीवन-स्तर के लिए भी उत्तरदायी है और ये सभी विकास के मार्ग में वाधाएं ही हैं।

(5) अन्य समस्याएं—आर्थिक विकास मे गरीवी, वेकारी, अशिक्षा और जनाधिक्य समस्या के अतिरिक्त प्रतिकूल सामाजिक दशाएं तथा राजनीतिक एवं प्रशासनिक कठिनाइयां भी वाधाएं उपस्थित करती है। संयुक्त परिवार प्रणाली, जाति प्रथा, ... कमजोर, भ्रष्ट, अकुशल और ढीला प्रशासनिक ढांचा ... ही है।

यहां हम आर्थिक विकास से सम्बन्धित एक प्रमुख समस्या—'निर्धनता' पर विस्तारपूर्वक विचार करेंगे।

निर्धनता
(POVERTY)

निर्धनता एक सामाजिक एवं आर्थिक समस्या है। इसकी उत्पत्ति और स्वरूप बड़ा जटिल है। विश्व के सम्मुख गरीवी की समस्या एक-सामाजिक, नैतिक और वौद्धिक चुनौती है। गरीवी एक सर्वव्यापी समस्या है और समृद्ध देश भी इसकी चपेट से नहीं वच सके हैं। विश्व में गरीव देशों की संख्या इतनी है कि उन्हें 'तीसरी दुनिया' के नाम से पुकारा जाता है। तीसरी दुनिया के लोगो को अच्छा भोजन, वस्त्र एवं मकान उपलब्ध नहीं हैं। भारत में ऐसे कई परिवार हैं जो औसत दर्जे का जीवन भी व्यतीत नहीं कर पाते। वे गरीवी से भयंकर रूप से पीड़ित हैं। वे सड़कों और फुटपाथों पर अपना दम तोड़ते है, भीख मांग कर जीवन व्यतीत करते हैं तथा वे लोगों की दया पर ही जीवित रहते हैं। ऐसी गरीवी भूख और मौत को जन्म देती है। आज गरीव और अमीर के वीच एक वहुत बड़ी खाई दिखाई देती है। आज भीषण विषमता को जन्म देने में औद्योगिक क्रान्ति का विशेष हाथ रहा है। औद्योगिक

...ने ने समाज में तीव्र आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तन लाने में योग दिया है। मशीनीकरण जहां एक ओर समाज में प्रचुर साधन उपलब्ध कराये है और समृद्धि को बढ़ावा दिया है, ...ं दूसरी ओर एक तीसरी दुनिया भी खड़ी कर दी है जो गरीबी और अभावों से त्रस्त है। ...द्योगीकरण और मशीनीकरण का शुभारम्भ आज के तथाकथित सभ्य और पश्चिमी देशों ...हुआ। उन्होंने अपनी औद्योगिक मांगों के लिए एशिया, अफ्रीका, दक्षिणी अमरीका आदि ...द्वीपों के देशों को अपना उपनिवेश बनाया, उन पर अपना साम्राज्य स्थापित किया तथा ...हां के प्राकृतिक स्रोतों का शोषण किया। प्राकृतिक भण्डारों के खाली होने के साथ-साथ ...न देशों में गरीबी बढ़ी। आज विश्व स्पष्टतः दो भागों में विभाजित दिखाई पड़ता है—एक ...रफ वे देश हैं जो सम्पन्न है और दूसरी तरफ वे देश हैं जो गरीबी से त्रस्त हैं।

गरीबी को दूर करने के लिए अनेक योजनाबद्ध प्रयास किये गये हैं। गरीबी के कारणो ...ो ढूंढ कर उन्हें दूर करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। परिणामस्वरूप लोगों के जीवन-स्तर ...ं सुधार हुआ है। स्वयं गरीब भी अपनी दशा के प्रति जागरूक हुए हैं और वे इस भयंकर ...मस्या से मुक्ति पाने के लिए सजग और प्रयत्नशील है। गरीबी के अनेक सामाजिक और ...ार्थिक प्रभाव पड़ते हैं। यह केवल आर्थिक समस्या ही नहीं वरन् सामाजिक समस्या भी है।

निर्धनता की अवधारणा
(THE CONCEPT OF POVERTY)

निर्धनता एक आर्थिक स्थिति है किन्तु यह एक सामाजिक पद को भी प्रकट करती है ...्योंकि एक व्यक्ति की आर्थिक स्थिति का घनिष्ठ सम्बन्ध सामाजिक श्रेणी और वर्ग से भी ...है।[1] गरीबी और अमीरी तुलनात्मक शब्द हैं। साधारण भाषा में गरीबी का अर्थ आर्थिक ...असमानता, आर्थिक पराश्रितता और आर्थिक अकुशलता से लिया जाता है। गरीबी को केवल ...आर्थिक अभाव के रूप में प्रकट करना इसका संकुचित अर्थ है।[2] गरीबी की कुछ परिभाषाएं ...इस प्रकार से दी गयी हैं :

गिलिन और गिलिन के अनुसार, "गरीबी वह दशा है जिसमें एक व्यक्ति या तो अपर्याप्त आय अथवा मूर्खतापूर्ण व्यय के कारण अपने जीवन-स्तर को इतना ऊंचा नहीं रख ...पाता कि उसकी शारीरिक एवं मानसिक क्षमता बनी रह सके और उसको तथा उस पर आश्रितों को अपने समाज के स्तरों के अनुसार उपयोगी ढंग से कार्य करने के योग्य बनाये ...रखा जा सके।"[3] गिलिन एवं गिलिन ने गरीबी का सम्बन्ध जीवन-स्तर से जोड़ा है। जब ...व्यक्ति की आय अपर्याप्त हो या वह उसे उचित ढंग से खर्च नहीं करता हो तो ऐसी स्थिति में वह अपने जीवन-स्तर को बनाये नहीं रख सकता। जीवन-स्तर के गिरने पर व्यक्ति की स्वयं की और उस पर निर्भर लोगों की शारीरिक और मानसिक क्षमता भी प्रभावित होती है। निम्न जीवन-स्तर के कारण व्यक्तियों की कार्यक्षमता घट जाती है।

वीवर भी गरीबी को ऐसे जीवन-स्तर के रूप में परिभाषित करते है जिसमें व्यक्ति की शारीरिक क्षमता उचित स्तर तक नहीं बनी रहती। आप लिखते हैं, "गरीबी एक ऐसे जीवन

1 Gillin and Gillin, *Cultural Sociology*, p 754
2 *Ibid*, p. 758
3 *Ibid*, p. 758.

स्तर के रूप मे परिभाषित की जा सकती है जिसमें स्वास्थ्य और शरीर सम्बन्धी क्षमता वनी रहती।"[1]

डॉ. योगेश अटल ने गरीवी को तुलनात्मक दृष्टि से राष्ट्रीय आय से वंचित रहने के रूप मे परिभाषित किया है। आप लिखते हैं, "गरीवी की अवधारणा का सम्बन्ध सापेक्ष रूप से वंचित रहने के तथ्य से है।"[2] जव हम राष्ट्रीय आय की चर्चा करते हैं तव इसका अर्थ यह नही होता है कि वह आय देश के सभी लोगों में समान रूप से वितरित होती है। राष्ट्रीय आय में से जिन लोगों को कम हिस्सा मिलता है, गरीव और जिन्हें अधिक हिस्सा मिलता है, धनवान वर्ग मे आते है। इस दृष्टि से भी गरीवी एक तुलनात्मक तथ्य है।

गरीवी आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से भी एक सापेक्ष शब्द है। जव कोई व्यक्ति यह कहता है कि वह गरीव है तो इसका अर्थ यह है कि वह उन सभी वस्तुओं को नहीं खरीद सकता है जिनकी वह इच्छा करता या पसन्द करता है। अतः वस्तुओं को चुनने एवं पसन्द करने की सीमा के रूप में भी गरीवी को परिभाषित किया जा सकता है। आय की दृष्टि से गरीव लोगो की आय इतनी ही होती है कि वे अपनी आवश्यक आवश्यकताओं को ही पूरा कर पाते है, सुविधाओ और ऐश्वर्य की वस्तुओं को नहीं।

गरीवी एक सापेक्ष शब्द है। इसका अर्थ यह भी है कि एक देश जिसे हम गरीव कहें, उसे दूसरे देश धनवान कह सकते है। इसका कारण यह है कि गरीवी का निर्धारण उस देश की प्रथाओं और जीवन-स्तर के आधार पर होता है। भारत मे गरीवी की रेखा वह नहीं है जो अमरीका और इंगलैण्ड में है। प्रत्येक देश मे साधनों के अनुसार जीवन-स्तर का एक आदर्श स्थापित कर लिया जाता है और सभी व्यक्ति उसी आदर्श को पाने का प्रयास करते है। जीवन-स्तर के आदर्श से नीचे जीवन व्यतीत करने वालों को गरीव और उससे ऊंचा जीवन व्यतीत करने वालों को धनवान कहा जाता है। कभी-कभी हमारे पास उस उचित स्तर को पाने के लिए पर्याप्त साधन तो होते हैं किन्तु उनका अपव्यय किया जाता है, तब भी गरीवी वनी रहती है। उदाहरण के लिए, कोई व्यक्ति अपनी आय को शराव और जुआ खेलने मे उड़ा देता है और अपनी भोजन, वस्त्र व मकान की आवश्यकता को पूरा नहीं करता है तव भी वह गरीवी की अवस्था कहलायेगी।

गरीवी दो देशों की तुलना में नही वरन् एक ही देश में भी विभिन्न वर्गों, समूहों, जातियों, क्षेत्रो, प्रान्तों, व्यवसायों, संस्कृतियों, आदि की दृष्टि से भी सापेक्ष शब्द है। कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन-स्तर का जो आधार हरिजनो का है, वही व्यापारियों का नहीं होगा, जो आधार श्रमिकों का है, वही पूंजीपतियों का नहीं होगा, जो आदिम जातियों का है, वही शहरी लोगों का नहीं होगा, जो पंजाव का है वही राजस्थान, केरल या चेन्नई का नहीं होगा। गरीवी का सम्बन्ध एक समूह मे जीवन जीने के पैमाने से है। एक संस्कृति में गरीवी के माप का जो आधार है, उसे हम दूसरी संस्कृति पर लागू नहीं कर सकते। गरीवी

1 "Poverty may be defined as a place of living that does not provide for health and physical efficiency" —W. W Weaver, *Social Problems*, p. 633

2 "Poverty is a concept that refers to the phenomenon of relative deprivation." —Y. Atal, *Role of Values and Institution, Challange of Poverty in India*, (ed) by A. J. Fonesca, p. 92.

का सम्बन्ध एक ही सांस्कृतिक समूह में तुलनात्मक है और उसी आधार पर व्यक्ति की स्थिति तय की जाती है कि वह गरीब है या अमीर है।[1]

वस्तुतः गरीबी का सम्बन्ध जीवन-स्तर से है। यह जीवन-स्तर भी प्रत्येक समाज में अलग-अलग है। जीवन-स्तर को निर्धारित करने वाले तीन प्रमुख कारक हैं—प्रथाएं, निर्णय और बुद्धिमत्ता तथा आय। इनमें भी आय अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि निम्न श्रेणी के परिवारों में तो आय इतनी कम होती है कि उनके सामने किसी वस्तु की पसन्दगी और निर्णय का प्रश्न नही उठता। वे बचत ही नहीं कर पाते। इस अर्थ मे हम गरीबी को ऐसी दशा के रूप में परिभाषित कर सकते है, जिसमे वित्तीय बचत नही होती।[2]

प्रथाएं भी समूह और समुदाय के लोगों का जीवन-स्तर तय करती है। भोजन की आदतो व परिवार के बजट पर भी इनका प्रभाव होता है। हम चावल, मक्का, मांस, अण्डे, शाकाहारी और मांसासारी भोजन में से क्या खायेंगे, यह प्रथाएं तय करती है। ब्राह्मण शाकाहारी भोजन करते हैं तो क्षत्रिय मांसाहारी। हर समाज में खान-पान से सम्बन्धित ही नही वरन् वस्त्रों से सम्बन्धित भी प्रथाएं हैं। विभिन्न त्यौहारो, उत्सवों और दैनिक जीवन में हमारी वस्त्र शैली क्या होगी—यह भी प्रथाएं तय करती है। हम सदा वस्त्र धारण शारीरिक रक्षा, सुविधा तथा आर्थिक स्थिति के आधार पर नही करते वरन् प्रथाओ को ध्यान मे रखकर भी करते हैं। डॉक्टर, दूल्हे, सिपाही, पुलिस और रेलवे कर्मचारी की पोशाक में अन्तर प्रथाओं व नियमों के कारण ही है। इनकी अवहेलना करने पर दण्ड, जुर्माने एवं निन्दा का भय रहता है।

व्यक्ति की पसन्द और नापसन्द को तय करने में उसकी बुद्धि और निर्णय लेने की क्षमता का भी महत्वपूर्ण हाथ होता है। कौन-सी वस्तुएं खरीदी जाएं, किसे प्राथमिकता दी जाय—यह सब निर्णय बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से लिये जाते हैं। अच्छी प्रैक्टिस चलने वाले डॉक्टर के लिए कार जरूरी हो सकती है। साधारण डॉक्टर के लिए स्कूटर ही पर्याप्त होता है। कुछ लोग उधार वस्तुएं लाकर घर बसाना चाहेंगे तो कुछ नही। इस प्रकार उपलब्ध साधनों का उचित उपभोग ही सही निर्णय है।

आय ही जीवन-स्तर को तय करने मे मुख्य कारक है। कम आय होने पर मूल आवश्यकताएं पूरी की जायेगी जबकि अधिक आय होने पर मनोरंजन, फैशन, कीमती वस्त्र, फर्नीचर और अन्य सुविधाओं पर खर्च किया जायेगा। आय का सम्बन्ध परिवार में सदस्यो की संख्या और कमाने वालों की संख्या से भी है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि गरीबी एक सापेक्ष शब्द है जिसका सम्बन्ध किसी समाज, संस्कृति, देश, समूह तथा व्यवसाय में प्रचलित जीवन-स्तर के आदर्श से है। किसी भी समाज में जीवन-स्तर का यह आदर्श क्या होगा, यह उस समय की प्रथाओं, व्यक्ति की बुद्धि और निर्णय लेने की क्षमता तथा आय पर निर्भर करेगा। गरीबी के निर्धारण में धन का महत्व है और वे लोग जिनके पास धन का अभाव होता है, गरीब माने जाते हैं। किन्तु कई व्यक्ति ऐसे भी होते है जिनके पास धन की कमी होती है फिर भी उनका जीवन-स्तर ऊँचा होता है। दूसरी ओर कई व्यक्तियों के पास धन की प्रचुरता होने पर भी वे निम्न जीवन-स्तर

1 Gillin and Gillin, *op cit.*, p. 78.
2 "Poverty is by definition a condition from which financial surpluses
—W. W Weaver, *op.* .

व्यतीत करते हैं और तव हम उन्हें गरीव कह सकते हैं। अतः स्पष्ट है कि गरीबी एक आ
तथ्य ही नही वरन् एक सामाजिक तथ्य भी है।

निर्धनता की माप
(MEASUREMENT OF POVERTY)

किसी भी देश मे गरीबी को मापने के लिए राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय तथा प्रति व्यक्ति उपभोग खर्च को ज्ञात किया जाता है। (i) राष्ट्रीय आय ज्ञात करने के लिए किसी दे विशेष मे उपभोग के लिए उपलब्ध वस्तुओं एवं सेवाओं को देखा जाता है। राष्ट्रीय आय के ज्ञात करने के लिए किन तथ्यो को जोडा जाय, यह एक विवादास्पद विषय है। मार्शल के अनुसार, किसी देश के श्रम और पूंजी द्वारा उसके प्राकृतिक साधनों से जो भौतिक ए अभौतिक वस्तुएं उत्पन्न की जाती है, उनमे यदि सभी सेवाएं तथा विदेशो से प्राप्त आय भी जोड़ दी जाय तो वह राष्ट्रीय आय कहलाती है। प्रो. पीगू राष्ट्रीय आय मे केवल उस उत्पत्ति को सम्मिलित करते है जो मुद्रा मे नापी जा सके। फिशर राष्ट्रीय आय में सम्पूर्ण उत्पत्ति के केवल उस भाग को जो किसी वर्ष उपभोग में लिया जाता है, सम्मिलित करते हैं।

किसी देश की राष्ट्रीय आय को ज्ञात करके हम उस देश की आर्थिक प्रगति और आर्थिक कल्याण को वता सकते हैं क्योंकि राष्ट्रीय आय के अंक को आर्थिक कल्याण का अनुमानित सूचकाक भी माना जाता है। इससे उस देश की आय का वितरण, लोगो के रहन-सहन के स्तर, आदतो तथा प्रति व्यक्ति आय आदि को जानना सम्भव है। राष्ट्रीय आय के आधार पर ही कुल राष्ट्रीय उत्पत्ति (Grand national product) तथा शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति (net national product) ज्ञात की जाती है।

(ii) आय की भांति ही लोगो द्वारा उपभोग पर किये जाने वाले खर्च (consumption expenditure) के आधार पर गरीबी को मापा जा सकता है। तव यह भी देखा जाता है कि कुल राष्ट्रीय उपभोग का कितना प्रतिशत भाग उच्च श्रेणी के लोगों द्वारा काम में लिया जाता है और कितना निम्न श्रेणी के लोगों द्वारा। साथ ही शहरो एवं गांवों मे प्रति व्यक्ति उपभोग खर्च ज्ञात करके शहरी एवं ग्रामीण आर्थिक विषमता को भी ज्ञात किया जा सकता है। कई विद्वानो ने गरीबी को मापने के लिए कुछ आवश्यकताओ का कम से कम स्तर तय किया है जिसमें उन आवश्यकताओं को सम्मिलित किया है जो एक व्यक्ति के जीवित रहने के लिए आवश्यक है। भारत में गरीबी से सम्बन्धित सभी अनुमान भोजन पर होने वाले खर्च पर निर्भर है। डॉ. पी. डी. ओझा ने यह माना है कि भारत में ग्रामीण क्षेत्र मे प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन 518 ग्राम और शहरी क्षेत्र में 432 ग्राम भोजन चाहिए। वी. एम. डाण्डेकर तथा नीलकान्त राथ, बी. एस. मिन्हास आदि ने गरीबी को मापने के लिए पोषण के आदर्श को आधार माना है। इन सभी विद्वानों की मान्यता है कि भारत मे प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन 2250 कैलोरी शक्ति प्रदान करने वाला भोजन मिलना ही चाहिए। 2250 कैलोरी मूल्य का भोजन जीवितं रहने के लिए आवश्यक माना गया है। यदि इतना भोजन भी नहीं मिलता है तो उन्हें हम गरीव मानेगे। हम गरीव को उस व्यक्ति के रूप मे परिभाषित कर सकते हैं जो अपने भौतिक जीवन की कम से कम आवश्यकताओं को भी पूरा करने में असमर्थ हो। मुद्रा सन्दर्भ मे गरीव लोग वे हैं जिनके पास इतनी क्रय-शक्ति नही होती कि वे इतना भोजन

खरीद सकें जिससे प्रतिदिन प्रति व्यक्ति 2250 कैलोरी ऊर्जा उत्पन्न हो सके।[1] अन्य शब्दो में, ऐसे लोग गरीबी रेखा (poverty line) से नीचे का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

(ii) समाज में गरीबी को मापने के लिए एक पैमाना प्रति व्यक्ति व्यक्तिगत आय (per capita personal income) का भी है, यद्यपि यह एक विवादास्पद विषय है कि व्यक्तिगत आय के आधार पर उच्चता के क्रम में व्यक्ति की स्थिति बतायी जा सकती है। इस प्रकार के आंकड़ों से हम एक परिवार का खर्च और उसकी उपभोग की तुलनात्मक स्थिति को प्रकट कर सकते हैं। इससे तुलनात्मक गरीबी भी प्रकट होती है। तुलनात्मक गरीबी तो अमरीका जैसे समृद्ध देश में भी पायी जाती है।

अतः हम किसी भी देश में गरीबी को राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति उपभोग खर्च और पोषण का आदर्श तथा प्रति व्यक्ति आय के आधार पर माप सकते हैं। संक्षेप में, हम कह सकते है कि वे लोग गरीब हैं जिन्हें 2100 से 2400 कैलोरी ऊर्जा प्रदान करने वाला भोजन नहीं मिल पाता हो, जिनका उपभोग खर्च 1989-90 के मूल्य-स्तर पर 127 रुपये प्रति माह से कम हो तथा जिनकी मासिक आय 150 रुपये प्रति माह (चालू मूल्य-स्तर पर) से कम हो। एक समाज में निर्धनता का प्रकटीकरण स्रोतों के अभाव, कम राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति कम आय, आय के वितरण में काफी असमानता तथा कमजोर सुरक्षा-व्यवस्था के रूप में किया जाता है।

भारत में निर्धनता का विस्तार
(EXTENT OF POVERTY IN INDIA)

निर्धनता के उपर्युक्त विभिन्न मापों के आधार पर भारत में गरीबी के विस्तार व प्रकार का पता लगाने का प्रयास अनेक अर्थशास्त्रियों और संस्थाओं ने किया है। भिन्न-भिन्न आधारों पर गरीबी के अनुमान में भी थोड़ा-बहुत अन्तर पाया जाता है। भारत में गरीबी के विस्तार को प्रकट करने के लिए हम यहां आय में व्याप्त व्यक्तिगत असमानता, उपभोग खर्च तथा सम्पत्ति वितरण के उल्लेख के साथ-साथ गाँवों एवं शहरों तथा भारत के विभिन्न प्रान्तों में प्रति व्यक्ति आय का उल्लेख करेंगे। साथ ही हम दूसरे देशों की तुलना में भारत की स्थिति का भी मूल्यांकन करेंगे। मोटे तौर पर यहां यह बतलाना उपयुक्त होगा कि वर्तमान में विश्व की जनसंख्या 475 करोड़ है। इनमें से 100 करोड़ लोग गरीब हैं। इन 100 करोड़ गरीब लोगो में से केवल भारत में ही 32 करोड़ गरीब लोग पाये जाते है।

भारत में ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों में आय में असमानताएँ व्याप्त हैं। शहरों की तुलना में गांवो में प्रति व्यक्ति आय लगभग आधी है। यही बात उपभोग खर्च के आधार पर भी देखी जा सकती है। यही नहीं, गांवों में भी गरीबों और अमीरों के उपभोग खर्च में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। योजना आयोग ने ग्रामीण क्षेत्र में गरीब उन्हें माना जो 2400 कैलोरी तथा शहरी क्षेत्र में 2100 कैलोरी से कम कैलोरी दैनिक उपभोग करते हैं। वर्तमान मूल्य-स्तर पर गाँवों मे अपनी भोजन सम्बन्धी एवं अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए 127 रुपये जबकि नगरों में 149 रुपये प्रति माह प्रति व्यक्ति चाहिए। पांच सदस्यों के एक परिवार के लिए कुल वार्षिक खर्च हेतु रुपये 7,620 गाँवों में तथा रुपये 8,940 नगरों में चाहिए। यह न्यूनतम अस्तित्व का स्तर है। इससे नीचे आने वाले लोग गरीबी-रेखा से नीचे माने जाते हैं।

1 A. N Agarwal, *Indian Economy,* p 86

इस समय करीब 26 प्रतिशत लोग गरीबी-रेखा से नीचे जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अनुमान है कि सन् 2001 तक गरीबों की संख्या घट कर 5 प्रतिशत रह जायेगी।

भारत मे प्रति व्यक्ति आय मे क्रमिक गिरावट आयी है तथा इसके परिणामस्वरूप लोगों का रहन-सहन का स्तर गिरा है। 'विश्व बैंक' ने अपने विश्व विकास प्रतिवेदन में इस को विश्व के 10 निर्धनतम राष्ट्रों में से एक माना है। 1990-91 में सरकारी आंकड़ों के अनुसार यहां निर्धन व्यक्तियों (गरीबी-रेखा से नीचे) की संख्या 30 करोड़ थी जबकि अर्थशास्त्रियों के अनुसार यह संख्या करीब 40 करोड़ थी। इन लोगों में से अधिकांश को गांवो में भूमिहीन श्रमिक, अनियमित श्रमिक, छोटे दस्तकार (लुहार, खाती, मोची), सीमान्त कृषक, बन्धुआ मजदूर आदि के रूप में कार्य करते हैं। नगरों मे गरीब लोग असंगठित औद्योगिक श्रमिकों, फल-फूल व सब्जी वेचने वालों, दुकानों पर श्रमिकों या नौकरो, दैनिक मजदूरी करने वालो तथा घरेलू नौकरों के रूप में कार्यरत हैं।

भारत मे 1980-81 में राष्ट्रीय आय रुपये 1.22 लाख करोड़ थी जो 1987-88 में बढ़ कर रुपये 2.91 लाख करोड़ हो गयी। यहां जिस अनुपात में राष्ट्रीय आय बढ़ी, उस अनुपात मे प्रति व्यक्ति आय में जनसंख्या-विस्फोट के कारण वृद्धि नहीं हो सकी। 1989-90 के मूल्यों पर जहां 1980-81 में भारत में प्रति व्यक्ति औसत आय रुपये 1,627 थी, वहां 1993-94 में यह 6,234 रुपए थी। गांवों की तुलना में नगरों में प्रति व्यक्ति आय 2 4 गुना अधिक है। जब हम भारत में आय के वितरण पर विचार करते है तो पाते हैं कि निम्नतम 20 प्रतिशत लोग सकल राष्ट्रीय आय का 7 प्रतिशत जबकि उच्चतम 20 प्रतिशत लोग 50 प्रतिशत आय प्राप्त करते हैं।

गांवों में भूमि के वितरण में काफी असमानता पायी जाती है। गांवो में करीब 70 प्रतिशत परिवारों के पास कोई भूमि नहीं है। शेष 30 प्रतिशत परिवारों में से (जो खेती करते है), 44 प्रतिशत परिवारों के पास एक एकड़ से भी कम भूमि है, 33 8 प्रतिशत के पास 1 से 5 एकड़ तक, 16.8 प्रतिशत के पास 6 से 15 एकड़, 5 प्रतिशत के पास 16 से 50 एकड़ तथा 0 4 प्रतिशत के पास 50 एकड़ से अधिक भूमि है। जहां गांवों में आर्थिक दृष्टि से उच्च 15 प्रतिशत लोगों को कुल राष्ट्रीय आय का 42 प्रतिशत भाग मिल जाता है, वहां शेष 85 प्रतिशत लोगों को शेष 58 प्रतिशत आय से ही सन्तुष्ट रहना पड़ता है।

जिन लोगों के पास कोई भूमि नहीं है, उन्हें कृषि-क्षेत्र में या अन्यत्र दैनिक मजदूरी पर निर्भर रहना पड़ता है। देश मे श्रमिक परिवारों में से करीब तीन-चौथाई परिवारों को अनियमित श्रमिकों के रूप में और एक-चौथाई परिवारों को स्थायी श्रमिकों के रूप में कार्य मिल पाता है। स्पष्ट है कि गांवों में रहने वाले गरीबो के अन्तर्गत कृषि-श्रमिक परिवार तथा वे छोटे कृषक आते हैं जिनमें से प्रत्येक के पास 5 एकड से भी कम खेती-योग्य भूमि है।

यदि हम भारत पर विदेशी कर्ज के बारे में सोचें तो यह प्रति वर्ष बढ़ता ही जाता है। जहां 1985 के प्रारम्भ में देश पर कुल कर्ज करीब 40.96 अरब डालर था, वह 1992 में बढकर 76.98 अरब डालर हो गया। 1995 में कर्ज पर ब्याज चुकाने पर कुल राष्ट्रीय आय का 13 प्रतिशत भाग खर्च करना पड़ा। वर्ल्ड बैंक (World Bank) के अनुसार तीसरी दुनिया के 96 देशों में भारत चौथा सबसे बड़ा कर्जदार देश है।

भारत में सभी गरीब एक ही समूह के अन्तर्गत नहीं आते। इन्हें तीन उप-समूहों में ... जा सकता है जो अग्र प्रकार हैं :

(1) सर्वाधिक गरीब (निस्सहाय) (Destitute)—इस अवस्था में व्यक्ति प्रति माह 1989-90 के मूल्यों के आधार पर रुपये 71 से भी कम खर्च कर पाता है, देश में ऐसे लोगों की संख्या करीब 5 करोड है।

(2) बहुत गरीब (Very Poor)—इस स्थिति में प्रति व्यक्ति प्रति माह रुपये 83 से भी कम खर्च किया जाता है। दूसरे और तीसरी उप-समूह के लोगों की देश में कुल संख्या सरकारी आंकडों के अनुसार करीब 25 करोड़ है जबकि अर्थशास्त्रियों के अनुसार 35 करोड़ है।

(3) गरीब (Poor)—इस उप-समूह में उन लोगों को माना गया है जो प्रति व्यक्ति प्रति माह रुपये 127 से भी कम खर्च कर पाते हैं।

पूर्ण एवं सापेक्ष निर्धनता
(ABSOLUTE AND RELATIVE POVERTY)

शेपर्ड एवं वॉस (Shepard and Voss) ने दो प्रकार की गरीबी का उल्लेख किया है : (1) पूर्ण निर्धनता, तथा (2) सापेक्ष निर्धनता।

पूर्ण निर्धनता (Absolute Poverty)—यह वह स्थिति है जिसमे व्यक्ति के पास मकान, भोजन, चिकित्सा सुविधा एवं जीवित रहने के लिए आवश्यक वस्तुओं का अभाव होता है। पूर्ण गरीबी को सामान्यत: जीवन की आवश्यकताओं को जुटाने के लिए पर्याप्त धन के अभाव के रूप में परिभाषित किया जाता है। अमरीका में गरीबी की माप पूर्णता के तरीके के आधार पर ही की जाती थी। इसके अन्तर्गत गरीबी का माप वार्षिक आय स्तर होता है। इस निर्धारित वार्षिक आय से जिन लोगों की आय कम होती है उन्हें गरीब माना जाता है। पिछले कुछ वर्षों में पूर्ण गरीबी को प्रकट करने हेतु विभिन्न प्रकार के मापो का प्रयोग किया गया है जिसमें कृषक परिवारों एवं अन्य परिवारों तथा ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के लिए अलग-अलग वार्षिक आय निर्धारित की गयी है।

सापेक्ष निर्धनता (Relative Poverty)—गरीबी को सापेक्ष तथ्य मानने वालों ने पूर्ण गरीबी की अवधारणा की इस आधार पर आलोचना की है कि पूर्ण गरीबी की अवधारणा स्थिर है, यह आवश्यकताओं एवं सुविधाओं के बदलते मानदण्ड को सम्मिलित नहीं करती है। जो चीज आज सुविधा की मानी जाती है वही आने वाले समय में आवश्यकता बन सकती है। उदाहरणार्थ, अमरीका में टेलीविजन तथा कार कभी सुविधा की वस्तुएँ समझी जाती थीं किन्तु अब उन्हें आवश्यकता में गिना जाता है। अत: देश के जीवन-स्तर में वृद्धि के साथ-साथ गरीबी का मानदण्ड भी बदलता है। सापेक्ष गरीबी की अवधारणा दो समयों, दो स्थानो एवं विभिन्न व्यक्तियों की तुलनात्मक स्थिति का मूल्यांकन करती है। सापेक्ष गरीबी का माप समाज के सबसे नीचे स्तर के लोगो की दशा से तुलना के आधार पर किया जाता है। गरीबी का निर्धारण समाज में पाये जाने वाले माप के आधार पर किया जाता है। अत: भारत में जिस स्थिति को गरीबी कहते हैं वही स्थिति अमरीका में गरीबी नहीं कहलायेगी। इस प्रकार गरीबी एक सापेक्ष तथ्य है।

निर्धनता के कारण
(CAUSES OF POVERTY)

निर्धनता का जन्म किसी एक कारण या घटना के फलस्वरूप ही नहीं होता है। यह अनेक कारकों की पारस्परिक क्रियाओं का प्रतिफल है। फेरिस तथा गिलिन और गिलिन ने

गरीवी के लिए उत्तरदायी अनेक वैयक्तिक, प्राकृतिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक कारकों का उल्लेख किया है। हम इन कारकों का यहां क्रमशः उल्लेख करेंगे :

(1) **वैयक्तिक कारक (Personal Factors)**—प्राचीन समय में यह धारणा थी कि उसकी दशा के लिए व्यक्ति स्वयं उत्तरदायी है। जब कोई व्यक्ति बीमारी, दुर्घटना, मानसिक अयोग्यता, नैतिक पतन, अविवेकपूर्ण खर्च आदि से ग्रसित होता है तब गरीबी उत्पन्न होती है। व्यक्ति की अयोग्यता गरीबी पैदा करती है। यह अयोग्यता अनेक कारणों से उत्पन्न हो सकती। कई व्यक्ति वशानुगत रोगो से पीड़ित होते हैं तो कई मानसिक बीमारियों और पागलपन आदि से। कुछ व्यक्ति कला, विज्ञान, तकनीकी तथा साहित्य के क्षेत्र में रुचि रखने वाले होते हैं तो कुछ को इनमे कोई रुचि नहीं होती। कुछ वैज्ञानिक शरीर की अनेक त्रुटियों के लिए हमारे ग्रन्थि सस्थानो को उत्तरदायी मानते हैं। अल्पकालिक और दीर्घकालिक बीमारी भी लोगों में गरीबी उत्पन्न करती है। इसी प्रकार से दुर्घटनाएं घटने पर भी व्यक्ति अपंग या अंगविहीन हो जाते है। अन्धापन तथा बहरापन आदि भी व्यक्ति में शारीरिक अक्षमता पैदा करते हैं। इस प्रकार की बीमारी, बुढ़ापा, दुर्घटना, अपंगता, आदि के कारण व्यक्ति अपनी शारीरिक क्षमता का प्रयोग अर्थोपार्जन में नही करने की दशा में दूसरों पर निर्भर हो जाता है। ये सारी स्थितियां गरीवी को उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी हैं।

(2) **भौतिक पर्यावरण (Physical Environment)**—भौतिक पर्यावरण में हम प्राकृतिक साधनों का अभाव, प्रतिकूल जलवायु, कीड़े-मकोड़ों का उत्पात, प्राकृतिक संकट, आदि को सम्मिलित करते हैं। यदि किसी देश मे प्राकृतिक भण्डारों व खनिज पदार्थों का अभाव है, भूमि मे उपजाऊपन की कमी है, तो ऐसी स्थिति में वहां के लोगों को धनोपार्जन के लिए प्रचुर प्राकृतिक साधनों के नही मिलने से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जहां खनिजों का बाहुल्य है, उपजाऊ मिट्टी और सिचाई के साधनों की सुविधाएं हैं, वहां समृद्धि पायी जाती है। इसके विपरीत, रेगिस्तान और वर्षा की कमी वाले स्थानो पर गरीबी पायी जाती है। खराब मौसम के कारण जैसे अत्यधिक गर्मी व सर्दी तथा ओलों के कारण फसल नष्ट हो जाती है तो लोगों को अभाव एवं गरीबी का सामना करना पड़ता है। इसी प्रकार से प्राकृतिक प्रकोप; जैसे बाढ, अकाल, भूचाल, महामारी, आदि भी गरीबी उत्पन्न करते हैं। बिहार, असम, बंगलादेश और उत्तर प्रदेश में बाढ और तूफान के कारण अनेक बार लोगो की बस्तियां उजड़ जाती हैं और वे नष्ट हो जाते हैं। जंगलो में निवास करने वालों के घर और गांव आग लगने पर नष्ट हो जाते है। समुद्री किनारे पर रहने वालों को यदाकदा तूफान नष्ट कर देता है। इसी प्रकार से कई जीवाणु और कीड़े-मकोडे भी फसलों, जानवरों और उद्योग-धन्धों को नष्ट कर देते हैं। टिड्डियां, चूहे एवं दीमक, रेशम, ऊन एवं लकड़ी आदि को नष्ट करने वाले कीड़े प्रति वर्ष करोड़ों रुपयों की हानि पहुंचाते हैं। कीड़े-मकोड़े, फलों, कागजों, कपास, लकड़ी, ऊन, रेशम, जानवरों, आदि को नष्ट कर देते हैं और इससे सम्बन्धित लोगों को गरीबी का सामना करना पडता है।

(3) **आर्थिक कारक (Economic Factors)**—गरीबी का सम्बन्ध आर्थिक पहलुओ से ...ी है। आर्थिक दशा का वर्णन आय और खर्च के सन्दर्भ में ही किया जाता है। अपर्याप्त ...त्पादन, असमान वितरण, आर्थिक उतार-चढाव, बेकारी, गरीबी का दुष्चक्र, मन्दी, आदि ...रीबी को जन्म देते हैं। भारत मे उत्पादन के लिए साधारणतः परम्परागत साधनों का प्रयोग ... जाता है। अतः यहां पर्याप्त उत्पादन नहीं हो पाता है। ऐसी स्थिति मे जीवित रहने के

लिए आवश्यक वस्तुओं को जुटा पाना भी कठिन हो जाता है। आवश्यक उत्पादन के अभाव में गरीबी का सामना करना पड़ता है। यदि उत्पादन ठीक हो किन्तु उसका वितरण असमान हो तो भी गरीबी उत्पन्न होती है। उत्पादन के साधनों पर कुछ ही लोगों का एकाधिकार होने पर अधिकांश मुनाफा वे हड़प जाते हैं। अतः आय की असमानता के कारण लोग बीमारी, दुर्घटना, वृद्धावस्था, आदि अवसरों पर आवश्यकताओं की पूर्ति तक करने मे असमर्थ रहते हैं। सम्पत्ति एवं आय का असमान वितरण, व्यापारिक मन्दी तथा बेकारी की अवस्था भी गरीबी उत्पन्न करती है। व्यापार में मन्दी आने पर कई लोग दिवालिये हो जाते हैं और उनकी जमा पूंजी खर्च हो जाती है। बेकारी की अवस्था में व्यक्ति अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति करने में असमर्थ होता है जिससे उनकी कार्यक्षमता घट जाती है। बेकारी के साथ-साथ गरीबो की संख्या भी बढ़ती जाती है।

(4) सामाजिक कारक (Social Factors)—सामाजिक कारकों के अन्तर्गत हम शैक्षणिक कमियां, स्वास्थ्य रक्षण का अभाव, आवास सुविधाओ का अभाव, विवाह और पैतृत्व के ज्ञान का अभाव तथा परिस्थितियों से बच्चों और युवा लोगों का असामंजस्य आदि सम्मिलित करते हैं। दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली के कारण हमारे यहां शिक्षितों में बेकारी पनपी है। शिक्षा उन्हें जीवन-यापन के लिए पूरी तरह तैयार नहीं कर पाती। शिक्षा में अनुशासन के अभाव के कारण छात्र-असन्तोष की समस्या पनपी है। हमारे यहां अन्धो, बहरों तथा अपंगों के लिए भी पर्याप्त शिक्षा और जीवन-यापन की सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं। आजकल अनेक वैज्ञानिक आविष्कारों तथा नवीन चिकित्सा पद्धति आदि के कारण कई बीमारियों को नियन्त्रित कर लिया गया है। क्षय रोग, हैजा, टाईफाइड, आदि रोगों पर काबू पा लिया गया है फिर भी हमारे यहां साधारण लोगों को रक्षण हेतु समुचित सुविधाएं नही मिल पाती तथा वे स्वास्थ्य के नियमों से अनभिज्ञ हैं। बुरा स्वास्थ्य और बीमारी व्यक्ति की कार्यक्षमता को घटाते हैं। इन परिस्थितियों में कई लोगों की मृत्यु हो जाती है और परिवारों को गरीबी का सामना करना पड़ता है। आवास की सुविधाओं के कारण भी लोगों की कार्यक्षमता प्रभावित होती है। गन्दी बस्तियो में रहने, शुद्ध हवा, पानी, बिजली, प्रकाश, आदि के अभाव एवं भीड़-भाड़युक्त घर होने पर भी व्यक्ति के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। उसका आत्मसम्मान गिर जाता है, इच्छाएं क्षत हो जाती है और इसका अप्रत्यक्ष प्रभाव गरीबी पर पड़ता है।

हमारे यहां विवाह और पैतृत्व की समस्याओं पर भी ध्यान नहीं दिया गया है। कई लोग अपने वैवाहिक और पारिवारिक दायित्वों को निभाने में असमर्थ हैं। माता-पिता और बच्चों तथा पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्धों में भी शिथिलता आयी है। औद्योगिक क्रान्ति, स्वतन्त्रता के विचार, नारी स्वतन्त्रता तथा उसके घर से बाहर अर्जन करने के कारण घर की परिस्थितियों में भी परिवर्तन आया है। गिलिन और गिलिन कहते है, अब घर केवल पेट भरने और रैन बसेरा करने का स्थान ही रह गया है[1] हमारे समाज में बच्चों को विवाह और परिवार के दायित्वों को निभाने के लिए कम ही तैयार किया जाता है। इस प्रकार सामाजिक संगठन की अपर्याप्तता वर्तमान परिस्थितियों में गरीबी और पराश्रितता उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी है।[2]

[1] "Home is filling station and a resting place" —Gillin and Gillin, *op. cit.*, p.
[2] *Ibid.*, p. 777.

संयुक्त परिवार प्रणाली, जाति व्यवस्था और धार्मिक अन्ध-विश्वास भी गरीबी के लिए उत्तरदायी है। संयुक्त परिवार प्रणाली और जाति प्रथा व्यक्ति की गतिशीलता में बाधक है, परिवार अपने सदस्यों को घर से बाहर जाने की सुविधाएं प्रदान नहीं करता। जाति व्यवस्था में नवीन व्यवसायों को अपनाने की सामान्यतः स्वतन्त्रता नहीं रही है और लोग परम्परागत व्यवसायों को ही करते रहे हैं। धार्मिक अन्ध-विश्वासों तथा कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्तों ने भी लोगो को भाग्यवादी बनाया है। भारतीयों में यह धारणा भी पायी जाती है कि व्यक्ति चाहे कितना ही प्रयत्न करे, उसे उतना ही मिलेगा जितना उसके भाग्य में लिखा है।

(5) राजनीतिक कारक (Political Factors)—राजनीतिक अस्थिरता और उथल-पुथल भी गरीबी को जन्म देती है। ऐसी स्थिति में चारों ओर असन्तोष, मुनाफाखोरी, कालाबाजारी, जमाखोरी, आदि पनपती हैं। राजनीतिक दलों की पारस्परिक वैमनस्यता भी देश में अफवाहों को जन्म देती है और इसके फलस्वरूप व्यापार में उतार-चढ़ाव आते हैं। सरकार की आर्थिक नीतियों का भी अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है। सरकार की उत्पादन नीति, टैक्स नीति, आयात-निर्यात और वितरण की व्यवस्था भी देश के लोगों की आर्थिक दशा को प्रभावित करती है। स्वतन्त्रता के दौरान अंग्रेजों ने भारत के आर्थिक स्रोतों का खूब शोषण किया। इंगलैण्ड के कारखानों के लिए भारत कच्चा माल भी जुटाता था तथा बने माल के लिए बाजार भी। उन्होंने हमारे यहां पर उद्योगों की स्थापना को महत्व नहीं दिया। वर्तमान में किसी भी व्यवसाय के फलने-फूलने में राज्य की सहायता और आर्थिक नीतियों का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

(6) युद्ध (War)—युद्ध के दिनों में आर्थिक अपव्यय बहुत होता है, परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर गरीबी पनपती है। दो विश्वयुद्धों ने पश्चिमी देशों को दिवालिया बना दिया। युद्ध में पुरुषों की मृत्यु अधिक होती है। अतः स्त्रियों को अर्जन करना होता है और कई बच्चे तो अनाथ हो जाते हैं तथा समाज में आर्थिक सम्बन्ध अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। युद्ध के कारण मानसिक पीड़ा और अस्थिरता उत्पन्न होती है जिससे उत्पादन की क्रिया भी प्रभावित होती है। युद्ध के दिनों मे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को हानि होती है तथा व्यापारिक मार्ग बन्द जाते हैं।

(7) सांस्कृतिक कारक (Cultural Factors)—हमारी संस्कृति में अधिक धन प्राप्ति या धन के लिए जीवन को खपा देने को उचित नहीं माना गया है। भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों में सादा जीवन और उच्च विचार की बात कही गयी है। अतः लोग धन के पीछे नहीं भागते वरन् जीवन की कम से कम आवश्यकताओं को पूरा करने में ही सन्तोष महसूस करते हैं। वर्तमान मे भारत की गरीबी का जो उल्लेख किया जाता है, वह पश्चिमी देशों की देन है। गरीबी एक सापेक्ष अवधारणा है जिसे किसी देश और समाज की संस्कृति के सन्दर्भ में ही देखा जाना चाहिए।

उपर्युक्त सामान्य कारकों के अतिरिक्त भारत मे गरीबी के लिए अनेक अन्य कारक भी उत्तरदायी हैं जो इस प्रकार हैं :

(8) बढ़ती जनसंख्या (Increasing Population)—भारत में प्रतिवर्ष बढ़ती जनसंख्या की बाढ़ ने भी गरीबी को बढ़ावा दिया है। जिस गति से यहां जनसंख्या बढ़ती है, उसी गति से जीवन-यापन के लिए साधनों और सुविधाओं में वृद्धि नहीं होती। परिणामस्वरूप लोगों को ...ों और भुखमरी का सामना करना पड़ता है। माल्थस ने अपने लेख 'एन ऐसे ऑन

ॉपुलेशन' में बढ़ती जनसंख्या को गरीबी के लिए उत्तरदायी माना है। जनसंख्या की तुलना ं जब उत्पादन नहीं होता है तो आर्थिक सन्तुलन बिगड़ जाता है। मांग और पूर्ति के इस सन्तुलन के कारण मूल्यों में वृद्धि होती है और लोगों की क्रय-शक्ति घटती है। फलस्वरूप ोग अपनी आवश्यक आवश्यकताएं भी नहीं जुटा पाते और उन्हें दीनहीन अवस्था में ीवन-यापन करना पड़ता है।

(9) बेकारी (Unemployment)—बेकार होने पर व्यक्ति को दूसरों पर निर्भर होना ड़ता है। पर्याप्त आय न होने पर वह अपना तथा अपने पर आश्रितों का भरण-पोषण नहीं र पाता। उत्पादन के साधनों के अभाव में भी बेकार व्यक्ति अर्जन नहीं कर सकता और से अपनी आवश्यकताओं को घटाकर निम्न जीवन-स्तर बिताने के लिए बाध्य होना पड़ता ै। कई बेकार व्यक्तियों को तो भीख मांग कर जीवन-यापन करना पड़ता है।

(10) कृषि (Agriculture)—कृषि की गिरी हुई दशा के कारण तथा सिंचाई के साधनो के अभाव में ग्रामीण को कई बार भुखमरी का सामना करना पड़ता है। उन्नत खाद, बीज एवं साधनों के अभाव एवं परम्परागत खेती के तरीकों के कारण कृषि की उपज इतनी नहीं हो पाती कि किसान वर्ष भर के लिए अपने परिवार का भरण-पोषण और कुछ बचत कर सके। अधिकांश कृषि वर्षा पर ही निर्भर है। अतः जब वर्षा अच्छी होती है तो आसानी से वर्ष भर भरण-पोषण हो पाता है अन्यथा लोगों को भुखमरी का सामना करना पड़ता है।

(11) जमींदारी प्रथा—भारत में जमींदारी प्रथा को कानूनी रूप से समाप्त कर दिया गया है, सीलिंग एक्ट द्वारा अधिकतम भूमि की सीमा निर्धारित कर दी गयी है, किन्तु अब भी जमींदारी प्रथा व्यवहार में किसी न किसी रूप में मौजूद है। इस प्रथा के कारण कुछ लोगों के पास ही कृषि योग्य भूमि केन्द्रित है। वे कृषि मजदूरों के द्वारा उस पर खेती करवाते है और फसल का अधिकांश भाग फसल पैदा करने वाले को न मिलकर भू-स्वामी को मिलता है। अधिकांश कृषि-योग्य भूमि के अनुपस्थित मालिक होते हैं जो अपनी भूमि को या तो ठेके पर देते हैं या मजदूरों की सहायता से उस पर खेती करवाते हैं। इस प्रकार कृषि उपज का अधिकांश भाग जमींदारों के हाथ में चला जाता है।

(12) साहूकारी प्रथा—गांवों में सहकारी समितियों का अभाव है। किसान को अपनी जरूरत के समय साहूकारों के पास जाना होता है। साहूकार किसानों और ग्रामीणों की मजबूरी तथा अज्ञानता का लाभ उठाकर उनका शोषण करते है। वे जीवन भर ऋण के बोझ से मुक्त नहीं हो पाते। राजस्थान में अभी कुछ समय पूर्व तक ही सागड़ी प्रथा प्रचलित थी। इस प्रथा के अनुसार उधार लेने वाले व्यक्ति को उस समय तक जब तक कि वह ऋण पुनः नहीं लौटा दे, साहूकार के घर पर मुफ्त सेवा प्रदान करनी पड़ती थी। साहूकारों के चंगुल में फंसने पर उनसे मुक्ति पाना बहुत कठिन था और गरीब सदा गरीब ही बने रहते थे।

(13) सामाजिक कुप्रथाएं—हिन्दू समाज में दहेज, मृत्युभोज तथा विवाह से सम्बन्धित कई सामाजिक कुरीतियां प्रचलित हैं। इन रीति-रिवाजों के कारण एक व्यक्ति को अपनी आर्थिक क्षमता न होने पर भी सामाजिक प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए अधिक खर्च करना पड़ता है। इसके लिए उसे ऋण लेना होता है या अपनी भूमि व मकान तथा जायदाद को गिरवी रखना या बेचना होता है, अपनी बैलगाड़ी और उत्पादन के साधनों की समाप्ति के कारण आय भी समाप्त हो जाती है और उसे मजदूरी द्वारा जीवन-यापन करना पड़ता है। ब्याज की दर भी इतनी ऊंची होती है कि एक बार ऋण के जाल में फंसने पर व्यक्ति के लिए

कई पीढ़ियों तक ऋण से मुक्ति पाना बड़ा कठिन होता है। अन्ध-विश्वास और धर्म रूढ़िवादिता के कारण कई लोग गरीबी को ईश्वर की देन मानते हैं।

(14) अज्ञानता और अशिक्षा—भारत में बहुत कम लोग ही शिक्षित हैं और यहां तो शिक्षा का नितान्त अभाव है। शिक्षा की कमी के कारण लोग अज्ञानी होते हैं, वे तर्क दृष्टिकोण के स्थान पर भावात्मक दृष्टि से ही किसी वस्तु का मूल्यांकन करते हैं। ग्रामीणों की अशिक्षा और अज्ञानता का लाभ जमींदार और साहूकार उठाते है और उनका आर्थिक शोषण करते है।

(15) प्राकृतिक साधनों का अपूर्ण दोहन—भारत मे प्राकृतिक वस्तुओं की प्रचुरता। कोयला, लोहा, यूरेनियम, अभ्रक, शीशा, ग्रेफाइट, समुद्री खनिजों और अनेक प्रकार के खनिज पदार्थों का भारत मे प्रचुर भण्डार है। किन्तु साधनों के अभाव के कारण उनका पूरी तरह से दोहन नही किया गया है। कृषि योग्य भूमि में ही प्रति एकड़ उपज बहुत कम। जिसके बढ़ाये जाने की काफी सम्भावना है। इसलिए ही कहा जाता है कि भारत एक धनी देश है जिसमे गरीब लोग निवास करते हैं।

(16) आलस्य और निष्क्रियता—भारत में काफी लोग आलसी और निष्क्रिय भी हैं। इस निष्क्रियता के लिए यहां की सामाजिक एवं भौगोलिक परिस्थितियां, भाग्य पर विश्वास, उदासीनता तथा बुरा स्वास्थ्य आदि उत्तरदायी हैं। भारतीयों की आलसी प्रवृति का उल्लेख करते हुए गुन्नार मिर्डल लिखते हैं, "यदि आप अपनी अगली छुट्टियां देश के किसी भीतरी हिस्से के किसी दूर गांव में वितायें तो आप देखेगे कि लोग निरुत्साहित और भय से ग्रस्त है। आपको टूटे-फूटे मकान देखने को मिलेंगे, आपको ढोर (पशु) बहुत ही बुरी हालत में देखने को मिलेंगे। इन सब बातों के बावजूद आप यह देखेंगे कि सर्वत्र आलस्य व्याप्त है।"[1] यहां के लोग स्वयं अपनी परिस्थितियों को सुधारने के लिए उत्साहित नजर नहीं आते। उन्होने अपनी दशा को सुधारने के लिए साधारणतः संघर्ष या आन्दोलन नहीं किये हैं। वे अपनी मांगों को प्रकट करने के प्रति उदासीन रहे हैं और संगठित होकर हितों की रक्षा के लिए कुछ अपवादो को छोड़कर शायद ही कभी प्रयत्नशील रहे हों।

(17) नरम राज्य (Soft State)—गुन्नार मिर्डल सभी अविकसित राष्ट्रो में गरीबी का एक कारण 'नरम राज्य' मानते है। नरम राज्य का अभिप्राय उस सामाजिक अनुशासनहीनता से है जो विभिन्न रूपों में प्रकट होती है, जैसे कानून की कमियां तथा कानून के पालन और लागू करने की खामियां, विभिन्न स्तरों पर सरकारी अफसरों द्वारा इन नियमों और निर्देशों की व्यापक अवहेलना जिनका उन्हें पालन करना एवं करवाना होता है। अक्सर उनकी ऐसे शक्तिशाली व्यक्तियो और समूहों से सांठ-गांठ होती है जिनके आचरण को नियमित बनाने की जिम्मेदारी इन अफसरों पर होती है। नरम राज्य की संकल्पना के अन्तर्गत भ्रष्टाचार भी आता है।[2] नरम राज्यो में जिन लोगों के पास सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक सत्ता होती है, वे शोषण और मनमाना आचरण करते हैं। स्पष्ट है कि नरम राज्य में भ्रष्टाचार के कारण उच्च वर्ग निम्न वर्ग का शोषण करता है और जब इस शोषण के विरुद्ध शोषित शिकायत करते हैं, तो उनकी कोई सुनवाई नहीं होती। अतः उन्हें दबकर रह जाना होता है और गरीबी में दिन काटने पड़ते हैं।

1. गुन्नार मिर्डल, विश्व निर्धनता की चुनौती, पृ. 112।
2. *Ibid*, p 185.

(18) सुधार नीतियों की असफलता—जब कभी भी नीचे के वर्ग के लोगों के सुधार के लिए नीतियां बनायी जाती है तो या तो उन्हें लागू ही नहीं किया जाता या उनके रूप को इस प्रकार से विकृत कर दिया जाता है कि उनका लाभ गरीबों को नहीं मिल पाता। यह बात हम पूर्व प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा घोषित 20-सूत्रीय कार्यक्रमों के सन्दर्भ में देख सकते हैं। किसानो के लिए न्यूनतम कृषि मजदूरी अथवा फसल में जमींदार के अधिकतम हिस्से अथवा सूदखोर की अधिकतम ब्याज की सीमा निर्धारित करके या भूमिहीनो को भूमि का वितरण करने के नियम बनाकर विधान सभाएं और संसद श्रमिकों, किसानो और गरीबो के प्रति अपनी उदारता का परिचय देती हैं किन्तु उन्हें सच्चे अर्थो में कभी लागू नही किया जाता। मिर्डल कहते है कि "सारी राजनीतिक, कानूनी और प्रशासकीय प्रणाली गरीब लोगों के व्यापक जन-समुदाय के विरुद्ध इस प्रकार खड़ी दिखायी देती है कि ऐसे कानूनों को व्यावहारिक रूप से लागू ही नहीं कर सकते।"[1]

(19) औद्योगीकरण और पूंजीवाद—उत्पादन के परम्परागत साधनों का स्थान जब मशीनो ने लिया तो फैक्टरी प्रणाली अस्तित्व में आयी। बडे-बड़े उद्योग स्थापित किये गये, परिणामस्वरूप ग्रामीण कुटीर-उद्योग प्रायः नष्ट हो गये और कुटीर व्यवसायों के मालिक कारखानों में मजदूरो के रूप में काम करने लगे। कई लोगों को परम्परागत व्यवसाय की समाप्ति के कारण बेकारी का सामना करना पड़ा और वे निर्धन हो गये।

औद्योगीकरण ने पूंजीवादी व्यवस्था को जन्म दिया। कारखाना लगाने के लिए बड़ी मात्रा में पूंजी की आवश्यकता होती है जो केवल पूंजीपति ही जुटाने में समर्थ होते हैं। नवीन औद्योगिक व्यवस्था ने समाज में मजदूर और मालिक दो स्पष्ट वर्ग खड़े कर दिये। मालिक श्रमिकों का शोषण करने लगे। इस व्यवस्था ने पूंजीपतियों को और अधिक पूंजीपति तथा गरीबों को और अधिक गरीब बना दिया।

स्पष्ट है कि गरीबी के कारण और उसकी उत्पत्ति जटिल है। भारत में इस भयंकर आर्थिक-सामाजिक समस्या को जन्म देने में अनेक कारको का योग रहा है जिसमें विदेशी शासन, उच्च वर्ग द्वारा शोषण, जनाधिक्य, पूंजी का अभाव, शिक्षा का अभाव, आकांक्षाओं और आर्थिक प्रोत्साहन का अभाव, स्वास्थ्य एवं शक्ति का अभाव, अकुशल प्रशासन, भ्रष्टाचार, पुरातन समाज व्यवस्था जिसमें सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता का अभाव तथा शोषणकारी भूमि व्यवस्था आदि प्रमुख हैं।

निर्धनता के दुष्प्रभाव
(EVIL EFFECTS OF POVERTY)

गरीबी को किसी भी दृष्टि से उचित नहीं ठहराया जा सकता। सभी व्यक्ति चाहते हैं कि धन अर्जन कर जीवन-स्तर को उन्नत किया जाय। गरीबी की स्थिति में व्यक्ति को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। हम यहां गरीबी के दुष्प्रभावों का उल्लेख करेंगे :

(1) गरीबी के शारीरिक प्रभाव (Physical Effects of Poverty)—गरीबी शारीरिक कमियों को जन्म देती है। क्षय रोग को गरीबों की बीमारी माना गया है। गरीबों में क्षय रोग की अधिकता के कारण गरीबी व क्षय रोग का सह-सम्बन्ध बताया जाता है। लम्बी बीमारी और कार्य न करने की क्षमता भी लोगों को गरीब बनाती है। धन के अभाव में गरीब लोग

1 *Ibid*., p. 195.

चिकित्सा की सुविधाएं नहीं जुटा पाते। लम्बे समय तक बीमारी चलती रहने पर ग
हो जाता है। गरीबी के कारण कई लोगों को सन्तुलित आहार तो क्या भरपेट भो
नही मिल पाता। पर्याप्त भोजन और चिकित्सा के अभाव में मृत्यु दर में भी वृद्धि हो
है। अमरीका में अनेक अध्ययनो से यह ज्ञात हुआ कि धनवानों की अपेक्षा गरीबों में
की मृत्यु दर, गर्भपात तथा मरे हुए बच्चे पैदा होने की संख्या अधिक थी।[1] गरीबी के क
ही लोगो को व्यावसायिक थकान, चिकित्सा के प्रति उपेक्षा, गन्दे मकान, मनोरंजन
अभाव, बुरा स्वास्थ्य, छूत की बीमारियों एवं कुपोषण आदि समस्याओं का सामना क
पड़ता है।

(2) मानसिक प्रभाव (Mental Effects)—गरीबी कुपोषण और छूत के रोगों
जन्म देती है जिनका मानसिक स्थिति पर भी प्रभाव पड़ता है। गरीबी कुपोषण के लिए उ
कुपोषण मानसिक कमियों के लिए उत्तरदायी है। एल. जे. रॉबर्ट्स ने कई गरीब बच्चों क
मानसिक परीक्षण किया तो पाया कि उनका बौद्धिक स्तर निम्न था। इसके लिए कुपोषण
तथा निम्न सामाजिक स्थिति उत्तरदायी है जो गरीबी की देन है। मस्तिष्क का सुझाव
छूत के रोगो के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है और बीमारी का गरीबी से। गरीबी के कारण उचि
शिक्षा-दीक्षा नही हो पाने पर बौद्धिक विकास भी प्रभावित होता है। वर्तमान मे सरकार द्वा
निम्न और पिछड़ी जातियों को आर्थिक एवं शैक्षणिक सुविधाएं दी जा रही हैं जिससे उनके
मानसिक क्षितिज का भी विस्तार हुआ है।

(3) सामाजिक प्रभाव (Social Effects)—गरीबी व्यक्ति की सामाजिक प्रस्थिति, पद
भूमिका आदि को भी प्रभावित करती है। गरीबी का अर्थ है निम्न सामाजिक प्रस्थिति और
निम्न सामाजिक प्रस्थिति एक ऐसे समाज में जहां खुली वर्ग व्यवस्था है व्यक्ति पर प्रभाव
डालती है।[2] अधिकांश अपराधी, बाल-अपराधी, भगोड़े, आवारा एवं मानसिक रूप से असन्तुलित
व्यक्ति गरीब परिवारों के ही होते हैं। गरीबों के साथ मुख्य समस्या उनकी गरीबी है। गरीबी
लोगो में हीनता की भावना पैदा करती है और ऐसे लोग दूसरों से प्रतिस्पर्द्धा करने मे असमर्थ
होते है। गरीबी को जे. बी. हरी[3] ने उत्पादन क्षमता कम करने, निराशा पैदा करने तथा
असामंजस्य उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी माना है।

(4) गरीबी गरीबी को उत्पन्न करती है (Poverty begets Poverty)—निर्धनता एक
कुचक्र है। लोग इसलिए बीमार रहते हैं कि वे गरीब है, लोग गरीब इसलिए हैं कि वे बीमार
है। निर्धन व्यक्ति को पर्याप्त भोजन नही मिलता है। अतः उसकी कार्यक्षमता घट जाती है।
कार्यक्षमता घटने पर कम आय प्राप्त होती है और व्यक्ति निर्धन रहता है। प्रो. नर्कसे कहते
है कि कोई देश इसलिए निर्धन है कि वह निर्धन है।

(5) निर्धनता और अपराध—गरीबी के कारण लोग अपराध करते हैं। अपराध और
बाल-अपराध के कई अध्ययन इस बात को स्पष्ट करते है कि जिन लोगों ने अपराध किया,
वे साधारणत: गरीब परिवारों के थे तथा उनके पास खाने, पीने, रहने, शिक्षा और चिकित्सा

1 National Health Survey in Beuhah Amidon, who can afford Health? Bernard J. Stern, *Society and Medical Progress*, pp 126-141.

2 "Poverty is by definition an inferior status and inferior status puts its mark on a person even in a society with an open class system."
—W. W. Weaver, *op. cit.*, p 935

3 J. B Hurry, *Poverty and its Vicious Circles* (1921)

आदि की पर्याप्त सुविधाएं नहीं थीं। भूख से मुक्ति पाने और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लोग चोरी, डकैती, सेंधमारी, रिश्वत, भ्रष्टाचार, गबन, मिलावट, चोरी-छिपे माल ले जाने, आदि अपराधों का सहारा लेते हैं।

(6) **गरीबी और पारिवारिक विघटन**—गरीबी के कारण परिवार के सभी सदस्यों को काम करना पड़ता है। माता और पिता काम पर चले जाते है और बच्चे भी छोटे-मोटे काम करने लगते हैं। बच्चों पर माता-पिता का नियन्त्रण शिथिल हो जाता है। गरीबी से मुक्ति पाने के लिए कभी-कभी स्त्रियां वेश्यावृत्ति तक भी अपना लेती हैं। कम आय होने पर परिवार के सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती, ऐसी स्थिति में उनमे परस्पर तनाव, मनमुटाव और संघर्ष की स्थिति पैदा होती है। गरीब परिवार की सामाजिक प्रतिष्ठा भी गिर जाती है। बच्चे भगोडे और आवारा हो जाते हैं। सदस्यो में हीनता की भावना और निराशा पैदा हो जाती है। ये सभी परिस्थितियां सुदृढ़ पारिवारिक संगठन के लिए खतरे के संकेत हैं। ऐसी स्थिति में परिवार का सुचारु रूप से चलना असम्भव हो जाता है।

गरीबी के कारण लोगो का जीवन-स्तर गिरता है, ये अपनी मौलिक आवश्यकताओ की पूर्ति भी नहीं कर पाते। गरीबी के कारण वैयक्तिक विघटन भी उत्पन्न होता है। गरीब व्यक्ति शारीरिक और मानसिक दृष्टि से दुर्बल व्यक्तित्व का होता है। वह शारीरिक व मानसिक बीमारियों तथा कुण्ठा, हीनता, निराशा,आदि की भावना से ग्रसित हो जाता है।

(7) **भिक्षावृत्ति**—गरीबी भिक्षावृत्ति के लिए भी उत्तरदायी है। इसका कारण यह है कि गरीब लोगों के पास पर्याप्त साधन नहीं होते, व्यावसायिक प्रशिक्षण और शिक्षा का अभाव होता है। शारीरिक क्षमता के अभाव के कारण ये लोग कठिन परिश्रम नही कर पाते। ऐसे लोग भीख मांग कर ही जीवन-यापन करते हैं।

(8) **दुर्व्यसनो में वृद्धि**—गरीबी के कारण लोग मानसिक चिन्ता एवं निराशा से ग्रस्त हो जाते हैं। इनसे मुक्ति पाने के लिए वे कई बुराइयों को पाल लेते हैं। कई लोग तनाव को कम करने के लिए शराब पीने लगते है, जुआ खेलने लगते है एवं वेश्यागमन करने लगते हैं।

(9) **चारित्रिक पतन**—गरीबी के कारण उच्च चरित्र बनाये रखना सम्भव नहीं हो पाता। आर्थिक अभाव के कारण कभी-कभी बाध्य होकर स्त्रियां अपना तन बेचकर परिवार का भरण-पोषण करने लगती है, कुछ स्त्रियां तो गरीबी के कारण ही वेश्यावृत्ति अपनाती है।

स्पष्ट है कि गरीबी एक भयंकर सामाजिक-आर्थिक समस्या है जो लोगों में शारीरिक व मानसिक बीमारी उत्पन्न करती है, उनकी कार्यक्षमता घटाती है, भुखमरी और बेरोजगारी को जन्म देती है, पारिवारिक, वैयक्तिक और सामाजिक विघटन को उत्पन्न करती है। इसके कारण समाज में अपराध की दर बढ़ती है, लोग कुपोषण के शिकार होते है और उनका जीवन-स्तर गिर जाता है।

भारत में निर्धनता को समाप्त करने हेतु किये गये प्रयास
(EFFORTS MADE IN INDIA TO ERADICATE POVERTY)

भारत सरकार ने गरीबी को समाप्त करने के लिए विशेष प्रयत्न किये है। गांवों की दशा सुधारने के लिए सामुदायिक विकास योजनाएं प्रारम्भ की गयी जिनमे कृषि, पशु-पालन, कुटीर उद्योग, लघु उद्योग, सहकारी समितियां, शिक्षा, यातायात आदि अनेक विषयों के विकास पर जोर दिया गया। बेकारी को दूर करने के लिए रोजगार के नये अवसर किये गये तथा विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में गरीबी व बेकारी को दूर करने, के

जीवन-स्तर को उन्नत करने, उत्पादन और राष्ट्रीय आय में वृद्धि करने, आदि के योजनावद्ध प्रयत्न [ ]ये गये। मकान, बिजली, पानी, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि की सुवि उपलब्ध कराने तथा अनुसूचित जातियों और जनजातियों के कल्याण कार्यक्रमों पर जोर दि गया। निर्धनता को सम[ ]त करने के लिए सरकार द्वारा किये गये प्रयास निम्नलिखित हैं:

(1) पंचवर्षीय योजनाएं (Five Year Plans)—प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) 2378 करोड़ रुपये विभिन्न कार्यक्रमों पर खर्च करने के लिए रखे गये जिनमें से केवल भाग ही खर्च हो पाया। प्रथम पंचवर्षीय योजना में मुद्रा-स्फीति को रोकने एवं खाद्यान्न के अभाव को दूर करने, लोगों का जीवन-स्तर ऊंचा करने और उन्हें अच्छा जीवन व्यतीत करने की सुविधाएं देने आदि के लक्ष्य तय किये गये। कृषि श्रमिकों की स्थिति में सुधार लिए कई कार्य किये गये जैसे कम मजदूरी वाले क्षेत्र में न्यूनतम मजदूरी तय करना, भूमिहीन श्रमिकों के लिए पुनर्वास योजना बनाना, भूमिक सहकारिताओं का संगठन, निवास स्थान के सम्बन्ध में श्रमिकों को दखली अधिकार देना, आदि। इस योजना-काल में बढ़ती हुई बेरोजगारी को दूर करने के लिए 309 करोड़ रुपयों की अतिरिक्त व्यवस्था की गयी। प्रथम पंचवर्षीय योजना-काल में 45 लाख लोगों को प्रत्यक्ष रूप में रोजगार दिया गया। इस अवधि में राष्ट्रीय आय में 18 प्रतिशत की तथा प्रति व्यक्ति आय में 11 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61) में मूल उद्योगों के विकास पर जोर दिया गया और योजना की 20% रकम उद्योगों पर खर्च करने का प्रावधान किया गया। देश का औद्योगीकरण करने के लिए 690 करोड़ रुपये खर्च करने का प्रावधान रख कर देश में तीव्र औद्योगिक विकास का कार्यक्रम तैयार किया गया। गांवों और लघु उद्योगों के विकास के लिए 200 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गयी। इस योजना-काल में श्रम सहयोग समितियों की स्थापना, कुटीर और लघु उद्योगों द्वारा गांवों में रोजगार के अवसर बढ़ाने, भूमि के पु वितरण करने और शिक्षा के विस्तार आदि पर विशेष जोर दिया गया। पिछड़े वर्ग के लोगों के उद्धार के लिए 90 करोड़ रुपये व्यय किये गये। इस योजना-काल में कुल 4672 करोड़ रुपये खर्च किये गये। इस काल में खाद्य-सामग्री में अधिक वृद्धि मौसम की खराबी के कारण नहीं हो सकी। दूसरी पंचवर्षीय योजना में एक करोड़ लोगों को रोजगार देने का लक्ष्य था जिसमें 65 लाख लोगों को गैर-कृषि क्षेत्र में खपाया गया। इस अवधि में 12.5 प्रतिशत वृद्धि हुई।

तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961-66) का लक्ष्य राष्ट्रीय आय में 5% प्रतिवर्ष की दर अधिक वृद्धि करना तथा प्रतिवर्ष उपभोग को 4% से अधिक बढ़ाना था। प्रति व्यक्ति आय में 17 प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य भी रखा गया। खाद्य-सामग्री के क्षेत्र में आत्म-निर्भर होने तथा औद्योगिक मांगों के लिए कृषि की उपज बढ़ाने तथा आय व सम्पत्ति की असमानता को समाप्त करने का लक्ष्य रखा गया। इस योजना पर कुल 12,767 करोड़ रुपये खर्च किये गये। इस योजना-काल में कृषि-श्रमिकों की स्थिति सुधारने पर पर्याप्त जोर दिया गया। इस लिए विभिन्न विकास कार्यक्रमों जैसे कुटीर एवं लघु उद्योगों का विकास, ग्रामीण विद्युतीकरण ामीण आवास, जल सिंचाई, कृषि उत्पादन में वृद्धि तथा शिक्षा आदि पर विशेष ध्यान दिया या। इस योजना-काल में राष्ट्रीय आय में केवल 2.6 प्रतिशत वृद्धि हो पायी।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969-74) में कुल 22,862 करोड़ रुपये खर्च किये गये। इस के तीन प्रमुख उद्देश्य थे, राष्ट्रीय आय में 5.5 प्रतिशत वृद्धि करना, आ

ह्रास करना, विकास के लाभों का समान रूप से वितरण तथा वृद्धि। इस योजना-काल में भूमिहीन कृषि मजदूरों को भूमि वितरण तथा उन्हें पशुपालन व उद्योग में लगाने का कार्यक्रम भी रखा गया। भूमिहीन किसानों को बसाने के लिए 5.54 करोड़ रुपये खर्च किये गये। पिछड़े वर्गों के कल्याण के लिए 134 करोड़ 37 लाख रुपये खर्च किये गये। इस योजना-काल में 1 करोड़ 20 लाख से 1 करोड़ 40 लाख लोगों को रोजगार देने की व्यवस्था की गयी। इस योजना-अवधि में थोक मूल्य-सूचकांक में 70 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-79)—इस योजना में गरीबी दूर करने के लिए प्रति व्यक्ति उपभोग बढ़ाने एवं कीमतों को स्थिर रखने के प्रयासों पर जोर दिया गया। इसमे मुख्य जोर लोगों को गरीबी-रेखा से ऊपर उठाने पर दिया गया। योजना मे राष्ट्रीय आय में 5.5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य रखा गया। इस योजना में नौकरी की सुविधाएं बढ़ाने, आत्म-निर्भरता प्राप्त करने, न्यूनतम मजदूरी तय करने तथा निर्यात को बढ़ावा देने का प्रयत्न किया गया। इस योजना के लक्ष्यों को खाद्यान्नों के अतिरिक्त किसी भी अन्य क्षेत्र में प्राप्त नहीं किया जा सका।

छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85)—छठी पंचवर्षीय योजना में निर्धनता-निवारण, आर्थिक वृद्धि, आय के वितरण में असमानता को दूर करने, कमजोर वर्गों के रहन-सहन के स्तर को ऊंचा उठाने व जनसंख्या-नियन्त्रण से सम्बन्धित कार्यक्रमों पर विशेष जोर दिया गया। इस योजना पर 1,58,710 करोड़ रुपये खर्च किये गये। यह योजना पिछली योजनाओं की तुलना में अधिक सफल रही। इस अवधि में वृद्धि-दर 5 2 प्रतिशत से अधिक रही। नेशनल सेम्पल सर्वे के अनुसार जहां 1977-78 में गरीबी-रेखा से नीचे जीवन बिताने वाले लोगों का प्रतिशत 48.3 था, वहां 1984-85 में यह घट कर 36 9 रह गया।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90)—इस योजना की तीन प्राथमिकताएं थीं : खाद्यान्न, काम (रोजगार) तथा उत्पादन बढ़ाना। इसमें नौकरी के अवसर बढ़ाने, निर्धनता को कम करने तथा निर्धन लोगों के जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने पर विशेष जोर दिया गया। इस योजना-अवधि में अर्थात् 1990 तक गरीबी-रेखा के नीचे जीवन जीने वालों का प्रतिशत 37 से घट कर 26 हो जाने की आशा की गयी। निर्धनता समाप्त करने के लिए इस योजना में स्वरोजगार, मजदूरी रोजगार, समन्वित ग्रामीण रोजगार, भूमि सुधार, आदि कार्यक्रमों पर विशेष ध्यान दिया गया। इस योजना के लिए 1,80,000 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया। यह योजना अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में असफल रही।

आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97)—यह योजना 1 अप्रैल, 1992 से प्रारम्भ की गयी। इस योजना हेतु 7,92,000 करोड़ रुपये खर्च करने का प्रावधान किया गया। इसमें से आधी राशि सरकार द्वारा और शेष आधी राशि निजी क्षेत्र द्वारा खर्च की जायेगी। इसमें रोजगार के अवसर बढ़ाने पर विशेष जोर दिया गया है। इस दृष्टि से लघु उद्योगों को काफी प्रोत्साहन दिया जायेगा। इस योजना में अगले दस वर्षों में पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त कर लेने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। इस योजना में 5.5 प्रतिशत वृद्धि दर का लक्ष्य रखा गया है।

(2) काम के बदले अनाज योजना—गरीबी समाप्त करने के लिए सरकार ने काम के बदले अनाज योजना भी हाथ में ली। 1977-78 में इस योजना पर 29 करोड़ रुपये खर्च किये गये एवं 1978-79 में 120 करोड़ रुपये खर्च किये गये। 1980 में इस योजना का

नाम वदल कर राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (NREP) कर दिया गया और इसे छ योजना का आवश्यक कार्यक्रम वना दिया गया। इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण श्रमिकों के खाली समय में रोजगार प्रदान करना है। सातवी योजना में इस कार्यक्रम के लिए 2,487 करोड़ रुपयों का प्रावधान किया गया।

(3) अन्त्योदय योजना—इस योजना के अन्तर्गत प्रत्येक गांव मे से पांच निर्धनतम परिवारो का चयन किया जाता है और उन्हें आत्मनिर्भर वनने एवं व्यवसाय करने, के लिए सरकार द्वारा आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। इस योजना का शुभारम्भ सर्वप्रथम राजस्थान सरकार ने 2 अक्टूबर, 1978 में किया। उसके वाद उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश विहार एवं देश के अन्य प्रान्तों ने भी इसे अपनाया।

(4) कृषि का विकास—निर्धनता को दूर करने के लिए सरकार ने कृषि के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी है। इस सन्दर्भ में पड़त भूमि को जोतने व बंजर भूमि को उपजाऊ वनाने के प्रयास किये गये हैं। किसानों को उन्नत किस्म के वीज, खाद एवं कृषि यन्त्र उपलब्ध कराये गये है जिससे कि उत्पादन मे वृद्धि हो। सिंचाई के लिए कुओं, तालावो, नलकूपों, छोटे एवं वड़े वांधो का निर्माण किया गया है। सातवीं योजना में कृषि के विकास पर 10,573 6 करोड़ रुपये खर्च करने का प्रावधान किया गया।

(5) परिवार कल्याण—विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा वढ़ती जनसंख्या पर रोक लगायी गयी है। परिवार कल्याण कार्यक्रम के द्वारा मार्च, 1994 तक 16.09 करोड जन्म रोके गये। सातवी योजना में परिवार कल्याण एवं स्वास्थ्य पर 9 अरव रुपये खर्च किये गये। जनवरी, 1994 तक देश में 32 77 लाख वन्ध्याकरण के ऑपरेशन किये गये तथा 42 94 लाख लूप लगाये गये।

(6) ग्रामीण विकास—ग्रामों के विकास के लिए यहां सामुदायिक विकास योजनाएं प्रारम्भ की गयीं जिनके अन्तर्गत भूमि सुधार, सिंचाई की सुविधा, पशु-पालन, मुर्गीपालन, रेगिस्तान का विकास, स्वास्थ्य, शिक्षा, पीने के पानी, विजली, सड़कों एवं आवास की सुविधा का प्रवन्ध किया गया है। देश मे गरीवी रेखा के स्तर से नीचे के करीव 26 प्रतिशत लोगों में अधिकांश लोग ग्रामीण क्षेत्रो में हैं। अतः ग्रामीण क्षेत्रों का विकास गरीवी समाप्ति के लिए आवश्यक है। गांवों में गरीबी और वेकारी को समाप्त करने के लिए एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP) भी प्रारम्भ किया गया है। सातवी योजना में इस कार्यक्रम पर 8,906 करोड़ रुपये खर्च किये गये।

(7) बड़े उद्योगों का विकास—निर्धनता को समाप्त करने के लिए सरकार ने वड़े-वड़े उद्योगों की स्थापना की है। उनमें से प्रमुख हैं—सिन्दरी का खाद का कारखाना; राउरकेला, दुर्गापुर, वोकारो व भिलाई के इस्पात के कारखाने; चितरंजन में रेल इंजन व वनारस में डीजल इंजन वनाने व विशाखापट्टनम मे जहाज वनाने, वंगलौर में एच. एम. टी. की घड़ियां व अन्य मशीनें तथा औजार वनाने का कारखाना, आदि। सातवीं पंचवर्षीय योजना मे उद्योगों एवं खनिज पर 22,415,55 करोड़ रुपये खर्च किये गये।

(8) कुटीर उद्योगों का विकास—निर्धनता को समाप्त करने के लिए जहां सरकार ने एक ओर वड़े-वड़े उद्योगों की स्थापना की है, वहीं दूसरी ओर कुटीर एवं ग्राम उद्योगो को भी दिया है। इन उद्योगों से लाखों लोगों को रोजगार प्राप्त होता है। सातवीं पंचवर्षीय

जना में लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास हेतु 3,249 करोड़ रुपये किए गये तथा आठवी जना में इनके विकास के लिए 6,334 करोड़ रुपए व्यय करने का प्रावधान किया गया है।

(9) नया बीस-सूत्रीय कार्यक्रम—श्रीमती गांधी ने संकट-काल में 1 जुलाई, 1975 को र्धनता का उन्मूलन करने के लिए 20-सूत्रीय कार्यक्रम की घोषणा की। वर्तमान में नया 0-सूत्री कार्यक्रम चल रहा है जिसके अन्तर्गत समग्र ग्रामीण विकास एवं राष्ट्रीय ग्रामीण गार कार्यक्रम को मजबूत बनाना तथा विस्तार करना, अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों विकास से सम्बन्धित कार्यक्रम में तेजी लाना, झुग्गी-झोंपड़ी बस्तियों के वातावरण मे सुधार ना, कमजोर वर्ग के लिए आवास की व्यवस्था करना, बन्धुआ मजदूरी एवं बेगार की प्रथा समाप्त करना, ग्रामीण ऋणग्रस्तता को समाप्त करना, कृषि मजदूरी की न्यूनतम सीमा करना, सिंचाई की व्यवस्था करना, विद्युत उत्पादन को बढ़ावा, हथकरघे के उद्योगों का कास करना, शिक्षित लोगों को प्रशिक्षण एवं रोजगार प्रदान करना, आर्थिक अपराधियों कठोर दण्ड देना, विद्यार्थियों को उचित मूल्य पर पुस्तकें, लेखन-सामग्री एवं वस्तुएं राना, आदि प्रमुख कार्यक्रम हैं। यदि इन कार्यक्रमों पर सही ढंग से अमल किया जाता तो निर्धनता दूर करने में अवश्य ही सफलता मिलेगी।

(10) शक्ति योजनाएं—बिजली पैदा करने के लिए सरकार ने विभिन्न शक्ति योजनाएं से नांगल, थोकारो, मोपार, खापड़खेड़ा, चम्बल योजना, दामोदर घाटी योजना, मचकुण्ड एं पथरी आदि योजनाएं निर्मित की हैं। ये सभी देश के आर्थिक विकास की मुख्य कड़ियां है।

(11) पोषाहार कार्यक्रम—गरीब एवं पिछड़े वर्ग के लोग कुपोषण से ग्रस्त हैं, अतः में कार्यक्षमता का अभाव पाया जाता है। इसे दूर करने के लिए सरकार ने पोषाहार र्यक्रम प्रारम्भ किया है। इसके अन्तर्गत बच्चो एवं गर्भवती महिलाओं एवं स्तनपान कराने ली माताओ को विटामिन एवं प्रोटीनयुक्त भोजन दिया जाता है।

इन कार्यक्रमों के अतिरिक्त सरकार ने भूमिहीन लोगों में आवासीय भूखण्ड एवं षि-योग्य भूमि का वितरण किया है, नगरों में गन्दी बस्तियों की समस्याओं का समाधान रने व मकान बनाने की योजना बनायी है। बन्धुआ मजदूरी प्रथा समाप्त करने के लिए 976 में अधिनियम बनाया गया तथा लोगों को शिक्षा, शुद्ध पेयजल आदि उपलब्ध कराने लिए पंचवर्षीय योजनाओं में विशेष धनराशि रखी गयी। एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम, मीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम, ग्रामीण युवा वर्ग को स्वरोजगार में प्रशिक्षण े का कार्यक्रम (TRYSEM), शिक्षित बेरोजगार युवकों के लिए स्वरोजगार प्रदान करने कार्यक्रम, राज्य सरकारों द्वारा चलाये गये। विशेष रोजगार कार्यक्रम आदि के द्वारा भी र्धनता को समाप्त करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

निर्धनता-निवारण हेतु किये गये प्रयत्न : एक मूल्यांकन
(EFFORTS MADE FOR POVERTY ELEVATION : AN EVALUATION)

यदि हम पिछली चार दशाब्दियो के नियोजन का मूल्यांकन करे तो पायेगे कि प्रथम वं छठी पंचवर्षीय योजनाओं को छोड़कर किसी अन्य के निर्धारित लक्ष्यो की पूर्ति नही हो की। पिछले 40 वर्षों मे आर्थिक वृद्धि की औसत दर 3 प्रतिशत रही है जो अन्य विकासशील शों की तुलना में काफी कम है। 1951 से 1991 की अवधि में हमारी वार्षिक आय करीव .5 प्रतिशत बढी है तथा प्रति व्यक्ति उपभोग में केवल 1.1 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। यद्यपि रकारी आंकड़ो के अनुसार गरीबी-रेखा के नीचे का जीवन जीने वालों का प्रतिशत करीब

26 ही रह गया है (अर्थशास्त्रियों के अनुसार यह करीब 40 प्रतिशत है), परन्तु देश में व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि हुई है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि देश में गरीबी हुई है। आठवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत विभिन्न मदों पर करोड़ों-अरबों रुपया खर्च कर दिया जायेगा, क्या इससे बेकारी और गरीबी कम हो सकेगी? क्या इससे गरीब के जीवन-स्तर को ऊंचा उठाया जा सकेगा। 40 वर्षों के नियोजन से अब तक तो यह नहीं हो सका है।

निर्धनता समाप्त करने हेतु सुझाव
(SUGGESTIONS TO ERADICATE POVERTY)

निर्धनता की समस्या को हल करने हेतु यहां कुछ सुझाव दिये जा रहे हैं :

(1) **बेकारी को दूर करना**—बेकारी को दूर करने के सभी सम्भव प्रयास किये जायें। ग्रामीण लोग वर्ष मे 4-5 महीने बेकार बैठे रहते हैं, अतः ग्रामों में कुटीर व्यवसायों एवं बेकारी के समय के लिए कृषि से सम्बन्धित व्यवसायों की व्यवस्था की जाय। इस सन्दर्भ में हम 'बेकारी' के अध्याय मे विस्तार से उपायों का उल्लेख किया गया है।

(2) **जनसंख्या पर नियन्त्रण**—तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या हमारे आर्थिक विकास की योजनाओं को शिथिल कर देती है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि बढ़ती जनसंख्या पर रोक लगाने के लिए भारतीय-संस्कृति एवं समाज के अनुरूप विधियों का प्रयोग किया जाय तथा परिवार कल्याण से सम्बन्धित कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक लागू किया जाय। जनसंख्या नियन्त्रण के विभिन्न साधनो का उल्लेख हम 'जनसंख्या समस्या एवं नियन्त्रण कार्यक्रम' वाले अध्याय में विस्तार से किया गया है।

(3) **कृषि व्यवस्था में सुधार**—कृषि के परम्परागत तरीकों के स्थान पर नवीन तरीकों, उन्नत बीज, खाद एवं नवीन सिंचाई के साधनों का उपयोग किया जाय। कृषि मे हरित क्रान्ति (green revolution) को बढ़ावा देकर कृषि उत्पादन बढ़ाया जाय। कृषि मजदूरों की आर्थिक स्थिति सुधारने हेतु विशेष प्रयत्न किये जायें।

भूमि सुधार के नियम लागू किये जायं और भूमिहीनों में कृषि योग्य भूमि का वितरण किया जाय। सीलिंग एक्ट को कारगर रूप में लागू किया जाय। बन्धक श्रमिकों को मुक्त किया जाय एवं किसानों को ऋण देने के लिए सहकारी संस्थाएं खोली जायं ताकि कृषि क्षेत्र में पूंजी विनियोग में तथा साहूकारों के चंगुल से मुक्त होने में सहायता मिल सके।

(4) **तीव्र आर्थिक विकास**—भारत में आर्थिक विकास की गति धीमी रही है। आर्थिक विकास मे वृद्धि के लिए अधिकाधिक औद्योगीकरण किया जाय, गांवों में छोटे उद्योगों एवं कुटीर व्यवसायों को बढ़ावा दिया जाय तथा साथ ही बड़े कारखाने भी स्थापित किये जायें। इससे बेकारी की समस्या के हल होने के साथ-साथ उत्पादन बढ़ेगा। अब तक हमारे आर्थिक विकास का प्रारूप उत्पादन का रहा है। इसके स्थान पर उपभोग प्रारूप पर विशेष जोर दिया जाना चाहिए।

(5) **साधनों का उचित वितरण**—केवल मात्र राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ाने से ही गरीबी की समस्या का हल नहीं होगा जब तक कि उत्पादन के साधनों और लाभों का समाज के सभी लोगों में समान रूप से वितरण न किया जाय। वर्तमान व्यवस्था में मुनाफा और उत्पादन के कुछ ही लोगों के हाथ में केन्द्रित हैं। ऐसी व्यवस्था कायम की जाय जिससे पूंजी एवं

द सम्पति का समान रूप से वितरण हो। किसानों को सस्ते दामों पर वस्तुएं उपलब्ध करायी जायं। सरकार न्यूनतम आय का निर्धारण कर दे और जिनकी आय इस स्तर से कम हो, उन्हें सहायता प्रदान की जाये। किसानों को उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं का उचित मूल्य मिले, ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए।

(6) भ्रष्टाचार का उन्मूलन किया जाय ताकि गरीबी समाप्त करने हेतु कारगर ढंग से प्रयत्न किये जा सकें।

(7) सामाजिक कुप्रथाओं को समाप्त किया जाय। छुआछूत की समाप्ति की जाये। दहेज, मृत्यु-भोज और अन्य ऐसी ही सामाजिक कुरीतियों की समाप्ति के लिए कठोर कानून बनाये जायं एवं दण्ड की व्यवस्था के साथ-साथ जन-जागरण का कार्यक्रम तैयार किया जाय। इन कुप्रथाओ को निभाने के लिए व्यक्ति को कर्ज लेना पड़ता है, जिससे उसे मुक्ति मिलेगी। ऐसी स्थिति में लोग उस पैसे को अपने जीवन-स्तर को ऊंचा उठानें में लगा सकेंगे।

(8) शिक्षा का प्रसार—औद्योगिक और सामान्य शिक्षा का प्रसार किया जाय जिससे एक तरफ रोजगार के अवसर बढ़ेंगे तो दूसरी ओर अज्ञानता, रूढ़ियों एवं सामाजिक कुरीतियों से भी छुटकारा मिल सकेगा। शिक्षा से मजदूर की कार्यक्षमता, दक्षता और गतिशीलता में वृद्धि होगी। शिक्षा को अधिकाधिक व्यवसाय से जोड़ा जाय तथा शिक्षा की योजना आर्थिक विकास से जुड़ी हुई हो।

(9) योजना की कमियों को दूर किया जाय तथा देश के पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिए प्रयत्न किये जायं।

(10) सामाजिक बीमा योजना—लोगों को युद्ध, प्राकृतिक विपदाओं, संकट, बीमारी, बुढ़ापा, शारीरिक अक्षमता, बेकारी, आदि के समय में सहायता प्रदान करने के लिए सामाजिक बीमा योजना प्रारम्भ की जाय। इस प्रकार की योजना औद्योगिक श्रमिकों के लिए तो प्रारम्भ की जा चुकी है लेकिन ग्रामीणों और किसानों के लिए इस प्रकार की योजना शीघ्रातिशीघ्र लागू की जाय। गरीबों की सहायता करने के लिए मानवीय और धार्मिक दृष्टिकोण से प्रभावित होकर दान देने तथा अनाथों और अपाहिजों के लिए अनाथालय आदि खोलने के प्रयास सदैव किये जाते रहे हैं। किन्तु बिना राजनीतिक संरक्षण के इस प्रकार के उपाय लम्बे समय तक नही चल पाते हैं।

(11) प्राकृतिक विपदाओं जैसे बाढ़, भूकम्प, अनावृष्टि तथा कीड़े-मकोड़ों के प्रकोप, आदि से रक्षा की उचित व्यवस्था की जाय।

(12) मद्य-निषेध को प्रभावशाली ढंग से लागू किया जाय।

(13) गन्दी बस्तियों को समाप्त कर उनके स्थान पर नियोजित बस्तियां बसायी जायं।

(14) स्वास्थ्य-संरक्षण की उचित व्यवस्था की जाय।

(15) देश के उपलब्ध प्राकृतिक साधनों का पूर्ण दोहन किया जाय।

(16) देश में यातायात के साधनों का अधिकाधिक विकास किया जाय।

(17) बचत की आदत को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए, इससे पूंजी की वृद्धि होगी और पूंजी को उत्पादन कार्यों में लगाया जा सकेगा जिससे व्यक्ति एवं राष्ट्र की आय में वृद्धि होगी।

गरीबी की समस्या को हल करने के लिए सरकार ने योजनाबद्ध प्रयत्न किये हैं फिर भी यह समस्या हल होने के स्थान पर दिनोंदिन और गम्भीर होती गयी है। भारत में

26 ही रह गया है (अर्थशास्त्रियों के अनुसार यह करीब 40 प्रतिशत है), परन्तु देश में ग व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि हुई है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि देश में गरीबी ह हुई है। आठवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत विभिन्न मदों पर करोड़ों-अरबों रुपया ख खर्च कर दिया जायेगा, क्या इससे बेकारी और गरीबी कम हो सकेगी? क्या इससे ग के जीवन स्तर को ऊंचा उठाया जा सकेगा। 40 वर्षों के नियोजन से अब तक तो यह नहीं हो सका है।

निर्धनता समाप्त करने हेतु सुझाव
(SUGGESTIONS TO ERADICATE POVERTY)

निर्धनता की समस्या को हल करने हेतु यहां कुछ सुझाव दिये जा रहे हैं :

(1) **बेकारी को दूर करना**—बेकारी को दूर करने के सभी सम्भव प्रयास किये जा ग्रामीण लोग वर्ष में 4-5 महीने बेकार बैठे रहते हैं, अतः ग्रामों में कुटीर व्यवसायों एवं बेकारी के समय के लिए कृषि से सम्बन्धित व्यवसायों की व्यवस्था की जाय। इस सन्दर्भ में हम 'बेकारी' के अध्याय में विस्तार से उपायों का उल्लेख किया गया है।

(2) **जनसंख्या पर नियन्त्रण**—तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या हमारे आर्थिक विकास की योजनाओं को शिथिल कर देती है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि बढ़ती जनसंख्या पर रोक लगाने के लिए भारतीय-संस्कृति एवं समाज के अनुरूप विधियों का प्रयोग किया जाय तथा परिवार कल्याण से सम्बन्धित कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक लागू किया जाय। जनसंख्या नियन्त्रण के विभिन्न साधनों का उल्लेख हम 'जनसंख्या समस्या एवं नियन्त्रण कार्यक्रम' वाले अध्याय में विस्तार से किया गया है।

(3) **कृषि व्यवस्था में सुधार**—कृषि के परम्परागत तरीकों के स्थान पर नवीन तरीकों, उन्नत बीज, खाद एवं नवीन सिंचाई के साधनों का उपयोग किया जाय। कृषि में हरित क्रान्ति (green revolution) को बढ़ावा देकर कृषि उत्पादन बढ़ाया जाय। कृषि मजदूरों की आर्थिक स्थिति सुधारने हेतु विशेष प्रयत्न किये जायें।

भूमि सुधार के नियम लागू किये जायं और भूमिहीनों में कृषि योग्य भूमि का वितरण किया जाय। सीलिंग एक्ट को कारगर रूप में लागू किया जाय। बन्धक श्रमिकों को मुक्त किया जाय एवं किसानों को ऋण देने के लिए सहकारी संस्थाएं खोली जायं ताकि कृषि क्षेत्र में पूंजी विनियोग में तथा साहूकारों के चंगुल से मुक्त होने में सहायता मिल सके।

(4) **तीव्र आर्थिक विकास**—भारत में आर्थिक विकास की गति धीमी रही है। आर्थिक विकास में वृद्धि के लिए अधिकाधिक औद्योगीकरण किया जाय, गांवों में छोटे उद्योगों एवं कुटीर व्यवसायों को बढ़ावा दिया जाय तथा साथ ही बड़े कारखाने भी स्थापित किये जायं। इससे बेकारी की समस्या के हल होने के साथ-साथ उत्पादन बढ़ेगा। अब तक हमारे आर्थिक विकास का प्रारूप उत्पादन का रहा है। इसके स्थान पर उपभोग प्रारूप पर विशेष जोर दिया जाना चाहिए।

(5) **साधनों का उचित वितरण**—केवल मात्र राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ाने से ही गरीबी की समस्या का हल नहीं होगा जब तक कि उत्पादन के साधनों और लाभों का समाज के सभी लोगों में समान रूप से वितरण न किया जाय। वर्तमान व्यवस्था में मुनाफा और उत्पादन के कुछ ही लोगों के हाथ में केन्द्रित हैं। ऐसी व्यवस्था कायम की जाय जिससे पूंजी एवं

सम्पत्ति का समान रूप से वितरण हो। किसानों को सस्ते दामों पर वस्तुएं उपलब्ध करायी जायं। सरकार न्यूनतम आय का निर्धारण कर दे और जिनकी आय इस स्तर से कम हो, उन्हें सहायता प्रदान की जाये। किसानों को उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं का उचित मूल्य मिले, ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए।

(6) भ्रष्टाचार का उन्मूलन किया जाय ताकि गरीबी समाप्त करने हेतु कारगर ढंग से प्रयत्न किये जा सकें।

(7) सामाजिक कुप्रथाओं को समाप्त किया जाय। छुआछूत की समाप्ति की जाये। दहेज, मृत्यु-भोज और अन्य ऐसी ही सामाजिक कुरीतियों की समाप्ति के लिए कठोर कानून बनाये जायं एवं दण्ड की व्यवस्था के साथ-साथ जन-जागरण का कार्यक्रम तैयार किया जाय। इन कुप्रथाओं को निभाने के लिए व्यक्ति को कर्ज लेना पड़ता है, जिससे उसे मुक्ति मिलेगी। ऐसी स्थिति में लोग उस पैसे को अपने जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने में लगा सकेंगे।

(8) शिक्षा का प्रसार—औद्योगिक और सामान्य शिक्षा का प्रसार किया जाय जिससे एक तरफ रोजगार के अवसर बढ़ेंगे तो दूसरी ओर अज्ञानता, रूढ़ियों एवं सामाजिक कुरीतियों से भी छुटकारा मिल सकेगा। शिक्षा से मजदूर की कार्यक्षमता, दक्षता और गतिशीलता में वृद्धि होगी। शिक्षा को अधिकाधिक व्यवसाय से जोड़ा जाय तथा शिक्षा की योजना आर्थिक विकास से जुड़ी हुई हो।

(9) योजना की कमियों को दूर किया जाय तथा देश के पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिए प्रयत्न किये जायं।

(10) सामाजिक बीमा योजना—लोगों को युद्ध, प्राकृतिक विपदाओं, संकट, बीमारी, बुढ़ापा, शारीरिक अक्षमता, बेकारी, आदि के समय में सहायता प्रदान करने के लिए सामाजिक बीमा योजना प्रारम्भ की जाय। इस प्रकार की योजना औद्योगिक श्रमिकों के लिए तो प्रारम्भ की जा चुकी है लेकिन ग्रामीणों और किसानों के लिए इस प्रकार की योजना शीघ्रातिशीघ्र लागू की जाय। गरीबों की सहायता करने के लिए मानवीय और धार्मिक दृष्टिकोण से प्रभावित होकर दान देने तथा अनाथों और अपाहिजों के लिए अनाथालय आदि खोलने के प्रयास सदैव किये जाते रहे हैं। किन्तु बिना राजनीतिक संरक्षण के इस प्रकार के उपाय लम्बे समय तक नहीं चल पाते हैं।

(11) प्राकृतिक विपदाओं जैसे बाढ़, भूकम्प, अनावृष्टि तथा कीड़े-मकोड़ों के प्रकोप, आदि से रक्षा की उचित व्यवस्था की जाय।

(12) मद्य-निषेध को प्रभावशाली ढंग से लागू किया जाय।

(13) गन्दी बस्तियों को समाप्त कर उनके स्थान पर नियोजित बस्तियां बसायी जायं।

(14) स्वास्थ्य-संरक्षण की उचित व्यवस्था की जाय।

(15) देश के उपलब्ध प्राकृतिक साधनों का पूर्ण दोहन किया जाय।

(16) देश में यातायात के साधनों का अधिकाधिक विकास किया जाय।

(17) बचत की आदत को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए, इससे पूंजी की वृद्धि होगी और पूंजी को उत्पादन कार्यों में लगाया जा सकेगा जिससे व्यक्ति एवं राष्ट्र की आय में वृद्धि होगी।

गरीबी की समस्या को हल करने के लिए सरकार ने योजनाबद्ध प्रयत्न किये हैं फिर भी यह समस्या हल होने के स्थान पर दिनोंदिन और गम्भीर होती गयी है। भारत में इस

समस्या के हल के लिए शिक्षा प्रसार, औद्योगीकरण, भूमि सुधार, कृषि में क्रान्ति, भ्रष्टचार निवारण, रोजगार देने, जनसंख्या को नियन्त्रित करने, साधनों का उचित वितरण करने एवं सामाजिक बीमा योजना लागू करने से सम्बन्धित सजग प्रयास किये जाने चाहिए। सारे देश में जीवन-स्तर का न्यूनतम प्रतिमान तय कर दिया जाय एवं उसे जुटाने के लिए सरकार अपने दायित्व को वहन करे, तभी इस समस्या से छुटकारा मिल सकता है। गरीबी को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि लोगों में कार्य के प्रति अटूट निष्ठा पैदा की जाय। यदि लोग कठिन परिश्रम करने के आदी हो जायं तो निश्चित रूप से उत्पादन बढ़ेगा, अभाव की स्थिति समाप्त होगी तथा लोगों को उपभोग के लिए सुगमता से वस्तुएं उपलब्ध हो सकेंगी। गरीबी को दूर करने के लिए यह भी आवश्यक है कि उत्पादन का वितरण ठीक ढंग से किया जाय और गरीबी तथा अमीरी के भेद को कम से कम किया जाय। गरीबी को दूर करने एवं आर्थिक विकास की सभी योजनाओं को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए राजनेताओं और अधिकारी वर्ग को कर्तव्यनिष्ठा का पूर्ण परिचय देना होगा।

प्रश्न

1 "निर्धनता सभी सामाजिक बुराइयों की जड़ है।" विवेचना कीजिए।

(राज., 1992, 93, 94, 96)

2 भारत में निर्धनता को कम करने में हम कहां तक सफल हुए हैं?

3 भारत मे निर्धनता के कारण तथा उपचार की व्याख्या कीजिए।

4. भारत में गरीबी के कारणों की विवेचना कीजिए। इसे कैसे दूर किया जा सकता है?

(अजमेर, 1993)

5 निर्धनता की समाजशास्त्रीय अवधारणा दीजिए। भारत में निर्धनता कैसे अपराध की अधिक दर के लिए उत्तरदायी है?

6. भारत मे निर्धनता के कारणों का विस्तार से [illegible]

7 क्या [illegible]

8. f. [illegible]

9. [illegible] भारत म विकास की समस्याएं हैं? (राज., 1988) गरीबी को परिभाषित कीजिए। इसे पूर्ण रूप से समाप्त करने के चरण लिखिए।

10. भारत में गरीबी के कारणों की विस्तार से चर्चा कीजिए। इस समस्या के निवारण के लिए आप क्या सुझाव दे सकते है?

(अजमेर, 1989)

11. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :

(अ) गरीबी।

(अजमेर, 1990)

12. 'निर्धनता' से आप क्या समझते हैं? क्या निर्धनता भारत की ऊंची अपराध दर के लिए उत्तरदायी है? स्पष्ट कीजिए।

(राज., 1996)

(अजमेर, 1997)

6

बेकारी

[UNEMPLOYMENT]

आज विश्व के अनेक देशों को बेकारी की समस्या का सामना करना पड़ रहा है। यह समस्या न केवल औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए देशों की है बल्कि सम्पन्न देशों की भी है। विभिन्न देशों में बेकारी के कारण पूर्णतया समान नहीं हैं। जहां औद्योगीकरण, यातायात के विकसित साधनों, मुद्रा अर्थ-व्यवस्था, बैंक व्यवस्था, मशीनीकरण आदि ने मानव को अनेक सुविधाएं प्रदान की हैं, वहां दूसरी ओर इन्होंने आर्थिक मन्दी, बेकारी तथा गरीबी को भी जन्म दिया है। औद्योगीकरण के पूर्व बेकारी कृषि क्षेत्र तक ही सीमित थी और वह भी छिपी तथा अर्द्ध-बेकारी के रूप में थी। औद्योगीकरण के फलस्वरूप अब बेकारी कृषि के अतिरिक्त अनेक अन्य क्षेत्रों में पायी जाती है। औद्योगीकरण ने पूंजीवाद के विकास एवं सम्पत्ति के असमान वितरण में योग दिया और साथ ही समाज में आर्थिक एवं सामाजिक विषमता को बढ़ावा भी दिया। औद्योगीकरण एवं पूंजीवाद के विकास के फलस्वरूप अनेक सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं का जन्म हुआ जिनमें से बेकारी भी एक है। बेकारी न केवल आर्थिक समस्या है वरन् एक सामाजिक समस्या भी है। बेकारी व्यक्ति के जीवन को छिन्न-भिन्न कर देती है और उसके पारिवारिक सम्बन्धों पर कुप्रभाव डालती है। बेकारी व्यक्ति में निराशा एवं हीनता की भावना पैदा कर देती है और कई बार उससे ग्रसित व्यक्ति अपराध तक करने के लिए बाध्य होते है। व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से आवश्यक है कि बेकारी की समस्या को युद्ध स्तर पर हल किया जाय, रोजगार की सुविधाएं उपलब्ध करायी जायं।

बेकारी की परिभाषा और अर्थ
(DEFINITION AND MEANING OF UNEMPLOYMENT)

बेकारी शब्द की उपयुक्त और सर्वमान्य परिभाषा उपलब्ध नहीं है। इसलिए ही **प्रो. पीगू** कहते हैं, "बेकारी उन विभिन्न शब्दों में से एक है जिनका साधारण व्यक्ति प्रयोग करते है तथा जिसका साधारण अर्थ लगभग सभी जानते हैं, परन्तु जिसकी ठीक व्याख्या करना कठिन है। उदाहरणस्वरूप, क्या हम बेकार व्यक्तियों में उन लोगों को सम्मिलित कर सकते हैं जो सुस्त है और काम नही करना चाहते, जो बीमार हैं या हड़ताल पर रहने के कारण

काम पर नहीं जा रहे हैं या इसी प्रकार के अन्य लोगों को भी जो इस समय काम पर नहीं लगाये जा सकते। इस सम्बन्ध में कोई निर्णय देना न्याय-संगत नहीं होकर मनमाना ही होगा।"[1]

बेकारी की परिभाषा करते हुए फेयरचाइल्ड ने लिखा है, "सामान्य दशाओं तथा सामान्य वेतन-दर पर व्यक्ति को बलपूर्वक और अनैच्छिक रूप से वेतन के काम से अलग करने की स्थिति।"[2]

इस परिभाषा से स्पष्ट है कि व्यक्ति कार्य करने की दशा में है किन्तु बाजार में उचित मजदूरी पर उसे कार्य नहीं मिल पाता। एक डॉक्टर अस्पताल खोलकर बैठा है किन्तु बीमार न आने पर भी वह बेकारी की परिभाषा में नहीं आता। एक किसान कृषि कर रहा है और उसे घाटा हो रहा है फिर भी वह बेकारी की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। इसी प्रकार से कम दर पर काम करने वाला व्यक्ति भी इस परिभाषा के अन्तर्गत बेकार नहीं माना जायेगा। जी. आर. मदान के अनुसार, "उस देश में बेकारी है जहां स्वस्थ शरीर वाले ऐसे व्यक्तियो को मजदूरी के सामान्य स्तर पर काम नही मिल पाता जो काम करना चाहते हैं।"[3]

इस परिभाषा मे शारीरिक एवं मानसिक असमर्थता के कारण जो लोग बेकार हैं, जैसे बच्चे, बूढे, बीमार एवं अपंग आदि, उन्हें बेकारो में सम्मिलित नही किया गया है तथा काम करने की इच्छा रखने वाले व्यक्तियो जैसे भिखारी, साधु, आदि को भी बेकारी की श्रेणी में सम्मिलित नही किया गया है। डिमेलो ने "बेकार व्यक्ति उसी को माना है जो अपनी इच्छा होते हुए भी वेतन-भोगी कार्य नहीं पा सकता।"[4] प्रो. पीगू के अनुसार, "बेकारी का अर्थ वेतन-अर्जक वर्ग मे व्याप्त बेकारी से है और उसका सम्बन्ध केवल मजदूरी कार्य से ही होता है।"[5] इस परिभाषा मे भी बेकारी के अन्तर्गत ऐच्छिक रूप से बेकार, बालक, वृद्ध एवं बीमार, आदि को सम्मिलित नहीं किया गया है। कुछ विद्वानों ने बेकारी की परिभाषा में श्रम शक्ति की मांग और पूर्ति को महत्वपूर्ण माना है। बैंक ऑफ बड़ौदा की वीकली रिव्यू के अनुसार, "बेकारी श्रम शक्ति की पूर्ति तथा श्रम शक्ति की मांग के बीच अन्तर है।"[6]

कार्ल प्रिब्राम के अनुसार, "बेकारी श्रम बाजार की वह दशा है जिसके अन्तर्गत श्रम शक्ति की पूर्ति कार्य करने के स्थानों से अधिक होती है।"[7]

फ्लोरेन्स के मतानुसार, "बेकारी उन व्यक्तियों की निष्क्रियता के रूप में परिभाषित की जा सकती है जो कार्य करने के योग्य एवं इच्छुक हैं।"[8]

---

1 Pigou, A. C. *Unemployment* (1913), p. 17.

2 "Enforced or involuntary separation from remunerative work on the part of a member of the normal working force, during normal working time at normal wages, and under normal working conditions." —H. P. Fairchild

3 "Unemployment is said to exist in a country where the able bodied persons of working age who are willing to work, are not able to find work at the current wa[ge] level." —Madan, G. R., *Social Change and Social Problem[s] in Indian Society*, p. 22[8]

"An individual not being in a state of remunerative occupation despite his desire to be so." —D. Mello, *Seminar No.* 120. Aug. 1969, p. 24.

"Unemployment means unemployment among the wage earning classes and in respect of wage work only." —Pigou, A. C., *op. cit*, pp. 14-15.

"Unemployment is the difference between the supply of labour force and the demand for labour force." —*Bank of Baroda, Weekly Review*, Vol. II, No. 2, Jan. 12, 1973, p. 2

Social Sciences.

may be defined as the idleness of persons able and willing to —*P. Sargent Florence*

प्रो. राजकृष्ण ने 'इण्डियन सोसायटी ऑफ एग्रीकल्चरल इकोनोमिक्स' के 23वें अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में बेकारी के निर्धारण के चार आधार बताये हैं। वे हैं—समय, आय, काम करने की इच्छा तथा उत्पादनशीलता (time, income, willingness, productivity)। वे लिखते हैं, "एक व्यक्ति बेकार या अर्द्ध-बेकार तब कहा जायेगा जब वह पूर्ण रोजगार अवधि द्वारा परिभाषित अवधि से कम समय के लिए वर्ष मे कम से कम इच्छित आय से भी कम कमाता हो, और वह वर्तमान में जितना काम कर रहा है उससे अधिक काम करने की इच्छा रखता हो, तब वह व्यक्ति पूरी तरह से रोजगार प्राप्त नहीं माना जायेगा। जिस कार्य में व्यक्ति वर्तमान में लगा हुआ है यदि उस कार्य से हटा दिया जाता है और इसका प्रभाव साधारण उत्पादन पर नहीं पड़ता है तो इसका अर्थ है कि उसकी सीमान्त उत्पादकता कुछ नहीं है।[1]

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं से बेकारी के पांच प्रमुख तत्व स्पष्ट होते हैं : (i) इच्छा—किसी भी व्यक्ति को बेकार उस समय कहा जायेगा जब वह काम करने की इच्छा रखता हो और उसे काम न मिले। (ii) योग्यता—केवल मात्र काम करने की इच्छा होना ही पर्याप्त नहीं है वरन् व्यक्ति में कार्य करने की शारीरिक एवं मानसिक योग्यता भी होनी चाहिए। यदि कोई व्यक्ति अंग-भंग होने, बीमार होने, वृद्ध होने अथवा पागल होने के कारण कार्य करने के योग्य नहीं है तो उसे हम कार्य करने की इच्छा रखने पर भी बेकार नहीं कहेंगे। (iii) प्रयत्न—व्यक्ति में कार्य करने की इच्छा एवं योग्यता ही पर्याप्त नहीं है वरन् उसके द्वारा कार्य पाने के लिए प्रयत्न करना भी आवश्यक है। अतः प्रयत्न के अभाव में योग्यता एवं इच्छा रखने वाले व्यक्ति को भी बेकार नहीं कहा जा सकता। (iv) आर्थिक उद्देश्य—व्यक्ति द्वारा काम करने का उद्देश्य धन अर्जन करना होना चाहिए। यदि दर्जी को अन्यत्र काम नही मिलता और उसके द्वारा स्वयं के परिवार के बच्चों के लिए कपड़े बनाये जाते है, तो यह स्थिति भी बेकारी की स्थिति ही है। (v) योग्यता के अनुसार पूर्ण कार्य—यदि एक व्यक्ति को जिस कार्य एवं पद के लिए वह योग्य है, से कम कार्य एवं पद प्राप्त है और इस आधार पर प्राप्त होने वाली आय भी कम है तो हम उसे पूर्ण रोजगार प्राप्त व्यक्ति न कहकर आंशिक रोजगार प्राप्त व्यक्ति कहेंगे। उदाहरण के लिए, एक डॉक्टर को कम्पाउण्डर तथा इंजीनियर को ओवरसीयर के पद पर काम करना पड़े और उसी के अनुरूप वेतन मिले तो इस स्थिति को आंशिक बेकारी की स्थिति कहा जायेगा।

स्पष्ट है कि बेकारी वह दशा है जिसमें एक व्यक्ति को काम करने की इच्छा रखने एवं अर्थोपार्जन करने हेतु प्रयत्न करने पर भी पूर्ण रोजगार प्राप्त न हो। अन्य शब्दो में, बेकारी वह अवस्था है जिसमें शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ एवं समर्थ व्यक्ति को जो कार्य करने की इच्छा रखता है, प्रचलित मजदूरी दर पर काम नहीं मिलता हो।

बेकारी के प्रकार
(TYPES OF UNEMPLOYMENT)

बेकारी के विभिन्न प्रकार निम्नलिखित हैं :

(i) मौसमी तथा आकस्मिक बेकारी (Seasonal or Causal Unemployment)—अनेक व्यवसाय ऐसे हैं जिनमें वर्ष में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। कभी उनमें श्रमिकों

[1] Prof. Raj Krishna, quoted by *Bank of Baroda, Weekly Review*, Vol II Jan. 12, 1973, p.1.

अधिक आवश्यकता होती है तो कभी विल्कुल आवश्यकता नहीं रहती। उदाहरण के लिए चीनी उद्योग नवम्बर से मई तक चलता है, ऊन उद्योग सर्दियों में एवं वर्फ के कारखाने गर्मियों में ही चलते हैं। कृषि में भी फसल काटने के समय अधिक मजदूरो की आवश्यकता होती है। शादियो एवं त्यौहारों के अवसर पर जेवर उद्योग भी अच्छा चलता है, जबकि शेष दिनों में इस क्षेत्र में अधिक कार्य नही होता।

इस प्रकार की बेकारी मजदूरों में गतिशीलता उत्पन्न कर देती है और वे रोजगार की तलाश मे शहरो एवं औद्योगिक केन्द्रों की ओर जाते हैं। ऐसे व्यवसायो मे लगे लोगों के जीवन मे असन्तुलन एवं अस्थिरता पैदा हो जाती है। इसे रोकने के लिए उन्हें रिक्त समय में भत्ता दिया जाना चाहिए।

(ii) प्रौद्योगिक बेकारी (Technological Unemployment)—उद्योगों मे मशीनीकरण एव नवीन आविष्कारो के फलस्वरूप मानव-शक्ति का प्रयोग घटा है। उत्पादन के अनेक कार्य स्वचालित यन्त्रों के द्वारा होने लगे हैं और उनमे लगे व्यक्तियों की संख्या कम होती जा रही है। परिणामस्वरूप बेकारी बढ़ती जा रही है। कुछ अनुसन्धान तो कई उद्योगो को ही अस्त-व्यस्त कर देते हैं। नाइलोन के प्रचलन ने जापान के रेशम उद्योग को तथा इटेलियन ऊन ने भेड ऊन के उद्योग मे हलचल मचा दी। नवीन आविष्कार पुराने व्यवसायों को बन्द करके बेकारी की समस्या पैदा करते है और नये बाजारों का क्षेत्र समाप्त कर देते हैं। नवीन आविष्कारो एवं प्रौद्योगिकी के कारण नये व्यवसाय पनपते हैं जो रोजगार प्रदान करते हैं। इस प्रकार मशीनीकरण, रोजगार और बेकारी दोनों ही स्थितियों को जन्म देता है। बड़े उद्योगों की स्थापना से भारत मे कुटीर व्यवसायों में लगे लोग बेकार हो गये। उद्योगों मे अभिनवीकरण एवं प्रतिस्पर्धा होने तथा आर्थिक मन्दी के कारण कारखानों के बन्द हो जाने से भी बेकारी बढ़ जाती है।

(iii) अस्थायी बेकारी (Temporary Unemployment)—शिक्षा या प्रशिक्षण समाप्त करने के बाद जब तक व्यक्ति को कोई कार्य नही मिलता, उस समय तक वह बेकार रहता है, किन्तु ज्योंही उसे किसी व्यवसाय मे काम मिल जाता है, वह रोजगार प्राप्त व्यक्तियो की श्रेणी मे आ जाता है।

(iv) घर्षण बेकारी (Friction Unemployment)—इस प्रकार की बेकारी लोगो की रोजगार सम्बन्धी अवसरों की अनभिज्ञता, श्रमिकों मे गतिशीलता का अभाव, मशीनों की टूट-फूट एवं उद्योगो में कच्चे माल की कमी, आदि कारणों से उत्पन्न होती है। इस प्रकार की बेकारी विकसित देशों की मुख्य विशेषता है। इसका सम्बन्ध विकास से भी है। विकास के कारण नये उद्योग खुलते है और कई पुराने उद्योग बन्द होते जाते हैं। पुराने व्यवसायों में लगे श्रमिक नये व्यवसायो को सीखने हेतु प्रशिक्षण पाने तक बेकार रहते है। इस प्रकार यह बेकारी विकास का परिणाम है।

(v) चक्रीय बेकारी (Cyclic Unemployment)—इस प्रकार की बेकारी का सम्बन्ध व्यापारिक चक्रो से है। व्यापार में उतार-चढाव के चक्र आते रहते है। जब किसी व्यवसाय मे लाभ के अवसर अधिक होते है तो सभी लोग उसे अपनाने लगते हैं। किन्तु कुछ समय के बाद लाभ की मात्रा कम होने पर उसको छोड़ने लगते है। इस प्रकार पहले अर्थ-व्यवस्था का विकास होता है फिर संकुचन। जब एक व्यवसाय में मन्दी आती है तो लोगों को भयंकर [illegible] एवं कष्टों का सामना करना पड़ता है। कीन्स के अनुसार प्रभावपूर्ण मांग मे कमी से

कारण मन्दी की स्थिति उत्पन्न होती है। यदि प्रभावपूर्ण मांग में वृद्धि की जाय तो वेकारी दूर हो जाती है।

(vi) अर्द्ध-बेकारी (Under Employment)—जब व्यक्ति को अपनी योग्यतानुसार काम नहीं मिलता हो जैसे एक डॉक्टर को कम्पाउण्डर के पद पर और एक इन्जीनियर को ओवरसीयर के पद पर कार्य करना पड़े और वेतन भी कम प्राप्त हो तो उसे हम अर्द्ध-बेकारी की श्रेणी के अन्तर्गत रखेंगे। इसी प्रकार से आंशिक रूप से रोजगार प्राप्त (Part-time employed) व्यक्ति भी अर्द्ध-बेकार कहलायेंगे। कीन्स के अनुसार, जब कोई व्यक्ति प्रचलित मजदूरी दर से भी कम मजदूरी पर कार्य करने हेतु तैयार हो जाता है तो वह भी अर्द्ध-बेकारी की स्थिति है।

(vii) ऐच्छिक बेकारी (Voluntary Unemployment)—जब व्यक्ति काम करने की क्षमता होते हुए भी आलस्य, कम मजदूरी या मजदूरी में कटौती,आदि कारणो से काम नही करता है तो उसे ऐच्छिक वेकार माना जायेगा।

(viii) छिपी बेकारी (Disguised Unemployment)—इस प्रकार की बेकारी ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में देखी जा सकती है। भारत में लगभग सभी कृषक परिवार भूमि के छोटे-छोटे टुकड़ों पर कृषि करते है। संयुक्त परिवार प्रणाली के कारण भूमि पर दवाव बढ़ता है और नये जन्म लेने वाले सदस्य भी पहले वाले सदस्यो के साथ उसी भूमि पर काम करने लगते हैं। प्रकट रूप में तो ऐसा लगता है कि सभी रोजगार में लगे हुए है,किन्तु उनके द्वारा उत्पादन मे कोई वृद्धि नहीं होती है। यदि उनमें से कुछ को कृषि कार्य से हटाकर दूसरे व्यवसाय में लगा दिया जाय तो भी कृषि उत्पादन में कोई कमी नहीं आयेगी। इस प्रकार वे अप्रकट रूप से बेकार ही थे। छिपी बेकारी में श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता शून्य अथवा ऋणात्मक होती है।

(ix) शिक्षित बेकारी (Educated Unemployment)—शिक्षा एवं प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद भी जब लोग बेकार हों तो उन्हें हम इस श्रेणी मे रखेंगे। भारत में एम. ए., बी. ए., डॉक्टरी, इन्जीनियरिंग और अन्य तकनीकी शिक्षा प्राप्त कई व्यक्ति बेकार है।

(x) संरचनात्मक बेकारी (Structural Unemployment)—इस प्रकार की बेकारी का मूल कारण किसी देश की अर्थ-व्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन है। उदाहरण के लिए, भारत से विदेशों मे निर्यात की जाने वाली वस्तुओं के व्यवसाय मे यदि लम्बे समय तक कमी आ जाती है या निर्यात की मांग घट जाती है, तो उन व्यवसायों में बेकारी उत्पन्न हो जायेगी। इस प्रकार की बेकारी को संरचनात्मक बेकारी कहा जाता है। इसका सम्बन्ध देश के पिछड़े आर्थिक ढांचे से भी है जिसमें पूंजी निर्माण की दर बहुत कम होती है। अतः रोजगार की मात्रा भी कम होती है। संरचनात्मक बेकारी भी दीर्घकालिक है और इसका हल आर्थिक विकास से ही सम्भव है।

(xi) खुली बेकारी (Open Unemployment)—इस प्रकार की बेकारी में श्रमिक के पास कोई काम नहीं होता है। इस प्रकार की बेकारी अधिकतर शहरो में देखने को मिलती है जहां गांवों से आने वाले लोग काम के अभाव में बेकार पड़े रहते हैं। इस श्रेणी में शिक्षित बेकारी को भी सम्मिलित किया जाता है।

बेकारी के कारण
(CAUSES OF UNEMPLOYMENT)

बेकारी के कारण इतने विस्तृत और भिन्न हैं कि उनका कोई भी वर्गीकरण अपूर्ण होगा। इलियट एवं मैरिल[1] ने बेकारी के कारणों को दो भागों में बांटा है : व्यक्तिगत और अवैयक्तिक कारण। यहां हम इन दोनों का उल्लेख करेंगे :

(I) व्यक्तिगत कारण (Personal Factors)

जब व्यक्ति की बेकारी के लिए उसकी शारीरिक-मानसिक अक्षमता उत्तरदायी हो तो उसे व्यक्तिगत कारणों से उत्पन्न बेकारी कहते हैं। इससे सम्बन्धित कारण इस प्रकार हैं :

(अ) आयु (Age Factor)—आयु की दृष्टि से हम व्यक्तियों का विभाजन बच्चों, युवकों और वृद्धों के रूप में कर सकते हैं। बालकों एवं वृद्धों में बेकारी की समस्या युवा लोगों की अपेक्षा गम्भीर है। युवा वर्ग के लोगों को अनुभव की कमी के कारण नये व्यवसाय मे प्राथमिकता नही दी जाती। मध्यम आयु के व्यक्ति जो 25 से 40 वर्ष के होते हैं, बेकारी से कम ग्रसित होते हैं। 40 वर्ष के बाद और प्रमुख रूप से 50 और 60 वर्ष के लोगों में बेकारी अधिक होती है क्योंकि जब श्रम बाजार में युवा कार्यकर्ता मिलते हैं तो वृद्धों को कोई भी नौकरी देना नही चाहेगा। वृद्धों द्वारा युवा लोगों की तुलना में उत्पादन कम ही होता है। उनके दुर्घटना के अवसर अधिक होते हैं और वे अनुकूलन करने मे भी कठिनाई महसूस करते हैं।[2] एक तथ्य यह भी है कि वृद्धों की तुलना मे युवा लोगों में दुर्घटना की समस्या इसलिए अधिक होती है कि उनमें खतरा मोल लेने की इच्छा अधिक होती है। युवकों और वृद्धों को कार्य देने में भेद करने का एक कारण यह भी है कि वृद्ध लोगों को युवकों की अपेक्षा शीघ्र पेन्शन देनी होती है, वे सेवा निवृत्ति के नजदीक शीघ्र पहुंचते हैं और उन्हें बीमारी के लाभ भी देने होते हैं। वृद्धों को एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय में स्थानांतरित करने में भी कठिनाई होती है। योजना आयोग ने लिखा है, आयु की निश्चित सीमा के कारण वृद्ध लोगों को सरकारी नौकरियां नहीं मिल पाती और गैर-सरकारी संस्थाएं तथा उद्योगपति वृद्धों की अपेक्षा युवकों को नौकर रखना अधिक पसन्द नहीं करते हैं।

(ब) व्यावसायिक योग्यता (Vocational Fitness)—कई बार व्यक्ति यह नही जानता कि उसे क्या काम करना चाहिए, उसकी क्या रुचि है और वह किस काम को अधिक योग्यता से कर सकता है। कई बार व्यक्ति किसी भी काम को करने को तैयार हो जाता है। सेवायोजक या मालिक यह चाहते हैं कि उनके यहां ऐसे व्यक्ति काम करें जो योग्य, सक्षम और प्रशिक्षित हो। किसी क्षेत्र मे आवश्यकता से अधिक प्रशिक्षित और कुशल श्रमिक होने पर भी उन्हे बेकारी का सामना करना पड़ता है।

(स) बीमारी और शारीरिक अयोग्यता (Illness and Disability)—जो व्यक्ति स्थाई रूप से या कुछ समय के लिए बीमार होते हैं, उन्हें भी बेकारी का सामना करना होता है। कारखाना प्रणाली में मशीनो के कारण होने वाली दुर्घटनाएं बढ़ी हैं। मशीन पर काम करते समय थक जाने या नींद आ जाने पर अंग-भंग होने के अवसर रहते हैं और ऐसे व्यक्ति बेकार हो जाते हैं।

1. Elliott and Merrill, *Social Disorganization*, p. 441.
2. Beulah Amidon, *Jobs After Forty*, Public Affairs Pamphlet, No 35, 1939, pp 25-36

जो व्यक्ति अन्धे, बहरे, लूले-लंगड़े आदि होते है, वे भी शारीरिक अक्षमता के कारण बेकार हो जाते हैं। कुछ व्यक्ति जन्म से ही शारीरिक रूप से विकृत पैदा होते हैं। फिर भी कई लोगों को तो प्रशिक्षण देकर उनके योग्य कार्यो में लगा दिया जाता है। वायुयान, यातायात, खानों आदि में भी दुर्घटनाएं अधिक होती हैं। दुर्घटनाग्रस्त लोग क्षति-पूर्ति मिलने पर उस पैसे से अपनी आजीविका कमा सकते हैं।

(II) अवैयक्तिक कारण

(1) जनसंख्या मे वृद्धि—भारत में बेकारी का एक महत्वपूर्ण कारण जनसंख्या की तीव्र गति से वृद्धि है। हमारे यहां प्रतिवर्ष लगभग 1.70 करोड़ जनसंख्या बढ़ जाती है। 1961 में भारत की जनसंख्या 43 करोड़ थी जो 1971 में 54 करोड़, 1981 में 68.57 करोड़ तथा 1991 में 84.63 करोड़ हो गई। जनसंख्या बढने के साथ-साथ काम की पूर्ति भी बढ़ती है। परन्तु जिस अनुपात में देश की जनसंख्या बढ़ रही है, उसी अनुपात में उद्योग, व्यवसाय एवं रोजगार के अवसर नही बढ़ रहे है।

(2) सीमित भूमि—जनसंख्या मे तो वृद्धि हो रही है किन्तु भूमि तो सीमित है। जनसंख्या के बढ़ने के कारण प्रति व्यक्ति कृषि-योग्य भूमि में कमी आती है। भारत में संयुक्त परिवार प्रणाली का प्रचलन रहा है। जब भाइयों का बंटवारा होता है तो भूमि भी बंट जाती है। भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े अनुत्पादक हो जाते हैं। इन छोटे-छोटे टुकड़ों पर परिवार के सभी सदस्य कार्य करते है, इससे छिपी बेकारी पनपती है। एक तरफ भूमि पर भार बढता जाता है और दूसरी तरफ भूमि से उत्पादन घटता जाता है।

(3) मौसम एवं प्राकृतिक कारण—भारत की कृषि वर्षा पर निर्भर है। मानसून की अनिश्चितता एवं अनियमितता के कारण कई बार फसल बर्बाद हो जाती है। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, महामारी, तूफान, चक्रवात, ओले, टिड्डियों और कीटाणुओं के आक्रमण,आदि के कारण कृषि को हानि होती है और बेचारे किसानों को गरीबी व बेकारी का सामना करना पड़ता है।

(4) दोषपूर्ण भूमि व्यवस्था—अंग्रेजों के समय से देश में जमींदारी, तालुकेदारी एवं रैयतवारी प्रथा प्रारम्भ हुई। एक तरफ ऐसे लोग हैं जिनके पास उपजाऊ एवं काफी अधिक भूमि है, दूसरी तरफ भूमिहीन कृषि मजदूर हैं जिनकी संख्या बड़े भूस्वामियों की तुलना में काफी ज्यादा है। भूस्वामी कृषि मजदूरों का शोषण करते हैं। जमींदारी उन्मूलन कानून एवं भूमि सुधारों के प्रयासों के बावजूद भी किसानों की वास्तविक स्थिति में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नही आया है। कृषि मजदूर भूस्वामियों की दया पर ही जीवित हैं। यही कारण है कि गांवों में कृषि बेकारी, भूमि व्यवस्था के प्रति असन्तोष एवं तनाव पाया जाता है।

(5) कृषि की पिछड़ी दशा—बेकारी का एक कारण भारत की पिछड़ी कृषि अवस्था भी है। यहां आज भी कृषि करने की पुरानी विधियां प्रचलित है। हल व बैल की सहायता से कृषि करना व अवैज्ञानिक तरीकों तथा पुराने तरीकों, औजारों,आदि का प्रयोग आज भी किया जाता है। गरीब और अशिक्षित किसान उन्नत खाद, बीज, उर्वरक, यन्त्रों तथा वैज्ञानिक विधियों से अपरिचित हैं। अतः वे कृषि क्षेत्र में उत्पादन बढाने में सफल नहीं हो पाये हैं।

(6) मजदूरों में प्रशिक्षण का अभाव—भारतीय मजदूरों में शिक्षा एवं औद्योगिक प्रशिक्षण का अभाव पाया जाता है। अतः वे दक्ष किसान एवं श्रमिक नहीं बन पाते हैं। यही कारण

है कि उन्हें उद्योगों, खानो व कारखानों में उचित रोजगार प्राप्त नहीं हो पाता है और देश का सामना करना पडता है।

(7) **अपूर्ण औद्योगिक विकास**—भारत का अभी पूर्ण औद्योगिक विकास नहीं हुआ है तथा औद्योगिक विकास की गति भी यहां धीमी है। बढ़ती जनसंख्या के लिए उद्योगों में रोजगार के पर्याप्त अवसरों के अभाव के कारण भी बेकारी पनपती है। बड़े-बड़े उद्योगों का तो भारत मे अब भी अभाव है। जो उद्योग हैं वे भी या तो अपनी पूर्ण क्षमता से कार्य नहीं कर रहे है अथवा उनकी रोजगार प्रदान करने की क्षमता कम है।

(8) **उद्योगों का केन्द्रीकरण**—सामान्यतः उद्योगो का केन्द्रीकरण बड़े-बडे नगरों मे पाया जाता है। इन उद्योगों मे काम करने की आशा से ग्रामीण लोग शहरों में आते हैं। शहरों में श्रम की पूर्ति बढ जाती है किन्तु सभी इच्छुक व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध नहीं हो पाता। उद्योगो का देश के विभिन्न भागों मे विकेन्द्रीकरण न होने के कारण ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों को रोजगार के अवसर उपलब्ध नहीं हो पाते।

(9) **गतिशीलता में कमी**—भारतीयों में गतिशीलता का अभाव पाया जाता है। वे धर्म, भाषा, प्रान्त, रिश्तेदारी एवं परम्पराओं से बंधे होते हैं, अतः वे अपना मूल निवास छोड़कर बाहर नही जाना चाहते। एक राजस्थानी कहावत है, 'गेहूं छोड़ मक्का खाणा, मेवाड छोड़ कहीं नही जाणा'। लोग कम आय में ही सन्तोष कर लेंगे, लेकिन अधिक धनोपार्जन के लिए वे दूर के क्षेत्रों में नही जाना चाहेंगे।

(10) **कुटीर उद्योगों का पतन**—जब भारत में औद्योगीकरण हुआ तो छोटे-छोटे उद्योगों के स्थान पर बड़े-बडे उद्योग स्थापित हुए तथा कुटीर उद्योगों में लगे कई लोग बेकार हो गये।

(11) **औद्योगीकरण एवं अभिनवकरण**—जब उत्पादन का कार्य मशीनों की सहायता से किया जाने लगा तो औद्योगीकरण की नींव पड़ी। विशाल उद्योग स्थापित किये गये जिनमें बडी-बड़ी मशीनो से उत्पादन किया जाने लगा। उद्योगों में कम व्यक्तियों द्वारा तीव्र गति से बड़ी मात्रा मे उत्पादन होता है। कुटीर उद्योगों में लगे व्यक्ति औद्योगीकरण के कारण बेकार हो गये। उद्योगों में अभिनवकरण ने भी बेकारी को जन्म दिया। अभिनवकरण से तात्पर्य है कि ऐसी मशीनों का प्रयोग जिनसे कम श्रम में अधिक उत्पादन किया जा सके। पूंजीपति अपने कारखाने का अभिनवकरण करता है तो श्रमिको की कटौती होती है और वे बेकार हो जाते हैं।

(12) **दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली**—मैकाले ने भारत में अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली प्रारम्भ की जिसका उद्देश्य प्रशासन के लिए बाबू वर्ग तैयार करना था। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त व्यक्ति शारीरिक श्रम से घृणा करता है। आज भी शिक्षा व्यक्ति को रोजी-रोटी के लिए तैयार नहीं करती। आज प्रत्येक व्यक्ति नौकरी ही प्राप्त करना चाहता है और सभी को नौकरी देना किसी भी सरकार के लिए सम्भव नही है। अतः पढ़े-लिखे व्यक्तियों को बेकारी का सामना करना पड़ता है।

(13) **सार्वभौमिक शिक्षा (Mass Education)**—वर्तमान समय में प्रजातन्त्रीय आधार र शिक्षा का प्रसार हुआ है और सभी लोगों को शिक्षा की सुविधाएं उपलब्ध करायी गयी प्रति वर्ष शिक्षण संस्थाओं की वृद्धि होती जाती है और इनमें से हजारों छात्र शिक्षा ग्रहण के निकलते हैं, किन्तु इन शिक्षित लोगो के लिए रोजगार के अवसरों का अभाव है।

कल छात्रों का झुकाव वकील, डॉक्टर तथा इंजीनियर, सी. ए. आदि बनने की ओर है। वे कम श्रम द्वारा अधिक पैसा कमाना चाहते है।

(14) **श्रम की मांग व पूर्ति में असन्तुलन**—जब श्रमिकों की कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्र ंग कम तथा पूर्ति अधिक होती है तो लोगों को बेकारी का सामना करना पडता है।

(15) **व्यापार चक्र एवं मन्दी**—व्यापार में भी उत्थान एवं पतन का चक्र चलता है। कभी व्यवसाय उन्नति के चरम शिखर पर होता है तो कभी वह गिरावट की स्थिति मे। जब र मे मन्दी आती है तो व्यापार ठप्प हो जाता है, उससे सम्बन्धित कारखाने घाटे एवं न विकने के कारण बन्द करने पड़ते हैं जिसके परिणामस्वरूप उस व्यवसाय मे लगे क एवं व्यापारी बेकार हो जाते हैं।

(16) **मौसमी उतार-चढ़ाव**—कुछ व्यवसाय ऐसे हैं जिनका मौसम से सीधा सम्बन्ध है। का व्यवसाय गर्मियों में एवं ऊन का व्यवसाय सर्दियों में ही अधिक चलता है। गन्ना ी पर ही गुड़ एवं शक्कर उद्योग कार्य प्रारम्भ करते हैं। विवाह-शादियों के अवसर पर ूषण बनाने एवं वस्त्र सिलाई का कार्य अधिक होता है। कृषि के क्षेत्र में फसल बोने और ने के समय अधिक श्रम की आवश्यकता होती है। शेष समय में इन क्षेत्रों मे श्रम की घट जाने से बेकारी पायी जाती है।

(17) **व्यापार एवं उद्योगों में असामंजस्य**—जब दो परस्पर सम्बन्धित व्यापारों एवं उद्योगों मन्वय बिगड़ जाता है तब एक व्यवसाय दूसरे व्यवसाय को ठप्प कर देता है और उसमें व्यक्ति बेकार हो जाते हैं। उदाहरणार्थ—कोयला खानों में या पैट्रोल उद्योग में हड़ताल पर वे सारे उद्योग बन्द करने पड़ते हैं जो कोयला या पैट्रोल शक्ति से चलते हैं। इसी र से रेल कर्मचारियों अथवा ट्रक चालको द्वारा हड़ताल करने पर भी देश के विभिन्न ों में कच्चा माल पहुंचना एवं निर्मित माल आना बन्द हो जाता है जिससे कई लोगों को री की स्थिति का सामना करना पड़ता है।

(18) **वस्तुओं की मांग में परिवर्तन**—जब किसी वस्तु की मांग कम हो जाती है तो वस्तु के उत्पादन से सम्बन्धित व्यक्ति बेकार हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, आजकल कृत्रिम ों जैसे रेयोन, नायलोन और टेरीलीन के बने वस्त्रों का अधिक प्रयोग होने से रेशम उद्योग ट में पड गया है। जिन राज्यों में शराब-बन्दी लागू की गयी, वहां शराब बनाने के उद्योगों लगे लोग बेकार हो गये।

(19) **पूंजी की कमी**—पूंजी के अभाव में उद्योग, व्यापार, कृषि और व्यवसाय का ालन सम्भव नही हो पाता। अतः लोगों की संख्या में वृद्धि होती जाती है, किन्तु देश में ों का निर्माण कम हो जाता है। इस प्रकार श्रम की पूर्ति बढ़ जाती है और बेकारी पती है।

(20) **करों में वृद्धि**—जब सरकार किसी व्यवसाय विशेष पर कर भार बढ़ा देती है तो तुओं की कीमतें बढ़ जाती हैं। किसी वस्तु के महंगी हो जाने पर उसका उपभोग कम ने लगता है तथा बाजार में उसकी मांग घट जाती है। ऐसी दशा में उत्पादन घटाना पड़ता नये व्यवसाय नहीं खोले जाते तथा परिणामस्वरूप बेकारी पनपती है।

(21) **सरकारी नीति**—प्रत्येक राजनीतिक दल की अपनी-अपनी उद्योग नीति होती है। सी वस्तु का आयात व निर्यात कितना होगा, यह सरकार की नीतियों पर निर्भर करता यदि विदेशों से किसी वस्तु का आयात अधिक होता है तो हमारे यहां के उद्योग नहीं

पनप पाते एवं लोगों क रोजगार उपलब्ध नहीं हो पाता। इसके विपरीत, जब सरकार व्यवसाय को प्रोत्साह देती है तो वह उद्योग फलता-फूलता है और रोजगार के अ वढते है।

(22) सामाजिक सुरक्षा के प्रयत्न—सरकार ने बेकारी निवारण के लिए बेरोजगारों की व्यवस्था की है। जब लोगो को बेरोजगारी भत्ता दिया जाता है तो वे श्रम करना नही करते और रोजगार की तलाश बन्द कर देते हैं।

(23) शारीरिक श्रम के प्रति उदासीनता—आजकल लोगो में शारीरिक श्रम के प्रति रुचि नही है, काफी लोग इसे हीन दृष्टि से देखते हैं। शारीरिक श्रम करने की बजाय बेकार रहना अधिक पसन्द करते है।

(24) औद्योगिक तनाव—जब मजदूर अपने वेतन, मंहगाई भत्ते, काम के घण्टे, छुट्टि भत्ता, बच्चों की शिक्षा, निवास की व्यवस्था, आदि मांगों को मनवाने हेतु श्रम संघ आह्वान पर हड़ताल, तोड़-फोड़ तथा तालाबन्दी करते हैं तो कारखाने बन्द हो जाते हैं। श्रमिको को बेकारी का सामना करना पड़ता है।

(25) नौकरी की प्रतिष्ठा—आजकल लोग व्यवसाय की अपेक्षा नौकरी करना अधिक पसन्द करते हैं। नौकरी करना प्रतिष्ठा का सूचक माना जाता है। अतः जब तक उन्हें नौकरी नही मिलती, वे बेकार बैठे रहते हैं।

(26) व्यवसाय परिवर्तन—जब एक व्यक्ति किसी ऐसे व्यवसाय में लगा हुआ है। उसकी रुचि न हो, उसे छोड दिया गया हो, निकाल दिया गया हो या वह व्यवसाय ही हो गया हो तो ऐसी स्थिति में व्यक्ति कोई अन्य व्यवसाय करना चाहता है। अन्य व्यवसाय प्राप्त होने के अन्तराल मे उसे बेकार रहना पड़ता है।

(27) ऊंची मजदूरी—जब मजदूरी की ऊंची दर हो जाती है तो श्रमिकों की मांग घट जाती है। फलस्वरूप श्रमिकों मे बेकारी पनपती है।

योजना आयोग ने भारत में बेकारी के प्रमुख कारण इस प्रकार से बताये हैं :

(i) जनसंख्या में वृद्धि।

(ii) ग्रामीण एव कुटीर व्यवसायों का ह्रास जो कि बेकार समय मे ग्रामीणों को रोजगार प्रदान करते थे।

(iii) शरणार्थियों की समस्या।

(iv) कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में रोजगार का अनुपयुक्त विकास।

(v) परम्परागत तथा अनुपयुक्त पद्धतियों का कृषि क्षेत्र में प्रचलन।

बेवरीज ने बेकारी के प्रमुख तीन कारण बताये हैं :

(i) मांग घट जाना

(ii) मांग का उचित दिशा में निर्देशन न होना।

(iii) श्रम बाजार का असंगठित होना।

कीन्स बेकारी के लिए अधिक बचत एवं कम खर्च को उत्तरदायी मानते हैं। इसका कारण यह है कि उपभोग खर्च बढ़ने से वस्तुओं की मांग बढ़ती है जिससे उनका उत्पादन बढ़ाना पड़ता है। इसके लिए श्रम की मांग बढ़ती है और अधिकाधिक लोगों को रोजगार प्राप्त होता है। उपभोग खर्च की भांति ही यदि विनियोग खर्च भी बढ़ता है अर्थात् यदि मशीन, उद्

–कल-कारखाने लगाने में खर्च भी बढ़ता है तो इससे भी लोगों को रोजगार के अवसर ÷ होते हैं। बचत करने पर उपभोग एवं विनियोग खर्च रुक जाता है जिससे बेकारी ·ती है।

एडम स्मिथ का मत है कि पूंजी की कमी बेकारी को जन्म देती है। पूंजी के अभाव ·ाजदूरी के अवसर घट जाते हैं।

· नवशास्त्रीय अर्थशास्त्रियों की मान्यता है कि पूंजी एवं श्रम में सन्तुलन होना चाहिए। ·तुओं का उत्पादन उचित मात्रा मे होना चाहिए ताकि उनकी बिक्री निश्चित हो जाय। ·धेक मात्रा में उत्पादन होने एवं कम बिक्री होने पर वस्तुएं बेकार पड़ी रहती हैं, नष्ट हो ·ती हैं, उनमें लगा धन व्यर्थ पड़ा रहता है। इस प्रकार पूंजी व श्रम मे असन्तुलन पैदा हो ·ता है जो बेकारी को जन्म देता है।

· उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि बेकारी एक जटिल समस्या है और इसकी उत्पत्ति के ·ए अनेक वैयक्तिक, शारीरिक, आर्थिक, औद्योगिक, सामाजिक, प्राकृतिक एवं जनसंख्यात्मक ·रक उत्तरदायी हैं।

बेकारी के दुष्प्रभाव
(EVIL EFFECTS OF UNEMPLOYMENT)

बेकारी एक अभिशाप है। इसका सबसे बड़ा दुष्परिणाम गरीबी है जो कि सभी बुराइयों ·ी जड़ है। बेकार व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा गिर जाती है, उसमें हीनता की भावना पैदा ·ती है और वह शर्म महसूस करता है। परिवार, रिश्तेदार एवं पड़ोस के लोग बेकार व्यक्ति ·ो उचित सम्मान नहीं देते। यदाकदा बच्चे ऐसे पिता एवं पत्नी ऐसे पति के प्रति सम्मान ·ी देते हैं। बेकारी में पराश्रितता एवं गरीबी बढ़ती है, आक्रामक प्रवृत्ति एवं चिड़चिड़ापन ·नपता है। जो मित्र मनोरंजन के समय साथ देते थे, वे भी अलग हो जाते हैं। वैयक्तिक ·सन्तोष से पारिवारिक तनाव पैदा होता है, राजनीतिक असन्तोष एवं क्रान्ति पैदा होती है ·था स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। बेकारी के दुष्प्रभाव निम्नांकित हैं :

(1) वैयक्तिक विघटन एवं बेकारी (Personal Disorganization and Unemploy·ment)—बेकार होने पर व्यक्ति के पद और सम्मान की हानि होती है। वह देर तक सोता ·हता है, शराब पीने और जुआ खेलने लगता है। थोर्स्टन शैलिन[1] ने अपने अध्ययन में बताया · कि मन्दी के दिनों में सम्पत्ति सम्बन्धी अपराध बढ़ गये। बेकारी की दशा में भिक्षावृत्ति, ·आवारागर्दी, गुण्डागर्दी आदि को बढ़ावा मिलता है। लोग उदास हो जाते हैं, विवाह की दर ·टती है व अनैतिक सम्बन्ध बढ़ते हैं। दिवालिया हो जाने से आत्महत्या व मानसिक रोगों ·ी संख्या बढ़ जाती है। लेसकोहिर ने लिखा है, "अस्थायी बेकारी से व्यक्ति के स्वास्थ्य पर ·रा प्रभाव पड़ता है, मस्तिष्क विकृत हो जाता है, महत्वाकांक्षाएं दुर्बल हो जाती हैं, व्यक्ति · सुस्ती बढ़ जाती है, आत्म-गौरव व उत्तरदायित्व की भावना की कमी के कारण उसकी ·ार्यक्षमता घट जाती है, नाड़ियां और इच्छा-शक्ति कमजोर हो जाती है। अपनी असफलता ·ा दायित्व दूसरों पर रखने की प्रवृत्ति पैदा होती है। बेकार व्यक्ति अपने परिवार की प्रगति

[1] Thorsten Sellin, *Research Memorandum on the Crime in the Depression*, Social Sciences Research Council, 1937.

के लिए प्रयत्न करना भी बन्द कर देता है। अर्द्ध-बेकारी की अवस्था में रहने द
उत्साहहीन और उदासीन होकर काम पर जाते हैं। ये लोग अक्सर ऋण में ही रहते

(2) बेकारी एवं स्वास्थ्य (Unemployment and Health)—बेकारी के दिनों में
के स्वास्थ्य का भी ह्रास होता है। ये कुपोषण के शिकार हो जाते हैं एवं सन्तुलि-
के अभाव मे कई रोगो से घिर जाते हैं। चिन्ता के कारण भी उनका स्वास्थ्य गिरत
है। वे कम किराये वाले मकानो में रहने लगते है जो अंधेरे एवं सीलनयुक्त होते
सबका स्वयं एवं उनके परिवार के सदस्यों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। ऐसे व्यक्ति चि
की सुविधा जुटाने में असमर्थ होते हैं और शीघ्र ही काल के मुंह में चले जाते हैं।

(3) बेकारी एवं पारिवारिक विघटन (Unemployment and Family Disorga-
tion)—बेकारी का प्रभाव वैयक्तिक विघटन पर ही नही वरन् पारिवारिक विघटन प
पड़ता है। परिवार की जमा-पूंजी समाप्त हो जाती है। जमीन, गहने, आदि गिरवी रख
या बेच दिये जाते हैं, परिवार ऋणग्रस्त हो जाता है। एक ऐसा समय भी आता है जब
कोई उधार देना पसन्द नहीं करता। ऐसी स्थिति में परिवार अपने सदस्यो के लिए भोजन
वस्त्र जुटाने में असमर्थ हो जाता है। बीमार लोगों की उचित देख-रेख एवं चिकित्सा नहीं
पाती। बच्चों की शिक्षा-दीक्षा बीच मे ही समाप्त कर देनी होती है और उन्हें कम वेतन
छोटे-मोटे कार्य करने पडते हैं। परिवार की स्त्रियों तक को भी भरण-पोषण के लिए कई
अनैतिक साधनो का सहारा लेना पड़ता है। परिवार के सदस्यों में परस्पर तनाव एवं
पैदा हो जाते है। मित्र मित्रता छोड़ देते है और सम्बन्धी भी ऐसे परिवार के प्रति उदा
हो जाते है। इस प्रकार बेकारी परिवार के संगठन एवं अस्तित्व को खतरे में डाल देती
और ऐसे परिवार का जीवन-स्तर गिर जाता है।

(4) बेकारी और सामाजिक विघटन (Unemployment and Social Disorganiza-
tion)—बेकारी के कारण होने वाली आर्थिक हानि को तो मापा जा सकता है किन्तु सामाजिक
हानि का मूल्यांकन करना कठिन है। बेकार व्यक्ति की धारणाओं में कठोरता आने लग
जाती है। परिवार में अनिश्चितता और चिन्ता घर कर जाती है व सदस्यो में निराशा उत्पन्न
है। लोगों में कार्य के प्रति आकर्षण घटने लगता है, उनकी विशेष योग्यताओं का
ह्रास होने लगता है। इन सबका प्रभाव सम्पूर्ण समुदाय पर पड़ता है। समुदाय को ही बेकार
के भरण-पोषण तथा चिकित्सा आदि की व्यवस्था करनी पड़ती है। परिवार की बीमा
समाप्त हो जाती है और समाज को सामाजिक सुरक्षा जैसे पुलिस व्यवस्था, बेकारी
वृद्धावस्था की पेन्शन, आदि पर अधिक खर्च करना होता है। ऐसी परिस्थितियो में अप
की संख्या में वृद्धि होती है। वेश्यावृत्ति, व्यभिचार, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, बेईमानी एवं
भिक्षावृत्ति पनपते हैं।

(5) बेकारी और आर्थिक प्रभाव (Unemployment and Economic Effects)—
बेकारी गरीबी एवं ऋणग्रस्तता को जन्म देती है। बेकारी में लोगों की आय एवं जीवन-स्तर
गिरता है, कार्य-क्षमता प्रभावित होती है जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन घटता है। राष्ट्रीय
आय घटने लगती है। उद्योगों को बन्द करने पर औद्योगिक अशान्ति एवं आर्थिक सकट पैदा
होता है, परिवार एवं व्यक्ति की आर्थिक दशा बिगड़ जाती है। ऐसी स्थिति में देश के आर्थिक
साधनों एवं प्राकृतिक स्रोतों का पूरी तरह लाभ नहीं उठाया जा सकता है।

Don. D. Lescohier, *The Labour Market* (1919), p. 107.

(6) बेकारी एवं नैतिक पतन (Unemployment and Moral Degradation)—बेकारी में व्यक्ति का नैतिक एवं चारित्रिक पतन हो जाता है। उसमें आत्म-विश्वास एवं आत्म-सम्मान की भावना समाप्त हो जाती है और वह अनैतिक कार्यों के द्वारा अपना व अपने परिवार का भरण-पोषण करने लगता है। लोग अपने दायित्वों को निभाने से जी चुराने लगते हैं, घर छोड़कर भाग जाते हैं और आत्महत्या तक का सहारा लेने लगते है।

(7) बेकारी एवं राजनीतिक प्रभाव (Unemployment and Political Effects)—देशव्यापी बेकारी राजनीतिक विद्रोह एवं क्रान्ति को जन्म देती है। बेकार लोग प्रदर्शन, हड़ताल, धरने आदि का आयोजन करते है, सरकारें ठप्प हो जाती हैं, प्रजातन्त्र की नींव हिलने लगती है, चारों ओर अराजकता फैलती है, तोड़-फोड़, लूट-पाट एवं दंगे होने लगते हैं और लोगों का जीवन खतरे में पड़ जाता है।

(8) बेकारी एवं सांस्कृतिक पतन (Unemployment and Cultural Degradation)—विश्व इतिहास इस बात का साक्षी है कि किसी भी देश में सांस्कृतिक विकास आर्थिक सम्पन्नता की स्थिति में ही हुआ है। कला, भाषा, विज्ञान, दर्शन, साहित्य, संगीत, धर्म, आदि को गरीब एवं बेकार व्यक्ति बढ़ावा नहीं दे सकते। भूखे व्यक्ति की संस्कृति रोटी के इर्द-गिर्द ही चक्कर लगाती है।

(9) बेकारी एवं मनोवैज्ञानिक प्रभाव (Unemployment and Psychological Effects)—बेकारी व्यक्ति में निराशा एवं हीन भावना को जन्म देती है। काम के प्रति उसकी रुचि समाप्त हो जाती है। वह मानसिक संघर्षों से जूझता रहता है। उसका स्वभाव चिड़चिड़ा और आक्रामक हो जाता है। छोटी-छोटी बातों पर वह झगड़ा करने पर उतारू हो जाता है। उसमें साहस, दृढ़ता और आत्म-सम्मान की भावना समाप्त हो जाती है। उसमें पराधीनता की मनोवृत्ति जन्म लेती है और अपने को असहाय एवं पराश्रित अनुभव करने के कारण उसकी व्यक्तिगत योग्यता एवं कार्यक्षमता घट जाती है। उसमें पृथकता की भावना पनपती है जिसके फलस्वरूप मित्रों और यहां तक कि परिवार के सदस्यों से भी उसके सम्बन्ध टूटने लगते हैं।

भारत में बेकारी का विस्तार
(EXTENT OF UNEMPLOYMENT IN INDIA)

भारत में बेकारी के बारे में निश्चिततापूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इसके अनेक कारण हैं, जैसे यहां बेकारी सम्बन्धी सही आंकड़े उपलब्ध नहीं है, बेकारों एवं अर्द्ध-बेकारों के आंकड़े एकत्र नहीं किये गये हैं वरन् केवल वे ही आंकड़े उपलब्ध हैं जो बेरोजगार दफ्तरों में पंजीकृत किये गये हैं और ऐसे दफ्तर भी जिला मुख्यालयों और औद्योगिक केन्द्रों पर स्थित हैं। इन दफ्तरों में भी सभी नौकरी पाने के इच्छुक या बेरोजगार व्यक्ति अपना नाम दर्ज नहीं करवाते हैं। यह भी आवश्यक नहीं है कि पूंजीपति और सेवायोजक रोजगार दफ्तर द्वारा ही श्रमिकों की भर्ती करें। रोजगार दफ्तर छिपी हुई बेकारी के बारे में कुछ भी बताने में असमर्थ है। ऐसे व्यक्तियों का पता भी बेरोजगार दफ्तर से नहीं लग सकता जो कहीं काम में लगे हुए हैं, किन्तु जो अपनी योग्यतानुसार कोई अच्छी नौकरी चाहते हैं। जहां नौकरी हेतु 'रोजगार कार्यालयों' में पंजीकरण कराने वाले लोगों की संख्या 1952 में 7.37 लाख थी, वहां 1991 में बढ़कर यह 3.44 करोड़ हो गयी। बेकारी की सर्वमान्य परिभाषा के अभाव में भी स्थिति का सही चित्रण सम्भव नहीं हो पाता। इसीलिए

बेकारी के बारे में केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। भारत में पिछले 40 वर्षों में बेकारों की संख्या बढ़ी है जिसके अनेक कारण हैं, जैसे जनसंख्या वृद्धि, कुटीर व्यवसाय का ह्रास, उद्योगों का अपर्याप्त विकास तथा जनसंख्या का प्रतिस्थापन, शक्ति की कमी, सुविधाओं का अभाव, बाढ़ एवं अकाल आदि। 1991 में कार्यशील लोगों (15 से 59 आयु के) की जनसंख्या 49.8 करोड़ थी जिनमें से 3.44 करोड़ लोगों के बेरोजगार होने का अनुमान है। केन्द्रीय श्रम मंत्रालय के आँकड़ों के अनुसार सन् 1992 में बेरोजगारों की संख्या 2.30 करोड़ होने का अनुमान है जिसके अगले वर्षों में (सन् 2002 तक) 9.40 करोड़ हो जाने की सम्भावना है। योजना आयोग के अनुसार, आठवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त में बेकार लोगों की संख्या 6 करोड़ तथा 1995-2000 के अन्त में 9.40 करोड़ होने की सम्भावना है।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (National Sample Survey) ने समय और कार्य करने की इच्छा (time and willingness) के आधार पर यह बताया कि हमारे यहां 7.9% पूर्ण श्रम शक्ति बेकार है जबकि हमारे यहां 35% श्रम शक्ति पायी जाती है। पुरुषों की तुलना में महिलाओं में और शिक्षितों की तुलना में अशिक्षित लोगों में बेकारी अधिक पायी जाती है। सबसे अधिक बेकार व्यक्ति 20 से 24 वर्ष की आयु के हैं, इसके बाद 40 से 50 वर्ष की आयु के। प्रथम आयु समूह में बेकारी का कारण अनुभवहीनता है तो दूसरे आयु समूह में कार्य करने की शक्ति का ह्रास है। आंकड़ों के उपर्युक्त विवरण से प्रकट होता है कि भारत में योजनाबद्ध विकास के प्रयत्नों के बावजूद भी बेकारों की संख्या बढ़ती जा रही है जो गम्भीर चिन्ता का विषय है। गुन्नार मिर्डल ने अपनी पुस्तक 'एशियन ड्रामा' में योजना आयोग द्वारा दिये गये बेकारी सम्बन्धी इन आंकड़ों पर गहरा सन्देह प्रकट किया है।

भारत में बेकारी का उल्लेख हम दो शीर्षकों के अन्तर्गत करेंगे :

(1) ग्रामीण क्षेत्र में बेकारी।

(2) नगरीय क्षेत्र में बेकारी।

(1) ग्रामीण क्षेत्र में बेकारी (Rural Unemployment)

ग्रामीण क्षेत्र में हमें कृषि में मौसमी और छिपी बेकारी देखने को मिलती है। भारत की करीब 74.3 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में रहती है, 66 प्रतिशत लोग किसी न किसी प्रकार से कृषि पर निर्भर हैं। कृषि में फसल बोते समय एवं काटते समय तो कार्य की अधिकता रहती है किन्तु शेष समय में कृषकों को बेकार ही रहना पड़ता है। भारत में सिंचाई के साधनों की कमी के कारण ऐसी फसलें नहीं बोयी जाती हैं जो वर्ष में दो बार प्राप्त की जा सकें। यहां अधिकांशतः मानसून पर निर्भर फसलें ही बोयी जाती हैं। भारतीय कृषि को 'मानसून का जुआ' कहा जाता है। एक औसत भारतीय कृषक वर्ष में 5 या 6 महीने ही कार्य करता है। कुटीर व्यवसायों का अभाव, पूंजी का अभाव, कृषि की मौसमी प्रकृति आदि कारणों से ग्रामीणों को वर्ष भर कार्य नहीं मिल पाता। राधाकमल मुखर्जी के अनुसार उत्तर प्रदेश में किसान वर्ष में 200 दिन एवं जैक के अनुसार बंगाल में पटसन की खेती करने वाले वर्ष में $4\frac{1}{2}$ माह ही कार्यरत रहते हैं। डॉ. स्लेटर के अनुसार दक्षिण भारत में किसान वर्ष में 200 दिन ही कार्यरत रहते हैं।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण क्षेत्रों में 28 लाख व्यक्ति बेकार थे। राष्ट्रीय सेम्पल सर्वे के 38वें दौर में मार्च 1985 मे ग्रामीण बेरोजगारों की संख्या 47.7 लाख आंकी गयी। 1991 में ग्रामीण क्षेत्रों में 40 24 प्रतिशत लोग बेकार थे। हमारे यहां कृषि मजदूरों की संख्या अनुमानतः 475 लाख है जो वर्ष में 200 दिन से भी कम समय तक कार्य करते है। यहां कृषि योग्य भूमि के 15 प्रतिशत भाग पर ही एक से अधिक वार फसल उगाई जाती है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि हमारे यहां ऐसे व्यक्तियों की संख्या काफी है जो वर्ष में करीब 165 दिन बेकार रहते हैं।

भारतीय ग्रामों में अदृश्य बेकारी भी व्याप्त है। इस प्रकार की बेकारी में श्रमिक काम पर तो लगा होता है किन्तु उसका उत्पादन मे कोई योगदान नहीं होता है। भूमि पर जनसंख्या के दवाव एवं संयुक्त परिवार प्रणाली के कारण एक ही परिवार के सभी सदस्य भूमि के किसी एक टुकड़े पर कृषि करते हैं जिनकी सीमान्त उत्पादकता शून्य होती है। यदि इनको कृषि से हटाकर अन्य व्यवसायों में लगा दिया जाय तो भी कृषि उत्पादन पर कोई कुप्रभाव नहीं पड़ेगा। इन्हें हम अतिरिक्त श्रम (surplus labour) की श्रेणी में रख सकते हैं। सन् 1991 की जनगणना में ग्रामीण क्षेत्रों में बेकारी का प्रतिशत 40.24 आंका गया।

ग्रामीण बेकारी के कारण—ग्रामीण बेकारी का सम्बन्ध कृषि एवं कुटीर उद्योगों से है। ऊपर हम गरीबी के विभिन्न कारणों का उल्लेख कर चुके हैं, वे भारतीय ग्रामों के लिए भी लागू होते हैं। ग्रामीण बेकारी के लिए जनाधिक्य, कृषि-योग्य भूमि का छोटे-छोटे टुकड़ो मे बंटा होना, प्राकृतिक प्रकोप, सिंचाई के साधनों का अभाव, पिछड़ी हुई कृषि अवस्था, कुटीर उद्योगों का ह्रास, आदि कारक उत्तरदायी हैं।

ग्रामीण बेकारी को दूर करने के लिए सिंचाई के साधनों में वृद्धि, कृषि में सुधार, भू-व्यवस्था में सुधार, कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन, ऋण की सुविधा, सहकारी समितियों का निर्माण, संगठित बाजार का निर्माण, यातायात के साधनों की वृद्धि आदि उपाय अपनाये जाने चाहिए। अन्य उपायों का हम आगे उल्लेख करेंगे।

(2) नगरीय क्षेत्र में बेकारी (Urban Unemployment) D)

नगरीय बेकारी हमें दो रूपों में देखने को मिलती है :

(i) औद्योगिक क्षेत्र में, (ii) शिक्षित वर्ग में।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 38वें दौर के अनुसार मार्च 1985 में नगरों में बेरोजगारों की संख्या 52.13 लाख आंकी गयी है जिनमें से 43.5 लाख पुरुष और 9.8 लाख स्त्रियां हैं। 1991 मे नगरीय क्षेत्रो में बेकारी का प्रतिशत 33.44 था।

औद्योगिक बेकारी—औद्योगिक क्षेत्र में बेकारी के अनेक कारण हैं, जैसे गांवों से व्यवसाय की खोज में लोगों का औद्योगिक केन्द्रों की ओर जाना, किन्तु धीमी औद्योगिक प्रगति के कारण उन्हें रोजगार न मिलना, अनियोजित औद्योगीकरण, आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा के कारण बाजार में वस्तुओं की मांग की कमी, मजदूरों की छंटनी, उद्योगों में अभिनवीकरण के कारण मानव-शक्ति का स्थान जड-शक्ति द्वारा ले लेना, हड़तालें व तालाबन्दी के कारण कारखानों का बन्द हो जाना, पूंजी, कच्चे माल तथा बाजार के अभाव के कारण उत्पादन न हो पाना, आदि।

शिक्षित वर्ग में बेकारी—बेकारी केवल निरक्षरों एवं कम पढ़े-लिखे लोगों में ही नहीं वरन् पढ़े-लिखे बुद्धिमान एवं प्रबुद्ध लोगों में भी व्याप्त है। डॉक्टर, इंजीनियर, तकनीकी

विशेषज्ञ, आदि जिन्हे भारत में काम नहीं मिलता, विदेशों में चले जाते हैं जो साधारणतः पुनः यहां नही लौटते। जो लोग देश-भक्ति की भावना के वशीभूत होकर विदेशों से शिक्षा ग्रहण कर लौट आते है, उन्हें यहां उपयुक्त कार्य प्राप्त न होने पर घोर निराशा का सामना करना पडता है। लालफीताशाही एवं आन्तरिक राजनीति से पीड़ित होकर वे पुनः विदेशों में चले जाते है। शिक्षित बेकारों मे उन्ही लोगों को सम्मिलित किया गया है जो मैट्रिक या उससे अधिक शिक्षा ग्रहण किये हुए है। शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ शिक्षित बेकारी में वृद्धि हुई है। इसके लिए आंशिक रूप से हमारी शिक्षा प्रणाली भी,उत्तरदायी है जो पुस्तकीय ज्ञान तो देती है,किन्तु जीवन में रोजगार के अवसर बढ़ाने में सामान्यतः योग नहीं देती। हमारे यहां के शिक्षित व्यक्ति केवल वेतनभोगी सेवाएं ही पसन्द करते हैं। उद्यमशीलता और साहसिकता की उनमें कमी पायी जाती है। यहां उच्च शिक्षा सस्ती है, अतः मैट्रिक पास करने के पश्चात् जब तक नौकरी नही मिलती, विद्यार्थी पढ़ते रहते हैं। स्नातक होने पर एक व्यक्ति के विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं में भाग लेने के अवसर बढ़ जाते हैं। भारत मे अधिकांश शिक्षित बेरोजगार पश्चिमी बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश एवं महाराष्ट्र मे केन्द्रित है। अगस्त 1992 मे देश में रोजगार कार्यालयो मे रोजगार तलाश करने वालों की संख्या 371.20 लाख थी। ये व्यक्ति मैट्रिक और उससे ऊपर तक शिक्षा प्राप्त थे। सन् 1995 के अन्त तक रोजगार कार्यालयो मे रजिस्टर में अंकित शिक्षित बेरोजगारी की संख्या 3 करोड़ 72 लाख 84 हजार थी।

शिक्षित बेकारी के कारण—शिक्षित बेकारी के उपर्युक्त आंकड़े यह बताते है कि भारत मे शिक्षितों की रोजगार की दशा भी दयनीय है। इस बेकारी के लिए निम्नांकित कारण उत्तरदायी हैं :

(1) दोषपूर्ण शिक्षा पद्धति—भारत में प्रचलित आधुनिक शिक्षा लॉर्ड मैकाले की देन है। यह शिक्षा व्यक्ति को बाबूगीरी के सिवाय कुछ नही सिखाती, उसे वास्तविक जीवन के लिए तैयार नही करती। आज का छात्र शिक्षा प्राप्त करने पर अपने आप को नौकरी के अलावा अन्य कार्यों के लिए असमर्थ पाता है। अतः उसे पढ-लिखकर भी बेकारी का सामना करना पड़ता है।

(2) विश्वविद्यालयो में छात्रो की अधिकता—वर्तमान में देश में 197 विश्वविद्यालय, 23 विश्वविद्यालय स्तर के संस्थान और 8,210 कॉलेज उच्च शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। प्रतिवर्ष उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि होती जाती है,किन्तु उनके लायक रोजगार न मिलने पर उन्हें बेकार रहना पड़ता है।

(3) व्यावसायिक शिक्षा का अभाव—हमारे यहां इस प्रकार की शिक्षा का अभाव है जो व्यक्ति को रोजगार एवं व्यवसाय के लिए तैयार करे। हमारे यहां विभिन्न प्रकार की व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षण संस्थाओं का भी अभाव है और सैद्धान्तिक एवं सामान्य ज्ञान प्रदान करने वाली संस्थाओं की ही अधिकता है।

(4) मांग और पूर्ति में असन्तुलन—जिन क्षेत्रों में शिक्षित एवं प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता है, उनके लिए तो शिक्षित छात्र उपलब्ध नहीं हैं और जिन क्षेत्रों में आवश्यकता नही है, उनमें भरमार पायी जाती है। मांग और पूर्ति के इस असन्तुलन के कारण भी उन क्षेत्रों में बेकारी पायी जाती है जिनमें पूर्ति अधिक एवं मांग कम है।

(5) **शारीरिक श्रम की उपेक्षा**—आज का पढ़ा-लिखा व्यक्ति शारीरिक श्रम नहीं करना चाहता, वह इसे हीन दृष्टि से देखता है, अतः वह उन कार्यों को नहीं करना चाहता जिनमें शारीरिक श्रम की आवश्यकता होती है, चाहे उसे बेकार रहना पड़े।

(6) **गरीबी**—लोगों के पास इतना पैसा नहीं है कि वे पढ-लिख कर स्वयं का कोई व्यवसाय खोल सकें। अतः प्रत्येक व्यक्ति सामान्यतः यही चाहता है कि वह शिक्षा प्राप्त कर कोई नौकरी करे। इस प्रकार गरीबी भी शिक्षित बेकारी को जन्म देती है।

शिक्षित बेकारी को दूर करने के उपाय—भारत में शिक्षित बेकारी को दूर करने के लिए निम्नांकित उपाय अपनाये जाने चाहिए :

(1) **शिक्षा प्रणाली में सुधार**—आधुनिक सैद्धान्तिक शिक्षा प्रणाली में सुधार कर उसे व्यवसायोन्मुख बनाया जाय जिससे कि शिक्षा प्राप्त करने के बाद व्यक्ति अपने को असहाय एवं निरुपाय न समझ कर स्वयं ही किसी व्यवसाय को करने में सक्षम हो सके।

(2) **लघु उद्योगों का विकास**—शिक्षित लोगों को छोटे-छोटे मशीनी उद्योग खोलने की सुविधाएं प्रदान की जायं एवं शिक्षण काल में ही उनकी रुचि के अनुसार उन्हें उद्योग का प्रशिक्षण दिया जाय। सरकार इस प्रकार के उद्योगों के लिए मशीनें, ऋण, नल, बिजली, कच्चा माल, बाजार, यातायात की सुविधा, आदि जुटा सकती है।

(3) **ऋण की व्यवस्था**—सरकार बैंकों एवं सहकारी समितियों द्वारा उद्योग-धन्धे खोलने के लिए कम ब्याज पर ऋण सुलभ कराने का प्रयास करे तो शिक्षित लोगो के लिए रोजगार की व्यवस्था हो सकेगी।

(4) **शारीरिक श्रम के प्रति श्रद्धा**—शिक्षित बेकारी का एक कारण पढ़े-लिखे लोगो द्वारा शारीरिक श्रम की उपेक्षा है। प्रारम्भ से ही शिक्षण-संस्थाओं में उनसे ऐसे कार्य कराये जायं जिनमें शारीरिक श्रम की आवश्यकता होती है, इससे उनमें श्रम के प्रति लगाव पैदा होगा और वे ऐसे कार्य भी करने लगेंगे जिनमें शारीरिक श्रम करना होता है और ऐसी दशा में वे बेकारी की समस्या से मुक्त हो सकेंगे।

(5) **रोजगार कार्यों की जानकारी**—शिक्षित बेकारी का एक कारण यह भी है कि कई लोगों को यह भी ज्ञात नहीं होता है कि उन्हें किन-किन विभागों में कार्य मिल सकता है। शिक्षण संस्थाओं एवं रोजगार कार्यालयों में विभिन्न क्षेत्रों में रिक्त स्थान होने एवं किस प्रकार के व्यवसाय के लिए कौन-सी शिक्षा आवश्यक होती है आदि की जानकारी प्रदान की जानी चाहिए। जो लोग अनभिज्ञ होने के कारण बेकार रहते हैं, उन्हें इस प्रकार के ज्ञान से रोजगार के क्षेत्र की जानकारी मिल सकेगी और वे उन क्षेत्रों में काम करने के लिए जा सकेंगे।

(6) **अन्य उपाय**—उपर्युक्त उपायों के अतिरिक्त बेकारी की समस्या हल करने के लिए वे सारे उपाय किये जाने चाहिए जिनका उल्लेख हमने सामान्य बेकारी को दूर करने के दौरान किया है, जैसे जनसंख्या को नियन्त्रित किया जाय, निर्धनता को समाप्त किया जाय, रोजगार कार्यालयों की उचित व्यवस्था की जाय, बड़े-बड़े उद्योगों का विकास किया जाय, आदि।

स्पष्ट है कि देश में डॉक्टर, इंजीनियर, शिक्षक तथा अन्य शिक्षित व्यक्तियों को बेकारी की भयंकर समस्या का सामना करना पड़ रहा है। माता-पिता द्वारा अपने बच्चों की शिक्षा पर एक बड़ी धनराशि व्यय करने के बाद भी जब उन्हें उपयुक्त व्यवसाय नहीं मिलता है तो ऐसी स्थिति में निराशा ही पनपती है एवं राष्ट्र द्वारा इन लोगों के शिक्षण-प्रशिक्षण पर खर्च

कर्ज किसी भी बेरोजगार शहरी पढ़े-लिखे व्यक्ति को बैंकों के माध्यम से दिये जा सकते हैं जो स्वयं कोई रोजगार करना चाहते हैं। इसके लिए चुनाव जिला उद्योग कार्यालयों द्वारा किया जाता है। इस योजना का उद्देश्य 2 से 2.5 लाख बेरोजगार पढ़े-लिखे युवकों को प्रतिवर्ष रोजगार देना है।

(12) निर्धन एवं बेरोजगार व्यक्तियों को कार्य देने के लिए सरकार ने 'काम के बदले अनाज' योजना प्रारम्भ की।

(13) बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर सरकार ने उन्हें निर्देश दिये कि शिक्षित और अशिक्षित बेरोजगारों को उदार शर्तों पर नये उद्योग खोलने के लिए ऋण दिये जायं। इस ऋण का कुछ भाग उन्हें माफ भी कर दिया जाता है।

(14) बन्धुआ मजदूरी प्रथा को समाप्त करने के लिए केन्द्र सरकार ने 1976 में अधिनियम बनाकर श्रमिकों को शोषण से मुक्त करवाया है तथा 'न्यूनतम मजदूरी दर' तय कर उन्हें राहत दी है।

(15) ग्रामीण युवकों को स्व-रोजगार प्रशिक्षण (Training of Rural Youth for Self-Employment)—15 अगस्त, 1979 को राष्ट्रीय योजना के रूप में यह कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। इसके अन्तर्गत ग्रामीण परिवारों के 18 से 35 वर्ष के आयु के युवकों को स्वरोजगार हेतु तैयार करने के लिए विभिन्न व्यवसायों का तकनीकी प्रशिक्षण दिया जाता है। जिस ग्रामीण परिवार की आय 3,500 रुपये प्रतिवर्ष तक हो उसमें से एक व्यक्ति प्रति परिवार का प्रथम चरण मे तथा जिसकी आय 4,800 रुपये प्रति वर्ष तक हो, द्वितीय चरण मे इस कार्यक्रम के अन्तर्गत चयन किया जाता है। उन्हें कृषि एवं कृषि से सम्बन्धित उद्योगों, सेवाओं एवं व्यापार का प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत (i) प्रत्येक विकास खण्ड मे से प्रतिवर्ष 40 ग्रामीण युवकों को प्रशिक्षण दिया जाता है, (ii) इसमें मासिक वृत्ति, दैनिक भत्ता, औजार, कच्चा माल, आदि उचित मूल्य पर उपलब्ध कराये जाते हैं, (iii) प्रशिक्षण देने वाले को भत्ता आदि दिया जाता है, (iv) स्वरोजगार पाने वाले युवक को योजना खर्च का 1/3 हिस्सा सरकार द्वारा एवं शेष अन्य संस्थाओं द्वारा दिलाया जाता है। इस कार्यक्रम में 17.94 लाख युवकों को स्वरोजगार योजना में प्रशिक्षित किया गया है।

इस प्रकार भारत सरकार इस गम्भीर समस्या के प्रति सजग है और इसे दूर करने के प्रति प्रयत्नशील है, फिर भी साधनो के अभाव एवं जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के कारण यह समस्या पूर्णरूप से हल नही हो पा रही है।

(16) नगरीय गरीब युवकों के प्रशिक्षण हेतु राष्ट्रीय कार्यक्रम (National Programme of Training for Urban Poor Youth)—इस कार्यक्रम के अन्तर्गत देश के नगरीय क्षेत्रों के 4 लाख बेकार युवक-युवतियों का चयन कर उन्हें पोषण-गृह, बालवाड़ी, अध्यापन, स्वास्थ्य निरीक्षण, नर्सिंग, गृह सेवाओ, भवन निर्माण, बिजली फिटिंग, लघु बचत एवं बीमा संगठनों आदि कार्यों में प्रशिक्षित किया जायेगा। इस पर एक हजार रुपया प्रति प्रशिक्षणार्थी खर्च आयेगा।

(17) रोज़गार बीमा योजना (Employment Assurance Scheme)—यह योजना 2 अक्तूबर, 1993 से लागू की गई है। इसके अन्तर्गत ग्रामीण गरीबों को वर्ष में 100 दिन ... प्रदान किया जाता है। इसमें 18 वर्ष से 60 वर्ष की आयु के सभी ग्रामीण ... को जो रोजगार चाहते है, उन्हे रोजगार प्रदान किया जाता है। यह योजना वर्तमान

देश के 366 जिलों के 2,448 खण्डों में चल रही है। मार्च 1995 तक इस योजना के अन्तर्गत 15 करोड़ लोगों का रजिस्ट्रेशन किया गया तथा 3 करोड़ 22 लाख मानव दिवसों का रोजगार सृजन किया गया।

बेकारी दूर करने के प्रयत्न : एक मूल्यांकन
(EFFORTS MADE TO REMOVE POVERTY : AN EVALUATION)

बेकारी दूर करने की दृष्टि से देश में अनेक प्रयास हुए परन्तु उनमें लक्ष्यों के अनुरूप सफलता नहीं मिल पायी। यहां 'काम के बदले अनाज' कार्यक्रम चलाया गया जिसे बाद में 'राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम' (NREP) नाम दिया गया। इसके बाद 'ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम' (RLEGP) तथा 'जवाहर रोजगार योजना' आई। रोजगार उपलब्ध कराने हेतु चलाये गये ये सब कार्यक्रम सफल क्यों नहीं रहे, इसकी हम यहां चर्चा करेंगे। यहां 1983 में ग्रामीण भूमिहीन लोगों के लिए रोजगार गारण्टी कार्यक्रम चालू किया गया। इसमें भूमिहीन श्रमिकों के परिवार में से कम से कम एक सदस्य को वर्ष में 100 दिन का कार्य देने की गारण्टी दी गयी। यह कार्यक्रम 1989 में जवाहर रोजगार योजना में समाहित कर दिया गया। भारत के महालेखाकार ने बताया कि उपरोक्त कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रत्येक भूमिहीन श्रमिक परिवार के एक सदस्य को वर्ष में 100 दिन काम देने से वार्षिक आवश्यकता 3,750 करोड़ रुपये की होगी, जबकि 1983 से 1989 की अवधि में प्रति वर्ष उपलब्ध राशि 100 करोड़ से 762 करोड़ रुपये मात्र ही थी। इस कार्यक्रम हेतु 1983 से 1989 तक कुल 3,140 करोड़ रुपये उपलब्ध कराये गये, जबकि प्रतिवर्ष आवश्यकता 3,750 करोड़ रुपये की थी। उपलब्ध कराये गये 3,140 करोड़ रुपये में से केवल 2,979 करोड़ रुपये ही खर्च किये गये। इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि आवश्यक मात्रा में धन-राशि के उपलब्ध नहीं होने से ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम सफल नहीं हो सका।

जहां तक शिक्षित बेरोजगारों को रोजगार सुविधाएं उपलब्ध कराने का प्रश्न है, बैंकों द्वारा ऐसे लोगों को स्वरोजगार के लिए ऋण उपलब्ध कराया गया। केन्द्रीय सरकार बैंकों को सहायता राशि देती है, लेकिन स्वरोजगार का यह कार्यक्रम भी सफल नहीं हो सका। स्वरोजगार हेतु बैंकों से ऋण प्राप्त करने वाले शिक्षित बेरोजगार लोगों की संख्या प्रति वर्ष घटती ही गयी। 1985-86 में जहां 2.20 लाख शिक्षित बेरोजगार लोगों ने ऋण उठाये, वहां 1987-88 में यह संख्या घट कर 50,000 ही रह गयी। इस योजना का लाभ उठाने वाले लोगों की संख्या निरन्तर कम ही हुई है।

श्रम मन्त्रालय के आँकड़ों के अनुसार सन् 1992 में हमारे देश में बेकार लोगों की संख्या करीब 2.30 करोड़ थी। यदि इन्हें रोजगार की गारण्टी दी जाय तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि अरबों-खरबों रुपया लोगों को रोजगार उपलब्ध कराने पर प्रतिवर्ष खर्च करना पड़ेगा। यहां कुछ लोग 'काम को मौलिक अधिकार' के रूप में मान्यता देने की बात करते हैं, लेकिन साधनों के अभाव में 'काम के अधिकार' की बात यहां कोई अर्थ नहीं रखती है। निष्कर्ष के रूप में यही कहा जा सकता है कि विभिन्न रोजगार पैदा करने सम्बन्धी कार्यक्रमों के लिए पर्याप्त मात्रा में धन-राशि उपलब्ध नहीं करायी जा सकी।

बेकारी दूर करने हेतु सुझाव
(SUGGESTIONS TO REMOVE UNEMPLOYMENT)

बेकारी की समस्या के हल के लिए दो प्रकार के उपाय अपनाये जा सकते हैं (I) दीर्घकालीन, (II) अल्पकालीन।

I दीर्घकालीन उपाय (Long-term Measures)

(i) बढ़ती हुई जनसंख्या को प्रभावशाली ढंग से नियन्त्रित किया जाय, यद्यपि इ[illegible] प्रभाव लगभग 20 वर्षों में जाकर पड़ेगा। इसके लिए परिवार-कल्याण से सम्बन्धित कार्य[illegible] को प्रभावपूर्ण तरीकों से चलाया जाय। चीन ने अपनी बढ़ती हुई बेकारी को रोकने के [illegible] जनसंख्या नियन्त्रण नीति को अपनाया है।

(ii) देश में आर्थिक विकास की गति तीव्र की जाय जिसमें औद्योगीकरण की [illegible] तेज करने, शिक्षित बेरोजगारों को काम पर लगाने एवं कृषि मे उत्पादन बढ़ाने पर [illegible] दिया जाय। वान्चू समिति ने देश के काले धन को उत्पादन मे लगाने की बात कही। [illegible] और सार्वजनिक क्षेत्र में प्रबन्ध को सुव्यवस्थित किया जाय एवं विनियोग बढ़ाया जाय।

(iii) शिक्षा प्रणाली मे सुधार किया जाय और शिक्षा तथा रोजगार के मध्य सम[illegible] स्थापित किया जाय।

(iv) निर्माण कार्यों में वृद्धि की जाय। यातायात, जनकल्याण, शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकि[illegible] आदि सेवाओं का विस्तार किया जाय।

(v) रोजगार कार्यालयों की अधिकाधिक स्थापना की जाय। छात्रों को विभिन्न प्रकार के रोजगारों के अवसरों का ज्ञान कराया जाय।

(vi) भारत की युवा और बेकार जनशक्ति को प्रशिक्षण देकर काम मे लगाया जा[illegible]

(vii) भारत में सामाजिक ढांचे में व्याप्त अनेक बुराइयों के कारण भी बेकारी पनपी है, अत: जाति प्रथा, संयुक्त परिवार प्रणाली, आदि से सम्बन्धित बुराइयों को दूर कर श्रमि[illegible] में गतिशीलता पैदा की जाय।

(viii) उपयुक्त तकनीक, कच्चे माल, मशीन, पूंजी, आदि को उपलब्ध कराया जाए।

(ix) आयोजन के अन्तर्गत निवेश ढांचे मे परिवर्तन लाया जाय तथा ऐसी तकनी[illegible] का चयन किया जाय जो कुशल एवं अधिक श्रम-प्रधान हो जिससे रोजगार के अवसर ब[illegible] सकें।

II. अल्पकालीन उपाय (Short-term Measures)

(1) सघन खेती—कृषकों को उन्नत खाद, बीज, फसल-रक्षक दवा, आदि देकर भू[illegible] के छोटे-छोटे टुकड़ों में अधिकाधिक फसल उगाने को प्रोत्साहित किया जाय। साथ ही उन्हें वर्ष मे एक से अधिक फसले बोने की सुविधाएं दी जायं। मौसमी बेकारी को दूर करने के प्रयास भी किये जाये।

(2) कुटीर उद्योगों का विकास—ऐसे उद्योग जो कृषि के साथ-साथ किये जा सकें, जैसे पशुपालन, दुग्धशाला, मुर्गी पालन, मछली पालन, मधुमक्खी पालन, सुअर पालन, आदि का विकास किया जाय। साथ ही गांवों में मिट्टी के काम, चमड़ा उद्योग, कताई-बुनाई, आदि को प्रोत्साहन दिया जाय।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य उपाय अग्र प्रकार से हैं :

व्यक्तिगत अयोग्यताओं को समाप्त किया जाय—जो व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से बीमार, अपंग, वृद्ध एवं अनुभवहीन हैं उनके लिए चिकित्सा एव स्वास्थ्य सेवाओं में वृद्धि की जाय। लोगों को सामाजिक बीमा योजना, बेकारी बीमा योजना, आदि के लाभ प्रदान किये जाये·

(i) **स्वास्थ्य सुविधाओं का प्रबन्ध**—बीमार व्यक्तियों की शीघ्र चिकित्सा एवं उन्हे पुनः काम पर लाने के लिए प्रयत्न किये जायं। उनके लिए निःशुल्क चिकित्सा की व्यवस्था हो तथा गांवों में जहां चिकित्सा सेवाओं का अभाव है, चल-चिकित्सालयो की व्यवस्था की जाय।

(ii) **पर्याप्त वेतन का प्रबन्ध**—श्रमिकों का उचित जीवन-स्तर कायम रखने एव उनकी कार्यक्षमता बनाये रखने के लिए बीमारी के दौरान उनको वेतन दिया जाय। श्रमिको का न्यूनतम वेतन निर्धारित किया जाय। 20-सूत्री कार्यक्रम के दौरान भारत सरकार ने कृषि मजदूरों की न्यूनतम मजदूरी तय कर इस ओर महत्वपूर्ण कदम उठाया है।

(iii) **व्यावसायिक शिक्षा और शैक्षणिक नियोजन**—आज ज्ञान केवल ज्ञान के लिए ही पर्याप्त नहीं है वरन् इसका उद्देश्य विद्यार्थी को जीवनयापन करने के लिए सक्षम बनाना भी है। अतः शिक्षा को व्यवसायोन्मुख बनाया जाय।

(iv) **शरीर से अक्षम लोगों के लिए पुनर्वास की सुविधाएं**—जो व्यक्ति जन्म से अपंग, अक्षम एवं आनुवंशिक बीमारियों से पीडित है, उनके लिए भी उपयोगी संस्थाएं खोलकर कार्य देने की व्यवस्था की जाय।

(v) **श्रमिको की क्षति-पूर्ति**—जिन लोगो के मशीन पर काम करते समय अंग-भंग हो जायं, उन्हें मुआवजा दिया जाय ताकि वे अपना शेष जीवन सुगमता से बिता सकें। साथ ही ऐसे लोगों की चिकित्सा भी की जाय। सन् 1923 के श्रमिक क्षतिपूर्ति कानून के द्वारा कुछ सुविधाएं दी गयी हैं,लेकिन यह कानून भी सभी क्षेत्रो में लागू नही होता है।

(vi) नवयुवकों के लिए रोजगार के अवसर बढाये जायें और उन्हे अध्ययन के दौरान ही व्यवसाय का प्रशिक्षण दिया जाय। उन्हें विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार के अवसरो की जानकारी दी जाय।

(vii) अधिक आयु के लोगों को रोजगार की सुविधाए प्रदान की जायं जो उनकी शारीरिक एवं मानसिक क्षमता के अनुरूप हो।

(viii) सामाजिक सुरक्षा के कार्यक्रम प्रारम्भ किये जाये जिसके अन्तर्गत पेन्शन, वृद्धावस्था में पेन्शन, बेरोजगारी भत्ता, बीमारी में चिकित्सा, सार्वजनिक बीमा, आदि आते हैं। विधवाओं, अनाथों, भिखारियों,आदि के पुनर्वास एवं आर्थिक विकास हेतु सुविधाएं जुटाने की व्यवस्था की जाय।

(ix) भूमि सुधार के कानून लागू करके जमीन का, गरीबों में वितरण किया जाय। भूदान कार्यक्रमों को प्रोत्साहन दिया जाय।

बेकारी की समस्या को हल करने के लिए उपर्युक्त सुझावो के अतिरिक्त निम्न बातों पर भी विशेष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए। **उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विद्यार्थियों के प्रवेश को सीमित किया जाना चाहिए।** इसके लिए प्रवेश हेतु अंको के न्यूनतम प्रतिशत को ऊपर उठाना आवश्यक है। ऐसा करने से देश की आवश्यकता के अनुसार ही मानव-शक्ति उपलब्ध हो सकेगी। यदि देश में शिक्षित लोगो की संख्या (स्नातक स्तर के) प्रतिवर्ष करीब 10 प्रतिशत के हिसाब से बढ़ती गयी तो सन् 2000 तक शिक्षित बेरोजगारों की संख्या करीब एक करोड़ हो जायेगी। शिक्षित और अशिक्षित दोनों प्रकार के बेरोजगार लोगों (करीब 5

करोड़) को रोजगार की सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए 1 लाख 10 हजार करोड़ रुपये के प्रति वर्ष आवश्यकता होगी। इतनी बड़ी धन-राशि एक मद (बेकारी) पर खर्च करने हेतु उपलब्ध कराना देश के सीमित साधनों की वजह से असम्भव लगता है। अतः आवश्यक इस बात की है कि उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश को नियन्त्रित किया जाय।

हमारे देश मे श्रम-कानून की कठोरता की वजह से नौकरियां तेजी से नहीं बढ़ रही है। कई व्यापारी एवं उद्योगपति ठेके पर श्रमिक रखना ज्यादा लाभदायक समझते हैं। ऐसे श्रमिकों को उन्हें श्रम-अधिनियम के अन्तर्गत कोई सुविधा या किसी प्रकार का कोई मुआवज़ा नही देना पड़ता। पिछली दशाब्दी में भारत में निजी संगठित क्षेत्र में काम पर लगे लोगों की संख्या करीब-करीब स्थिर रही है (करीब 74 लाख लोग)। सार्वजनिक क्षेत्र में भी नौकरि की उपलब्धता जो 1960 के दशक के प्रारम्भिक वर्षों में 6 प्रतिशत थी, कम होकर 19 के दशक के अन्तिम वर्षों में 2 प्रतिशत रह गयी। अतः सरकार द्वारा श्रम-नियमों को इ प्रकार से संशोधित किया जाना चाहिए जिससे रोजगार के अधिक अवसर उत्पन्न हो सकें

बेकारी दूर करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में नौकरियों एवं स्वरोजगार की उपलब्ध बढ़ायी जानी चाहिए ताकि अधिक से अधिक शिक्षित युवकों को काम मिल सके। इन को की सही प्रशिक्षण एवं वित्तीय सहयोग प्रदान किया जाना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों मे बेक दूर करने के लिए एक समन्वित इकाई के रूप में गांव के सर्वांगीण विकास पर विशेष दिया जाना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बेकारी एक गम्भीर सामाजिक समस्या है। इसके समा के लिए सरकार द्वारा किये गये प्रयत्नों के बाद भी समस्या के निवारण के बजाय इ वृद्धि ही हुई है। बेकारी ने हमारी प्रगति के मार्ग में बाधा उत्पन्न की है। किसी भी देश सम्पन्नता और प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि वहां लोग उत्पादन कार्य में अपना बढ़ायें तथा उन्हें जीवनयापन के पर्याप्त साधन और अवसर प्राप्त हों। इसलिए भविष्य में भी योजना इस बात को ध्यान में रखकर ही बनायी जानी चाहिए कि वह पूर्ण रोजगार अवसर प्रदान करे, अन्यथा हमारा आर्थिक विकास धीमा ही रहेगा। साथ ही यह भी आवश है कि योजनाएं केवल आदर्शोन्मुख न होकर यथार्थ पर आधारित हों और उन्हें पूर्ण निष्ठ साथ क्रियान्वित किया जाय। अभी तक का अनुभव यही बताता है कि यद्यपि अच्छी अच्छी योजनाएं समय-समय पर बनायी गयीं परन्तु उनके क्रियान्वयन पर उतना ध्यान दिया गया जितना दिया जाना चाहिए था।

प्रश्न

1. भारत में बेकारी के विस्तार, कारणों एवं परिणामों को स्पष्ट करते हुए एक सामाजिक स के रूप में इसका विश्लेषण कीजिए।
2. भारत में बेकारी के कारणों एवं प्रभावो की व्याख्या कीजिए। इस समस्या के निवार लिए अपनाये गये प्रयासों की विवेचना कीजिए। (राज., 1987,
3. बेकारी किसे कहते हैं ? भारत में बेकारी के विभिन्न कारक बताइए। (राज., 1992,
4. 'भारत में बेकारी' की समस्या पर एक निबन्ध लिखिए।
5. भारतीय सन्दर्भ में विभिन्न प्रकार की बेकारी को स्पष्ट कीजिए। व्यक्ति तथा परिवार पर बे के क्या दुष्प्रभाव पड़ते हैं?

6. परिवार एव राष्ट्र पर बेकारी के प्रभावों पर एक निबन्ध लिखिए। (राज., 1988)
7. बेरोजगारी किसे कहते हैं? भारत मे बेरोजगारी के विभिन्न कारण बताइए। (अजमेर, 1989)
8. भारत में बेरोजगारी के कारणों की विवेचना कीजिए। भारत मे बेरोजगारी दूर करने के लिए आप क्या सुझाव देगे? (अजमेर, 1991)
9. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :
   (अ) बेकारी। (राज., 1994)
10. भारत में बेरोजगारी के विभिन्न प्रकारों का विवरण दीजिए। (अजमेर, 1995)
11. भारत में बेरोजगारी की प्रकृति की व्याख्या कीजिए। (राज., 1996)

7

अशिक्षा (निरक्षरता)

[ILLITERACY]

भारत मे एक बहुत वडी समस्या अशिक्षा की है। अशिक्षा ने भारत मे अनेक सामाजिक-आर्थिक बुराइयों को जन्म दिया है। शिक्षा के अभाव में लोग वैज्ञानिक आविष्कारों से अनभिज्ञ रहे। कृपि एवं कुटीर व्यवसायों का समुचित विकास नही हो पाया है। अशिक्षा के कारण लोग स्वास्थ्य के नियमों से अपरिचित रहे हैं। अतः वे कई रोगों के शिकार हुए है। शिक्षा के अभाव में ज्ञान और विज्ञान दोनों का विकास नही हो सका है। अशिक्षा ने भारत में अन्धविश्वासों एवं रूढ़िवादिता को जन्म दिया है। शिक्षा की कमी लोगों के धनोपार्जन मे भी वाधक रही है और सेठ-साहूकारों ने उनकी अज्ञानता का लाभ उठाकर उनका खूब शोषण किया है। स्त्रियो मे शिक्षा के अभाव ने उनको सदैव हीन अवस्था मे रखा और वे घर की चहारदीवारी को छोड़कर वाह्य संसार से अनभिज्ञ रहीं। सन्तानों का उचित लालन-पालन नहीं कर पाने के कारण वे योग्य नागरिकों को तैयार नही कर सकीं। अशिक्षा के कारण लोग अपना शारीरिक, आध्यात्मिक एवं मानसिक विकास नहीं कर सके। शिक्षा के बिना मानव पशु के समान है, क्योंकि शिक्षा ही सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माण में सहायक होती है और मानव को अन्य प्राणियों की तुलना में श्रेष्ठ वनाती है। किसी देश में शिक्षा की स्थिति ही उसके विकास की स्थिति प्रकट करती है। भारत को यदि आर्थिक व वैज्ञानिक प्रगति करनी है, लोगो का जीवन-स्तर ऊंचा उठाना है, अन्धविश्वासों एवं अज्ञानता से मुक्ति पानी है और अपना सर्वांगीण विकास करना है तो उसे अशिक्षा से छुटकारा प्राप्त करना होगा तथा देश में शिक्षा का अधिकाधिक प्रसार करना होगा। जो महत्व शरीर के लिए भोजन का है, वही शिक्षा का सामाजिक जीवन के लिए है। अतः शिक्षा मानव-जीवन का अनिवार्य अंग है।

शिक्षा क्या है
(WHAT IS EDUCATION)

मानव द्वारा आदिकाल से ही ज्ञान का संचय किया जाता रहा है। प्रत्येक नयी पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी द्वारा कुछ ज्ञान सामाजिक विरासत में प्राप्त होता है और कुछ वह स्वयं अर्जित करता है। मानव की प्रत्येक पीढ़ी में सीखने की प्रक्रिया और हस्तान्तरण द्वारा ज्ञान की वृद्धि होती गयी है। ज्ञान की यह परम्परात्मक शृंखला ही शिक्षा है। शिक्षा का उद्देश्य

नुष्य में पहले से उपस्थित पूर्णता की अभिव्यक्ति है। शिक्षा मनुष्य को सांसारिक जीवन यतीत करने के योग्य बनाती है।

शिक्षा को परिभाषित करते हुए दुर्खीम लिखते है, "शिक्षा अधिक आयु के लोगो द्वारा ऐसे लोगों के प्रति की जाने वाली क्रिया है जो अभी सामाजिक जीवन में प्रवेश करने के योग्य नहीं है। इसका उद्देश्य व्यक्ति में उन भौतिक, बौद्धिक और नैतिक विशेषताओं का विकास करना है जो उसके लिए सम्पूर्ण समाज और पर्यावरण से अनुकूलन करने के लिए आवश्यक है।"[1]

फिलिप्स के अनुसार, "शिक्षा वह संस्था है जिसका केन्द्रीय तत्व ज्ञान का संग्रह है।"[2]

महात्मा गांधी कहते हैं, "शिक्षा से मेरा अभिप्राय बच्चे के शरीर, मन और आत्मा में विद्यमान सर्वोत्तम गुणों का सर्वांगीण विकास करना है।"[3]

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि **शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा मानव में शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक गुणों का विकास किया जाता है** ताकि वह उत्तम सामाजिक जीवन व्यतीत करने एवं अपने आप को पर्यावरण के अनुकूल ढालने में समर्थ हो सके।

भारत में साक्षरता
(LITERACY IN INDIA)

जनगणना आयोग, 1991 के अनुसार वह व्यक्ति साक्षर है जो किसी भी भारतीय भाषा में समझ के साथ लिख और पढ सकता है। जो केवल पढ़ सकता है, परन्तु लिख नहीं सकता, उसे साक्षर नही माना गया है। साक्षर कहलाने के लिए व्यक्ति का किसी स्कूल मे औपचारिक शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक नहीं है। भारत में अन्य देशों की तुलना में साक्षर बहुत कम हैं। इंगलैण्ड, रूस तथा जापान में लगभग शत-प्रतिशत जनसंख्या साक्षर है। यूरोप एवं अमेरिका में साक्षरता का प्रतिशत 90 से 100 के बीच है जबकि भारत मे साक्षरता का प्रतिशत 1991 में 52.21 था।

1951 में भारत में साक्षरता का प्रतिशत 16 6 था जो बढ़कर 1991 में 52.21 हो गया। पुरुषों में साक्षरता का प्रतिशत 63.8 तथा स्त्रियों में 39.4 है। केरल में साक्षरता का प्रतिशत सबसे अधिक 89.81 है। इसके बाद महाराष्ट्र में 64 87 और तमिलनाडु में 62.66 है। साक्षरता दर तथा साक्षरों की कुल संख्या में वृद्धि के बावजूद, जनसंख्या में तेजी से वृद्धि के कारण *निरक्षरों की संख्या 1961 में 32.55 करोड़ से 1991 में 40.4 करोड़ हो गयी।*[4] जो कुल जनसंख्या का 47.89 प्रतिशत है। सबसे अधिक निरक्षरता गांवों में है। राजस्थान में 1991 की जनगणना के अनुसार साक्षरता की दर 38.55 है। राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रों में तो स्त्रियों की साक्षरता का प्रतिशत केवल 11.59 ही है जो कि देश में सबसे कम है। वर्तमान में सभी राज्यों में प्रारम्भिक शिक्षा निःशुल्क हो गयी है। विश्वविद्यालय स्तर पर भी विद्यार्थियों की संख्या 1950-51 की तुलना में वर्तमान में नौ गुना से अधिक हो गयी है। वर्तमान में देश में 197 विश्वविद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तर के संस्थान तथा 8,210 महाविद्यालय हैं।

1 Quoted T. B. Bottomore, *Sociology*, p. 275.
2 "Education is the institution whose central value have to do with the acquisition of knowledge." —B. S. Phillips, *Sociology, Social Structure*, p 305
3 Mahatma Gandhi, *Harijan*, 1937.
4 *The Hindustan Times*, March 26, 1991.

यद्यपि स्वतन्त्रता के 50 वर्ष बाद साक्षरता का प्रतिशत और साक्षरों की संख्या काफी बढ़ चुकी है, परन्तु आज भी 10 भारतवासियों में से 5, 5 स्त्रियों में से 3, तथा 10 अनुसूचित जाति एवं जनजातीय लोगो में से 8 लिख या पढ़ नहीं सकते है। भारत साक्षरता की दृष्टि से काफी पिछड़ा हुआ है। 1986 में रूस में निरक्षर करीब-करीब नहीं के बराबर थे, संयुक्त राज्य अमेरिका में इनकी संख्या कुल जनसंख्या का 1 प्रतिशत, इटली में 3 प्रतिशत, चीन में 31 प्रतिशत, श्रीलंका मे 13 3 प्रतिशत, सिंगापुर मे 14 प्रतिशत तथा भारत मे 57 प्रतिशत थी। भारत में सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करना बहुत कठिन है। इसका कारण यह है कि यहा कुल वार्षिक बजट का 1.9 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च होता है जबकि अमेरिका में 19.9 प्रतिशत, जापान में 19.6 प्रतिशत, फ्रान्स में 17.8 प्रतिशत तथा रूस में 11.2 प्रतिशत खर्च होता है।

स्त्रियों में निरक्षरता की समस्या ज्यादा गम्भीर है। 1991 में देश में 24 76 करोड़ स्त्रियां निरक्षर थी। स्त्रियो में निरक्षरता का प्रतिशत 60.58 है जबकि पुरुषो मे यह 36.1 है। नगरीय क्षेत्रो में स्त्री-निरक्षरता 52.0 प्रतिशत तथा ग्रामीण क्षेत्रो में 82 प्रतिशत है। नगरों में पुरुष निरक्षरता 34 प्रतिशत जबकि गांवों में 59 प्रतिशत है। बच्चों में भी निरक्षरता की स्थिति दयनीय है। 7 वर्ष या इससे ऊपर वाले निरक्षर बच्चे 1981 में 30.20 करोड़ थे जो 1991 मे बढ़ कर 32.40 करोड़ हो गये। 14 से 16 वर्ष की आयु समूह के देश मे 153 करोड़ बच्चे है। जिनमे से 80 प्रतिशत स्कूलों में भर्ती है। 2.8 करोड़ बच्चे स्कूल नही जाते। जो बच्चे स्कूल जाते है उनमें से 50 प्रतिशत बच्चे पांचवीं कक्षा से पूर्व ही स्कूल छोड़ देते है। 38 प्रतिशत बच्चे पांचवी कक्षा तक की शिक्षा पूरी करते हैं।

निरक्षरता का प्रतिशत हिन्दी क्षेत्र में अधिक है। देश में निरक्षर व्यक्तियों का पंद्रह भाग हिन्दी भाषी राज्यों—बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश मे निवास करता है। **अशिश बोस** इस क्षेत्र को **'बिमारू क्षेत्र'** कहते हैं। सम्पूर्ण भारत मे 1991 में महिला साक्षरता की दर 39.4 प्रतिशत थी, जबकि बिमारू क्षेत्र मे यह 21 से 29 प्रतिशत के बीच थी। पहली कक्षा से पांचवी कक्षा तक लडकियों के प्रवेश की दर 1991-92 मे पूरे देश में 88 09 प्रतिशत थी, जबकि बिमारू क्षेत्र मे 50 से 66 प्रतिशत के बीच थी। बिमारू क्षेत्र में निरक्षरता एवं निर्धनता के मध्य भी अन्तर्सम्बन्ध पाया जाता है। बिमारू क्षेत्र में निरक्षरता की अधिकता की भांति निर्धनता भी अधिक पायी जाती है तथा यहां के लोगों की प्रतिव्यक्ति आय एवं शिक्षा पर प्रति व्यक्ति व्यय की दर भी राष्ट्रीय स्तर से कम है। बिमारू क्षेत्र के गांवों मे साक्षरता की दर तो और भी कम है। सारे देश की ग्रामीण जनसंख्या का 38 प्रतिशत भाग बिहार, मध्य प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश में रहता है, जबकि यहां महिला साक्षरता की दर 10 प्रतिशत ही है।

शिक्षा पर प्रथम पंचवर्षीय योजना मे 153 करोड़ रुपये, जबकि सातवी योजना में 6,373 करोड़ रुपये खर्च किये गये। वर्तमान में देश में शिक्षा के अनेक कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। स्कूल एवं विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा के अतिरिक्त व्यावसायिक, तकनीकी एवं चिकित्सा सम्बन्धी शिक्षा का प्रबन्ध है। अनेक अनुसन्धान संस्थान एवं प्रशिक्षण केन्द्र भी खुले हुए है। प्रौढ़ शिक्षा एवं बुनियादी शिक्षा के कार्यक्रम भी अशिक्षा की समस्या को हल करने के लिए प्रयत्नशील हैं। इन प्रयत्नो के कारण 1991 में साक्षरता का प्रतिशत 52.21 हो गया। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 28वें दौर के अनुसार शहरों में प्रति व्यक्ति शिक्षा पर

1.36 रुपये तथा गांवों में मात्र 26 पैसे प्रति व्यक्ति प्रति माह खर्च हो रहा था। यूनेस्को के आंकड़ों के अनुसार भारत मे स्कूली शिक्षा पर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 33 पैसे खर्च हो रहे थे जबकि रूस में 4.70 रुपये, जापान में 13.30 रुपये तथा मलेशिया मे 60 पैसे। वर्ष 1988-89 के लिए 1,595 करोड़ रुपये की धनराशि आवण्टित की गई।[1] ये सभी तथ्य भारत में शिक्षा की स्थिति को प्रकट करते हैं जो अन्य देशों की तुलना में असन्तोषप्रद है।

भारत में शिक्षा के क्षेत्र में अनेक विसंगतियां और समस्याएं विद्यमान है। बावजूद इसके कि देश में लाखों स्कूल और कॉलेज खोले जा चुके है हमारी शिक्षा पद्धति को संविधान मे दिये गये नीति निर्देशक सिद्धान्तों के अनुरूप 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों के लिए शिक्षा देना सम्भव नहीं हो पा रहा है। पहली से आठवीं कक्षा तक 1950-51 में 222 लाख बच्चों ने दाखिला लिया था, वह 1987-88 मे बढ़कर 1,228 2 लाख हो गया। आर्थिक दृष्टि से गरीब व पिछड़े वर्गों में अनेक बच्चे अभी भी शिक्षा से वंचित हैं। जैसा कि चौथे शिक्षा सर्वेक्षण से प्रकट होता है कि स्कूलों का न होना इस सम्बन्ध में मुख्य बाधक नही है। असली बात यह है कि विशेषत: ग्रामीण क्षेत्रों मे और कमजोर वर्ग के लोगों की सामाजिक और आर्थिक मजबूरियों, पाठ्यक्रमों का वस्तुस्थिति के अनुकूल न होना और स्कूलों में आवश्यक सुविधाएं न होना आदि कुछ ऐसे कारण है जिससे शिक्षा के क्षेत्र में बहुत धीमी प्रगति हो रही है। यही कारण है कि पहली कक्षा में प्रवेश लेने वाले छात्रों मे से 64% पांचवी कक्षा तक पहुंचते-पहुंचते स्कूल छोड़ जाते हैं। इस प्रकार संसाधनो का पूरा उपयोग न होने से आर्थिक हानि होती है। शिक्षा के क्षेत्र में अकुशलता आ जाती है, लक्ष्यो की प्राप्ति नहीं होती और अन्ततः परिवार व समाज को हानि उठानी पड़ती है।

अशिक्षा के कारण
(CAUSES OF ILLITERACY)

भारत में अशिक्षा के लिए अनेक कारण उत्तरदायी हैं। हम यहां उनका संक्षेप मे उल्लेख करेंगे :

(1) **वर्ण एवं जाति व्यवस्था**—प्राचीन काल से ही भारत में वर्ण एवं जाति व्यवस्था प्रचलित रही है। इस व्यवस्था ने समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र, इन चार भागों में बांटा है। शिक्षा का अधिकार केवल द्विज जातियों को ही दिया गया और शेष लोगों को इससे वंचित रखा गया। प्राचीन शिक्षा, धार्मिक शिक्षा थी जो कि एक वर्ण एवं जाति विशेष के लिए ही थी। यही कारण है कि समाज का शेष भाग अशिक्षित रहा।

(2) **दरिद्रता**—अशिक्षा के लिए गरीबी भी उत्तरदायी है। जहां लोगों को भरपेट भोजन तक नसीब न होता हो और जनता गरीबी रेखा के नीचे जीवन व्यतीत करती हो, उनसे शिक्षा प्राप्त करने की आशा नही की जा सकती, क्योंकि शिक्षा ग्रहण करने में जितना समय व पैसा खर्च होता है, उतने समय व पैसे में तो वे अपनी आजीविका चलाने की बात सोचते हैं।

(3) **भाग्यवादी दृष्टिकोण**—भारतवासी भाग्य में अधिक भरोसा करते हैं। उनकी मान्यता है कि व्यक्ति को उसके जीवन में उतना ही मिलेगा, जितना भाग्य में लिखा है। अतः शिक्षा

1 वार्षिक रिपोर्ट, 1989, भाग-1, पृ. 3, मानव संसाधन विकास मन्त्रालय, भारत सरकार।

ग्रहण करके भी हम क्या कर लेंगे क्योंकि जितना कुछ प्राप्त करना है वह तो वैसे भी मि ही, फिर शिक्षा पर व्यर्थ खर्च क्यों किया जाय।

(4) **अंग्रेजी शासन**—यद्यपि अंग्रेजों ने भारत में प्राचीन धार्मिक शिक्षा के स्थान पर आधुनिक पश्चिम की उदारवादी एवं वैज्ञानिक शिक्षा को प्रारम्भ किया किन्तु इस शिक्षा का मूल उद्देश्य भारत मे अशिक्षा का निवारण एवं शिक्षा का प्रसार करना नहीं वरन् अपने प्रशासनिक कार्य मे सुविधा जुटाने हेतु बाबू वर्ग तैयार करना था। इसलिए उन्होंने जनशिक्षा के लिए कोई प्रयत्न नही किये और न ही ग्रामो मे शिक्षा का प्रबन्ध किया। उन्होंने शिक्षा सस्थाओ की स्थापना केवल शहरो मे ही की जहां उस समय देश की करीब 10 प्रतिशत जनसख्या ही रहती थी। अत. अंग्रेजो के समय में 90 प्रतिशत लोगों के लिए शिक्षा का कोई प्रबन्ध नही था।

(5) **वैज्ञानिक प्रगति का अभाव**—भारत मे अशिक्षा का एक कारण लोगों मे वैज्ञानिक क्षमता का अभाव है। विज्ञान धर्म एवं रूढिवादिता के स्थान पर तर्क को महत्व देता है। इससे लोगो के मस्तिष्क का विकास होता है एवं कूपमण्डूकता समाप्त होती है। किन्तु वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं प्रगति के अभाव में यहा अशिक्षा का साम्राज्य रहा है।

अशिक्षा के दुष्परिणाम
(EVIL EFFECTS OF ILLITERACY)

अशिक्षा एक राष्ट्रीय कलक है, और इसके कारण भारत में अनेक समस्याएं उत्पन्न हुई और देश एवं समाज को प्रगति की दृष्टि से कई कठिनाइयो का सामना करना पड़ा। अशिक्षा के प्रमुख दुष्परिणाम निम्न प्रकार से है :

(1) **व्यक्तित्व के विकास में बाधक**—शिक्षित व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का ठीक से विकास कर सकता है। उसके अभाव मे व्यक्ति में बुद्धि एवं तर्क शक्ति का अभाव रहता है। वह अपना विकास करने में असमर्थ होता है तथा उसकी सोचने की क्षमता सीमित हो जाती है।

(2) **आर्थिक विकास मे बाधक**—शिक्षा के अभाव में व्यक्ति एवं राष्ट्र का आर्थिक विकास सम्भव नहीं है। क्योंकि उसे देश में उपलब्ध प्राकृतिक भण्डारों, मशीनों को चलाने, व्यवसाय का प्रबन्ध करने, आदि का ज्ञान नही हो सकता है। अशिक्षित व्यक्ति शिक्षित व्यक्ति को प्राप्त होने वाली नौकरियो से वंचित हो जाता है। ऐसी स्थिति में उसकी आर्थिक दशा उन्नत नहीं हो पाती और इसका विपरीत प्रभाव राष्ट्रीय आय एवं लाभांश पर भी पडता है। अधिकांश अशिक्षित व्यक्ति गरीवी में ही दिन व्यतीत करते है। वे ऋणग्रस्त हो जाते है तथा साहूकार उनका खूब शोषण करते हैं।

(3) **अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में बाधक**—आज का युग औद्योगिक युग है। आज कच्चा माल खरीदने और निर्मित माल को वेचने के लिए विभिन्न देशों में पारस्परिक निर्भरता बढ़ी है। राजनीतिक कारणों से भी कई देश एक-दूसरे के नजदीक आये हैं। हम विश्व-राज्य की कल्पना करने लगे हैं, संयुक्त राष्ट्र संघ इसका प्रतीक है किन्तु जब किसी राष्ट्र के व्यक्ति अशिक्षित हों तो वे दूसरे देशों से सम्पर्क करने और उनसे सम्बन्ध बनाये रखने में असमर्थ होते हैं। विभिन्न देशों की भाषाएं भी भिन्न-भिन्न हैं। शिक्षा के अभाव में भाषा का ज्ञान नहीं हो सकता और ऐसी स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध कायम नहीं हो पाते।

(4) **अन्धविश्वास**—अशिक्षा अनेक अन्धविश्वासों एवं रूढ़ियों को जन्म देती है। विभिन्न वैज्ञानिक विधि का प्रयोग न कर लोग भूत-प्रेत, देवी-देवता, झाड़-फूंक, मन्त्र-तन्त्र एवं

…ा लोगों के चक्कर में कष्ट उठाते हैं और कभी-कभी तो उन्हें अपने जीवन से भी हाथ …ा पड़ता है। भारत में अशिक्षा ने जाति, धर्म, ईश्वर, विवाह आदि से सम्बन्धित अनेक …धविश्वासों को जन्म दिया है और लोग वास्तविक स्थिति से अनभिज्ञ रहे। उनकी इस स्थिति … लाभ उठाकर पण्डे-पुजारियों, सेठ-साहूकारों आदि ने उनका खूब शोषण किया है।

(5) **सामाजिक विघटन एवं सामाजिक समस्याओं का जन्म**—अशिक्षा ने भारत मे सामाजिक …घटन एवं सामाजिक समस्याओं को जन्म दिया है। पर्दा-प्रथा, जाति-प्रथा, बाल-विवाह, …धवा विवाह निषेध, ऋणग्रस्तता, साम्प्रदायिकता, भाषावाद, प्रान्तवाद, प्रजातिवाद, धार्मिक …ट्टरता, अपराध, आदि अनेक समस्याओं के लिए अशिक्षा काफी सीमा तक उत्तरदायी है।

(6) अशिक्षा ने देश में विभिन्न प्रकार के भेदभावों को प्रोत्साहन दिया है और लोग …ाति, समुदाय व धर्म आदि को लेकर कई बार संघर्ष भी कर चुके है।

(7) अशिक्षा व्यक्ति के जीवन में आने वाली समस्याओं के समाधान में भी बाधक होती … क्योंकि अशिक्षित व्यक्ति भला-बुरा, उपयुक्त-अनुपयुक्त आदि के बारे में सोचने मे असमर्थ … और समस्या के समाधान के लिए उचित निर्णय नहीं ले पाता।

(8) अशिक्षा व्यक्ति एवं राष्ट्र की प्रगति में भी बाधक है। जहां देश के अधिकांश लोग …शिक्षित हों वे वैज्ञानिक आविष्कार करने में असमर्थ होते हैं और उनके अभाव मे देश …गति नहीं कर सकता।

(9) अशिक्षा सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माण व विकास में भी बाधक है।

(10) **प्रजातन्त्र में बाधक**—हमारे देश में आजादी के बाद प्रजातन्त्रीय शासन-प्रणाली को स्वीकार किया गया है। जहां अशिक्षा का साम्राज्य हो, वहां लोग अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों से भली-भांति परिचित नहीं हो पाते। ऐसी स्थिति में कुछ गिने-चुने लोग ही सत्ता मे बने रहते हैं और आम जनता प्रजातन्त्र से लाभान्वित नहीं हो पाती।

अशिक्षा को दूर करने की आवश्यकता
(NEED TO REMOVE ILLITERACY)

निम्नांकित कारणों से देश में अशिक्षा को दूर करने एवं शिक्षा को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है :

(1) विभिन्न सामाजिक समस्याओं से मुक्ति पाने के लिए आवश्यक है कि लोग शिक्षित हों ताकि वे उचित-अनुचित को समझें तथा ऐसे कार्य नहीं करें जो समाज में विघटन एवं समस्याएं पैदा करते हों। शिक्षित व्यक्ति सामाजिक बुराइयों को जड़ से उखाड फेंकने में भी योग दे पाते हैं।

(2) शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् व्यक्ति के आत्म-सम्मान मे वृद्धि होगी।

(3) शिक्षा व्यक्ति के ज्ञान में वृद्धि करती है और ज्ञान अपने आप में एक शक्ति है।

(4) गरीबी, बेकारी तथा आर्थिक समस्याओं से मुक्ति पाने के लिए अशिक्षा को दूर करना आवश्यक है।

(5) परम्परा, रूढ़िवादिता एवं अन्धविश्वासों से मुक्ति पाने और इनके स्थान पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण को विकसित करने के लिए आवश्यक है कि अशिक्षा से छुटकारा पाया जाय।

(6) सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के लिए भी अशिक्षा को दूर करना आवश्यक है।

(7) देश में समाजवादी व्यवस्था की सच्चे अर्थों में स्थापना करने एवं न्याय-वितरण के लिए शिक्षा का प्रसार आवश्यक है।

(8) समाज में परिवर्तन लाने के लिए अशिक्षा को समाप्त किया जाय क्योंकि उ परिवर्तन के मार्ग में रोड़ा है जबकि शिक्षा ही परिवर्तन का एक सशक्त माध्यम है।

(9) आज का युग औद्योगिक युग है। देश में अधिकाधिक औद्योगीकरण कर यन्त्रों को चलाने के लिए शिक्षा एवं प्रशिक्षण आवश्यक है।

(10) प्रजातन्त्र की सफलता तभी सम्भव है जब लोग अपने अधिकारों एवं द से परिचित हों, उन्हें संविधान का ज्ञान हो और इन सबके लिए व्यक्ति का शिक्षि आवश्यक है।

(11) स्वास्थ्य की दशा उन्नत करने के लिए भी शिक्षा का प्रसार आवश्यक है।

(12) कृषि में प्रगति एवं वैज्ञानिक साधनों व विधियों के प्रयोग के लिए भी आवश्यक है।

(13) कुटीर व्यवसायों की प्रगति के लिए भी शिक्षा जरूरी है।

अशिक्षा को दूर करने के उपाय
(MEASURES TO REMOVE ILLITERACY)

भारत में शिक्षा के प्रसार एवं अशिक्षा को दूर करने के लिए निम्नलिखित अपनाये जाने चाहिए :

(1) शिक्षा का प्रसार किया जाय और साक्षरता को बढ़ावा दिया जाय।

(2) अधिकाधिक निःशुल्क शिक्षा दी जाय।

(3) शिक्षा को अनिवार्य बना दिया जाय।

(4) लोगो में प्रचार-प्रसार द्वारा शिक्षा के प्रति रुचि एवं जागृति पैदा की जाय

(5) स्त्री शिक्षा का प्रचार किया जाय। घर में जब स्त्री शिक्षित होगी तो वह ब अच्छे संस्कार पैदा कर सकेगी।

(6) विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों के द्वारा गांवों में शिक्षा का प्रसार किया जा

(7) शिक्षा पद्धति को रोचक एवं रोजगारोन्मुख बनाया जाय ताकि अधिकाधिक में शिक्षा के प्रति आकर्षण पैदा हो।

(8) शिक्षकों को भी प्रशिक्षित किया जाय ताकि वे गांवों के लोगो को शिक्षा के को बता सकें।

(9) विभिन्न अनुसन्धान केन्द्रों की स्थापना कर ऐसे साधन ढूंढ़े जायं जिससे शि लोगों में सुगम तरीके से प्रसार हो सके।

(10) शिक्षा के पाठ्यक्रम में सुधार किया जाय और पाठ्यक्रम ऐसा हो जो को जीवन के लिए तैयार कर सके, न कि शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी वह अपने उ जीवन में कुछ करने मे असमर्थ पाये।

(11) उपयुक्त साहित्य का निर्माण किया जाय।

(12) पुस्तकालय, वाचनालय एवं चलती-फिरती गाड़ियों की संख्या में वृद्धि की इनमें बाल व मनोरंजक साहित्य के अतिरिक्त सामाजिक, राजनीतिक, औद्योगिक, अ व सांस्कृतिक ज्ञान सम्बन्धी जानकारी देने वाला साहित्य हो। देश-विदेश के समाच अवगत कराने के लिए पत्र-पत्रिकाओं की भी व्यवस्था की जानी चाहिए।

(13) रेडियो एवं टेलीविजन कार्यक्रमों के द्वारा मनोरंजन के साथ-साथ शिक्षा प्रसार का कार्य भी किया जाय। सिनेमा के द्वारा भी अनेक प्रकार की जानकारी प्रदान की जा सकती है।

(14) देश में प्रदर्शनियों, क्रीड़ा-केन्द्रों एवं अजायबघरों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(15) बुनियादी शिक्षा का प्रसार—गांधीजी ने भारतीयों के लिए बुनियादी शिक्षा की योजना प्रस्तुत की। इसका उद्देश्य शिक्षा के साथ-साथ हस्तकला एवं उद्योग सिखाना भी है ताकि बच्चा अपनी बनाई हुई वस्तुएं बेचकर ही शिक्षा का खर्च निकाल ले एवं उसमें स्वावलम्बन की भावना पैदा हो। बुनियादी शिक्षा मातृ-भाषा में ही दी जानी चाहिए। इस प्रकार से बुनियादी शिक्षा बच्चों को देश के आदर्श नागरिक बनने पर जोर देती है। इसमें आधुनिक परीक्षा पद्धति का बहिष्कार किया गया है, यह शिक्षकों के चरित्र एवं व्यक्तित्व पर विशेष जोर देती है।

(16) **प्रौढ़ शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाय**—शिक्षा के अधिकाधिक प्रसार के लिए आवश्यक है कि प्रौढ़ शिक्षा का प्रसार किया जाय क्योंकि राष्ट्रीय शिक्षा में प्रत्येक भारतीय को बराबर का हिस्सा मिलना चाहिए। प्रजातन्त्र को सफल बनाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति मे नेतृत्व के गुणों का विकास करना आवश्यक है। अतः उन प्रौढ़ों को जो निरक्षर हैं, शिक्षा देनी होगी। प्रौढ़ शिक्षा के अन्तर्गत साक्षरता, स्वास्थ्य एवं सफाई के नियमों का ज्ञान, आर्थिक स्थिति में सुधार हेतु प्रशिक्षण, अधिकारों एवं कर्तव्यों का ज्ञान, स्वस्थ मनोरंजन, बदली परिस्थितियों से सामंजस्य करने की क्षमता का विकास, व्यक्तित्व का विकास, आदि पक्षों को सम्मिलित किया जाना चाहिए। यह शिक्षा केवल प्रौढ़ पुरुषों तक सीमित न रहकर प्रौढ़ स्त्रियों एवं युवकों को भी दी जानी चाहिए। प्रौढ़ शिक्षा के लिए चल-चित्र, प्रदर्शनी, लोक-नृत्य, लोकगीत, भजन, कीर्तन, पोस्टर आदि का प्रयोग किया जाना चाहिए।

अशिक्षा या निरक्षरता को दूर करने के लिए भारत में तीन प्रकार के प्रयास किये गये हैं : (i) राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम, (ii) ग्रामीण प्रकार्यात्मक साक्षरता कार्यक्रम, तथा (iii) राष्ट्रीय साक्षरता मिशन।

(i) **राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम** (National Adult Education Programme)—यह कार्यक्रम 2 अक्टूबर, 1978 को प्रारम्भ किया गया। इसका लक्ष्य 15-35 आयु वर्ग के निरक्षर लोगों को साक्षर बनाना था। इस कार्यक्रम को केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारें, ऐच्छिक संगठन, विश्वविद्यालय, महाविद्यालय तथा युवा-केन्द्र संयुक्त रूप से चलाते हैं। इसमें स्त्री-शिक्षा तथा अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा समाज के कमजोर वर्गों की शिक्षा पर विशेष जोर दिया गया है। इसमें लोगों को साक्षर बनाने हेतु कार्यक्रम चलाने के अलावा लोगों में साक्षरता सम्बन्धी जागरूकता पैदा करने का विशेष प्रयास किया गया है।

(ii) **ग्रामीण प्रकार्यात्मक साक्षरता कार्यक्रम** (Rural Functional Literacy Programme)—इस कार्यक्रम का पूरा खर्चा केन्द्रीय सरकार उठाती है परन्तु इसे संचालित करने का दायित्व राज्य सरकारों का है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य लोगों में पढ़ने-लिखने की योग्यता विकसित करना, उनमें अपने अधिकारों एवं दायित्वों के सम्बन्ध में जागरूकता पैदा करना तथा उन्हें यह बताना है कि सरकार द्वारा सामाजिक-आर्थिक विकास की कौन-कौनसी योजनाएं चलायी जा रही हैं। यह कार्यक्रम मई 1986 में प्रारम्भ किया गया। इसमें महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों के छात्रों को सम्मिलित किया गया। इसमें नारा दिया गया 'Each one,

Teach one' (प्रत्येक एक, एक को पढ़ाये)। 1990 में 4.50 लाख स्वयंसेवक लगे हुए थे तथा 4.20 लाख लोगों को इसके तहत पढ़ना-लिखना सिखाया गया।

(iii) **राष्ट्रीय साक्षरता मिशन (National Literacy Mission)**—सरकार ने रा साक्षरता मिशन नाम का कार्यक्रम प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में मई 1988 में प्रारम्भ किया। कार्यक्रम का लक्ष्य 8 करोड़ लोगों को (15-35 आयु वर्ग) प्रकार्यात्मक साक्षरता प्रदान कर था, 3 करोड लोगों को 1990 तक तथा 5 करोड़ को 1995 तक। अब इसमे विस्तार क 1997 तक कुल 10 करोड़ लोगों को साक्षर करने का लक्ष्य रखा गया।

सम्पूर्ण साक्षरता प्राप्त करने के उद्देश्य से 4 राज्यों—विहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश में जहां कि निरक्षरों का एक वहुत वड़ा भाग निवास करता है, समग्र साक्षरता कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया है। साक्षरता मिशन का 13 81 प्रतिशत लक्ष्य उपर्युक्त चार राज्यों (विमारू क्षेत्र) मे पूरा करने का है। इस कार्यक्रम में युवको व ऐच्छिक संगठनों को सम्मिलित किया गया। 1990 में विभिन्न राज्यों में इस कार्यक्रम के तहत 513 परियोजनाएं चल रही थीं। वर्तमान में 500 ऐच्छिक संगठन इस कार्य में लगे हुए है।

स्त्री समानता के लिए शिक्षा (Education for Women Equality)—शिक्षा के राष्ट्रीय नीति मे कहा गया है कि शैक्षणिक संरचना ने शैक्षणिक उपलब्धियो के क्षेत्र में परम्परात्मक लिंग असमानता को कम करने में उल्लेखनीय भूमिका नहीं निभायी है। अ वर्तमान में प्रचलित शिक्षा नीति में कुछ नये प्रावधान किए गये हैं जैसे—(1) ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड कार्यक्रम के अन्तर्गत भविष्य मे भर्ती किए जाने वाले अध्यापकों में से 50 प्रतिशत अध्यापक महिलाएं हों। (2) राजस्थान में शिक्षाकर्मी योजना प्रारम्भ की गई है। इस योजना मे जिन प्राथमिक स्कूलों में केवल एक ही अध्यापक है वहां दो स्थानीय शैक्षणिक कार्यकर्ताओं का सहयोग लिया जायेगा। इन्हे शिक्षाकर्मी कहा गया है। शिक्षाकर्मियो में से 10 2 प्रतिशत महिलाएं होंगी। (3) अनौपचारिक शिक्षा योजना के अन्तर्गत सरकार 90 प्रतिशत सहायता लडकियों की शिक्षा के लिए देगी। (4) नवोदय विद्यालय में एक-तिहाई विद्यार्थी लड़कियां भर्ती की जाती है। नवोदय विद्यालय एवं केन्द्रीय विद्यालय में लड़कियों को 12वीं कक्षा तक मुफ्त शिक्षा दी जाती है। (5) केन्द्र सरकार द्वारा +2 स्तर पर लड़कियों को व्यावसायिक शिक्षा प्रदान की जाती है। (6) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) विश्वविद्यालयों के महिलाओं के अध्ययन हेतु सहायता प्रदान करता है तथा विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में महिला अध्ययन प्रकोष्ठ स्थापित किए गये हैं।

महिला समख्या कार्यक्रम (Mahila Samakhya Programme)—स्त्रियों के लिए समानता हेतु शिक्षा कार्यक्रम के उद्देश्य से डच सरकार की सहायता से महिला समख्या कार्यक्रम उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, गुजरात एवं आंध्र प्रदेश के 14 जिलों में चलाया जा रहा है। इस कार्यक्रम के द्वारा महिलाओं का स्वयं के प्रति दृष्टिकोण एवं समाज मे उनकी परम्परात्मक भूमिका में परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया जाता है। इसमें महिलाओ के लिए ऐसा वातावरण वनाया जाता है कि वे ज्ञान एवं सूचनाएं प्राप्त करने में रुचि लें। इसमें महिलाओ को समानता प्राप्त करने के लिए संघर्ष के लिए तैयार किया जाता है। इस कार्यक्रम पर 1992-97 मे 51.29 करोड़ रुपए खर्च करने की व्यवस्था की गई है।

लोक जुम्बिश (Lok Jumbish)—'सभी के लिए शिक्षा' के उद्देश्य से स्वीडन सरकार की सहायता राजस्थान में लोक जुम्बिश कार्यक्रम चलाया जा रहा है। इस योजना का उद्देश्य जनसहयोग द्वारा सन् 2000 तक सभी लोगों के लिए शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करना है। इसके प्रथम चरण में सरकार ने 1992-94 के दो वर्षों के लिए 18 करोड़ रुपए स्वीकृत किए हैं जिसमें स्वीडन सरकार, केन्द्र सरकार एवं राजस्थान सरकार का 3 : 2 : 1 अंश सम्मिलित है। यह योजना 25 ब्लॉक में चल रही है। इस योजना का दूसरा चरण सन् 1994-97 के मध्य का है जिसके अन्तर्गत 50 ब्लॉक तक इस योजना का विस्तार किया जाएगा और 80 करोड़ रुपए खर्च किए जाएंगे।

अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए शिक्षा (Education for Scheduled Castes and Tribes)

अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों की पहचान उनके अत्यधिक सामाजिक, शैक्षणिक एवं आर्थिक पिछड़ेपन के आधार पर की गयी है। इस वर्ग में व्याप्त अशिक्षा को दूर करने के लिए सरकार द्वारा अनेक कदम उठाये गये हैं; जैसे (1) इन लोगों के लिए सभी प्रकार की शिक्षण संस्थाओं, इन्जीनियरिंग महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों, केन्द्रीय विद्यालयों, नवोदय विद्यालय, आदि में स्थान आरक्षित किए गये हैं। (2) प्रतियोगी परीक्षाओं, आई. आई. टी., आदि परीक्षाओं के लिए इन लोगों के लिए कोचिंग की व्यवस्था की गयी है। (3) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के छात्रों के लिए जूनियर एवं सीनियर रिसर्च फेलोशिप, टीचर फैलोशिप एवं रिसर्च एसोशियटशिप प्रदान की जाती है। (4) केन्द्र सरकार राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों को यह निर्देश देती है कि जिन क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों का बाहुल्य है वहां स्कूल खोलने में वरीयता दी जाय। (5) जनजाति क्षेत्रों में जनजाति भाषा में ही शिक्षा देने एवं द्विभाषा पढ़ाने के सन्दर्भ में NCERT तथा CIIL (Central Institute of Indian Languages) के द्वारा पुस्तकें तैयार की जाती हैं।

इसी प्रकार से अल्पसंख्यकों की बहुलता वाले क्षेत्रों में भी अल्पसंख्यकों की शिक्षा हेतु प्राथमिक एवं सैकण्ड्री स्तर तक के स्कूल खोलने के लिए सरकार द्वारा विशेष आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। इनके लिए भी प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी हेतु देश के 41 जिलों में जहां अल्पसंख्यकों की बहुलता है कोचिंग सेन्टर एवं पोलिटेक्नीक केन्द्र स्थापित किए गये हैं।

साक्षरता बढ़ाने हेतु किये गये प्रयत्न : मूल्यांकन (MEASURES TAKEN FOR INCREASING LITERACY : EVALUATION)

साक्षरता कार्यक्रम एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय कार्यक्रम है, परन्तु इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन में केन्द्र, राज्य सरकारों, स्थानीय निकायों एवं ऐच्छिक संगठनों के बीच आवश्यक तालमेल का अभाव है। विभिन्न विश्वविद्यालयों के कुलपतियों की मार्च 1990 मे दिल्ली में एक बैठक हुई जिसमें सुझाव दिया गया कि साक्षरता को महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम का एक भाग बना दिया जाना चाहिए तथा छात्रों को गर्मियों की छुट्टियो में साक्षरता कार्यक्रमों में लगाया जाना चाहिए। यदि महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय के छात्र वर्ष में दो महीने प्रतिदिन दो या तीन घण्टे कार्य करते हुए प्रत्येक 10 व्यक्तियों के समूह को साक्षर बनाने का दायित्व अपने पर लें तो देश को साक्षर बनाने में 5 वर्ष से अधिक समय नहीं लगेगा।

प्रत्येक छात्र को 10 प्रौढ़ों को शिक्षित करने का काम सौंपा जाना चाहिए। साक्षरता का... में लगे छात्रों को उनकी इच्छा के अनुसार इन्जीनियरिंग, मेडिकल अथवा किसी अ... महाविद्यालय मे प्रवेश प्राप्त करने की सुविधा उपलब्ध करायी जानी चाहिए। उन्हें प्रशं... अतिरिक्त कई अन्य रूपों में भी प्रोत्साहन दिये जाने चाहिए।

अशिक्षा को समाप्त करने के लिए हमारे देश में प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम बड़े उत्साह... साथ प्रारम्भ किया गया, कुछ अच्छे परिणाम भी निकले, लेकिन इसके माध्यम से इच्छि... लक्ष्यो की पूर्ति नही हो सकी। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि इस कार्यक्रम को प्रत्य... जनता का सहयोग नहीं मिल पाया इस कार्यक्रम की एक कमी यह भी है कि हमारे देश... सुसंगत और सुविचारित कार्य योजना नहीं है जो कि केन्द्र और राज्यों, स्वयं सेवी संगठ... जनसेवी संगठनों एवं रचनात्मक कार्यकर्ताओं को इस राष्ट्रीय प्रयास में एक साथ जुटा... प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के लिए निर्धारित की गई छः माह की अवधि काफी लम्बी है और इ... अवधि मे शिक्षा प्राप्त करने वाले काफी लोग कार्यक्रम को बीच में ही छोड़ देते हैं। इस... इस अवधि को घटाकर दो माह करना उचित होगा।

इस कार्यक्रम की एक कमी यह भी है कि इसके अन्तर्गत निश्चित किये गये साक्ष... सम्बन्धी प्रतिमान बहुत ऊंचे हैं, जैसे—अंकगणित को लिखने और पढ़ने से अलग रखा जा... प्रारम्भ मे अंकगणित को साक्षरता के साथ जोड़ने से पढ़ने वालों को कार्यक्रम से अरुचि हो... जाती है। इससे मूल साक्षरता कार्यक्रम को बीच में छोड़ देने वालों की संख्या बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त साक्षरता कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए कही न कहीं बाध्यता का तत्व अवश्य होना चाहिए।

साक्षरता के सन्दर्भ में राममूर्ति रिपोर्ट में बताया गया है कि प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि इसे लोगों की आवश्यकता के साथ जोड़ा जाए। ये आवश्यकताएं है : स्वास्थ्य, पोषण, आवास तथा रोजगार।

इस कार्यक्रम की सफलता मे एक बहुत बड़ी बाधा यह रही है कि निरक्षर प्रौढ़ पढ़ना-लिखना सीखने हेतु केन्द्रों पर जाने में कई कारणों से अपने को असमर्थ पाता है। समय की कमी, आर्थिक अभाव, भाग्यवादी दृष्टिकोण, पारिवारिक विरोध, प्रोत्साहनों की कमी तथा साक्षरता के प्रति स्त्रियों का नकारात्मक रुख एवं कार्यक्रम की उपयोगिता के सम्बन्ध में जानकारी का अभाव, आदि प्रमुख कारण रहे हैं।

निरक्षरो की संख्या उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश, हरियाणा एवं हिमाचल प्रदेश में सवधिक है। यहां करीब 80 प्रतिशत प्रौढ़ अशिक्षित है जबकि राष्ट्रीय औसत 48 प्रतिशत ही है। हायर सेकण्डरी, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तर के लाखों छात्रों को देश से निरक्षरता को समाप्त करने के महान् राष्ट्रीय कार्य में लगाया जा सकता है। आज तक का अनुभव यह बताता है कि केन्द्रीय सरकारें केवल अपने प्रयत्नों से निरक्षरता को दूर नहीं कर सकतीं। इस कार्य में ऐच्छिक संगठनों का सहयोग लेना आवश्यक है। कनाडा का विश्व साक्षरता (World Literacy of Canada) एक ऐसा ही ऐच्छिक संगठन है जो विकासशील देशों में प्रौढ शिक्षा कार्यक्रम को आगे बढ़ाने में लगा हुआ है। इस संगठन ने अब तक भारत में 26 साक्षरता परियोजनाओं को संचालित करने में योग दिया है।

प्रौढ़ शिक्षा के अलावा बालकों की शिक्षा पर विशेष जोर देना भी आवश्यक है। इस हेतु अब कई स्कूलों में नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के अन्तर्गत बालकों को मुफ्त

ा, कपड़े, पुस्तकें, आदि दी जाती हैं। अभी स्थिति यह है कि 6-14 आयु वर्ग के करीव करोड़ बच्चों में से आधे के करीव बच्चे ही स्कूल में प्रवेश ले पाते हैं। जो बालक प्रवेश हैं, उनमें से औसतन 10 में से 4 बालक ही 5वीं कक्षा तक स्कूल में पढ़ पाते है।

स्त्री-शिक्षा पर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। 1991 की जनगणना के सार स्त्रियों में निरक्षरता का प्रतिशत 60.58 है तथा कुल 24.76 करोड़ स्त्रियां निरक्षर इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए स्त्री-शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए केन्द्र व राज्य कारों ने कई कदम उठाये हैं। स्त्री-शिक्षा की देखभाल के लिए राज्यों में पृथक निदेशालयों स्थापना की गयी है। लड़कियों के लिए पॉलीटेक्निकों की स्थापना, अध्यापिकाओं के लिए ीण क्षेत्रों में क्वार्टरों तथा लड़कियों के लिए छात्रावासों का निर्माण किया गया है। नारी ा केन्द्रों को आर्थिक सहायता प्रदान करने एवं नारी शिक्षा पर विचार-गोष्ठियों का आयोजन दे कार्यक्रमों का संचालन किया जा रहा है।

जहां देश में 40 करोड़ लोगों को शिक्षित करना है, 6-14 आयु-वर्ग के बालकों के ा-पिता को अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए प्रोत्साहित करना है, 74 प्रतिशत बच्चों माता-पिता को इस बात के लिए तैयार करना है कि प्राइमरी स्कूल में प्रवेश लेने वाले के बच्चे 5वीं कक्षा तक अपना अध्ययन पूरा करें, निरक्षरता को समाप्त करना एक ती भरा कार्य है। इसके लिए सीखने वालों, उनके माता-पिता एवं सिखाने वालों को भी प्रेरित करना होगा। इस सम्पूर्ण कार्य को पूर्ण निष्ठा के साथ चलाना होगा, जन-जन सहयोग प्राप्त करना होगा, तभी निरक्षरता को दूर किया जा सकता है।

प्रश्न

1. शिक्षा को परिभाषित कीजिए। भारत मे अशिक्षा (निरक्षरता) के कारणों पर प्रकाश डालिए।
2. "अशिक्षा (निरक्षरता) भारतीय समस्याओं की जड है।" विवेचना कीजिए।
3. भारत में अशिक्षा की समस्या को हल करने हेतु किये गये प्रयासों का उल्लेख कीजिए।
4. भारत में अशिक्षा की समस्या को हल करने के उपाय सुझाइए।
5. भारत में अशिक्षा के दुष्प्रभावों को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
6. 'भारत में अशिक्षा' पर एक निबन्ध लिखिए। (राज., 1996)
7. भारत में अशिक्षा के प्रमुख कारण क्या है? इस समस्या को दूर करने के लिए अपने सुझाव दीजिए। (अजमेर, 1990, 91, 96)
8. भारत मे अशिक्षा के प्रमुख कारण क्या हैं? इस समस्या को दूर करने के लिए अपने सुझाव दीजिए। (अजमेर, 1996)
9. भारत मे अशिक्षा के प्रभावों की व्याख्या कीजिए। इस समस्या के हल हेतु सरकार द्वारा क्या उपाय किए गये हैं? (अजमेर, 1997)

8

युवकों की समस्याएं : छात्र असन्तोष

[PROBLEMS OF YOUTH : STUDENT UNREST]

आज देश के हजारों-लाखों युवकों में असन्तोष एवं आक्रोश पाया जाता है, सक्रिय दिखायी पडती है। वे आज कई प्रकार के तनावों से ग्रसित हैं। युवकों मे पाये जाने इन तनाव एवं असन्तोष कई रूपो में प्रकट होता है। कई युवक प्रदर्शनों, तोड़-फोड, आन्दो मारपीट, हडतालो, घेराव एवं हिंसात्मक दंगों में भाग लेते हैं। कभी किसी कालेज व विश्वविद्यालय में हिंसा की अग्नि भड़क उठती है तो कभी किसी कारखाने में। कभी पद के नाम पर आन्दोलन चलते हैं तो कभी शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन के नाम पर तो कहीं आरक्षण के नाम पर। कभी छात्र आक्रोश प्रशासन या व्यवस्था के विरुद्ध भड़क उठता। तो कभी महंगाई या भ्रष्टाचार के विरुद्ध आन्दोलन के रूप में। कहीं जाति के नाम पर तो कहीं वर्ग के नाम पर और कहीं प्रान्तीयता व धर्म के नाम पर झगड़े होते हैं। युवा सक्रिय या असन्तोष अक्सर विद्यार्थी अनुशासनहीनता के रूप में प्रकट होता है। उप-कुलपतियों एवं नेताओ का समय-समय पर घेराव होता है। आखिर यह सब कुछ क्या और क्यो है? दुसरे मे अति सक्रियता या असन्तोष का प्रमुख कारण उनका मौजूदा व्यवस्था से असन्तुष्ट होना है। आज का युवक अपने आपको असुरक्षित महसूस करता है, उसे अपने प्रयलों से अपने लिए कोई प्रस्थिति अर्जित करनी होती है। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् भी उसे नौकरी या व्यवसाय की तलाश में दर-दर की ठोकरे खाने को बाध्य होना पड़ता है। वह न तो सुगमता से अपनी आकांक्षाओ का और न ही माता-पिता की अपेक्षाओ को पूर्ण कर पाता है। वह जीवन में कई स्वप्न संजोता है, पर यथार्थ के धरातल पर उन्हें टूटते हुए देखता है। यह सारी परिस्थिति उसमें सक्रियता या असन्तोष बढ़ाने मे योग देती है। आज के युवक अनेक समस्याओं से घिरे हुए हैं सार्वजनिक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार भी युवकों को व्यवस्था के विरुद्ध उठ खडे होने को बाध्य कर देता है। आज युवकों मे तरुणाई का उफान अवश्य है, जोश है, कुछ कर गुजरने की लालसा है परन्तु उनमें से अधिकांश दिशाहीन प्रतीत होते हैं। सुयोग्य नेतृत्व के द्वारा ही उनकी समस्याओं को ठीक ढंग से समझकर उनको सही मार्ग पर लाया और राष्ट्र-निर्माण में उनका सहयोग प्राप्त किया जा सकता है।

आज भारतीय युवक को अनुशासनहीन माना जाता है। कहा जाता है कि वह तोड़-फोड़ मे विश्वास करता है, अशान्ति फैलाता है, जनजीवन के मार्ग मे बाधा उपस्थित करता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि युवकों में व्याकुलता पायी जाती है, वे आज असन्तुष्ट हैं। स्वतन्त्र

ा के पश्चात् छात्र-आन्दोलन की घटनाएं व्यापक रूप ग्रहण करती रही है। समय-समय विश्वविद्यालयों तथा कालेजों में हड़ताल, पथराव, प्राध्यापकों का अनादर, फर्नीचर की ़-फोड़, सार्वजनिक सम्पत्ति की हानि, परीक्षाओ का बहिष्कार, जलूस, प्रदर्शन, घेराव ा मारपीट, आदि की घटनाएं समाचार-पत्रो मे छपती रही है। आखिर प्रश्न यह उठता है छात्रों में असन्तोष क्यों पाया जाता है ? इस असन्तोष के लिए कौन उत्तरदायी है ? क्षा के सन्दर्भ में व्याप्त असन्तोष के सम्बन्ध मे भूतपूर्व केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री डॉ. राव का ़ना है, "विद्यार्थी अनुशासनहीनता न तो युवा विक्षोभ का प्रदर्शन मात्र ही है और न ाकी व्याख्या निहित स्वार्थ वाले बाहरी तत्वों (जो विद्यार्थी अशान्ति से लाभ उठाने के लिए ़त्नशील है, चाहे वे राजनीतिक हों अथवा गैर-राजनीतिक) के कार्यो द्वारा की जा सकती । विद्यार्थी अनुशासनहीनता एक सांस्कृतिक, आर्थिक, समाजशास्त्रीय एवं शैक्षणिक समस्या । यदि हम इनके उपचार के उचित उपाय प्राप्त करना चाहते है तो इनका वस्तुनिष्ठ एवं ज्ञानिक रीति से अध्ययन तथा विश्लेषण करना होगा। किसी रोग का निवारण उसके बाहरी क्षणों का उपचार करने या शक्ति द्वारा दमन करने से नही होगा।"[1]

दमन की नीति या बल-प्रयोग के द्वारा किसी असन्तोष को कुछ समय के लिए दबाया ा सकता है परन्तु समस्या को हल नहीं किया जा सकता। आज **युवा तनाव या छात्र असन्तोष** **क सामाजिक समस्या के रूप मे है।** यह असन्तोष सम्पूर्ण समाज एवं राष्ट्र के लिए एक चुनौती । आज युवा वर्ग समस्या से ग्रसित है और कुछ कर-गुजरने को व्याकुल है।

युवा एवं छात्र असन्तोष का अर्थ
(MEANING OF YOUTH AND STUDENT UNREST)

वर्तमान मे संसार के अनेक देशों में युवा तनाव, सक्रियता या छात्र असन्तोष देखने को मिलता है। युवकों ने विश्व के अनेक देशों में महत्वपूर्ण रचनात्मक भूमिका निभायी है। अनेक देशों में युवकों ने समय-समय पर सरकार की नीतियों का विरोध किया है और राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण योग दिया है। वर्तमान में भारत में युवा सक्रियता अनेक प्रकार की निराशाओं, असन्तोष और दिशाहीनता से ग्रसित है। यहां समय-समय पर होने वाले प्रदर्शन, आन्दोलन, तोड़-फोड़, घेराव आदि युवा सक्रियता या छात्र असन्तोष की ही अभिव्यक्ति है। इन्हें भ्रान्त तर्कों के नाम पर उचित सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है। **छात्र असन्तोष के लिए अनेक शब्दों जैसे—युवा तनाव, युवा असन्तोष या विद्यार्थी असन्तोष** जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है। यहां छात्र असन्तोष के नाम पर अनुशासनहीनता, नियमहीनता, तोड़-फोड़, आगजनी और पथराव तक को उचित माना जाता है। इस रूप में छात्र असन्तोष एक सामुदायिक समस्या है।

युवकों में आज असन्तोष, निराशा एवं तनाव पाया जाता है। इन सब के परिणामस्वरूप युवक किसी भी छोटी-मोटी घटना को लेकर आन्दोलन करने को तैयार हो जाते हैं। आखिर ऐसा क्यों है? भारतीय सन्दर्भ में छात्र असन्तोष पर विचार करने पर हम पाते हैं कि यहां स्वतन्त्रता-प्राप्ति के 50 वर्षों के बाद भी युवक अपने आपको असुरक्षित महसूस करता है, शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् भी वह आसानी से नौकरी प्राप्त नही कर सकता। वह अपने को असहाय, असमर्थ और दीन-हीन महसूस करता है। यह अपनी आवश्यकताओं और

[1] डॉ. वी. के. आर. वी. राव, "तरुणाई का उफान और आत्म चिन्तन", छात्र विक्षोभ, पृ. 3 ।

अपेक्षाओ को पूर्ण होते हुए नही देखता है। परिणामस्वरूप उसमें असन्तोष, निराशा तनाव पाया जाता है। वह विद्रोहात्मक रुख अपना लेता है, प्रदर्शन, तोड़-फोड़ और के लिए तैयार हो जाता है। परिस्थितियां उसे विवेकहीन तक बना देती हैं और उचित-अनुचित की चिन्ता किए बिना समाज विरोधी या हिंसात्मक कार्यों मे अपने को देता है।

युवा वर्ग अपनी निराशा और असन्तोष को हिंसात्मक या अहिंसात्मक प्रदर्शनों द्वारा व्यक्त करता है। **इस छात्र वर्ग के द्वारा सार्वजनिक रूप से व्यक्त किए जाने वाले असन्तोष को ही छात्र असन्तोष के नाम से जाना जाता है।** युवा वर्ग अपने आप में शक्ति और महसूस करता है, इसलिए वह अपने असन्तोष और आक्रोश को प्रदर्शनों, हड़तालों, तथा आन्दोलनों के रूप में व्यक्त करता है। ये सभी छात्र असन्तोष की अभिव्यक्ति भारत में छात्र असन्तोष मे दिशाहीनता और आन्दोलनकारी प्रवृत्ति अधिक है। होता यह कि जहां विद्यार्थी को अपनी शक्ति के प्रदर्शन का कोई निर्माणात्मक या सृजनात्मक नही मिलता, वहां वह अपने को असामाजिक कार्यों में लगा देता है। शक्ति प्रदर्शन के माध्यम का अभाव तथा देश की सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों में व्याप्त असुरक्षा असन्तोष के लिए प्रमुखतः उत्तरदायी हैं। **छात्र असन्तोष को युवकों में व्याप्त उस असन्तोष के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसकी अभिव्यक्ति हिंसात्मक या अहिंसात्मक आन्दोलनों के रूप में होती है।** युवक अपने चारों ओर की परिस्थितियों और समस्याओ से परम्परागत आदर्श-नियमों एवं स्थापित व्यवस्थाओं के विरुद्ध आन्दोलनकारी प्रवृति को लेते हैं और तोड़-फोड़, घेराव, प्रदर्शन, आगजनी, लूट-पाट और हिंसात्मक गतिविधियों संलग्न हो जाते है। भारत के छात्रों मे व्याप्त असन्तोष निराशा और तनाव का परिणाम है।

असन्तोष का तात्पर्य है—मौजूदा व्यवस्था से असन्तुष्ट होना। विद्यार्थी प्रमुखतः शिक्षण संस्थाओं मे पायी जाने वाली कमियो से खीझ उठता है। प्रारम्भ से ही उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उसके पिता अथवा संरक्षक को उसे शिक्षण संस्था मे प्रवेश दिलाने के लिए सिफारिश तक पहुंचानी पड़ती है, समय-समय पर उसकी फीस, पुस्तकें वस्त्र तथा अन्य आवश्यक खर्च उठाने के लिए आर्थिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है। कई बार शिक्षण संस्था में विद्यार्थी को सही मार्गदर्शन नहीं मिल पाता। शिक्षक स्वयं समस्या में उलझा रहता है, सुविधाओं का अभाव पाया जाता है, चरित्र-निर्माण की ओर ध्यान नहीं दिया जाता, छात्र एवं अध्यापक के सम्बन्धों में औपचारिकता और दूरी पाई जाती है। ये सारी परिस्थितियां बालक के व्यक्तित्व के स्वस्थ विकास में बाधा उपस्थित करती हैं। कभी-कभी राजनीतिज्ञ विद्यार्थी-शक्ति का अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए भी प्रयोग करता है। विद्यार्थी पर सम्पूर्ण समाज की परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। उसके चारों ओर का वातावरण कई वार उसे व्यवस्था के प्रति विद्रोहात्मक रुख अपनाने के लिए बाध्य कर देता है। आज उसका आदर्श अध्यापक नहीं रह गया है। उसकी प्रेरणा का स्रोत या तो ऐसा राजनेता है जो भ्रष्ट तरीके अपनाकर आगे बढ़ता है, विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करता है, या जिसके कहने और करने में रात-दिन का अन्तर पाया जाता है। इन परिस्थितियों में विद्यार्थी का समाजीकरण होता है, वह एक के बाद दूसरी परीक्षा पास करता जाता है, जीवन के दस या पन्द्रह वर्ष इसी प्रकार बिता देता है, स्नातक या स्नातकोत्तर परीक्षा पास करने या कोई व्यावसायिक परीक्षण प्राप्त करने के पश्चात् विद्यार्थी को नौकरी

की तलाश में इधर-उधर भटकना पड़ता है। बेकारी की अवस्था में उसे मानसिक कष्ट सहन करना पड़ता है। वह अपने माता-पिता की अपेक्षाओं को पूर्ण नहीं कर पाता और उसकी स्वयं की आकांक्षाएं अधूरी रह जाती हैं। यह सारी परिस्थिति छात्र असन्तोष के लिए उत्तरदायी है।

यह वह मनःस्थिति है जब छात्र अपने में व्याकुलता, अशान्ति और विद्रोह का अनुभव करता है। ऐसी मानसिक दशा में वह विश्वविद्यालय या कॉलेज के नियमों का उल्लंघन करता है, शोर-गुल मचाता है, छोटी-छोटी बातों को लेकर झगड़ा करता है। अपनी शिकायतों को दूर कराने अथवा किसी सार्वजनिक समस्या की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करने की दृष्टि से वह प्रदर्शन करता है, हड़ताल का सहारा लेता है। यदाकदा विश्वविद्यालयों तथा कॉलेजों में हिंसा भी भड़क उठती है, आगजनी और सार्वजनिक सम्पत्ति को नष्ट करने की घटनाएं भी घटित हो जाती हैं। कभी किसी बस को नुकसान पहुंचाया जाता है तो कभी किसी इमारत को। ये सब छात्र असन्तोष को व्यक्त करते हैं। ऐसी स्थिति में युवकों एवं विद्यार्थियों को अनुशासनहीन एवं झगड़ालू मान लिया जाता है।

स्पष्ट है कि विद्यार्थियों में पाया जाने वाला असन्तोष अनुशासनहीनता के रूप में व्यक्त होता है। डॉ. फिलिप एलबेच ने बतलाया कि सन् 1966 में भारत में कुल 2,206 छात्र प्रदर्शन हुए जिनमें 480 हिंसात्मक थे।[1] इसी प्रकार के प्रदर्शन और छात्र आन्दोलन विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं कालेजों में चलते ही रहते हैं। विद्यार्थियों में व्यवस्था के प्रति पाए जाने वाले असन्तोष के फलस्वरूप ही अनुशासनहीनता पनपती है। विद्यार्थियों से प्रमुखतः दो आशाएं की जाती हैं—प्रथम, विद्या प्राप्त करने एवं ज्ञान का अर्जन करने की तथा द्वितीय, उत्तरदायी एवं उपयोगी नागरिक बनने की। इन अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए ही विद्यार्थियों को समाज द्वारा मान्यता प्राप्त साधनों का सहारा लेना पड़ता है। ऐसे साधन हैं—परीक्षा पास करना, विभिन्न शैक्षणिक एवं पाठ्येतर (co-curricular) गतिविधियों में भाग लेना, छात्र संघ तथा अन्य समितियों में सम्मिलित होकर प्रबन्ध सम्बन्धी योग्यता प्राप्त करना और अनुशासित जीवन व्यतीत करना। जब विद्यार्थी उपर्युक्त अपेक्षाओं के विपरीत कार्य करते हैं, उद्देश्यों एवं मान्यता प्राप्त साधनों की अवहेलना करते हैं, तो वे अनुशासनहीनता का परिचय देते हैं। विश्वविद्यालय द्वारा विद्यार्थी असन्तोष की समस्या का अध्ययन करने हेतु सन् 1960 में बनायी गयी कमेटी ने विद्यार्थी अनुशासनहीनता को परिभाषित करते हुए बतलाया है, "जनसमूह का नैतिक पतन एवं सत्ता का सामूहिक उल्लंघन तथा वास्तविक या काल्पनिक शिकायतों को दूर कराने के लिए ऐसे तरीकों का उपयोग जो विद्यार्थियों के लिए उचित नहीं है।"[2]

अस्थाना एवं सुमा चिटनिस[3] ने युवा सक्रियता अर्थात् विद्यार्थी अनुशासनहीनता को भिन्न प्रकार से समझाने का प्रयत्न किया है। आपके अनुसार, किसी संगठन में अनुशासन निहित है। इनके उल्लंघन को ही अनुशासनहीनता कहा जाता है। सदस्य संगठन की अपेक्षाओं के अनुरूप आचरण इसलिए करते हैं कि वे उसके लक्ष्यों को स्वीकार करते हैं और यह मानते

1 Albach Philip, *'Student and Politics'* in Student Politics, (ed) Lipset; Seymor Martin, pp. 74-92
2 Report of University Grants Commission, *Committee on the Problem of Student Indiscipline in India*, 1960.
3 H S. Asthana and Chitnis Suma, *The Disturbed Campus*, in 'Sociology of Education in India' edited by M S. Gore, pp 313-314

है कि व्यवहार के निर्धारित मानदण्ड इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए ही हैं। कोई भी संगठन अपने सदस्यों से नियमों के पूर्णतः पालन की आशा नहीं करता। लेकिन संगठन सकारात्मक एवं नकारात्मक नियमों एवं निर्देशों के माध्यम से लक्ष्यों के अनुसार व्यवहार को निर्देशित करने और अनुशासनहीनता को इतना सीमित रखने मे अवश्य समर्थ है कि संगठनों के सामान्य कार्यों के संचालन में कोई बाधा नही आए। अनुशासनहीनता की गम्भीर समस्या केवल उस समय उत्पन्न होती है जब नियमों का उल्लंघन इस सीमा तक पहुंच जाता है कि उपलब्ध नियम एवं निर्देश परिस्थिति को नियन्त्रित करने मे असमर्थ हो। अस्थाना और सूसा विटनिस के अनुसार निम्नलिखित में से किसी एक अथवा अधिक दशाओं के पाए जाने पर ऐसा होता है :[1]

(1) सदस्यों की संगठन के लक्ष्यो में रुचि समाप्त हो सकती है। ऐसी स्थिति में वे संगठन की अनेक प्रक्रियाओं से अपने को पृथक् कर लेते हैं, और उसके नियमों का कठोरतापूर्वक पालन नहीं करते।

(2) इस स्थिति में सदस्यो का लक्ष्यों में विश्वास तो बना रहता है लेकिन वे इनकी प्राप्ति मे संगठन की क्षमता के सम्बन्ध मे सन्देह रखते हैं। ऐसी परिस्थिति मे संगठन में पायी जाने वाली कमियों या अपर्याप्तताओं को दूर करने का प्रयत्न तार्किक हल मालूम पड़ता है। लेकिन विरोध अथवा समस्या का सही ढंग से विश्लेषण नहीं कर पा सकने के कारण पूर्व-स्थापित नियमो में परिवर्तन लाना या सुधारात्मक कदम उठाना सदैव सम्भव नही होता। ऐसी स्थिति में लोगों का संगठन में विश्वास और उसके प्रति आदर समाप्त हो जाता है। परिणाम यह होता है कि संगठन के आदर्श नियमों की अवहेलना होती है और अनुशासनहीनता पनपती है।

(3) संगठन में पायी जाने वाली अन्य दशाओं या सामान्य सामाजिक परिस्थिति के बदल जाने से किसी संगठन के नियमों के अनुपयुक्त होने पर वे अप्रभावशाली हो जाते हैं। ऐसी स्थिति मे अनुशासनहीनता उत्पन्न होती है। संगठन के नियम उस अवस्था मे भी अनुपयुक्त प्रमाणित होते है जब उन मूल्यों एवं प्रवृत्तियों का सदस्यों में आन्तरिकीकरण नहीं हुआ है जो इन नियमों के प्रभाव को बनाए रखने में योग देते है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जब कोई संगठन या समाज परिस्थितियो के बदल जाने से अपने सदस्यों की आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ रहता है तो उनमें असन्तोष और निराशा पनपती है। इस स्थिति में वे समाज के आदर्श नियमो की परवाह नही करते हुए आन्दोलनात्मक प्रवृत्ति अपना लेते हैं और वह सब कुछ करने लगते हैं जिनकी उनसे अपेक्षा नही की जाती। शिक्षा के सन्दर्भ में इसे ही छात्र अनुशासनहीनता या छात्र असन्तोष के नाम से जाना जाता है।

यहां एक और बात ध्यान में रखनी है कि युवा छात्रों ने इस देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन में महत्वपूर्ण रचनात्मक भूमिका निभायी है। उन्होंने सामाजिक और राजनीतिक जागरूकता को बढाने में योग दिया है। कई देशों में तो छात्र सक्रियता के कारण सांस्कृतिक क्रान्ति तक हुई है। लेकिन आज भारत में छात्र सक्रियता के पीछे कोई सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक लक्ष्य नहीं हैं। यह दिशाहीनता या लक्ष्यहीनता से ग्रसित है। यह आज ऐसे मोड़ पर पहुंच चुकी है कि यदि समय रहते इसे उचित दिशा नहीं दी जाती तो राष्ट्र के अहित होने एवं समाज में अव्यवस्था फैलने की अधिक सम्भावना है।

1 *Ibid.*, p. 314

युवकों की समस्याएं : छात्र असन्तोष
(PROBLEMS OF YOUTH : STUDENT UNREST)

आज का युवक अपने चारो ओर की परिस्थितियो और अपने अधिकारो के प्रति सजग वह आज अपनी आकांक्षाओं को पूर्ण होते हुए नहीं देखता है। शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् भी वह कोई नौकरी प्राप्त नहीं कर पाता है, उसे अभावमय स्थिति में अपना जीवन बिताना पड़ता है। वह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों मे व्याप्त भ्रष्टाचार को देखता है, भाई-भतीजावाद और जातिवाद को देखता है। वह आर्थिक दृष्टि से अपने को असुरक्षित महसूस करता है, अपने भविष्य को अन्धकारमय पाता है। साथ ही आज का युवक वर्ग दिशाहीन है, यद्यपि इसके लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियां विशेषतः उत्तरदायी हैं। योग्य नेतृत्व का अभाव भी छात्र असन्तोष की दिशाहीनता के लिए काफी हद तक जिम्मेदार है।

भारत में छात्र असन्तोष युवकों में व्याप्त असन्तोष, निराशा, तनाव, शिक्षण संस्थाओं में पायी जाने वाली कमियों, सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार एवं राजनीतिक दलो एवं नेताओं की स्वार्थपरता का परिणाम है। आज का युवक समाज के आदर्श-नियमों (Norms) को अपने में आत्मसात् नहीं कर सका है। वह सामाजिक मूल्यों को भी अपने व्यक्तित्व का अंग नहीं बना सका है। ऐसी स्थिति में वह समाज की मान्य परम्पराओं की चिन्ता नहीं करते हुए अपने स्वयं के स्वार्थो की पूर्ति पर अधिक ध्यान देने लगता है। वह अपने उद्देश्यो की पूर्ति को महत्व देता है, चाहे उसे व्यवहार के अमान्य तरीके ही क्यो न अपनाने पड़े।

छात्र असन्तोष एक ऐसी स्थिति को व्यक्त करता है जिसमें परिवार, पड़ोस और शिक्षण संस्था का नियन्त्रणकारी प्रभाव समाप्त होता हुआ दिखायी पडता है। युवा-वर्ग प्रमुखतः अपने परिवार, मित्र-समूह और शिक्षण संस्थाओं से सम्बन्धित होता है। ये सभी आज युवकों के व्यवहारों को नियन्त्रित करने में असमर्थ रहे हैं। छात्र असन्तोष में एक बात स्पष्ट दिखायी पडती है। आज का युवा वर्ग अपने प्रत्येक प्रकार के व्यवहार को भ्रान्त तर्को के आधार पर उचित बताता है। वह प्रत्येक वस्तु और व्यवहार को अपने ही दृष्टिकोण से देखना और समझना चाहता है, न कि उसके वास्तविक रूप में।

छात्र असन्तोष की अभिव्यक्ति हिंसात्मक अधिक और अहिंसात्मक कम होती है। आए दिन तोड़-फोड़, लूटपाट, आगजनी और हत्याओ की घटनाएं समाचार-पत्रों में पढ़ने एवं देखने-सुनने को मिलती हैं। इनके पीछे साधारणतः युवा शक्ति ही होती है। युवकों में शारीरिक शक्ति और जोश अधिक परन्तु अनुभव की कमी होती है। आज का युवा वर्ग अपनी संख्या की शक्ति से परिचित है और फिर आवश्यकता पड़ने पर उन्हें रानजीतिक दलों एवं नेताओं का समर्थन आसानी से प्राप्त हो जाता है। परिस्थितियों से निपटने और कानून को तोड़ने वाले युवको के खिलाफ आवश्यक कार्यवाही करने की प्रशासन की असमर्थता विद्यार्थी सक्रियता को बढ़ानें मे विशेषतः योग देती है।

छात्र असन्तोष का क्षेत्र काफी व्यापक है। यह अनेक रूपों में अभिव्यक्त होता है। इसके प्रमुख क्षेत्र चार हैं : (i) शिक्षा के क्षेत्र में, (ii) आर्थिक क्षेत्र में, (iii) राजनीतिक क्षेत्र में, और (iv) सार्वजनिक क्षेत्र मे।

(1) शिक्षा के क्षेत्र में (In the Field of Education)—आज शायद ही कोई विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय बचा हो जहां किसी शैक्षणिक सत्र में

हड़ताल, तोड़-फोड़, घेराव, मारपीट या आगजनी नहीं होती हो। छोटी-छोटी बातों पर विद्यार्थी आए दिन हड़ताल करता है, अध्यापकों, प्राचार्यों, कुलपतियों एवं प्रशासकों के विरुद्ध नारे लगाता है और यदाकदा घेराव और मारपीट तक का भी सहारा लेता है। दाखिलों को लेकर तो कभी छात्र-संघ के चुनावों को लेकर और कभी परीक्षा में नक़ल के प्रश्न को लेकर प्रदर्शन किए जाते हैं, धमकी दी जाती है और सम्पति को नुकसान पहुंचाया जाता है। ये सब युवा असन्तोष की ही अभिव्यक्तियां हैं।

(2) **आर्थिक क्षेत्र में (In the Economic Field)**—आज युवकों में निराशा, असन्तोष एव तनाव का मुख्य कारण उनके जीवन मे व्याप्त आर्थिक असुरक्षा है। युवक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् कोई नौकरी करना चाहते हैं, अपने को किसी व्यवसाय मे लगाना चाहते हैं, रोटी-रोजी कमाना चाहते हैं परन्तु उन्हे ऐसी कोई सुविधा साधारणतः नहीं मिल पाती। वे नौकरी के लिए हर बार आवेदन पत्र भरते हैं, साक्षात्कार देते रहते हैं और असफल रहते हैं। परिणामस्वरूप उनमें घोर निराशा दिखायी पड़ती है। समय-समय पर अनेक विश्वविद्यालयो के दीक्षान्त समारोहों पर छात्र नारे लगाते रहे हैं, "हमें डिग्री नहीं चाहिए" "हमें डिग्री नहीं नौकरी चाहिए।" आज महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में छात्र अनुशासनहीन है, उनमें असन्तोष व्याप्त है। आखिर क्यों? इसका मुख्य कारण शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् भी रोटी-रोजी कमाने की सुविधाओं का अभाव है। आर्थिक क्षेत्र में छात्र सक्रियता नौकरी मे भर्ती के सम्बन्ध में अनियमितताओं को लेकर अधिकारियों एवं उद्योगपतियों के घेराव, प्रदर्शन और नारेबाजी के रूप में व्यक्त होती है। अनेक राज्यों, विशेषतः पश्चिम बंगाल में आर्थिक क्षेत्र में छात्र सक्रियता का उग्र रूप देखने को मिलता है। वहां युवा वर्ग उद्योगपतियो के खिलाफ आन्दोलन चलाते हैं, लूटपाट, मारपीट और हत्याएं तक करते। वहां वे हिंसात्मक तरीके तक अपनाकर अपने आर्थिक हितों की पूर्ति का प्रयत्न करते हैं। विभिन्न राज्यों में आरक्षण के विरोध में स्कूलों, कालेजों एवं विश्वविद्यालयों में हड़तालें होती ही रहती है। इसका कारण यह है कि वर्तमान में 50 प्रतिशत स्थान नौकरियों में अनुसूचित जातियों, जनजातियों, पिछड़े वर्गों एवं आर्थिक दृष्टि से अन्य पिछड़े लोगो के लिए आरक्षित कर दिए गए है। इससे अन्य जातियों के योग्य छात्रों के नौकरियों के अवसर बहुत कम हो गए हैं। वोटों की राजनीति ने योग्य छात्रो के हितों की अनदेखी की है।

(3) **राजनीतिक क्षेत्र में (In Political Field)**—सभी राजनीतिक दल अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु युवा-वर्ग की शक्ति को काम में लेना चाहते हैं। वे कई बार युवकों व विद्यार्थियों को गुमराह करके उन्हें अव्यवस्था फैलाने, उपद्रव कराने, बाजार बन्द कराने, और तोड़-फोड़ आदि कराने में प्रयुक्त करते हैं। युवक भी मंजे हुए राजनेताओं के चक्कर में पड़कर व्यवस्था की मान्य परम्पराओं की चिन्ता नहीं करते हुए समाज-विरोधी व्यवहार करते हैं। आज युवकों और विशेषकर छात्रों में राजनीति में भाग लेने और चुनाव लड़ने की प्रवृति दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। राजनीतिक दल भी अपने चुनाव प्रचार में छात्रों का खुलकर प्रयोग करना चाहते हैं। आज अनेक राजनीतिक दलों के अपने-अपने 'युवा संगठन' पाए जाते हैं। वे युवकों की शक्ति का दलीय स्वार्थों की पूर्ति के लिए प्रयोग करते हैं, न कि राष्ट्र हित के लिए। छात्र सक्रियता या राजनीतिक क्षेत्र में उग्र रूप पश्चिमी बंगाल में नक्सलवादी आन्दोलन के रूप मे प्रकट हुआ जहां युवक संगठित रूप में तोड़-फोड़, लूटपाट, आगजनी और हत्याओं के माध्यम से राजनीतिक परिवर्तन लाना चाहते थे।

(4) **सार्वजनिक क्षेत्र में (In Public Life)**—आज सभाओं, सम्मेलनों, सिनेमाघरों, बाजारों और खेल के मैदानों में छात्र सक्रियता स्पष्टतः देखने को मिलती है। सभा-सम्मेलनो और सांस्कृतिक समारोहों में प्रवेश को लेकर, सिनेमाघरों व खेल के मैदानों में टिकटों को लेकर और अन्यत्र अन्य किसी कारण को लेकर आए-दिन मारपीट और उपद्रव होते रहते हैं। कभी फर्नीचर तोड़ दिया जाता है, कभी आग लगा दी जाती है और कभी किसी मालिक, योजक और मैनेजर को पीट दिया जाता है। युवा वर्ग भी सार्वजनिक क्षेत्र में खुलकर यह ... कि सामूहिक अपराध मे किसी को भी अपराध के लिए उत्तरदायी ..., कोई भी व्यक्ति अपराधी सिद्ध नही किया जा सकता है। यही कारण है कि युवा-वर्ग शक्ति के जोश मे मनमाने तरीके से व्यवहार करता है, अनुशासनहीन कार्यवाही और हिंसात्मक गतिविधियां को भड़काता है।

भारत में आज छात्र असन्तोष की अभिव्यक्ति नैतिक मूल्यों के उल्लंघन के रूप में भी हो रही है। आज अनेक छात्र नैतिकता के सभी मानदण्डों को तोडकर अनैतिक कार्यो में संलग्न हैं, अशोभनीय कार्यों में लिप्त हैं। कई प्रकार की चिन्ताओ एवं निराशाओं से मुक्ति पाने के लिए युवकों में मद्यपान व मादक द्रव्य-व्यसन की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। कई स्थानों पर तो युवा/छात्र-सक्रियता लड़कियों एवं महिलाओं को छेड़ने के रूप में व्यक्त हो रही है। आज जीवन मे यौनिक पवित्रता का कई युवको के लिए वह महत्व नहीं रहा है जो कुछ समय पूर्व तक था। यह सब कुछ नैतिक मूल्यों में गिरावट का परिणाम है। आज पारिवारिक क्षेत्र में युवा सक्रियता माता-पिता और अन्य वृद्धजनो के प्रति अश्रद्धा, उनके साथ मन-मुटाव और लड़ाई-झगड़े के रूप में प्रकट होती है।

उपर्युक्त विवेचन से युवकों की समस्याओं एवं छात्र असन्तोष की प्रकृति स्पष्ट है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि भारत में युवा सक्रियता या युवकों की समस्याएं अनेक परिस्थितियों का परिणाम है। आज युवा-वर्ग को विभिन्न क्षेत्रों मे असुरक्षाओं का सामना करना पड़ता है, वे आज मूल्यों के संघर्ष के कारण संवेगात्मक अस्थिरता (Emotional Instability) की स्थिति में हैं। आज आचरण के मान्य प्रतिमान टूटते से नजर आ रहे हैं। इसके अलावा अपने चारों ओर के दूषित पर्यावरण से युवा-वर्ग काफी प्रभावित है। वह वर्तमान में दिशाहीन है, जो चाहे उसे उधर मोड़ देता है। आज के अधिकांश युवकों में उचित संस्कारों के अभाव में वह आन्दोलनात्मक प्रवृत्ति पायी जाती है जिसके पीछे कोई ठोस राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आधार नहीं है।

युवाओं की प्रमुख समस्याएं निम्नलिखित हैं :

आर्थिक समस्या (Economic Problem)—वर्तमान मे युवको की एक प्रमुख समस्या, आर्थिक समस्या है। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् युवक आर्थिक असुरक्षा महसूस करते हैं। अधिकांश युवकों को उनकी योग्यता के अनुरूप नौकरियां नहीं मिल पातीं। शिक्षित युवकों में **बेकारी की समस्या (Problem of Unemployment)** काफी गम्भीर है। पढ़ लिखकर भी अपने माता-पिता और स्वयं की आकांक्षाओं को पूर्ण नहीं कर पाने के कारण युवकों में तनाव व असन्तोष है जिसकी अभिव्यक्ति तोड़-फोड़, आगजनी, लूट-पाट, आतंकवाद, आदि के रूप में होती है। भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद एवं आरक्षण ने इस समस्या को और भी भयावह बना दिया है। बेकारी के साथ ही जुड़ी हुई एक अन्य समस्या युवकों में व्याप्त निर्धनता (Poverty) है। एक ओर विलासिता है तो दूसरी ओर निर्धनता। आज का युवक

गरीब अमीर के बीच की बढ़ी हुई खाई को देखता है और उसके लिए समाज-व्यवस्था
उत्तरदायी मानता है। इसका परिणाम होता है युवकों में बढ़ता हुआ असन्तोष जो ...
मे प्रकट होता है।

मद्यपान ...

मे मद्यपान

व विश्वविद्या ... आज तक किये गये सर्वेक्षण ... बढ़ता ही जा रही है। ...
है। शराब पीना पिलाना तथा मादक-द्रव्यों को काम में लेना आज फैशन सा बन गया है। ...
प्रकार की निराशाओं एवं कुण्ठाओं से ग्रसित युवक नशीले पदार्थों के सेवन के ...
शिकार हो जाते है। परिणामस्वरूप उनके स्वास्थ्य पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है।

नैतिक मूल्यों का ह्रास (Decline of Moral Values)—आज अधिकतर युवकों में
यह प्रवृत्ति पनपती जा रही है कि 'खाओ, पीओ और मौज करो' (Eat, Drink and be
Merry)। इसी प्रवृत्ति के कारण युवकों मे राष्ट्रीय दृष्टिकोण का अभाव पाया जाता है।
राष्ट्रीय समस्याओ के प्रति अधिकतर युवक उदासीन हैं। आज नैतिक मूल्यों का सर्वत्र ह्रास
हुआ है। टी. वी. पर प्रसारित होने वाले अनेक कार्यक्रमों ने इस प्रक्रिया में योग दिया
है। व्यक्तिवादी एवं भौतिकवादी दृष्टिकोण ने युवकों को दिशा भ्रमित कर दिया है। आज
शिक्षक एव महापुरुष इनके आदर्श नही हैं। इनके आदर्श तो आज नेता व अभिनेता बन
गये हैं, या भ्रष्ट अधिकारी। यही कारण है कि वर्तमान में युवा-शक्ति का प्रयोग सृजनात्मक
कार्यों मे नही हो रहा है। आज देश के सामने सबसे बड़ा संकट राष्ट्रीय चरित्र का है और
व्यक्तित्व-निर्माण का है। अतः नैतिक मूल्यों के ह्रास को रोकना समय की मांग है। इनके
लिए संस्कार देने की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।

आतंकवाद (Terrorism)—ऐतिहासिक दृष्टि से आतंकवाद व्यापक असन्तोष, विद्रोह
भावना तथा अनुशासनहीनता की अभिव्यक्ति है। व्यावहारिक रूप में यह राजनीतिक स्वार्थपरता
की सिद्धि के लिए अमोघ अस्त्र बन गया है। हत्या, अपहरण, बलात्कार, लूट, आगजनी,
रास्ता जाम, आदि उसके विभिन्न रूप है। अपनी बात मनवाने के लिए अथवा मनमानी करने
के लिए आतंकवाद युवकों की जीवन पद्धति का एक महत्वपूर्ण अंग बनता जा रहा है।
उसके मूल में राजनीति प्रेरित धर्मान्धता है। वर्तमान में भारत में आतंकवाद का साया पंजाब
कश्मीर तथा असम तक ही सीमित नही है, वरन यह बिहार, बंगाल एवं आंध्र मे भी पनप
रहा है। समय-समय पर होने वाले साम्प्रदायिक दंगे, आरक्षण विरोधी आन्दोलन, भाषा एवं
प्रान्त को लेकर होने वाले आन्दोलन, नक्सलवाद, असम का बोडो आन्दोलन, आदि किसी
न किसी रूप में आतंक से जुड़े रहे है और ये आन्दोलनकारी हिंसा एवं भय के द्वारा सरकार
पर अपनी मांगें मनवाने के लिए दबाव डालते रहे हैं। वर्तमान मे पंजाब और कश्मीर में
आतंकवाद चरम सीमा पर है जिसने देश की एकता और अखण्डता को चुनौती दे रखी है।
आतंकवाद के विभिन्न कारणों मे से एक प्रमुख कारण युवकों में बढ़ती बेकारी है। अतः
बेकारी को समाप्त करने के लिए कारगर उपाय ढूंढ़े जाने चाहिए।

छात्र असन्तोष (Student Unrest)—आज युवकों मे असन्तोष बढ़ता जा रहा है और
इस बढ़ते असन्तोष का ही परिणाम है कि युवा वर्ग उत्तेजनापूर्ण आन्दोलनों की ओर प्रवृत्त
होता जा रहा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात युवाओं ने, हमारे विश्वविद्यालयों एवं
महाविद्यालयों के छात्रो ने असमानता, शोषण, भ्रष्टाचार, पुलिस नृशंसता, राजनीतिक

सांठ-गांठ, प्रशासनिक निर्दयता, धार्मिक कट्टरवाद, आदि को आज तक सहन किया है, लेकिन सहनशीलता की भी एक सीमा होती है। अब युवाओ का धैर्य टूटता जा रहा है, उनमें असन्तोष उफान का रूप ग्रहण करता जा रहा है। यही बढ़ता असन्तोष उत्तेजनापूर्ण आन्दोलनों के लिए ईधन का काम कर रहा है। आज स्वतन्त्र भारत में युवकों की आकांक्षाएं बहुत बढ चुकी हैं। आज के युवक यह महसूस करते हैं कि वर्तमान में अवसरो का अभाव है, बेकारी है, जाति पर आधारित आरक्षण है, उच्च शिक्षा की सीमाएं, विशेषतः तकनीकी तथा व्यावसायिक शिक्षा से सम्बन्धित अनावश्यक है तथा इन्हे हटाया जा सकता है। आज के युवा अच्छी नौकरी चाहते हैं, आर्थिक सुरक्षा चाहते है, पदोन्नति के अवसर चाहते हैं। वे ऊपर उठना चाहते है, सामाजिक गतिशीलता चाहते हैं, उन सब चीजो को प्राप्त करना और उपभोग करना चाहते हैं जो कई अन्य व्यक्तियों को प्राप्त हैं। वर्तमान में युवको की प्राप्त करने की आकांक्षाओं व प्राप्तियों के बीच की दरार काफी बढ़ गयी है। साथ ही युवक यह भी महसूस करते हैं कि मौजूदा सामाजिक संरचना एवं सत्ता में बैठे अभिजनों से उनकी आकांक्षाओं की पूर्ति की आशा एवं सम्भावना नही है। परिणाम यह होता है कि युवक असन्तुष्ट एवं दुखी हो जाते हैं तथा ऐसी स्थिति में उत्तेजनापूर्ण आन्दोलनों की सम्भावना काफी बढ जाती है। आज भारत में यही स्थिति पायी जाती है, छात्र असन्तोष या अनुशासनहीनता इसी का परिणाम है। युवकों की शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं एवं असन्तोष पर इसी अध्याय में सविस्तार विचार किया गया है।

युवकों की समस्याओं तथा छात्र असन्तोष के कारण
(CAUSES OF PROBLEMS OF YOUTH AND STUDENT UNREST)

भारत में छात्र असन्तोष के कारणों पर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण के सन्दर्भ में विचार किया जाना चाहिए। इस स्थिति के लिए केवल विश्वविद्यालयों या कॉलेज अधिकारियो, अध्यापकों तथा माता-पिता या राजनीतिज्ञो एवं साम्प्रदायिक समूहों की अस्वस्थ गतिविधियों को ही उत्तरदायी नही माना जा सकता। इन तत्वों के अतिरिक्त पुलिस द्वारा विचारपूर्वक बल का प्रयोग या पुलिस जुल्म भी छात्र असन्तोष का एक प्रमुख कारण है।

युवा असन्तोष पर प्रकाशित एक रिपोर्ट में छात्र असन्तोष के प्रमुख चार कारण बताए गए है—(1) उचित शैक्षणिक पर्यावरण का अभाव, (2) सत्ता (माता-पिता, शैक्षणिक एवं सरकारी) के प्रति आदर एवं सम्मान का अभाव, (3) आदर्श विचारधारा से सम्बद्ध नैराश्य, (4) राजनीतिक हस्तक्षेप।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा नियुक्त कमेटी ने छात्र असन्तोष के पांच कारक बताए हैं—(1) आर्थिक कारक, (2) परीक्षा एवं प्रवेश प्रणाली, (3) पढ़ाई सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव, (4) रहने व खाने-पीने की व्यवस्था का अभाव, (5) त्रुटिपूर्ण नेतृत्व।

पत्रिका **'सेमिनार'** में वर्णित विचारों के अनुसार छात्र असन्तोष का कारण वह सामाजिक पर्यावरण है जिसमें वह रहता है। **मेटा स्पेन्सर ने भारतीय विद्यार्थियों की असन्तुष्टि का मूल कारण भविष्य की असुरक्षात्मक भावना को माना है। जे.पी. नायक तथा डॉ. राव** ने बतलाया है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् शिक्षण संस्थाओं में कुछ विद्यार्थी ऐसे परिवारों से आए हैं जिनकी शैक्षणिक परम्पराएं नहीं रही हैं। परिणामस्वरूप ऐसे विद्यार्थी नगरीय पर्यावरण से सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाते। आचार्य नरेन्द्रदेव समिति के अनुसार अभिभावकों की

उदासीनता, राजनीतिक दलों का हस्तक्षेप, अध्यापकों में दलबन्दी एवं अव्यावहारिक शैक्षणि नीतियां आदि छात्र असन्तोष के प्रमुख कारण रहे हैं। मुदालियर आयोग के अनुसार दोष प्रणाली, राजनीतिक आन्दोलन, छात्र संघ, समाज में गिरती हुई नियन्त्रण की स्थिति एव अध्यापकों मे नैतिक प्रभाव की कमी छात्र एवं युवा असन्तोष के लिए उत्तरदायी हैं। छात्र व युवा असन्तोष के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं :

(1) शैक्षणिक कारक (Educational Factors)—छात्र असन्तोष के लिए शि व्यवस्था से सम्बन्धित कई कारक उत्तरदायी हैं, उनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं :

(i) शिक्षण संस्थाओं में पर्याप्त सुविधाओं का अभाव—शिक्षण संस्थाओ में पुस्तकालय एवं प्रयोगशालाओं की अपर्याप्त सुविधा, अध्यापकों का अभाव, वांछित विषयो का न होना, छात्रावास की कमी, वहां खाने-पीने व रहने की व्यवस्था की कमी, खेल-कूद की सुविधाओं का अभाव, केण्टीन की उचित सुविधा का न होना, आदि भी छात्रों में असन्तोष पैदा करते हैं और वे इन सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए आन्दोलन का सहारा लेते हैं।

(ii) परीक्षा एवं प्रवेश प्रणाली—शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश सम्बन्धी नीतियां, कक्षा में पढ़ाने का माध्यम, परीक्षा प्रणाली में होने वाले परिवर्तन तथा पास होने के नियमों में फेर-बदल, आदि भी छात्र असन्तोष के लिए उत्तरदायी है। परीक्षाओं का समय पर न होना या उनकी तिथियां आगे बढ़वाने, अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी माध्यम द्वारा पढाने, पूरक परीक्षा एवं उत्तीर्ण होने के नियमों को उदार बनाने, बिना परीक्षा दिए उत्तीर्ण होने एवं सामूहिक नकल तक के लिए भारतीय विद्यार्थियों ने आन्दोलन किए हैं।

(iii) छात्र एवं अध्यापकों के सम्बन्धों में दूरी—आज छात्र एवं अध्यापकों के बीच सम्बन्ध मधुर नही रहे हैं। छात्रों की संख्या बढ़ जाने के कारण यह सम्भव नहीं है कि अध्यापक प्रत्येक छात्र से आत्मीय एवं घनिष्ठ सम्बन्ध बना सके, उनकी समस्याओं को जानकर उन्हें हल करने के लिए प्रयास कर सके। छात्र-शिक्षक अनुपात बढ़ जाने के कारण अध्यापकों का छात्रों पर नियन्त्रण शिथिल हुआ है और उनमें स्वच्छन्द प्रवृत्ति पनपी है, वे अध्ययन में रुचि न लेकर बाह्य गतिविधियो में संलग्न रहते हैं। कई बार शिक्षक वे व्यक्ति बनते हैं जिन्हें अन्य क्षेत्रों में रोजगार की सुविधा नहीं मिलती। ऐसे व्यक्तियों का सामान्यतः छात्रों एवं संस्था के प्रति कोई लगाव नहीं होता। अदक्ष एवं अनुभवहीन अध्यापक भी सफल नहीं होते। अध्यापक का प्रमुख कार्य छात्रों का सही नेतृत्व, प्रोत्साहन एवं मार्ग-दर्शन है जो योग्य एवं निष्ठावान अध्यापक ही कर सकते हैं। छात्र अध्यापकों के निकट सम्पर्क से कई बाते सीखते है। किन्तु आज की बदली परिस्थितियों में अध्यापक छात्र के आदर्श नहीं रहे हैं। उनमें सामाजिक एवं मानसिक दूरी इतनी बढ़ गयी है कि कई बार छात्रों की उचित मांगों पर त तक ध्यान नहीं दिया जाता जब तक कि वे आन्दोलन पर उतारू नहीं हो जाते। छात्र-अध्यापक दूरी के कारण योग्य एवं गरीब छात्रों को सुविधाएं नही मिल पातीं और उद्दण्ड छात्र दण्ड से बच जाते हैं। ये सभी परिस्थितियां छात्रों में असन्तोष एवं अनुशासनहीनता पैदा करती हैं।

(iv) दोषपूर्ण एवं अनुपयोगी शिक्षा—वर्तमान शिक्षा-प्रणाली आजीविका के लिए तैयार नहीं करती। इस शिक्षा प्रणाली में अनेक दोष हैं। यह हमें बाबू तैयार करने के लिए किया था। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूर्व हमने कल्पना की थी कि हम स्वतन्त्र भारत में शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन करेंगे, आदर्श पाठ्यक्रम बनाएंगे। हमारे शिक्षण संस्थान क्लर्क व बाबू पैदा करने वाली फैक्ट्रियां नहीं वरन् राष्ट्र की भावी आशा व आकांक्षाएं

के वाहक एवं विश्व नागरिक निर्माण करने वाले विद्यापीठ होंगे। परन्तु सदियो की पराधीनता ने हमें इतना प्रमादी वना दिया कि शिक्षा के नए प्रयोगों के इतने संकल्प-विकल्पों के पश्चात् भी हम जहां के तहां खड़े हैं।

शिक्षा के साधारणतः दो उद्देश्य माने गए हैं : प्रथम, समाज की विद्यमान आर्थिक व्यवस्था में आजीविका कमाने हेतु व्यक्तियों को प्रशिक्षण देना। इसका तात्पर्य है व्यक्तियों के व्यावसायिक ज्ञान और निपुणता में वृद्धि करना एवं प्रविधियों को सिखाना। द्वितीय, समाज के युवकों का समाजीकरण करना, उन्हें ऐसा ज्ञान, मूल्य, प्रवृत्तियां तथा व्यवहार के आदर्श मानदण्ड प्रदान करना जो उन्हें वयस्क होने पर विभिन्न सामाजिक सम्बन्धों के बीच अपनी भूमिकाएं निभाने के योग्य वना सकें।

वास्तविकता यह है कि वर्तमान शिक्षा इन दोनों उद्देश्यो की पूर्ति करने में असफल रही है। अंग्रेजी शासनकाल में सभी उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को साधारणतः नौकरियां मिल जाती थीं। शिक्षा कुछ ही लोगों तक सीमित थी और शिक्षित व्यक्तियों को नौकरी या व्यवसाय एवं आय तथा प्रस्थिति सम्बन्धी सुरक्षा प्राप्त थी। आज स्थिति इतनी वदल गयी है कि वी.ए., एम.ए. पास और यहां तक कि वहुत-से व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों तक को क्लर्क की नौकरी भी नहीं मिल पाती है। शिक्षा के लिए वड़ी धनराशि खर्च करने वाले डाक्टर एवं इंजीनियर भी वेकारी का सामना कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में विश्वविद्यालयों की डिग्रियों का महत्व घटा है। विद्यार्थियों में नैराश्य एवं शिक्षण प्रणाली के प्रति असंतोष पैदा हुआ है।

वर्तमान में शिक्षा सृजनात्मक स्वतन्त्र चिन्तन, ज्ञान के प्रति आलोचनात्मक प्रवृत्ति, आविष्कार करने तथा परिवर्तन के साथ सामंजस्य स्थापित करने की योग्यता को विकसित करने में असफल रही है। मौजूदा परीक्षा प्रणाली मौलिकता, चिन्तन व मनन तथा सफलतापूर्वक ज्ञान का जीवन में प्रयोग करने योग्य व्यक्ति को नही वना पायी है। स्पष्ट है कि कॉलेज शिक्षा की विषय-वस्तु और पढाई की प्रणाली व्यवसाय की दृष्टि से अनुपयोगी रही है। लेकिन फिर भी नौकरियों के लिए (विशेषतः सरकारी) चुनाव अव भी विश्वविद्यालयों की डिग्रियों के आधार पर ही होता है। इस सम्बन्ध में अस्थाना तथा सुमा चिटनिस ने वतलाया है कि कॉलेज शिक्षा का महत्व केवल इसलिए है क्योंकि उससे डिग्री प्राप्त होती है, इसके अतिरिक्त भविष्य निर्माण की दृष्टि से इस शिक्षा का विद्यार्थियों के लिए कोई महत्व नहीं है। विद्यार्थी अपने जीवन के निर्माण में शिक्षा के पाठ्यक्रम की अनुपयोगिता महसूस करते हैं और इसी कारण उनमें वर्तमान कालेज शिक्षा के प्रति अनिष्ठा या असन्तोष पाया जाता है। डिग्री तथा कक्षा ही केवल महत्वपूर्ण है। व्यावसायिक लक्ष्य अनिश्चित हैं, भविष्य संयोग की बात है, शिक्षा जीविका के निर्धारण में असमर्थ है।[1] कॉलेज या विश्वविद्यालय मे अध्ययन कर रहे छात्रों की शिक्षण संस्था की विविध गतिविधियों में सहभागिता वहुत कम और परिणामस्वरूप उनमें अनुशासनहीनता की सम्भावना अधिक पायी जाती है।

शैक्षिक प्रणाली से सम्बन्धित युवा सक्रियता व विद्यार्थी असन्तोष का एक अन्य कारण पाठ्यक्रम, पुस्तकों तथा परीक्षा प्रणाली में वारम्वार किए जाने वाले परिवर्तन हैं। कोई भी नवीन योजना काफी सोच-विचार के पश्चात् शिक्षा के मूल उद्देश्यों को ध्यान में रखकर प्रारम्भ की जानी चाहिए। कई वार शिक्षा अधिकारी विद्यार्थियों की अनुचित मांगों को हड़ताल या आन्दोलन के डर से मान लेते हैं। ऐसी स्थिति में विद्यार्थियों में यह भावना वलवती हो

1 H. S. Asthana and Suma Chitnis, *op. cit.*, p. 319.

जाती है कि ये अपनी प्रत्येक मांग को आन्दोलन द्वारा पूरा करवा सकते हैं। परिणाम स्व होता है कि शिक्षण-संस्थाओं में छोटी-छोटी बातों को लेकर हड़तालें एवं उपद्रव होते हैं जो विद्यार्थियो मे अनुशासनहीनता को बढ़ाने में योग देते है।

शिक्षा व्यक्ति का समाजीकरण करने के उद्देश्य में भी असफल रही है। स्वतन्त्र भारत में शैक्षिक प्रणाली का प्रमुख लक्ष्य राष्ट्रीय एकीकरण, समानता, प्रजातन्त्र तथा राष्ट्रीय विका के प्रति आस्था के मूल्यों की स्थापना एवं उनके आन्तरिकीकरण रखा गया लेकिन शैक्षणिक प्रणाली विद्यार्थियो के मन मे इन मूल्यों को नहीं बैठा सकी है। इसके अनेक कारण हैं। भाषा के आधार पर राज्यो के पुनर्गठन ने एकीकरण में बाधा पहुंचायी। राष्ट्रीय भाषा के प्रश्न पर भी लोग अलग-अलग समूहों में बंट गए। समानता की धारणा के सम्बन्ध में भी असफलता रही। राजनीतिक दबावों के कारण समानता के नाम पर शिक्षण संस्थाओं में स्थान और अ सुविधाओ की कमी के बावजूद भी विद्यार्थियों की संख्या तेजी के साथ बढ़ती गयी। इस शैक्षिक स्तरों को गिराने में योग दिया। प्रजातन्त्र का लोगों ने गलत अर्थ लिया और प्रत्येक अपने अधिकारों पर जोर देने लगा। शिक्षण संस्थाओं में ऐसे पर्यावरण का अभाव पाया जाता है जहां विद्यार्थियों में स्वस्थ प्रजातान्त्रिक मूल्यों का विकास हो सके और उनमें समानता, प्रगति में विश्वास तथा कठिन परिश्रम के प्रति निष्ठा उत्पन्न हो सके। यदि यह कहा जाए कि भारतीय शिक्षण-संस्थाओं में आलस्य और नैराश्य का वातावरण पाया जाता है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। ऐसी स्थिति में यह कहा जा सकता है कि लक्ष्य के अनुरूप व्यक्ति का समाजीकरण करने मे शैक्षणिक प्रणाली असफल रही है।

(2) आदर्श-नियमों, निर्देशों, मूल्यों तथा प्रवृत्तियों में परिवर्तन—अनुशासन की दृष्टि से परिणाम (Change in Norms, Sanctions, Values and Attitudes—*Consequences* to Discipline)—पहले उद्दण्ड छात्र को कालेज से निकाल दिया जाता था, शरारती छात्र को डांटा-फटकारा जाता या कक्षा से बाहर कर दिया जाता था। कर्तव्यनिष्ठ छात्र का उसके साथियों एवं अध्यापकों द्वारा आदर किया जाता था। अध्यापकों का अध्ययन प्रेरणादायक होता था और कक्षा में उपस्थित होना छात्र अपने लिए लाभदायक समझते थे। प्राध्यापक पूर्ण कुशल होते थे और उन्हें विद्वत्ता के कारण काफी सम्मान मिलता था। उस समय कोई भी विद्यार्थी अपने शिक्षकों की दृष्टि में नीचे नहीं गिरना चाहता था। शैक्षणिक प्रणाली के ये वे प्रतिमान हैं जो अंग्रेजों के काल में स्थापित हुए। इनका प्रयोग आज भी किया जाता है। परन्तु अब ये प्रभावशाली नहीं रहे हैं।

आज परिस्थितियां बदल गयी हैं। किसी विद्यार्थी को कालेज से निकाल देना आसान नहीं रहा है। किसी भी प्रतिकूल निर्णय से शीघ्र ही हड़ताल हो जाती है। कई शिक्षकों में आवश्यक शैक्षणिक योग्यता तो पायी जाती है परन्तु विद्वत्ता का अभाव होता है। विद्यार्थियों में अपने शिक्षकों के प्रति वह आदर-भाव नहीं पाया जाता जो किसी समय पाया जाता था। लोग समझते हैं कि जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए अच्छे व्यक्तित्व, उच्च लोगों के साथ अच्छे सम्बन्धों या विदेशी डिग्री का विशेष महत्व है न कि अच्छे परिणामों का। स्पष्ट है कि वर्तमान में आचरण के मानदण्ड काफी बदल गए हैं। मूल्यों, प्रवृत्तियों तथा नैतिकता सम्बन्धी धारणा ने पूर्व काल में शिक्षण-संस्थाओं में अनुशासन को बनाए रखने में योग दिया। लोग अपने से बड़ों का आदर करते थे। किन्तु वर्तमान में नैतिक मूल्यो का ह्रास हुआ है, इन मूल्य बदले हैं जिन्होंने असन्तोष को बढ़ावा दिया है।

(3) पारिवारिक कारक (Familial Factors)—छात्र असन्तोष के लिए पारिवारिक पृष्ठभूमि एवं परिस्थितियां भी उत्तरदायी हैं। वर्तमान में भारत में संयुक्त परिवार का विघटन हो रहा है। एकाकी परिवारों की संख्या में वृद्धि हो रही है। व्यक्ति पर परिवार का नियन्त्रण शिथिल होता जा रहा है और बच्चों के समाजीकरण में उसकी अहं भूमिका में कमी आ रही है। फलस्वरूप बच्चों में तनाव, असन्तोष एवं स्वच्छन्दता पनपी है। संयुक्त परिवार की संरचना इस प्रकार की थी कि सदस्य सत्ता के प्रति आदर एव व्यवस्था के प्रति आस्था रखते थे। परिवार का अधिनायकवादी प्रतिमान बाल्यावस्था से ही अनुशासन के प्रति निष्ठा जागृत करता था। उस समय बाल-विवाह के कारण किशोरावस्था एवं स्वतन्त्रता का काल नही था। पिछले 50 वर्षों में स्थिति काफी बदली है। परिवार का अधिनायकवादी रूप बदल गया है। परिवार का बालक पर वह नियन्त्रण नहीं रहा जो पहले था। विवाह की आयु बढ़ गयी है, लड़के-लड़कियों को एक-दूसरे के सम्पर्क में आने का अवसर मिला है। भारतीय युवकों को अपनी किशोरावस्था का वास्तविक ज्ञान अब हुआ है। उनमें नवीन आकांक्षाओं ने जन्म लिया है जो उन्हे कभी-कभी उग्रवादी तक बना देती है।

परिवार में शिक्षा का अभाव, उसकी आर्थिक स्थिति, पिता की बच्चों के प्रति उदासीनता, पारिवारिक नियन्त्रण में शिथिलता, आदि भी छात्र असन्तोष को जन्म देते है। जो छात्र गांवों से नगरों में पढने आते हैं, उन पर भी परिवार का नियन्त्रण शिथिल हो जाता है और वे यदि कुसंगति में पड जाते हैं तो अनुशासनहीन हो जाते हैं।

(4) पर्यावरण सम्बन्धी कारक (*Environmental Factors*)—छात्र असन्तोष कोई आसमान से टपकी हुई वस्तु नहीं है वरन् सामाजिक पर्यावरण के प्रभाव का ही परिणाम है। वर्तमान में भारतीय समाज का आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिवेश बदल रहा है, वह संक्रमण की स्थिति में है। एक तरफ हम प्राचीन भारतीय मूल्यों को त्याग रहे हैं और दूसरी तरफ पश्चिमी एवं आधुनिक मूल्यों को ग्रहण कर रहे हैं। इन मूल्यों एवं संस्कृतियों मे विरोधाभास एवं टकराव पाया जाता है जो युवकों को दोहरे कगार पर ला खडा करते है। वे यह तय नहीं कर पाते कि किसे अपनाएं और किसे छोड़ें। इससे उनमें विक्षोभ पैदा होता है। एक तरफ हम चन्द्रलोक की यात्रा कर रहे है, दूसरी ओर हमारे सामाजिक व शैक्षणिक परिवेश मे समानान्तर परिवर्तन नहीं हो पाए है। एक ओर हम सौरमण्डल के गूढ़तम रहस्यों का उद्घाटन कर रहे हैं और दूसरी ओर बिल्ली के रास्ता काटने पर शुभ-अशुभ का हिसाब लगाते है। यह दोहरापन हम पचा नहीं सके है जिसने युवको में असन्तोष एवं सक्रियता पैदा की है। वैधानिक रूप से चाहे हमने सामाजिक बुराइयों का अन्त कर दिया हो किन्तु अन्धविश्वास, दहेज, बाल-विवाह, जाति-प्रथा, अस्पृश्यता, विधवा पुनर्विवाह का अभाव, मृत्यु भोज, बेमेल विवाह, जैसी कुप्रथाएं अब भी विद्यमान हैं। भारतीय पर्यावरण ने ही नही अपितु दूसरे देशों में होने वाले छात्र आन्दोलन ने भी भारतीय छात्रों के असन्तोष को बढ़ावा दिया है।

(5) आर्थिक कारक (Economic Factors)—भारतीय समाज मे पायी जाने वाली आर्थिक परिस्थितियां भी युवा सक्रियता एवं छात्र असन्तोष के लिए उत्तरदायी हैं। भारत में गरीबी एवं बेकारी का साम्राज्य है। नौकरी चाहने वाले शिक्षित व्यक्तियों और उपलब्ध रोजगार के अवसरों के अनुपात में काफी अन्तर है। परिणामस्वरूप शिक्षितों में बेकारी की गम्भीर समस्या पायी जाती है। जिस देश के अधिकांश लोग निर्धन हों, जहां उच्च शिक्षा प्राप्त करने

पर भी भविष्य के प्रति आर्थिक सुरक्षा न हो, वहां के युवको व छात्रों मे असन्तोष पन जाना स्वाभाविक है। बढ़ती हुई मंहगाई, महंगी शिक्षा, फीस बढ़ाना, छात्रवृत्ति कम है और उसका पक्षपातपूर्ण तरीकों से वितरण आदि छात्र असन्तोष के लिए उत्तरदायी हैं।

(6) **राजनीतिक कारक (Political Factors)**—छात्र असन्तोष के लिए राजनीतिक कारक भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। आज का युवक देश और विदेश में घटित होने वाली घटनाओं से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। छात्र आन्दोलन एक विश्वव्यापी घटना है। विकसित और अविकसित, प्रजातन्त्रात्मक, एकतन्त्रात्मक एवं साम्यवादी सभी देशों में किसी न किसी रूप में छात्र-आन्दोलन पाए जाते हैं। कहीं सत्ता के विरुद्ध और सरकारों को बदलने के लिए आन्दोलन हुए है तो कहीं अधिकारों की मांग को लेकर प्रचण्ड प्रदर्शन। सन् 1947 के पूर्व भारतीय विद्यार्थियों ने स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया। उस समय उनका यह कदम देशभक्तिपूर्ण था, परन्तु ज्योंही स्वतन्त्रता प्राप्त हो गयी, छात्र-आन्दोलन का रूप बदल गया। राजनीतिज्ञों ने इस देश में युवकों और छात्रों की आकांक्षाओं को काफी उभार दिया परन्तु उन्हें पूरा नहीं किया जिससे असन्तोष बढ़ा है।

राजनीति और छात्र असन्तोष के मध्य गहरा सम्बन्ध पाया जाता है। भारतीय विश्वविद्यालय व कॉलेज प्रांगणों में राजनीति के प्रति रुचि बढ़ती जा रही है। फिलिप आलबैच ने बताया है कि न केवल नए राज्यों के नेता ही अधिकतर विश्वविद्यालयों के स्नातकों मे से निकले हैं बल्कि बहुत-से नवीन समाजों के वैचारिक आधार भी छात्र आन्दोलनों से प्रभावित होते है।[1] भारतीय विद्यार्थी देश की प्रमुख समस्याओं के प्रति जागरूक नहीं हैं। उनके आन्दोलन कॉलेज या विश्वविद्यालयो से सम्बन्धित छोटी-छोटी शिकायतों या सुविधाओं को लेकर होते हैं। ये आन्दोलन सम्पूर्ण व्यवस्था को छूने वाले न होकर केवल ऊपरी सतह को छूने वाले तूफान के रूप में होते हैं। दिन-प्रतिदिन के नीरस जीवन तथा ऊब से छुटकारा पाने और कुछ के द्वारा आत्म-प्रदर्शन एवं समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करने की बलवती इच्छा के फलस्वरूप भी विद्यार्थी-आन्दोलन होते हैं। नारेबाजी, शोरगुल, हड़ताल तथा उत्तेजनापूर्ण क्षण कुछ विद्यार्थियों के लिए हंसी-मजाक व आनन्द के विषय बन जाते हैं। किसी भी आन्दोलन या सत्याग्रह के आगे झुकना और अनुचित मांगों तक को स्वीकार कर लेना छात्र-आन्दोलन की शक्ति को बढ़ाने में योग देते हैं। आज का विद्यार्थी छात्र-शक्ति की महत्ता से परिचित हो चुका है।

आज का युवक व विद्यार्थी राजनीतिज्ञों—लोकसभा, विधान सभाओं तथा नगर परिषदों आदि के सदस्यो—के जीवन को देखता है। वह उन लोगों में पाए जाने वाले भ्रष्टाचार, भाई भतीजावाद, कुर्सी से चिपके रहने की भूख और स्वार्थपरता को देखता है। जब राजनीतिज्ञों के जीवन में अनुशासनहीनता पायी जाती है तो विद्यार्थी उससे अछूता कैसे रह सकते हैं? राजनीतिक दलों में पायी जाने वाली गुटबन्दी, एक-दूसरे पर कीचड़ उछालने की प्रवृति और विधान पालिकाओं तक के सदस्यों मे यदा-कदा होने वाली धक्का-मुक्की से विद्यार्थी प्रेरणा प्राप्त करते हैं। वयस्क लोगों के व्यवहार में ऐसी बातें कम पायी जाती हैं जो विद्यार्थियों में व्यवस्था, ईमानदारी, नियमों और कार्य-प्रणालियों के प्रति आदर के भाव जागृत कर सकें।

जहां शिक्षण संस्था में विद्यार्थियों से कठिन परिश्रम कराने पर जितना अधिक जोर दिया जाएगा, वहां विद्यार्थियों के राजनीति में भाग लेने और अनुशासनहीनता की सम्भावना उतनी ही कम रहेगी। जहां शिक्षक योग्य, परिश्रमी, विद्यार्थियों से कठोर कार्य कराने और उनके कल्याण

1. Altbach Philip, *Student & Politics in 'Student Politics'*, ed. by Lipset, *op. cit.*, p. 71.

सक्रिय योग देने वाले होंगे वहां विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता कम पायी जाएगी। साथ ही यह भी पाया गया है कि दक्षिणी भारत में राजनीतिक दलों के द्वारा अपने उद्देश्यो की पूर्ति के लिए विद्यार्थियो का उत्तरी भारत की बजाय अधिक उपयोग किया गया। जहां राजनीतिक दलों द्वारा विद्यार्थियों की गतिविधियों में कम हस्तक्षेप किया जाता है, वहां विद्यार्थियों के आन्दोलन शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं तक ही सीमित रहते हैं। जब विद्यार्थियों को किसी आन्दोलन में राजनीतिक दलों या राजनीतिज्ञों का समर्थन प्राप्त हो जाता है तो अनुशासनहीनता एवं उपद्रव और भी गम्भीर रूप धारण कर लेते हैं। कुछ छात्र अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए राजनीतिक दलों या नेताओं से प्रेरणा प्राप्त कर विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता फैलाते या उपद्रव भड़काते हैं। ऐसे छात्र समाचार-पत्रों में अपने नाम छपवाने के इच्छुक रहते हैं।

स्पष्ट है कि कुछ विद्यार्थियों की राजनीतिक महत्वाकांक्षाएं, राजनीतिक दलों का विद्यार्थी संगठनों को समर्थन, राजनीतिज्ञों का भ्रष्ट आचरण, शिक्षक-राजनीतिज्ञ द्वारा अपने तुच्छ स्वार्थों के लिए विद्यार्थियों को भड़काने का कार्य, राजनीतिक दलों में पायी जाने वाली गुटबन्दी, आदि कुछ ऐसे कारण हैं जो छात्रों में अनुशासनहीनता एवं असन्तोष पैदा करने के लिए उत्तरदायी हैं।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् सत्ता-प्राप्त अधिकांश राजनेताओं ने अपनी शक्ति का राष्ट्र हित मे सदुपयोग न करके व्यक्तिगत स्वार्थो की पूर्ति में दुरुपयोग किया है। उन्होंने भाई-भतीजावाद को पनपाया है, स्वार्थपरता और लालच को बढ़ावा दिया है, भौतिकता की चकाचौंध में वे कर्तव्य-पथ से विमुख रहे हैं। राजनेताओं के इन तौर-तरीकों का नौकरशाही अर्थात् अधिकारी वर्ग ने खूब लाभ उठाया है। सत्ता के नशे में वे इतने चूर रहे हैं कि जनसेवा के प्रमुख दायित्व को ही भूल चुके हैं। सर्वत्र पक्षपात का बोलबाला है, बिना रिश्वत और सिफारिश के कोई काम होना सम्भव नहीं है। राजनेताओं ने समाजवाद का नारा दिया, परन्तु पिछले करीब 50 वर्षों में गरीब-अमीर का भेद बढ़ा है। इस सारे विपाक्त वातावरण ने युवा सक्रियता या असन्तोष को भड़काने में योग दिया है।

डॉ. योगेश अटल ने बताया है कि आज विद्यार्थी-वर्ग का सन्दर्भ समूह शिक्षक न होकर राजनीतिज्ञ, प्रशासक एवं फिल्मी स्टार होते हैं। आज का विद्यार्थी महापुरुषों, शिक्षकों एवं माता-पिताओं से प्रेरणा प्राप्त नहीं करके इन उपर्युक्त व्यक्तियों से प्रेरणा प्राप्त करता है। चित्त रंजन (Chitta Ranjan) ने बताया है कि जब नेतृत्व के बहुत बड़े भाग में चरित्र और समर्पण का अभाव पाया जाता हो, जब जन-सेवा के स्थान पर शक्ति और सम्पत्ति-प्राप्ति का प्रयत्न सर्वोपरि हो, जब लोगों के मस्तिष्क में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि सामाजिक-आर्थिक क्रान्ति का वायदा केवल थोथा नारा है जिसमें किसी प्रकार की कोई सच्चाई नहीं है तो उस पीढ़ी में विश्वास उत्पन्न करने की अपेक्षा करना वास्तव में निरर्थक है जो इस बात के प्रति पूर्णतः जागरूक है कि उसके चारों ओर क्या हो रहा है। एक दृष्टि से युवकों में पाए जाने वाले मौजूदा असन्तोष को एक विद्रोह माना जा सकता है चाहे यह कितना ही जागरूक एवं बिखरा हुआ क्यों न हो।

इसके अतिरिक्त, शिक्षण संस्थाओं में सत्ताधारी दल के स्थानीय और राज्य स्तर के नेताओं का अनुचित हस्तक्षेप भी विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता को बढ़ाने में योग देता है।

(7) **पीढ़ियों का अन्तर (Generation Gap)**—नयी या युवा पीढ़ी और पुरानी वृद्ध पीढ़ी के बीच पाए जाने वाला अन्तर युवा असन्तोष के लिए काफी सीमा तक उत्तरदायी है। पुरानी और नवीन पीढ़ी के मूल्यो, विश्वासों, अभिवृत्तियों और व्यवहार-प्रतिमानों में काफी अन्तर पाया जाता है। इसका मूल कारण दो पीढ़ियों में समय का अन्तर है। पुरानी पीढ़ी के लोगो का समाजीकरण और उनके व्यक्तित्व का विकास स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पू जिस पर्यावरण मे हुआ, आज वह काफी कुछ वदल चुका है। वर्तमान में सामाजिक परिवर्तन की गति काफी तीव्र है। आज सामाजिक संरचना में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई है। अव प्रदत्त के वजाय अर्जित प्रस्थितियों का महत्व वढ़ता जा रहा है। आज का न अपने प्रयत्नों से आगे वढ़ना चाहता है, कुछ स्वतन्त्रता चाहता है, अपने लिए स्वयं निर्णय लेना चाहता है। वह उदार और मानवतावादी दृष्टिकोण से सोचने लगा है। आधु शिक्षा, पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति ने उसके जीवन-मूल्यों को वहुत कुछ प्रभावित कि है। औद्योगीकरण और नगरीकरण की प्रक्रियाओं ने भी व्यक्ति को आर्थिक दृष्टि से स्वत और सामाजिक दृष्टि से उदार वनाया है। सह शिक्षा तथा स्त्री-पुरुषों के विविध क्षेत्रों में साथ-स काम करने से रोमांस पर आधारित प्रेम विवाहों का महत्व वढ़ा है। आज का युवक जाति-पा के वन्धनों की चिन्ता नहीं करते हुए मनचाही लड़की से विवाह करना चाहता है। जहा परिवा जाति और समाज के लोग इसमे वाधक वनते हैं, वहां तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। पुरानी पीढ़ी के लोग अपनी पुरानी मान्यताओं के अनुसार अपनी सन्तानों को व्यवहार कर देखना चाहते हैं, जवकि नवीन पीढ़ी के युवक अपने स्वयं के मूल्यों, अभिवृत्तियो ए विश्वासो के आधार पर कार्य करना चाहते है। यही से युवा असन्तोष प्रारम्भ होता है। अ की वधू पुरानी पीढ़ी की वधू के जैसा घूंघट नहीं निकालना चाहती, पति के साथ इधर-उध सैर-सपाटे पर जाना चाहती है, नौकरी करना चाहती है, वालकों को अपनी इच्छानुसार शि दिलाना चाहती है। सास-ससुर और परिवार के अन्य वृद्ध सदस्यों को यह सव कुछ अच्छा नही लगता। वे इन वातों का विरोध करते हैं, परिणामस्वरूप पुरानी और नवीन पीढ़ी में तनाव की स्थिति उत्पन्न होती है।

यही वात शिक्षा जगत में दिखायी पड़ती है। छात्र नवीन पीढ़ी और शिक्षक वहुत कु मात्रा में पुरानी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है। आज का विद्यार्थी शिक्षक का केवल गुरु होने के नाते आदर करने को तैयार नही है। यदि शिक्षक योग्य है, पूर्ण निष्ठा के साथ अपने दायित्व का वहन करने वाला है, छात्रों के विकास में रुचि लेने वाला है, तो वह विद्यार्थि से अवश्य सम्मान प्राप्त करता है। लेकिन शिक्षा जगत में पुरानी पीढ़ी के शिक्षक भी छात्रों को संस्कारित करने और उनका चरित्र-निर्माण करने में विभिन्न कारणों से असमर्थ रहे हैं। परिणाम यह हुआ है कि नवीन पीढ़ी के आदर्श वहुत कुछ वदल गए है। अव उनके आदर्श शिक्षक नहीं रहकर फिल्म अभिनेता, अभिनेत्रियां और भ्रष्ट अधिकारी और राजनेता वन गए है। नैतिक मूल्यो में गिरावट और सांस्कृतिक विघटन के कारण आज का युवक भ्रमित है। अव यह पुरानी पीढ़ी के लोगो की मान्यताओं और व्यवहार-प्रतिमानों को आज की वदली हुई परिस्थितियों में निरर्थक समझता है। ऐसी स्थिति में दो पीढ़ी के बीच मूल्यों में संघर्ष होता है और तनाव व असन्तोष वढ़ता है।

डॉ. ब्रजमोहन ने छात्र-असन्तोष के लिए निम्न पांच कारणों को उत्तरदायी माना है : (1) भयंकर आर्थिक असुरक्षा, (2) दमनकारी सांस्कृतिक प्रतिमानों के कारण आश्चर्यचकित

देने वाले यौन-नैराश्य, (3) युवा वर्ग की अन्तःशक्तियों (Potentialities) को विकसित ने में शिक्षण संस्थाओं की असफलता, (4) उजाड़ भविष्य, तथा (5) पीढ़ियों का अन्तर। धेकांश युवकों की समस्याएं इनमें से एक या अधिक कारको से सम्बन्धित है।[1] विश्वविद्यालय क्षा पर राधाकृष्णन कमीशन[2] ने अपनी रिपोर्ट में छात्र असन्तोष के वाह्य एवं आभ्यन्तरिक रणों पर प्रकाश डाला है। इस रिपोर्ट के अनुसार यह सत्य है कि हम अस्त-व्यस्तता तथा र्ष के काल में रह रहे हैं.....प्रत्येक देश के युवकों पर उत्तेजित प्रभाव डालता है। रिपोर्ट यह भी वतलाया गया है कि राजनीतिज्ञों में विद्यार्थियों को अस्वास्थ्यकर गतिविधियो में ाने की प्रवृत्ति पायी जाती है और साथ ही समाज-विरोधी तत्व भी इस दिशा में कार्य ते हैं। राधाकृष्णन कमीशन ने शिक्षा व्यवस्था में पायी जाने वाली कमियो को छात्र-असन्तोष लिए उत्तरदायी माना है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि छात्र असन्तोष एवं युवा सक्रियता केवल शैक्षणिक वस्था से सम्बन्धित समस्या ही नहीं है, वरन् यह एक सामाजिक एवं संरचनात्मक समस्या इसके लिए शैक्षणिक, सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक कारक उत्तरदायी है।

विद्यार्थी नेतृत्व
(STUDENT LEADERSHIP)

नेतृत्व का जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विशेष महत्व है। कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों मे छात्र नेता पाए जाते हैं जो विद्यार्थियों की विविध गतिविधियों मे आगे रहते हैं, उनकी स्याओं मे रुचि लेते हैं, आवश्यकता पड़ने पर नारेबाजी, प्रदर्शन और हड़ताल का सहारा । हैं। ऐसे विद्यार्थी नेता न केवल शिक्षण-संस्थाओं में लोकप्रिय होते हैं बल्कि स्थानीय क्षेत्र भी अपनी महत्वपूर्ण स्थिति वना लेते हैं। ऐसे व्यक्तियों को राजनीतिक दलों का समर्थन प्राप्त होता है। स्वयं राजनीतिक दलो के ऐसे संगठन भी होते है जो विद्यार्थियो में विशेषतः म करते हैं। प्रश्न यह उठता है कि विद्यार्थी नेता कौन होते हैं, ये कैसे और कब नेता बनते है।

यदि कॉलेज और विश्वविद्यालयो मे छात्र नेताओं का अध्ययन किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि वहां दो प्रकार के नेता पाए जाते है—प्रथम, औपचारिक नेता जो छात्र-संघ तथा अन्य समितियों जैसे कला परिषद, विज्ञान अथवा वाणिज्य परिषद् में पदाधिकारियों—अध्यक्ष, सचिव आदि के रूप में कार्य करते है; द्वितीय, अनौपचारिक नेता जो किसी पद पर चुने या मनोनीत तो नहीं किए जाते परन्तु जिन्हें विद्यार्थी अपने मार्गदर्शक, संकट के समय सहायता करने वाले, छात्र-संघों के चुनाव मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले, छात्र गतिविधियों में आगे रहने वाले तथा विद्यार्थी स्तर पर लिए जाने वाले निर्णयों में प्रभावशाली भूमिका निभाने वाले मानते हैं। ये दोनों ही प्रकार के नेता अन्य विद्यार्थियों की तुलना में योग्यता व लोकप्रियता की दृष्टि से आगे होते हैं। उन विद्यार्थियों के लोकप्रिय नेताओं के रूप मे उभर कर सामने आने की सम्भावना अधिक रहती है जो भाषण देने की कला में निपुण और साहसिक होते हैं तथा छात्रों की समस्याओं को ठीक ढंग से अधिकारियों के सम्मुख रख पाते हैं। आज जबकि शिक्षण संस्थाओं की विभिन्न समितियों में छात्रों को लिया जा रहा है, विद्यार्थी नेताओ का महत्व और भी वढ़ गया है।

1 Dr. Brij Mohan, *India's Social Problems*, pp. 96-97.
2 C.N. Chitta Ranjan, *op. cit.*, pp. 162.

विद्यार्थी नेता के रूप में उभरने की उन विद्यार्थियों की सम्भावना अधिक रहती है जो उच्च योग्यता वाले होते हैं और जिन्हें शिक्षण-संस्थाओं में पाठ्यक्रमों के अलावा पाठ्येतर गतिविधियों के अभाव में अन्य किसी क्षेत्र में अपनी योग्यता को प्रदर्शित करने का अवसर नहीं मिलता। ऐसे छात्र विकल्प के रूप में राजनीति में रुचि लेने लगते हैं और जब एक बार उनमें राजनीतिक महत्वाकांक्षा जाग्रत हो जाती है तो वे नेता के रूप में आगे बढ़ने के प्रत्येक अवसर का लाभ उठाते हैं। बार्के ने लिखा है कि जहां विश्वविद्यालयों में पाठ्येतर कार्यों (extra-curriculum) का अस्तित्व नहीं पाया जाता, वहां विद्यार्थी नेता बनने की अभिलाषा की पूर्ति विश्वविद्यालय प्रबन्ध में भागीदार बनकर तथा विद्यार्थियों को सामूहिक क्रिया के लिए उत्तेजित करके, भड़का कर और प्रोत्साहित करके करता है। विद्यार्थी नेताओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पहले तक छात्र नेता धनी परिवारों से आते थे, बहुत-से विद्यार्थी नेता मध्यम वर्ग से सम्बन्धित होते थे और उनकी शिक्षण में कम रुचि होती थी। अब विशेषतः ऐसे विद्यार्थी नेता के रूप में आ रहे हैं, जिनमें अच्छा भाषण देने का गुण पाया जाता है। अपने इसी गुण के कारण वे विद्यार्थियों के समूह को एकता के सूत्र में बांधने और किसी सामूहिक क्रिया के लिए तैयार करने में सफल हो जाते हैं।

विद्यार्थियों के नेता बनने में स्वयं की योग्यता, जीवन का कोई ध्येय, अपने दल द्वारा छात्र समस्याओं को सुलझाने में रुचि, राजनीतिक दलों का समर्थन, जीवन में राजनीति को व्यवसाय के रूप में चुनने की इच्छा तथा किसी छात्र-प्रदर्शन एवं हड़ताल का सफल संचालन आदि मुख्य हैं। उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे ग्रामीण क्षेत्रों से आने वाले विद्यार्थी नगरीय समुदाय में आसानी से समायोजन नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति में किसी छात्र नेता से समर्थन एवं सहायता प्राप्त करने की आशा में वे उनकी ओर झुक जाते हैं। अतः छात्र नेताओं को गांवों से आने वाले विद्यार्थियों का विशेष समर्थन मिलता है। भारतीय छात्र नेता के सम्बन्ध में बार्के कारमैक का कथन है कि वह विद्यार्थियों को हड़ताल एवं प्रदर्शन के लिए उकसा सकता है, अपनी इच्छानुसार घटना को दिशा दे सकता है तथा चल रहे आन्दोलन को कभी भी बन्द कर सकता है। अपने साथियों से उसे अन्ध-समर्थन मिलता है।

युवकों एवं छात्र असन्तोष की समस्याओं को नियन्त्रित करने के उपाय

(MEASURES TO CONTROL THE PROBLEMS OF YOUTH AND STUDENT UNREST)

व्यावसायिक भूमिका निभाने के लिए युवा पीढ़ी को पूरी तरह प्रशिक्षित करने में शैक्षणिक प्रणाली की असफलता, युवा पीढ़ी के समाजीकरण के कार्य को पूर्णता के साथ पूरा करने की अयोग्यता तथा अपने आदर्श मानदण्डों एवं तरीकों और नीतियों को देश में बदले हुए मूल्यों तथा प्रवृत्तियों के अनुरूप बनाने में असमर्थता शिक्षण प्रणाली के प्रति उन लोगों में अनिष्ठा के प्रमुख कारण है जो इस प्रणाली में भाग लेते हैं। यहां युवा सक्रियता या असन्तोष एवं अनुशासनहीनता की समस्या को हल करने हेतु कुछ सुझाव प्रस्तुत किए जा रहे हैं:

(1) शिक्षा व्यवसाय से सम्बन्धित कमियों को दूर किया जाय—शिक्षण प्रणाली में पायी जाने वाली कमियों को शीघ्र दूर करने की अत्यन्त आवश्यकता है। शिक्षाशास्त्रियों को इस ओर ध्यान देना होगा कि विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रमों में कौन-कौनसी बातें सम्मिलित करनी है और कौन-कौनसी नहीं। परीक्षा प्रणाली और मूल्यांकन के तरीके को भी बदलना

...। यह तरीका इस प्रकार होना चाहिए कि विद्यार्थी को वर्ष भर पढ़ाई के कार्य में लगा रहना पड़े और मूल्यांकन में पढ़ाने वाले अध्यापक की सहभागिता हो। ऐसी स्थिति में कक्षा नियमित रूप से कार्य हो सकेगा।

(2) **अध्यापक-विद्यार्थी सम्बन्धों में निकटता लायी जाय**—अध्यापक-विद्यार्थी के सम्बन्धों में निकटता का अभाव तथा शैक्षिक स्तर का गिरना सम्पूर्ण शिक्षण प्रणाली के प्रति अनिच्छा और अविश्वास का प्रमुख कारण प्रतीत होता है। भारत में शिक्षा के तीव्र प्रसार के साथ-साथ हमें इस ओर विशेष ध्यान देना होगा कि शिक्षा का स्तर गिरे नहीं। इसके लिए आवश्यक है कि **योग्य व्यक्तियों को शिक्षा अधिकारियों के रूप में पद-भार संभालने का अवसर दिया जाए।** ऐसे पदों पर राजनीतिक प्रभाव के आधार पर नियुक्तियां नही होनी चाहिए।

(3) **उचित छात्र नेतृत्व का विकास किया जाय**—शिक्षण संस्थाओं मे विद्यार्थियों को इस प्रकार के अवसर उपलब्ध कराए जाने चाहिए कि **छात्रो की नेतृत्व सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति मान्यता प्राप्त तरीकों से हो सके।** यदि विद्यार्थियों की शक्ति का पूरा-पूरा उपयोग [illegible] नी स्वार्थ-पूर्ति के [illegible] न केवल शिक्षको [illegible] विद्यार्थी-राजनीतिज्ञो का भी शोषण करते रहे है। शैक्षिक गतिविधियों में कम रुचि एवं कम सहभागिता के कारण ही कई अध्यापक राजनीतिज्ञों के हाथ मे कठपुतली बन जाते हैं और इसी स्थिति के कारण छात्र-संघों का उदय श्रमिक-संघों के रूप में होता है जिनके द्वारा समय-समय पर मांग-पत्र प्रस्तुत किए जाते हैं। शिक्षा जगत में शोचनीय स्थिति के लिए स्वयं शिक्षा-अधिकारी उत्तरदायी हैं जो स्कूल एवं कालेज विद्यार्थियों का राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जुलूसों, प्रदर्शनों तथा सभाओं में उपयोग करने की आज्ञा देते है। ऐसे अधिकारी स्वयं की पदोन्नति के लिए राजनेताओं को प्रसन्न करने हेतु छात्रो का दुरुपयोग करते हैं।

(4) **शिक्षा समाजीकरण में सहायक हो**—शैक्षणिक प्रणाली में इस प्रकार से परिवर्तन किए जाने चाहिए कि **वह स्वतन्त्र भारत के नवीन आदर्शों के अनुरूप विद्यार्थियों का समाजीकरण कर सके।** आज आवश्यकता इस बात की है कि विद्यार्थियों और अध्यापकों में ऐसे मूल्यों का आन्तरिकीकरण हो जो नवीन आदर्शो के अनुकूल हो। उदाहरण के रूप में, एक आधुनिकीकरण की ओर बढ़ते हुए समाज में प्रस्थिति के निर्धारण में आरोपण या प्रदत्त (ascription) के स्थान पर उपलब्धि (achievement) के महत्व का पाया जाना स्वाभाविक है। पहले अध्यापकों का अध्यापक होने के कारण ही आदर और सम्मान किया जाता था, परन्तु अब बौद्धिक नेतृत्व की अपनी क्षमता के आधार पर ही वे सम्माननीय स्थिति प्राप्त कर सकते हैं। कॉलेज शिक्षण में प्रतिभाशाली व्यक्ति आएं, इसके लिए आवश्यक है कि आय तथा कार्य की दशाएं समुचित हों। यदि कालेजों एवं विश्वविद्यालयों को उचित मात्रा में स्वतन्त्रता एवं आर्थिक साधन उपलब्ध कराए जाएं तो शैक्षिक जीवन निश्चित रूप से ऊपर उठ सकेगा और नवीन मूल्यों का आन्तरिकीकरण हो सकेगा।

(5) **छात्र अध्यापकों का अनुपात घटाया जाय**—एस. एम. लिप्सेट ने बतलाया है कि अमरीकन विद्यार्थियों में नैराश्य तथा असामंजस्यता के लिए शिक्षा का प्रसार और परिणामस्वरूप व्यक्तित्व-लोप (Depersonalization) उत्तरदायी है। वे अब अपने को घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध शैक्षिक समुदाय के व्यक्तियों के रूप में सम्बन्धित नहीं समझते। परिणाम यह होता है कि

विद्यार्थियों में शैक्षणिक प्रणाली के प्रति अनिष्ठा तथा अलगाव के भाव पैदा होते हैं। आधुनिक भारत शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ इस स्थिति की ओर आगे बढ़ रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि शैक्षि . गतिविधियों में अध्यापकों एवं विद्यार्थियों की अधिकाधिक सहभागिता को प्रोत्साहित किया जाय' इसके लिए अध्यापक-विद्यार्थी अनुपात को घटाने की जरूरत है।

(6) राजनीतिक दलों का हस्तक्षेप रोका जाय—छात्र अनुशासहीनता पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट में बतलाया गया है कि विश्वविद्यालयों तथा कॉलेजों में राजनीतिक दलों के हस्तक्षेप और छात्र-संघों के श्रमिक संघ के रूप में कार्य करने को रोका जाये। छात्र-सुविधाएं उचित मात्रा में उपलब्ध करायी जानी चाहिए। शिक्षा आयोग की रिपोर्ट में कहा गया है कि संस्था के प्रधान को, विद्यार्थियों के साथ सहानुभूतिपूर्ण, समझदारीपूर्वक तथा उचित तरीके से व्यवहार करना चाहिए। जहां आवश्यक हो, वहां परिस्थिति के अनुरूप उसे दृढ़ता का परिचय भी देना चाहिए। विद्यार्थियों को यह भली-भांति समझा दिया जाना चाहिए कि कुछ ऐसे क्षेत्र है, जैसे पाठ्यक्रम, परीक्षाएं, शैक्षिक स्तर, अध्यापकों की नियुक्ति, इत्यादि जिनमें उन्हे कोई हस्तक्षेप नही करना है। विद्यार्थियो से सम्बन्धित मामलों में निर्णय लेने की प्रक्रिया तथा कार्यक्रमों में विद्यार्थियों की अधिक सहभागिता होनी चाहिए ताकि उनमें इस भावना को दूर किया जा सके कि वे विश्वविद्यालय समुदाय के पूर्ण सदस्य नहीं हैं।

(7) शिक्षा एवं रोजगार में समन्वय स्थापित किया जाये ताकि युवकों को असुरक्षा से मुक्ति मिल सके।

(8) नैतिक शिक्षा पर विशेष जोर दिया जाय ताकि विद्यार्थियों के चरित्र निर्माण में सहायता मिल सके।

(9) छात्रों एवं अध्यापकों के लिए आचार-संहिता होनी चाहिए ताकि दोनों के व्यवहार को नियन्त्रित किया जा सके और विचलन को रोका जा सके।

(10) शिक्षण-संस्थाओं में छात्रों के नियन्त्रित प्रवेश की व्यवस्था की जानी चाहिए। महाविद्यालयो एवं विश्वविद्यालयों का भीड़-भाड़युक्त वातावरण युवा सक्रियता या असन्तोष को बढ़ाने में योग देता है।

(11) छात्र-संघो की संरचना में परिवर्तन किया जाना चाहिए। छात्र-संघों के चुनाव अप्रत्यक्ष प्रणाली से होने चाहिए। अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली से गुटबन्दी को कम किया जा सकेगा और युवकों को स्वार्थी राजनीतिज्ञों के कुप्रभाव से बचाया जा सकेगा।

(12) युवा असन्तोष को कम करने हेतु परीक्षा-प्रणाली में सुधार किया जाना चाहिए। आज परीक्षाओ में नकल करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। इसे दूर करने हेतु परीक्षा-प्रणाली में सुधार आवश्यक है।

विश्वविद्यालय शिक्षा पर राधाकृष्णन कमीशन की रिपोर्ट में बतलाया गया है कि विद्यार्थी अनुशासनहीनता को केवल ऐसा वातावरण उत्पन्न करके ही समाप्त किया जा सकता है जिसमे लड़के-लड़कियो को अच्छे विद्यार्थियों के रूप मे विकसित होने के उचित अवसर मिलें। ऐसा विद्यार्थियों को आत्म-सम्मान तथा आत्म-विश्वास विकसित करने का सुअवसर देकर ही किया जा सकता है। यह भी उसी समय सम्भव है, जब विद्यार्थियों को सन्देह तथा भय के वातावरण मे रहने देने की बजाय उनमें विश्वास की प्रवृत्ति को उत्पन्न किया जाय। विद्यार्थियों के स्वतः ही अनुशासनपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए कमीशन ने तीन सुझाव दिये हैं जो निम्न हैं : (1) विद्यार्थियों को अच्छी सरकार में रुचि लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाय

हिए लेकिन दलगत राजनीति में नहीं, (2) एक परिवर्तित अनुशासकीय व्यवस्था जिसमें द्यार्थी अधिक भाग लेंगे अथवा विद्यार्थी सरकार विकसित की जानी चाहिए, तथा (3) अध्यापक, ता-पिता, राजनेता, जनता तथा समाचार-पत्रों को विद्यार्थियों में अच्छा जीवन विकसित रने में सहयोग देना चाहिए। इस कमेटी ने विद्यार्थी-कल्याण को ध्यान मे रखते हुए विद्यार्थियों । अनेक सुविधाएं उपलब्ध कराने तथा इस हेतु एक संगठन विकसित करने का सुझाव या।

नरेन्द्र देव कमेटी ने युवा असन्तोष को दूर करने हेतु निम्नलिखित सुझाव दिए हैं: (i) प्रत्येक ध्यापक की देख-रेख में दस से पन्द्रह तक छात्रों को रखा जाना चाहिए। (ii) अनुशासनबद्ध वन व्यतीत करने वाले छात्रों की सराहना की जानी चाहिए। (iii) अभिभावकों एवं ध्यापकों की ऐसी संयुक्त समिति गठित की जानी चाहिए जो नवयुवकों में तनाव को दूर रने हेतु उपाय सुझाए। (iv) शिक्षा-संहिता में प्रवेश की निर्धारित आयु से दो वर्ष कम आयु छात्र को भी कक्षा में प्रवेश की आज्ञा दी जाए। (v) प्रधानाध्यापक को ही छात्र को द्यालय से निष्कासित करने और शारीरिक दण्ड देने का अधिकार हो। (vi) विद्यार्थियो अनुशासन बनाए रखने के लिए प्रीफैक्ट व्यवस्था प्रारम्भ की जानी चाहिए। (vii) प्रत्येक द्यार्थी को वर्ष में 40 घण्टे शारीरिक श्रम व समाज सेवा के कार्यों में लगाया जाना चाहिए। iii) आकाशवाणी द्वारा युवकों के लिए विशेषत: उपयोगी कार्यक्रमों का प्रसारण किया ना चाहिए। (ix) छात्रों को केवल वे ही चलचित्र दिखाए जाएं जो उनके लिए उपयोगी । (x) विद्यार्थी की प्रगति एवं व्यवहार सम्बन्धी लेखा-जोखा दर्शाने वाला एक रजिस्टर नाया जाना चाहिए।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (कोठारी कमीशन, 1964-66) ने स्पष्ट किया है कि त्र-व्यवहार के लिए न केवल शैक्षणिक व्यवस्था उत्तरदायी है बल्कि बाह्य कारक भी। मीशन का मानना है कि शैक्षणिक प्रणाली में दो उपायों की आवश्यकता है : (1) विद्यार्थियों असन्तोष पैदा करने वाली शैक्षिक कमियों को दूर करना, तथा (2) असन्तोष की घटनाओं घटित होने को रोकने के लिए उचित सलाहकार तथा प्रशासकीय संगठन की स्थापना। क्षण-संस्थाओं को अपने शैक्षणिक-स्तर को ऊंचा उठाने और शिक्षण की प्रणाली को उन्नत रने का प्रयत्न करना चाहिए ताकि विद्यार्थी यह महसूस कर सके कि वह निश्चित लक्ष्य लिए सीखने की प्रक्रिया में भाग ले रहा है। साथ ही यह भी प्रयास होना चाहिए कि द्यार्थी और अध्यापक के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध हो ताकि विद्यार्थी में यह आत्म-विश्वास जागृत या जा सके कि अध्यापक को उसके कल्याण में पूर्ण रुचि है और उसकी सहायता से द्यार्थी अपनी समस्याओं को हल कर सकता है।

कोठारी कमीशन ने यह भी सुझाव दिया है कि सभी विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में लपति या प्राचार्य तथा अध्यापक और विद्यार्थियों की **संयुक्त केन्द्रीय कमेटियों** की स्थापना ो जानी चाहिए। ऐसी कमेटियों के द्वारा अध्यापकों और विद्यार्थियों में पारस्परिक विश्वास र सम्मान के आधार पर साहचर्य की भावना को विकसित करने का प्रयत्न किया जाना ाहिए।

मुदालियर आयोग ने युवा असन्तोष को दूर करने हेतु इस प्रकार सुझाव दिए हैं: (i) अध्यापक एवं छात्रों में निकट सम्पर्क कायम करने हेतु कक्षाओं में छात्रों की संख्या कम की जाए। (ii) विद्यालयों मे छात्र समितियों को अनुशासन बनाए रखने का कार्य सौंपा जाए। (iii) छात्रों

में अनुशासन के भाव जागृत करने के लिए सैनिक शिक्षा, सामूहिक खेल, स्काउटिंग आदि का उपयोग किया जाना चाहिए। (iv) छात्रों को राजनीति में भाग लेने से रोका जाना चाहिए। (v) छात्रों को सामान्य धार्मिक शिक्षा दी जानी चाहिए, न कि किसी धर्म विशेष से सम्बन्धित शिक्षा। (vi) छात्रों को चरित्र-निर्माण की शिक्षा दी जानी चाहिए। प्रभावी बनाने के लिए विभिन्न संस्थाओं का सहयोग लिया जाना चाहिए। (vii) को समाज के निर्माता तथा श्रेष्ठ मानव होने का अनुभव कराया जाना चाहिए। आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिवर्तन के एक सशक्त माध्यम के रूप में लिया जाना चाहिए। इस ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए कि शिक्षा ऐसी हो जिसके माध्यम से विद्यार्थी को इस प्रकार से संस्कारित किया जा सके कि वह राष्ट्रीय जीवन में अपनी भूमिका को समझ सके। प्रयत्न यह होना चाहिए कि शिक्षा से अभाव, बीमारी तथा अज्ञानता पर नियन्त्रण प्राप्त किया जा सके। शिक्षा के माध्यम से प्रजातान्त्रिक मूल्यों—न्याय, स्वतन्त्रता, समानता तथा बन्धुत्व का युवकों व विद्यार्थियों में आन्तरिकीकरण किया जाना चाहिए। युवा असन्तोष को दूर करने और विद्यार्थियों में अनुशासन के प्रति निष्ठा उत्पन्न करने के लिए जहां शैक्षिक प्रणाली की कमियों को शीघ्र ही दूर करने की आवश्यकता है, वहां शासक दल, विरोधी नेताओं तथा शिक्षा-अधिकारियों को कर्तव्यनिष्ठा का परिचय भी देना चाहिए। देश के भावी नागरिकों का स्वस्थ विकास केवल अध्यापकों तथा शासक दल का ही उत्तरदायित्व नहीं है। इस वृहद कार्य मे समाज के सभी लोगों को अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। युवकों व विद्यार्थियों को स्वयं अपने दायित्व को समझना है, समाज और मानवता के प्रति अपने कर्तव्य से परिचित होना है। केवल दूसरों को दोष देने की प्रवृत्ति पर अंकुश रखना है और देश के भावी निर्माण में प्रत्येक को अपना सक्रिय योग देना है। शिक्षण संस्थाओं को चरित्र-निर्माणकारी संस्थाओं के रूप में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की अत्यन्त आवश्यकता है। विद्यार्थियों में व्याप्त आर्थिक असुरक्षा की भावना को दूर करने के लिए देश का तेजी से आर्थिक विकास अनिवार्य है जिसमें वितरण प्रणाली पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए ताकि गरीब-अमीर का भेद कम हो सके, बेकारी मिट सके और युवक व विद्यार्थी अपने भविष्य के प्रति आशावान हो सके। यदि योग्य विद्यार्थियों को आगे बढ़ने का, कर्तव्यपरायणता और कठिन परिश्रम का पुरस्कार प्राप्त करने का तथा अच्छी नौकरियों में आने का अवसर मिला और उद्दण्ड छात्रों के विचलित व्यवहार के लिए उन्हें दण्डित किया गया तो स्थिति में अवश्य सुधार होगा। यह सब कुछ होने पर ही छात्र असन्तोष की समस्या हल हो सकेगी।

प्रश्न

1. भारत मे छात्र असन्तोष के क्या कारण हैं ? समस्या के समाधान के लिए आप क्या सुझाव दे सकते हैं ?
2. विद्यार्थी असन्तोष से क्या समझते हैं ? भारत मे छात्र विक्षोभ के कारणों एवं परिणामों की व्याख्या कीजिए। (अजमेर, 1991, 1997)
3. युवकों की समस्याओं पर एक लेख लिखिए। (अजमेर, 1996)
4. युवकों की समस्याओं के प्रमुख कारण क्या है ? इनकी समस्याएं हल करने हेतु सुझाव दीजिए।

5. भारत में शैक्षणिक संस्थाओं में पायी जाने वाली छात्र असन्तोष की समस्या समझाइए। (अजमेर, 1990)
6. भारत मे छात्र असन्तोष के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए। इसके नियन्त्रण के लिए क्या सुझाव दिए गए हैं ? (राज., 1992, 93)
7. "छात्र असन्तोष गरीबी, बेकारी एवं असमानता के कारण समाज मे व्याप्त असन्तोष की ही एक अभिव्यक्ति है।" टिप्पणी कीजिए। (राज., 1988)
8. भारत में छात्र विक्षोभ (असन्तोष) के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए तथा इसके कारणो की विवेचना कीजिए। (अजमेर, 1995)
9. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :
   (अ) छात्र असन्तोष। (राज., 1994)
10. भारत में छात्र असन्तोष के कारणों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण कीजिए। इस समस्या के समाधान के लिए कुछ रचनात्मक सुझाव दीजिए। (राज., 1995)
11. "छात्र असन्तोष समाज मे व्याप्त असन्तोष की अभिव्यक्ति है।" टिप्पणी कीजिए। (अजमेर, 1994)
12. छात्र असन्तोष में 'परिवार' और राजनीतिज्ञों की भूमिका स्पष्ट कीजिए। (अजमेर, 1997)

9

नशीली दवाओं का दुष्प्रयोग

[DRUG ABUSE]

भारत मे ही नहीं वरन् विश्व से सभी देशों में नशीली वस्तुओ पर लाखो-करोड़ों रुपए खर्च होते हैं और यह सभी सरकारो के लिए आय का प्रमुख साधन है। शराव एवं नशीली दवाओ का प्रयोग मानव संस्कृति से पिछले तीस हजार वर्षों से जुड़ा हुआ है। आर्य लोग सोमरस का पान करते थे। 8वी और 9वीं सदी में नशीली वस्तुओं का निर्माण फैशन के रूप मे किया जाता था। मुगल काल और उसके वाद 16वीं सदी तक धनाढ्य व्यक्ति शराब और अन्य नशीली वस्तुओ का प्रयोग करते थे। वर्तमान में शराव एवं नशीली दवाओं का प्रयोग सामाजिक एव धार्मिक, क्रीड़ात्मक उत्सव, त्यौहारो, अतिथि-सत्कार, मित्र की विदाई, विवाह के अवसर पर, दुल्हन के लिए शुभ कामना प्रकट करने के लिए, जहाज का नामकरण करने, सौदा तय होने, नए वर्ष को मनाने, सम्पति मिलने, आदि अवसरों पर किया जाता है। डॉक्टर भी दवा के रूप में मद्यपान तथा नशीली दवाओं का प्रयोग सुझाते रहे हैं।

मादक द्रव्यों अर्थात् नशीली दवाओं का दुरुपयोग (दुष्प्रयोग) (DRUG ABUSE)

नशे के लिए केवल शराव का ही प्रयोग नही किया जाता है, वरन् अन्य वस्तुओं, जैसे अफीम, गांजा, चरस, मारिजुआना, भांग, कोकीन, माजून, मारफीन, पैथोडीन तथा एस्पिरीन, आदि का भी सेवन किया जाता है। लिडाकिप का मत है कि इन वस्तुओ का प्रयोग व्यक्ति 'सामान्य' बनने के लिए करता है। शराव आदि का प्रयोग तो विशेष अवसरो पर करते हैं, किन्तु मादक द्रव्यो का प्रयोग तो प्रतिदिन अथवा प्रायः किया जाता है। मादक द्रव्यो का सेवन जव एक वार किसी कारण से प्रारम्भ कर दिया जाता है तो वह आदत का रूप ले लेते हैं और उन्हें छोड़ने में कई शारीरिक एवं मानसिक कठिनाइयां महसूस होती हैं।

मादक द्रव्यों का प्रयोग अति प्राचीन काल से विश्व के सभी देशो में होता रहा है। यूरोप के देशो में इनका सेवन दवा के रूप में तथा भारत व चीन में मुक्त रूप में किया जाता रहा है। दक्षिणी अमरीका मे मजदूरो मे कोकीन के प्रयोग को प्रोत्साहित किया जाता रहा है जिससे कि उनसे अधिकाधिक काम लिया जा सके। मादक द्रव्यों को उपयोग पर विश्व के सभी देशों में किसी न किसी प्रकार का नियन्त्रण अवश्य पाया जाता है अतः कई लोग चोरी-छिपे मादक वस्तुओ को लाने-ले जाने का कार्य करते है। कुछ गिरोह तो यह कार्य संगठनात्मक आधार पर करते हैं।

मादक द्रव्य व्यसन शब्द का तात्पर्य है मादक पदार्थों पर शारीरिक निर्भरता (Physical Dependence)। शारीरिक निर्भरता से तात्पर्य है कि मादक पदार्थों के निरन्तर प्रयोग से शरीर इन पदार्थों की उपस्थिति से अपना सामंजस्य कर लेता है और यदि इनका प्रयोग नहीं किया जाता है तो शरीर को दर्द, बेचैनी और रुग्णता महसूस होती है। दूसरे शब्दों में, मादक द्रव्य व्यसन वह दशा है जिसमें शरीर को कार्य करते रहने के लिए मादक पदार्थ प्रयोग की आवश्यकता महसूस होती है। यदि मादक पदार्थों का प्रयोग बन्द कर दिया जाता है तो संचालन में बाधा पैदा होती है।

इस प्रकार से मादक द्रव्य का अर्थ है शरीर का मादक पदार्थों के विषैले प्रभावों (Toxic effect) पर आश्रित इतना हो जाना कि उसके बिना वह नहीं रह पाता है (Addiction to a drug means that the body becomes so dependent to the toxic effect of the drug that one cannot do without it).

इस प्रकार मादक द्रव्य व्यसन की चार विशेषताएं हैं :

(1) इसमें मादक पदार्थ ग्रहण करने की शरीर द्वारा तीव्र इच्छा या आवश्यकता व्यक्त की जाती है जिसे वह हर सम्भव साधन द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न करता है।

(2) इसमें खुराक की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि की प्रवृत्ति होती है।

(3) मादक पदार्थों के प्रभावों पर मानसिक एवं शारीरिक निर्भरता पैदा होती है।

(4) इसका व्यक्ति एवं समाज पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

अवैध मादक पदार्थों का उपयोग या वैध मादक पदार्थों का दुरुपयोग मादक पदार्थों का दुष्प्रयोग (Drug abuse) कहलाता है जिससे शारीरिक या मानसिक हानि होती है। इसके अन्तर्गत धूम्रपान, गांजा, हशीश, हेरोइन, कोकोइन, L S D, मार्फिन के इन्जेक्शन एवं शराब, आदि का प्रयोग सम्मिलित हैं। इन्हें कई बार 'High on Speed' या 'Trip' या 'Getting, Kicks' जैसे शब्दों के प्रयोग द्वारा व्यक्त किया जाता है।

भारत में मादक द्रव्य अर्थात् नशीली दवाओं का दुष्प्रयोग (DRUG ABUSE IN INDIA)

प्राचीन काल से ही भारत में लोग मादक द्रव्यों का प्रयोग करते रहे हैं। मादक पदार्थों के सेवन को सामाजिक स्वीकृति भी प्राप्त थी। आर्य लोग सोमरस का प्रयोग करते थे। अथर्ववेद में भांग के प्रयोग का उल्लेख मिलता है। पुराणों मे भांग के लिए 'विजया' शब्द का प्रयोग हुआ है। भारत में अफीम, भांग, गांजा, चरस एवं कोकीन का प्रयोग होता रहा है।

भारत में मादक पदार्थो के प्रयोग की मात्रा, प्रकृति, विस्तार और दुष्प्रभावों को जानने के लिए स्कूल एवं महाविद्यालयों के छात्रों, औद्योगिक श्रमिकों एवं ग्रामीण लोगों से सम्बन्धित अनेक अध्ययन किए गए हैं। इन अध्ययनकर्ताओं बनर्जी (1963 में कलकत्ता में), दयाल (1977 मे दिल्ली में), चिटनिस (1974 में मुम्बई में), वर्मा (1977 में पंजाब मे), सेठ व मनचन्दा (1978 में उत्तर प्रदेश में), दुबे, कुमार और गुप्ता (1969 व 1977 में), राम आहूजा (1976 व 1986 में जयपुर में), सोहन, सुन्दरम् और चावला (1978 मे दिल्ली में), गैग्रेड व गुप्ता, देव एवं जिन्दल, दुबे, वर्गीज एवं बैग, आदि के नाम प्रमुख हैं। इनमें से हम यहां कुछ अध्ययनों का उल्लेख करेंगे :

डॉ. राम आहूजा ने 1976 में जयपुर में विश्वविद्यालय छात्रों का अध्ययन करने पर पाया कि 26.1% विधि के छात्र, 23.6% वाणिज्य के छात्र, 17.5% कला व समाज विज्ञान

के छात्र, 14% चिकित्सा विज्ञान के छात्र, 14% विज्ञान के छात्र, 13.6% इन्जीनियरिंग के छात्र मादक पदार्थों का उपयोग करते थे उनके 1986 के अध्ययन में 31% वाणिज्य के छात्र, कला व सामाजिक विज्ञान के 27.2% छात्र, 20.3% विज्ञान के छात्र, चिकित्सा विज्ञान के 7.3% छात्र, इन्जीनियरिंग के 6% छात्र एवं विधि के 4.8% छात्र मादक पदार्थों का उपयोग करते थे।

इनमें से 90% छात्र नियमित रूप से मादक पदार्थों का उपयोग करते थे तथा 14% इनके व्यसनी हो पाए थे। लगभग दो-तिहाई छात्र इनका प्रयोग मनोरंजन के लिए अर्थात् आराम और आनन्द के लिए, 1/5वां भाग छात्र दवा के रूप में तथा 2 से 3 प्रतिशत वास्तविकता से भागने के लिए प्रयोग करते थे।

इसका प्रयोग करने वालों में पब्लिक स्कूलों मे पढ़े छात्र व छात्राएं, शैक्षणिक दृष्टि से निराश, पाठ्येतर कार्यक्रमों में भाग न लेने वाले, उच्च परिवारों के छात्र जिन्हे जेबखर्च खूब मिलता था, छात्रावासों में रहने वाले तथा 16 से 21 वर्ष की आयु के छात्र अधिक थे।

वर्तमान मे लगभग 40% छात्र और 18% छात्राएं जो कि विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों में शिक्षारत हैं, किसी न किसी प्रकार के मादक पदार्थों का सेवन करते हैं। दिल्ली नगर में ही घनी बस्तियों में रहने वाले लगभग 25% व्यक्ति स्मैक का प्रयोग करते हैं। कलकत्ता में इस समय 50 हजार, मुम्बई में 80 हजार एवं दिल्ली में एक लाख से अधिक लोग नशीले पदार्थों का सेवन के आदी बन चुके हैं। ड्रग एब्यूज एक्जामिशन, रिहैबिलिटेशन एण्ड रिसर्च सेण्टर के अध्ययन के अनुसार 7 लाख लोगों में से 87.6 प्रतिशत लोग 14 से 25 वर्ष की आयु के थे। विश्व स्वास्थ्य संगठन के एक सर्वेक्षण के अनुसार भारतीय विश्वविद्यालयों में 10% छात्र पक्के नशेबाज पाए गए जबकि 50% छात्र कम-से-कम एक बार किसी न किसी मादक पदार्थ का सेवन कर चुके हैं। एक अन्य सर्वेक्षण के अनुसार पटियाला मेडिकल कॉलेज के 72%, कानपुर मेडिकल कॉलेज के 42%, दिल्ली विश्वविद्यालय के 57%, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के 50% तथा मुम्बई विश्वविद्यालय के 55% छात्र-छात्राएं किसी न किसी प्रकार के नशे के आदी पाए गए। उनके लिए बीड़ी पीना, बुर्जुआ प्रवृत्ति, सिगरेट पीना, इन्टेलेक्च्युअल तथा स्मैक, चरस व हेरोइन का इस्तेमाल करना आधुनिकता का प्रतीक है। नशा संस्कृति विश्वविद्यालय एवं कॉलेज परिसर से प्राथमिक स्कूलों में भी प्रवेश कर चुकी है। यूनिवर्सिटी कैम्पस, कॉलेज और स्कूलों की नुक्कड़ की चाय और पान-सिगरेट की दुकानों पर मादक द्रव्य खुलेआम बिकते हैं।

केन्द्रीय शिक्षा और समाज-कल्याण मन्त्रालय द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार काशी विश्वविद्यालय की छात्राएं नशाखोरी में और मुम्बई की छात्राएं मद्यपान में, दोनों विश्वविद्यालय की तम्बाकू सेवन में, दिल्ली विश्वविद्यालय की नींद की गोलियां सेवन करने में एवं जयपुर की कोकीन लेने में सबसे आगे हैं।

1978 में मोहन, सुन्दरम् एवं चावला ने दिल्ली के 2,000 स्कूली छात्रों का अध्ययन करने पर पाया कि 63% छात्र मादक पदार्थों का प्रयोग करते थे।

गैंग्रेड एवं गुप्ता (Gangrade and Gupta) ने दिल्ली के 4,000 औद्योगिक श्रमिकों का अध्ययन करने पर पाया कि उनमें से 10.4% श्रमिक शराब, चरस, भांग, गांजा और अफीम में से किसी न किसी मादक पदार्थ का उपभोग करते थे। एक श्रमिक औसतन 4 रु. प्रतिमाह नशीले पदार्थों पर खर्च करता था।

देव और जिन्दल ने पंजाव के गांवों का 1974 में अध्ययन करने पर पाया कि 15 वर्ष से अधिक की आयु के 74% लोगों में शराव पीने की आदत थी। पंजाव के ही गांवों का 1978 में गुरमीत सिंह ने अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि 29% लोग मादक पदार्थो का उपयोग करते थे, 40% तम्वाकू का, 26% शराव का एवं 19% अफीम का उपयोग करते थे।

नशीली दवाओं का सेवन विश्वविद्यालय परिसर को लांघकर अव पब्लिक स्कूलों की दीवारों मे तेजी से प्रवेश कर रहा है। लड़कों की अपेक्षा लड़कियां इनकी अधिक शिकार हैं। पब्लिक स्कूल के छात्रावासों में रहने वाले विद्यार्थी इनका सेवन अधिक करते है। मसूरी, नैनीताल और दार्जिलिंग के स्कूलों के प्रवन्धक छात्रों में नशीली दवाओ के सेवन से अधिक चिन्तत है। वर्तमान में मुम्वई में प्रतिदिन नशीली दवाओ के सेवन से 5 मौतें होती है और प्रत्येक रात्रि को देश में 100 नए वालक नशीली दवाओं का सेवन प्रारम्भ करते है।

अफीम का प्रयोग भारत में मुस्लिम व्यापारियों द्वारा 9वीं शताब्दी में आरम्भ हुआ। अफीम को पानी में घोलकर अथवा उसकी गोलियां वनाकर खायी जाती हैं। पाचन सम्वन्धी दोष, कफ, दर्द, पीड़ा तथा अनिद्रा की वीमारियों से मुक्ति पाने के लिए अफीम का प्रयोग दवा के रूप में किया जाा है। गांवों में माताएं वच्चों को सुलाने के लिए व दस्त वन्द करने के लिए अफीम देती हैं, अफीम तम्वाकू की तरह भी पी जाती है। भारत पहले चीन को अफीम निर्यात करता था जो वाद में वन्द हो गया। 1953 के अन्त तक भारत सरकार ने अफीम को तम्वाकू की तरह पीना वन्द कर दिया। आजकल वाजार में अफीम की विक्री विल्कुल वन्द कर दी गयी है।

चरस का प्रयोग भी भारत में जनसाधारण द्वारा होता रहा है। चरस का पेड़ मध्य एशिया में पाया जाता है। इसके पत्तों और फूलों का प्रयोग नशे के लिए किया जाता है। पंजाव, उत्तर प्रदेश एवं दिल्ली में चरस का प्रयोग वहुत होता था। भारत में चरस सिक्यांग व यार्कलैण्ड से आयात होती थी, किन्तु अव इसके प्रयोग पर भी पूर्ण प्रतिवन्ध लगा दिए जाने से चरस पीने वाले लोग गांजा पीने लगे हैं।

गांजा व भांग का एक ही पेड़ होता है। उस पेड़ की पत्तियां भांग एवं फूल गांजा कहलाता है। भांग का प्रयोग पानी में घोलकर, गोलियां वनाकर, पकौड़ी, कचौड़ी, लड्डू, वर्फी, विस्कुट, कुल्फी, आदि में डालकर किया जाता है। गांजे को तम्वाकू की तरह चिलम में भरकर पिया जाता है। भांग, गांजा, अफीम व चरस का प्रयोग तम्वाकू में पण्डों, पुजारियों, फकीरों, सन्तों, सपेरों, नटों, आदि के द्वारा किया जाता रहा है। उत्सवों तथा त्यौहारों एवं होली के अवसर पर लोग भांग का प्रयोग करते हैं। शिव भक्त शिवरात्रि पर इसका प्रयोग करते है। भांग हल्का नशा पैदा करती है और शरीर के लिए अधिक हानिकारक नहीं है। इसके पीने से तन्द्रा की अवस्था वनी रहती है। सरकार ने वर्तमान में इसकी खेती एवं व्यापार पर प्रतिवन्ध लगा दिया है और लाइसेंस प्रणाली लागू कर दी है।

कोकीन का प्रयोग उच्च वर्ग के लोगों, जमींदारों, मुस्लिम नवावों एवं वादशाहों द्वारा किया जाता रहा है। कोकीन कोकी नामक पेड़ की पत्तियों से प्राप्त किया जाता है। भारत में इसका आयात 1890 से आ। इनका प्रचलन अधिकतर उत्तरी भारत में ही रहा है। दांत के दर्द व अन्य रोगों के लिए भी कोकीन का प्रयोग दवा के रूप में होता रहा है। अफीम, गांजा और चरस को सम्मिलित कर एल. एस. डी. का निर्माण किया जाता है।

मादक द्रव्यों के सेवन के कारण

पिछले वर्षों में भारत में मादक द्रव्यों का सेवन बढ़ा है और चोरी-छिपे रूप से इस
विदेशों से आयात होता है। विश्वविद्यालयों के छात्र-छात्राओं द्वारा मादक पदार्थों का प्रयो
अधिक किया जाने लगा है। प्रतियोगिता की कठिनता, सपनों का टकराव, पाठ्यक्रमों की
नीरसता, अन्दर ही अन्दर कसकते-सिसकते तनाव के कारण युवा वर्ग तनाव से मुक्त तथ
कल्पनाओं के स्वप्निल संसार मे खोने की अदम्य लालसा के कारण नशे की शुरूआत
करता है।

मादक द्रव्य सेवन की प्रेरणा मित्रमण्डली के बीच मिलती है। बहुधा अपने को अ
अनाड़ी एवं गंवार न समझ लिया जाए इसलिए भी प्रतिष्ठा के प्रतीक के रूप में मादक द्र
का सेवन किया जाता है। यह जायका शीघ्र ही आदत का रूप ले लेता है। पाश्चात्य सभ्य
और संस्कृति की चकाचौंध मे खोए हुए परिवारों में विभिन्न अवसरों पर नशा करना शिष्टच
तथा जीवन शैली का प्रतीक बन गया है। इसके लिए हिप्पी संस्कृति भी उत्तरदायी है। संसार
से ऊबे हुए लोग चिन्तारहित, मुक्त एवं स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करने की लालसा में मानसिक
शान्ति के लिए मादक द्रव्यो का सेवन करते हैं। मादक द्रव्यों के सेवन से युवा पीढ़ी मे यौन
स्वच्छन्दता बढ़ी है जो भविष्य के लिए भयावह स्थिति है।

नशीली दवाओं के सेवन के कारणों को प्रमुखतः चार भागों में बांटा जा सकता

(1) मनोवैज्ञानिक कारण—तनाव से मुक्ति, उदासी को दूर करने, जिज्ञासा को श
करने, ऊब से मुक्ति पाने, ऊंची-ऊंची उडाने भरने, साहस जुटाने एवं अनुभव को गह
करने के लिए मादक दवाओं का प्रयोग किया जाता है।

(2) मानसिक विकार—ऐसा माना जाता है कि मादक दवाओं का प्रयोग करने वाले
अधिकांश व्यक्ति अशांत एवं अस्थिर चित वाले होते हैं। लोग चिन्ता से मुक्ति पाने एवं
व्यक्तित्व की कमियों को छुपाने के लिए मादक वस्तुओं का प्रयोग करते हैं। एक बार आदत
पड़ने पर उसे छुड़ाना कठिन होता है। व्यक्तिगत एवं मानसिक कमी वाले व्यक्ति को
साइकोन्यूरोटिक कहते हैं।

(3) उपचार—कई लोग मादक वस्तुओ का प्रयोग शारीरिक तथा मानसिक रोगों से
मुक्ति के लिए करते है, किन्तु लम्बे समय तक इनके प्रयोग के कारण रोग-मुक्त होने पर भी
वे इन्हें छोड नही पाते।

(4) मानसिक तनाव—कई लोग मानसिक तनाव एवं संघर्ष से मुक्ति पाने के लिए
मादक द्रव्यो का सेवन करते है क्योंकि मानसिक शान्ति के अभाव में सामान्य रूप से कार्य
करना भी कठिन हो जाता है।

(5) असामान्य व्यक्तित्व—जिन लोगो का व्यक्तित्व असामान्य होता है वे भी हर समय
अशान्ति महसूस करते हैं। वे वास्तविकता से भागने के लिए मादक वस्तुओ का सेवन करने
लगते हैं।

(6) सामाजिक कारण—सामाजिक उत्सव मनाने, मित्रों द्वारा स्वीकार किए जाने तथा
सामाजिक मूल्यों को चुनौती देने एवं परिवार के सदस्यों का अनुकरण करने, आदि कारणों
से लोग मादक द्रव्यों का सेवन करते हैं।

(7) शारीरिक कारण—चेतन रहने, यौन अनुभव में वृद्धि करने, दर्द निवारण के लिए
; निद्रा लाने के लिए भी लोक मादक द्रव्यों का सेवन करते हैं।

(8) विभिन्न कारण—अध्ययन में प्रगति लाने, धार्मिक अन्तर्दृष्टि को तेज करने, स्वयं की समझ में वृद्धि करने तथा व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान के लिए भी नशीली दवाओं का सेवन किया जाता है।

इनके अतिरिक्त, वांछित सफलता न मिलने, परीक्षा में असफल होने, असफल प्रेम सम्बन्ध और हीन भावना भी मादक पदार्थों के सेवन को प्रेरित करते हैं। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव, एक बार चखने की चाह, पारिवारिक नियन्त्रण का अभाव, नशा करने वाले लोगों से सम्पर्क, साथियों द्वारा नशे के आनन्द को अलौकिक आनन्द के रूप में निरूपित किया जाना, जीवन के कठिन क्षणों में दबाव और तनाव को भुलाने की कोशिश, बेरोजगारी, व्यक्तिगत निराशाएं, सम्बन्धों में बिखराव, चिन्ता, पारिवारिक स्नेह का अभाव, बोरियत, थकान और मायूसी से मुक्ति पाने एवं महज मौज-मस्ती के लिए भी मादक द्रव्यों का सेवन किया जाता है।

कई लोग इस भ्रम से कि इससे सृजनात्मकता को बढ़ावा मिलेगा इनका सेवन करते हैं।

वर्तमान में मादक वस्तुओं का सेवन बढ़ा है। आजकल कई लोग फैशन के रूप में भी इसका प्रयोग करते हैं। औद्योगीकरण एवं नगरीकरण ने मानव के लिए अनेक परेशानियां व चिन्ताएं पैदा की है। अधिकाधिक सम्पन्न बनने हेतु भी कई लोग इनका चोरी-छिपे व्यापार करते हैं और इनके प्रयोग को बढ़ावा देते है। इनके अतिरिक्त, निराशापूर्ण जीवन, हिप्पी संस्कृति, आदि ने भी वर्तमान में मादक द्रव्यो के प्रयोग को बढ़ावा दिया है।

मादक द्रव्य शरीर में पहुंचकर कई रासायनिक परिवर्तन करते हैं और शरीर में इनके प्रयोग की आवश्यकता पैदा करते हैं। रासायनिक सन्तुलन बनाए रखने के लिए इनका प्रयोग धीरे-धीरे आवश्यक हो जाता है। मादक द्रव्यो के सेवन करने पर इनका निरन्तर उपयोग करने की इच्छा एवं आवश्यकता बढ़ती जाती है। प्रारम्भ में तो यह थोड़ी मात्रा में सेवन किया जाता है किन्तु धीरे-धीरे इसे बढ़ाने की प्रवृत्ति बढ़ती है। मादक पदार्थ व्यक्ति में नींद एवं नशा पैदा करता है और इनके प्रयोग के अभाव में व्यक्ति सामान्य रूप से कार्य करने में असमर्थ होता है।

डॉ. राम अहूजा ने महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय के छात्रों के अपने अध्ययन में पाया कि 85.5% छात्र नशीली दवाओं का सेवन मनोवैज्ञानिक कारणो से, 15.2% शारीरिक कारणों से, 10.9% सामाजिक कारणों से तथा 28.4% विभिन्न कारणों से करते थे। वे यह भी मानते है कि यह प्रवृत्ति सीखा हुआ व्यवहार है।

डॉ. आहूजा ने अपने अध्ययन में परिवार एवं मित्रमण्डली को भी नशीले पदार्थों के सेवन मे महत्वपूर्ण कारक माना है। नशीले पदार्थों का सेवन करने वाले छात्रों के परिवार 'सामान्य' नहीं थे तथा उनमें प्रेम एवं स्नेह का अभाव था। परिवार से दूर छात्रावासों में रहने वालों में यह प्रवृत्ति अधिक थी। जिन परिवारों में तम्बाकू एवं नशीले पदार्थो का सेवन किया जाता था, उनसे आने वाले छात्रों में भी यह प्रवृत्ति अधिक थी। पारिवारिक नियन्त्रण की शिथिलता एवं परिवार के पर्यावरण ने भी छात्रों में नशीले पदार्थो के सेवन को बढ़ावा दिया है।

परिवार की भांति ही मित्र-मण्डली भी नशीले पदार्थों के सेवन का प्रमुख कारण है। आहूजा के अध्ययन में 81% नशा करने वाले छात्रों के मित्र भी नशा करने वाले थे। 44% छात्र वही नशीली दवाओं का सेवन करते थे जो उनके मित्र करते थे। 31% छात्र नशीली दवाओं का सेवन सदैव मित्रों के साथ ही करते थे। 63% छात्रों ने नशीली दवाओं का प्रथम

ज्ञान अपने मित्रों से प्राप्त किया था तथा 17% ने पहली बार नशीली दवाओं का सेवन अपने मित्रों के घर पर ही ही किया था। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि मित्र-समूह की संस्कृति का नशीले पदार्थों के सेवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। राष्ट्रीय नशा उपचार अनुसन्धान केन्द्र द्वारा कराए गए एक अध्ययन के अनुसार उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा और कर्नाटक में भांग का इस्तेमाल तथा दिल्ली में 'स्मैक' एवं सौराष्ट्र तथा राजस्थान में अफीम के सेवन की समस्या धार्मिक ग्रन्थों में इन पदार्थों के बारे में सन्दर्भ सामग्री तथा धार्मिक उत्सवों में इनके इस्तेमाल का परिणाम है।

सामाजिक विकास परिषद् द्वारा कराए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार कन्या महाविद्यालयों मे अध्ययनरत छात्राओं की अपेक्षा सहशिक्षा वाले महाविद्यालयों में पढ़ने वाली लड़कियों में बियर तथा शराब पीने की प्रवृत्ति कहीं ज्यादा है। सहशिक्षा महाविद्यालयों की 21.2 प्रतिशत लड़कियां शराब का सेवन करती हैं जबकि कन्या महाविद्यालयों की केवल 2 प्रतिशत ही। विश्व-स्वास्थ्य संगठन के एक सर्वेक्षण के अनुसार लगभग 6 प्रतिशत किशोर लड़कियां धूम्रपान की आदी है।

मादक द्रव्यों के सेवन के सन्दर्भ में छात्रों के किए गए अध्ययनों से ज्ञात होता है कि—(i) उच्च आय-वर्ग, (ii) 16 से 21 वर्ष के आयु-समूह तथा (iii) पब्लिक स्कूलों एवं छात्रावासों में रह रहे छात्रों के द्वारा इनका प्रयोग अधिक किया जाता है। 60% छात्रों ने इनका प्रयोग अपने मित्रों के सुझाव पर, 15% ने परिवार के किसी सदस्य के सुझाव पर, 10% ने डॉक्टर के सुझाव पर तथा 25% ने अपनी स्वयं की इच्छा से मादक द्रव्यों का सेवन प्रारम्भ किया।

मादक द्रव्यों के दुष्प्रयोग के कुप्रभाव
(EVIL EFECTS OF DRUG ABUSE)

मादक द्रव्यों के प्रयोग से शारीरिक क्षमता घट जाती है दुर्बलता पैदा होती है एवं अनेक रोग उत्पन्न होते है। व्यक्ति, परिवार एवं समाज का विघटन होता है। अपराध की प्रवृत्ति पैदा होती है। यौन स्वच्छन्दता उत्पन्न होती है। अपराधों की वृद्धि, पुलिस, प्रशासन और व्यवस्था की समस्याएं खड़ी होती हैं। मादक-द्रव्य नाड़ी संस्थान को प्रभावित कर तनावों से क्षणिक मुक्ति तो दिलाते हैं, किन्तु आगे चलकर नशे के आदी होने पर व्यसनी शीघ्र ही मौत के मुंह में चले जाते हैं। व्यसनी व्यक्ति का शरीर निष्क्रिय एवं कमजोर हो जाता है। मादक द्रव्यों का सेवन गरीबी के लिए भी उत्तरदायी है। हम यहां मादक द्रव्यों के दुष्प्रभावों का उल्लेख करेंगे :

(1) **शारीरिक प्रभाव (Physical Effects)**—लम्बे समय तक अधिक मात्रा में नशीली दवाएं पीने पर गैस बनने, जिगर सम्बन्धी बीमारी, नाड़ियों से सम्बन्धित खराबी, गठिया, पेलेग्रा नामक त्वचा रोग, बेहोशी, आदि बीमारियां पनपती हैं।

इनके प्रयोग से मस्तिष्क के तन्तु निर्जीव हो जाते हैं। अधिक संख्या में तन्तुओं के नष्ट हो जाने से चक्कर आने लगते हैं। ऐसे व्यक्ति की रोगों के कीटाणुओं से मुकाबला करने की शक्ति क्षीण हो जाती है। उसकी जीवन आशा कम हो जाती है। इन दवाओं के प्रयोग

राजस्थान पत्रिका, 12 जुलाई, 1994, पृष्ठ 11.

;;कैंसर पनपता है, गठिया, चर्म रोग, हृदय रोग, अपच, आंख के रोग, अपस्मार, श्वांस ;;, क्षय, डिप्थेरिया, आदि रोग भी पनपते हैं।

(2) **मानसिक बीमारी** (Mental Disease)—नशीली दवाओं के सेवन से व्यक्ति में .सिक दक्षता की कमी हो जाती है, मस्तिष्क कमजोर हो जाता है और स्नायु-तन्तु नष्ट हो ,ते है। इससे मनुष्य की भावात्मक एवं बौद्धिक शक्ति क्षीण हो जाती है। वह गन्दी एवं ,तेजक भाषा का प्रयोग करता है तथा अत्यधिक क्रोधी हो जाता है। इनके विष से तीव्र नकीपन, मूर्छा, पागलपन, मिरगी, नाड़ी की सूजन, पक्षाघात, आदि रोग पैदा होते है। ानसिक दुर्बलता, चित्त विभ्रम, सन्देह, उत्तेजना, स्मृति नाश, मैनिया एवं मनोविकृति, आदि ोग इनके सेवन से पनपते हैं।

(3) **दुर्व्यवहार** (Misconduct)—नशीली दवाओं का सम्बन्ध अपराध, वेश्यावृत्ति, ुआखोरी, चोरी, आदि गैर-कानूनी व्यवहारों से जोड़ा जाता है। इनके कारण, कानूनों को ागू करने की समस्या पैदा होती है। यह बाल अपराध, यौन अपराध, हत्या, वेश्यावृत्ति, आदि के लिए भी उत्तरदायी है। इस प्रकार नशीले पदार्थ सामाजिक संगठन के लिए एवं व्यवहार प्रतिमानों को लागू करने में कठिनाई पैदा करते हैं।

(4) **दुर्घटना** (Accident)—कई लोगों का विश्वास है कि नशीली दवाएं दुर्घटनाओं के लिए उत्तरदायी हैं। प्रमुखतः औद्योगिक एवं यातायात सम्बन्धी दुर्घटनाओ के लिए इनको उत्तरदायी ठहराया जाता है। इन दवाओं के सेवन से नींद एवं बेहोशी आती है, व्यक्ति लापरवाह हो जाता है और दुर्घटना घटित हो जाती है।

(5) **कार्यक्षमता** (Efficiency)—नशीले पदार्थ औद्योगिक क्षमता, उत्पादन, अनुपस्थिति, दुर्घटना, आदि को प्रभावित करते है। अतः कई देशों ने इनके प्रयोग पर रोक लगाने के लिए कानून बनाए हैं।

(6) **वैयक्तिक विघटन** (Personal Disorganization)—नशीले पदार्थ वैयक्तिक विघटन का संकेत और कारण दोनों हैं। ये संकेत इस रूप में हैं कि अधिकांश नशेबाज बीमार और मानसिक रूप से पीड़ित व्यक्ति है। जब उन्होंने पहली बार इनका सेवन प्रारम्भ किया था, उसी समय से उनकी समस्या प्रारम्भ हो गयी थी। ये कारण इस अर्थ में हैं कि यदि इनका सेवन न किया जाता तो व्यक्ति नशेबाज नहीं बनता। ऐसे व्यक्ति अपनी सम्पत्ति शराब में नष्ट कर देते हैं और मित्रों एवं अपरिचितों से झगड़ा कर बैठते हैं, उनका व्यवसाय खतरे में पड़ जाता है, वे अपने मित्रों का ध्यान नहीं रख पाते, वे पत्नी को पीटते हैं और पर स्त्री-गमन करते है। ऐसे व्यक्ति सामान्य जीवन व्यतीत नहीं कर पाते। वे सामाजिक अनुकूलन करने में असमर्थ रहते हैं और सामाजिक प्रतिमानों की अवहेलना करते हैं। वे प्राथमिक सम्बन्ध स्थापित करने एवं सामाजिक स्थितियों से सन्तुलन बैठाने में असमर्थ होते हैं।

(7) **गरीबी** (Poverty)—नशीली दवाओं के सेवन से गरीबी और बेकारी पनपती है क्योंकि नशेबाज की अधिकांश आय नशे में ही फुंक जाती है।

(8) **बेकारी** (Unemployment)—नशी की आदत बेकारी को बढ़ावा तब देती है जब व्यक्ति नशीली दवाओं का अधिक प्रयोग करने लगता है और उसकी कार्यक्षमता घट जाती है तथा वह कार्य से अनुपस्थित रहने लगता है। ऐसी स्थिति में उसे नौकरी से निकाल दिया जाता है। उसे कोई भी जिम्मेदारी का काम सौंपना नहीं चाहता। कार्याभाव में उसे बेकारी के दिन व्यतीत करने पडते है।

जब व्यक्ति बेकार होता है तब भी नशा करने लगता है। अध्ययन एवं प्रशिक्षण करने या व्यक्ति के श्रम करके कमाने की इच्छा के बाद भी जब उसे कोई काम नहीं मिलता है तो वह निराश हो जाता है। इस निराशा से मुक्ति पाने के लिए वह नशीले पदार्थों का सेवन लेता है।

(9) पारिवारिक विघटन (Family Disorganization)—मादक पदार्थ पारिवारिक विघटन का भी एक महत्वपूर्ण कारक है। एक नशेबाज व्यक्ति कभी-कभी ही एक अच्छा पारिवारिक व्यक्ति होता है। उसका पत्नी एवं बच्चों के प्रति कोई स्नेह नहीं होता है। ऐसा व्यक्ति नशे के लिए अपना धन, समय, शक्ति इतना खर्च करता है कि परिवार के लिए कुछ भी शेष नही रहता। कुछ व्यक्ति जो युवा अवस्था की दहलीज पर पांव रखते ही इनका अधिक सेवन करने लगते हैं, वे या तो शादी करते ही नहीं या विवाह के अयोग्य हो उनके स्वार्थी, आक्रामक एवं समाज-विरोधी होने से लोग उन्हें पसन्द नही करते। ऐसे व्यक्तियों मे कई ऐसे लक्षण होते हैं, जिनके कारण वे विवाह के अयोग्य होते हैं, जैसे स्वभाव के अपरिपक्वता, विषम-लिंगियों से डरना, आक्रामक एवं असामाजिक होना, घनिष्ठ मित्रों का न होना, शकालु, असम्भव आदर्शवादिता, अन्तर्मुखी, संसार से भावना एवं मानसिक रूप से बचने की प्रवृत्ति होना, आदि।

अधिक नशेबाज व्यक्ति पति या पत्नी के रूप मे अपने सामाजिक दायित्वों की पूर्ति सफलतापूर्वक नही कर सकता। पति-पत्नी एक-दूसरे के लिए बहुत कुछ होते हैं, वे मित्र, साथी से लेकर गृहस्थी तक की जिम्मेदारी को सम्भालते हैं। नशेबाज व्यक्ति अपनी सामाजिक भूमिकाओ को उस रूप मे नही निभा पाता जिस रूप में समाज उससे आशा करता है। नशा परिवार में झगड़ो एवं तनावों को पैदा करने वाला कारक है। नशा करने पर व्यक्ति को होश नहीं रहता और उसके अन्य व्यक्तियों से शारीरिक सम्बन्ध होने की सम्भावना रहती है। होश अने पर बेहोशी में की गयी त्रुटियों के कारण मित्रों एवं पत्नी से संघर्ष के अवसर रहते हैं।

कई माताओ को जब उनके बच्चे समाज में नशेबाज के नाम से जाने जाते हैं तो हीन भावना महसूस होती है। पिता के नशेबाज होने पर कभी-कभी बच्चों एवं पत्नी को भीख मांगनी पड़ती है। बच्चे भगोडे और आवारा हो जाते है। नशा पति-पत्नी में तलाक एवं झगड़े की जड़ है। निम्न आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति वाले लोगों को जो कानून का ज्ञान नही रखते तथा तलाक के बारे में नहीं जानते, नशे के कारण कई कष्ट उठाने पडते हैं। परिवार पारस्परिक दृढ़ता तो बनाए रखता है, किन्तु उसका नैतिक सामंजस्य टूट जाता है।

(10) सामाजिक समस्या (Social Problem)—आदिम और छोटे समाजो मे नशीले पदार्थों का प्रयोग सामूहिक उत्सवों तथा त्यौहारों, आदि के समय किया जाता है। फसल काटने, बसन्त के आगमन एव विशिष्ट अवसरों पर इन पदार्थों का सेवन सामूहिक रूप से किया जाता है। इनके प्रयोग से जब व्यक्ति अपने आप को मित्रों, परिवार के सदस्यों एवं समाज से पृथक् पाता है और असुरक्षित महसूस करने लगता है तो ऐसी दशा सामाजिक विघटन का सूचक है। इनके प्रयोग से प्राथमिक सम्बन्ध टूट जाते है।

जटिल समाजों मे जहां तनाव, चिन्ता और आक्रामक स्थितियों की अधिकता होती है, वहां व्यक्ति इनसे मुक्त होने के लिए नशे का सहारा लेता है। जटिल समाजों में नशे पर रोक लगाना भी सरल कार्य नही है क्योंकि यह कई संस्थाओं के कार्यक्षेत्र से सम्बन्धित होता है।

ीली दवाओं का सेवन खतरे को बढाता है और नियन्त्रण की संस्थाओ की शक्ति छीन ता है।

सामाजिक विघटन अनेक रूपों में प्रकट हो सकता है। सबसे महत्वपूर्ण रूप वह है जिसमें थमिक समूहों का महत्व घटता और द्वैतीयक समूहों का बढ़ता है। यह बात परिवार के लते प्रकार्यों में देखी जा सकती है। धर्म में लौकिकीकरण बढता है, आर्थिक जटिलता बढती तथा मनोरंजन का व्यापारीकरण होता है। इस प्रकार के परिवर्तन व्यक्ति के परिवार, पडोस या मित्र समूहों के घनिष्ठ सम्बन्धों मे पृथक्करण पैदा करते है। जो व्यक्ति सामाजिक दृष्टि से क् होते है, वे क्षतिपूर्ति के रूप मे नशे का सहारा लेते हैं। नशे के सहारे ही व्यक्ति अपने अस्थायी तोर पर मानसिक सन्तोष प्रदान करते हैं। नशे के कारण चोरी, डकैती, हत्या, त्महत्या, अपहरण, बलात्कार, मारपीट, आदि अपराधों मे वृद्धि होती है, सामाजिक एवं तिक मूल्य कमजोर पड़ जाते हैं, सामाजिक परम्पराएं एवं मर्यादाएं टूटने लगती हैं। इससे वा वर्ग के चरित्र का पतन होने लगता है, भ्रष्टाचार पनपता है, कानून की अवहेलना बढ़ती और सामाजिक-आर्थिक समस्याएं पैदा होती हैं जो व्यवस्थित सामाजिक जीवन को नष्ट र देती हैं।

सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों; जैसे होटलों एवं रैस्तरां में नशे के साथ नृत्य एवं जुआ था वेश्यावृत्ति भी चलती है। ये सभी सामाजिक विघटन को पैदा करते है। जहां स्त्रियों, जुआरियों और शराबियों की नैतिकता नष्ट हो जाती है, परिणामस्वरूप समुदाय और समाज नैतिक प्रतिमान टूटने लगते हैं। ये सब लोग इनकी अवहेलना करते हैं जिससे आगे लकर पारिवारिक एवं सामाजिक विघटन उत्पन्न होता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि नशीली दवाओं का दुरुपयोग एक सामाजिक, आर्थिक, ारीरिक एवं मानसिक बुराई है। नशे के कारण खून होते हैं, घर बिकते हैं, लोग दिवालिया ोते हैं, बदमाश बनते हैं, बच्चे कत्ल होते हैं, सुहाग उजड़ते हैं, अबोध बिगड़ते है, मानवता ष्ट होती हैं, स्त्री जाति अपमानित होती है, कई दिल टूटते हैं और आत्महत्याएं होती हैं। शा दुख एवं दरिद्रता को बढ़ावा देता है। यही कारण है कि प्राचीन समय से ही डॉक्टरों, माज-सुधारकों एवं आध्यात्मिक नेताओं ने नशा न करने की बात कही है।

ादक द्रव्य दुरुपयोग नियन्त्रण (Control of Drug Abuse)

देश में पिछले कुछ वर्षो से मादक पदार्थो के चोरी-छिपे ले जाने में वृद्धि हुई है। मुम्बई, देल्ली, चेन्नई और कलकत्ता इस व्यापार के केन्द्र बन चुके हैं जहां मध्य-पूर्व के देशों से हेरोइन एवं हशीश आती है जिसे पश्चिमी देशों में भेजा जाता है। सन् 1988 में 3,020 किलो, 1989 में 2,500 किलो एवं 1990 में 2,000 किलो अवैध हेरोइन पकड़ी गयी। 1987 में 2,929 किलो, 1988 मे 3,100 किलो, 1989 में 4,855 किलो तथा 1990 में 1,472 किलो अफीम पकड़ी गई। 1987 में 14,796 किलो एवं 1990 में 5,000 किलो हशीश पकड़ी गई। भारत में हेरोइन 70 हजार रुपए प्रति किलो के हिसाब से स्थानीय स्रोतों द्वारा खरीदी जाती है और इसे 3.9 लाख रुपए किलो के हिसाब से पुनः विदेशों से बेचा जाता है। यह लाभ ही अवैध व्यापार का मुख्य आकर्षण है।

मादक द्रव्यों से अनेक प्रकार की हानियां होती हैं। यही कारण है कि इसे रोकने के लिए सरकार ने समय-समय पर कई कानून बनाए हैं। 1893 में मादक द्रव्यों के प्रयोग को रोकने के लिए 'रॉयल कमीशन' की नियुक्ति की गयी जिसने अफीम की रोकथाम एवं दुष्प्रभावों का अध्ययन किया। 1895 में एक आयोग की नियुक्ति की गयी जिसने गांजा की मादक वस्तुओं के प्रयोग, प्रभाव एवं रोकथाम से सम्बन्धित जानकारी दी। 1936 में भारत सरकार ने मन्त्रियों के एक सम्मेलन में 1959 तक देश भर में अफीम के प्रयोग पर रोक लगाने का निर्णय लिया। मादक पदार्थों के दुरुपयोग को रोकने के लिए 'नारकोटिक्स ड्रग एण्ड साइकोट्रापिक सबस्टेंसेज एक्ट, 1985' बनाया गया जिसमें 1989 में कुछ और संशोधन किए गए। इसमें अवैध व्यापार की रोकथाम सम्बन्धी प्रावधान भी है। इस कानून के अन्तर्गत कम से कम दस वर्ष का कारावास, सम्पत्ति जब्त करने, एक लाख रुपए तक जुर्माना करने एवं मृत्यु-दण्ड तक की सजा का प्रावधान है। दुबारा पकड़े जाने पर अपराधी को 20 वर्ष तक की सजा एवं 2 लाख रुपयों तक का जुर्माना देना पड़ सकता है। कोकीन के प्रयोग एवं व्यापार पर भी नियन्त्रण लागू किया गया। भारत सरकार ने मादक द्रव्यों के व्यापार एवं प्रयोग पर नियन्त्रण रखने की दृष्टि से 'नारकोटिक्स इण्टेलिजेन्स ब्यूरो' की स्थापना की है। इस संस्था ने इस ओर महत्वपूर्ण योगदान दिया है, केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारें भी मादक वस्तुओं के नियन्त्रण के लिए प्रयत्नशील है। कल्याण मन्त्रालय मादक द्रव्यों का सेवन करने वालों की आदतों को छुड़ाने के लिए कैम्प लगाता है, उन्हें सलाह देता है और उनका पुनर्वास करता है। वर्तमान में मादक पदार्थों से छुटकारा दिलाने एवं उन्हें सलाह देने तथा उनके पुनर्वास हेतु 19 परामर्श केन्द्र तथा 26 de-addiction सेण्टर तथा 5 After care centre कार्यरत हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ ने इस कार्यक्रम हेतु दो करोड अमरीकी डालर की सहायता प्रदान की है। केन्द्र ने 'Central Committee on Prohibiuon and Drug Abuse' का पुनर्निर्माण भी किया है। अनेक स्वयंसेवी सगठन भी इस कार्य में लगे हुए हैं वे लोगों में इसके विरुद्ध जागृति पैदा करने के लिए समाजों, कार्यशालाओं, सेमिनार, नाटकों, प्रदर्शनियों, पोस्टरों एवं नारों, आदि का आयोजन करते हैं। वर्ष 1989-90 में 75 स्वयं-सेवी संगठनों को 3 करोड़ 50 लाख रुपयों की इन कार्यों हेतु सरकार द्वारा सहायता दी गयी।

मादक वस्तुओं का सेवन रोकने के लिए जन-शिक्षण आवश्यक है तथा लोगों को इनसे होने वाली हानि का ज्ञान कराया जाए। जो लोग इन पदार्थों के सेवन के आदी हो गए हैं, उनका रासायनिक एवं अन्य विधियों से उपचार कर उनकी आदत धीरे-धीरे कम कर छुड़ाने के प्रयास किए जाने चाहिए। कल्याणकारी संस्थाएं भी इस ओर अपना सहयोग प्रदान कर सकती हैं। इसके अतिरिक्त, स्वयं व्यक्ति को भी मादक वस्तुओं के सेवन को त्यागने का दृढ़ संकल्प लेना होगा, तभी वह ऐसा कर पाने में सफल होगा। 26 जून, 1989 को मादक पदार्थों की तस्करी और दुरुपयोग के खिलाफ अन्तर्राष्ट्रीय दिवस मनाया गया। नशीले पदार्थों की लत छुड़ाने के लिए एक अध्यापक निम्नांकित रूप में अपनी भूमिका निभा सकता है :

(i) अनेक छात्रों के साथ अनौपचारिक रूप से बातचीत करे,
(ii) छात्रों को नशीले पदार्थों की बुराई एवं दुष्परिणामों से अवगत कराए,
(iii) छात्रों की रुचियों और गतिविधियों की ओर ध्यान दे,

(iv) नशे के बारे में अपने अनुभवों की छात्रों को जानकारी दे, छात्रों की समस्याओं से निपटने में मार्गदर्शन करे,

(v) स्वयं नशीले पदार्थों का उपयोग न करे,

(vi) छात्रों को व्यवसाय चुनने और लक्ष्य निर्धारित करने में मदद करे, आदि।

प्रश्न

1. मादक द्रव्यों (नशीली दवाइयों) के दुरुपयोग के सामाजिक तथा आर्थिक परिणामों की विवेचना कीजिए।
2. मादक द्रव्य व्यसन से आप क्या समझते हैं? इसके प्रयोग के कारणों की विवेचना कीजिए।
3. भारत में नशीली दवाओं के दुरुपयोग पर एक लेख लिखिए।
4. नशीली दवाओं के दुरुपयोग के कुप्रभावों एवं इसे रोकने के उपायों का वर्णन कीजिए।
5. भारत में नशीली दवाओं के दुरुपयोग के अनिष्ट परिणामों की विवेचना कीजिए।
6. नशीली दवाओं के दुरुपयोग पर एक टिप्पणी लिखिए। (राज., 1995)

10

एड्स
[AIDS]

एड्स आज के युग की नवीनतम एवं सर्वाधिक खतरनाक बीमारी है। यह एक दुः
महामारी है जिसका पता पिछले 10 वर्षों से ही लगा है और जिसका अभी तक पूरी तर
इलाज नहीं ढूंढा जा सका है। पूरे विश्व मे इस बीमारी की चर्चा हो रही है और वैज्ञानि
इस बीमारी के बारे मे फैली भ्रान्तियों, कारणों, निदान एवं उपचार को ढूंढने में लगे हुए।
आज स्थिति यह है कि इस रोग से ग्रसित व्यक्ति अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकता
यह एक संक्रामक रोग है। सौभाग्यवश हमारे प्रदेश राजस्थान में अभी तक इसका ज्या
प्रकोप देखने को नहीं मिला है, लेकिन विश्व के आंकड़े बताते हैं कि आने वाले समय
जन-स्वास्थ्य के लिए यह एक बहुत बड़ी समस्या होगी। इस रोग ने अनेक देशों की आर्थि
एवं सामाजिक संरचना को प्रभावित किया है। इस रोग के कारणों व बचाव के बारे में
जानना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य बनता है, साथ ही हम इसके बारे में फैली भ्रान्तियों को भ
जानें जो अनावश्यक भय का कारण है।

एड्स क्या है
(WHAT IS AIDS)

एड्स की पूर्ण व्याख्या इस प्रकार है—

A—एक्वायर्ड (Acquired)—उपार्जित

I—इम्यूनो (Immuno)—प्रतिरक्षक

D—डेफिसियंसी (Deficiency)—अभाव

S—सिन्ड्रोम (Syndrome)—संलक्षण

इस प्रकार से इस बीमारी का पूरा नाम है—'एक्वायर्ड इम्यूनो डेफिसियंसी सिन्ड्रोम'।
यह रोग एक विषाणु (वायरस) से होता है जिसका नाम है—'ह्यूमन इम्यूनो डेफिसियंसी
वायरस' (Human Immuno Deficiency Virus), जिसे संक्षेप में एच. आई. वी. (HIV)
कहते हैं। एक्वायर्ड (Acquired) का तात्पर्य है—प्राप्त की गई। इससे स्पष्ट है कि एड्स की
बीमारी दूसरे रोगियों से प्राप्त की गई बीमारी है न कि यकायक होने वाली। यह बीमारी एच.
आई. वी. नामक विषाणुओं के प्रकोप से फैलती है। पूर्व में अलग-अलग जगह लोगों ने इस
विषाणु (वाइरस) को अलग-अलग नाम दिया, किन्तु 1989 में एड्स का कारक एक ही
विषाणु को माना गया और वह था एच. आई. वी.। एच. आई. वी. विषाणु तरल पदार्थ

समें थोड़ा- सा भी म्यूकस होता है, के माध्यम से प्रवाहित होते हैं। इस प्रवाह के प्रमुख मम वीर्य, रक्त और लार हैं।

जब किसी माध्यम से एच. आई. वी. विषाणु हमारे शरीर मे पहुच जाते हैं तो ये रे शरीर में रोगों से लड़ने वाली 'टी' कोशिकाओं (T. Cells) अर्थात् असंक्राम्य तन्त्र mmune System) एवं मस्तिष्क की कोशिकाओं को धीरे-धीरे प्रभावित करते हैं और उन्हें ट करते रहते हैं। संक्रमण के लगभग 12 सप्ताह बाद ही रक्त की जांच से यह ज्ञात होता कि यह विषाणु शरीर में प्रवेश कर चुका है। जिस व्यक्ति के शरीर में एड्स रोग के षाणु होते हैं उसे 'एच. आई. वी. पॉजिटिव' (HIV Positive) कहते हैं। ऐसे व्यक्ति के रीर की प्रतिरक्षात्मक क्षमता समाप्त हो जाती है। कुछ वर्षों बाद (6 से 10 वर्ष) स्थिति यह जाती है कि शरीर आम रोगों के कीटाणुओं से अपना बचाव नहीं कर पाता और तरह-तरह के संक्रमण (इन्फेक्शन) तथा कैंसर जैसे रोगों से ग्रसित होने लगता है। इस अवस्था को ही 'एड्स' कहते हैं। एच. आई. वी. पॉजिटिव व्यक्ति 6 से 10 वर्ष तक सामान्य जीवन व्यतीत कर सकता है, किन्तु वह दूसरों को बीमारी फैलाने में सक्षम होता है।

इस रोग को हम इस प्रकार से भी समझ सकते हैं—जिस प्रकार से किसी देश का सैन्य दल समाप्त होने पर वह देश कमजोर हो जाता है और कोई भी बाह्य शक्ति उस पर आक्रमण कर उस पर विजय पा सकती है अथवा उसे नष्ट कर सकती है, ठीक उसी प्रकार से एच. आई. वी. विषाणु द्वारा शरीर की प्रतिरक्षात्मक क्षमता नष्ट कर दी जाने पर प्रत्येक छोटी-मोटी बीमारी के विषाणु एवं कीटाणु शरीर में प्रवेश कर उस पर अपना आधिपत्य जमाने लगते हैं और व्यक्ति एक साथ कई रोगों से ग्रसित हो जाता है अन्ततः उसकी मृत्यु हो जाती है।

एक बार एच. आई. वी. विषाणु से संक्रमित होने का अर्थ है—"जीवन भर का संक्रमण एवं अकाल मृत्यु।" एड्स से मृत्यु अत्यन्त पीड़ादायक होती है। एड्स का अभी तक कोई उपचार एवं बचाव का टीका नहीं है।

एड्स के विषाणु कहां रहते हैं?

एड्स के विषाणुओं के रहने के प्रमुख स्थान हैं :

1. रोगी के वीर्य में
2. रोगी के रक्त में
3. रोगी द्वारा प्रयुक्त की गई सीरेन्ज/सुई में
4. रोगी के अंग-प्रत्यंग में।

एड्स रोग के लक्षण (Symptoms of AIDS)

किसी व्यक्ति को एड्स रोग है इसका पता छोटे-बड़े लक्षणों से लगता है।

रोग के छोटे लक्षण हैं :

1. एक माह से अधिक समय तक खांसी का बना रहना
2. शरीर में खुजली होना
3. पूरे शरीर पर घाव हो जाना
4. सारे शरीर पर फुन्सियां हो जाना
5. मुंह और गले में खुराश रहना

6. दो या तीन महीने से ज्यादा एक या दो जगह ग्रन्थियों में (पेट के निचले को छोड़कर) सूजन बनी रहना, आदि।

रोग के बड़े लक्षण हैं—

1 शरीर के वजन का 10% से अधिक घट जाना

2 एक महीने से अधिक दिन तक बुखार बने रहना

3 एक महीने से अधिक दिन तक दस्त बने रहना (समय-असमय या बार-बार आना)

4 भारी थकान का निरन्तर बने रहना।

एड्स कैसे फैलता है? (How AIDS Spreads?)

एड्स चूंकि एक संक्रामक रोग है अतः संक्रमण ही इसके फैलाव का प्रमुख कारण है। **एड्स का फैवाव प्रमुख रूप से पांच प्रकार से होता है**—(1) एच. आई. वी. संक्रमित रोगी के साथ सम्भोग करने से, (2) संक्रमित रोगी द्वारा प्रयुक्त सुई/सिरेन्ज का प्रयोग करने से, (3) एच. आई. वी. संक्रमित रक्त किसी अन्य स्वस्थ व्यक्ति को रक्त स्थानान्तरण से, (4) संक्रमित मां से शिशु को जन्म के पूर्व, प्रसव के समय या प्रसव के शीघ्र बाद, (5) संक्रमित रोगी के अंग-प्रत्यंग स्वस्थ व्यक्ति को प्रत्यारोपण करने से।

(1) **एच. आई. वी. संक्रमित रोगी के साथ यौन सम्पर्क**—मानव में एड्स बीमारी का सर्वाधिक प्रसार वीर्य के माध्यम से होना पाया गया है। एड्स के विषाणुओं को मानव के गुप्तांगों मे छुपने एवं सुरक्षित रहने का अच्छा अवसर मिलता है, अतः जब भी कोई स्वस्थ व्यक्ति एड्स संक्रमित रोगी से यौन सम्पर्क करता है तो रोगी के विषाणु स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में वीर्य के माध्यम से प्रवेश कर जाते है और उसे रोगी बना देते हैं। अतः जिन लोगों के यौन-सम्बन्ध कई स्त्री या पुरुषों से हो अथवा जो वेश्याओं से सम्पर्क रखते हैं उनके इस रोग के शिकार होने के अधिक अवसर होते है। जो लोग यौन रोगों; जैसे सुजाक (Gonorrhoea) एवं उपदंश (Syphilis) आदि से ग्रसित होते हैं उन्हें भी एड्स हो सकता है तथा वे भी अपने यौन साथी को एड्स का संक्रमण करते है। वे लोग जो राष्ट्रीय राजमार्ग के इर्द-गिर्द बसे हुए हैं और मजबूरन वेश्यावृत्ति का पेशा करते हैं, एड्स को फैलाते हैं। ट्रक ड्राइवर इसी कारण इस रोग के अधिक शिकार होते हैं। इसी प्रकार से वे लोग जो अपना हर मनोरंजन यौन सम्बन्धों के दायरे में ही देखते हैं, एड्स को फैलाने में सहायक होते हैं।

(2) **संक्रमित सुई/सिरेन्ज का प्रयोग**—एड्स रोग से संक्रमित रोगी की सुई या सिरेन्ज का प्रयोग यदि बिना शुद्ध किए (अर्थात् 20 से 25 मिनट तक बिना उबाले) स्वस्थ व्यक्ति के लिए किया जाता है तो उसे एड्स हो सकता है। क्योंकि सुई व सिरेन्ज का सम्पर्क रोगी के रक्त से होता है और इस रोग के विषाणु उस पर चिपक जाते हैं। जब यह सुई स्वस्थ व्यक्ति के इन्जेक्शन के लिए प्रयुक्त की जाती है तो विषाणु उसके शरीर में पहुंच जाते हैं। यही कारण है कि वे मदमस्त युवक-युवतियां जो कि जवानी के जोश मे अपना होश खोकर हेरोइन जैसी घातक नशीली दवाओं का सेवन कर रहें हैं, और जो इन्जेक्शन के माध्यम से नशीले पदार्थों का प्रयोग करते हैं, वे भी इस रोग को फैला रहे हैं। नशीली दवाओं का प्रयोग करने वाले व्यक्ति अक्सर एक ही सुई का प्रयोग एक साथ कई व्यक्तियों के लिए करते हैं। अतः एड्स फैलने की सम्भावना अनुकूल हो जाती है।

(3) **रक्त स्थानापन्न**—जब एक व्यक्ति एच. आई. वी. विषाणु से संक्रमित हो और यदि उसका रक्त किसी अन्य व्यक्ति को दिया जाए जिसे यह रोग नही हो रहा है तो वह व्यक्ति भी एड्स का शिकार हो जाता है। क्योंकि रोगी का दूषित रक्त उस व्यक्ति के रक्त को भी दूषित (एच. आई. वी. संक्रमित) कर देता है।

(4) **संक्रमित मां से शिशु को**—यदि एच. आई. वी. संक्रमित मां गर्भवती हो जाती है तो वह होने वाली सन्तान को जन्म के पूर्व गर्भ में ही या जन्म के समय या प्रसव के शीघ्र बाद शिशु को एच. आई. वी. विषाणु संक्रमित कर देती है। इस प्रकार के संक्रमण को नहीं रोका जा सकता। तीस प्रतिशत मामलों में मां से शिशु को एड्स संक्रमण के अवसर होते हैं।

(5) **अंग प्रत्यारोपण से**—यदि किसी व्यक्ति को एड्स रोग है या जो एच. आई. वी पॉजिटिव है उसके शरीर का कोई अंग जैसे गुर्दा, आंख या कोई अन्य अंग जरूरतमन्द व्यक्ति के प्रत्यारोपित किया जाता है तो उस व्यक्ति में एड्स फैलने की पूरी-पूरी सम्भावना होती है।

एड्स का खतरा जिन लोगों को अधिक है वे हैं :

1. एक से अधिक लोगों से यौन सम्बन्ध रखने वाले व्यक्ति।
2. वेश्यावृत्ति करने वाली स्त्री से यौन सम्पर्क रखने वाले व्यक्ति।
3. नशीली दवाइयां इन्जेक्शन द्वारा लेने वाले व्यक्ति।
4. यौन रोगों से पीड़ित व्यक्ति।
5. एड्स से संक्रमित मां से पैदा होने वाले बच्चे।
6. बिना जांच के रक्त का आदान-प्रदान करने वाले व्यक्ति।

एड्स के बारे में भय एवं पूर्वाग्रह या भ्रान्तियां अथवा एड्स किन स्थितियों में नहीं फैलता है (Ways in which AIDS does not Spread)

एड्स के बारे में अनेक भ्रान्तियां है क्योंकि जब लोगो को यह ज्ञात हुआ कि यह एक विषाणु से फैलता है और छूत का रोग भी है तो लोगों ने अपना-अपना ख्याल रखना शुरू कर दिया। इन ख्यालों का परिणाम यह हुआ कि आम जनता में इसके प्रति एक भय उत्पन्न हो गया। इसके बारे मे समाज में कई किंवदन्तियां पनप गईं और यह सामाजिक उपहास का विषय बन गया। अतः इसके बारे में सही जानकारी होना भी आवश्यक है। निम्नांकित स्थितियों में एड्स नहीं फैलता है :

(1) एड्स के रोगी से हाथ मिलाने से एड्स नहीं होता है।

(2) चुम्बन एवं आलिंगन से भी नहीं होता है जब तक कि उस व्यक्ति के मुंह या होंठ पर कोई घाव, कटाव या छाले न हों।

(3) खांसी एवं छींक से भी एड्स नहीं होता है, क्योंकि एच. आई. वी. का संक्रमण हवा या पानी के माध्यम से नहीं होता है।

(4) सार्वजनिक शौचालय के उपयोग से भी एड्स नहीं फैलता है।

(5) ऐसे किसी भी व्यक्ति से जिसे एड्स है उसके पड़ोस में रहने, उसके कमरे में रहने, उसके पलंग या बिस्तर का उपयोग करने आदि से एड्स नहीं फैलता है।

(6) एड्स के रोगी के साथ बैठकर खाने-पीने और उसके द्वारा काम मे लिए गए बर्तनों, कप-प्लेट, चम्मच, चाकू, छुरी के प्रयोग से भी एड्स नहीं फैलता है।

(7) स्वीमिंग पूल मे एड्स के रोगी के साथ तैरने से भी एड्स नहीं होता है।

(8) एक-दूसरे के वस्त्र पहनने या विस्तर में साथ सोने पर भी एड्स नहीं होता है।

(9) वच्चो के साथ खेलने से भी एड्स नहीं होता है।

(10) यदि कोई मच्छर एड्स से पीड़ित व्यक्ति को काटने के पश्चात् स्वस्थ व्यक्ति काटता है तो उसे एड्स की सम्भावना नही रहती क्योंकि कीटाणु से एड्स का संक्रमण होता तथा एड्स विषाणु की जीवन शृंखला किसी भी प्रकार से कीटाणु में नही रहती। मक्खी व खटमल के काटने से भी एड्स नहीं होता है ।

(11) संक्रमित माता द्वारा शिशु को दुग्धपान कराने पर भी शिशु को एड्स नही होता है। मां का दूध स्वयं ही वच्चे के लिए स्वास्थ्यवर्धक होता है और उसमें रोगो के प्रति प्रतिरोधात्मक क्षमता होती है।

(12) एड्स के रोगी के साथ यात्रा करने से भी एड्स नहीं होता है।

विश्व में एड्स का फैलाव (Spread of AIDS in the world)

एड्स के वारे मे जानकारी 15 वर्षो से अधिक पुरानी नही है, किन्तु एक संक्रामक रोग होने के कारण पिछले दस वर्षो में इसका फैलाव सम्पूर्ण विश्व में हो चुका है। सन् 1992 तक विश्व के विभिन्न देशो में एड्स से संक्रमित लोगों की संख्या इस प्रकार थी :

1	उत्तरी अमेरिका	दस लाख से अधिक
2.	लैटिन अमेरिका व कैरिवियन	पचास हजार से अधिक
3	पश्चिमी यूरोप	पांच लाख से अधिक
4	पूर्वी यूरोप एवं मध्य एशिया	पचास हजार से अधिक
5.	अफ्रीका/मध्य-पूर्व	पचहत्तर हजार से अधिक
6	उप-सहारा अफ्रीका	पचहत्तर लाख से अधिक
7.	पूर्वी एशिया	पच्चीस हजार से अधिक
8.	दक्षिणी एवं दक्षिणी-पूर्वी एशिया	पन्द्रह लाख से अधिक
9.	आस्ट्रेलिया	पच्चीस हजार से अधिक

इस प्रकार से 1992 में पूरे विश्व में एक करोड़ 7 लाख से भी अधिक व्यक्तियों में एच. आई. वी. विषाणु पाए गए।

भारत मे एड्स के विषाणु प्रवेश कर चुके हैं तथा अनभिज्ञता एवं डर के कारण इसका फैलना शुरू हो चुका है।

सन् 1992 में भारत में 102 एड्स से पीड़ित रोगी पाए गए। सन् 1991 में सर्वप्रथम मुम्बई में एड्स से पीड़ित रोगी का पता लगा। विभिन्न प्रान्तों मे एड्स के रोगियों की संख्या दिसम्बर, 1991 में इस प्रकार थी :

1.	जम्मू-काश्मीर	1
2.	पंजाव	8
3.	हरियाणा	7
4.	राजस्थान	1
5.	गुजरात	1
6.	उत्तर प्रदेश	1

7.	महाराष्ट्र	52
8.	आन्ध्र प्रदेश	1
9.	केरल	2
10.	तमिलनाडु	9
11.	पांडिचेरी	3
12.	प. बंगाल	1
13.	दिल्ली	14
14.	मणिपुर	4

शेष राज्यों में इसके रोगी अभी तक नहीं पाए गए है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सर्वाधिक एड्स के रोगी महाराष्ट्र में हैं। भारत में एच. आई. वी. विषाणु फैलाने वाले तीन केन्द्र हैं—मुम्बई, चेन्नई एवं नगालैण्ड। इन केन्द्रों से ही भारत के विभिन्न भागों में एड्स का फैलाव हो रहा है। इसका विवरण इस प्रकार से है :

केन्द्र	फैलाव के क्षेत्र
1. मुम्बई	महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर प्रदेश, बिहार, आन्ध्र, कर्नाटक एवं गोवा
2 चेन्नई	तमिलनाडु, केरल, आन्ध्र प्रदेश
3. नगालैण्ड	नगालैण्ड, मणिपुर, प. बंगाल, तमिलनाडु, त्रिपुरा, बिहार।

भारत में विभिन्न वर्षों में जिन लोगों के शरीर में एच. आई. वी. विषाणु पाए गए उनकी संख्या इस प्रकार है :

वर्ष	संक्रमित व्यक्ति
1991	6,66,000
1992	11,36,054
1993	17,53,482
1994	25,12,502
1995	33,98,390 (सम्भावित)

मुम्बई में प्रतिमाह 30 हजार लोग एड्स के विषाणु से संक्रमित हो जाते हैं। यह तथ्य अत्यन्त चौंकाने वाला और हमें आत्म-चिन्तन एवं मनन के लिए प्रेरित करता है। एड्स का फैलाव प्रमुखतः 10 से 24 वर्ष की आयु के लोगों में अधिक (20 से 25 प्रतिशत) पाया गया है। भारत में एड्स के फैलाव में अनियन्त्रित यौन सम्बन्धों एवं सुई व सिरेन्ज प्रमुख माध्यम रहे हैं। मणिपुर जैसे छोटे-से प्रान्त में युवा लोगों में एड्स के विषाणु इसलिए अधिक फैल रहे है क्योंकि वे नशीली दवाओं के इन्जेक्शन लेते हैं। महाराष्ट्र में इसके फैलाव के लिए नशीली दवाओं का प्रयोग एवं अवैध यौन सम्बन्ध प्रमुख कारण हैं।

राजस्थान में पिछले वर्षों में 6 हजार व्यक्तियों के रक्त की एड्स वायरस के लिए जांच की गई, उनमें से 10 व्यक्तियों में से एक में एच. आई. वी पॉजिटिव रक्त पाया गया और एक व्यक्ति पूरी तरह एड्स से पीड़ित निकला। आंकड़ों की दृष्टि से एड्स फिलहाल राजस्थान के लिए कोई समस्या नहीं है, किन्तु वैज्ञानिक तथ्य यह कहते हैं कि आने वाले दशक में यह एक व्यापक समस्या होगी। इसके कई कारण हैं, किन्तु सबसे प्रमुख कारण यह है कि राजस्थान सीमावर्ती प्रदेश है। एक ओर इसकी सीमाएं पाकिस्तान से छू रही हैं वहीं दूसरी

और गुजरात, उत्तर प्रदेश, पंजाव, हरियाणा, मध्य प्रदेश से भी इसका सीधा सम्पर्क है। राजस्थान में घुमक्कड़ प्रवृत्ति के समूह भी हैं जैसे गाडुलिया लुहार जिनसे भी एड्स की सम्भावना वनी रहती है। राजस्थान में कई राष्ट्रीय राजमार्ग भी हैं। जितना लम्बा राष्ट्रीय राजमार्ग होगा एड्स की सम्भावनाएं भी अधिक होंगी। इसके पीछे तथ्य यह है कि राष्ट्रीय राजमार्ग के किनारो पर वेश्याओ की वस्तियां हैं जहां ड्राइवर कुछ क्षणों के लिए प्रवेश करते हैं। एड्स के लिए नया रास्ता खोल देते हैं। ये ड्राइवर जव अपने घर पहुंचते हैं और पत्नी से संसर्ग करते है तो वेश्या वस्ती से लाए गए एड्स के विषाणु निश्चित रूप से तक पहुंचा देते है। एड्स संक्रमित माताओं से 30 से 40 प्रतिशत सम्भावनाएं भ्रूण में रोग को संक्रमित करने की रहती हैं। तमिलनाडु व महाराष्ट्र जैसे प्रदेशों में एड्स जिस गति से वढ़ रहा है उससे यह स्पष्ट है कि राजस्थान में इसका संक्रमण सम्भावित है और आने वाले समय मे एड्स से संक्रमित वच्चे इस समस्या का और भयावह आयाम होंगे।

राजस्थान के लिए एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि यहां दूषित रक्त का संचार होता है। जव किसी व्यक्ति को रक्त की आवश्यकता होती है तो वह पैसे देकर अनजान व्यक्ति का रक्त लेने से नहीं चूकता। वह पेशेवर रक्तदाता से रक्त ले लेता है जिससे एड्स की सम्भावना वढ़ जाती है। अतः हमारे लिए यह सही समय है कि हम चेत जाएं और ऐसे कदम उठाएं जिससे कि एड्स से वच सकें अन्यथा इस विभीषिका से संघर्ष अत्यन्त जटिल हो जाएगा।

एड्स के रोगी की सामाजिक-मानसिक समस्याएं

अथवा

एड्स से पीड़ित व्यक्ति पर मनो-सामाजिक प्रभाव

(PSYCHO-SOCIO IMPACTS OF AIDS ON AN INDIVIDUAL)

एच. आई. वी. विषाणु से ग्रसित व्यक्ति को अनेक अनिश्चितताओ एवं सामंजस्य से सम्बन्धित समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उसके सामने जीवन की आशाओं एवं अपेक्षाओं, व्यवसाय, परिवार, आदि से सम्बन्धित अनेक समस्याएं खड़ी हो जाती हैं जिनका प्रभाव उसके जीवन की गुणवत्ता एवं दीर्घ जीवन पर भी पड़ता है। समाज का उसके प्रति व्यवहार वदल जाता है, उसके दैनिक जीवन में तनाव पैदा हो जाता है। एड्स से पीड़ित व्यक्ति की प्रमुख मनोवैज्ञानिक-सामाजिक समस्याएं अथवा एड्स का व्यक्ति पर प्रभाव को हम निम्नांकित विन्दुओं के अन्तर्गत दर्शा सकते हैं :

(1) डर (Fear)—एड्स से पीड़ित व्यक्ति के मन में अनेक प्रकार के डर पैदा हो जाते हैं। उसमें मरने का भय विशेष रूप से अकेले एवं कष्टप्रद रूप से मरने का भय पैदा हो जाता है। यह डर इसलिए भी पैदा होता है कि उसने अपने मित्रों, परिजनों, परिचितों, रिश्तेदारों एवं सहकर्मियो को जिन्हें यह रोग हुआ था उन्हें कष्ट पाते और मरते देखा था। रोग के वारे में विशेष जानकारी न होने तथा इससे मुक्ति कैसे पाएं के कारण भी रोगी में डर पैदा हो जाता है। इस डर से मुक्ति के लिए रोगी को अपने मित्रों, परिवार वालों, डाक्टरों एवं सलाहकारों से विचार-विमर्श करना चाहिए।

(2) खो जाने का भय (Loss)—एड्स के रोगी मे यह भावना पैदा हो जाती है कि वह अपना जीवन, आकांक्षाएं, सामाजिक प्रतिष्ठा, व्यवसाय, आर्थिक स्थिरता, स्वतन्त्रता, शारीरिक आकर्षण एवं क्षमता, यौवन एवं जीवन सब कुछ खो रहा है। रोगी की देखभाल करने की आवश्यकता बढ़ जाने के कारण वह सोचता है कि उसका आत्मविश्वास समाप्त हो गया है। लोग उसके प्रति नकारात्मक रुख अपना लेते हैं और वह जीवन को कलंकित मानने लगता है।

(3) दुःख (Grief)—एड्स का रोगी उसे होने वाली शारीरिक, सामाजिक, मानसिक, आर्थिक एवं सभी प्रकार की हानियों का विचार करता है तथा आने वाले संकट के कारण घोर दुख का अनुभव करता है। जब परिवार के सदस्य, मित्र एवं परिजन उसे यह बताते हैं कि भविष्य में उस पर और उसके मरने के बाद उस पर आश्रितों पर क्या-क्या संकट आने वाले हैं तो वह और भी दुखी हो जाता है। वह स्वयं यह देखता है कि उसका स्वास्थ्य क्षीण होता जा रहा है, मृत्यु की ओर बढ़ रहा है और वह असहाय व निरुपाय है।

(4) अपराधी भावना (Feeling of Guilt)—रोगी को इस रोग से ग्रसित होने पर मन ही मन अपराध बोध होता है। परिवार के सदस्यों, प्रियजनो एवं बच्चों को उसके कारण होने वाली मानसिक पीड़ा के लिए भी वह अपने को दोषी मानता है। भूतकाल में इस रोग से ग्रसित व्यक्तियो के परिजनों को होने वाले कष्टों को याद करके भी वह अपने को अपराधी मानने लगता है।

(5) मायूसी (उदासी) (Depression)—एड्स का रोगी मायूस एवं उदास रहने लगता है। मायूसी के कई कारण हो सकते हैं जैसे कि यह बीमारी लाइलाज है अतः व्यक्ति अपने को निरुपाय एवं शक्तिहीन समझने लगता है। इस रोग से दूसरों की मृत्यु के बारे में जानकर भी वह उदास रहने लगता है। वह सन्तानों को जन्म देने मे असमर्थ है यह जानकर भी वह उदास हो जाता है।

(6) अस्वीकृति (Denial)—कई रोगियों को जब यह कहा जाता है कि आप एड्स से पीड़ित है तो वे इसे अस्वीकार करते हैं। यद्यपि कभी-कभी इस प्रकार की अस्वीकृति रोग निदान मे सहायक होती है। रोगी कई बार अपने सामाजिक दायित्वों को ग्रहण करने से भी इन्कार कर देता है

(7) चिन्ता (Anxiety)—एड्स से पीड़ित व्यक्ति चिन्तित रहने लगता है। उसकी चिन्ता के कई कारण हो सकते है; जैसे—कहीं घर में दूसरों को यह रोग न हो जाए, उसे अन्य रोग न हो जाएं, उसका व्यवसाय छूट गया है, उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा दांव पर है, वह कष्ट से मरेगा, उसकी मौत अपमानजनक होगी, वह मित्रों, परिवार के लोगों आदि के साथ सामंजस्य कैसे करे, शारीरिक क्षमता व आकर्षण का घटना तथा पराश्रितता का बढ़ना, आदि।

(8) क्रोध (Anger)—एड्स से पीड़ित होने पर कुछ व्यक्ति क्रोधी स्वभाव के हो जाते हैं, वे हर छोटी-मोटी बात पर क्रोध करने लगते है क्योंकि वे यह सोचते हैं कि वे दुर्भाग्यशाली हैं तभी उन्हें यह रोग लगा।

(9) आत्महत्या (Suicide)—एड्स के रोगी कभी-कभी आत्महत्या भी कर लेते हैं। पीड़ा एवं असुविधा, शर्म एवं दुख से मुक्ति तथा अपने परिवार वालों को कष्टों से मुक्ति दिलाने के लिए भी रोगी आत्महत्या कर लेता है।

(10) सामाजिक प्रभाव (Social Impacts)—एड्स के रोगी को अनेक सामाजिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा एवं पहचान समाप्त हो जाती है, वह अपने आप को अयोग्य मानने लगता है। शरीर की बिगड़ी आकृति, घटते हुए वजन एवं ताकत के कारण भी वह अपने आप को अप्रतिष्ठित मानने लगता है।

एड्स के रोगी की नौकरी छूट जाती है या व्यवसाय समाप्त हो जाता है। कोई भी उसे अपने यहां काम देने को तैयार नहीं होता। इसका आर्थिक प्रभाव उस पर और उसके आश्रितों पर पड़ता है और उसकी आर्थिक दशा दयनीय हो जाती है। एक तरफ वह पैसा नहीं कमा पाता है और दूसरी तरफ रोग के इलाज के लिए पैसा चाहिए। वह पराश्रित हो जाता है।

एड्स के रोगी का धर्म की ओर झुकाव बढ़ जाता है। अपनी मृत्यु को निकट आते देखकर वह आध्यात्मिक विषयों में रुचि लेने लगता है। पाप व अपराध से क्षमा एवं मुक्ति के लिए वह ईश्वर एवं धर्म की शरण में चला जाता है। एड्स के कारण व्यक्ति अपने परिवार में ही अपनी प्रतिष्ठा और नियन्त्रण खो बैठता है। सामाजिक दृष्टि से व्यक्ति को कलंकित माना जाता है, लोग सोचते हैं कि उसने ऐसा कुछ अवश्य किया है जो अवांछनीय है। ऐसे व्यक्ति को लोग मकान किराए पर नहीं देते, मित्र मित्रता छोड़ देते हैं, उसका जीवन अकेलेपन से भर जाता है।



एड्स की रोकथाम (बचाव)
(PREVENTION OF AIDS)

एड्स को रोकने के लिए अभी तक कोई टीका, इन्जेक्शन या दवा आदि नहीं है, किन्तु विभिन्न उपायों द्वारा एच. आई. वी. विषाणुओं से बचकर एड्स से बचा जा सकता है। एड्स से बचने के या उसकी रोकथाम के प्रमुख उपाय निम्नांकित हैं :-

(1) सुरक्षित यौन सम्बन्ध (Safer Sex)—एड्स को फैलने से रोकने का सबसे उत्तम उपाय है, सुरक्षित यौन सम्बन्ध जिसमें निम्नांकित तथ्य आते हैं :

(a) यौन सम्बन्ध हेतु सिर्फ एक भागीदार रखना। जिस पुरुष के कई स्त्रियों से या जिस स्त्री के कई पुरुषों से यौन सम्बन्ध होते हैं उनमें एड्स के संक्रमण के भी अवसर अधिक होते हैं। अतः जीवन साथी के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति से यौन सम्बन्ध न रखें।

(b) ऐसे व्यक्ति से ही यौन सम्बन्ध हों जो एड्स संक्रमित न हो। इसके लिए दोनों पक्षों को अपने-अपने रक्त की जांच करा लेनी चाहिए और एच. आई. वी. नकारात्मक होने पर ही सम्बन्ध कायम करने चाहिए। कई पश्चिमी देशों में तो विवाह से पूर्व पति-पत्नी अपने रक्त की जांच कराते हैं तथा एच. आई. वी. नकारात्मक (Negative) होने पर ही विवाह करते हैं।

(c) यौन सम्बन्ध के समय निरोध का प्रयोग करें। एक निरोध का एक से अधिक बार प्रयोग न करें तथा उत्तम श्रेणी के लुब्रिकेटेड निरोध ही प्रयोग में लाएं।

(d) वेश्याओं से यौन सम्बन्ध न रखें।

(e) यौन रोगों से ग्रसित रोगी से यौन सम्बन्ध न रखें।

(f) पति-पत्नी परस्पर वफादारी बरतें जिससे कि वे एच. आई. वी. संक्रमित न हों।

(g) कुछ लोग यौन सम्बन्ध ही न रखने का सुझाव देते हैं।

(h) जब आपको खुले कटाव, घाव या अन्य कोई यौन-जनित रोग हो तो यौन सम्बन्धों को टाला जाए।

(2) एड्स से पीड़ित महिलाएं गर्भ धारण नहीं करें। गर्भ धारण करने से पूर्व अपने रक्त की जांच करा लें। यदि एड्स पीड़ित स्त्री गर्भवती हो जाती है तो उसे गर्भपात करा लेना चाहिए जिससे कि एड्स से पीड़ित बच्चे जन्म न लें।

(3) एच. आई. वी. संक्रमित व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त सुई व सिरेन्ज का प्रयोग न करें। यदि आवश्यक हो तो उसे 20 से 25 मिनट तक उबालकर शुद्ध करने पर ही प्रयोग मे लायें अथवा ऐसी सुई य सिरेन्ज का प्रयोग करे जो काम मे लेने के बाद फेंक दी जाती है (disposable needle and syringe)।

(4) मादक औषधियों के आदी व्यक्तियों द्वारा प्रयोग में ली गई सुई एवं सिरेन्ज का प्रयोग न करें।

(5) रक्त की आवश्यकता होने पर अनजान व्यक्तियों से रक्त न लें तथा रक्त की जांच करा कर रोग-मुक्त रक्त ही ले।

(6) अपने दन्त चिकित्सक एवं नाई द्वारा प्रयोग में लाए जाने वाले उपकरण जैसे जम्बूर, ब्लेड, उस्तरा, आदि की कीटाणुरहितता (Sterilization) की स्थिति को सुनिश्चित करने के बाद ही उपयोग में लाएं।

(7) त्वचा वेधनी उपकरणों (टॅट मेकर, कान छेदन उपकरण, एक्यूपंजर सुइयां) को दुबारा प्रयोग मे लाने से पूर्व शुद्ध कर लें।

(8) जीवन को तनाव मुक्त रखा जाए क्योंकि तनाव के कारण ही व्यक्ति अवैध सम्बन्धों एवं नशीली वस्तुओं का सेवन करता है। हम अपने जीवन को रचनात्मक कार्यों व समाज सेवा में लगाएं। हम अपनी समस्याओं की दूसरों से चर्चा करें एवं उनसे सलाह लें।

(9) एड्स से बचाव के लिए यह आवश्यक है कि इसके बारे में लोगों को सही जानकारी व शिक्षा प्रदान करें। इसके बारे में रेडियो, टी. वी., पोस्टर, फिल्म, अखबार, गीत-संगीत, वाद-विवाद प्रतियोगिता, भाषण, नाटक एवं निबन्ध प्रतियोगिता, आदि के द्वारा लोगो को सही जानकारी प्रदान करे।

(10) वेश्यालयों एवं अवैध यौन-सम्बन्धो के केन्द्रों पर कानूनी रोक लगायी जाए।

(11) एड्स से ग्रसित व्यक्ति का असम्मान न करें, उसे सहयोग दे एवं उसकी देख-रेख करें।

(12) एड्स के रोगी द्वारा काम में लाए गए बर्तन, कप, प्लेट, चाकू, छुरी, चम्मच, वस्त्र, आदि को साबून, डिटर्जेण्ट, क्लोरीन पानी आदि से साफ कर व उबाल कर ही काम ले, उन्हें सूर्य की रोशनी में सुखाएं। रोगी के टूथ ब्रुश, रेजर आदि का प्रयोग न करें।

(13) प्रत्येक माता-पिता, पड़ोसी, मित्र एवं रोग की जानकारी रखने वाले व्यक्ति का यह दायित्व है कि वे अपने बच्चों को तथा जिन्हें भी रोग की जानकारी चाहिए, उन्हें 'बचाव

के तरीकों' से अवश्य अवगत कराएं। एड्स की रोकथाम हम सभी की जिम्मेदारी
वचें, दूसरों को भी वचाएं। **एड्स से वचाव ही उपचार है।**

इस सव का आशय यह है कि एड्स से वचाव वहुत आसान है यदि व्यक्ति स
काबू पा सके और संयम से जीवन व्यतीत कर सके। हमें मिथ्याओं से परे हटकर वास्त
का अध्ययन करना चाहिए और एड्स के वारे में फैल रही गलत धारणाओं को निर्मूल क
चाहिए।

प्रश्न

1 एड्स क्या है? इसके प्रभावो की विवेचना कीजिए।
2 एड्स रोग के फैलाव एव वचाव की विवेचना कीजिए।
3. 'एड्स' पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।
4 एड्स रोग कैसे फैलता है? इसकी रोकथाम के उपाय वताइए।

11

भारत में स्त्रियों की समस्याएं

[PROBLEMS OF WOMEN IN INDIA]

भारत मे स्त्रियो की समस्याओं पर विचार करने के पूर्व स्त्रियो की बदलती प्रस्थिति पर भी संक्षेप में विचार कर लेना यहां उपयुक्त रहेगा। स्त्रियों की स्थिति से तात्पर्य यह है कि एक समाज विशेष में स्त्रियों का क्या स्थान है, उन्हें पुरुषों से ऊंचा, बराबर या नीचा, क्यों माना जाता है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि किसी संस्कृति में स्त्रियों के प्रति पुरुषों का क्या दृष्टिकोण पाया जाता है। इसके अलावा स्त्रियों की स्थिति के निर्धारण में इस बात का भी विशेष महत्व है कि उन्हें कौन-कौन से अधिकार प्राप्त हैं, विभिन्न क्षेत्रों में उनके क्या-क्या कार्य हैं तथा उनसे किन भूमिकाओं को अदा करने की आशा की जाती है। इन सभी बातों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति, विशेषतः हिन्दू समाज में काफी उच्च रही है। उन्हें शक्ति, ज्ञान और सम्पत्ति का प्रतीक माना गया है और इसी कारण दुर्गा, सरस्वती एवं लक्ष्मी के रूप में उनकी पूजा होती रही है। यहां पुरुष के अभाव में स्त्री को और स्त्री के अभाव में पुरुष को अपूर्ण माना गया है। इसी कारण हिन्दू समाज मे स्त्री को पुरुष की 'अर्धांगिनी' कहा गया है। यहां वैदिक और उत्तर-वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति पुरुषों के बराबर रही है तथा उन्हें पुरुषों के समान ही सब अधिकार प्राप्त रहे है। धीरे-धीरे पुरुष में अधिकार-प्राप्ति की लालसा बढ़ती गयी। परिणामस्वरूप स्मृतिकाल, धर्मशास्त्र काल तथा मध्यकाल में इनके अधिकार छिनते गये और इन्हें परतन्त्र, निस्सहाय और निर्बल मान लिया गया। परन्तु समय ने पलटा खाया। अंग्रेजी शासनकाल में देश में राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में जागृति आने लगी। समाज-सुधारकों एवं नेताओं का ध्यान स्त्रियों की स्थिति को सुधारने की ओर गया। यहां यह बात भी ध्यान मे रखनी है कि इस देश में स्त्रियों को अपनी स्थिति में सुधार लाने के लिए उतना प्रयत्न नहीं करना पड़ा जितना पश्चिमी देशों में करना पड़ा। यहां पिछले कुछ वर्षों में स्त्रियों की स्थिति में काफी सुधार हुआ है। हिन्दू समाज में स्त्रियों की स्थिति को समझने के लिए यहां हमें विभिन्न कालो में स्त्रियों की स्थिति पर विचार करना होगा।

स्त्रियों की स्थिति : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
(STATUS OF WOMEN : HISTORICAL PERSPECTIVE)

(1) वैदिक काल

इस काल में स्त्री-पुरुषो की स्थिति में समानता थी। इस समय लडकियो का उ संस्कार होता था और ये भी ब्रह्मचर्य आश्रम में लड़कों के समान ही शिक्षा प्राप्त करतं इस काल मे ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि उस समय लडके-लड़ कि शिक्षा साथ-साथ होती थी, सह-शिक्षा को बुरा नहीं माना जाता था। इस युग मे अनं विदुषी महिलाएं हुई है। घोषा, अपाला, विश्वम्भरा, आदि विदुषी महिलाओं ने वैदिक ऋच एवं भजनो की रचना की थी। गार्गी व मैत्रेयी ऋषि महिलाएं थी। इस काल मे लड़कियों का विवाह साधारणत' युवावस्था में ही होता था, वाल-विवाह का प्रचलन नहीं था। लड़कियों को अपना जीवन-साथी चुनने की स्वतन्त्रता थी। विधवा अपनी इच्छानुसार पुनर्विवाह कर सकती थी या 'नियोग' द्वारा सन्तान उत्पन्न कर सकती थी। पत्नी के रूप मे स्त्री की स्थिति क उन्नत थी। अथर्ववेद में कहा गया है कि नववधू—तू जिस घर में जा रही है, वहां की साम्राज्ञी है। तेरे सास-ससुर, देवर तथा अन्य व्यक्ति तुझे साम्राज्ञी मानते हुए तेरे शासन आनन्दित हो। धार्मिक कार्यों के सम्पादन में स्त्री-पुरुष के अधिकार समान थे। धार्मिक अनुष्ठानों को सम्पन्न करने के लिए पत्नी का होना आवश्यक था। इस काल में परदा-प्रथा नही थी और स्त्रियों को सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करने का अधिकार प्राप्त था। स्त्रियों की रक्षा करना पुरुष का सबसे बडा धर्म माना जाता था और उनका अपमान करना पाप। इस काल में परिवार का मुखिया ही पारिवारिक सम्पत्ति का स्वामी या संरक्षक माना जाता था, अन्य पुरुषो व स्त्रियों को सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार प्राप्त नही थे। इस समय भी पुत्री के बजाय पुत्र के ज को विशेष महत्व दिया जाता था परन्तु ऐसा धार्मिक दायित्वों को पूरा करने की दृष्टि से था। सारांश में यह कहा जा सकता है कि इस काल में स्त्रियों को पुरुषों के समान ही अधिकार प्राप्त थे और दोनों की स्थिति सामान्यतः समान ही थी। समाज में स्त्रियों को आदर की दृष्टि से देखा जाता था।

(2) उत्तर-वैदिक काल

ईसा के 600 वर्ष पूर्व से ईसा में 300 वर्ष बाद तक का काल उत्तर-वैदिक काल के नाम से जाना जाता है। इस काल के प्रारम्भिक वर्षों मे महाभारत की रचना हुई। महाभारत का एक संक्रान्ति-काल था जिसमें नियमों की स्थिति के सम्बन्ध में विरोधी मत पाये जाते हैं। अनुशासन पर्व मे भीष्म पितामह ने कहा है कि स्त्री को सदैव पूज्य मानकर उससे स्नेह का व्यवहार किया जाना आवश्यक है। जहां स्त्रियों का आदर होता है, वहां देवताओ का निवास होता है तथा इनकी अनुपस्थिति में सभी कार्य पुण्यरहित हो जाते हैं। इस समय तक स्वयंवर प्रथा प्रचलित थी और स्त्रियों को वेदों के अध्ययन की आज्ञा थी। खुशहाल परिवारों में लड़कियों को उचित मात्रा में शिक्षा प्रदान की जाती थी। स्पष्ट है कि इस समय तक स्त्रियों की स्थिति सन्तोषजनक थी। इसी काल में जैन और बौद्ध धर्म का प्रभाव बढ़ा। इन धर्मों में स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखा गया। अनेक स्त्रियां धर्म-प्रचार के कार्य में लगी हुई थी। इन धर्मों के पतन के साथ ही स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आने लगी। मनुस्मृति में सर्वप्रथम स्त्रियों की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाया गया। उन्हें वेदों को पढ़ने और यज्ञ करने से रोक दिया गया।

ाथ ही उन्हें धार्मिक व सामाजिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया। विधवा-विवाह पर तिवन्ध लगा दिया गया और लड़की के रजस्वला होने के पूर्व उनके विवाह का विधान किया या। पति की आज्ञा का पालन करना और पारिवारिक दायित्वों को निभाना ही उसका क़मात्र कार्य रह गया। अब इनके लिए उपनयन संस्कार की व्यवस्था भी समाप्ति कर दी यी। इन तथ्यों से ऐसा ज्ञात होता है कि इस काल के अन्तिम वर्षो में स्त्रियों पर सिद्धान्त प में कई नियन्त्रण लगा दिये गये परन्तु वे व्यवहार रूप में अपने अधिकारों का उपभोग रती रहीं।

3) धर्मशास्त्र काल

ईसा के पश्चात् तीसरी शताब्दी से 11वीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक का काल धर्मशास्त्र काल ा नाम से जाना जाता है। यह युग सामाजिक व धार्मिक संकीर्णता का युग था। अब स्त्रियां परतन्त्र, निस्सहाय एवं निर्वल मानी जाने लगी थी। स्त्रियों को सम्पत्ति के अधिकार से वंचित कर दिया गया। उन्हें मानसिक रूप से दुर्वल माना गया। इस समय लड़की के विवाह की आयु 10 वर्ष और कहीं-कहीं 12 वर्ष थी। लड़की के लिए वर का चुनाव उसके माता-पिता द्वारा किया जाता था। इस काल में बहुपत्नी विवाह का प्रचलन वढ़ा तथा विधवा-पुनर्विवाह पर रोक लगा दी गयी। इस समय पातिव्रत्य एवं सतीत्व का एकतरफा आदर्श प्रस्तुत किया गया। इस काल में स्त्रियो की स्थिति को गिराने में शास्त्रकारों ने भी प्रमुख भूमिका निभायी। मनु ने स्वयं कहा है कि स्त्रियां कभी भी स्वतन्त्र रहने के योग्य नहीं हैं। वाल्यावस्था मे उन्हें पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रहना चाहिए। इस काल के अन्तिम वर्षों में तो स्त्री को वस्तु के रूप में समझा जाने लगा और उसकी स्वतन्त्रता पर कठोर प्रतिवन्ध लगा दिये गये। पति को परमेश्वर के रूप में प्रतिष्ठित किया गया और सती होना आदर्श माना गया।

(4) मध्य काल

मुगल शासकों के काल को मध्य काल के नाम से जाना जाता है। 11वीं शताब्दी से ही भारतीय समाज पर मुसलमानों का प्रभाव वढ़ने लगा था। इस काल में हिन्दू धर्म एवं संस्कृति की रक्षा के नाम पर स्त्रियों पर अनेक प्रतिवन्ध लगाये गये, उन्हें अधिकारों से वंचित कर दिया गया और उन पर कई नियन्त्रण लागू किये गये। इस समय स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं रहा। अब 5 या 6 वर्ष तक की अबोध कन्याओं का भी विवाह किया जाने लगा। रक्त की शुद्धता को बनाये रखने और स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा के उद्देश्य से बाल-विवाहों को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया गया। इस काल में परदा-प्रथा प्रचलित हुई। स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र केवल घर की चहारदीवारी तक सीमित हो गया। अब विधवाओं को पुनर्विवाह का अधिकार नहीं था। सती-प्रथा को बढ़ावा दिया गया और कई विधवाओं को तो सती होने के लिए बाध्य तक किया जाने लगा। पुरुष ने जहां विधवाओं को सब प्रकार के अधिकारों से वंचित कर सती होने तक के लिए विवश किया, वहां वह स्वयं एक पत्नी के होते हुए भी दूसरी और तीसरी स्त्री से विवाह करने लगा। इस काल में स्त्रियां पूर्णतः परतन्त्र हो चुकी थीं। पारिवारिक, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से स्त्री पुरुष पर निर्भर हो गयी। इस समय पति की इच्छाओं को पूरा करना ही स्त्री का एकमात्र धर्म रह गया। इस काल में स्त्री के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार में कुछ सुधार अवश्य हुआ। उन लड़कियों को पिता

की सम्पति का उत्तराधिकार मिलने लगा जिनके कोई भाई नहीं था। इस काल मे धर्म के न पर स्त्रियो का सर्वाधिक शोषण हुआ। उन्हें चेतना शून्य, पुरुष की कृपा पर आश्रित और निर्बल बना दिया गया सती-प्रथा के पुनः प्रचलन, पुनर्विवाह पर प्रतिबन्ध, परदा प्रथा के विस्तार एवं बहुविवाह की व्यापकता ने उसकी स्थिति को बहुत गिरा दिया।

(5) ब्रिटिश काल

18वी शताब्दी के अन्तिम वर्षो से स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूर्व तक का समय ब्रिटिश काल के नाम से जाना जाता है। अंग्रेजो ने यहां के लोगों के धार्मिक और सामाजिक जीवन में किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप नही करने की नीति अपनायी। इस नीति के कारण उन्होंने स्त्रियो की स्थिति को सुधारने की दृष्टि से कोई प्रयत्न नहीं किया। इस काल में विभिन्न क्षेत्रों में स्त्रियो की निम्नांकित निर्योग्यताएं (समस्याए) बनी रही :

(1) **सामाजिक क्षेत्र** मे स्त्रियो को कोई अधिकार प्राप्त नहीं थे। इन्हे शिक्षा प्राप्त करने का भी अधिकार नहीं था। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूर्व हमारे यहां स्त्रियों में साक्षरता 6 प्रतिशत से भी कम थी। बाल-विवाह, सती-प्रथा एवं परदा-प्रथा के प्रचलन ने स्त्री-शिक्षा मे विशेष बाधा पहुंचाई। स्त्रियो के सम्बन्धो का क्षेत्र पिता एवं पति के परिवार तक ही सीमित था। धार्मिक कर्तव्यो का पालन ही इनके जीवन का मुख्य कार्य रह गया।

(2) **पारिवारिक क्षेत्र** में स्त्रियों को कुछ भी अधिकार प्राप्त नहीं थे। सब प्रकार के अधिकार पुरुष 'कर्त्ता' में ही केन्द्रित थे। स्त्रियो का मुख्य कार्य सन्तानोत्पत्ति एवं परिवार-जनो की सेवा करना था। विवाह-विच्छेद के अधिकार के नही होने से पति के दुश्चरित्र, क्रूर और अत्याचारी होने पर भी पत्नी को उसके साथ अनुकूलन करना ही पडता था।

(3) **आर्थिक क्षेत्र** मे स्त्रियों को सन् 1937 के पूर्व विशेषाधिकार प्राप्त नही थे। इन्हें अधिक-से-अधिक भरण-पोषण का अधिकार प्राप्त था। स्त्री-धन के अतिरिक्त इन्हें और कोई सम्पति सम्बन्धी अधिकार प्राप्त नहीं था। स्त्री स्वयं वस्तु या सम्पति के रूप मे समझी जाती थी। स्त्री के द्वारा किसी प्रकार का कोई आर्थिक कार्य करना उसकी कुलीनता एवं स्त्रीत्व के विरुद्ध माना जाता था। आर्थिक दृष्टि से कोई काम करना उसकी कुलीनता अनुचित और अनैतिक समझा जाता था। **श्री पणिक्कर** ने लिखा है कि हिन्दू समाज में पुत्री के अधिकार को कानून द्वारा समाप्त कर दिया गया, पत्नी पति के परिवार का एक अंग बन गयी और विधवाओं को मृत समान मान लिया गया। इस काल मे स्त्रियो को पुरुषों की दया पर निर्भर रहना पडा।

(4) **राजनीतिक क्षेत्र** में किसी गतिविधि में स्त्रियो के भाग लेने का प्रश्न ही नही उठता। जब देश परतन्त्र था और पुरुष अंग्रेजों के गुलाम थे तो स्त्रियां राजनीति में भाग कैसे ले सकती थीं। उनका सम्पूर्ण जीवन तो घर की चहारदीवारी में ही बीतता। महात्मा गांधी द्वारा समय-समय पर चलाये जाने वाले आन्दोलन में कुछ स्त्रियो ने भाग अवश्य लिया परन्तु उच्च समझे जाने वाले परिवारो में इसका विरोध किया गया। सर्वप्रथम सन् 1937 मे पति की सम्पत्ति एवं शिक्षा के आधार पर कुछ स्त्रियों को वोट देने का अधिकार प्राप्त हुआ।

स्त्रियों की निम्न स्थिति के लिए उत्तरदायी कारक

ईसा के 300 वर्ष पूर्व से स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूर्व तक स्त्रियों की स्थिति में अग्रलिखित कारणो से गिरावट आती गयी :

(1) स्त्री-शिक्षा की उपेक्षा—अनेक सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक कारणो से स्त्रियो को शिक्षा देना अनावश्यक समझा गया। यह माना जाने लगा कि स्त्रियो को नौकरी नही करनी है, अतः उन्हें शिक्षा दिलाने की कोई आवश्यकता नही है। शिक्षा के अभाव मे स्त्रिया अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं रह सकीं और एक-एक करके उनके सभी अधिकार छिनते गये। अशिक्षा के कारण वे अन्धविश्वासों, कुसंस्कारो और रूढियो मे इस प्रकार जकड गयी कि अब उनमें चेतना नाम की कोई वस्तु शेष नही रह गयी। परिणाम यह हुआ कि पुरुषो की तुलना में स्त्रियों की स्थिति काफी निम्न हो गयी।

(2) कन्यादान का आदर्श—हिन्दू विवाह से सम्बन्धित कन्यादान के आदर्श ने भी स्त्रियो की स्थिति को निम्न करने मे योग दिया। प्रारम्भ में ब्राह्म-विवाह के अन्तर्गत योग्य वर को ढूंढ कर पिता वस्त्र और आभूषणों से सुसज्जित अपनी लडकी को दान के रूप मे उसे देता था। उस समय कन्यादान का महत्व योग्य वर को ढूंढने से सम्बन्धित था। धीरे-धीरे स्मृतिकाल के बाद कन्यादान की धारणा के अन्तर्गत कन्या को एक वस्तु के रूप मे समझ लिया गया। अब यह माना जाने लगा कि जो वस्तु दान में दी जा चुकी है, उसे न तो वापस लिया जा सकता है और न ही पुनः उसका दान किया जा सकता है। जिस व्यक्ति ने कन्यादान के रूप मे उन्हे ग्रहण किया है, वह जैसा चाहे वैसा ही उसका उपयोग कर सकता है। इस प्रकार के विश्वासों का परिणाम यह हुआ कि स्त्रियों के अधिकार छिनते गये।

(3) बाल-विवाह—स्मृतिकार बाल-विवाह के पक्ष मे थे। उन्होने कम आयु मे ही लडकी का विवाह कर देना माता-पिता का धार्मिक कर्तव्य माना। परिणाम यह हुआ कि लडकियों के लिए विवाह संस्कार ने ही उपनयन संस्कार का स्थान ले लिया और लडकियों के लिए शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं रही। ऐसी स्थिति में उन्हें अपने व्यक्तित्व के विकास का अवसर नहीं मिला। वे पुरुष की दासी बन कर रह गयीं और किसी भी रूप मे उनका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नही रहा। घर की चहारदीवारी मे सन्तानों का पालन-पोषण और अन्य सदस्यों की सेवा करना ही उनका कार्य रह गया। परिणाम यह हुआ कि उनकी स्थिति गिरती गयी।

(4) वैवाहिक कुरीतियां—स्त्रियो की स्थिति को निम्न बनाने मे अनेक वैवाहिक कुरीतियों जैसे, कुलीन विवाह, अन्तर्विवाह, विधवा-विवाह पर प्रतिबन्ध, दहेज-प्रथा, आदि का काफी योग रहा है। कुलीन विवाह की प्रथा के कारण सामान्य स्थिति वाली लड़कियो के माता-पिता को आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पडा। दहेज की राशि बढ़ जाने से लडकियों को भार के रूप में देखा जाने लगा। अन्तर्विवाह (Endogamy) के कारण प्रत्येक हिन्दू के लिए अपनी ही जाति या उपजाति में विवाह करना आवश्यक हो गया। इससे जीवन-साथी के चुनाव का क्षेत्र काफी सीमित हो गया। स्त्री-शिक्षा के अभाव तथा बाल-विवाह के प्रचलन के कारण जीवन-साथी के चुनाव में लडकियों की इच्छा या अनिच्छा का कोई प्रश्न नहीं रहा। पति चाहे दुश्चरित्र और कितना ही क्रूर और अत्याचारी क्यो न हो, पत्नी को उसे परमेश्वर मानकर उसकी पूजा करनी पड़ती थी। वह किसी भी स्थिति में विवाह-विच्छेद नहीं कर सकती थी। विधवाओं को पुनर्विवाह की आज्ञा नहीं दी गयी और पुरुष अनेक स्त्रियो के साथ विवाह करने लगा जिससे बहुपत्नी विवाह का प्रचलन बढ़ा। इन सभी वैवाहिक कुप्रथाओं ने स्त्रियों की स्थिति को गिराने मे काफी योग दिया।

(5) संयुक्त परिवार व्यवस्था—संयुक्त परिवार प्रणाली ने स्त्रियो की स्थिति को गिराने में योग दिया है। संयुक्त परिवार में स्त्रियों को कोई स्वतन्त्रता नहीं है।

उनके कोई आर्थिक अधिकार होते हैं। उन्हें तो पुरुषो की कृपा पर निर्भर रहने वाली आश्रित नारियों के रूप में जीवन बिताना पडता है। परिवार में वयोवृद्ध स्त्री की आज्ञा का पालन और सभी सदस्यों की सेवा करना ही उनका प्रमुख धर्म माना गया। संयुक्त परिवार ने स्त्रियों को चेतना-शून्य बनाकर सब अधिकारों से वंचित कर दिया।

(6) **पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता**—पति ही पत्नी का भरण-पोषण करने वाला माना गया है और इसी कारण उसे 'भर्ता' कहा गया है। ऐसी स्थिति मे पत्नी का अपने पति पर आश्रित होना स्वाभाविक ही है। उत्तर-वैदिक काल के बाद स्त्रियों के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार समाप्त कर दिये गये। उन्हे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पुरुषों पर निर्भर रहना पड़ा। पति पर आर्थिक निर्भरता के कारण पत्नी किसी भी अवस्था में पति से सम्बन्ध-विच्छेद करने या परिवार की सदस्यता छोड़ने की बात सोच भी नही सकती थी। पुरुषों पर इस आर्थिक निर्भरता का परिणाम यह हुआ कि स्त्रियों की स्थिति निम्न होती गयी।

(7) **मुसलमानो के आक्रमण**—भारत में मुसलमानों के आक्रमण और राज्य स्थापना के पश्चात् स्त्रियो की स्थिति में तेजी से गिरावट आयी। मुस्लिम आक्रमणकारियों से हिन्दू धर्म की रक्षा हेतु ब्राह्मणों ने सामाजिक नियमों को कठोर बनाने और उन्हे कठोरता के साथ लागू करने का प्रयत्न किया। मुसलमानों में स्त्रियों की कमी थी। अतः वे हिन्दू स्त्रियो और विधवाओं तक से विवाह करना चाहते थे। इस स्थिति से बचने के लिए हिन्दू स्त्रियों पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये गये। बाल-विवाहों को प्रोत्साहित किया गया, विधवा-पुनर्विवाह पर नियन्त्रण लगाया गया, परदा-प्रथा लागू की गई और सतीत्व के आदर्श को काफी बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत किया गया। स्त्रियों को घर से बाहर नहीं निकलने दिया जाता था। ऐसी स्थिति में लड़कियो के शिक्षा प्राप्त करने की कोई सम्भावना नहीं रही। इन सब परिस्थितियों ने स्त्रियों की स्थिति को गिराने मे योग दिया।

(8) **अशिक्षा**—स्त्रियों में अशिक्षा के कारण भी समाज में उनकी स्थिति निम्न हो ग[ई]। अशिक्षा के कारण वे रूढ़िवादी, धर्मान्ध एवं अन्धविश्वासी हो गयीं और सामाजिक कुरीति[यों] में जकड़ गयी। उन्हें इस प्रकार के धार्मिक आदेश दिये गये जिससे वे ऊपर न उठ स[कें]। पति परमेश्वर, पतिव्रत, कन्यादान और सतीत्व के आदर्श उसे बचपन से ही सिखाये [गये] और स्त्री का जीवन घर की चहारदीवारी तक ही सीमित हो गया।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् स्त्रियों की स्थिति

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद पिछले करीब 50 वर्षों में स्त्रियों की स्थिति में क्रान्तिक[ारी] परिवर्तन आया है। अब उनकी स्थिति में काफी सुधार हुआ है। डॉ. श्रीनिवास के अनुस[ार] पश्चिमीकरण, लौकिकीकरण तथा जातीय गतिशीलता ने स्त्रियों की सामाजिक-आर्थिक स्थि[ति] को उन्नत करने में काफी योग दिया है। वर्तमान में स्त्री-शिक्षा का प्रसार हुआ है। कई स्त्रि[याँ] औद्योगिक संस्थाओं और विभिन्न क्षेत्रों में नौकरी करने लगी हैं। अब वे आर्थिक दृष्टि [से] आत्मनिर्भर होती जा रही है। उनके पारिवारिक अधिकारों में वृद्धि हुई है। अनेक सामाजिक अधिनियमों ने स्त्रियों की निर्योग्यताओं को समाप्त करने और उन्हें सामाजिक कुरीतियों से छुटकारा दिलाने में योग दिया है। अब स्त्रियों को अपने व्यक्तित्व के विकास हेतु काफी [अवसर प्राप्त] हैं। वर्तमान में स्त्रियों की स्थिति में अग्र क्षेत्रों में महत्वपूर्ण परिवर्तन आए हैं :

(1) स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति—स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् स्त्री-शिक्षा का व्यापक प्रसार हुआ है। इसके पूर्व न तो माता-पिता लड़कियो को शिक्षा दिलाने के पक्ष में ही थे और न ही शिक्षा की दृष्टि से समुचित सुविधाएं उपलब्ध थीं। सन् 1882 में लिखी-पढी स्त्रियों की कुल संख्या 2,054 थी जो सन् 1971 में 5 करोड़ 94 लाख तथा 1981 में 7 करोड़ 91.5 लाख से अधिक हो गयी। अब यह संख्या 10 करोड से भी अधिक हो चुकी है। 1991 की जनगणना के अनुसार स्त्रियों में साक्षरता का प्रतिशत 39 29 तथा पुरुषो मे 64 13 है। अन्य शब्दों में, एक हजार स्त्रियों में से साक्षर स्त्रियों की संख्या 394 है। वर्तमान में लडकिया व्यावसायिक शिक्षा भी ग्रहण कर रही हैं। शिक्षण से सम्बन्धित ट्रेनिंग कॉलेजो एवं मेडिकल कॉलेजोंमें लड़कियों की संख्या प्रति वर्ष बढ़ती ही जा रही है। वे अब कला, विज्ञान, वाणिज्य, गृहविज्ञान, शिल्पकला और संगीत की शिक्षा भी प्राप्त कर रही है। स्त्री-शिक्षा के व्यापक प्रसार ने स्त्रियों को अपने व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के समुचित अवसर प्रदान किए है, उन्हे रूढ़िवादी विचारों से काफी सीमा तक मुक्त किया है, परदा-प्रथा को कम किया है तथा बाल-विवाहों के प्रचलन को घटाने में योग दिया है। [6]

(2) आर्थिक क्षेत्र में प्रगति—ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली करीब 75 प्रतिशत स्त्रियां आर्थिक दृष्टि से कोई-न-कोई कार्य करती रही है। नगरों मे भी निम्न वर्ग की स्त्रियां घरेलू कार्यों और उद्योगो के माध्यम से कुछ-न-कुछ कमाती रही हैं। साधारणतः मध्यम और उच्च वर्ग की स्त्रियों द्वारा आर्थिक दृष्टि से कोई काम करना बुरा समझा जाता रहा है, लेकिन औद्योगीकरण एवं आधुनिकीकरण ने स्त्रियों की पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता को कम करने और उनकी स्थिति को उन्नत करने में योग दिया है। शिक्षा के व्यापक प्रसार, नयी-नयी वस्तुओं के आकर्षण, उच्च जीवन विताने की बलवती इच्छा तथा बढ़ती हुई कीमतों ने अनेक मध्यम एवं उच्च वर्ग की स्त्रियों को नौकरी या आर्थिक दृष्टि से कोई-न-कोई काम करने के लिए प्रेरित किया। अब मध्यम वर्ग की स्त्रियां उद्योगो, दफ्तरों, शिक्षण-संस्थाओं, अस्पतालों, समाज-कल्याण केन्द्रों एवं व्यापारिक संस्थाओं में काम करने लगी हैं। वर्तमान में भारत में विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाली महिलाओं का कुल कार्यशील जनसंख्या में प्रतिशत 19.77 है। 1956 के हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम ने हिन्दू स्त्रियों को पत्नी, बहिन एवं मां के रूप में पारिवारिक सम्पत्ति में अधिकार प्रदान किया है। सरकार ने स्त्रियों के सामाजिक-आर्थिक कल्याण के लिए कई नयी योजनाएं बनायी हैं। परिणामस्वरूप उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है।

(3) राजनीतिक चेतना में वृद्धि—स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् स्त्रियों की राजनीतिक चेतना में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। जहां सन् 1937 में महिलाओं के लिए 41 स्थान सुरक्षित थे, वहां केवल 10 महिलाओं ने ही चुनाव लड़ा। भारत के नवीन संविधान के अनुसार सन् 1950 में स्त्रियों को पुरुषों के बराबर नागरिक अधिकार प्रदान किए गए। 1952 में 23 स्त्रियां लोकसभा के लिए चुनी गयी थीं जबकि 1984 के चुनावों में 65 स्त्रियों ने सांसद के रूप में चुनाव मे सफलता प्राप्त की। 1989 एवं 1991 के लोकसभा चुनाव में स्त्री सांसदों की संख्या 1984 की तुलना में कम हुई है, परन्तु उनकी राजनीतिक चेतना काफी बढ़ी हुई है। पार्लियामेण्ट और विधानमण्डलों में स्त्री प्रतिनिधियों की संख्या और विभिन्न गतिविधियों में उनकी सहभागिता, राज्यपाल, मन्त्री, मुख्यमन्त्री और यहां तक कि प्रधानमन्त्री तक के रूप में उनकी भूमिकाओं

उनके कोई आर्थिक अधिकार होते हैं। उन्हे तो पुरुषो की कृपा पर निर्भर रहने वाली आश्रित नारियो के रूप मे जीवन बिताना पडता है। परिवार मे वयोवृद्ध स्त्री की आज्ञा का पालन और सभी सदस्यों की सेवा करना ही उनका प्रमुख धर्म माना गया। संयुक्त परिवार ने स्त्रियों को चेतना-शून्य बनाकर सब अधिकारों से वंचित कर दिया।

(6) पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता—पति ही पत्नी का भरण-पोषण करने वाला माना गया है और इसी कारण उसे 'भर्ता' कहा गया है। ऐसी स्थिति में पत्नी का अपने पति पर आश्रित होना स्वाभाविक ही है। उत्तर-वैदिक काल के बाद स्त्रियो के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार समाप्त कर दिये गये। उन्हे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पुरुषों पर निर्भर रहना पड़ा। पति पर आर्थिक निर्भरता के कारण पत्नी किसी भी अवस्था में पति से सम्बन्ध-विच्छेद करने या परिवार की सदस्यता छोडने की बात सोच भी नहीं सकती थी। पुरुषों पर इस आर्थिक निर्भरता का परिणाम यह हुआ कि स्त्रियो की स्थिति निम्न होती गयी।

(7) मुसलमानों के आक्रमण—भारत में मुसलमानों के आक्रमण और राज्य स्थापना के पश्चात् स्त्रियों की स्थिति में तेजी से गिरावट आयी। मुस्लिम आक्रमणकारियों से हिन्दू धर्म की रक्षा हेतु ब्राह्मणों ने सामाजिक नियमो को कठोर बनाने और उन्हें कठोरता के साथ लागू करने का प्रयत्न किया। मुसलमानों मे स्त्रियो की कमी थी। अतः वे हिन्दू स्त्रियों और विधवाओं तक से विवाह करना चाहते थे। इस स्थिति से बचने के लिए हिन्दू स्त्रियों पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये गये। बाल-विवाहों को प्रोत्साहित किया गया, विधवा-पुनर्विवाह पर नियन्त्रण लगाया गया, परदा-प्रथा लागू की गई और सतीत्व के आदर्श को काफी बढ़ा-चढा कर प्रस्तुत किया गया। स्त्रियों को घर से बाहर नहीं निकलने दिया जाता था। ऐसी स्थिति में लड़कियो के शिक्षा प्राप्त करने की कोई सम्भावना नहीं रही। इन सब परिस्थितियो ने स्त्रियों की स्थिति को गिराने में योग दिया।

(8) अशिक्षा—स्त्रियो में अशिक्षा के कारण भी समाज में उनकी स्थिति निम्न हो गयी। अशिक्षा के कारण वे रूढ़िवादी, धर्मान्ध एवं अन्धविश्वासी हो गयीं और सामाजिक कुरीतियों में जकड़ गयीं। उन्हें इस प्रकार के धार्मिक आदेश दिये गये जिससे वे ऊपर न उठ सकें, पति परमेश्वर, पतिव्रत, कन्यादान और सतीत्व के आदर्श उसे बचपन से ही सिखाये गये और स्त्री का जीवन घर की चहारदीवारी तक ही सीमित हो गया।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् स्त्रियों की स्थिति

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद पिछले करीब 50 वर्षों में स्त्रियों की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया है। अब उनकी स्थिति में काफी सुधार हुआ है। डॉ. श्रीनिवास के अनुसार, पश्चिमीकरण, लौकिकीकरण तथा जातीय गतिशीलता ने स्त्रियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को उन्नत करने में काफी योग दिया है। वर्तमान में स्त्री-शिक्षा का प्रसार हुआ है। कई स्त्रियां औद्योगिक संस्थाओं और विभिन्न क्षेत्रों में नौकरी करने लगी हैं। अब वे आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होती जा रही हैं। उनके पारिवारिक अधिकारों में वृद्धि हुई है। अनेक सामाजिक अधिनियमों ने स्त्रियों की निर्योग्यताओं को समाप्त करने और उन्हें सामाजिक कुरीतियों से छुटकारा दिलाने में योग दिया है। अब स्त्रियों को अपने व्यक्तित्व के विकास हेतु काफी सुविधाएं प्राप्त हैं। वर्तमान में स्त्रियों की स्थिति में अग्र क्षेत्रों में महत्वपूर्ण परिवर्तन आए हैं :

(1) स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति—स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् स्त्री-शिक्षा का व्यापक प्रसार हुआ है। इसके पूर्व न तो माता-पिता लडकियों को शिक्षा दिलाने के पक्ष में ही थे और न ही शिक्षा की दृष्टि से समुचित सुविधाएं उपलब्ध थी। सन् 1882 मे लिखी-पढी स्त्रियों की कुल संख्या 2,054 थी जो सन् 1971 में 5 करोड़ 94 लाख तथा 1981 मे 7 करोड़ 91.5 लाख से अधिक हो गयी। अव यह सख्या 10 करोड से भी अधिक हो चुकी है। 1991 की जनगणना के अनुसार स्त्रियों में साक्षरता का प्रतिशत 39 29 तथा पुरुषो मे 64 13 है। अन्य शब्दों में, एक हजार स्त्रियो में से साक्षर स्त्रियों की संख्या 394 है। वर्तमान में लड़कियां व्यावसायिक शिक्षा भी ग्रहण कर रही हैं। शिक्षण से सम्बन्धित ट्रेनिंग कॉलेजों एवं मेडिकल कॉलेजोमें लड़कियों की संख्या प्रति वर्ष वढती ही जा रही है। वे अब कला, विज्ञान, वाणिज्य, गृहविज्ञान, शिल्पकला और संगीत की शिक्षा भी प्राप्त कर रही है। स्त्री-शिक्षा के व्यापक प्रसार ने स्त्रियों को अपने व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के समुचित अवसर प्रदान किए हैं, उन्हें रूढ़िवादी विचारों से काफी सीमा तक मुक्त किया है, परदा-प्रथा को कम किया है तथा वाल-विवाहों के प्रचलन को घटाने में योग दिया है।

(2) आर्थिक क्षेत्र में प्रगति—ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली करीव 75 प्रतिशत स्त्रियां आर्थिक दृष्टि से कोई-न-कोई कार्य करती रही है। नगरों में भी निम्न वर्ग की स्त्रियां घरेलू कार्यों और उद्योगो के माध्यम से कुछ-न-कुछ कमाती रही हैं। साधारणतः मध्यम और उच्च वर्ग की स्त्रियों द्वारा आर्थिक दृष्टि से कोई काम करना बुरा समझा जाता रहा है, लेकिन औद्योगीकरण एवं आधुनिकीकरण ने स्त्रियों की पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता को कम करने और उनकी स्थिति को उन्नत करने में योग दिया है। शिक्षा के व्यापक प्रसार, नयी-नयी वस्तुओं के आकर्षण, उच्च जीवन विताने की बलवती इच्छा तथा बढ़ती हुई कीमतों ने अनेक मध्यम एवं उच्च वर्ग की स्त्रियों को नौकरी या आर्थिक दृष्टि से कोई-न-कोई काम करने के लिए प्रेरित किया। अव मध्यम वर्ग की स्त्रियां उद्योगों, दफ्तरों, शिक्षण-सस्थाओं, अस्पतालों, समाज-कल्याण केन्द्रों एवं व्यापारिक संस्थाओं में काम करने लगी है। वर्तमान में भारत में विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाली महिलाओं का कुल कार्यशील जनसंख्या में प्रतिशत 19.77 है। 1956 के **हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम** ने हिन्दू स्त्रियों को पत्नी, वहिन एवं मां के रूप में पारिवारिक सम्पत्ति में अधिकार प्रदान किया है। सरकार ने स्त्रियों के सामाजिक-आर्थिक कल्याण के लिए कई नयी योजनाएं बनायी हैं। परिणामस्वरूप उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है।

(3) राजनीतिक चेतना में वृद्धि—स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् स्त्रियों की राजनीतिक चेतना में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। जहां सन् 1937 में महिलाओं के लिए 41 स्थान सुरक्षित थे, वहां केवल 10 महिलाओं ने ही चुनाव लड़ा। भारत के नवीन संविधान के अनुसार सन् 1950 में स्त्रियों को पुरुषों के वरावर नागरिक अधिकार प्रदान किए गए। 1952 मे 23 स्त्रियां लोकसभा के लिए चुनी गयी थीं जबकि 1984 के चुनावों में 65 स्त्रियों ने सांसद के रूप में चुनाव मे सफलता प्राप्त की। 1989 एवं 1991 के लोकसभा चुनाव में स्त्री सांसदों की संख्या 1984 की तुलना में कम हुई है, परन्तु उनकी राजनीतिक चेतना काफी बढी हुई है। पार्लियामेण्ट और विधानमण्डलों में स्त्री प्रतिनिधियों की संख्या और विभिन्न गतिविधियों में उनकी सहभागिता, राज्यपाल, मन्त्री, मुख्यमन्त्री और यहां तक कि प्रधानमन्त्री तक के रूप में उनकी भूमिकाओं

से स्पष्ट है कि इस देश मे स्त्रियो में राजनीतिक चेतना दिनो-दिन बढ़ती ही जा रही है। अब तक हुए विधान-मण्डलो एव ससद के चुनावों से भी ज्ञात होता है कि महिलाओं में अपने वोट का स्वतन्त्र रूप से उपयोग करने की प्रवृत्ति बढती जा रही है। भारतीय महिलाओ ने राज्यपालो, कैबिनेट स्तर के मन्त्रियो और राजदूतों के रूप मे यश प्राप्त किया है। स्पष्ट है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद स्त्रियो की राजनीतिक चेतना में काफी वृद्धि हुई और उनकी स्थिति मे सुधार हुआ है।

(4) **सामाजिक जागरूकता में वृद्धि**—पिछले कुछ वर्षो में स्त्रियो की सामाजिक जागरूकता मे काफी वृद्धि हुई है। अब स्त्रियां परदा-प्रथा को बेकार समझने लगी हैं। अब बहुत-सी स्त्रियां घर की चहारदीवारी के बाहर खुली हवा मे सांस ले रही है। आजकल कई स्त्रियों के विचारों और दृष्टिकोणो मे इतना अधिक परिवर्तन आ चुका है कि अब वे अन्तर्जातीय-विवाह, प्रेम-विवाह और विलम्ब-विवाह को अच्छा समझने लगी है। जातीय नियमो और रूढ़ियों के प्रति महिलाओ की उदासीनता बराबर बढ रही है। अब वे रूढ़िवादी सामाजिक बन्धनों से मुक्त होने के लिए प्रयत्नशील हैं। आज अनेक स्त्रियां महिला संगठनों और क्लबो की सदस्य है। कई स्त्रिया तो समाज-कल्याण के कार्य में लगी हुई है।

(5) **विवाह एवं पारिवारिक क्षेत्र मे अधिकारों की प्राप्ति**—वर्तमान में स्त्रियो के पारिवारिक अधिकारो मे वृद्धि हुई है। वर्तमान में स्त्रियां संयुक्त परिवार के बन्धनो से मुक्त होकर एकाकी या नाभिक परिवार (*Nuclear Family*) मे रहना चाहती है। आज बच्चों की शिक्षा, परिवार की आय के उपयोग, पारिवारिक अनुष्ठानो की व्यवस्था और घर के प्रबन्ध में स्त्रियों की इच्छा को विशेष महत्व दिया जाता है। अब तो विवाह-विच्छेद के मामले में भी स्त्रियों को पुरुष के समान अधिकार प्राप्त है। पारिवारिक क्षेत्र मे स्त्रियों के बढते हुए अधिकारो और स्वतन्त्रता को देखते हुए कुछ लोगों को तो पारिवारिक जीवन के विघटित होने का भय है। आज की बदली हुई परिस्थितियों मे स्त्रियों को दासी बना कर नही रखा जा सकता। अब तो मित्र और सहयोगी के रूप में उनका महत्व दिनों-दिन बढता ही जा रहा है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 19वीं और 20वी शताब्दी में स्त्रियो की स्थिति में काफी सुधार हुआ है। जैसे-जैसे स्त्रियों में साक्षरता का प्रसार होगा, औद्योगीकरण और नगरीकरण की प्रक्रिया तेज होगी, उसके साथ-साथ स्त्रियो की स्थिति में भी अवश्य सुधार आयेगा। आज स्त्रियों में सामाजिक चेतना बढती जा रही है। डॉ. पणिक्कर का कथन है कि स्त्रियो द्वारा हिन्दू जीवन के सिद्धान्तों का पुनर्परीक्षण आज हिन्दू समाज के लिए सबसे बडी चुनौती है। बदली हुई सामाजिक आवश्यकताओं के प्रति उनके मस्तिष्क की जागरूकता, पूर्णतः असन्तोषजनक आदर्श के प्रति उनमे बढ़ते हुए क्षोभ, परम्पराओं के नाम पर उन्हे स्वतन्त्र जीवन के लिए आवश्यक मौलिक अधिकारों से वंचित रखना, शिक्षा से उत्पन्न होने वाली महत्वाकांक्षा और राष्ट्र के जीवन में सम्मिलित होने और उसके भविष्य का निर्माण करने हेतु चल रही राष्ट्रीय संघर्ष के दो पहियों (स्त्री-पुरुष) के साहसिक अनुभवो, आदि ने उन्हें जीवन के आदर्शो का पुनर्परीक्षण करने की प्रेरणा दी है। पिछले कुछ वर्षो में पारित सामाजिक अधिनियमों ने भी स्त्रियों की निर्योग्यताओं को दूर करने और उनकी स्थिति को ऊंचा उठाने में उल्लेखनीय योग दिया है।

हिन्दू स्त्रियों की समस्याएं
(PROBLEMS OF HINDU WOMEN)

D\

हिन्दू स्त्रियों की प्रमुख समस्याएं निम्न प्रकार हैं :

(1) पारिवारिक समस्याएं—हिन्दू समाज पुरुष-प्रधान है। भारत मे परम्परात्मक रूप से पितृसत्तात्मक संयुक्त परिवार व्यवस्था पायी जाती है जिसमें परिवार के पुरुष सदस्यों को तो अनेक अधिकार एवं सुविधाएं प्राप्त है, किन्तु स्त्रियों को उनसे वंचित किया गया है। संयुक्त परिवार व्यवस्था मे स्त्रियों की वड़ी दुर्दशा होती है। वे दासी की तरह जीवन व्यतीत करती है। उनका जीवन खाना वनाने, वच्चो को जन्म देने, उनकी देख-रेख करने एव परिवार के सदस्यो की सेवा में ही व्यतीत हो जाता है। स्त्री को मनोरंजन का साधन समझा जाता है। उसे सास-ननद के उलाहने, गालियों एवं प्रताड़ना का शिकार वनना पड़ता है, शिक्षा एवं वाहरी संसार से उसका कोई नाता नहीं रह पाता है। वह सार्वजनिक जीवन से अनभिज्ञ वनी रहती है और उसके व्यक्तित्व का समुचित विकास नही हो पाता है।

(2) वैवाहिक समस्याएं—परिवार की भांति ही भारतीय स्त्रियों की वैवाहिक समस्याए भी गम्भीर है। विवाह से सम्वन्धित उनकी प्रमुख समस्याएं इस प्रकार है :

(क) वाल-विवाह—प्राचीन समय से ही भारत मे वाल-विवाह का प्रचलन रहा है। हमारे धर्म-ग्रन्थो के रचनाकार वाल-विवाह के पक्ष मे रहे हैं और कम आयु मे ही लड़की का विवाह कर देना माता-पिता का धार्मिक कर्तव्य माना गया है। भारत की धर्मभीरु जनता धार्मिक ग्रन्थों से प्रेरणा लेकर छोटे-छोटे अवोध वालको का विवाह करती रही है और आज भी ग्रामों में ऐसे विवाह वहुत सम्पन्न होते हैं। महाराष्ट्र में तो दो गर्भवती स्त्रियां पहले से ही यह तय कर लेती है कि उनमें से एक के लड़का और दूसरे के लड़की हुई तो उन दोनों का परस्पर विवाह करवा दिया जाएगा। राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रों मे तो दूध पीते वच्चों को गोद में उठाकर और थाली में विठाकर शादी करवा दी जाती है। सामान्यजन की तो वात ही क्या कई विधान-निर्माता भी वाल-विवाह सम्पन्न कराते रहे हैं। कम आयु मे विवाह होने, सन्तानें होने एवं पारिवारिक दायित्व आ जाने के कारण, स्त्रियों का स्वास्थ्य गिर जाता है और वे रुग्ण वनी रहती हैं, फलस्वरूप उनकी मृत्यु-दर वढ़ जाती है और औसत जीवन अवधि घट जाती है। कम आयु में विवाह के कारण जन्म-दर मे भी वृद्धि हो जाती है और दुर्वल सन्तानें पैदा होती हैं।

(ख) विधवा-पुनर्विवाह का अभाव—हिन्दुओं में पत्नी की मृत्यु के वाद पति को तो दूसरा विवाह करने की छूट दी गई है क्योंकि पत्नी के विना वह धार्मिक कार्य सम्पन्न नहीं कर सकता, किन्तु स्त्रियों को पति की मृत्यु के वाद दूसरा विवाह करने की मनाही है। विधवा स्त्री अच्छा भोजन नहीं कर सकती, उसके भोजन में मीठे, चटपटे, स्वादिष्ट एवं पौष्टिक तत्वों के स्थान पर सादी वस्तुएं मात्र होनी चाहिए। उसे इत्र, तेल, फूल एवं चमकीले-भड़कीले वस्त्र नहीं पहनने चाहिए क्योंकि इनसे यौन उत्तेजना पैदा होती है जो उसे पथ-भ्रष्ट कर सकती है। विधवा-पुनर्विवाह के अभाव ने सती-प्रथा को जन्म दिया जिसके अनुसार एक स्त्री अपने पति की मृत्यु के वाद उसकी चिता में आत्मदाह कर लेती है। शुभ कार्यों में विधवाओं की उपस्थिति अपशकुन मानी जाती है। उन्हें परिवार में सम्पत्ति एवं अन्य अधिकारों तथा सुविधाओं से वंचित कर दिया जाता है तथा अनेक प्रकार की यातनाएं दी जाती हैं। इस प्रकार विवाह

यों को इससे वंचित , निम्न जाति में तो इसकी छूट है। किन्तु जिन जातियों में विधवा-पुनर्विवाह की अनुमति है, वहां विधवाओं पर अन्य निर्योग्यताएं लागू की जाती हैं और उनका दूसरा विवाह पहले की तरह धूमधाम और उत्साह से नहीं किया जाता। उन्हें वैदिक रीति से विवाह करने की बजाय 'नाता' विवाह करने की छूट है।

वर्तमान में विधवाओं की स्थिति में सुधार हुआ है, कानून द्वारा पति की सम्पत्ति में उन्हें अधिकार मिला है। सरकारी कर्मचारियों की विधवाओं को आजीवन पारिवारिक भत्ता एवं पेन्शन देने के नियमों ने भी विधवाओं को आर्थिक संरक्षण प्रदान किया है। किन्तु गांवों में तो स्थिति अब भी विकट है।

(ग) दहेज—वर्तमान में दहेज एक गम्भीर समस्या बनी हुई है। इसके कारण माता-पिता के लिए लड़कियों का विवाह एक अभिशाप बन गया है। जीवन-साथी चुनने का सीमित क्षेत्र, बाल-विवाह की अनिवार्यता, कुलीन विवाह, शिक्षा एवं सामाजिक प्रतिष्ठा, धन का महत्व, महंगी शिक्षा, सामाजिक प्रथा एवं प्रदर्शन तथा झूठी शान, आदि के कारण दहेज लेना और देना आवश्यक हो गया है। दहेज के कारण न जाने कितनी स्त्रियों को जला दिया गया, यातनाएं दी गयीं और आत्महत्याएं हुई हैं। आए दिन पत्र-पत्रिकाओं में हम दहेज के कारण स्त्रियों की हत्याओं एवं उन्हें जला देने के समाचार पढ़ते है। दहेज ने ही बालिका-वध, पारिवारिक विघटन, ऋणग्रस्तता, निम्न जीवन-स्तर, बहुपत्नी प्रथा, बेमेल-विवाह, अनैतिकता, अपराध, भ्रष्टाचार एवं अनेक मानसिक बीमारियों को जन्म दिया है। दहेज के कारण ही कई परिवार में पुत्री के जन्म को अपशकुन माना जाता है।

सामाजिक और आर्थिक विषमताएं बढ़ जाने के कारण दहेज एक महत्वपूर्ण प्रलोभन बन गया है। दहेज में रुपया से लेकर बर्तनों, जेवर, रेफ्रिजरेटर, कार तथा एयर कण्डिशनर तक की शर्तें होती है। इस प्रकार के लेन-देन के पीछे माता-पिता की इच्छा यह होती है कि इससे लड़की को ससुराल में प्रतिष्ठा और आर्थिक सुरक्षा प्राप्त होगी। किन्तु पुत्री के लिए सुरक्षा और उच्च सामाजिक स्थिति की यह कामना उसके माता-पिता को ऐसे असुरक्षित कगार पर ला खड़ा कर देती है जहां उन्हें ऐसी मांगें भी पूरी करनी पड़ सकती हैं जो उनकी आर्थिक क्षमता के बाहर होती हैं तब वे कर्जदार बन जाते हैं। वर्तमान में तो दहेज उन जातियों में भी प्रचलित हो गया है जहां पहले इसका नाम भी नहीं था। दहेज के कारण लड़कों के मोल-भाव होते हैं और जो ऊंची बोली लगाता है, उसे ही अच्छा वर मिल पाता है।

(घ) तलाक—हिन्दुओं में स्त्री के लिए पतिव्रत एवं सतीत्व की बात कही गयी है, अतः स्त्री द्वारा पति को त्यागने की कल्पना ही नहीं की जा सकती और ऐसा करना उसके लिए सामाजिक व धार्मिक दृष्टि से अनुचित माना गया है। यद्यपि वैदिक काल में कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में जैसे पति दुश्चरित्र हो, जाति से च्युत हो, बहुत समय से विदेश में हो, पुरुषत्वहीन हो, उससे पत्नी के जीवन को संकट उत्पन्न हो सकता हो, ऐसी स्थिति में पत्नी पति को तलाक दे सकती थी। किन्तु ईसा काल से ही नैतिकता की दुहाई देकर विवाह-विच्छेद को अधार्मिक, अपवित्र एवं घृणित कार्य समझा जाने लगा और बाद में इस पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। आज भी स्त्री द्वारा पति को तलाक देने को उचित नहीं माना जाता, यद्यपि पुरुष तो जब चाहे ऐसा कर सकता है। जो अधिकार पुरुषों को है, समानता के युग

में वही अधिकार स्त्रियों को भी होना चाहिए। दुराचारी एवं दुश्चरित्र पति को त्यागने का अधिकार स्त्री को अवश्य होना चाहिए। इससे स्त्रियों की सामाजिक स्थिति ऊंची उठेगी बेमेल-विवाह समाप्त होंगे और सामाजिक जीवन सन्तुलित होगा।

(च) बेमेल-विवाह—बाल-विवाह एवं जीवन-साथी के चुनाव की स्वतन्त्रता के नही होने के कारण कई बार लड़कियों का विवाह अनुपयुक्त लड़कों से करवा दिया जाता है। जब वर एवं वधू मानसिक धरातल पर एक होने में असमर्थ हों, उनमें वैचारिक भिन्नता हो, शिक्षा के स्तर एवं सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में अन्तर हो तो उनका वैवाहिक जीवन सफल नही होता है। ऐसी स्थिति में स्त्रियो को ही अधिक कष्ट उठाना होता है।

(छ) अन्तर्जातीय विवाह का अभाव—वैदिक युग में अन्तर्वर्ण विवाह प्रचलित थे। किन्तु रक्त को पवित्र बनाए रखने की भावना, ब्राह्मणों की श्रेष्ठता की धारणा, मुसलमानों एवं अन्य आक्रमणकारियों से धर्म की रक्षा एवं कठोर जातीय नियमो के कारण भारत में अन्तर्जातीय विवाह करने को पाप एवं अपराध माना गया, ऐसे व्यक्ति को जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता है। अपनी ही जाति में विवाह करने के कारण विवाह का दायरा बहुत सीमित हो जाता है, दहेज की समस्या पैदा होती है, बेमेल-विवाह होते हैं और विधवाओं को पुनर्विवाह की अनुमति नहीं मिल पाती। ये सभी स्थितियां नारी की अनेक वैवाहिक समस्याओं को जन्म देती हैं।

(ज) बहुपत्नी विवाह—भारत के अनेक भागों में बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन है। यह स्त्रियों के लिए घोर अपमानजनक एवं आपत्तिजनक है। बहुपत्नीत्व के कारण परिवार में संघर्ष, वैमनस्य एवं ईर्ष्या का वातावरण बना रहता है। इससे परिवार की सुख-शान्ति समाप्त होती है, स्त्रियों की सामाजिक प्रतिष्ठा गिर जाती है और पति की मृत्यु होने पर उसकी सभी पत्नियां विधवा एवं अनाथ हो जाती हैं। एकाधिक पत्नियो का भरण-पोषण भी उचित रूप से नहीं हो पाता। नवीन विधानों के प्रभाव, शिक्षा के प्रसार, महंगाई, आदि के कारण बहुपत्नी विवाह धीरे-धीरे समाप्त हो रहे हैं और एकविवाह की संख्या बढ़ रही है, किन्तु आज भी निम्न जातियों में एकाधिक स्त्रियां रखना प्रतिष्ठासूचक माना जाता है। बहुपत्नी प्रथा के कारण स्त्रियों की पारिवारिक एवं सामाजिक प्रतिष्ठा गिर जाती है। बंगाल में जहां कुलीन विवाह प्रचलित रहे हैं, यह प्रथा अधिक रही है।

(3) परदा-प्रथा—भारतीय स्त्रियों की प्राचीन काल से चली आ रही एक समस्या परदा रखने की भी है। स्त्रियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे घूंघट निकालें और अन्य पुरुषों से दूरी बरतें, उनके सामने खुले मुंह बात न करें। परदा-प्रथा के कारण स्त्रियों के व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाता है, वे शिक्षा ग्रहण करने एवं अर्जन करने से वंचित रह जाती हैं तथा इससे उनके स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। वर्तमान में धीरे-धीरे यह प्रथा समाप्त होती जा रही है।

(4) वेश्यावृत्ति—वेश्यावृत्ति एक सामाजिक बुराई के रूप में अति प्राचीन काल से प्रचलित रही है। वेश्यावृत्ति, यौन-तृप्ति का एक विकृत एवं घृणित साधन माना गया है। इस प्राचीन व्यवसाय का वर्तमान मे व्यापारीकरण हुआ है। यौन पवित्रता पर बल, बाल-विवाह, विधवा-विवाह का अभाव, दहेज, जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने की इच्छा, गरीबी, नारी की आर्थिक पराश्रितता, दुःखी वैवाहिक जीवन एवं स्त्रियो के लिए रोजगार के अपर्याप्त अवसर, आदि ऐसे कारण है जिन्होने इस बुराई को फैलाने मे योग दिया है।

(5) स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएं—भारत में स्वास्थ्य का निम्न स्तर पाया जाता है। इसके कई कारण है, जैसे, गरीबी, बेकारी, स्वास्थ्य के नियमों के प्रति अज्ञानता, चिकित्सा सुविधाओं का अभाव एवं व्यापक बीमारियां। चूंकि भारतीय समाज पुरुष-प्रधान है, अतः पुरुषों के स्वास्थ्य का तो फिर भी ध्यान रखा जाता है किन्तु स्त्रियों के स्वास्थ्य की तरफ समुचित ध्यान नही दिया जाता है। इसी कारण यहां लिंग अनुपात मे पुरुषो की अधिकता, स्त्रियों में मृत्यु-दर की अधिकता एव जीवन अवधि कम है। यद्यपि स्त्री-पुरुष दोनों की औसत आयु में वृद्धि हुई है फिर भी पुरुषो की तुलना में स्त्रियो की जीवन अवधि सदैव ही कम रही है। असमान लिंग अनुपात, स्त्रियों की औसत आयु में कमी एवं मृत्यु-दर की अधिकता के लिए, बाल-विवाह, प्रसव-काल मे स्त्रियो की मृत्यु, स्त्रियों की आर्थिक पराश्रितता, लडकियों की अपेक्षा लडको को अधिक महत्व देना, कुपोषण एवं स्वास्थ्य सेवाओ का अभाव, आदि उत्तरदायी हैं। अधिकांशतः महिलाओं में यौन सम्बन्धी रोग भी अधिक देखने को मिलते हैं।

(6) शैक्षणिक समस्याएं—भारत मे साक्षरता का प्रतिशत बहुत कम है। स्त्रियों में तो यह प्रतिशत और भी निम्न है। 1971 में महिलाओं में साक्षरता का प्रतिशत 18.4 व पुरुषों में 39 5 था जो 1991 में बढ़कर क्रमशः 64.13 व 39 29 हो गया। यह भिन्नता अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग है। केरल में साक्षरता का प्रतिशत सर्वाधिक है, जबकि राजस्थान व अरुणाचल मे कम है। राजस्थान में 1991 की जनगणना के अनुसार साक्षरता की दर 38 55 है। राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रो में तो स्त्रियों की साक्षरता का प्रतिशत केवल 20 44 ही है जो कि देश मे सबसे कम है। 1991 की जनगणना के अनुसार देश मे 24 76 करोड़ स्त्रियां निरक्षर हैं। भारत मे नगरो की तुलना में गांवों मे तो स्त्री साक्षरता बहुत कम है। डॉक्टरी, इन्जीनियरिंग, वकालत एवं अन्य तकनीकी शिक्षा प्राप्त करने वाली लडकियो की संख्या तो और भी कम है। स्त्रियों को शिक्षा न दिलाने का कारण परदा-प्रथा और स्त्रियों की पुरुषों पर निर्भरता एवं उनका कार्य-क्षेत्र घर तक ही सीमित होना है। ग्रामीण लोग तो सामान्यतः यह कहते है कि लड़की तो पराया धन है, उसे पढ़ाकर हमे कोई राज नहीं करवाना है। लड़कियो को पढ़ाना अब भी कई ग्रामीण लोग उचित नहीं मानते। यही कारण है कि भारतीय स्त्रियां अशिक्षित हैं और अशिक्षा के कारण उत्पन्न समस्याओं का उन्हे शिकार होना पड़ता है।

(7) आर्थिक समस्याएं—गरीबी इस देश की सबसे बड़ी समस्या है जो अनेक अन्य समस्याओं को भी जन्म देती है। भारतीय नारियों की भी समस्याएं उनकी गरीबी, आर्थिक पराश्रितता एवं शोषण से जुडी हुई हैं। भारत में पुरुषों की तुलना में स्त्रियों को कम वेतन एवं पारिश्रमिक दिया जाता रहा है। चाहे वह कृषि का क्षेत्र हो, उद्योग हो या कोई अन्य क्षेत्र हो। अधिकांशतः महिलाएं कृषि-कार्य से ही सम्बन्धित है। इसके अतिरिक्त वे खनन, पशु-पालन एवं श्रमिक कार्य में भी लगी हुई हैं। उच्च पदों पर आसीन स्त्रियां तो गिनती की हैं। जब महिलाएं रोजगार कार्य में भागीदार बहुत कम हैं तो उनकी आय भी कम है। संयुक्त परिवार प्रणाली, पुरुषों पर निर्भरता, स्त्री अशिक्षा, अज्ञानता, परदा-प्रथा, रूढ़िवादिता, आदि कारणों से स्त्रियों का कार्यक्षेत्र घर तक ही सीमित है और वे अक्सर कमाने के लिए बाहर नहीं जातीं, फलस्वरूप उन्हें अपने भरण-पोषण तक के लिए पुरुष की ओर देखना होता है। निम्न आर्थिक स्थिति के कारण परिवार एवं समाज में भी उनकी प्रतिष्ठा उच्च नहीं हो पाती और उन्हें इसके कई दुष्परिणाम भुगतने होते हैं।

(8) **सामाजिक समस्याएं**—पारिवारिक एवं वैवाहिक समस्याएं सामाजिक समस्याए ही हैं जिनका उल्लेख हम पूर्व में कर चुके है। इनके अतिरिक्त स्त्रियो की एक समस्या स्त्री-पुरुषो की भूमिका मे विभेद करने की है। यद्यपि भारतीय सविधान मे स्त्री-पुरुषों के बीच अधिकारों की समानता पर जोर दिया गया है फिर भी कुछ क्षेत्र जैसे, सेना, आदि मे उनकी सेवाएं नहीं ली जातीं। स्त्रियों को प्रमुख रूप से घर से सम्बन्धित माना गया है और उन्हे गृहकार्य की देखभाल का कार्य करना होता है। पत्नी एवं मां की भूमिकाएं ही उनकी प्रमुख भूमिकाए मानी गयी है। स्त्रियां चाहे खेतों में, कारखानो मे, भवन-निर्माण एवं खदानो में काम करे और चाहे सफेदपोश नौकरिया करे उनसे उसी प्रकार गृहकार्यों के निर्वाह की आशा की जाती है जिस प्रकार एक गृहस्थी तक सीमित स्त्री से की जाती है। वाह्य ससार मे उनकी भूमिका को पुरुषों की भूमिका की तरह स्वीकार नही किया गया है। समुदाय के लिए निर्णय लेने, राजनीतिक शक्ति का प्रयोग करने, गांव एवं जाति-पचायत मे भाग लेने, आदि कार्यो को पुरुषों तक ही सीमित किया गया है। घर के बाहर पुरुष चाहे शारीरिक श्रम का कार्य करे, किन्तु वही कार्य घर में करना उसके लिए अपमानजनक माना जाता है और स्त्री से ही उसे करने की अपेक्षा की जाती है। खाना बनाना व कपडे सीना, आदि कार्य पुरुष व्यवसाय के रूप में तो अपना सकता है, किन्तु घर में ये कार्य स्त्रियो पर छोड दिए जाते है। परिवार में और उसके बाहर के कार्यो मे निर्णय लेने मे भी स्त्रियो की अपेक्षा पुरुष ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

(9) **राजनीतिक समस्याएं**—जब स्त्रियो का कार्य-क्षेत्र घर ही तय कर दिया गया हो और बाह्य जीवन में उनके किसी भी प्रकार के योगदान की अपेक्षा नही की गई हो तो उन्हें राजनीतिक जीवन से लेना-देना ही क्या है? यही कारण है कि भारत मे स्त्रियों मे कभी राजनीतिक चेतना नही रही और वे राजकाज मे भागीदार नही हुई। स्त्रियों की स्थिति को सुधारने के लिए कुछ सुधार आन्दोलनों का प्रयत्न भी नारी को परिवार में ही मे नई स्थिति दिलाना रहा। 20वी सदी के प्रारम्भिक वर्षो मे महिला संगठनों की स्थापना हुई जिन्होंने राजनीतिक अधिकारों की मांग की। 1917 में सरोजिनी नायडू ने ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में स्त्रियों को भी पुरुषों के समान मताधिकार की मांग की। 1921 में सम्पन्न एवं शिक्षित महिलाओं को मतदान का अधिकार दे दिया गया। विदेशी शासको को यह विश्वास भी नही होता था कि भारतीय समाज मे भी कभी स्त्रियों को पुरुषों के समकक्ष राजनीतिक अधिकार प्राप्त होगे। गांधीजी ने भी स्त्रियों के राजनीतिक अधिकारो पर बल दिया और स्वतन्त्रता आन्दोलन में उनसे प्रेरित होकर कई महिलाओं ने भाग लिया। स्वतन्त्रता के बाद महिलाओं ने विधायको, सांसदों, राज्यपाल, मन्त्री, मुख्यमन्त्री और प्रधानमन्त्री तक का दायित्व संभाला है। इससे स्पष्ट है कि उनमें राजनीतिक चेतना बढी है, फिर भी पुरुषों की तुलना में वे अब भी पिछड़ी हुई हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय नारियां आज भी विभिन्न पारिवारिक, वैवाहिक, सामाजिक, शैक्षणिक, स्वास्थ्य सम्बन्धी, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं से ग्रस्त है। इन समस्याओं से मुक्ति के बिना समानता के इस युग मे स्त्रियों को उनकी सच्ची प्रतिष्ठा प्राप्त नही हो सकती। स्त्रियों की स्थिति को सुधारने एवं उन्हें सामाजिक न्याय दिलाने हेतु यहां सुधार आन्दोलन हुए हैं और सरकारी व गैर-सरकारी स्तर पर कल्याण कार्य भी किए गए हैं।

हिन्दुओं के साथ-साथ मुसलमान भी भारतीय समाज के एक प्रमुख अंग हैं। जनसंख्या की दृष्टि से भी भारत में हिन्दुओं के बाद उनका दूसरा स्थान है। अतः यहां पर मुस्लिम स्त्रियों की समस्याओं का उल्लेख करना भी उचित होगा।

मुस्लिम स्त्रियों की समस्याएं
(PROBLEMS OF MUSLIM WOMEN)

सैद्धान्तिक रूप से मुस्लिम स्त्रियों को अनेक अधिकार प्रदान किए गए हैं, किन्तु तस्वीर का दूसरा पहलू भी है, व्यावहारिक दृष्टि से वे आज अनेक समस्याओं से ग्रस्त हैं, परिणामस्वरूप उनकी सामाजिक स्थिति काफी गिरी हुई है। ये समस्याएं निम्न प्रकार हैं :

(1) **बहुपत्नीत्व की समस्या**—मुस्लिम समाज में एक पुरुष को चार तक पत्नियां रखने की सामाजिक एवं वैधानिक स्वीकृति प्राप्त है। अधिक स्त्रियां होने पर पुरुष से समान व्यवहार की अपेक्षा नहीं की जा सकती। उनके प्रति भेदभाव बरता जाता है और उन्हें पत्नीत्व का वास्तविक सुख नहीं मिल पाता। स्त्री की पुरुष पर निर्भरता के कारण भी उनकी स्थिति ऊंची नहीं उठ पाती, सभी स्त्रियों के बच्चों को भी परिवार में समान स्थिति नहीं मिल पाती, ऐसी दशा में उसे कभी-कभी संघर्ष भी करना पड़ता है।

(2) **तलाक की समस्या**—सैद्धान्तिक रूप से तो मुस्लिम स्त्रियों को भी पुरुष के समान ही तलाक के अधिकार प्राप्त हैं। किन्तु पुरुष पर आर्थिक निर्भरता, अशिक्षा एवं समाज में पुरुषों की प्रधानता के कारण पुरुष वास्तव में इस अधिकार का प्रयोग मनमाने ढंग से करता है, किन्तु स्त्रियां इस अधिकार का प्रयोग करने में अपने को असहाय पाती हैं।

(3) **पर्दा-प्रथा**—मुस्लिम समाज में स्त्रियों को कुदृष्टि से बचाने के लिए परदा करने का आदेश दिया गया है। परदा-प्रथा के कारण मुस्लिम स्त्रियों की शिक्षा नहीं हो पायी है। शिक्षा के अभाव में उनमें अज्ञानता एवं रूढ़िवादिता व्याप्त है, वे स्वतन्त्र रूप से अर्थोपार्जन नहीं कर पाती हैं और राजनीतिक एवं सार्वजनिक जीवन में भाग लेने से वंचित रही हैं। देश की शिक्षित स्त्रियों में उनका प्रतिशत बहुत ही कम है। यही कारण है कि समाज निर्माण एवं सुधार में भी उनका योगदान बहुत कम है।

(4) **धार्मिक कट्टरता**—मुस्लिम धर्म कठोर अनुशासन एवं नियन्त्रण की मांग करता है। अतः इसमें कट्टरता पाई जाती है। यह नवीनता एवं परिवर्तन को स्वीकार नहीं करता, यही कारण है कि जेट युग में भी अरबी समाज एवं मोहम्मद साहब के युग के नियमों का पालन किया जाता है। हिन्दुओं में धर्म-सुधार के आन्दोलनों ने धार्मिक कठोरता को कम किया है। उसी प्रकार से टर्की में कमाल पाशा के नेतृत्व में स्त्रियों की स्थिति में सुधार के प्रयत्न हुए, किन्तु आज पुनः ईरान में शाह की सरकार के पतन के बाद एवं पाकिस्तान में सरकार के नेतृत्व में प्राचीन इस्लाम के नियमों को कठोरता से लागू करने के प्रयत्न किए गए। इसका प्रभाव यह हुआ कि मुस्लिम देशों में स्त्रियों को सार्वजनिक जीवन में प्राप्त उन अधिकारों से पुनः वंचित किया जा रहा है जिन्हें प्राप्त करने के लिए उन्होंने एक लम्बा संघर्ष किया है।

(5) **अधिकारों की अव्यावहारिकता**—मुस्लिम स्त्रियों को विवाह, परिवार एवं सम्पत्ति से सम्बन्धित अनेक अधिकार प्रदान किए गए हैं, किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इनका उपयोग करना उनके लिए कठिन है। विधवा स्त्री को पुनर्विवाह का अधिकार है, किन्तु ऐसी स्त्री को समाज में हीन दृष्टि से देखा जाता है। इसी प्रकार से विवाह के पूर्व स्त्री से स्वीकृति ली जाती है,

किन्तु वह एक औपचारिकता ही है, उसे माता-पिता की इच्छा के अनुसार स्वीकृति देनी ही पड़ती है। मेहर की राशि पर भी स्त्री का नहीं वरन् पुरुष का या परिवार का ही अधिकार होता है। सम्पत्ति में भी उसे कोई हिस्सा नहीं दिया जाता है और ऐसा करने के लिए उसे न्यायालय की शरण में ही जाना पड़ता है। वह व्यवहार में अपने तलाक के अधिकार का भी कम ही प्रयोग कर पाती है। इस सारे विवरण से स्पष्ट है कि आज भी मुस्लिम स्त्री की सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं है यद्यपि सैद्धान्तिक दृष्टि से उसे कई अधिकार प्रदान किए गए हैं।

मुस्लिम स्त्रियों की समस्याओं के समाधान हेतु प्रयत्न

मुस्लिम समाज परम्परावादी है तथा धार्मिक कट्टरता में विश्वास करता है। मुसलमानों के जीवन के सभी क्षेत्रों का संचालन कुरान के नियमों के आधार पर होता है। यही कारण है कि नवीन परिवर्तनों के बावजूद भी मुस्लिम स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को ऊंचा उठाने एवं समस्याओं के समाधान हेतु भारत में कोई विशेष प्रयत्न नहीं हुए है। अंग्रेजी शासनकाल में उनके विवाह से सम्बन्धित दो अधिनियम अवश्य पारित हुए—(1) मुस्लिम शरीयत अधिनियम,1937; (2) मुस्लिम विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1939। शरीयत अधिनियम मुस्लिम स्त्री को पति के नपुंसक होने और उसके द्वारा पत्नी पर झूठा व्यभिचार का दोषारोपण करने तथा इला व जिहर के आधार पर तलाक की छूट देता है। मुस्लिम विवाह-विच्छेद अधिनियम मुस्लिम स्त्री को निम्नांकित आधारों पर तलाक देने की छूट देता है, जैसे पति भरण-पोषण करने में असमर्थ हो, सात वर्ष से अधिक वर्षों के लिए जेल में हो, नपुंसक, पागल, यौन रोग व कुष्ठ रोग से ग्रसित हो, क्रूरतापूर्ण व्यवहार करता हो, धार्मिक कार्यों में बाधा डालता हो एवं एकाधिक पत्नियां होने पर सबके साथ समान व्यवहार न करता हो।

स्पष्ट है कि मुस्लिम स्त्रियां आज भी विभिन्न समस्याओं से ग्रस्त हैं, जिन्हें दूर करने के लिए कारगर उपाय करने की सख्त आवश्यकता है। अब हम यहां स्त्रियों की समस्याओं के समाधान के लिए किए गए सुधार आन्दोलनो एवं विभिन्न उपायो का उल्लेख करेंगे।

स्त्रियों की समस्याओं के समाधान हेतु प्रयत्न
(EFFORTS TO SOLVE PROBLEMS OF WOMEN)

स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को परिवर्तित करने में निम्न कारकों का योग रहा है :

(1) सुधार आन्दोलन—19वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही कुछ चिन्तनशील व्यक्तियों, जैसे राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, दयानन्द सरस्वती, केशवचन्द्र सेन, ऐनीबेसेण्ट, महर्षि कर्वे, आदि ने भारतीय समाज में स्त्रियों की दयनीय स्थिति पर विचार करना प्रारम्भ कर दिया था। कई महापुरुषों ने समाज-सुधार के आन्दोलनों का संचालन कर स्त्रियो की स्थिति को ऊंचा उठाने का प्रयत्न किया। राजा राममोहन राय ने 1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना की और आपके प्रयत्नो से ही 1829 में सती-प्रथा निरोधक अधिनियम बना। आपने बाल-विवाह को समाप्त तथा 'विधवा-पुनर्विवाह' को प्रचलित कराने के पक्ष में जनमत तैयार किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित करने तथा बाल-विवाह और परदा-प्रथा को समाप्त करने के लिए प्रयास किए। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने बहुपत्नी विवाह एवं विधवा-पुनर्विवाह निषेध का विरोध किया और आपके प्रयत्नों से 1856 में विधवा-पुनर्विवाह अधिनियम बना। महर्षि कर्वे ने भी विधवा-पुनर्विवाह एवं स्त्री-शिक्षा के लिए प्रयास किए। केशवचन्द्र सेन के

प्रयासो से 1872 मे 'विशेष विवाह अधिनियम' बना जिसने विधवा-पुनर्विवाह एवं अन्तर्जातीय विवाह को मान्यता प्रदान की। इस शताब्दी में कई महिलाओं एवं स्त्री संगठनों ने स्त्रियों को अधिकार दिलाने एव उनमें जागृति लाने के प्रयत्न किए। रमाबाई रानाडे, मेडम कामा, तोरदत्त, मारग्रेट नोबल तथा ऐनीबेसेण्ट, आदि महिलाओं तथा 'अखिल भारतीय महिला सम्मेलन', 'भारतीय महिला समिति', 'विश्वविद्यालय महिला संघ', 'अखिल भारतीय स्त्री-शिक्षा संस्था', 'कस्तूरबा गांधी स्मारक ट्रस्ट', आदि स्त्री संगठनों ने भी स्त्रियों की निर्योग्यताओं को कम करने एव उनकी स्थिति को सुधारने के प्रयत्न किए। महात्मा गांधी स्त्री-पुरुषों की समानता के समर्थक थे। उन्होने स्त्रियो को राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित किया।

(2) संवैधानिक व्यवस्थाएं—समय-समय पर अनेक ऐसे अधिनियम पारित किए गए जिन्होंने स्त्रियो की दशा को सुधारने मे योग दिया। 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम में स्त्री पुरुषो को विवाह के सम्बन्ध मे समान अधिकार दिए गए, बाल-विवाह समाप्त कर दिया गया और स्त्रियो को पृथक्करण तथा विवाह-विच्छेद एवं विधवाओं को पुनर्विवाह की स्वीकृति दी गयी। 1956 के हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, स्त्रियों और कन्याओ का अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम, दहेज निरोधक अधिनियम, 1961, आदि ने स्त्रियों की स्थिति को सुधारने की दृष्टि से महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

(3) शिक्षा का प्रसार—जब स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार हुआ तो वे परम्परागत बन्धनों, रूढ़िवादिता व धर्मान्धता स मुक्त हुई। जिन सामाजिक कुरीतियो को वे सीने से चिपटाए हुए थी, उन्हे त्यागा, उनमे तर्क और विवेक जागा और ज्ञान के द्वार खुले। आधुनिक शिक्षा प्राप्त स्त्रिया बन्धन से मुक्ति चाहती हैं, पुरुषों की दासता को स्वीकार नहीं करतीं और वे स्वतन्त्रता तथा समानता की पोषक है। शिक्षा ने स्त्रियों को अपने अधिकारों के प्रति भी जागरूक बनाया। इस प्रकार शिक्षा का प्रसार भी स्त्रियो की स्थिति में परिवर्तन के लिए मुख्य कारक रहा है।

(4) पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव—भारत में 150 वर्षों तक अंग्रेजों का राज्य रहा। इससे भारत के लोग पश्चिमी सभ्यता व संस्कृति के सम्पर्क मे आए। पश्चिमी संस्कृति में स्त्री-पुरुषों की समानता, स्वतन्त्रता तथा सामाजिक न्याय पर जोर दिया गया। पश्चिम के सम्पर्क का प्रभाव भारतीय स्त्रियो पर भी पडा और वे भी अपने जीवन में पश्चिम के मूल्यों, विचारो और विश्वासों को अपनाने लगीं। उन्होंने स्वतन्त्रता, समानता, न्याय और अपने अधिकारो की मांग की जिसके फलस्वरूप उन्हें कई सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक सुविधाएं एवं अधिकार प्राप्त हुए।

(5) औद्योगीकरण एवं नगरीकरण—औद्योगीकरण के कारण स्त्रियों की पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता कम हुई, वे स्वयं कारखानो मे काम करने लगीं, इससे उनमें आत्म-विश्वास जागा, आत्म-निर्भरता पैदा हुई और पुरुषो की दासता व निर्भरता समाप्त हुई। नगरों में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पायी जाती है, इस कारण वहां प्रेम-विवाह, अन्तर्जातीय विवाह तथा विधवा-पुनर्विवाह को बुरा नहीं माना जाता। नगरों में स्त्रियो को शिक्षा के क्षेत्र में अधिक अवसर प्राप्त होते है। वे वहां राजनीतिक जीवन मे भी भाग लेती हैं। इस प्रकार औद्योगीकरण एवं नगरीकरण ने स्त्रियों की स्थिति को परिवर्तित करने में महत्वपूर्ण योग दिया है।

(6) संयुक्त परिवारों का विघटन—परम्परागत भारतीय समाज मे संयुक्त परिवारों की बहुलता थी। संयुक्त परिवार में स्त्रियों को पुरुषों के अधीन रहना होता था तथा घर की चहारदीवारी ही उनका कार्य-क्षेत्र होता था। किन्तु जब नवीन परिस्थितियों के कारण संयुक्त

परिवार टूटने लगे और उनके स्थान पर एकाकी परिवार बनने लगे तो स्त्रियों की स्वतन्त्रता, सम्मान एवं गतिशीलता में वृद्धि हुई।

(7) आर्थिक कठिनाइयां—आधुनिक समय मे महंगाई के कारण मध्यम वर्ग के परिवारों को कई आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। अच्छा भोजन, अच्छा मकान और सुविधाएं प्राप्त करने के लिए वे यह चाहते है कि स्त्रिया भी धन अर्जित करे। अतः उन्हें पढा-लिखा कर नौकरी एवं व्यवसाय के लिए तैयार किया जाता है। इससे उनकी सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं पारिवारिक स्थिति में सुधार हुआ।

(8) अन्तर्जातीय विवाह—जब एक जाति की लडकी दूसरी जाति के लडके से प्रेम-विवाह या अन्तर्जातीय विवाह करने लगी तो स्त्रियो की स्थिति मे परिवर्तन हुआ, वे अब परिवार पर आर्थिक भार नहीं समझी जाने लगी तथा ऐसे विवाह से बने परिवार में पति-पत्नी मे समानता के भाव पाए जाते है और स्त्री को पुरुष की दासी नही समझा जाता।

सरकार द्वारा किये गये प्रयत्न
(EFFORTS MADE BY THE GOVERNMENT)

1991 की जनगणना के अनुसार देश की कुल जनसंख्या 84 63 करोड है जिसमे से 40.707 करोड़ महिलाएं हैं। समाज के इतने बड़े भाग की उपेक्षा कर भारत प्रगति नही कर सकता। महिलाओं के कल्याण हेतु देश मे कई कार्य किए गए है। भारत मे महिलाओ की स्थिति का अध्ययन करने एवं उसमें सुधार हेतु 1971 में एक कमेटी बनी जिसने 1975 मे अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस कमेटी के सुझावो को ध्यान मे रखकर महिला कल्याण के लिए अनेक कार्य किए गए है। स्त्रियों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार करने की दृष्टि से 1979 में **'समान वेतन अधिनियम'** पारित किया गया। इसके द्वारा पुरुषों और महिलाओ के लिए समान वेतन की व्यवस्था की गयी। 1961 में **दहेज निरोधक अधिनियम** पारित किया गया जिसमें 1986 मे संशोधन कर उसे और अधिक कठोर बना दिया गया। 1955 में **हिन्दू विवाह अधिनियम** पारित कर स्त्रियो को भी विवाह-विच्छेद सम्बन्धी सुविधा प्रदान की गयी। 1961 एवं 1976 में **मातृत्व हित लाभ अधिनियम** बनाए गए। 15 से 45 वर्ष की आयु समूह की महिलाओं के लिए 1975-76 से ही **प्रकार्यात्मक साक्षरता** का कार्यक्रम चल रहा है जिसमे महिलाओ को स्वच्छता एवं स्वास्थ्य, भोजन तथा पोषक तत्वो, गृह प्रबन्ध तथा शिशु देख-रेख, शिक्षा तथा व्यवसाय के सन्दर्भ में अनौपचारिक शिक्षा प्रदान की जाती है। 1958 से ही प्रौढ़ महिलाओ के व्यावसायिक प्रशिक्षण एवं शिक्षा के लिए केन्द्रीय समाज-कल्याण बोर्ड द्वारा कार्यक्रम चलाया जा रहा है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत वर्ष 1992-93 मे 3,642 महिलाओं को लाभ पहुचाया गया। ग्रामीण गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के दौरान 40% महिलाओं को शामिल किया गया। देश के सीमावर्ती क्षेत्रों जैसे, अरुणाचल, जम्मू और कश्मीर, लेह, हिमाचल, लाहौल तथा किन्नौर, उत्तर प्रदेश में चमोली, गुजरात के बनासकांठा व राजस्थान के जैसलमेर एवं श्रीकरणपुर में मातृत्व सेवाएं, शिशु देखभाल, दस्तकारी प्रशिक्षण एवं सामाजिक शिक्षा प्रदान करने की दृष्टि से **सीमावर्ती क्षेत्र कल्याण केन्द्र** स्थापित किए गए हैं। ग्रामीण महिलाओं के कल्याण के लिए गांवो में **महिला मण्डल** बनाए गए है। नगरों में कार्यशील महिलाओ को आवास सुविधा देने के लिए हॉस्टल खोले गए है। वर्तमान मे देश में 740 इस प्रकार के हॉस्टल हैं जिनमें 49,507 कार्यशील महिलाए रह

सकती हैं। आठवीं योजना में इस प्रकार के एक हजार हॉस्टल और खोलने का लक्ष्य रखा गया। 18 से 50 वर्ष तक की अभावग्रस्त महिलाओं के लिए विभिन्न व्यवसायों में प्रशिक्षण देने के लिए प्रशिक्षण केन्द्र खोले गए हैं। महिलाओं पर अत्याचार को रोकने की दृष्टि से उनमें जागृति पैदा करने हेतु जनचेतना का कार्य भी शिक्षा के माध्यम से किया गया है। 1958 से जरूरतमन्द एवं अनाथ महिलाओं को कार्य दिलाने में मदद करने का कार्य समाज कल्याण बोर्ड द्वारा किया जा रहा है। 1975 में सारे विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष मनाया गया। भारत में भी इस वर्ष महिलाओं के लिए अनेक सामाजिक-आर्थिक कल्याण के कदम उठाए गए। 8 मार्च, 1992 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस मनाया गया। सातवीं योजना में सामाजिक और महिला कल्याण पर 8,012.36 करोड़ रुपए खर्च किए गये। महिलाओं को उत्तम रोजगार सेवाएं उपलब्ध कराने की दृष्टि से सन् 1986-87 में **'महिला विकास निगम'** (WDC) स्थापित किए गए। विज्ञापनों में महिलाओं के भद्दे और भोंडे प्रदर्शनों पर रोक लगाने के लिए 'महिलाओं का अश्लील चित्रण (निवारण) अधिनियम, 1986' [Indecent Representation of Women (Prohibitation) Act, 1986] बनाया गया जिसमें दोषी व्यक्तियों को दो हजार रुपए एवं दो वर्ष तक का कारावास का दण्ड देने का प्रावधान किया गया। जनवरी, 1992 में एक **राष्ट्रीय महिला आयोग** का गठन किया गया ताकि महिलाओं पर सामाजिक-आर्थिक रूप में हो रहे अन्याय एवं अत्याचारों से लड़ा जा सके। यह आयोग महिलाओं के सम्बन्ध में लागू होने वाले कानूनों की समीक्षा करेगा, सम्बद्ध मन्त्रालयों, राज्य सरकारों और गैर-सरकारी संगठनों से सम्पर्क रखेगा तथा महिलाओं की शिकायतों को दूर करने का मार्ग सुझाएगा। गरीब और जरूरतमन्द महिलाओं तक ऋण की सुविधा पहुंचाने के लिए, 'महिलाओं के लिए राष्ट्रीय ऋण कोष' की स्थापना की गई है। 2 अक्टूबर, 1993 से **'महिला समृद्धि योजना'** प्रारम्भ की गयी है। इसके अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्र की महिलाएं डाकघर में 300 रुपये जमा करा सकती हैं। एक वर्ष तक ये रुपये जमा रहने पर सरकार उन्हें 75 रुपये अपनी ओर से अंशदान देती है। अब तो पंचायती राज संस्थाओं व नगरपरिषदों में महिलाओं के लिए एक-तिहाई स्थान आरक्षित किए गये है।

समता की खोज
(QUEST FOR EQUALITY)

आधुनिक युग में नारी ने पुरुषों के समकक्ष स्थान एवं अधिकार पाने के लिए कई स्त्री आन्दोलनों एवं संगठनों को जन्म दिया है। दुनिया के दूसरे देशों में स्त्री स्वातन्त्र्य आन्दोलन चले और स्त्रियों को अपने अधिकार पाने के लिए लम्बा संघर्ष करना पड़ा। भारतीय समाज भी एक पुरुष प्रधान एवं पितृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था को मानने वाला समाज है जिसमें स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र घर की चहारदीवारी तक ही सीमित रहा है। आर्थिक रूप से वे सदैव पुरुषों पर निर्भर रही हैं तथा उन्हें शिक्षा एवं बाह्य जगत् से भी दूर रखा गया है। किन्तु पिछले कुछ वर्षों से भारत में कई महिला संगठन बने है, प्रमुख रूप से नगरों में। इन संगठनों ने कई मुद्दे उठाए हैं तथा उनको लेकर आन्दोलन एवं प्रदर्शन भी किए गए हैं। इन मुद्दों में प्रमुख है—बढ़ती हुई महंगाई, पुरुषों के समान स्त्रियों को अधिकार देने तथा दहेज के कारण महिलाओं को जला देना या प्रताडित करना, बलात्कार, शोषण, हत्या, स्त्रियों के साथ अमानवीय व्यवहार एवं उन्हें बेइज्जत करना तथा पुलिस की ज्यादतियां, आदि। इन मांगों

के समर्थन में प्रदर्शनों, संगठनों एवं कार्यक्रमों में भाग लेने वाली अधिकांश महिलाएं मध्यवर्गीय ही हैं। इनमे से कई कामकाजी महिलाएं हैं। महिलाओं ने बाहर ही नहीं परिवार मे भी समानता एवं अपने अधिकारों की मांग की है। शिक्षित एवं स्वयं अर्जन करने वाली महिलाएं अब पहले की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्र है, ये क्लबों मे जाने लगी है तथा विवाह-साथी के चयन में अपनी पसन्द या नापसन्द को अधिक महत्व देती हैं, पहले की तरह इन पर कोई भी व्यक्ति जीवन-साथी के रूप में थोपा नही जाता। पारिवारिक निर्णयो मे उनकी सलाह ली जाती है। इस प्रकार अब महिलाएं धीरे-धीरे सास-ससुर एवं परिवार की दासता से मुक्त हो रही हैं। यद्यपि अब भी कई बार कमाकर स्त्री अपनी कमाई सास-ससुर के हाथों में ही देती है।

राजनेताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं एवं महिला संगठनो ने नारी चेतना पैदा करने एवं उन्हें अपने अधिकारों से अवगत कराने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। इसी के परिणामस्वरूप सन् 1975 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित किया गया। सन् 1971 मे भारत सरकार ने स्त्रियो की प्रस्थिति के बारे में एक समिति गठित की जिसने 1974 में स्त्रियों की उन्नति के बारे में कई महत्वपूर्ण सुझाव दिए जिनका सर्वत्र स्वागत किया गया। स्त्रियों की समस्याओं एवं उनके समाधान हेतु एक अखिल भारतीय संगठन भी है। अनेक राज्यों में महिला विकास निगम स्थापित किए गए हैं जो महिलाओं को तकनीकी परामर्श देने तथा बैंक तथा अन्य संस्थानों से ऋण दिलाने एवं बाजार की सुविधा दिलाने का प्रयत्न करते हैं। भारत में महिला उद्यमिता में भी प्रगति हुई है और आज अनेक महिलाएं अपने स्वयं के कारखाने एवं उद्योग चला रही हैं। आज अनेक महिलाएं सरकारी एवं गैर-सरकारी नौकरियों में कार्यरत हैं, वे प्रशासक, राजनेता एवं उच्च राजकीय सेवाओं में पुरुषों के समकक्ष ही कार्य कर रही हैं।

स्त्री-पुरुष सम्बन्ध एवं व्यक्ति के रूप में स्त्री की पहचान (WOMAN-MAN RELATIONS AND IDENTIFICATION OF WOMAN AS AN INDIVIDUAL)

01

इसी सन्दर्भ में प्रश्न उठता है कि क्या पुरुषों से स्वतन्त्र स्त्रियों की स्वतन्त्र पहचान सम्भव है? इस प्रश्न का उत्तर सैद्धान्तिक दृष्टि से हां में दिया जा सकता है, किन्तु व्यवहार में नहीं। भारतीय समाज में स्त्री को स्वतन्त्र होने योग्य नही माना गया है और पुरुषों के अभाव में उनका अपना कोई अस्तित्व नहीं है। धर्मशास्त्रो मे कहा गया है कि स्त्रियां कभी भी स्वतन्त्र रहने के योग्य नही हैं। बचपन में पिता, युवावस्था में पति एवं वृद्धावस्था में उन्हें पुत्र के संरक्षण में रहना चाहिए। इस प्रकार हमारे यहां स्त्री की पहचान पुत्री, पत्नी और मां के रूप में की गई है। यह बात यूरोप एवं चीन में भी स्वीकार की गई है।

पूंजीवाद में मजदूर-मालिकों के बीच शोषणकारी सम्बन्धों की कल्पना की गई है। समाजवादियों का मत है कि स्त्रियों पर पुरुषों का आधिपत्य का सम्बन्ध भी पूंजीवादी समाज के लक्षण हैं। समाजवादी समाज में ही वे इस बन्धन से मुक्त होकर पुरुषों के समकक्ष लायी जा सकती हैं। स्त्रियों का पुरुषो के अधीन होने का एक कारण उनकी पुरुषो पर आर्थिक निर्भरता माना जाता है, किन्तु यह बात भी पूरी तरह सच नहीं है क्योंकि गांवो में निम्न वर्ग की स्त्रियां जो खेती एवं मजदूरी करके अर्जन करती है, वे भी पुरुषों के अधीन ही हैं। स्त्रियों को पराधीन बनाने वाली संस्था केवल पितृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था ही नहीं है, वरन्

सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था है जिसमें स्त्रियों के साथ कठोर व्यवहार किया जाता है। पुरुषों का अहंवाद भी इसके लिए उत्तरदायी है।

बड़े-बड़े नगरों जैसे, मुम्बई, पुणे, दिल्ली, आदि मे चार उद्देश्यों को लेकर महिला आन्दोलन चलाए गए है, वे है—(i) स्त्रियो में जागरूकता पैदा करना, उन्हे अपने राजनीतिक अधिकारो के प्रति संवेदनशील बनाना तथा परिवार मे दमन और अश्लील साहित्य एवं पोस्टरों का विरोध करना, (ii) महिलाओ के जीवन-स्तर और कार्य-दशाओं में परिवर्तन लाना, वेतन-वृद्धि, प्रसूताओ को अवकाश एव चिकित्सा की सुविधाएं देना, आदि; (iii) अपने काम के लिए गृहणियो को सामाजिक प्रतिष्ठा के साथ-साथ प्रतिफल प्रदान करना; (iv) राजनीतिक दमन, मकानों की समस्या तथा कीमतों में वृद्धि के विरुद्ध महिलाओं को संगठित करना। किन्तु ये सभी प्रश्न नगरीय महिलाओं से ही सम्बन्धित हैं, ग्रामीण महिलाओं के सन्दर्भ में बहुत कम ही प्रयास हुए हैं।

महिला आन्दोलनो का संगठन एवं संचालन प्रमुखतः नगरीय सफेदपोश मध्यमवर्गीय महिलाओ एवं कामकाजी महिलाओं द्वारा किया गया है। इनके द्वारा महिला पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित की जाती है तथा महिला सभाओ एवं गोष्ठियो का आयोजन भी किया जाता है। स्त्रियों से सम्बन्धित अनेक अध्ययन भी हुए हैं जिनमे स्त्रियों की प्रस्थिति, परिवार में उनकी भूमिका, शिक्षा, उनकी आर्थिक व कानूनी प्रस्थिति एवं राजनीतिक भागीदारी, स्त्रियो की अधीनता के कारण, कार्य सहभागिता, आन्दोलनों में भूमिका, पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्रियां, आदि विषयों के बारे मे जानकारी प्राप्त की गई है।

भारत में स्त्री की एक व्यक्ति के रूप में पहचान इन सब प्रयत्नों के बावजूद भी नहीं हो पायी है। परिवार में आज भी उसे एक पुत्री, पत्नी, मां, सास एवं पुत्र-वधू के रूप में पहचाना जाता है न कि एक व्यक्ति के रूप में। भारतीय महिला के परिवार के बाहर उन्हीं लोगों से सम्बन्ध हैं जिनसे परिवार के हैं अर्थात् परिवार के मित्र एवं सम्बन्धी स्त्री के लिए भी वही हैं जो उसे पुरुषों द्वारा परिवार द्वारा प्रदत्त किए गए हैं। परिवार से हटकर उसकी स्वयं की पसन्द के न कोई मित्र हैं न सम्बन्धी। उसको परिवार एवं पति की इच्छा का सम्मान करना पड़ता है। विवाह-साथी के चयन में भी उसकी स्वयं की मर्जी अधिक नहीं चलती। दहेज के लिए ससुराल में उसे प्रताड़ित किया जाता है तथा जलाने एवं यातनाएं देने के मामले भी प्रकाश में आए हैं। संयुक्त परिवार में उसकी स्थिति पुत्र-वधू के रूप में लगभग एक 'बाहरी व्यक्ति' या 'दासी' जैसी ही रही है तथा सास और परिवार के अन्य सदस्यों के साथ उसके सम्बन्ध तनावपूर्ण एवं अधीनता के ही रहे हैं। अनुलोम विवाह की प्रथा के कारण उसे उच्च कुल में ब्याहने की लालसा ने भी उसकी व्यक्ति के रूप में पहचान खोयी है। अनुलोम विवाह के कारण वर-मूल्य बढ़ जाता है और दहेज के कारण स्त्री की स्थिति निम्न हो जाती है। अनुलोम विवाह के कारण सफेदपोश व्यवसायों जैसे डॉक्टर, वकील, न्यायाधीश, प्रशासनिक अधिकारी, इन्जीनियर एवं प्राध्यापक तथा उच्च शिक्षा प्राप्त लड़कों की मांग बढ़ी है।

पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की शिक्षा, प्रशिक्षण, चिकित्सा, रोजगार एवं स्वास्थ्य के बारे में भी कम ध्यान दिया जाता है। भारत में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की मृत्यु-दर भी अधिक है, अतः स्त्री-पुरुष अनुपात में स्त्रियों की कमी पायी जाती है। इन सबके लिए हमारी पुरुष प्रधान समाज-व्यवस्था, पितृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था तथा सदियों से चली आ रही सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत भी उत्तरदायी है।

स्त्रियों की स्थिति को सुधारने एवं एक व्यक्ति में उसकी पहचान के लिए भारतीय संविधान में धर्म, रंग, जाति एवं लिंग के आधार पर भेद-भाव को समाप्त करने की बात कही गई है। विवाह, तलाक, दहेज, बलात्कार, सती-प्रथा, सम्पत्ति उत्तराधिकार, समान वेतन, अनैतिक व्यापार निषेध एवं गोद लेने से सम्बन्धित अनेक अधिनियम बनाए गए है जो स्त्रियों के पक्ष में हैं। किन्तु ये अधिनियम अधिक कारगर सिद्ध नहीं हुए है। कई महिला एवं सार्वजनिक मंचों से भी स्त्रियों को पुरुषों के समकक्ष अधिकार दिलाने एवं उन पर अत्याचार रुकने के लिए आवाज उठायी गयी है फिर भी स्त्रियो की स्थिति में कोई उल्लेखनीय प्रगति नही हुई है।

किन्तु इस स्थिति के लिए केवल पुरुष को ही दोषी नहीं ठहराया जा सकता। एक मत यह है कि स्त्रियां ही स्त्रियों की प्रगति में बाधक है और उन पर किए जाने वाले अत्याचारो के लिए स्वयं ही दोषी हैं। दहेज के लिए बहू को जलाने या प्रताडित करने में सास-मुख्य रूप से दोषी रही है, परिवार में बहू एवं पुत्री को अधिकारों से वंचित करने एवं नियन्त्रण लादने में सास एवं मां के रूप में स्त्री ही जिम्मेदार है।

स्त्रियों की स्थिति में सुधार हेतु उन्हें शिक्षा, प्रशिक्षण एवं रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने होंगे, उनमे अपने अधिकारों के प्रति चेतना पैदा करनी होगी, शोषण एवं दमन के विरुद्ध उन्हे संगठित होकर संघर्ष करना होगा, परिवार एवं समाज में उन्हें पुरुष से पृथक् अपनी एक व्यक्ति के रूप मे पहचान बनानी होगी।

क्या राजनीति और लोक-जीवन में स्त्रियों का प्रवेश वांछनीय है

स्त्रियों की विभिन्न क्षेत्रों में बदली हुई स्थिति को देखकर कुछ व्यक्ति क्षुब्ध हुए है तो कुछ ने प्रसन्नता प्रकट की है। इस सन्दर्भ मे यह प्रश्न उठता है कि क्या नारी को लोक-जीवन, सार्वजनिक-जीवन और राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेना चाहिए अथवा नहीं। अन्य शब्दों में, लोक-जीवन में उनका प्रवेश वांछनीय है या नहीं? इस बारे में दो मत पाए जाते है—एक मत उनके लोक-जीवन में प्रवेश के विपक्ष में है और दूसरा पक्ष में। जो लोग विपक्ष में है उनका कहना है कि (1) स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र घर है, उन्हें पति सेवा तथा बच्चों के लालन-पालन, आदि का कार्य कर अच्छे परिवार के निर्माण में योग देना चाहिए क्योंकि परिवार ही समाज का आधार है। सार्वजनिक कार्य करने पर घर की उपेक्षा होगी, बच्चों का समुचित पालन-पोषण नहीं होगा, वे अनियन्त्रित एवं आवारा हो जायेंगे और परिवार विघटित होगा। (2) राजनीति और लोक-जीवन में भाग लेने पर स्त्रियों में यौन स्वच्छन्दता एवं अनैतिकता फैलेगी। (3) परिवार की धार्मिक क्रियाओं का सम्पादन सुचारु रूप से नहीं हो सकेगा। (4) स्त्रियां कोमल स्वभाव की होने से बाह्य जीवन की कठोरता एवं कठिनाइयों का सफलतापूर्वक मुकाबला नही कर सकेंगी। (5) चूंकि स्त्रियां प्रजनन के कार्य से सम्बन्धित हैं, अतः सार्वजनिक जीवन में भाग लेने की उनकी सीमा है। (6) स्त्रियों का लोक-जीवन में भाग लेना भारतीय सामाजिक मूल्यो के विपरीत है। (7) कई व्यक्ति स्त्रियो की शारीरिक एवं मानसिक क्षमता को पुरुषों से निम्न मानते है, अतः वे उचित निर्णय लेने में असमर्थ होती हैं।

इन सभी दलीलों के आधार पर कुछ व्यक्ति स्त्रियों के लोक-जीवन में प्रवेश को अवांछनीय मानते हैं।

दूसरी ओर कई व्यक्ति स्त्रियों के राजनीति और लोक-जीवन में प्रवेश के पक्ष मे हैं। उनका मत है कि आज जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में स्त्रियों को सौंपे गए दायित्वों का यदि

हम मूल्यांकन करें तो पाएंगे कि उन्होंने सराहनीय कार्य किए हैं तथा कई क्षेत्रों में तो वे पुरुषों से बढ़कर योगदान दे पायी हैं। वे इस बात को उचित नहीं मानते हैं कि स्त्रियों के राजनीतिक और लोक जीवन में प्रवेश करने से परिवार विघटित हो जाएगा। परिवार का संचालन एवं संगठन केवल स्त्री का कार्य ही नहीं है, वरन् स्त्री व पुरुष दोनों का है। रूढ़िवादी सामाजिक मूल्यों को बनाए रखने के लिए स्त्रियों को राजनीति और लोक-जीवन में प्रवेश की इजाजत न देना भी पिछड़ेपन का सूचक है, यह पुरुषों की स्वार्थी-प्रवृत्ति एवं शोषण की नीति को प्रकट करता है। वर्तमान में प्रजातन्त्रीय विचारों की मांग है कि स्त्री-पुरुषों को समान अधिकार प्राप्त हों। यदि स्त्रियां शिक्षा ग्रहण कर सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करेंगी तो वे समाज को अनेक कुप्रथाओं, अन्धविश्वासों, आडम्बरों, रूढ़ियों, आदि से मुक्त कर सकेंगी और परिवार तथा समाज की बदलते समय की मांग के अनुरूप सेवा कर सकेंगी। राजनीति में आने पर वे अपने अधिकारों की रक्षा अच्छी प्रकार से कर सकेंगी। वास्तव में, नवीन परिस्थितियों को देखते हुए स्त्रियों का राजनीति और लोक-जीवन में प्रवेश वांछनीय है, किन्तु इस कारण स्त्रियां इतनी स्वच्छन्द न हो जाएं कि वे अपना सन्तुलन खोकर पथ-भ्रष्ट हो जाएं।

प्रश्न

1 भारतीय स्त्रियों की प्रमुख सामाजिक समस्याओं की विवेचना कीजिए।
2. हिन्दू स्त्रियों की प्रमुख समस्याओं का उल्लेख कीजिए।
3 मुस्लिम स्त्रियों की प्रमुख समस्याएं कौन-कौन सी है?
4 भारत में स्त्रियों की समस्याओं के समाधान हेतु किए गए प्रयत्नों का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।
5 क्या आपकी राय में स्त्रियों को राजनीति में भाग लेने देना चाहिए? तर्क सहित उत्तर दीजिए।
6 निम्नांकित पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए :
   (i) सार्वजनिक जीवन में स्त्रियों का प्रवेश पूर्णतया उचित है।
   (ii) स्त्रियों को सामाजिक न्याय देने से ही समाज की प्रगति सम्भव हो सकती है।
7. आधुनिक काल में प्रजातन्त्र के कारण भारतीय स्त्रियों की स्थिति में आने वाले परिवर्तनों को समझाइए।
8 आधुनिक भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति पर एक लेख लिखिए।
9. आधुनिक भारतीय समाज में नारी के बदलते हुए स्थान की व्याख्या कीजिए।
10 क्या भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन हुआ है? अपने उत्तर की पुष्टि में तर्क दीजिए।
11 "स्वतन्त्र भारत में स्त्रियों की प्रस्थिति पुरुषों के समान है।" अपना मत दीजिए।
12 आधुनिक भारत में हिन्दुओं में स्त्रियों की स्थिति को सुधारने के क्या प्रयास किये गये हैं?

12

कमजोर वर्गों (विशिष्ट समूहों) की समस्याएँ : अनुसूचित जातियों की समस्याएँ

[PROBLEMS OF WEAKER SECTIONS (SPECIAL GROUPS) : PROBLEMS OF SCHEDULED CASTES]

प्रत्येक समाज में मुख्य रूप से दो वर्ग पाए जाते हैं। एक सम्पन्न वर्ग जिसे पूंजीपति वर्ग, अभिजात वर्ग या उच्च वर्ग के नाम से जाना जाता है और दूसरा गरीब वर्ग, जिसे श्रमिक वर्ग, दुर्वल वर्ग, दलित वर्ग, कमजोर वर्ग या पिछड़े वर्ग के नाम से सम्बोधित किया जाता है। कमजोर वर्ग या दुर्वल वर्ग का अध्ययन वर्तमान में अनेक दृष्टियों से आवश्यक हो गया है। समाजशास्त्रियों मे एक ऐसा वर्ग भी है जो समाजशास्त्र में श्रमिकों एवं समाज के कमजोर वर्गो के अध्ययन पर अधिक जोर देता है। इनमें मार्क्सवादी समाजशास्त्री एवं रैडिकल सोशियोलॉजिस्ट प्रमुख हैं। भारतीय सन्दर्भ में कमजोर वर्ग एक ऐसा वर्ग है जो सदियों से सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से शोषित एवं उपेक्षित रहा है। देश की करीब 40 प्रतिशत जनता इस श्रेणी मे आती है। वर्तमान समय में यह वर्ग राजनीतिक दृष्टि से सशक्त एवं प्रभावशाली हो गया है जो अनेक महत्वपूर्ण निर्णयों के लिए उत्तरदायी है।

स्वतन्त्र भारत के संविधान-निर्माताओ ने देश के कमजोर वर्ग का विशेष ध्यान रखा और उसके विकास एवं उत्थान के लिए संविधान में अनेक प्रावधान किए। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमारे देश के नेताओं ने देश में लोकतान्त्रिक समाजवाद की स्थापना का संकल्प व्यक्त किया जो समानता और न्याय पर आधारित था जिसमें अल्पसंख्यक एवं कमजोर वर्ग के हितों की रक्षा का विशेष ध्यान रखा गया। कमजोर वर्ग के उत्थान के लिए हमने पंचवर्षीय योजना, सामुदायिक विकास योजना, समाज कल्याण कार्यक्रम, अन्त्योदय योजना, पिछड़े को पहले, कार्यक्रम एवं अन्य उपायों को अपनाया। हमारे अनेक प्रयासों के बावजूद भी समाज के कमजोर वर्ग की समस्याएं कम नहीं हुईं और आर्थिक विषमता दिनोंदिन बढ़ती गयी जो विकास आयोजकों के लिए चिन्ता और चुनौती का विषय है। वर्तमान में कमजोर वर्ग में असन्तोष और बढा है तथा देश के विभिन्न भागों में संघर्ष की कई घटनाएं घटित हुई हैं। पिछले कुछ वर्षों में सामाजिक विषमता एवं इससे जनित आन्दोलन की जो लहर

चली है, वह भूमिहीन कृषकों एवं भूस्वामियों तथा उच्च एवं निम्न जातियों के बीच चली है। ये आन्दोलन एवं संघर्ष समाज की आर्थिक विषमता एवं कमजोर वर्ग में बढ़ती हुई राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं के परिणाम हैं। इससे पूर्व कि हम कमजोर वर्ग की समस्याओं पर विचार करें, कमजोर वर्ग की अवधारणा समझ लें अर्थात् यह जान लें कि कमजोर वर्ग किसे कहते हैं?

कमजोर वर्ग की अवधारणा : कमजोर वर्ग किसे कहते हैं
(CONCEPT OF WEAKER SECTION)

संवैधानिक दृष्टि से कमजोर, दुर्बल या दलित वर्ग के अन्तर्गत अनुसूचित जातियां, अनुसूचित जनजातियां तथा कुछ अन्य पिछड़े हुए समूह आते हैं। इसमें समाज के साधन-हीन वर्ग को सम्मिलित किया गया है। भारतीय संविधान भ्रातृत्व एवं समानता पर जोर देता है, अतः संविधान-निर्माताओं ने सोचा कि यदि समानता को एक वास्तविकता प्रदान करनी है तो समाज के इन दलित, दुर्बल और कमजोर वर्गों को ऊंचा उठाना होगा और अन्य उच्च वर्गों एवं सवर्ण हिन्दुओं की भांति ही उन्हें विकास की सुविधाएं प्रदान करनी होंगी। यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 46 में इस सन्दर्भ में इस प्रकार उल्लेख किया गया :—"राज्य जनता के दुर्बलतर अंगों के, विशेषतया अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के, शिक्षा तथा अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से रक्षा करेगा और सामाजिक अन्याय तथा सभी प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करेगा।" भारत के संविधान में कमजोर या दुर्बल वर्ग शब्द का जिस प्रकार प्रयोग किया गया है, उससे यह तो अनुमान लगाया जा सकता है कि इसके अन्तर्गत अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के अतिरिक्त भी कुछ वर्गों को शामिल किया गया है। किन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि वे कौन-से वर्ग होंगे।

एम. डी. देसाई, जी. पार्थसारथी, जी. डी. रामाराव, बी. एस. मिन्हास एवं योगेश अटल आदि अर्थशास्त्रियों एवं समाजशास्त्रियों ने कमजोर वर्ग को परिभाषित करने के लिए मुख्य रूप से आर्थिक-सामाजिक मापदण्ड निर्धारित किया है। **इन विद्वानों के अनुसार कमजोर या दुर्बल वर्ग के अन्तर्गत निम्नांकित विशेषताओं वाले व्यक्तियों को सम्मिलित किया जाता है :**

(1) वे व्यक्ति जो अपने जीवन की न्यूनतम मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा न कर सकें। भोजन, वस्त्र, आवास तथा चिकित्सा की सुविधाएं जुटाने में असमर्थ हों और उनकी आय निर्धनता रेखा (Poverty Line) से बहुत नीचे हो।

(2) वे व्यक्ति जो मुख्यतया दैनिक मजदूरी पर ही आश्रित हों और वह भी अनियमित तथा ऋतुओं के परिवर्तन पर आश्रित हों।

(3) वे व्यक्ति जिनके उत्पादन में सक्रिय सहयोग प्रदान करने के उपरान्त भी निरन्तर श्रम का शोषण किया जाता रहा हो और जो अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ऋणग्रस्त हों।

(4) वे व्यक्ति जिनके पास इतनी लागत पूंजी भी नहीं है कि वे कच्चे माल तथा अन्य उत्पादित वस्तुओं को खरीद सकें।

(5) लघु तथा सीमान्त कृषक जो सिंचाई आदि की सुविधाओं से वंचित हों।

(6) वे व्यक्ति जो मानवीय ऊर्जा (जिसमें परिवार के सदस्य ही कार्य करें) तथा पशु ऊर्जा के सहारे ही जीवनयापन करें।

उपर्युक्त सभी मापदण्डो के आधार पर कमजोर वर्ग के अन्तर्गत समाज के उस वर्ग को सम्मिलित किया जाता है जो सामाजिक-आर्थिक सुविधाओ से वंचित, शोषित एवं पिछड़ा हुआ हो। इन मापदण्डों के आधार पर **अनुसूचित जनजातियो, अनुसूचित जातियों, पिछड़े वर्गो, लघु तथा सीमान्त कृषकों, भूमिहीन मजदूरों, बंधुआ मजदूरों एवं परम्परागत कारीगरों को कमजोर वर्ग के अन्तर्गत माना गया है।** हम कमजोर वर्ग के एक भाग—अनुसूचित जातियो की समस्याओं एवं उनसे संबंधित विभिन्न पहलुओ पर यहां विचार करेंगे तथा अगले अध्याय में कमजोर वर्ग के दूसरे भाग अनुसूचित जनजातियो की समस्याओं पर विचार करेगे।

अनुसूचित जातियों का अर्थ
(MEANING OF SCHEDULED CASTES)

सामान्यतः **अनुसूचित जातियों को अस्पृश्य जातियां भी कहा जाता है।** अतः इनकी परिभाषा अस्पृश्यता के आधार पर की गयी है। साधारणत. अनुसूचित जाति का अर्थ उन जातियों से लगाया जाता है जिन्हें धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सुविधाएं दिलाने के लिए जिनका उल्लेख संविधान की अनुसूची मे किया गया है। इन्हें अछूत जातियां, दलित वर्ग, बाहरी जातियां और हरिजन, आदि नामों से भी पुकारा जाता है। अनुसूचित जातियों को ऐसी जातियों के आधार पर परिभाषित किया गया है जो घृणित पेशो के द्वारा अपनी आजीविका अर्जित करती हैं, किन्तु अस्पृश्यता के निर्धारण का यह सर्वमान्य आधार नही है। इसका कारण यह है कि अनेक ऐसी जातियां भी है जो घृणित व्यवसायों में लगी हुई हैं, परन्तु फिर भी उन्हें संवैधानिक रूप से अनुसूचित जाति नहीं माना जाता है। अस्पृश्यता का सम्बन्ध प्रमुखतः पवित्रता एवं अपवित्रता की धारणा से है। हिन्दू समाज मे कुछ व्यवसायों या कार्यो को पवित्र एवं कुछ को अपवित्र समझा जाता रहा है। यहां मनुष्य या पशु-पक्षी के शरीर से निकले हुए पदार्थो को अपवित्र माना गया है। ऐसी दशा मे इन पदार्थो से सम्बन्धित व्यवसाय में लगी जातियों को अपवित्र समझा गया और उन्हें अस्पृश्य कहा गया। अस्पृश्यता समाज की एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत अस्पृश्य समझी जाने वाली जातियों के व्यक्ति सवर्ण हिन्दुओं को स्पर्श नहीं कर सकते।

अस्पृश्यता का तात्पर्य है **'जो छूने योग्य नहीं है।'** अस्पृश्यता एक ऐसी धारणा है जिसके अनुसार एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को छूने, देखने और छाया पड़ने मात्र से अपवित्र हो जाता है। सवर्ण हिन्दुओं का अपवित्र होने से बचाने के लिए अस्पृश्य लोगों के रहने के लिए अलग से व्यवस्था की गयी, उन पर अनेक निर्योग्यताएं लाद दी गयीं और उनके सम्पर्क से बचने के कई उपाय किये गये। अस्पृश्यों के अन्तर्गत वे जातीय समूह आते हैं जिनके छूने से अन्य व्यक्ति अपवित्र हो जायें और जिन्हें पुनः पवित्र होने के लिए कुछ विशेष संस्कार करने पड़ें। इस सम्बन्ध में डॉ. के. एन. शर्मा ने लिखा है, **"अस्पृश्य जातियां वे हैं जिनके स्पर्श से एक व्यक्ति अपवित्र हो जाय और उसे पवित्र होने के लिए कुछ कृत्य करने पड़ें।"**[1] आर. एन. सक्सेना ने इस बारे में लिखा है कि यदि ऐसे लोगों को अस्पृश्य माना जाय जिनके छूने से हिन्दुओं को शुद्धि करनी पड़े तो ऐसी स्थिति में हट्टन के एक उदाहरण के अनुसार ब्राह्मणों को भी अस्पृश्य मानना पड़ेगा क्योंकि दक्षिण भारत में होलिया जाति के लोग ब्राह्मण को अपने गांव के बीच से नहीं जाने देते हैं और यदि वह चला जाता है तो वे लोग गांव की शुद्धि

1. डॉ. के ए. शर्मा, भारतीय समाज और संस्कृति, पृ. 262।

करते है।[1] स्पष्ट है कि अस्पृश्यता के निर्धारण मे छूने मात्र से अपवित्र होने की बात पर्याप्त नही है।

हट्टन ने उपर्युक्त कठिनाइयो को ध्यान मे रखते हुए कुछ ऐसी निर्योग्यताओं का उल्लेख किया है जिनके आधार पर अस्पृश्य जातियो के निर्धारण का प्रयत्न किया गया है। आपने उन लोगो को अस्पृश्य माना है जो (अ) उच्च स्थिति के ब्राह्मणों की सेवा प्राप्त करने के अयोग्य हो, (ब) सवर्ण हिन्दुओं की सेवा करने वाले नाइयो, कहारों तथा दर्जियो की सेवा पाने के अयोग्य हो, (स) हिन्दू मन्दिरो मे प्रवेश प्राप्त करने के अयोग्य हो, (द) सार्वजनिक सुविधाओं (पाठशाला, सड़क तथा कुआं) को उपयोग मे लाने के अयोग्य हो, और (य) घृणित पेशे से पृथक् होने के अयोग्य हो।[2] सारे देश मे अस्पृश्यो के प्रति एकसा व्यवहार नही पाया जाता और न ही देश के विभिन्न भागो मे अस्पृश्यो के सामाजिक स्तर मे समानता पायी जाती है। अतः हट्टन द्वारा दिये गये उपर्युक्त आधार भी अन्तिम नही है। डॉ. डी. एन. मजूमदार के अनुसार, "अस्पृश्य जातियां वे है जो विभिन्न सामाजिक एवं राजनीतिक निर्योग्यताओं से पीड़ित हैं, जिनमें से बहुत-सी निर्योग्यताएं उच्च जातियो द्वारा परम्परागत रूप से निर्धारित और सामाजिक रूप से लागू की गयी है।"[3] स्पष्ट है कि अस्पृश्यता से सम्बन्धित कई निर्योग्यताएं या समस्याएं है जिनका आगे उल्लेख किया गया है।

अनुसूचित जातियों की समस्याएँ
(PROBLEMS OF SCHEDULED CASTES)

भारतीय समाज मे व्याप्त विभिन्न समस्याओ मे से अस्पृश्यता भी एक प्रमुख समस्या है। भारत मे अनुसूचित जातियो के लोगो की संख्या, जिन्हे अस्पृश्य माना जाता रहा है, 1991 की जनगणना के अनुसार 13 82 करोड है, जो कि देश की कुल जनसंख्या का 16 48 भाग है। इस देश मे इन व्यक्तियो को अस्पृश्यता के नाम पर मानवीय अधिकारो से वंचित रखा गया और निम्नतम स्तर का जीवन विताने के लिए बाध्य किया गया। इन लोगो पर सामाजिक, आर्थिक एव धार्मिक निर्योग्यताएं लाद दी गयी जिनकी वजह से इन्हें जीवन की सब प्रकार की सुख-सुविधाओं से वंचित रहना पडा। गांव अथवा नगर के बाहर किसी कोने मे रहने के लिए इन्हे टूटी-फूटी झोपड़ियां या कच्चे मकान ही मिल पाए। इन लोगों का सैकडो-हजारो वर्षो तक शोषण होता रहा और इन्हे सामाजिक न्याय से वंचित रखा गया। कैसी विडम्बना है कि एक ओर हिन्दू-धर्म प्राणी-मात्र के प्रति दया, स्नेह, त्याग और सहानुभूति के भावो को महत्व देता है और दूसरी ओर मानव-मानव के बीच भेदभाव को अपनाता है।

अस्पृश्यता जाति-व्यवस्था के इतिहास के साथ जुडी हुई है। वैदिक काल मे समाज के सम्मुख अस्पृश्यता जैसी कोई समस्या नही थी। इतना अवश्य था कि उस समय पवित्रता और अपवित्रता सम्बन्धी विचार अवश्य पाए जाते थे तथा अपवित्र कार्यों में लगे लोगो को दूध से बनी वस्तुओ एवं यज्ञ में काम आने वाली चीजों को छूने की आज्ञा नही थी। उत्तर-वैदिक काल के अन्तिम वर्षों में ऐसे लोगों के लिए चाण्डाल, डोम एवं अन्त्यज, आदि शब्दों का प्रयोग किया जाने लगा। परन्तु फिर भी इनके प्रति सामाजिक भेदभाव और घृणा की भावना

1 डॉ आर एन सक्सेना, भारतीय समाज तथा सामाजिक संस्थाएं, पृ. 99।
2 H Hutton, *Caste in India*, p. 195
3 N Majumdar, *Races and Culture of India*, p 336

अधिक कटु नहीं थी। डॉ. घुरिये ने बताया कि उस समय यह विश्वास अवश्य प्रचलित था कि यज्ञ के स्थान पर शूद्र को नहीं आने देना चाहिए।[1] आपकी मान्यता यह है कि उत्तर-वैदिक काल में चारों वर्ग एक-दूसरे से पृथक हो गए थे और अस्पृश्यता से सम्बन्धित प्रतिबन्ध केवल चाण्डालों या अन्त्यजों पर ही नहीं बल्कि पूरे शूद्र वर्ण पर लागू किए जा चुके थे। जैन और बौद्ध धर्म के प्रभाव के फलस्वरूप इस समय शूद्रों की स्थिति मे कुछ सुधार लाने का प्रयास किया गया। इस समय तक चाण्डालों की स्थिति में काफी गिरावट आ चुकी थी।

स्मृतिकाल में अस्पृश्यता की भावना में तेजी से वृद्धि होने लगी। मनुस्मृति के निर्देशों ने अस्पृश्यता को बढ़ाने में विशेष योग दिया। मनुस्मृति में बताया गया है कि चाण्डालों एवं स्वपचो को गांव के बाहर रहना चाहिए, दिन में गांव मे नहीं आना चाहिए और अपने बर्तनों के प्रयोग को केवल अपने तक ही सीमित रखना चाहिए। इस काल मे चाण्डालों को सबसे अधम कार्य जैसे गन्दगी को साफ करना, लावारिस शवों को उठाना, आवश्यकतानुसार वधिक का कार्य करना, आदि सौंपे गए। ऐसे लोगों के स्पर्श से बचने की बात कही गयी और यहां तक बतलाया गया कि इनका मुंह देखना भी अपवित्रता लाने वाला है। इस वर्ग की स्थिति शूद्रों से भी निम्न समझी गयी।

भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना के पश्चात् अस्पृश्यों की स्थिति में और भी गिरावट आयी। इन्हें किसी एकान्त स्थान पर रहने के लिए बाध्य किया गया। ये किसी पूजापाठ, यज्ञ अथवा धार्मिक उत्सव में भाग नही ले सकते थे। इनके लिए सार्वजनिक स्थान का उपयोग वर्जित था। इन्हें दिन में अपनी बस्ती से बाहर निकलने की भी आज्ञा नहीं थी। सवर्ण हिन्दुओं द्वारा काम में ली जाने वाली वस्तुओं को छूना इनके लिए वर्जित था। ब्रिटिश काल में अछूतों या अस्पृश्यों को दलित वर्ग (depressed class) के नाम से पुकारा गया। अस्पृश्य जातियों के नामकरण के सम्बन्ध में शुरू से काफी विवाद रहा है। इन्हें अछूत, दलित, बाहरी जातियां, हरिजन एवं अनुसूचित जाति आदि नामों से सम्बोधित किया जाता रहा है। इनकी आर्थिक स्थिति के अत्यन्त दयनीय होने के कारण इनके लिए अछूत शब्द के स्थान पर दलित वर्ग शब्द का प्रयोग किया गया। आर्य समाज की मान्यता थी कि ये वर्ग अछूत न होकर दलित है क्योंकि इन्हें समाज ने दबाकर और सब प्रकार के अधिकारों से वंचित रखा है। इनकी निम्न दशा के लिए ये स्वयं उत्तरदायी न होकर समाज उत्तरदायी है। सन् 1931 की जनगणना के पूर्व तक इनके लिए दलित शब्द का ही प्रयोग किया जाता था। इस जनगणना के समय जनगणना अधीक्षक ने 'दलित' शब्द के स्थान पर बाहरी जातियां (Exterior Castes) शब्द का प्रयोग किया। इस शब्द के प्रयोग का कारण यह था कि इन जातियों का भारतीय संरचना में कोई स्थान नहीं था। डॉ. अम्बेडकर ने इंगलैण्ड में 'गोलमेज' कॉन्फ्रेंस में सुझाव रखा कि हिन्दू समाज से पृथक् होने के कारण इन बाहरी जातियों अर्थात अछूतों को पृथक् रूप से मतदान का अधिकार मिलना चाहिए। महात्मा गांधी ने इसका विरोध किया और कहा कि दलित वर्ग हिन्दू समाज का अभिन्न अंग है। यदि इस वर्ग को पृथक् निर्वाचन का अधिकार दिया गया तो हिन्दू समाज विघटित हो जाएगा। सन् 1931 की गोलमेज कॉन्फ्रेंस के पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने अस्पृश्य जातियों को हिन्दुओं से अलग घोषित कर दिया और उन्हें पृथक् निर्वाचन का अधिकार दिया। महात्मा गांधी ने इसके विरोध में आमरण अनशन किया। परिणामस्वरूप दलित वर्ग के लिए पूना पैक्ट नामक समझौता हुआ। इसके अनुसार उन्हें कुछ अधिकार दिए

1 G. S. Ghurye, *Caste, Class and Occupation*, p. 219.

तथा इन्हें हिन्दुओ का ही एक अंग मान लिया गया। महात्मा गांधी ने इनके लिए हरिजन शब्द का प्रयोग किया और इनकी स्थिति में सुधार लाने का प्रयत्न किया। सन् 1935 के विधान में इन लोगो को कुछ विशेष सुविधाएं प्रदान करने की दृष्टि से एक अनुसूची तैयार की गयी जिसमे विभिन्न अस्पृश्य जातियों को सम्मिलित किया गया। इस अनुसूची के आधार पर वैधानिक दृष्टिकोण से इन जातियों के लिए 'अनुसूचित जाति' (Schedule Caste) शब्द को काम में लिया गया। वर्तमान मे सरकारी प्रयोग मे इनके लिए 'अनुसूचित जाति' शब्द को ही काम में लिया जाता है। इनके लिए तैयार की गयी सूची मे जिन अस्पृश्य जातियों को रखा गया उन्हें अनुसूचित जातियां कहा गया।

स्वतन्त्र भारत के संविधान की धारा 341 के अनुसार राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि वह राज्यों के राज्यपालों के परामर्श से राज्य की अनुसूचित जातियों की घोषणा करे। 1955 मे कानून के आधार पर अस्पृश्यता को समाप्त किया जा चुका है परन्तु हमें यह नही भूलना चाहिए कि कानून बनाने मात्र से इस समस्या से छुटकारा प्राप्त नही किया जा सकता है।

साधारणतः उन जातियो को अस्पृश्य जातियां माना जाता है जो घृणित पेशों के द्वारा अपनी जीविका अर्जित करती हैं। परन्तु अस्पृश्यता के निर्धारण का यह सर्वमान्य आधार नहीं है। इसका कारण यह है कि अनेक ऐसी जातियां भी हैं जो घृणित व्यवसायों मे लगी हुई नहीं हैं परन्तु फिर भी उन्हें परम्परागत रूप से अस्पृश्य माना जाता है। अस्पृश्यता का सम्बन्ध प्रमुखतः पवित्रता एवं अपवित्रता की धारणा से है। हिन्दू समाज में कुछ व्यवसायों या कार्यो को पवित्र एवं कुछ को अपवित्र समझा जाता रहा है। यहां मनुष्य या पशु-पक्षी के शरीर से निकले हुए पदार्थों को अपवित्र माना गया है। ऐसी दशा में इन पदार्थो से सम्बन्धित व्यवसाय में लगी जातियों को अपवित्र समझा गया और उन्हें अस्पृश्य कहा गया। अस्पृश्यता समाज की एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत अस्पृश्य समझी जाने वाली जातियो के व्यक्ति सवर्ण हिन्दुओ को स्पर्श नहीं कर सकते।

अस्पृश्यता का तात्पर्य है 'जो छूने योग्य नहीं है।' अस्पृश्यता एक ऐसी धारणा है जिसके अनुसार एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को छूने, देखने और छाया पड़ने मात्र से अपवित्र हो जाता है। सवर्ण हिन्दुओं को अपवित्र होने से बचाने के लिए अस्पृश्य लोगों के रहने के लिए अलग से व्यवस्था की गयी, उन पर अनेक निर्योग्यताएं लाद दी गयीं और उनके सम्पर्क से बचने के कई उपाय किए गए। अस्पृश्यों के अन्तर्गत वे जातीय समूह आते हैं जिनके छूने से अन्य व्यक्ति अपवित्र हो जाएं और जिन्हें पुनः पवित्र होने के लिए कुछ विशेष संस्कार करने पडे।

इस सम्बन्ध में डॉ. के. एन. शर्मा ने लिखा है, "अस्पृश्य जातियां वे हैं जिनके स्पर्श से एक व्यक्ति अपवित्र हो जाए और उसे पवित्र होने के लिए कुछ कृत्य करने पड़ें।"[1]

हट्टन ने कुछ ऐसी निर्योग्यताओ का उल्लेख किया है जिनके आधार पर अस्पृश्य जातियों के निर्धारण का प्रयत्न किया गया है। आपने उन लोगों को अस्पृश्य माना है जो (अ) उच्च स्थिति के ब्राह्मणों की सेवा प्राप्त करने के अयोग्य हों, (ब) सवर्ण हिन्दुओं की सेवा करने वाले नाइयों, कहारों तथा दर्जियों की सेवा पाने के अयोग्य हों, (स) हिन्दू मन्दिरों में प्रवेश प्राप्त करने के अयोग्य हों, (द) सार्वजनिक सुविधाओं (पाठशाला, सड़क तथा कुआं) को उपयोग

1 डॉ. के. एन. शर्मा, भारतीय समाज और संस्कृति, पृ. 262।

में लाने के अयोग्य हों, और (य) घृणित पेशे से पृथक् होने के अयोग्य हों।[1] सारे देश में अस्पृश्यों के प्रति एकसा व्यवहार नही पाया जाता और न ही देश के विभिन्न भागों मे अस्पृश्यों के सामाजिक स्तर में समानता पायी जाती है। अतः **हट्टन द्वारा बताए गए उपर्युक्त आधार भी** अन्तिम नहीं हैं।

डॉ. डी. एन. मजूमदार के अनुसार, **"अस्पृश्य जातियां वे हैं जो विभिन्न सामाजिक एवं राजनैतिक निर्योग्यताओं से पीड़ित है, जिनमें से बहुत-सी निर्योग्यताएं उच्च जातियों द्वारा परम्परागत रूप से निर्धारित और सामाजिक रूप में लागू की गयी है।"**[2] स्पष्ट है कि अंस्पृश्यता से सम्बन्धित कई निर्योग्यताएं हैं।

अनुसूचित जातियों (अस्पृश्यो) की समस्याएं (निर्योग्यताएं)
[PROBLEMS (DISABILITIES) OF SCHEDULED CASTES]

1981 की जनगणना के अनुसार देश में अनुसूचित जातियो की जनसंख्या 10.47 करोड़ थी जो बढ़कर 1991 में करीब 13.80 करोड़ हो गई जो देश की जनसंख्या की लगभग 15.7% है। अनुसूचित जातियो की सर्वाधिक जनसंख्या उत्तर प्रदेश में देश की कुल अनुसूचित जातियो की जनसंख्या का 2.3 प्रतिशत है। इसके बाद प. बंगाल (11.4%), बिहार (9.6%), आन्ध्र प्रदेश (9.6%), तमिलनाडु (8 5%), मध्य प्रदेश (7%) एवं राजस्थान (5.6%) का स्थान है। इस प्रकार देश की कुल अनुसूचित जाति जनसंख्या का 68.4 प्रतिशत भाग इन छः राज्यों में निवास करता है। लगभग 84 प्रतिशत अनुसूचित जातियो की जनसंख्या गांवों में निवास करती है जो खेतिहर मजदूरों, सीमान्त किसानो, जोतदारों के रूप में एवं साझे में खेती करके अपना जीवन-यापन करती है। देश में अनुसूचित जातियों की स्थिति को जानने के बाद अब हम उनकी समस्याओं एवं निर्योग्यताओ पर विचार करेंगे।

निर्योग्यताओं का तात्पर्य है—किसी वर्ग अथवा समूह को कुछ अधिकारों या सुविधाओं को प्राप्त करने के अयोग्य मान लेना। भारत में अस्पृश्य या अनुसूचित जातियों की कई निर्योग्यताएं रही हैं। इन निर्योग्यताओं के कारण इन्हें जीवन मे आगे बढ़ने और अपने व्यक्तित्व के विकास का अवसर नही दिया गया। ये निर्योग्यताएं इनके लिए अभिशाप या बहुत बड़ी समस्या के रूप में सिद्ध हुई। यहां यह कहा जा सकता है कि इन्हें दासों के समान जीवन बिताने के लिए मजबूर किया गया और सब प्रकार की सुख-सुविधाओं से वंचित रखा गया। अस्पृश्यों की ये निर्योग्यताएं उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक ही मौजूद रही हैं, बीसवी शताब्दी के आरम्भ से ही सुधार आन्दोलनो तथा बाद में स्वतन्त्र भारत में सरकारी प्रयत्नो के परिणामस्वरूप इनमे काफी कमी आयी है। स्मृतियो, पुराणों तथा धर्म-ग्रन्थों में अस्पृश्यों की निर्योग्यताओं का उल्लेख अग्र प्रकार से किया गया है :

(I) धार्मिक निर्योग्यताएं (Religious Disabilities)

अस्पृश्यो की धार्मिक निर्योग्यताएं निम्नलिखित है :

(1) मन्दिर प्रवेश व पवित्र स्थानों के उपयोग पर प्रतिबन्ध—अस्पृश्यो को अपवित्र माना गया और उन पर अनेक निर्योग्यताएं लाद दी गयीं। इन लोगों को मन्दिर प्रवेश, पवित्र नदी-घाटों के उपयोग, पवित्र स्थानों पर जाने तथा अपने ही घरों पर देवी-देवताओं की पूजा करने का अधिकार नहीं दिया गया। इन्हें वेदों अथवा अन्य धर्म-ग्रन्थों के अध्ययन एवं श्रवण

1 J. H. Hutton, *Caste in India*, p. 195
2 D. N. Majumdar, *Races and Cultures of India*, p 336

की आज्ञा नहीं दी गयी। इन्हें अपने सम्बन्धियों के शव सार्वजनिक श्मशान घाट पर जलाने की भी स्वीकृति नहीं दी गयी।

(2) **धार्मिक सुख-सुविधाओं से वंचित**—*अस्पृश्यों को सब प्रकार की धार्मिक सुविधाओं से वंचित कर दिया गया, यहां तक कि सवर्ण हिन्दुओं को आदेश दिया गया कि वे अपने* धार्मिक जीवन से अस्पृश्यों को पृथक् रखें। अस्पृश्य लोगों को पूजा, आराधना, भगवत भजन, कीर्तन आदि का कोई अधिकार नहीं दिया गया। ब्राह्मणों को इनके यहां पूजा, श्राद्ध तथा यज्ञ कराने की आज्ञा नहीं दी गयी।

(3) **धार्मिक संस्कारों के सम्पादन पर प्रतिबन्ध**—अस्पृश्यों को जन्म से ही अपवित्र माना गया है और इसी कारण इनके शुद्धिकरण के लिए संस्कारों की व्यवस्था नहीं की गयी है। हिन्दुओं के शुद्धिकरण हेतु धर्म-ग्रन्थों में सोलह प्रमुख संस्कारों का उल्लेख मिलता है। इनमें [illegible] …ध्ययन [illegible]

(II) सामाजिक निर्योग्यताएं (*Social Disabilities*)

अस्पृश्यों की अनेक सामाजिक निर्योग्यताएं रही हैं जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं :

(1) *सामाजिक सम्पर्क पर रोक—अस्पृश्यों को सवर्ण हिन्दुओं के साथ सामाजिक सम्पर्क* रखने और उनके सम्मेलनों, गोष्ठियों, पंचायतों, उत्सवों एवं समारोहों में भाग लेने की आज्ञा नहीं दी गयी। उन्हें उच्च जाति के हिन्दुओं के साथ खान-पान का सम्बन्ध रखने से वंचित रखा गया। अस्पृश्यों की छाया तक को अपवित्र माना गया और उन्हें सार्वजनिक स्थानों के उपयोग की आज्ञा नहीं दी गयी। उनके दर्शनमात्र से सवर्ण हिन्दुओं के अपवित्र हो जाने की आशंका से अस्पृश्यों को अपने सब कार्य रात्रि में ही करने पड़ते।

(2) **सार्वजनिक वस्तुओं के उपयोग पर प्रतिबन्ध**—अस्पृश्यों को अन्य हिन्दुओं के द्वारा काम में लिए जाने वाले कुओं से पानी नहीं भरने दिया जाता, स्कूलों में पढ़ने एवं छात्रावासों में रहने नहीं दिया जाता था। इन लोगों को उच्च जातियों द्वारा काम में ली जाने वाली वस्तुओं का प्रयोग नहीं करने दिया जाता था। ये पीतल तथा कांसे के बर्तनों का प्रयोग नहीं कर सकते थे, अच्छे वस्त्र एवं सोने के आभूषण नहीं पहन सकते थे। दुकानदार इन्हें खाना नहीं देते, धोबी इनके कपड़े नहीं धोते, नाई बाल नहीं बनाते और कहार पानी नहीं भरते। इन्हें *अन्य सवर्ण हिन्दुओं की बस्ती या मोहल्ले में रहने की आज्ञा नहीं थी।*

(3) **शिक्षा और मनोरंजन सम्बन्धी सुविधाओं से वंचित**—न केवल अस्पृश्यों को बल्कि शूद्रों तक को शिक्षा प्राप्त करने की आज्ञा नहीं दी गयी। इन्हें चौपालों, मेलों तथा हाटों में शामिल होकर अपना मनोरंजन करने का अधिकार नहीं दिया गया। परिणाम यह हुआ कि समाज का एक बड़ा वर्ग निरक्षर रह गया।

(4) **अस्पृश्यों के भीतर भी संस्तरण (*Hierarchy*)**—एक आश्चर्यजनक बात तो यह है कि स्वयं अस्पृश्यों में भी संस्तरण की प्रणाली अर्थात् ऊंच-नीच का भेदभाव पाया जाता है। ये लोग तीन सौ से अधिक उच्च एवं निम्न जातीय समूहों में बंटे हुए हैं जिनमें से प्रत्येक समूह की स्थिति एक-दूसरे से ऊंची अथवा नीची है। इस सम्बन्ध में के. एम. पणिक्कर का कहना है कि "विचित्र बात तो यह है कि स्वयं अछूतों के भीतर एक पृथक् जाति के समान

संगठन था।....सवर्ण हिन्दुओं के समान उनमें भी बहुत उच्च और निम्न स्थिति वाली उपजातियों का संस्तरण था, जो एक-दूसरे से श्रेष्ठ होने का दावा करती थीं।"

(5) अस्पृश्य एक पृथक् समाज के रूप में—एक पृथक् समाज के रूप में अस्पृश्यों को अनेक सामाजिक निर्योग्यताओं से पीडित रहना पड़ा है। इस बारे में डॉ. पणिक्कर ने लिखा है कि जाति व्यवस्था जब अपनी यौवनावस्था में क्रियाशील थी, उस समय इन अस्पृश्यों (पंचम वर्ण) की स्थिति कई प्रकार से दासता से भी अधिक खराब थी। दास कम से कम एक स्वामी के ही अधीन होता और इसलिए उसके अपने स्वामी के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध होते थे। लेकिन अस्पृश्यों के परिवार पर तो गांव भर की दासता का भार होता था।

(III) आर्थिक निर्योग्यताएं (Economic Disabilities)

अस्पृश्यों को वे सब कार्य सौंपे गए जो सवर्ण हिन्दुओं के द्वारा नही किए जाते थे। आर्थिक निर्योग्यताओं के कारण अस्पृश्यों की आर्थिक स्थिति इतनी दयनीय हो गयी कि उन्हें विवश होकर सवर्णों के जूठे भोजन, फटे-पुराने वस्त्रों एवं त्याज्य वस्तुओं से ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करनी पड़ी। इनकी आर्थिक निर्योग्यताएं इस प्रकार है :

(1) व्यावसायिक निर्योग्यता—अस्पृश्यों को मल-मूत्र उठाने, सफाई करने, मरे हुए पशुओं को उठाने और उनके चमड़े से वस्तुएं बनाने का कार्य ही सौंपा गया। इन्हें खेती करने, व्यापार चलाने या शिक्षा प्राप्त कर नौकरी करने का अधिकार नहीं दिया गया। ये लोग ग्रामों में अधिकतर भूमिहीन श्रमिकों के रूप में कार्य करते है। इन लोगों पर यह निर्योग्यताएं लाद दी गयी कि ये अपने परम्परागत पेशे को छोड़कर किसी अन्य पेशे को नहीं अपना सकते हैं।

(2) सम्पत्ति सम्बन्धी निर्योग्यता—व्यावसायिक निर्योग्यता के अलावा इन्हें सम्पत्ति सम्बन्धी निर्योग्यता से भी पीड़ित रहना पड़ा। इन्हें भूमि-अधिकार तथा धन संग्रह की आज्ञा नहीं दी गयी। अस्पृश्यों को दासों के रूप में अपने स्वामियों की सेवा करनी पड़ती थी, चाहे प्रतिफल के रूप में उन्हें कितना ही कम क्यों न दिया जाए। अस्पृश्यों की सम्पत्ति सम्बन्धी निर्योग्यता से ही द्रवित हो आचार्य विनोबा भावे ने इनके लिए 'भूदान' आन्दोलन चलाया।

(3) भरपेट भोजन की सुविधा भी नहीं (आर्थिक शोषण)—अस्पृश्यों का आर्थिक दृष्टि से शोषण हुआ है। उन्हें घृणित से घृणित पेशों को अपनाने के लिए बाध्य किया गया और बदले में इतना भी नहीं दिया गया कि वे भरपेट भोजन भी कर सकें। उनकी महत्वपूर्ण सेवाओं के बदले में समाज ने उन्हें शेष जूठा भोजन, त्याज्य वस्तुएं और फटे-पुराने वस्त्र दिए। हिन्दुओं ने धर्म के नाम पर अपने इस सारे व्यवहार को उचित माना और अस्पृश्यों को इस व्यवस्था से सन्तुष्ट रहने के लिए बाध्य किया।

(IV) राजनीतिक निर्योग्यताएं (Political Disabilities)

अस्पृश्यों को राजनीति के क्षेत्र में सब प्रकार के अधिकारों से वंचित रखा गया है ? उन्हें शासन के कार्य में किसी भी प्रकार का कोई हस्तक्षेप करने, कोई सुझाव देने, सार्वजनिक सेवाओं के लिए नौकरी प्राप्त करने या राजनीतिक सुरक्षा प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं दिया गया। अस्पृश्यों को कोई भी अपमानित कर सकता था और यहां तक कि पीट भी सकता था। ऐसे व्यवहारों के विरुद्ध उन्हें सुरक्षा प्राप्त नहीं थी। उनके लिए सामान्य अपराध के लिए भी कठोर दण्ड की व्यवस्था थी।

दण्ड की कठोरता का इसी बात से पता चलता है कि मनु ने बतलाया है कि निम्न वर्ण का मनुष्य (शूद्र अथवा अस्पृश्य) अपने जिस अंग से उच्च वर्ण के व्यक्तियों को चोट पहुंचाए, उसका वह अंग ही काट डाला जाएगा.......वह, जो हाथ या डण्डा उठाएगा, उसका हाथ काट दिया जाएगा। स्पष्ट है कि अस्पृश्यों की अनेक राजनीतिक निर्योग्यताएं रही हैं।

अस्पृश्यों की उपर्युक्त निर्योग्यताएं मध्यकालीन सामाजिक व्यवस्था से विशेष रूप से सम्बन्धित हैं। वर्तमान सन्दर्भ में ये निर्योग्यताएं इतिहास की बातें बनकर रह गयी हैं। **वर्तमान में अस्पृश्यों एवं अनुसूचित जातियों की समस्या प्रमुखतः सामाजिक और आर्थिक है न कि धार्मिक और राजनीतिक।** इतने लम्बे समय से सब प्रकार के अधिकारों से वंचित, निरक्षर तथा चेतना-शून्य होने के कारण इनकी स्थिति में सुधार होने में कुछ समय लगेगा। इनके प्रति लोगों की मनोवृत्ति धीरे-धीरे बदलेगी और कालान्तर में ये सामाजिक जीवन की मुख्य धारा में प्रवाहित हो सकेंगे। अस्पृश्यों की निर्योग्यताएं नगरो में समाप्त-सी होती जा रही हैं, परन्तु ग्रामों में आज भी दिखलायी पड़ती हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि ग्रामों में सामाजिक परिवर्तन की गति धीमी है।

यह सत्य है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद अस्पृश्य कहे जाने वाले या अनुसूचित जाति के अन्तर्गत आने वाले लोगों की कई निर्योग्यताएं दूर हुई हैं। किन्तु साथ ही यह भी सत्य है कि इनके लिए किए गए कल्याण कार्यो के परिणामस्वरूप अनेक नयी समस्याएं भी पैदा हुई हैं। उदाहरणार्थ, इनमें राजनीतिक चेतना एवं अपने अधिकारो के प्रति जागरूकता बढ़ी है जिसका परिणाम यह हुआ है कि सवर्णो एवं अवर्णो मे तनाव एवं संघर्ष उत्पन्न हुए हैं। अनुसूचित जातियों और सवर्णों के बीच टकराव दूर करने के सभी सम्भव प्रयत्न किए जाने चाहिए क्योंकि यह किसी भी दृष्टि से राष्ट्रीय हित में नही है। अनुसूचित जातियों की एक नवीन समस्या यह भी है कि इनमे भी वर्गभेद पनपने लगा है। जिन परिवारों के सदस्यों ने उच्च शिक्षा का लाभ प्राप्त कर उच्च पद प्राप्त कर लिए हैं अथवा सरकार से ऋण अथवा अन्य सुविधाएं प्राप्त कर अपनी आर्थिक स्थिति सुधार ली है, वे स्वयं को अपनी ही जाति के अन्य लोगों से पृथक् एवं उच्च समझने लगे है। ऐसे लोगों की अपने स्वयं के परिवार की उन्नति में तो रुचि है किन्तु अपनी जाति, समाज और राष्ट्र के व्यापक दृष्टिकोण से सोचने व कार्य करने का उनमे अभाव है।

अस्पृश्यता के दुष्परिणाम
(EVIL EFFECTS OF UNTOUCHABILITY)

अस्पृश्यों पर लगाए गए प्रतिबन्धो या उन पर थोपी गयी निर्योग्यताओं के दुष्परिणाम न केवल अस्पृश्यों को बल्कि सम्पूर्ण हिन्दू समाज को भी भुगतने पड़े है, ये दुष्परिणाम या प्रभाव निम्न प्रकार हैं :

(1) सामाजिक एकता मे बाधक (Hinderance to Social Unity)—अस्पृश्यता ने हिन्दू समाज को सैकडों उच्च एवं निम्न स्थिति वाले समूहों में बांटने में विशेष भूमिका निभायी है और समाज की एकता मे बाधा पहुंचायी है। अस्पृश्यता की प्रवृत्ति ने ही समाज को छोटे-छोटे आत्म-केन्द्रित इकाइयों में बांटकर सामाजिक एकात्मकता के भाव को नहीं पनपने दिया है। साथ ही समाज के इतने बड़े वर्ग के अज्ञानता और अन्धकार के गर्त में सैकडों

वर्षों तक डूबे रहने के कारण कितनी अधिक राष्ट्रीय हानि हुई है, देश की प्रगति में कितनी बाधा पहुंची है, इसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है।

(2) धर्म परिवर्तन (Conversion)—अस्पृश्यों पर थोपी गयी निर्योग्यताओं से समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग निरक्षर, विवेकहीन एवं चेतना शून्य हो गया जो समाज और राष्ट्र की प्रगति में सक्रिय योग नहीं दे सका। लाखों-करोड़ों अस्पृश्य लोगो को अपने व्यक्तित्व के विकास का पूरा अवसर नही मिला और अभावमय एवं तिरस्कृत जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होना पड़ा। अपने ऐसे जीवन से दुखी हो लाखों अस्पृश्य लोगों ने इस्लाम और ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया।

(3) राजनीतिक फूट (Political Disunion)—अस्पृश्यों की निर्योग्यताओं का एक दुष्परिणाम यह हुआ कि लोगों में बन्धुत्व और पारस्परिक स्नेह की भावना नहीं पनप सकी। अस्पृश्यता की कलुषित भावना के कारण ही अस्पृश्यों ने अपने को हिन्दू समाज से पृथक् समझ लिया और डॉ. अम्बेडकर ने इनके लिए पृथक् मताधिकार की मांग की। यदि महात्मा गांधी के द्वारा इसका विरोध नहीं किया जाता तो अस्पृश्य जातियां सदैव के लिए हिन्दू समाज से अलग हो जातीं।

(4) अन्तर्जातीय तनाव के लिए उत्तरदायी (Responsible for Intercaste Tensions)—अस्पृश्यता विभिन्न जातियों के बीच तनाव का एक प्रमुख कारण रही है। यहां लाखों-करोड़ों व्यक्तियों की छाया मात्र अपवित्रता लाने वाली समझी जाती रही है। इन्हें सब प्रकार के मानवोचित अधिकारों से वंचित रखा गया है। परिणामस्वरूप इनमे उच्च जातियों के प्रति वैमनस्य और घृणा की भावना पनपती रही जिसने आगे चलकर जातिगत तनाव और संघर्ष का रूप ग्रहण कर लिया। आज जबकि अस्पृश्य लोगों को कानूनी तौर पर संरक्षण और कुछ सुविधाएं प्राप्त हुई हैं तो सवर्णों एवं अवर्णो (अस्पृश्यो) के बीच तनाव और संघर्ष और भी बढ़े हैं।

(5) आर्थिक असमानताएं (Economic Inequalities)—यहां अस्पृश्यता के फलस्वरूप आर्थिक असमानताओं का एक नग्न दृश्य देखने को मिलता है। यहां संस्कृति और धर्म के नाम पर लाखों-करोड़ों लोगों का आर्थिक शोषण हुआ है, इन्हें सब प्रकार की सुविधाओं से वंचित रखा और पशु-तुल्य जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य किया गया। साथ ही समाज के इतने बड़े वर्ग को किसी भी प्रकार की शिक्षा अथवा औद्योगिक प्रशिक्षण न देकर देश के आर्थिक विकास मे बाधा उत्पन्न की गयी है। अस्पृश्यता के कारण न केवल अस्पृश्यों को अभावमय स्थिति में जीवन बिताना पड़ा है, बल्कि साथ ही राष्ट्र को भी आर्थिक हानि उठानी पड़ी है। यहां कुछ लाभप्रद व्यवसायों पर उच्च जातियों का ही एकाधिकार रहा है।

(6) अशिक्षा एवं दरिद्रता (Illiteracy and Poverty)—अस्पृश्यता के नाम पर समाज के इतने बडे वर्ग को शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार से वंचित रखा गया और चेतना-शून्य और विवेकहीन बना दिया गया। करोड़ों व्यक्तियों को शिक्षा से वंचित रखकर किसी समाज के प्रगति के पथ पर आगे बढ़ने की आशा नहीं की जा सकती। इसके अलावा गन्दे और घृणित समझे जाने वाले कार्यों में अस्पृश्यों को लगाए रखकर और बदले में भोजन की बची हुई जूठन, फटे-पुराने वस्त्र और टूटी-फूटी झौंपड़ियां देकर इनके प्रति घोर अन्याय किया गया है। ऐसी स्थिति में इन्हें दरिद्रता के मध्य अपना जीवन बिताना पड़ा है।

(7) स्वास्थ्य का निम्न स्तर (Low Standard of Health)—अस्पृश्यों को गांव अथवा नगर के बाहर किसी कोने में अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों में अपनी झोंपड़ी या टूटा-फूटा मकान बनाकर रहने के लिए बाध्य किया गया। यहां न पीने के स्वच्छ पानी की, न चिकित्सा की, न मनोरंजन की और न किसी अन्य प्रकार की सार्वजनिक सुविधाओं की व्यवस्था थी। साथ ही इनके व्यवसाय की प्रकृति ही कुछ ऐसी थी कि व्यक्ति कार्य की अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों के कारण शीघ्र ही किसी भी बीमारी का शिकार हो सकता था। इसके अतिरिक्त, निर्धनता के कारण ये न तो पौष्टिक भोजन करते थे और न ही बीमार पड़ने पर चिकित्सा की समुचित व्यवस्था। ऐसी स्थिति में अस्पृश्यों के स्वास्थ्य का निम्न होना स्वाभाविक है।

स्पष्ट है कि अस्पृश्यों को, समाज को और सम्पूर्ण राष्ट्र को अस्पृश्यता के दुष्परिणामों को भुगतान पड़ा है। समाज के इतने बड़े वर्ग की उपेक्षा करके उन्हें मानवोचित अधिकारों से वंचित रखकर, दीन-हीन और दासों के समान जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य करके सामाजिक प्रगति और राष्ट्र को समृद्ध एवं वैभवशाली बनाने की कल्पना नहीं की जा सकती।

अस्पृश्यता निवारण : अनुसूचित जातियों का कल्याण
(ERADICATION OF UNTOUCHABILITY : WELFARE OF SCHEDULED CASTES)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अस्पृश्यता भारतीय समाज के सम्मुख एक गम्भीर समस्या के रूप में है। आज ऐसे लोगों की संख्या काफी है जो अस्पृश्यता को हिन्दू समाज का सबसे बड़ा कलंक मानते हैं। वर्तमान में ऐसे लोगों की संख्या भी बढ़ती जा रही है जो अस्पृश्यता में विश्वास नहीं करते हैं। अस्पृश्यो के प्रति कुछ लोगों की मनोवृत्तियों में परिवर्तन आया है तो कुछ के व्यवहारो में। ये परिवर्तन अनेक कारणों जैसे औद्योगीकरण, नगरीकरण, धर्म-निरपेक्ष राज्य, विभिन्न जातियों के व्यक्तियो के एक-दूसरे के सम्पर्क में आने के अवसरों के बढ़ने, सुधार आन्दोलनों तथा सरकारी और गैर-सरकारी प्रयत्नों के संयुक्त प्रभाव के परिणामस्वरूप सम्भव हो सके हैं। स्वयं अस्पृश्यों में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता आयी है और अपनी स्थिति में सुधार लाने के लिए उन्होंने अपने संगठन बनाए हैं। वर्तमान समय में अस्पृश्यों तथा हिन्दुओं के बीच सामाजिक दूरी कम होती जा रही है। वयस्क मताधिकार ने अस्पृश्यों व अन्य पिछड़े वर्गों को अपनी शक्ति को पहचानने का अवसर दिया है। वे चुनाव में वोट के महत्व को समझने लगे हैं और राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं।

इस बीसवीं शताब्दी में अस्पृश्यता को दूर करने एवं अनुसूचित जातियों के कल्याण की दृष्टि से अनेक ऐच्छिक संगठन कार्य कर रहे है जिनमें प्रमुख ये हैं : (1) अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघ, देहली; (2) भारतीय दलित वर्ग लीग, देहली; (3) ईश्वर-सरन आश्रम, इलाहाबाद; (4) भारतीय रेडक्रास सोसायटी, देहली; (5) हिन्दू मेहतर सेवक संघ, देहली और (6) रामकृष्ण मिशन। इन संगठनों के अतिरिक्त सरकार ने कानूनी और सामाजिक तौर से अस्पृश्यों की स्थिति में सुधार लाने के काफी प्रयत्न किए हैं। अस्पृश्यता-निवारण के लिए इस देश में जो प्रयत्न हुए, उन्हें मुख्यतः दो भागों में बांटा जा सकता है—प्रथम, सुधार आन्दोलन या गैर-सरकारी प्रयत्न तथा द्वितीय, सरकारी प्रयत्न।

(I) सुधार आन्दोलन या गैर-सरकारी प्रयत्न (Reform Movement or Non-Governmental Efforts)

अस्पृश्यता की समस्या के निवारण के लिए समय-समय पर अनेक सन्तों तथा समाज-सुधारकों के द्वारा प्रयत्न किए गए। इस दिशा में चैतन्य, कबीर, नानक, नामदेव, तुकाराम आदि के प्रयत्न विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आधुनिक काल मे राजा राममोहन राय, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द एवं दयानन्द सरस्वती, श्रीमती एनी वेसेण्ट, डॉ अम्बेडकर तथा महात्मा गाधी आदि ने अस्पृश्यता की समस्या को हल करने का भरसक प्रयास किया। इन प्रयत्नों को दो भागों में बांटा जा सकता है :

(1) **अस्पृश्य जातियो के द्वारा आन्दोलन**—अस्पृश्यता निवारण के लिए स्वयं अस्पृश्य जातियों द्वारा भी आन्दोलन किए गए। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षो मे सर्वप्रथम ज्योति राव फूले के द्वारा संगठित प्रयत्न किया गया। आपके प्रयत्नों ने पूना मे स्थापित 'सत्य-शोधक समाज' के द्वारा अस्पृश्यो को अनेक अधिकार दिलाने की माग की गयी। परन्तु यह आन्दोलन धर्म के नाम पर दबा दिया गया। बाद में इस आन्दोलन को डॉ. अम्बेडकर ने आगे बढ़ाया। आपके नेतृत्व में सन् 1920 में **'अखिल भारतीय दलित वर्ग संघ'** एवं **'अखिल भारतीय दलित वर्ग फैडरेशन'** स्थापित किए गए। इन संगठनो के द्वारा अस्पृश्यो ने अपने धार्मिक एवं सामाजिक अधिकारों की मांग रखी। महात्मा गांधी के सहयोग से 1932 मे **'हरिजन सेवक संघ'** की स्थापना की गयी। इस संघ ने अस्पृश्यता निवारण, पिछड़े वर्गो को उन्नति के अवसर दिलाने, श्रम के महत्व को स्थापित करने तथा मानव-मानव के बीच समानता और बन्धुत्व की भावना का प्रचार करने के लिए विशेष प्रयत्न किए। इस संघ के द्वारा अस्पृश्यो को सार्वजनिक स्थानों का उपयोग तथा मन्दिरों में प्रवेश करने का अधिकार दिलाने हेतु भी समय-समय पर आन्दोलन किए गए। संघ के प्रयत्नो से दक्षिण भारत के अनेक मन्दिरो में हरिजनों को प्रवेश की आज्ञा प्रदान की गयी । अस्पृश्यों में शिक्षा के प्रसार तथा उन्हें व्यवसाय सम्बन्धी प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए भी हरिजन सेवक संघ ने प्रयास किया। इस संघ की सैकडों शाखाएं देश के विभिन्न भागों में फैली हुई हैं। इस संघ ने हरिजनों के लिए शिशु मन्दिर और छात्रावास खोल रखे है तथा धर्मशालाओं एवं कुओं की व्यवस्था भी की है। यह संघ पोस्टरों तथा छोटी-छोटी पुस्तकों के वितरण द्वारा अस्पृश्यता विरोधी प्रचार भी करता है।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् 'हरिजन सेवक संघ' को सरकार की ओर से आर्थिक सहायता भी प्राप्त होने लगी। अब तो यह संघ उन उच्च जातियों के विद्यार्थियों को भी छात्रवृत्तियां देता है जो हरिजन छात्रों के साथ उनके छात्रावासों में रहते और उनके साथ भोजन करते है। यह संघ हरिजन बस्तियों को साफ रखने, बच्चों के लिए मुफ्त दवाओं का वितरण करने तथा विभिन्न व्यवसायों में हरिजनों को कार्य दिलाने का प्रयत्न भी करने लगा है।

(2) **सवर्ण हिन्दुओं द्वारा आन्दोलन**—अस्पृश्यता विरोधी आन्दोलन को चलाने में सवर्ण हिन्दुओं का भी सक्रिय योग रहा है। ब्रह्म समाज, आर्यसमाज तथा रामकृष्ण मिशन ने निम्न जातियों एवं हरिजनों की सामाजिक और आर्थिक निर्योग्यताओं को समाप्त करने के लिए काफी प्रयत्न किए हैं। महात्मा गांधी ने हरिजनोद्धार की दृष्टि से अस्पृश्यता-निवारण के लिए कार्य करने हेतु अनेक सुधार समितियों का निर्माण किया। ईश्वर सरन आश्रम, इलाहाबाद द्वारा अछूत बालकों की शिक्षा का विशेष प्रबन्ध किया गया। आश्रम अस्पृश्यता विरोधी प्रचार

के द्वारा स्वस्थ जनमत का निर्माण करने मे काफी प्रयत्नशील रहा है। इस आश्रम के द्वारा इन्जीनियरिंग तथा औद्योगिक शिक्षा का प्रबन्ध भी किया गया है। अब इस आश्रम को सरकार के द्वारा आर्थिक सहायता भी प्राप्त हो रही है।

स्वतन्त्र भारत में अनेक संगठन अस्पृश्यता-निवारण के कल्याण-कार्यो में लगे हुए हैं। सरकार इन सगठनों के माध्यम से अनुसूचित जातियों एवं पिछड़े वर्गो के कल्याण हेतु काफी धन-राशि खर्च कर रही है। परन्तु इनमें से बहुत-से संगठन सवर्ण हिन्दुओं के द्वारा चलाए जाते है। इन संगठनो के कई कार्यकर्ताओं की प्रेरणा का आधार वास्तव में अछूतोद्धार नहीं होकर स्वय की महत्वाकांक्षा अथवा स्वार्थ है। ऐसे व्यक्तियों के लिए अछूतोद्धार अपने आप मे लक्ष्य न होकर साधनमात्र है, अपने नेतृत्व को बढ़ावा देना अथवा अपने राजनीतिक लक्ष्यो की पूर्ति या किसी अन्य रूप मे अपनी स्वार्थ-पूर्ति का माध्यम है। अस्पृश्यता निवारण के प्रयत्न में लगे विविध गैर-सरकारी संगठनों के लक्ष्यों एवं कार्यक्रमों में समानता का अभाव पाया जाता है। इन कमियों को दूर करना प्रयत्न की सफलता के लिए अत्यन्त आवश्यक है। स्वयं अस्पृश्य जातियों के शिक्षित युवको के आगे आने और हरिजनोद्धार के कार्यो को अपने हाथ मे लेने की आवश्यकता है। होता क्या है कि शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् इन जातियो के युवक अच्छी नौकरियां प्राप्त कर लेते है और स्वयं अपने को अपनी जाति वाले लोगो से पृथक् महसूस करने लगते हैं।

(II) सरकारी प्रयत्न (Efforts by the Government)

वास्तविकता यह है कि सरकारी नीतियों एवं प्रयत्नों के फलस्वरूप ही अस्पृश्य जातियो (अनुसूचित जातियों व पिछड़े वर्गो) की अनेक निर्योग्यताएं एवं उनका पिछड़ापन दूर होता जा रहा है। महात्मा गांधी ने कहा था कि "मैं ऐसे भारत का निर्माण करना चाहता हूं जिसमे गरीब भी यह समझे कि यह मेरा देश है और इसके बनाने में मेरी भी राय कम नही होगी, ऐसा भारत जिसमें सभी सम्प्रदाय पूरी तरह घुल-मिलकर रहेगे।" इस आदर्श को ध्यान मे रखकर स्वतन्त्र भारत के संविधान मे अनुसूचित जातियों (अस्पृश्यों) के लिए विशेष संरक्षण की व्यवस्था की गयी। **सरकार के द्वारा अस्पृश्यता की समस्या को हल करने एवं अनुसूचित जातियों व पिछड़े वर्गों के कल्याण की पुष्टि से किए गए प्रमुख प्रयत्न निम्नलिखित हैं.**

(1) **संवैधानिक प्रावधान**—संविधान में अनेक ऐसे प्रावधान रखे गये है जिनके द्वारा अस्पृश्यता निवारण तथा पिछड़े वर्गो के कल्याण की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया गया है। संविधान के **अनुच्छेद** 15(1) मे कहा गया है कि राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म-स्थान अथवा इनमें से किसी एक आधार पर कोई विभेद नही करेगा। दुकानो, सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों मे प्रवेश करने और साधारण जनता के उपयोग के लिए बने कुओं, तालाबों, स्नान-घाटों, सडकों आदि के प्रयोग से कोई किसी को नही रोकेगा। **अनुच्छेद** 17 के अनुसार अस्पृश्यता का अन्त कर उसका किसी भी रूप में प्रचलन निषिद्ध कर दिया गया है। **अनुच्छेद** 19 के आधार पर अस्पृश्यो की व्यावसायिक निर्योग्यता को समाप्त किया जा चुका है और उन्हें किसी भी व्यवसाय के अपनाने की आज्ञा प्रदान की गयी है। **अनुच्छेद** 25 मे हिन्दुओ के सार्वजनिक धार्मिक स्थानों के द्वार सभी जातियों के लिए खोल देने की व्यवस्था की गयी है। **अनुच्छेद** 29 के अनुसार राज्य द्वारा पूर्ण अथवा आंशिक सहायता प्राप्त किसी भी शिक्षण संस्था में किसी नागरिक को धर्म, जाति, वंश अथवा भाषा के आधार पर प्रवेश से नही रोका जा सकता। **अनुच्छेद** 46 में कहा गया है कि राज्य

दुर्बलतर लोगो, जिनमें अनुसूचित जातियां तथा आदिम जातियां आती है, की शिक्षा सम्बन्धी तथा आर्थिक हितो की रक्षा करेगा और सभी प्रकार के सामाजिक अन्याय एवं शोषण से उनको बचाएगा। अनुच्छेद 330, 332 और 334 के अनुसार अनुसूचित जातियों तथा आदिम जातियों के लिए संविधान लागू होने के 20 वर्ष तक लोकसभा, विधान सभाओं, ग्राम पचायतों और स्थानीय निकायों मे स्थान सुरक्षित रहेंगे। अब इस अवधि को सन् 2000 तक के लिए बढ़ा दिया गया है। अनुच्छेद 335 में कहा गया है कि संघ या राज्य के कार्यों से सम्बन्धित सेवाओं एवं पदों के लिए नियुक्तियां करने मे अनुसूचित जातियो तथा आदिम जातियों के हितो का ध्यान रखा जाएगा। अनुच्छेद 146 एव 338 के अनुसार अनुसूचित जातियो के कल्याण व हितों की रक्षा के लिए राज्य मे सलाहकार परिषदो एव पृथक्-पृथक् विभागों की स्थापना का प्रावधान किया गया है। इन संवैधानिक व्यवस्थाओं के द्वारा अस्पृश्यता निवारण एवं अनुसूचित जातियों और पिछड़े वर्गों के उत्थान का सरकार के द्वारा विशेष प्रयत्न किया गया है।

(2) **शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएं**—अन्य लोगों के समान स्तर पर लाने और प्रगति के पथ पर आगे बढने में सहायता करने के उद्देश्य से अनुसूचित जातियो व पिछड़े वर्गों के लोगो के लिए शिक्षा का विशेष प्रबन्ध किया गया। देश की सभी सरकारी शिक्षण-संस्थाओ मे अनुसूचित जातियों एवं आदिम जातियों के विद्यार्थियों के लिए निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गयी। इन जातियों के विद्यार्थियो में शिक्षा का अधिक से अधिक प्रसार करने हेतु न केवल उन्हें नि-शुल्क शिक्षा की सुविधा और छात्रवृत्तियां ही दी गयी बल्कि उनके लिए मुफ्त पुस्तको एव अन्य आवश्यक वस्तुओ का प्रबन्ध भी किया गया। कई स्थानों पर तो इन्हें वस्त्र एवं भोजन भी स्कूल की ओर से ही दिया जाता है। अनेक राज्य सरकारों ने तो समाज कल्याण विभागों के माध्यम से अनुसूचित जातियों तथा आदिम जातियों के विद्यार्थियों के लिए छात्रावास चला रखे हैं। इन जातियो के प्रतिभाशाली छात्रों को उच्च शिक्षा प्राप्ति हेतु विदेशों में जाकर शिक्षा प्राप्त करने के लिए छात्रवृत्तियां भी प्रदान की जाती है। मेडिकल, इंजीनियरिंग तथा अन्य औद्योगिक शिक्षण संस्थाओं मे इनके प्रवेश हेतु विशेष व्यवस्था की गयी है।

संघीय लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित अखिल भारतीय एवं अन्य केन्द्रीय सेवाओं की परीक्षा के लिए तैयारी कराने के उद्देश्य से अनुसूचित जातियों (अस्पृश्यों) एवं आदिम जातियों के विद्यार्थियों के लिए देश के विभिन्न भागो में 80 केन्द्र स्थापित किए गए हैं। इन जातियों के छात्रों की शिक्षा पर सरकार शुरू से ही काफी धन-राशि खर्च कर रही है। सन् 1994-95 में अनुसूचित जातियों, जन-जातियों एवं पिछडे वर्गों के 2,09,018 लाख छात्रों ने मैट्रिक पूर्व स्तर तक तथा 17.53 लाख छात्रों ने मैट्रिक के बाद की छात्रवृत्ति प्राप्त की। इनकी शिक्षा पर अपार धनराशि खर्च की गयी। इन सब सुविधाओं के उपलब्ध होने से अनुसूचित जातियों एवं अन्य पिछडे वर्गो में शिक्षा का काफी प्रसार हुआ है तथा इसकी और अधिक सम्भावना है।

(3) **विधान मण्डलों एवं पंचायतों में प्रतिनिधित्व**—संविधान में अनुसूचित जातियों के लिए उनकी संख्या के अनुपात में राज्यों की विधान सभाओं तथा पंचायतों में स्थान सुरक्षित रखे गए हैं। इस समय लोकसभा के 543 स्थानों में से 79 और राज्यों की विधान सभाओं के 4,047 स्थानों में से 557 स्थान अनुसूचित जातियों के लिए सुरक्षित रखे गए हैं। पंचायती

राज संस्थाओ मे भी इनके लिए स्थान सुरक्षित रखे गए हैं। इन सब व्यवस्थाओं के फलस्वरू अस्पृश्य जातियों मे राजनीतिक चेतना निरन्तर बढ़ती जा रही है।

(4) कल्याण एवं सलाहकार संगठन (Welfare and Advisory Organizations)— केन्द्र एवं राज्यो में अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं अन्य पिछड़े वर्गों के कल्याण हे अलग-अलग विभागों की व्यवस्था की गयी है। कई राज्यों में तो अनुसूचित जातियो व पिछ वर्गों के कल्याण को ध्यान मे रखकर पृथक् मन्त्रालय भी स्थापित किए गए हैं। केन्द्र-स्तर प विभिन्न कल्याण-कार्यक्रमो का दायित्व गृह-मन्त्रालय का है। अनुसूचित जातियो के कल्या हेतु 24 राज्यो में अनुसूचित जाति विकास निगम स्थापित किए गए है जो अनुसूचित जाति के परिवारों को उनके आर्थिक उत्थान हेतु आर्थिक संस्थाओ एवं बैंकों से पैसा, ऋण, अंशदा आदि के रूप मे आर्थिक सहायता उपलब्ध कराने में मदद करते है।

(5) सरकारी नौकरियों में प्रतिनिधित्व—अस्पृश्य जातियों के लोगो को उच्च शिक्षा प्रा करने, अपनी आर्थिक स्थिति मे सुधार करने तथा उच्च जाति के लोगों के सम्पर्क में आने व प्रोत्साहित करने के लिए सरकारी नौकरियों में स्थान सुरक्षित रखे गए है। खुली प्रतियोगि द्वारा अखिल भारतीय आधार पर की जाने वाली नियुक्तियो में 15 प्रतिशत तथा अन्य प्रक से की जाने वाली नियुक्तियों में 16⅔ प्रतिशत स्थान अनुसूचित जातियों के लिए सुरक्षि होते है। तीसरी और चौथी श्रेणियों में सीधी नियुक्ति के लिए जिनमें सामान्य रूप से स्थानी अथवा क्षेत्रीय उम्मीदवार आते हैं, राज्यों तथा केन्द्र-शासित क्षेत्रों की अनुसूचित तथा आदि जातियों की जनसंख्या के अनुपात में स्थान सुरक्षित किए जाते हैं। दूसरी, तीसरी तथा चौ श्रेणियों में विभागीय परीक्षाओं के आधार पर तथा तीसरी एवं चौथी श्रेणी में चयन के आध पर होने वाली पदोन्नति के सम्बन्ध मे भी अनुसूचित जातियों तथा आदिम जातियों के लो के लिए क्रमशः 15 तथा 7½ प्रतिशत स्थान सुरक्षित रखे जाते हैं, बशर्ते कि इन श्रेणियो सीधी भर्ती 50 प्रतिशत से अधिक न होती हो।

सरकारी नौकरी प्राप्त करने की सुविधा प्रदान करने की दृष्टि से अनुसूचित जातियों सदस्यों की आयु सीमा तथा योग्यता मानदण्ड में भी विशेष छूट की व्यवस्था की गयी राज्य सरकारो के द्वारा भी इन लोगों के लिए नौकरियों में स्थान सुरक्षित रखने हेतु समय-सम पर अनेक नियम बनाए गए है। सरकारी नौकरियों में अनुसूचित जातियो के प्रतिनिधि सम्बन्धी जांच करने हेतु सरकार द्वारा समय-समय पर अध्ययन दलों की भी नियुक्ति व जाती है ताकि यह पता लगाया जा सके कि अनुसूचित जातियों की कितनी प्रगति हुई तथा उन्हें प्रदान किए गए अधिकारों का कितना उपयोग हुआ है।

(6) आर्थिक उन्नति हेतु प्रयास—अनुसूचित जातियों के व्यक्तियों को आर्थिक उन्नति अवसर प्रदान करने हेतु सरकार ने उन्हें विशेष सुविधा देने का प्रयास किया है। कृषि ए उद्योगों के क्षेत्र में अस्पृश्यों को आगे बढ़ाने का मौका दिया गया है। कृषि कार्यो में ल हुए अनुसूचित जातियो के व्यक्तियों में से भूमिहीन मजदूरों के रूप में कार्य करने वा अधिकांश लोगों को चौथी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक भूमि बांटी जा चुकी थी। इन लो को शोषण से बचाने के लिए सरकारी समितियों की व्यवस्था भी की गयी। उन्हें कुटीर उद्यो धन्धों में लगाने के लिए प्रशिक्षण, ऋण तथा अनुदान का प्रबन्ध भी किया गया। प्रधानमन्त्र श्रीमती इन्दिरा गांधी के 20-सूत्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत इन जातियों के ऋणग्रस्त व्यक्ति को ऋण से मुक्त करने, भूमिहीनों में भूमि का वितरण करने तथा बन्धक श्रमिक प्रथा व

समाप्त करने हेतु प्रयास किए गए। जनवरी 1976 में सरकार द्वारा पारित **बन्धक श्रमिक उन्मूलन कानून** का विशेष लाभ अनुसूचित जातियों के लोगों को ही मिला है। सन् 1978 में सरकार के द्वारा इस उद्देश्य से एक उच्चाधिकार समिति का गठन भी किया गया है ताकि अस्पृश्य जातियों की आर्थिक स्थिति एवं नौकरी सम्बन्धी सुविधाओं के बारे में सही जानकारी मिल सके। आई. आर. डी. पी. के अन्तर्गत अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति को शामिल करने का लक्ष्य 1990-91 से 50 प्रतिशत रखा गया है।

(7) अन्य कल्याण योजनाएं—अनुसूचित जातियो के लोगों के स्वास्थ्य-सुधार तथा आवास पर भी सरकार के द्वारा काफी धनराशि खर्च की जाती है। इन लोगों को मकान बनाने के लिए मुफ्त या नाममात्र के व्याज पर ऋण के रूप में सहायता दी जाती है। इन लोगों को चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाएं प्रदान करने और इनके स्वास्थ्य-सुधार हेतु अस्पतालों, पीने के स्वच्छ पानी, बच्चों तथा प्रसूताओं के लिए कल्याण केन्द्रो और अस्पतालो तथा मोटर-गाड़ियों की व्यवस्था की गयी है। कई राज्यों में सुलभ शौचालय बनाने की योजनाएं चल रही हैं जिनसे हरिजनों को मैला उठाने के कार्य से मुक्ति मिलेगी और उन्हें अन्य कार्यो में लगाया जाएगा।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90) अवधि में अनुसूचित जातियों, जनजातियो एवं पिछड़े वर्गों के कल्याण हेतु 1520 43 करोड़ रुपयों का प्रावधान किया गया। अनुसूचित जातियों के लिए विशेष कार्यक्रम हेतु केन्द्रीय सरकार ने 930 करोड़ रुपयों का अलग से प्रावधान किया। इस अवधि मे 120 लाख परिवारों को गरीबी रेखा पार करने योग्य बनाने के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की गयी। इस योजना का एक प्रमुख लक्ष्य सफाई कर्मचारियों के द्वारा हाथ से किए जाने वाले सफाई के काम को समाप्त करना है। अनुसूचित जातियों के विकास एवं कल्याण हेतु विभिन्न राज्यों में 'अनुसूचित जाति विकास निगम' बनाए गए हैं जो अनुसूचित जातियों के परिवारों तथा वित्तीय संस्थाओं के बीच सम्बन्ध स्थापित कराने में एवं उन्हें आर्थिक साधन उपलब्ध कराने में योग देंगे।

उपर्युक्त सभी प्रावधानों एवं सुविधाओं का लाभ देश की 471 अनुसूचित जातियो तथा अन्य पिछड़े वर्गों को मिला है जिनके परिणामस्वरूप उनकी सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक स्थिति में सुधार हुआ और हो रहा है।

अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955
[THE UNTOUCHABILITY (OFFENCES) ACT, 1955]

अस्पृश्यता को समाप्त करने, इससे सम्बन्धित सभी आचरणों को रोकने और अस्पृश्यो पर विभिन्न निर्योग्यताओं को लागू करने वाले व्यक्तियों को दण्डित करने के उद्देश्य से जून सन् 1955 से 'अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955' सम्पूर्ण देश में लागू किया गया। इस अधिनियम की 17 धाराओं के द्वारा अस्पृश्यों की सभी प्रकार की निर्योग्यताओं को समाप्त किया जा चुका है।

इस अधिनियम के अनुसार अस्पृश्य जातियों के लोगों को सार्वजनिक पूजा के स्थानों में प्रवेश करने, पवित्र नदी, तालाब, कुएं, झरने आदि में स्नान करने या पानी लेने, किसी भी दुकान, जलपान-गृह, होटल अथवा सार्वजनिक मनोरंजन के स्थान में प्रवेश करने, धर्मशालाओं और मुसाफिरखानों के उपयोग में लाने से रोकने पर दण्ड की व्यवस्था की।

ऐसे व्यक्ति को छः मास के कारावास या 500 रुपया जुर्माना या दोनों की सजा दी जा सकती है। इस कानून में यह भी बतलाया गया है कि यदि कोई व्यक्ति किसी को नदी, कुएं, तालाब या नल, घाट, श्मशान, कब्रिस्तान आदि को काम में लेने से या किसी मोहल्ले में जमीन खरीदने, मकान बनवाने या रहने से रोकेगा तो उसके इस कार्य को दण्डनीय अपराध माना जाएगा। प्रत्येक को किसी सार्वजनिक बस्ती, सवारी, आभूषण या अलंकार के उपयोग की पूरी स्वतन्त्रता होगी।

इस अधिनियम के अन्तर्गत सभी व्यक्तियों को सार्वजनिक चिकित्सालयों, औषधालयों, शिक्षण-संस्थाओं तथा छात्रावासों में प्रवेश का समान अधिकार दिया गया है। किसी प्रकार का भेदभाव बरतने या प्रवेश देने से इन्कार करने पर दण्ड की व्यवस्था की गयी है। यदि कोई दुकानदार अस्पृश्यता के आधार पर किसी भी व्यक्ति को कोई वस्तु बेचने या सेवा प्रदान करने से इन्कार करता है तो उसके लिए दण्ड की व्यवस्था की गयी है। इस अधिनियम में यह भी बतलाया गया है कि यदि कोई व्यक्ति किसी अस्पृश्य को उत्पीड़ित करता है, क्षति पहुंचाता है, बहिष्कार करता है या उसके जीवन में बाधा डालने की कोशिश करता है तो उसका कार्य दण्डनीय अपराध होगा। यदि कोई लिखित रूप में या बोले गए शब्दों के द्वारा अस्पृश्यता को प्रोत्साहित करता है तो उसके लिए भी छः मास के कारावास या 500 रुपया जुर्माना या दोनों के दण्ड की व्यवस्था की गयी है।

इस अधिनियम के द्वारा अस्पृश्यता सम्बन्धी आचरण तथा अस्पृश्यता को किसी भी रूप मे प्रोत्साहन देने पर प्रतिबन्ध अवश्य लगा दिया गया है परन्तु व्यावहारिक रूप में यह आज भी पायी जाती है। कई स्थानों पर और विशेषतः ग्रामों में आज भी अस्पृश्यता सम्बन्धी आचरण दिखलायी पड़ते हैं। अस्पृश्यता को दूर करने में कानून उसी समय महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है जब उसे कठोर बनाया जाए, सख्ती के साथ लागू किया जाए तथा उल्लंघन करने वालों को कठोर दण्ड दिया जाए। इसी उद्देश्य से भारत सरकार ने एक पृथक् कानून **'नागरिक अधिकार संरक्षण कानून'** (Civil Rights Protection Act, 1976) पास किया जो 19 नवम्बर, 1976 से सारे देश मे लागू कर दिया गया। यह अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 का ही संशोधित रूप है। इसके प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं :

(1) अस्पृश्यता के अपराध में दण्डित लोग लोकसभा और विधानसभा का चुनाव नहीं लड़ सकेंगे।

(2) अस्पृश्यता को ज्ञातव्य अपराध घोषित किया गया है जिसके अनुसार पुलिस बिना किसी शिकायत के अस्पृश्यता से सम्बन्धित अपराध में स्वयं सीधी कार्यवाही कर सकती है। ऐसे अपराध में वादी एवं प्रतिवादी को किसी प्रकार का कोई समझौता करने की भी आज्ञा नहीं होगी।

(3) पहली बार अस्पृश्यता सम्बन्धी अपराध के लिए एक महीने से छः महीने तक की कैद और 100 रुपए से लेकर 500 रुपए तक के जुर्माने की व्यवस्था की गयी है। दुबारा अपराध करने पर छः महीने से एक वर्ष तक की कैद तथा 200 रुपए से 500 रुपए तक जुर्माने का और तीसरी बार अस्पृश्यता सम्बन्धी अपराध करने पर एक वर्ष से दो वर्ष तक की कैद एवं 1,000 रुपए तक जुर्माने का प्रावधान रखा गया है।

(4) यदि कोई सरकारी कर्मचारी अस्पृश्यता से सम्बन्धित जांच के कार्य की जान-बूझकर उपेक्षा करेगा तो उसके इस कार्य को अपराध को प्रोत्साहन देने वाला और दण्डनीय माना जाएगा।

(5) अस्पृश्यता का प्रचार करना और उसे किसी भी रूप में न्यायोचित ठहराना भी अपराध होगा। किसी को अस्पृश्यता बरतने के लिए बाध्य करना भी दण्डनीय अपराध माना जाएगा।

(6) सामूहिक रूप से अस्पृश्यता सम्बन्धी अपराध करने पर ऐसे किसी क्षेत्र के लोगों पर सामूहिक जुर्माना करने का अधिकार राज्य सरकारों को दिया गया है।

(7) पूजा के निजी स्थानों पर जहां जनता साधारणत: जाती रहती है, किसी भी रूप में अस्पृश्यता बरतना दण्डनीय अपराध होगा।

(8) इस कानून का उल्लंघन करने वाले लोगों को दण्ड देने हेतु विशेष अधिकारी की नियुक्ति और मामलों की सुनवाई हेतु विशेष अदालतों के गठन की व्यवस्था की गयी है।

उपर्युक्त कानून को सफल बनाने के लिए प्रचार माध्यम की विशेष सहायता ली जानी चाहिए। राज्य सरकारों ने जिलाधिकारियों और जन-सम्पर्क अधिकारियों को अस्पृश्यता निवारण हेतु प्रयास करने के लिए आदेश दे रखे हैं। प्रति वर्ष 'हरिजन दिवस' व 'हरिजन सप्ताह' भी मनाए जाते हैं। सरकार द्वारा अस्पृश्यता निवारण के लिए प्रचार-साहित्य तथा दृश्य-श्रव्य साधनों का काफी प्रयोग किया जा रहा है।

अस्पृश्यता निवारण एवं अनुसूचित जातियों के कल्याण हेतु सुझाव (SUGGESTIONS TO ERADICATE UNTOUCHABILITY)

अस्पृश्यता निवारण एवं पिछड़े वर्गों के कल्याण हेतु विभिन्न आयोगों एवं अध्ययन दलों ने समय-समय पर अनेक सुझाव दिए हैं। उसके सुझाव काफी आदर्शात्मक हैं तथा इनमें व्यावहारिकता की कमी है। यहां कुछ रचनात्मक सुझाव प्रस्तुत किए जा रहे हैं :

(1) **हृदय परिवर्तन**—अस्पृश्यता की समस्या को हल करने और पिछड़े वर्गों के कल्याण हेतु यह आवश्यक है कि अधिकांश हिन्दुओं के हृदय परिवर्तित किए जाएं। यदि समाज वैज्ञानिकों द्वारा उन परिस्थितियों का सही रूप में विश्लेषण किया जाए जिन्होंने अस्पृश्यता को प्रोत्साहित करने में योग दिया तो लोगों को अस्पृश्यता सम्बन्धी भ्रान्त धारणा से मुक्त किया जा सकता है। इस बात पर जोर भी दिया जा सकता है कि अस्पृश्यता का सम्बन्ध हिन्दू धर्म के मौलिक ग्रन्थों से नहीं है। यहां हमें इस बात को भी नहीं भूलना चाहिए कि केवल शोर मचाने से, नारे लगाने से, हरिजन दिवस और हरिजन सप्ताह मनाने से अस्पृश्यता की समस्या को हल और पिछड़े वर्गों का कल्याण नहीं किया जा सकता।

उद्योग लगाने की सुविधाएं प्रदान की जाएं, भूमिहीन किसानों में कृषि-योग्य भूमि वितरित की जाए तो इनकी आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में शीघ्र ही सुधार सम्भव हो सकेगा। यदि इन्हे सवर्णो की बस्तियो मे मकान बनाने और रहने की सुविधा दी जाए तो सवर्णों एवं निम्न जातियो के बीच भेदभाव को कम करने मे अवश्य सहायता मिलेगी।

(4) **नोकरियों में आरक्षण**—नौकरियों में अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा अन्य पिछड़े वर्ग के लोगो के लिए स्थान अवश्य सुरक्षित है परन्तु कई बार होता यह है कि ये स्थान या तो खाली पडे रहते है या इन पर अन्य लोगों को नियुक्त कर दिया जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि इनके लिए सुरक्षित स्थानों पर केवल इन्हीं जातियो के लोगों का ईमानदारी के साथ चयन किया जाए। इस सम्बन्ध में यदि कहीं कोई अनियमितता पायी जाए तो दोषी अधिकारियों के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही की जाए। इन जातियों के व्यक्तियों को विभिन्न नौकरियो के लिए आवश्यक प्रशिक्षण दिया जाए ताकि सामान्य कार्यकुशलता के मानदण्डो मे किसी प्रकार की कोई कमी न आ पाए।

(5) **गन्दे व्यवसायों का यन्त्रीकरण**—अस्पृश्य जातियो के आर्थिक एवं शैक्षणिक विकास हेतु गठित समिति ने अस्पृश्यता निवारण हेतु विरासती पुरोहिती की प्रथा समाप्त करने का सुझाव दिया है। इसे समाप्त करना कोई सरल कार्य नहीं है। परन्तु कम से कम इतना अवश्य किया जा सकता है कि अस्पृश्य जातियों को जजमानी व्यवस्था के अन्तर्गत गन्दे व्यवसायो को अपनाने के लिए बाध्य न किया जाए। साथ ही इन व्यवसायों का इस प्रकार से नवीनीकरण किया जाना चाहिए कि इन्हें अपनाने मे कोई किसी प्रकार की घृणा या लज्जा महसूस नही करे।

(6) **शिक्षा का प्रचार**—अस्पृश्यता निवारण एवं अनुसूचित जातियो व अन्य पिछडे वर्गो के कल्याण हेतु शिक्षा का व्यापक प्रसार.आवश्यक है। इस हेतु सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली छात्रवृत्तियां प्रेरणादायक ही होनी चाहिए। इसका तात्पर्य यही है कि प्राथमिक अथवा माध्यमिक स्तर तक तो इन्हें अनिवार्य और नि.शुल्क शिक्षा की सुविधा मिलनी चाहिए लेकिन उच्च शिक्षा हेतु छात्रवृत्तिया उन्हीं विद्यार्थियों को दी जानी चाहिए जो न्यूनतम निर्धारित अंक प्राप्त कर सके।

(7) **आर्थिक सहायता**—ग्रामीण क्षेत्रों मे अधिकांश पिछड़े वर्ग के लोग ऋण के भार से दबे हुए है। उन्हें ऋण-मुक्त करने और आर्थिक दृष्टि से प्रगति की ओर आगे बढने के लिए सरकार को इन्हे आवश्यक वित्तीय सहायता प्रदान करनी चाहिए और इनके लिए विशेष सहकारी समितियां गठित की जानी चाहिए। ऐसा होने पर ये उच्च जातियों, महाजनो या सूदखोरों के चक्कर से बच सकेंगे।

(8) **अनुचित राजनीतिक लाभ उठाने पर रोक**—राजनीतिक दलों या राजनेताओं को अछूतोद्धार तथा हरिजनों पर अत्याचार को राजनीतिक रंग देकर अपने निजी या दलीय स्वार्थों की संकीर्ण प्रवृत्ति पर नियन्त्रण रखना भी अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा सवर्ण एवं अवर्ण का भेद और ज्यादा बढ़ेगा तथा पिछड़े वर्गों के लोगों का सम्पूर्ण समाज की जीवन-धारा मे एकीकरण नहीं हो सकेगा। साथ ही अस्पृश्यता निवारण और पिछड़े वर्ग के कल्याण कार्यों में लगे सभी लोगों को पूर्ण ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा का परिचय देना होगा, क्षुद्र व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठना होगा, उन्हें लोगों को समझाना होगा कि अपने बच्चे की गन्दगी उठाने

वाली मां और अपने वृद्ध माता-पिता का मल-मूत्र धोने और सेवा करने वाले लोगों को कैसे अछूत माना जा सकता है। इस हेतु सामाजिक शिक्षा एवं प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता है।

(9) **विभिन्न समितियों के सुझाव पर अमल किया जाए**—अस्पृश्यता की समस्या के निराकरण एवं पिछड़े वर्गों के कल्याण के लिए आवश्यक है कि सन् 1965 में नियुक्त 'अनुसूचित जाति के आर्थिक तथा शैक्षणिक विकास और छुआछूत समिति' द्वारा मार्च 1969 में प्रस्तुत रिपोर्ट में दिए गए सुझावो के अनुसार निष्ठापूर्वक प्रयत्न किया जाए। रिपोर्ट में बताया गया है कि विरासती पुरोहिती की प्रथा समाप्त हो, छुआछूत का कानून कठोर बनाया जाए, अस्पृश्यता बरतने वालों को वित्तीय सहायता और सरकारी ऋण न दिए जाएं। ऋण देते समय अनुसूचित जातियों को प्राथमिकता दी जाए, उनके निवास की भूमि पर उनका अधिकार हो, बेगार-प्रथा को गैर-कानूनी रूप दिया जाए तथा अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन दिया जाए। श्रम के प्रति श्रद्धा और समानता के व्यवहार को महत्ता प्रदान की जानी चाहिए।

आज प्रमुख आवश्यकता यह है कि पिछड़े वर्गों के परम्परागत पेशों को स्थायी आधार पर संरक्षण प्रदान किया जाए ताकि ये लोग आर्थिक दृष्टि से उन्नत हो सके। परम्परागत पेशों में निपुणता प्राप्त करने हेतु इन लोगों के लिए प्रशिक्षण केन्द्र खोले जाने चाहिए। इन्हें सुविधा प्रदान कर लघु उद्योग-धन्धों में लगाया जाना चाहिए। इच्छुक व्यक्तियों को विभिन्न शिल्पों की शिक्षा दी जानी चाहिए। अस्पृश्यों की समस्याओं के निराकरण के लिए समाजशास्त्रीय अनुसन्धानों को प्रोत्साहन दिया जाए एवं उनका विशेष लाभ उठाया जाना चाहिए।

अस्पृश्य जातियों एवं पिछड़े वर्गो का भविष्य भारतीय समाज की संरचना के साथ जुड़ा हुआ है। वर्तमान मे भारतीय समाज मे काफी परिवर्तन हो रहे है। उदाहरण के रूप मे, परम्परात्मक खण्डात्मक सरचना की बहुत-सी विशेषताए समाप्त होती जा रही है। एक खण्ड के लोगों का प्रवेश दूसरे खण्डों में हो रहा है। जाति और समुदाय की सीमाओं के परे व्यक्तियों के सम्बन्ध स्थापित होते जा रहे है। नवीन आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं ने इन अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों की स्थापना में काफी योग दिया है। आज बदलती हुई परिस्थितियो में संस्कारात्मक मूल्यों (ritual values) का महत्व भी कमजोर पड गया है जिन्होने संरचनात्मक दूरी को बनाए रखने में निर्णायक भूमिका अदा की। वर्तमान में नगरीय क्षेत्रों में अस्पृश्यता से सम्बन्धित सिद्धान्त एवं व्यवहार मे अनेक कारणों के सयुक्त प्रभाव के फलस्वरूप परिवर्तन आए हैं। आज सामाजिक स्तरीकरण (Social Stratification) के परम्परागत आधार कमजोर पडे हैं। नगरीय क्षेत्रों में विभिन्न जातियो के व्यक्ति कारखानों में साथ-साथ काम करने लगे हैं, एक-दूसरे के हाथ का पानी व खाने-पीने की वस्तुएं ग्रहण करने लगे है, होटलों, बसों, ट्रामों आदि मे साथ-साथ बैठने और खाने-पीने लगे हैं। शिक्षा के व्यापक प्रसार ने भी अस्पृश्यता को कम करने में योग दिया है। अस्पृश्य जातियो व अन्य पिछड़े वर्गो के भविष्य के सम्बन्ध में आन्द्रे बिताई ने लिखा है, यह सत्य है कि आधुनिकीकरण की शक्तियां अभी तक प्रमुखतः भारतीय समाज के एक सीमित क्षेत्र में ही क्रियाशील हैं। उनका प्रभाव विशेषतः पश्चिमी शिक्षा प्राप्त मध्यम वर्ग के लोगों पर दिखलायी देता है और वह भी मुख्यतः नगरीय केन्द्रों के। पिछड़े वर्ग अभी तक अधिकांशतः ग्रामीण क्षेत्रों में ही केन्द्रित हैं और उन पर पश्चिमीकरण का प्रभाव उच्च जातियों की तुलना मे कम पड़ा है। अतः यह सम्भव है कि पिछडे वर्ग और विशेषतः अनुसूचित जनजातियां तथा अनुसूचित जातियां आने वाले कुछ वर्षो तक अपना

अभिन्न रूप बनाए रखें। उपर्युक्त कथन में सत्यता का काफी अंश है। आज स्थिति यह बन गयी है कि ये लोग अपने पृथक् अस्तित्व को बनाए रखने में रुचि लेने लगे हैं।

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते है कि सरकार को सामाजिक, शैक्षणिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछडे लोगों या वंचित व दलित लोगों को शिक्षा प्राप्त करने (प्राथमिक से उच्च शिक्षा, तकनीकी शिक्षा सहित) हेतु प्रचुर मात्रा में आर्थिक सहायता देनी चाहिए ताकि सबको आगे बढ़ने के समान अवसर मिल सकें। प्रतिभाशाली एवं निर्धन छात्रों को, चाहे वे किसी भी जाति के क्यों न हों, आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए। वर्तमान में देश का तेजी से आर्थिक विकास तथा आजीविका सुविधाओ की पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता ही समस्या का सही हल प्रतीत होता है। हमारा लक्ष्य जातिवादी समाज की रचना नहीं होकर समतावादी समाज की रचना है। अतः सम्पूर्ण आरक्षण नीति पर इस परिप्रेक्ष्य में गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए।

प्रश्न

1. अनुसूचित जातियों की प्रमुख समस्याओं का उल्लेख करते हुए उन्हे हल करने के उपाय बताइए।
2. अनुसूचित जातियो की समस्याओं के समाधान हेतु किए गए प्रयत्नों का उल्लेख कीजिए।
3. अस्पृश्यता क्या है ? सरकार द्वारा इसको समाप्त करने के लिए काम में लिए गए विभिन्न वैधानिक प्रयासो के प्रभावो को समझाइए।
4. अनुसूचित जातियों की सामाजिक निर्योग्यताओ का वर्णन कीजिए। उनका भारतीय समाज पर क्या प्रभाव पड़ा है ? (अजमेर, 199
5. भारत में अस्पृश्यता पर एक लेख लिखिए। (अजमेर, 199
6. अनुसूचित जातियो एवं जनजातियों मे अन्तर कीजिए और उनकी समस्याओ को स्पष्ट कीजिए। (अजमेर, 199
7. अस्पृश्यता से आप क्या समझते है? भारत में अस्पृश्यों की प्रमुख निर्योग्यताएं कौन-कौन सी है? (राज., 199
8. अनुसूचित जातियों अथवा अनुसूचित जनजातियों के विकास की समस्याओ की विवेचना कीजिए। (राज., 199

13

अनुसूचित जनजातियों की समस्याएं

[PROBLEMS OF SCHEDULED TRIBES]

भारत एक विशाल देश है जिसमें अनेक विविधताएं हैं। यहां अनेक धर्म, मत, सम्प्रदाय, प्रजाति, जाति एवं जनजाति के लोग निवास करते हैं। यहां की सम्पूर्ण जनसख्या का लगभग 8 08 प्रतिशत भाग आदिम जातियों या जनजातियों द्वारा निर्मित है। अधिकतर जनजातियां ऐसे भौगोलिक क्षेत्रों में निवास करती हैं जहां सभ्यता का प्रकाश नही पहुंचा है। आज भी अनेक जनजातियां आदिम स्तर पर ही अपना जीवन व्यतीत कर रही हैं जबकि दुनिया के अधिकांश देश प्रगति,के पथ पर है। गोत्र का एक विस्तृत स्वरूप जनजाति है। यह खानाबदोशी जत्थे, झुण्ड, गोत्र, भ्रातृदल एवं अर्द्धांश से अधिक विस्तृत एवं संगठित होती है। जनजातियो को आदिम समाज, आदिवासी, वन्य जाति, गिरीजन एवं अनुसूचित जनजाति, आदि नामों से पुकारा जाता है। डॉ. घुरिये इनके लिए पिछड़े हुए हिन्दू (Backward Hindus) शब्द का प्रयोग करते है।

जनजाति की परिभाषा (Definition of Tribe)

जनजाति को परिभाषित करते हुए **गिलिन एवं गिलिन** लिखते है, "स्थानीय आदिम समूहो के किसी भी संग्रह को जोकि एक सामान्य क्षेत्र में रहता हो, एक सामान्य भाषा बोलता हो और एक सामान्य संस्कृति का अनुसरण करता हो, एक जनजाति कहते है।"[1] **डॉ. रिवर्स** के मतानुसार, "जनजाति एक ऐसा सरल प्रकार का सामाजिक समूह है जिसके सदस्य एक सामान्य भाषा का प्रयोग करते है तथा युद्ध, आदि सामान्य उद्देश्यों के लिए सम्मिलित रूप से कार्य करते है।"

डॉ. मजूमदार लिखते है, "एक जनजाति परिवारो या परिवारों के समूह का संकलन होता है जिसका एक सामान्य नाम होता है, जिसके सदस्य एक निश्चित भू-भाग में रहते हैं, समान भाषा बोलते है और विवाह, व्यवसाय या उद्योग के विषय में निश्चित निषेधात्मक

1 "Any collection of preliterate local groups which occupies a common general territory speaks a common language and practices a common culture is a tribe."
—Gillin and Gillin, *Cultural Sociology*, p. 282.

नियमों का पालन करते हैं और पारस्परिक कर्तव्यों की एक सुविकसित व्यवस्था को मानते हैं।"[1]

Imperial Gazetteer of India के अनुसार, एक जनजाति परिवारों का एक संकलन है, जिसका एक नाम होता है, जो एक बोली बोलती है, एक सामान्य भू-भाग पर अधिकार रखती है या अधिकार जताती है और जो प्रायः अन्तर्विवाह नहीं करती रही है।

हॉबल का कथन है कि "एक जनजाति एक सामाजिक समूह है जो एक विशेष भाषा बोलता है तथा एक विशेष संस्कृति रखता है जो उन्हें दूसरे जनजाति-समूहों से पृथक् करती है। यह अनिवार्य रूप से राजनीतिक संगठन नहीं है।"[2]

चार्ल्स विनिक ने जनजाति की परिभाषा करते हुए लिखा है, "एक जनजाति में क्षेत्र, भाषा, सांस्कृतिक समरूपता तथा एक सूत्र में बंधने वाला सामाजिक संगठन आता है। यह सामाजिक उपसमूहों, जैसे गोत्रों या गांवों को सम्मिलित कर सकता है।"[3]

रॉल्फ पिडिंगटन ने जनजाति का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है, "हम एक जनजाति की व्यक्तियों के एक समूह के रूप में व्याख्या कर सकते हैं, जो कि समान भाषा बोलता हो, समान भू-भाग मे निवास करता हो तथा जिसकी संस्कृति में समरूपता पायी जाती हो।"[4]

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि एक जनजाति एक ऐसा क्षेत्रीय मानव-समूह है जिसकी एक सामान्य संस्कृति, भाषा, राजनीतिक संगठन एवं व्यवसाय होता है तथा जो सामान्यतः अन्तर्विवाह के नियमों का पालन करता है।

जनजाति के लक्षण (विशेषताएं) (Characteristics of Tribe)

(1) **सामान्य भू-भाग (Common Territory)**—एक जनजाति एक निश्चित भू-भाग मे ही निवास करती है। इसके परिणामस्वरूप उसका उस भू-भाग से लगाव एवं उसके सदस्यों में दृढ़ सामुदायिक भावना का विकास हो जाता है। सामान्य भू-भाग में रहने के कारण ही उनमें सामान्य जीवन की अन्य विशेषताएं विकसित हो जाती है, किन्तु डॉ. रिवर्स जनजाति के लिए एक निश्चित भू-भाग को आवश्यक नहीं मानते।

(2) **सामान्य भाषा (Common Language)**—एक जनजाति के लोग अपने विचारों का आदान-प्रदान करने के लिए एक सामान्य भाषा का प्रयोग करते हैं। भाषा के माध्यम से ही वह अपनी संस्कृति का हस्तान्तरण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को करती है, किन्तु सभ्यता के सम्पर्क के कारण कई जनजातियां द्विभाषी हो गयी है।

(3) **विस्तृत आकार (Big Size)**—एक जनजाति में कई परिवारों का संकलन होता है। इसमें कई वंश, समूह एवं गोत्र तथा भ्रातृदल होते है। यही कारण है कि इसकी सदस्य संख्या अन्य क्षेत्रीय समुदायों से अधिक होती है।

(4) **अन्तर्विवाह (Endogamy)**—एक जनजाति के सदस्य अपनी ही जनजाति में विवाह करते हैं।

1 D. [illegible]
2 Ho.
3 Ch.
4 R. [illegible] 104

(5) एक नाम (A Name)—प्रत्येक जनजाति का कोई नाम अवश्य होता है जिसके द्वारा वह पहचानी जाती है। उसके सदस्य अपना परिचय जनजाति के नाम के आधार पर ही देते हैं।

(6) सामान्य संस्कृति (Common Culture)—एक जनजाति के सभी सदस्यो की सामान्य संस्कृति होती है, उनके रीति-रिवाजो, प्रथाओं, लोकचारो, नियमो, कला, धर्म, जादू-संगीत, नृत्य, खान-पान, भाषा, रहन-सहन, विचारो, विश्वासो, मूल्यों, आदि में समानता पायी जाती है।

(7) आर्थिक आत्मनिर्भरता (Economic Self-sufficiency)—एक जनजाति अपनी सभी आर्थिक आवश्यकताओं को स्वयं ही पूरा कर लेने में सक्षम होती है। शिकार, फल-फूल एकत्रित करने, पशुचारण, कृषि एवं गृह-उद्योग, आदि के द्वारा अपनी आवश्यकता की वस्तुएं जनजाति के सदस्य स्वयं ही जुटा लेते हैं, यद्यपि कभी-कभी वह अपने पड़ोसी समाजों से भी विनिमय करते हैं।

(8) राजनीतिक संगठन (Political Organization)—एक जनजाति का अपना निजी राजनतिक संगठन होता है। इसमें अधिकांशतः एक वंशानुगत मुखिया होता है जो परम्पराओ का पालन कराने, नियन्त्रण बनाये रखने एवं नियमों का उल्लंघन करने वालों के लिए दण्ड की व्यवस्था करता है। कहीं-कहीं मुखिया की सहायता के लिए वयोवृद्ध लोगों की एक परिषद् (Council of the elders) भी पायी जाती है। कुछ विद्वानों ने राजनीतिक संगठन को जनजाति के लिए आवश्यक नहीं माना है।

(9) सामान्य निषेध (Common Taboos)—एक जनजाति खान-पान, विवाह, परिवार, व्यवसाय, धर्म, आदि से सम्बन्धित समान निषेधों का पालन करती है।

अनुसूचित जनजातियों की समस्याएं
(PROBLEMS OF SCHEDULED TRIBES)

भारतीय संविधान में अनुसूचित जनजातियों की संख्या 212 बतायी गयी है। 1941 में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या लगभग ढाई करोड़ थी। 1951 में इनकी जनसंख्या लगभग 1 करोड़ 91 लाख रह गयी। इस कमी का कारण भारत का विभाजन है जिसके परिणामस्वरूप कुछ जनजातीय क्षेत्र पाकिस्तान में चले गये। 1961 में जनजातियों की जनसंख्या 2 करोड़ 99 लाख थी जो 1971 में 4,11,47,922 हो गयी। 1981 की जनगणना के अनुसार भारत में जनजातीय जनसंख्या 5,16,28,638 थी जबकि 1991 में यह बढ़कर 6,77,58,380 हो गयी। जनसंख्या की दृष्टि से भारत के विभिन्न प्रान्तों में असमानता पायी जाती है। मध्यप्रदेश में इनकी जनसंख्या सभी प्रान्तों से अधिक है। उसके बाद उड़ीसा, बिहार, गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र, पश्चिमी बंगाल, आन्ध्र प्रदेश तथा असम राज्य आते हैं। उत्तर प्रदेश, केरल एवं तमिलनाडु में इनकी संख्या कम है। देश के 5 राज्यो—मिजोरम, नगालैण्ड, मेघालय, अरुणाचल एवं त्रिपुरा की कुल जनसंख्या का 75 से 95 प्रतिशत तक भाग अनुसूचित जनजातियों का है।

वर्तमान में सम्पूर्ण जनजातीय भारत संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। इस संक्रमण के दौरान जनजातियों में अनेक समस्याएं उत्पन्न हो गयी हैं। उन समस्याओं की प्रकृति और कारण अलग-अलग जनजातियों मे भिन्न-भिन्न हैं। कुछ जनजातियों में जनसंख्या की वृद्धि

हो रही है जैसे भील और गोंड में तो कुछ अन्य जनजातियों में जैसे टोडा एवं कोरवा में जनसंख्या घट रही है। कई जनजातियां नगरीय संस्कृति के सम्पर्क में आयी हैं जिसके फलस्वरूप उनकी मूल संस्कृति में कई परिवर्तन हुए हैं। उनमें दिशाहीनता एवं सांस्कृतिक छिन्न-भिन्नता पैदा हुई है और मानसिक असन्तोष बढ़ा है। ब्रिटिश काल में जनजातीय लोगों का सम्पर्क ईसाई मिशनरियों और राज्य कर्मचारियों के साथ हुआ। परिणामस्वरूप उन्हें कुछ लाभ तो प्राप्त हुए किन्तु इनसे उनके जीवन मे विघटन भी प्रारम्भ हो गया। जनजातियों के निवास क्षेत्रों मे सूदखोर, व्यापारी और ठेकेदार लोग पहुंच गए, वहां पर उन्होंने जनजातीय लोगों का खूब आर्थिक शोषण किया और कम मजदूरी पर उनसे अधिक श्रम लेने लगे। सूदखोरो ने इन लोगों की जमीनें कम दामों में खरीद लीं और इन्हें बाध्य होकर कृषि मजदूर के रूप में काम करना पड़ा। कभी-कभी इनसे बेगार भी ली जाने लगी। ठेकेदारों एवं व्यापारियों ने जनजातीय स्त्रियो के साथ अवैध सम्बन्ध भी स्थापित किए जिसके परिणामस्वरूप अनेक जनजातीय लोग गुप्त रोगों से पीड़ित हुए। इस सम्पर्क के फलस्वरूप जनजातियों में वेश्यावृत्ति पनपी। ईसाई मिशनरियों ने जनजातीय क्षेत्रो में ईसाई धर्म का प्रचार कर आदिवासियों को अपने पड़ोसी समुदायों से अलग कर दिया। इससे आदिवासियों में धार्मिक और सामाजिक एकता का संकट पैदा हो गया, सांस्कृतिक और राजनीतिक समस्याएं खड़ी हुई, उनमें पृथकता की भावना पनपी और वे पृथक राज्य की मांग करने लगे। नागाओं की समस्या इसका ज्वलन्त उदाहरण है। नवीन सांस्कृतिक सम्पर्क के कारण आदिवासियों में हीनता की भावना पनपी और वे अपनी मौलिक परम्पराओं को त्यागकर अनुकरण द्वारा नवीन सांस्कृतिक तत्वों को अपनाने लगे। आज ये बाजार अर्थव्यवस्था से जुड़े हुए है। शिक्षा के क्षेत्र में वे कला, प्राविधिक, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक शिक्षा ग्रहण करने लगे हैं।

जनजातियों की प्रमुख समस्याएं कौन-कौनसी हैं, इसका पता लगाने हेतु संविधान-निर्माताओं, सरकार, शिक्षण संस्थाओं एवं बुद्धिजीवियों ने प्रयास किए हैं। संविधान-निर्माता पिछड़े वर्गों, जातियो एवं जनजातियों को उनके उत्थान के लिए विशेष सुविधाएं एवं सुरक्षा प्रदान करना चाहते थे। संविधान निर्मात्री सभा का विचार था कि जनजातियो का सदियों से भूस्वामियों, राजा-महाराजाओं, साहूकारों एवं जनजातीय लोगों द्वारा शोषण हुआ है और उन्हें अनेक सामाजिक-आर्थिक अधिकारों से वंचित रखा गया है। संविधान में अनेक धाराएं, उपधाराएं एवं अनुच्छेद जोड़े गए जो जनजातियों को सुरक्षा, संरक्षण एवं सुविधाएं प्रदान करते हैं। भारत सरकार ने भी जनजातियों की समस्या को सुलझाने हेतु समय-समय पर विशेष प्रयत्न किए हैं। आदिम जाति आयुक्त प्रतिवर्ष जनजातियों से सम्बन्धित अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है जिसमें जनजातियों की स्थिति, समस्याओं एवं समाधान आदि का उल्लेख होता है।

जनजातियों के नामों को संविधान की सूची में सम्मिलित किया गया है और इसी आधार पर उन्हें अनुसूचित जनजाति के नाम से सम्बोधित किया जाता है। विभिन्न शिक्षण संस्थाओं ने भी समय-समय पर गोष्ठियों आदि का आयोजन कर जनजातियों की समस्याओं को ज्ञात करने का प्रयत्न किया है। ऐसी गोष्ठी का आयोजन मई 1972 के इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ एडवांस स्टडी, शिमला तथा भारतीय सामाजिक अनुसन्धान परिषद्, नयी दिल्ली ने मिलकर दिल्ली में किया था। इस गोष्ठी में जनजातियों की विभिन्न समस्याओं को इस प्रकार बताया गया :

(1) जनजातियों द्वारा देश की राजनीतिक क्रियाओं में भाग लेने के कारण उत्पन्न समस्याएं जैसे नयी राजनीतिक संस्कृति का उदय और इसके संगठनात्मक तथा विघटनात्मक पक्ष, जनजातियों में पृथकता की भावना का उदय एव देश मे अशान्ति में वृद्धि।

(2) जनजातियों द्वारा देश की आर्थिक प्रक्रियाओ में भाग लेने से उत्पन्न समस्याएं जैसे जनजाति अर्थव्यवस्था पर बाजार-अर्थव्यवस्था का प्रभाव, भूमि की समस्याएं, औद्योगीकरण की समस्याएं, नवीन आर्थिक अवसरों से उत्पन्न समस्याएं एवं नवीन तथा अपरम्परागत व्यवसायों से उत्पन्न समस्याएं।

(3) जनजातियों द्वारा देश की सांस्कृतिक प्रक्रियाओं में भाग लेने से उत्पन्न समस्याएं जैसे सामाजिक-सांस्कृतिक अस्तित्व का अभाव, अन्य वर्गों के साथ समानता, जनजाति समूहों मे नवीन स्वरूपों का उदय, प्रकट एवं अप्रकट तनाव तथा संघर्ष।

इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडी, शिमला ने भारतीय जनजातियों की स्थिति पर आयोजित गोष्ठी में भारतीय जनजातियों की प्रमुख सात समस्याएं बतायी जो इस प्रकार से हैं :

(1) भारत की अधिकांश जनजातियां पहाड़ी एवं वन प्रदेशों मे निवास करती है। कई जनजातियां देश के सीमावर्ती क्षेत्रो में रहती हैं। जनजातियों का पृथक निवास होने के कारण इनकी भाषा, अर्थव्यवस्था, संस्कृति, जीवन पद्धति एवं राजनीतिक व्यवस्था एक-दूसरे से भिन्न है। अतः इन विभिन्न समूहों की समस्याओ का विवेचन एक कठिन कार्य है।

(2) सीमावर्ती क्षेत्रों और विशेषकर उत्तरी-पूर्वी पहाड़ी क्षेत्रों की जनजातियों ने राजनीतिक चेतना के कारण स्वायत्त शासन की मांग की है जो कि राष्ट्र के लिए एक विकट समस्या बन गयी है।

(3) संविधान मे जनजातियों के विकास एवं संरक्षण की बात कही गयी है। संविधान में उन्हे सेठ-साहूकारों एवं भूस्वामियों के शोषण एवं बेगार से मुक्ति दिलाने का प्रावधान है। यह समस्या श्रम से सम्बन्धित है। चूंकि अधिकांश जनसंख्या वन प्रदेशो में निवास करती है और जीवन-यापन के लिए वनों से प्राप्त सामग्री पर निर्भर है, अतः सरकार को अपनी वन-नीति पर पुनः विचार करना होगा।

(4) विभिन्न क्षेत्रें में नवीन उद्योगों, बांध निर्माण एवं कारखानों की स्थापना के कारण उन क्षेत्रों से जनजातियों को हटाना होगा। अतः एक समस्या उनके विस्थापन (Displacement) और पुनर्वास (Rehabilitation) की है।

(5) जनजातियां नवीन अर्थव्यवस्था के सम्पर्क मे आयी है और उनमें से ही कई नए उद्यमकर्ता (Entrepreneur) बने हैं और वे ही अब अपने लोगो से बेगार ले रहे एवं उनका शोषण कर रहे हैं।

(6) संविधान में जनजातियों को विशेष सुविधाएं प्रदान करने के लिए उनका नाम अनुसूची में लिखा गया है। कई जनजातियो के नाम आज भी राजनीतिक कारणों से अनुसूची में नहीं जुड़ पाए है। अतः जनजातियों को अनुसूची में सम्मिलित करने की समस्या भी बनी हुई है।

(7) विभिन्न जनजातियों को राष्ट्रीय मुख्य धारा से जोड़ने एवं उनके एकीकरण करने की भी एक विकट समस्या है। इसके लिए यह आवश्यक है कि उन्हें संचार एवं यातायात के साधनो से परस्पर जोडा जाए। इन साधनो को जुटाना भी एक बहुत बड़ी समस्या है।

डॉ. घुरिये[1] ने भारतीय जनजातियों की समस्याओं को प्रमुख तीन भागों में बांटा है :

(1) उन जनजातियों की समस्याएं जो हिन्दू समाज में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त कर चुकी है और एकीकरण की लड़ाई सफलतापूर्वक लड़ चुकी हैं जैसे राजगोंड आदि।

(2) उन जनजातियों की समस्याएं जिनका हिन्दुओं से सम्पर्क हुआ है और जिनका आंशिक रूप से हिन्दूकरण हुआ है।

(3) उन जनजातियो की समस्याएं जो पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करती हैं एवं जिन्होंने परिवर्तन के प्रति विरोध प्रकट किया है।

अक्षय देसाई जनजातियों की समस्याओं को किसानों, कृषि मजदूरों, कारीगरों एवं श्रमिको के समान ही मानते है। इनकी अधिकांश समस्या शोषण से सम्बन्धित है। वे उनकी मूल समस्याएं आर्थिक व राजनीतिक मानते हैं। डॉ. दुबे जनजातियों की समस्याओं को शेष भारत की समस्याओ से भिन्न मानते हैं। मजूमदार एवं मदान[2] जनजातियों की समस्याओं को सम्पर्क एवं अलगाव के कारण जनित मानते हैं। ये समस्याएं दो प्रकार की हैं—कुछ ऐसी समस्याएं है जो जनजातीय लोगो एवं देश के सम्पूर्ण ग्रामीण लोगों में समान हैं। इनमें सामाजिक-आर्थिक समस्याएं हैं जो नयी भू-राजस्व नीतियों एवं भू-अधिकार व्यवस्था के प्रभाव, प्रतिबन्धक वन नीति, सम्पूर्ण देश पर समान रूप से लागू दीवानी एवं फौजदारी कानूनों से उत्पन्न हुई है। गैर-जनजातियों से सम्पर्क के कारण उत्पन्न समस्याएं जैसे कर्ज, भूमि हस्तान्तरण, जमींदार एवं सरकारी अधिकारियों द्वारा शोषण, आदि भी इसी कोटि की समस्याएं हैं। (2) कुछ ऐसी समस्याएं है जो जनजातीय लोगों तक ही सीमित हैं अर्थात् इनकी विशिष्ट समस्याएं है जैसे स्थानान्तरित कृषि, भूक्षय एवं भूशोषण के कारण उत्पन्न भुखमरी एवं अपनी परम्परागत आर्थिक क्रियाओं का परित्याग आदि। अब हम यहां जनजातियों की समस्याओं का उल्लेख करेंगे :

(1) दुर्गम निवास स्थान—एक समस्या (Unapproachable Habitation—A Problem)—लगभग सभी जनजातियां पहाड़ी भागों, जंगलों, दलदल भूमि और ऐसे स्थानों मे निवास करती हैं जहां सड़कों का अभाव है और वर्तमान यातायात एवं संचार के साधन अभी वहां उपलब्ध नही हो पाए हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि उनसे सम्पर्क करना एक कठिन कार्य हो गया है। यही कारण है कि वैज्ञानिक आविष्कारों के मधुर फल से वे अभी अपरिचित ही हैं और उनकी आर्थिक, शैक्षणिक, स्वास्थ्य सम्बन्धी एवं राजनीतिक समस्याओं का निवारण नहीं हो पाया है। वे अन्य संस्कृतियों से भी अपरिचित हैं। परिणामस्वरूप उनका अपना विशिष्ट जीवन-दृष्टिकोण (Way of Life) है जिसमें व्यापकता का अभाव है। दुर्गम निवास के कारण संचार की समस्या पैदा हुई है। सड़क, डाकखाना, तारघर, टेलीफोन, समाचार-पत्र, रेडियो और सिनेमा की सुविधाएं इन क्षेत्रों में नहीं पहुंच पायी हैं, अतः इनका आधुनिकीकरण नही हो पाया है और इनके देश के साथ एकता के सूत्र में बंध पाने में बाधा उपस्थित हुई है।

(2) सांस्कृतिक सम्पर्क की समस्या (Problem of Culture Contact)—भौगोलिक दृष्टि से आदिवासियों का निवास-स्थान दुर्गम होने के परिणामस्वरूप उनका आधुनिक संस्कृति से सम्पर्क नहीं हो पाया और वे वर्तमान प्रगति की दौड़ में बहुत पिछड़े हुए है। दूसरी ओर

1 G. S. Ghurye, *The Scheduled Tribes*, 1963.
2 Majumdar and Madan, *Introduction to Social Anthropology*, p. 269.

कुछ आदिवासी संस्कृतियो का वाह्य संस्कृतियों से सम्पर्क बहुत हुआ। इस अत्यधिक सम्पर्क ने भी कई समस्याएं खड़ी कर दी है। आदिवासियो में सास्कृतिक सम्पर्क की समस्याओं को उत्पन्न करने मे कई कारको का योग रहा है। नवीन संस्कृतियो के सम्पर्क ने भोले आदिवासियों को अपनी ओर आकर्षित किया। किन्तु आदिम एवं नवीन सस्कृतियों के बीच इतना अन्तर है कि वे नवीन से अनुकूलन नहीं कर पाए।

वाह्य स्वार्थी समूह जैसे व्यापारी, ठेकेदार एवं सूदखोरो ने जनजातीय लोगो में बसकर इनके बीच नवीन पारिवारिक तनावों, आर्थिक समस्याओ और शारीरिक रोगों को जन्म दिया है। नवीन प्रशासन ने उनका सम्पर्क पुलिस अधिकारियो, प्रशासन एवं वन अधिकारियों आदि से कराया, जिन्होने आदिवासियो को सहानुभूति से देखने की अपेक्षा हीन-भावना से देखा। वर्तमान में कई नए उद्योग-धन्धों, खानों एवं चायबागानों का कार्य उन स्थानों पर होने लगा है जहां आदिवासी लोग निवास करते थे। इसके फलस्वरूप वे नवीन औद्योगिक एव नगरीय संस्कृति के सम्पर्क मे आए, किन्तु इस नवीनता से अनुकूलन करने मे वे असमर्थ रहे, परिणामस्वरूप नवीन सांस्कृतिक समस्याओं ने जन्म लिया। ईसाई मिशनरियों ने सेवा के नाम पर अपने धर्म प्रचार का कार्य किया और आदिवासियो के अज्ञान और अशिक्षा का लाभ उठाया। ईसाई मिशनरियो के प्रभाव के कारण अनेक आदिवासियो ने अपनी संस्कृति को त्यागकर पाश्चात्य संस्कृति को अपनाया। वे अंग्रेजी पोशाक, मादक वस्तुएं, प्रसाधन के नवीन साधनो जैसे पाउडर, लिपिस्टिक, इत्र, तेल आदि का प्रयोग करने लगे एवं अपने रीति-रिवाजो, प्रथाओ, युवागृहों को त्यागने लगे और उनकी प्राचीन ललित-कला का ह्रास होने लगा।

हिन्दुओं के सम्पर्क के कारण जनजातीय लोगो में बाल-विवाह की प्रथा पनपी एवं भाषा की समस्या ने जन्म लिया। इस प्रकार आदिवासियों के बाह्य सांस्कृतिक समूहों से सम्पर्क के कारण अनेक समस्याएं पनपीं जैसे भूमि व्यवस्था की समस्या, जंगल की समस्या, आर्थिक शोषण एवं ऋणग्रस्तता, औद्योगिक श्रमिकों की समस्या, वेश्यावृत्ति एवं गुप्त रोग, भाषा समस्या, जनजातीय ललित-कला का ह्रास, खान-पान एवं पहनावे की समस्या और शिक्षा एवं धर्म की समस्या, आदि-आदि।

(3) आर्थिक समस्याएं (Economic Problems)—वर्तमान सांस्कृतिक सम्पर्क एवं नवीन सरकारी नीति के कारण जनजातीय लोगों को आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। भूमि सम्बन्धी सरकार की नयी नीति के कारण जंगलों को काटना मना कर दिया गया, अनेक क्षेत्रों में शिकार करने व शराब बनाने पर भी नियन्त्रण लगा दिया गया, जिसके कारण आदिवासियों को जीवन-यापन के परम्परागत तरीकों के स्थान पर नवीन तरीके अपनाने पड़े। उन्हें जंगलों से लकड़ी काटने, स्थानान्तरित खेती करने एवं अन्य वस्तुओ को प्राप्त करने की मनाही कर दी गयी। वे वाध्य होकर अपने मूल निवास को त्यागकर चायबागानों, खानो और फैक्ट्रियों मे कार्य करने के लिए चले गए। अब वे भूमिहीन कृषि श्रमिकों एवं औद्योगिक श्रमिकों के रूप में कार्य करने लगे। इन लोगों की मजबूरी का लाभ उठाकर ठेकेदार एवं उद्योगपति इनसे कम मजदूरी पर अधिक काम लेने लगे। इन लोगों के निवास और कार्य करने की दशाएं भी सोचनीय हैं। इस प्रकार से इनका आर्थिक शोषण किया गया है। वे ऋणग्रस्त हो गए और अपनी कृषि भूमि साहूकारों के हाथों या तो बेच दी या गिरवी रख दी है। जो जनजातियां कृषि में लगी हैं उनमें से कुछ स्थानान्तरित कृषि करती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि भूमि कटाव बढ जाता है, जंगलो में कीमती लकडी जल जाती है

और उपज भी कम होती है। जनजातियों की आर्थिक समस्या कृषि समस्या से जुड़ी हुई है। जनजाति आयुक्त ने अपने प्रतिवेदन में कहा है कि जनजाति जनसंख्या का 68.2 प्रतिशत भाग किसान हैं और 19.7 प्रतिशत लोग कृषि में मजदूरी करते हैं। किन्तु पहाड़ी क्षेत्रों में रहने के कारण कृषि योग्य भूमि का इनके पास अभाव है। यही नहीं, इनके पास उन्नत पशु, बीज, औजार एवं पूंजी का भी अभाव है, अतः कृषि लाभप्रद नहीं है। राजस्थान में हलवई प्रथा तथा उडीसा मे गोटी प्रथा कानूनन समाप्त होने पर भी व्यवहार में प्रचलित है। यह प्रथा लोगो को बेगार करने को बाध्य करती है।

(4) सामाजिक समस्याएं (Social Problems)—नगरीय और सभ्य समाजो के सम्पर्क के कारण आदिवासियो में कई सामाजिक समस्याओं ने भी जन्म लिया है। पहले इन लोगों मे विवाह युवा अवस्था में ही होता था किन्तु अब बाल-विवाह होने लगे हैं जो हिन्दुओं के सम्पर्क का परिणाम है। मुद्रा अर्थव्यवस्था के प्रवेश के कारण अब इनमें कन्या-मूल्य भी लिया जाने लगा है। सभ्य समाज के लोग जनजातियों में प्रचलित युवा-गृहों को हीन दृष्टि से देखते है। युवा-गृह आदिवासियों मे मनोरजन, सामाजिक प्रशिक्षण, आर्थिक हितों की पूर्ति का साधन एवं शिक्षा के केन्द्र थे। किन्तु अब ये समाप्त हो रहे हैं जिसके फलस्वरूप कई हानिकारक प्रभाव पड़े हैं। जनजातियों की निर्धनता का लाभ उठाकर ठेकेदार, साहूकार, व्यापारी एवं कर्मचारी यदाकदा उनकी स्त्रियों के साथ अनुचित यौन सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं जिससे वेश्यावृत्ति तथा पूर्व-विवाह यौन सम्बन्ध की समस्याएं पनपी हैं।

(5) स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएं (Problems Related to Health)—अधिकांशतः जनजातियां घने जंगलो, पहाड़ी भागों एवं तराई क्षेत्रों में निवास करती हैं। इन भागो में अनेक बीमारियां पायी जाती हैं। गीले एवं गन्दे कपड़े पहने रहने के कारण इन्हें कई चर्म रोग हो जाते हैं। इन लोगों में मलेरिया, पीलिया, चेचक, रोहे, अपच एवं गुप्तांगों की बीमारियां भी पायी जाती हैं। बीमारियो के इलाज के लिए चिकित्सालयों का अभाव है, डॉक्टर एवं आधुनिक दवाओं की सुविधाएं नहीं हैं। ये लोग जंगली जडी-बूटियों, झाड़-फूंक एवं जादू-टोने का प्रयोग करते है। अधिकांश आदिवासी स्वास्थ्य के नियमो से अपरिचित हैं। उन्हें पौष्टिक भोजन भी उपलब्ध नही हो पाता। वे लोग महुआ, चावल, ताड़-गुड़ आदि की शराब का प्रयोग करते रहे हैं। वे अब अंग्रेजी शराब का प्रयोग करने लगे हैं। सन्तुलित आहार एवं विटामिनयुक्त भोजन के अभाव में भी इन लोगो का स्वास्थ्य दिनों-दिन गिरता जा रहा है। परिणामस्वरूप इनकी कार्यकुशलता एवं क्षमता मे कमी आयी है। कई जनजातियों की तो जनसंख्या काफी घट रही है। अण्डमान एवं निकोबार की जनजातियों की जनसंख्या घटने का सबसे बड़ा कारण इनमे व्याप्त बीमारी है।

(6) शिक्षा सम्बन्धी समस्याएं (Problems Related to Education)—जनजातियो में शिक्षा का अभाव है और वे अज्ञानता के अन्धकार में पल रही है। अशिक्षा के कारण वे अनेक अन्धविश्वासों, कुरीतियों एवं कुसंस्कारों से घिरी हुई है। आदिवासी लोग वर्तमान शिक्षा के प्रति उदासीन हैं क्योंकि यह शिक्षा उनके लिए अनुत्पादक है। जो लोग आधुनिक शिक्षा ग्रहण कर लेते है, वे अपनी जनजातीय संस्कृति से दूर हो जाते हैं और अपनी मूल संस्कृति को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। आज की शिक्षा जीवन-निर्वाह का निश्चित साधन प्रदान नही करती। अतः शिक्षित व्यक्तियों को बेकारी का सामना करना पड़ता है। ईसाई मिशनरियों ने जनजातियों में शिक्षा प्रसार का कार्य किया है किन्तु इसके पीछे उनका उद्देश्य

ाई धर्म का प्रचार करना और आदिवासियों का धर्म परिवर्तन करना रहा है। अधिकांश ादिवासी प्राथमिक शिक्षा ही ग्रहण कर पाते हैं, वे उच्च प्राविधिक एवं विज्ञान की शिक्षा अधिक रुचि नही रखते।

(7) **राजनीतिक चेतना की समस्या (Problem of Political Awakening)**—स्वतन्त्रता बाद संविधान के द्वारा देश के सभी नागरिको को प्रजातान्त्रिक अधिकार प्रदान कर उन्हे ासन में हिस्सेदार बना दिया गया है। आज पंचायत से लेकर संसद तक के प्रतिनिधि आम नता द्वारा चुने जाते है। प्रजातन्त्र में राजनीतिक दल महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। जनजातियों ी परम्परागत राजनीतिक व्यवस्था अपने ही ढंग की थी जिसमें अधिकांशतः वंशानुगत मुखिया प्रशासन सम्बन्धी कार्य करते थे। उनकी सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था में प्रदत्त अधिकारो एवं ितेदारी का विशेष महत्व था। किन्तु आज वे नवीन राजनीतिक व्यवस्था से परिचित हुए हैं। न्हें भी मताधिकार प्राप्त है। वे अपनी सामाजिक-आर्थिक समस्याओ के प्रति सजग है। वे पने राजनीतिक अधिकारो का प्रयोग अपनी समस्याओं के समाधान के सन्दर्भ में करने लगे । मध्य प्रदेश, आन्ध्र, असम, बिहार, पश्चिमी बंगाल एवं तमिलनाडु में इनकी राजनीतिक ागरूकता के कटु परिणाम निकले हैं। प्रशासकों, भूस्वामियो एवं अजनजाति लोगों से उनके म्बन्ध तनावपूर्ण हुए हैं। कई स्थानों पर राजनीतिक तनाव एवं विद्रोह पनपा है। उन्होने ायत्त राज्य की मांग की है। आज वे इस बात को समझते है कि उनकी अल्प सख्या की जबूरी का लाभ अजनजातीय समूहों ने उठाया है और उनका शोषण किया है। शोषण के ति उनमें तीव्र आक्रोश है जो यदाकदा भड़कता रहता है।

(8) **सबसे कमजोर कड़ी का पता लगाना (To Find out the Weakest ink)**—अनुसूचित जातियो के आयुक्त ने जनजातियों की एक समस्या सबसे कमजोर कड़ी ा पता लगाना बताया है। देश की अनुसूचित जनजातियां गरीबी से त्रस्त है किन्तु कुछ नजातियां ऐसी हैं जो अपेक्षतया अधिक गरीब हैं। इसी प्रकार से जनजातियां उपेक्षित रही किन्तु कुछ जनजातियां सबसे अधिक उपेक्षित रही हैं। अतः सबसे बड़ी समस्या यह है क सबसे अधिक गरीब एव उपेक्षित जनजाति का पता लगाया जाए जो कि जनजातियों की सबसे कमजोर कड़ी है। इस कमजोर कड़ी के विकास एवं उन्नति के लिए विशेष कार्यक्रम बनाकर उसकी आवश्यकताओं को पूरा किया जाना चाहिए। जनजाति आयुक्त ने विभिन्न राज्यों में ऐसी कमजोर कड़ी का पता लगाया है। गुजरात में चारण, दुबला, नई कड़ा और वरली जनजातियां; मध्य प्रदेश में बैगा, गोंड, मारिया, भूमिया, कमार तथा मवासी जनजातियां; उत्तर प्रदेश में भोटिया, जॉनसारी और थारू; राजस्थान में भील, डामोर और सहरिया जनजातियों की समस्या अन्य जनजातियों की तुलना में अधिक गम्भीर है।

(9) **एकीकरण की समस्या (Problem of Integration)**—भारतीय जनजातियों में अर्थव्यवस्था, समाज व्यवस्था, संस्कृति, धर्म एवं राजनीतिक व्यवस्था के आधार पर अनेक भिन्नताएं पायी जाती है। वे देश के अन्य लोगों से पृथक् हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि देश में जनजातियों की विशिष्ट समस्याओं से उन्हें मुक्ति दिलाने के लिए सभी देशवासियों द्वारा सामूहिक प्रयास किए जाएं। जनजातियां अपने को अन्य लोगों से पृथक् न समझकर देश की मुख्य जीवन धारा से जोड़ें तभी हम गरीबी, शोषण, अज्ञानता, अशिक्षा, बीमारी, बेकारी और खराब स्वास्थ्य की समस्याओं से निपट सकेंगे। इन समस्याओं से निपटने के लिए विभिन्न जन-समूहों का सहयोग एवं राष्ट्रीय जीवन की मुख्य धारा में बहना तथा एकीकरण

आवश्यक है। इसके लिए अल्पसंख्यक समूहों को देश की आर्थिक-राजनीतिक अर्थव्यवस्था में भागीदार बनाना होगा और विकास योजनाओं में उन्हें साथ लेकर चलना होगा। इस प्रकार जनजातियों का एकीकरण भी बहुत बड़ी समस्या है।

(10) सीमाप्रान्त जनजातियों की समस्याएं (Problems of Frontier Tribes)—उत्तर पूर्वी सीमाप्रान्तों में निवास करने वाली जनजातियों की समस्याएं देश के विभिन्न भागों की समस्याओं से कुछ भिन्न हैं। देश के उत्तर-पूर्वी प्रान्तों के नजदीक चीन, बर्मा एवं बंगलादेश हैं। चीन से हमारे सम्बन्ध पिछले कुछ वर्षों में मधुर नहीं रहे हैं। बंगलादेश, जो पहले पूर्वी पाकिस्तान के नाम से जाना जाता था, भारत का कट्टु शत्रु रहा है। चीन एवं पाकिस्तान ने सीमा प्रान्तों की जनजातियों में विद्रोह की भावना को भड़काया है, उन्हें अस्त्र-शस्त्रों से सहायता दी है एवं विद्रोही नागा एवं अन्य जनजातियों के नेताओं को भूमिगत होने के लिए अपने यहां शरण दी है। शिक्षा एवं राजनीतिक जागृति के कारण इस क्षेत्र की जनजातियों ने स्वायत्त राज्य की मांग की है। इसके लिए उन्होंने आन्दोलन एवं संघर्ष किए हैं। अतः आज सबसे बड़ी समस्या सीमावर्ती क्षेत्रों में निवास करने वाली जनजातियों की स्वायत्तता की मांग से निपटना है।

स्पष्ट है कि भारतीय आदिवासी विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं से पीड़ित हैं। प्रजातन्त्र की सफलता उसी समय है जब बहुसंख्यकों के साथ-साथ अल्पसंख्यकों की समस्याओं का निराकरण भी किया जाए। राष्ट्रीय प्रगति में जब तक हम इन लोगों को साथ लेकर नहीं चलेंगे तब तक हमारी राष्ट्रीय प्रगति की योजनाएं अधूरी ही रहेंगी।

जनजातियों की समस्याओं का उपचार
(SOLUTION TO TRIBAL PROBLEMS)

जनजातियों की समस्याओं को हल करने के लिए बुद्धिजीवियों, स्वयंसेवी संस्थाओं एवं भारत सरकार द्वारा समय-समय पर प्रयत्न किए गए हैं। हम उनका उल्लेख यहां करेंगे।

(1) बुद्धिजीवियों के सुझाव (Suggestions of Intellectuals)

जनजातियों की समस्याओं को हल करने के लिए डॉ. घुरिये, वेरियर एल्विन, डॉ. मजूमदार, शरतचन्द्र रॉय एवं हट्टन आदि प्रमुख समाज वैज्ञानिकों द्वारा कई सुझाव दिए गए हैं जो पुनरुद्धार, पृथक्करण एवं सात्मीकरण से सम्बन्धित हैं। हम यहां इन तीनों ही सुझावों का उल्लेख करेंगे :

(अ) पुनरुद्धार (Revival)—कुछ बुद्धिजीवियों की मान्यता है कि जनजातियों का आधुनिक सभ्यता से सम्पर्क होने से उनमें अनेक समस्याएं उत्पन्न हो गयी हैं, परिणामस्वरूप आज वे अभावों एवं कष्टों से घिरी हुई हैं। भारत की विभिन्न जनजातियों के सम्बन्ध में किए गए अध्ययन इस बात की पुष्टि करते हैं। एस.सी. रॉय ने छोटा नागपुर के ओरांव लोगों की गिरती हुई सामाजिक एवं भौतिक दशा का उल्लेख किया है। वेरियर एल्विन ने बैगा एवं गोंड लोगों की आधुनिक सभ्यता के सम्पर्क से उत्पन्न समस्याओं का उल्लेख किया है। उनका मत है कि बैगा लोगों के विकास के कार्यक्रम उतावलेपन में लागू करने के कारण उनका जीवन कष्टमय हो गया है। गोंड जनजाति का सभ्यता के सम्पर्क के कारण ग्रामीण जीवन नष्ट हो रहा है तथा बाल-विवाह का उनमें प्रचलन हुआ है। परिवर्तन के कारण इन जनजातियों की भूमि साहूकारों के हाथों में चली गयी है, उनकी वनों पर निर्भरता समाप्त

हुई है, फलस्वरूप वे गरीबी के जाल में फंस गए है। जनजातियों की समस्याओं के एल्विन ने कुछ कारण इस प्रकार बताए है—भूमि की हानि, वनो की स्वतन्त्रता पर रोक, शिकार के त्यौहारो का लोप होना, गरीबी, जनजाति उद्योगों का पतन, नवीन कानून से उत्पन्न समस्याएं, मानसिक एवं नैतिक थकान, शराव पर पाबन्दी, बाह्य धर्मो एवं सुधार आन्दोलनों का प्रभाव।

जनजातियों की समस्याओं को हल करने के लिए रॉय तथा एल्विन इनके पुनरुत्थान का सुझाव देते हैं। एल्विन जनजातीय समस्याओ के समाधान के लिए **राष्ट्रीय उपवन** (National Park) की स्थापना का सुझाव देते है। उनका मत है कि एक ऐसा क्षेत्र बनाया जाए जहां आस-पास की जनजातियों को बसाया जाए। इस क्षेत्र में अन्य लोगों के प्रवेश पर निषेध लागू किया जाए तथा इस पर जनजाति आयुक्त का सीधा नियन्त्रण हो। इस उपवन में जहां तक सम्भव हो जनजातियों की संस्कृति एवं विशिष्ट विशेषताओं को बनाए रखने का प्रयास किया जाए। जनजाति के लोगो को इस क्षेत्र से बाहर जाने की भी कम से कम स्वीकृति दी जाए। एल्विन जनजातियों की सामाजिक संरचना में भी परिवर्तन के पक्ष मे नहीं हैं क्योंकि इसके कारण उन्हें कई हानियां उठानी पड़ी है। इस प्रकार एल्विन राष्ट्रीय संरक्षित क्षेत्र के द्वारा जनजातियो के पुनरुत्थान की वकालत करते है। एल्विन की इस नीति की घुरिये एवं अन्य विद्वानों ने कटु आलोचना की। एल्विन ने आगे चलकर अपनी नीति में परिवर्तन किया और वे एकीकरण एवं आत्मसात की नीति के पक्षधर हो गए।

(ब) पृथक्करण (Isolation)—**हट्टन** तथा **मजूमदार** आदि विद्वानों का मत है कि जनजातियों की सामाजिक-सांस्कृतिक धरोहर की निरन्तरता बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि उनका पृथक अस्तित्व बनाए रखा जाए। ये विद्वान जनजाति-जीवन में परिवर्तन के हामी तो है लेकिन ये परिवर्तन ऐसे हों जो इनके लिए हानिकारक न हों। अतः जनजातिया स्वयं ही परिवर्तन का चयन कर उनसे अनुकूलन करें। हट्टन कहते हैं कि अंग्रेजी शासनकाल में जनजातियां आधुनिकता के सम्पर्क में आयीं और उनमें अनेक परिवर्तन हुए। उनके सामने दो विकल्प थे—या तो वे हिन्दू समाज व्यवस्था से आत्मसात कर लें या फिर नपुंसक जनजाति-जीवन व्यतीत करें। हट्टन का मत है कि जनजाति समस्याओं के समाधान हेतु स्वयंशासित जनजातीय क्षेत्रों का निर्माण किया जाए और स्वयं जनजातियां ही तय करें कि उन्हें कौन-से नवीन परिवर्तन अपनाने हैं।

डॉ. मजूमदार ने बताया कि नवीन सम्पर्क के कारण जनजातियों में महत्वाकांक्षाओं एवं उत्साह का हनन हुआ है। सभ्यता के सम्पर्क ने उन्हे गरीब बना दिया है और आज वे इतने अक्षम हैं कि अपने कल्याण के लिए भी नही सोच सकते। बाह्य लोगों के सम्पर्क के कारण जनजातियों के हाथों से भूमि छीन ली गयी है, स्थानान्तरित कृषि पर रोक लगी है, साहूकारों द्वारा उनका शोषण हुआ है, मिशनरियों ने उनका धर्म परिवर्तन किया है, उनमें अपनी ही संस्कृति के प्रति घृणा उत्पन्न हुई है, विवाह के नियम बदले हैं तथा वे अनेक रोगों से ग्रस्त हैं। दूसरी और नवीन सम्पर्क से जनजातियों को कई लाभ भी मिले हैं। अतः जनजातियों को केवल वे बातें ही अपनानी चाहिए जो उनके लिए लाभप्रद हैं। यही उनकी समस्या का चयनित अनुकूलन (Selective Adaptation) एवं पृथक्करणवादी समाधान है।

(स) आत्मसात (Assimilation)—**डॉ. घुरिये, अक्षय देसाई व निर्मल कुमार बोस**, आदि का मत है कि जनजातियां हिन्दू समाज व्यवस्था का ही अंग हैं, ये उनके अलग अस्तित्व में

विश्वास नहीं करते वरन् उन्हें हिन्दू समाज में आत्मसात कर लेने का सुझाव देते हैं। घुरि का मत है कि आदिम जातियां पिछड़े हिन्दू थे। अतः इनकी सभी सांस्कृतिक, आर्थिक ए सामाजिक समस्याओं का समाधान हिन्दू समाज के साथ आत्मसात मे ही निहित है।

प्रो. देसाई डॉ. घुरिये से मत-भिन्नता रखते है और वे जनजातियो का आत्मसात हि समाज के स्थान पर राष्ट्रीय जीवन की मुख्य धारा में चाहते हैं। निर्मल कुमार बोस जनजाति का आत्मसात किसी धार्मिक समूह के स्थान पर नवीन भारतीय समाज मे चाहते हैं। आधुनि भारतीय समाज के मूल आधार धर्मनिरपेक्षता, प्रजातन्त्र, समाजवाद और वैज्ञानिकता हैं।

डॉ. दुबे का मत है कि जनजातियों की समस्याओं के समाधान खोजने के जो अ तक प्रयत्न हुए है, वे अधिकांशतः राजनीतिक अथवा भावुकतापूर्ण ही रहे हैं। वे लिखते हैं "नृतत्ववेत्ता का आशय है कि आदिवासी अपनी कतिपय परम्परागत संस्थाओं को जीवि रखकर भी राष्ट्र के उपयोगी नागरिक और महत्वपूर्ण अंग बन सकते है।"[1] आदिवासिं की समस्याओं के हल के लिए वे निम्नांकित सुझाव देते हैं :

(1) वैज्ञानिक अध्ययन द्वारा आदिवासियों के सामाजिक संगठन और मूल्य के ज्ञा की उपलब्धि।

(2) विभिन्न प्राविधिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के धरातलों पर उनकी समस्याअ का सूक्ष्म अध्ययन।

(3) आदिवासी जीवन में एकीकरण की शक्तियों और कारकों का अध्ययन।

(4) संस्कृति के सहज परिवर्तनशील और परिवर्तन-विरोधी पक्षो का विश्लेषण।

(5) संस्कृति के विभिन्न पक्षों के सम्बन्ध सूत्रों और अन्तरावलम्बन का अध्ययन।

(6) आदिवासी क्षेत्रों में कार्य करने वाले शासको तथा अर्द्ध-शासकीय और सामाजि कार्यकर्ताओं को आदिवासी जीवन और संस्कृति से परिचित कराने और इन समूहों में कि जाने वाले कार्य को समझने हेतु विशेष प्रशिक्षण की व्यवस्था।

(7) विचारपूर्वक ऐसी विकास योजनाओ का निर्माण जो आदिवासी समूह की आवश्यकताओ का क्षेत्रीय और राष्ट्रीय आवश्यकताओं से समन्वय कर सके।

(8) इन योजनाओं द्वारा जनित प्रवृत्तियों की गतिविधि और प्रभावों का अध्ययन तथा उनके हानिकारक तत्वों के निराकरण का प्रयत्न।

(2) स्वयंसेवी संस्थाओं के प्रयत्न (Efforts of Voluntary Institutions)

अनेक समाजसेवी संस्थाओं ने भी आदिवासियों की गिरी हुई दशा पर चिन्ता व्यक्त की और उनके उत्थान के लिए अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्रयत्न किए। इन संस्थाओ में भारतीय आदिम जाति सेवक संघ, नयी दिल्ली; आन्ध्र प्रदेश आदिम जाति सेवक संघ, हैदराबाद; रामकृष्ण मिशन, केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड, ठक्कर बापा आश्रम, भारतीय रेडक्रास एवं ईसाई मिशनरियां आदि प्रमुख हैं। महात्मा गांधी अंग्रेजों से लड़ाई लड़ने हेतु देश के गरीब और पिछड़े वर्ग का सहयोग प्राप्त करना और उनकी गिरी हुई दशा सुधारना चाहते थे। अतः उन्होंने भी उनकी आर्थिक दशा सुधारने एवं उन्हे सामाजिक एवं राजनीतिक न्याय दिलाने के लिए भरसक प्रयत्न किए। ज्योति रॉय फूले तथा ठक्कर बापा ने भी देश के पिछड़े वर्ग की दशा सुधारने का प्रयत्न किया। ठक्कर बापा जनजातियो को आधुनिक सुविधाएं दिलाकर उन्हें गरीबी, अज्ञानता, बीमारी एवं कुप्रशासन से मुक्ति दिलाना चाहते थे। इस प्रकार

[1] डॉ. दुबे, पूर्व उद्धृत, पृ. 297-298।

समाजसेवी संस्थाओं का उद्देश्य जनजातियों का अस्तित्व बनाए रखकर उन्हे अभावों से मुक्ति दिलाना था।

आदिवासियों में सुधार के लिए कई धार्मिक संस्थाओ ने भी प्रयत्न किए है, उनमें ईसाई मिशनरियां एवं हिन्दुओं के कुछ धार्मिक समुदाय जैसे आर्य समाज एव विश्व हिन्दू परिषद आदि प्रमुख है। ईसाई मिशनरियों ने जनजातियों को भौतिक सुख-सुविधाएं प्रदान की है किन्तु उनका उद्देश्य धर्म प्रचार रहा है। फलस्वरूप उनमें कई नयी समस्याएं भी पैदा हुई है। आर्य समाज एवं विश्व हिन्दू परिषद् उन्हें हिन्दू समाज व्यवस्था में सम्मिलित करने के पक्षधर रहे है। इन धार्मिक संस्थाओं के प्रयास के बारे में डॉ. दुबे का मत है कि 'वैज्ञानिक दृष्टि से यह कहना कठिन है कि धार्मिक प्रयासों ने आदिवासियों का हित अधिक किया है अथवा अहित। आदिवासियों का धर्म परिवर्तन अपने पडोसी समुदायों से उन्हें दूर किए बिना ही उनकी सामाजिक एकता में सहायक होता है और उन्हें आधुनिक जीवन में भाग लेने को तैयार करता है तो उसका विरोध नहीं किया जा सकता। किन्तु यदि यह धर्म परिवर्तन उनमें सांस्कृतिक विघटन उत्पन्न कर उन्हे भारतीय जीवन की मुख्य धारा से विमुख करता है तो उसकी उपयोगिता सन्दिग्ध होगी।"[1]

(3) सरकारी प्रयत्न : जनजातीय कल्याण कार्य (Efforts of Government : Tribal Welfare Work)

अंग्रेजों के समय से ही भारत सरकार जनजातियों के सुधार के लिए प्रयत्नशील रही है। ब्रिटिश सरकार ने उनके लिए आधुनिक चिकित्सा की सुविधाएं जुटायीं जिससे उनकी मृत्यु-दर में कमी हुई। अंग्रेजों ने उनके अमानवीय रीति-रिवाजों पर भी प्रतिबन्ध लगाया। ब्रिटिश सरकार की नीति तुष्टिकरण की नीति थी। ब्रिटिश सरकार जनजातियों के उत्थान की अपेक्षा उन पर नियन्त्रण में अधिक रुचि रखती थी। अतः उनकी नीति से लाभ की अपेक्षा जनजातियों की हानि ही अधिक हुई। अंग्रेज सरकार की नीति नकारात्मक थी। वह तब तक कोई हस्तक्षेप नही करती जब तक कि कोई संकट पैदा नहीं हो जाता।

संवैधानिक व्यवस्थाएं (Constitutional Provisions)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद स्वाधीन भारत के संविधान में जनजातियों एवं पिछड़े वर्ग के उत्थान के लिए विशेष प्रावधान रखे गए है। भारतीय संविधान देश के सभी नागरिकों के लिए आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, मान्यता एवं धर्म की स्वतन्त्रता और प्रतिष्ठा एवं अवसर की समानता का आश्वासन देता है। संविधान में मूल अधिकारों का उल्लेख किया गया है जो नागरिकों को यह विश्वास दिलाते हैं कि धर्म, वर्ग, लिंग, जाति, प्रजाति एवं जन्म के आधार पर भेदभाव नही बरता जाएगा। इससे जनजातियों के प्रति अब तक बरते गए भेदभाव की समाप्ति होती है।

संविधान में नीति निर्देशक तत्वों का उल्लेख किया गया है जिनमें कहा गया है कि राज्य कमजोर वर्ग के लोगों, विशेषकर अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के शैक्षणिक व आर्थिक हितों को बढ़ावा देगा तथा उन्हें सामाजिक अन्याय एवं शोषण से सुरक्षा प्रदान करेगा।

संविधान में जनजातियो के लिए दो प्रकार की व्यवस्थाएं की गयी हैं—एक संरक्षी एवं दूसरी विकासी (Protective and Promotive Provisions)। संरक्षी प्रावधानों का उद्देश्य

1 डॉ. दुबे, पूर्व उद्धृत, पृ. 296।

जनजाति हितो को सुरक्षा प्रदान करना है और विकासी प्रावधानो का उद्देश्य उन्हें प्रगति के अवसर प्रदान करना है। इन दोनो प्रकार के प्रावधानों का उल्लेख करने वाले संविधान के अश इस प्रकार से है

संविधान के बारहवे भाग के अनुच्छेद 275 के अनुसार केन्द्रीय सरकार राज्यो को जनजातीय कल्याण एवं उनके उचित प्रशासन के लिए विशेष धनराशि देगी।

पन्द्रहवे भाग के अनुच्छेद 325 में कहा गया है कि किसी को भी धर्म, प्रजाति, जाति एवं लिंग के आधार पर मताधिकार से वंचित नहीं किया जाएगा। **सोलहवें भाग के अनुच्छेद 330 व 332** मे लोक सभा एवं राज्य विधान सभाओ मे अनुसूचित जातियो एवं जनजातियों के लिए स्थान सुरक्षित किए गए हैं। **अनुच्छेद 335** आश्वासन देता है कि सरकार नौकरियों में इनके लिए स्थान सुरक्षित रखेगी। **अनुच्छेद 338** मे राष्ट्रपति द्वारा अनुसूचित जातियो एवं जनजातियों के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति की व्यवस्था की गयी है। यह अधिकारी प्रतिवर्ष अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करेगा।

पांचवीं अनुसूची मे जनजातीय सलाहकार परिषद् नियुक्ति की व्यवस्था है जिसमें अधिकतम 20 सदस्य हो सकते है जिनमें से तीन-चौथाई सदस्य राज्य विधान-सभाओं के अनुसूचित जनजातियो के होंगे। **अनुच्छेद 342 एवं 344** मे राज्यपालो को जनजातियों के सन्दर्भ मे विशेषाधिकार प्रदान किए गए है। संविधान मे कुछ अनुच्छेद ऐसे भी है जो मध्य प्रदेश, असम, विहार, उडीसा आदि के जनजातीय क्षेत्रों के लिए विशेष सुविधा देने से सम्बन्धित हैं। इन लोगो के लिए नौकरियो में प्रार्थना-पत्र देने एवं आयु सीमा में भी छूट दी गयी है। प्रशिक्षण संस्थाओ में भी इन्हें शुल्क से मुक्त किया गया है एवं कुछ स्थान इनके लिए सुरक्षित रखे गए है। अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के विरुद्ध अत्याचारों को रोकने के लिए **'अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति (अत्याचारों की रोकथाम अधिनियम, 1989'** बनाया गया है जो 30 जनवरी, 1990 से लागू किया गया।

संविधान में रखे गए विभिन्न प्रावधानों का उद्देश्य जनजातियो को देश के अन्य नागरिकों के समकक्ष लाना है, उन्हे देश की मुख्य जीवनधारा के साथ जोडना तथा एकीकरण करना है ताकि वे देश की आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था मे भागीदार बन सके। पण्डित नेहरू भी जनजातियों के विकास में अधिक रुचि रखते थे। वे नही चाहते थे कि उन पर कोई चीज थोपी जाए। उनका कहना था कि हमें उनकी कला एवं संस्कृति के विकास को बढावा देना चाहिए, उनके भू-अधिकारों का आदर करना चाहिए, उनके स्वयं का शासन करने की क्षमता एवं मानवीय चरित्र का विकास करना चाहिए।

प्रशासनिक व्यवस्था
(ADMINISTRATIVE ARRANGEMENT)

आन्ध्र प्रदेश, विहार, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा और राजस्थान के कुछ क्षेत्र अनुच्छेद 224 और संविधान की पांचवीं अनुसूची के अन्तर्गत 'अनुसूचित' (Scheduled) किए गए हैं। इन राज्यों के राज्यपाल प्रतिवर्ष अनुसूचित क्षेत्रों की रिपोर्ट राष्ट्रपति को देते हैं। असम, मेघालय और मिजोरम का प्रशासन संविधान की छठी अनुसूची के उपबन्धों (Provisions) के आधार पर किया जाता है। इस अनुसूची के अनुसार इन्हें स्वायत्तशासी (autonomous) जिलों में बांटा गया है। इस प्रकार के आठ जिले हैं—असम के उत्तरी कछार पहाड़ी जिले में एक जिला परिषद् होती है जिसमें 30 से अधिक सदस्य नहीं

होते। इनमें से चार मनोनीत हो सकते हैं और शेष का चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है। इस परिषद् को कुछ प्रशासनिक, वैधानिक और न्यायिक अधिकार प्रदान किए गए हैं।

कल्याणकारी एवं सलाहकार संस्थाएं
(WELFARE AND ADVISORY AGENCIES)

केन्द्र सरकार के गृह मन्त्रालय का यह दायित्व है कि अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के कल्याण के लिए योजनाएं बनाए और उनको क्रियान्वित करें। अगस्त 1978 मे संविधान के अनुच्छेद 338 के तहत अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए एक कमीशन 'नेशनल कमीशन फॉर शेड्यूल्ड कास्ट्स एण्ड शेड्यूल्ड ट्राइब्स' की स्थापना की गयी। इसका एक चेयरमैन और ग्यारह सदस्य होते है। यह कमीशन 1955 के नागरिक अधिकार अधिनियम (Civil Right Act, 1955) के अन्तर्गत संविधान में इन लोगों के लिए सुरक्षा सम्बन्धी किए गए प्रावधानों के बारे में जांच करता है और उचित उपाय सुझाता है। संविधान के अन्तर्गत बन्धुआ श्रम (Bonded Labour) पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। जनजातियो के व्यक्तियों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के विक्रय के लिए **'ट्राइबल कोओपरेटिव मार्केटिंग डवलपमेण्ट फेडरेशन ऑफ इण्डिया'** का गठन किया गया है। यह जनजातियों द्वारा उत्पादित माल का उचित मूल्य दिलवाने मे मदद करती है।

संसदीय समितियां—भारत सरकार के 1968, 1971 तथा 1973 में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों को संविधान में प्रदत्त सुरक्षा एवं उनके कल्याण की जांच के लिए तीन संसदीय समितियां भी नियुक्त की। वर्तमान में संसद की एक स्थायी समिति बना दी गयी है जिसके सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष रखा गया है। इस समिति के 30 सदस्य होते हैं जिनमें से 20 लोकसभा और 10 राज्यसभा से लिए जाते है।

राज्यों मे कल्याण विभाग—राज्य सरकारो एवं केन्द्रशासित क्षेत्रों मे अनुसूचित जातियों एवं जनजातियो की देख-रेख एवं कल्याण के लिए पृथक् विभागो की स्थापना की गयी है। प्रत्येक राज्य का अपना विशिष्ट प्रशासनिक तरीका है। बिहार, मध्य प्रदेश और उडीसा में संविधान के अनुच्छेद 164 के अन्तर्गत अनुसूचित जनजातियो के कल्याण हेतु अलग मन्त्री नियुक्त किये जाते हैं। कुछ राज्यो में केन्द्र की भांति संसदीय समितियो के समान विधानमण्डल समितियां बनायी गयी है।

विधानसभाओं में प्रतिनिधित्व
(REPRESENTATION IN LEGISLATURES)

संविधान के अनुच्छेद 330 और 332 के द्वारा लोकसभा तथा राज्यो के विधानमण्डलों में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में स्थान सुरक्षित किये गये हैं। प्रारम्भ में यह व्यवस्था 10 वर्षों के लिए थी जिसे बढ़ाकर अब 25 जनवरी, 2000 तक कर दिया गया है। संसदीय अधिनियम के द्वारा उन केन्द्रशासित क्षेत्रो में जहां विधान सभाएं हैं, इस प्रकार का आरक्षण किया गया है। वर्तमान में लोकसभा में 41 और विधानसभाओ में 527 स्थान अनुसूचित जनजातियो के लिए सुरक्षित किये गये हैं। पंचायती राज व्यवस्था के लागू होने के साथ ही इन लोगों के लिए ग्राम पंचायतों एवं अन्य स्थानीय निकायों में भी स्थान सुरक्षित किये गये हैं।

राजकीय सेवाओं में आरक्षण
(RESERVATION IN GOVERNMENT SERVICES)

अखिल भारतीय आधार पर खुली प्रतियोगिता द्वारा की जाने वाली नियुक्तियों या अन्य प्रकार से की जाने वाले नियुक्तियों में अनुसूचित जनजातियो के लिए 7½% स्थान सुरक्षित किये गये है। ग्रुप सी और डी के पदों पर जिनमें स्थानीय और प्रान्तीय आधार पर नियुक्तिया की जाती हैं, प्रत्येक प्रान्त और केन्द्रशासित प्रदेश में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या के अनुपात में ही स्थान सुरक्षित रखे जाते हैं। ग्रुप 'बी, सी और डी' में होने वाली विभागीय परीक्षाओं के आधार पर की जाने वाली नियुक्तियो तथा ग्रुप बी, सी, डी और ए में पदोन्नति में भी अनुसूचित जनजातियो के लिए 7½% स्थान सुरक्षित किये गये हैं, यदि उनमें 66⅔% से अधिक सीधी भर्ती न की जाती हो। ग्रुप ए जिसमें 2,250 रु. या इससे कम वेतन वाले पदों पर की जाने वाली पदोन्नतियों में भी स्थान सुरक्षित किये गये है। जनवरी 1988 तक केन्द्रीय सरकार की सेवाओं में 5,68,600 (18.24 प्रतिशत) अनुसूचित जातियो तथा1,74,101 (4.98 प्रतिशत) अनुसूचित जनजातियों के व्यक्ति विभिन्न सेवाओं में कार्यरत थे। जनजातियों के लोगो को नौकरियों मे प्रतिनिधित्व देने के लिए कई प्रकार की छूट दी गयी है, जैसे आयु सीमा में छूट, उपयुक्तता के मानदण्ड में छूट, चयन सम्बन्धी अनुपयुक्तता में छूट, अनुभव सम्बन्धी योग्यता में छूट तथा ग्रुप ए के अनुसन्धान, वैज्ञानिक तथा तकनीकी सम्बन्धी स्तरों में छूट।

राज्य सरकारों ने भी अनुसूचित जनजातियों को राजकीय सेवाओं में भर्ती करने और उन्हें पदोन्नतियां देने के सम्बन्ध में कई प्रावधान किये है। केन्द्र सरकार के विभिन्न मन्त्रालयों से सम्पर्क करने के लिए कुछ अधिकारियों की नियुक्तियां की गयी है जो यह देखेगे कि इनके लिए स्थान सुरक्षित रखने के आदेशो का पालन हुआ है या नहीं।

कल्याण योजना
(WELFARE SCHEMES)

(D)

पंचवर्षीय योजनाएं—केन्द्र सरकार और राज्य सरकारो ने अनुसूचित जातियो एवं जनजातियों के कल्याण के लिए विशेष प्रयत्न किये हैं। इनके कल्याण के लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना में 30 04 करोड़, द्वितीय पंचवर्षीय योजना में 79.41 करोड, तृतीय पंचवर्षीय योजना में 100.40 करोड़, वार्षिक योजना 1966-69 में 68 50 करोड, चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में 172 70 करोड रुपये खर्च किये गये। पांचवी योजना मे अनुसूचित जनजातियों और अनुसूचित जातियों के उत्थान के लिए नयी रणनीति अपनायी गयी। जिन क्षेत्रो मे 50 प्रतिशत या इससे अधिक जनजातियां रहती है, उन्हें अलग दर्जा देकर उनके लिए अलग से उप-योजनाएं तैयार करने की बात कही गयी। 20 राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों मे जनजातीय-उपयोजनाएं प्रारम्भ की गयी। इन उपयोजनाओं का उद्देश्य जनजाति और गैर-जनजाति क्षेत्र के विकास की कमियों को दूर करना और जनजातीय लोगों के जीवन में सुधार लाना है। इन उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए जनजातियों का सभी प्रकार का शोषण समाप्त करने पर विशेष रूप से भूमि, साहूकारी, कृषि और वन उपज मे होने वाले अनाचार को समाप्त करने को प्राथमिकता दी गयी। इन उपयोजनाओ के लिए केन्द्र एवं राज्य सरकारों के विभिन्न विभागों ने धन उपलब्ध कराया है। पांचवी योजना में विशेष केन्द्रीय सहायता 120

करोड़ रु. की दी गयी। इस योजना में जनजातियो के कल्याण पर 296.19 करोड़ रुपये खर्च किये गये।

पांचवी योजना में पहली बार अनुसूचित जनजातियों के विकास के लिए अलग से धनराशि निश्चित करने की योजना आरम्भ की गयी। अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या कुछ खास क्षेत्रों मे रहती है, इसलिए इनके लिए जनजातीय उपयोजनाएं बनायी गयीं। वर्तमान में 20 राज्यो में जनजातीय उपयोजनाएं लागू हैं। इनके अन्तर्गत 3 72 करोड़ जनजातीय जनसंख्या आती है। ये उपयोजनाएं 194 एकीकृत जनजातीय विकास परियोजनाओं के माध्यम से चलायी जा रही हैं जिनके अन्तर्गत 73 जनजातियां आती है। इन उपयोजनाओं के लिए पांचवी पंचवर्षीय योजना में 1,100 करोड रुपये, छठी योजना मे 5,535 करोड़ रुपये तथा सातवीं योजना (1985-90) में 7,072 63 करोड़ रुपये खर्च किए गये। आठवीं योजना में अनुसूचित जातियों जनजातियों एवं पिछड़े वर्गों के कल्याण हेतु 5,635 करोड रुपयो का प्रावधान किया गया।

अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों को आर्थिक सहायता देने के लिए '**अनुसूचित जाति और जनजाति वित्त और विकास**' निगमों की स्थापना की गई है। देश में वर्तमान मे इस प्रकार के निगम 24 राज्यों मे कार्यरत हैं।

योजना कार्यक्रम
(PLAN PROGRAMMES)

पिछड़े वर्गों के कल्याण के लिए केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा कई प्रकार की परियोजनाएं (Schemes) चलायी गयी हैं जो इस प्रकार है :

प्रशिक्षण एवं शिक्षण व पथ-प्रदर्शन केन्द्र—अनुसूचित जातियों और जनजातियों को रोजगार में सहायता देने के लिए दो कार्यक्रम—परीक्षा-पूर्व प्रशिक्षण केन्द्र (Pre-examination Training Centres) तथा शिक्षण व पथ-प्रदर्शन केन्द्र (Coaching-Cum-Guidance Centres) प्रारम्भ किये गये हैं। वर्तमान में देश में इस प्रकार के 132 केन्द्र चल रहे हैं।[1] इलाहाबाद और तिरुचिरापल्ली में इन्जीनियरिंग सेवाओं की परीक्षाओ के लिए प्रशिक्षण केन्द्र खोले गये हैं। अनुसूचित जनजातियों के आवेदकों में आत्मविश्वास पैदा करने एवं साक्षात्कार सम्बन्धी ज्ञान देने के लिए दिल्ली, कानपुर, जबलपुर और चेन्नई में शिक्षण एवं पथ-प्रदर्शन केन्द्र स्थापित किये गये है।

छात्रवृत्तियां—अनुसूचित जातियों और जनजातियों के छात्रों को उनके संरक्षकों की आय के आधार पर मैट्रिकोत्तर छात्रवृत्तियां भी दी जाती हैं। मैट्रिक से ऊपर की कक्षाओ के लड़को के लिए 1,000 रु. और लड़कियों के लिए 1,200 रु. प्रतिवर्ष छात्रवृत्ति देने की व्यवस्था है। जहां 1944-45 में मैट्रिक से ऊपर की कक्षाओं में अध्ययन करने वाले अनुसूचित जातियों के 114 तथा 1948-49 में अनुसूचित जनजातियों के 89 छात्रों को छात्रवृत्तियां दी गयीं वहां इन दोनो ही श्रेणियों के विद्यार्थियों के लिए ऐसी छात्रवृत्तियों की संख्या बढ़ाकर 1943-94 में 15 लाख कर दी गयी।

बालिका छात्रावास—जिन क्षेत्रो में अनुसूचित जातियो व जनजातियों की छात्राओं के लिए पर्याप्त सुविधाए नहीं है, वहां नये बालिका छात्रावास बनाने या उनका विस्तार करने के प्रयत्न किये गये।

1 *India*, 1995, p 234.

अनुसूचित जनजातियों के लिए बालक छात्रावास—बालिका छात्रावास की तर्ज पर ही सन् 1989-90 से लडको के लिए यह योजना प्रारम्भ की गई। 1994-95 में इस प्रकार के 66 छात्रावास बनाए गए।

जनजाति उप-योजना क्षेत्र में आश्रम स्कूल—यह योजना केन्द्र सरकार द्वारा सन् 1990-91 से प्रारम्भ की गई। जिसके अन्तर्गत जनजाति उप-योजना क्षेत्रों में स्कूल बनवाने के लिए राज्यों को 50 प्रतिशत और केन्द्रशासित प्रदेशों को 100 प्रतिशत सहायता केन्द्र सरकार द्वारा दी जाती है। सन् 1994-95 में इस प्रकार के 18 स्कूल बनवाने हेतु 2.50 करोड़ रुपए केन्द्र सरकार द्वारा दिए गये।

जनजाति क्षेत्रों में व्यावसायिक प्रशिक्षण—जनजाति युवकों को विघटनकारी गतिविधियों से रोकने एवं उन्हें रोजगार के अवसर देने के लिए 1992-93 से केन्द्र सरकार ने जनजाति क्षेत्रों में व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित करने की योजना प्रारम्भ की। सन् 1994-95 मे 2.38 करोड़ रुपए खर्च कर ऐसे 19 केन्द्र खोले गये।

कम साक्षरता वाले क्षेत्रों में जनजाति छात्राओ की शिक्षा—यह योजना सन् 1993-94 से उन क्षेत्रो में प्रारम्भ की गई है, जहां स्त्रियों की साक्षरता का प्रतिशत दो से भी कम है। यह योजना 8 राज्यो के 48 जिलों में चलायी जा रही है। इसका उद्देश्य जनजाति महिलाओं की शिक्षा के प्रतिशत को ऊंचा उठाना है। इस योजना में 5वीं कक्षा तक शिक्षा ग्रहण करने वाली छात्राओं को आवास की सुविधा भी दी जाती है। यह योजना स्वयं सेवी संगठनों के माध्यम से चलायी जा रही है।

जनजातीय अनुसन्धान संस्थाएं—इस समय देश में जनजातियों सम्बन्धी अनुसन्धान करने के लिए 14 अनुसन्धान केन्द्र है। इनके कार्यों में समन्वय स्थापित करने के लिए एक 30-सदस्यीय केन्द्रीय अनुसन्धान सलाहकार परिषद् का गठन किया गया है। यह परिषद अनुसन्धान संस्थाओं के नीति-निर्माण में पथ-प्रदर्शन का कार्य करती है।

विदेशों में पढ़ने वाले छात्रों के लिए छात्रवृत्तियां—सन् 1955 से ही विदेशों में पढ़ने वाले अनुसूचित जातियों व जनजातियो के मेधावी छात्रों को छात्रवृत्तियां दी जा रही है। यह छात्रवृत्ति प्रतिवर्ष अनुसूचित जनजातियों के छः छात्रों को दी जाती हैं।

पहाड़ी क्षेत्रों का विकास योजना—जिन पहाड़ी क्षेत्रों में जनजातीय लोग निवास करते हैं, उनके लिए केन्द्र सरकार ने पृथक से विकास योजना तैयार की है। यह योजना असम (दो जिले), तमिलनाडु (1 जिला), उत्तर प्रदेश (आठ जिले), प. बंगाल (दार्जिलिंग के तीन सब डिवीजन), पश्चिमी घाट क्षेत्र (156 तालुके) पर लागू की गयी है। पहाड़ी क्षेत्रों में पुल बनाने एव गांवों को सड़कों द्वारा-जोड़ने का कार्य किया जा रहा है। कई स्थानों पर ऊर्जा उत्पादन के प्लाण्ट लगाये गये हैं।

जनजाति सहकारी बाजार विकास संघ [Tribal Co-operative Marketing Development Federation (TRIFED)]

जनजातियों को व्यापारियों के शोषण से बचाने एवं उन्हें उनके द्वारा जंगलो से प्राप्त उत्पादों एवं कृषि उत्पादो की सही कीमत दिलाने के लिए सरकार ने **'ट्रीफेड'** की स्थापना की। गोद, तिलहन, गेहूं, चावल, आदि की फसलों का भण्डारण, बेचने, आदि में यह संस्था

मदद करती है। कीमतों में गिरावट आने पर यह सरकार से इन उत्पादको को आर्थिक सहायता भी दिलवाती है।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90)—इस योजना में अनुसूचित जनजातियों के कल्याण हेतु केन्द्र द्वारा 756 करोड़ रुपयों की विशेष सहायता देने की व्यवस्था की गयी। उन राज्यों में जहां जनजातियों की बहुतायत है, 'जनजाति उप-योजना' के अन्तर्गत 30 लाख परिवारों को अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए आर्थिक सहायता दी गयी। जनजातीय क्षेत्रों मे कृषिगत बहु-उद्देशीय सहकारी समितियों को बढ़ावा दिया गया। स्थानान्तरित कृषि पर रोक लगायी गयी। लगभग दो लाख जनजातीय परिवार जो कि 5 हजार वन-प्रदेशों मे स्थित गांवों में निवास करते हैं, का उस भूमि पर कोई अधिकार नहीं है जिसे वे जोतते हैं। उन्हें विकास की सुविधा देने के प्रयत्न किये गये। जनजातीय स्त्रियों के पिछड़ेपन को दूर करने के लिए उन्हें आर्थिक सहायता दी गयी तथा 'महिला समितियां' स्थापित की गयीं, उन्हें शिक्षित करने के प्रयास भी किये गये।

राज्य क्षेत्र की योजनाएं
(STATE SECTOR SCHEMES)

इन केन्द्रीय योजनाओं के अतिरिक्त राज्य सरकारों द्वारा भी अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए कई कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। कार्यक्रम को तीन भागों में बांटा गया है :

(क) **शिक्षा**—(i) मैट्रिक-पूर्व की छात्रवृत्तियां और स्थायी फण्ड, (ii) ट्यूशन तथा परीक्षा शुल्क में छूट, (iii) शिक्षा सम्बन्धी उपकरणों की व्यवस्था, (iv) दोपहर के भोजन की व्यवस्था, (v) आश्रम स्कूलों की स्थापना, (vi) स्कूल भवनों एवं छात्रावासों के निर्माण के लिए अनुदान।

(ख) **आर्थिक विकास**—(i) भूमि तथा सिंचाई की व्यवस्था, (ii) बैल, कृषि उपकरण, खाद तथा बीज की आपूर्ति, (iii) कुटीर उद्योगो का विकास, (iv) संचार व्यवस्था का विकास, (v) सहकारिता, (vi) स्थानान्तरित कृषि करने वालों को बसाना, (vii) मुर्गियां, भेड-बकरियां व सूअर देना।

(ग) **स्वास्थ्य, आवास तथा अन्य योजनाएं**—(i) चिकित्सा सुविधाएं, (ii) पेय जल योजनाएं, (iii) मकान तथा मकान बनाने हेतु जमीन की व्यवस्था, (iv) कानूनी सहायता, (v) राज्य-स्तर की गैर-सरकारी संस्थाओं को अनुदान।

जनजातीय समस्याओं के समाधान हेतु सुझाव
(SUGGESTIONS FOR THE SOLUTION OF TRIBAL PROBLEMS)

हमने ऊपर जनजातियों की समस्याओं का उल्लेख किया है और साथ ही उन प्रयत्नों की भी चर्चा की जो अब तक उन समस्याओं के निराकरण के लिए किये गये है, फिर भी उनकी समस्याओं का समाधान पूरी तरह नही हो पाया है। हम उनकी समस्याओं के समाधान हेतु कुछ सुझावों का यहां उल्लेख करेगे।

(1) **आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिए** आदिवासी परिवारों को कृषि के लिए पर्याप्त भूमि दी जाय। उन्हे कृषि के आधुनिक तरीकों से परिचित कराया जाय। स्थानान्तरित खेती पर रोक लगायी जाय। उन्हें बैल, बीज एवं नवीन यन्त्रो तथा कुएं आदि खोदने के लिए कम ब्याज पर ऋण की सुविधा दी जाय, घरेलू उद्योग-धन्धों का विकास किया जाय, सहकारी

समितियों की स्थापना की जाय, औद्योगिक श्रमिकों के लिए उचित मजदूरी, अच्छे मकान एवं बिजली की व्यवस्था की जाय। कानून द्वारा उनका आर्थिक शोषण रोका जाय। उनके लिए उचित शिक्षा एवं प्रशिक्षण का प्रबन्ध किया जाय जिससे वे नौकरियों में स्थान पा सकें।

(2) सामाजिक समस्याओं के हल के लिए बाल विवाह एवं कन्या-मूल्य पर कानूनी रोक के साथ-साथ इनके विरुद्ध जनमत तैयार किया जाय। युवा-गृहों का पुनरुत्थान किया जाय और उनमे शिक्षा देने का प्रबन्ध किया जाय। जनजातियों की आर्थिक स्थिति सुधारी जाय ताकि वेश्यावृत्ति समाप्त हो सके।

(3) स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं को हल करने के लिए आदिवासी क्षेत्रों में चिकित्सालय, डॉक्टर एवं आधुनिक दवाइयो का प्रबन्ध किया जाय। उनके लिए पौष्टिक आहार तथा विटामिन की गोलियों की व्यवस्था की जाय ताकि कुपोषण से होने वाली बीमारियों से बचा जा सके। चेचक, हैजा आदि के टीकों का प्रबन्ध किया जाय। उन्हें स्वास्थ्य के नियमों से परिचित कराया जाय। इसके लिए समय-समय पर अलग-अलग स्थानों पर स्वास्थ्य शिविर लगाये जाने चाहिए। चलते-फिरते अस्पतालों की व्यवस्था भी की जानी चाहिए। स्कूलों, पंचायत घरों एवं युवा-गृहों मे दवाओ की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(4) शैक्षणिक समस्या को हल करने के लिए आदिवासियों के लिए सामान्य शिक्षा एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय। प्राथमिक एवं उच्च शिक्षा के लिए शिक्षण संस्थाएं खोली जायें। शिक्षा का माध्यम प्रादेशिक भाषा हो। स्कूलों में उन्हें व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाय जिससे कि शिक्षा ग्रहण करने के बाद उन्हे बेकारी का सामना नहीं करना पड़े। कृषि, पशु-पालन, मुर्गीपालन, मत्स्य-पालन, मधुमक्खी पालन एवं अन्य प्रकार की हस्तकलाओं का उन्हें प्रशिक्षण दिया जाय।

(5) सांस्कृतिक समस्याओं को हल करने के लिए डॉ. एल्विन का मत है कि ऐसे विश्वविद्यालय की स्थापना की जाय, जिसमें आदिम ललित-कलाओं की रक्षा की जाय। जनजातियो के लिए किये जाने वाले मनोरंजनात्मक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम उन्हीं की भाषा मे हो। इससे भाषा की समस्या भी हल होगी। धार्मिक समस्याओं के हल के लिए यह आवश्यक है कि जनजातियों में पाये जाने वाले अन्धविश्वासों को समाप्त किया जाय।

उचित जनजातीय नीति
(PROPER TRIBAL POLICY)

जनजातियों की समस्याओं के समाधान हेतु केन्द्रीय सरकार एवं राज्य सरकारों को मिलकर एक उचित नीति बनानी चाहिए जो उनके हितों की सुरक्षा करे। किसी भी योजना को जनजातीय समूह पर लागू करने से पूर्व उसका परीक्षण किया जाय और उसकी कमियो को दूर करने के बाद ही उसे लागू किया जाय। प्रत्येक जनजाति की अपनी कुछ व्यक्तिगत समस्याएं भी हैं। अतः कोई भी नीति सभी जनजातियो के लिए समान रूप से लाभप्रद नहीं हो सकती जब तक कि उसमें स्थानीय समस्याओ के हल का उद्देश्य न हो। जनजातियों के उत्थान के लिए किसी भी नीति को लागू करने में ऐसे कर्मचारियों का ही सहयोग लिया जाय जो इस कार्य में रुचि रखते हों और जिन्हे जनजातीय समस्याओं का ज्ञान हो। समाजशास्त्री व मानवशास्त्री नई कल्याणकारी नीतियों को लागू करने में अपना सहयोग प्रदान कर सकते कोई भी नीति आदिवासियों पर थोपी नहीं जाय वरन् जन-सहयोग से ही उसे लागू किया

जाय। आदिवासियों की कल्याणकारी नीतियों में आर्थिक हितों को प्रमुखता दी जाय क्योंकि गरीबी ही अनेक बुराइयों की जड़ है। आदिवासियों के सुधार के पीछे हमारा यह उद्देश्य न हो कि वे आधुनिक समाज की प्रतिलिपि (नकल) मात्र बन जायं वरन् उद्देश्य यह होना चाहिए कि वे अपनी व्यक्तिगत विशेषताएं भी बनाये रखें। जो जनजातियां राजनीतिक स्वायत्तता की मांग कर रही हैं, उन्हें इस बात के लिए आश्वस्त किया जाय कि देश की प्रजातन्त्रीय व्यवस्था में उनके हितों की पूर्ण रक्षा की जायेगी। डॉ. मजूमदार का मत है कि जनजातीय समस्याओं का कोई एक हल नहीं है और न ही इस मांग का कोई सामान्य आधार। जनजातियों के सांस्कृतिक विकास के अनेक स्तर और जीवन के विभिन्न प्रतिरूप हैं। जनजातीय जीवन के पुनर्वास की किसी भी योजना को बनाने में उनकी प्रवृत्तियों तथा सांस्कृतिक क्षेत्र से सम्बद्ध स्थिति को जानना आवश्यक है। जो बात एक सांस्कृतिक क्षेत्र के लिए उचित है वह दूसरे के लिए उपयुक्त नहीं हो सकती।"[1] जनजातियों की समस्याएं अत्यधिक जटिल मानवीय समस्याएं है जिनके समाधान हेतु प्रशासको, सामाजिक कार्यकर्ताओं और समाज वैज्ञानिकों को अपने साधन एक साथ जुटाकर कार्य करना चाहिए।

सभी भारतीय जनजातियों को किसी एक श्रेणी अथवा वर्ग में नहीं रखा जा सकता। प्रत्येक जनजाति की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति है, विकास का एक पृथक् स्तर है। साथ ही उनकी अपनी निजी संस्थाएं भी हैं। अतः उनके कल्याण हेतु नीति-निर्धारण करने और योजना बनाते समय इस मानवशास्त्रीय तथ्य को ध्यान में रखा जाना अत्यन्त आवश्यक है। यह सही है कि केन्द्रीय और राज्य सरकारें जनजातीय उत्थान हेतु कृतसंकल्प हैं और उस दिशा मे काफी प्रयत्न भी कर रही हैं तथा उनके कल्याण कार्य पर करोड़ों रुपया खर्च भी किया जा रहा है। यहां सरकारी और जनजाति कार्य में लगे उच्च पदाधिकारियों को इस दृष्टि से हर समय सजग रहना होगा कि साधनों का दुरुपयोग तो नहीं हो रहा है, विकास सम्बन्धी योजनाओं का लाभ कुछ गिने-चुने मुट्ठी भर लोगों को तो नहीं मिल रहा है, स्वार्थी लोग जनजातीय कल्याण के नाम पर कहीं अपने व्यक्तिगत हितों में तो नहीं लगे हैं।

प्रश्न

1. भारतीय जनजातियों की प्रमुख समस्याओं का उल्लेख कीजिए।
2. भारतीय जनजातियों की समस्याओं के समाधान हेतु सरकारी एवं गैर-सरकारी सस्थाओं द्वारा किये गये प्रयत्नों का उल्लेख कीजिए।
3 भारतीय जनजातियों की प्रमुख समस्याएं कौन-कौनसी है? उन्हें हल करने हेतु बुद्धिजीवियो ने क्या सुझाव दिये हैं।
4 भारतीय जनजातियो की विशिष्ट समस्याए क्या है? उन्हे हल करने के सुझाव दीजिए।
5 कमजोर वर्ग से आप क्या समझते हैं? उनकी प्रमुख समस्याएं कौन-कौनसी हैं?
6 अनुसूचित जनजातियां एवं अनुसूचित जातियां भारत के सांस्कृतिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े लोग है। उनकी सांस्कृतिक एवं आर्थिक समस्याओं का विवेचन कीजिए।
7. भारत में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियो की प्रमुख समस्याओ का विवेचन कीजिए। (अजमेर, 1997)

1 D N. Majumdar, *op cit.*, p. 382

14

अन्य पिछड़े वर्गों की समस्याएँ

[PROBLEMS OF OTHER BACKWARD CLASSES]

अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जनजातियाँ और अन्य पिछड़े वर्ग पिछड़े हुए माने जाते है। भारत की कुल जनसंख्या का ये एक-तिहाई हैं। अनुसूचित जातियो एवं अनुसूचित जनजातियो के बारे मे हम पूर्व में विचार कर चुके हैं। यहाँ हम पिछडे वर्गों के बारे मे विचार करेंगे। तत्पश्चात् बन्धुआ मजदूर, खेतिहर मजदूर, सीमान्त किसान व छोटे किसानों की समस्याओं पर विचार करेगे। ये सभी समाज के कमजोर वर्ग की श्रेणी में आते हैं।

अन्य पिछड़े वर्ग : अर्थ
(OTHER BACKWARD CLASSES . MEANING)

'पिछड़ा वर्ग' शब्द समाज के कमजोर वर्गों विशेषकर अनुसूचित जातियों, जनजातियो और अन्य पिछड़े वर्गों के सन्दर्भ में उपयोग मे लिया जाता है। भारतीय संविधान के भाग 16 तथा अन्य प्रावधानों में 'पिछडे वर्गो' शब्द का प्रयोग किया गया है जिसमें उन जातियों को सम्मिलित किया गया है जो अनुसूचित जातियाँ नही हैं, किन्तु समाज की उच्च जातियो से पिछड़ी हुई है। राजनीति कोश मे पिछड़े वर्गो को इस प्रकार परिभाषित किया गया है, "पिछड़े हुए वर्गो का अभिप्राय समाज के उस वर्ग से है जो सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक निर्योग्यताओ के कारण समाज के अन्य वर्गों की तुलना मे नीचे स्तर पर हो। यद्यपि संविधान में इस शब्द समूह का अनेक स्थानो पर प्रयोग हुआ है (अनुच्छेद 16(4) तथा 340 में), परन्तु इसकी परिभाषा कहीं नही की गई।"[1] संविधान में शिक्षा और रोजगार के क्षेत्र में पिछड़े वर्गो के लिए विशेष प्रावधान किये गये है, किन्तु अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों की भाँति उनके लिए आरक्षण की व्यवस्था नहीं की गई है।

जाति के सन्दर्भ में पिछडे वर्ग मध्यम कृषक और व्यवसायी (स्वच्छ) जातियाँ हैं। आन्द्रे बिताई कृषक वर्ग को पिछड़े वर्गों का सार मानते हैं। पिछड़े वर्ग निश्चय ही उच्च जातियों से शिक्षा, व्यवसायों और सरकारी नौकरियों मे पीछे रहे है।

पिछड़े वर्गों के निर्धारण के सम्बन्ध मे यह धारणा है कि इसका निर्धारण जन्म या जाति के आधार पर नही, वरन् उनकी वर्तमान सामाजिक स्थिति के आधार पर किया जाना चाहिए। रेणुका अध्ययन दल ने पिछड़े वर्गों में निम्नांकित वर्गों को सम्मिलित करने का सुझाव दिया

1 सुभाष कश्यप एवं विश्व प्रकाश गुप्ता, राजनीति कोश, राजकमल, दिल्ली, 1971, पृष्ठ 24-25।

है—बहुत कम भूमि वाले किसान, भूमिहीन मजदूर, बहुत छोटे दस्तकार, अनुसूचित जातियाँ, उच्च जातियों की गरीब महिलाएँ, असहाय लोग जैसे विधवाएँ, अनाथ, वृद्ध एवं बेरोजगार, आदि।

पिछड़ापन समूह का लक्षण माना जाता है न कि व्यक्तियों का। अन्य जातियों की तरह पिछड़े वर्गो की सदस्यता भी जन्म के आधार पर निर्धारित होती है। सैद्धान्तिक रूप में पिछडे वर्गो मे शिक्षा और आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न व्यक्ति भी शामिल हो सकते है। इसका कारण यह है कि सरकार ने कुछ जातियो को पिछडी घोषित किया है। उन जातियों को कुछ लाभ और सुविधाएँ इस घोषणा के तहत अवश्य प्राप्त होंगी। इस प्रकार पिछड़ा वर्ग समूहो और व्यक्तियो का एक वृहद और जटिल पुंज है।

पिछडे वर्ग हरिजनों और उच्च जातियों के बीच की जातियाँ है। 'पिछड़े वर्ग' पिछडे हैं क्योंकि वे शिक्षा, सरकारी सेवाओ, व्यवसायों और व्यापार आदि मे पीछे रहे है। **भारतीय संविधान मे पिछड़ा वर्ग उसे माना है जो सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़ा है।** सविधान की धारा 340 में भारत के राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि वह एक आयोग की नियुक्ति कर देश के विभिन्न भागो मे स्थित पिछडे वर्गो की स्थिति का जायजा ले। धारा 15(4) और 16 के अन्तर्गत राज्य सरकारें भी आयोगों की नियुक्ति करके पिछड़ी जातियो की आर्थिक और शैक्षणिक समस्याओं की जानकारी ले सकती है तथा ऐसे आयोगों की रिपोर्टो के आधार पर शैक्षिक संस्थाओं और सरकारी सेवाओ मे आरक्षण कर सकती है। चूँकि 'पिछड़ेपन' की कसौटियां भिन्न-भिन्न राज्यो में भिन्न-भिन्न हैं, इसलिए 'पिछड़ेपन' को आंकने का कोई अखिल भारतीय पैमाना नही है।

आयोग

विभिन्न राज्यों एवं केन्द्र सरकार ने पिछडे वर्गो का पता लगाने के लिए विभिन्न आयोगों की स्थापना की है। बिहार सरकार ने **मुंगेरी लाल आयोग** की स्थापना की जिसकी सिफारिशों के आधार पर 1978 में बिहार सरकार ने 128 जातियों को पिछड़ी जातियाँ घोषित कर सरकारी सेवाओ में उनके लिए आरक्षण की नीति को लागू किया। 1972 में कर्नाटक सरकार ने एल. जी. हवानूर की अध्यक्षता में पिछडा वर्ग आयोग स्थापित किया जिसने एक वृहद सर्वेक्षण के बाद पिछड़ी जातियो और समुदायों की सूची तैयार की और इनके लिए 32 प्रतिशत स्थान नौकरियों में आरक्षित करने की सिफारिश की। सरकार ने इस सूची में कुछ और जातियों को सम्मिलित करके 32 के स्थान पर 40 प्रतिशत स्थान आरक्षित कर दिये।

केरल सरकार ने पी. डी. नेट्टूर की अध्यक्षता में एक आयोग की स्थापना की जिसने 1970 में अपनी रिपोर्ट दी। इस आयोग ने शैक्षणिक उपलब्धियों, आर्थिक स्थिति, सरकारी सेवाओं में भागीदारी और सामाजिक पिछड़ेपन की कसौटियाँ स्वीकार करने की सिफारिश की। आज केरल में 25 प्रतिशत स्थान पिछड़े वर्गो के लिए आरक्षित है। महाराष्ट्र में 14 प्रतिशत और तमिलनाडु में 50 प्रतिशत नौकरियां पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षित हैं। उत्तर प्रदेश सरकार ने 58 समुदायो और जातियों को पिछड़े वर्ग घोषित कर रखा है और उनके लिए 15 प्रतिशत स्थान आरक्षित हैं।

आन्ध्र प्रदेश सरकार ने जाति के स्थान पर 'परिवार' को पिछड़े समूहों को वर्गीकृत करने का आधार माना किन्तु कठिनाइयो के कारण बाद में इसे त्याग कर 1970 मे 92

समुदायो की एक सूची बना कर उनके लिए 25 प्रतिशत स्थान आरक्षित कर रखे हैं। इस प्रकार से वर्तमान में आन्ध्र, विहार, जम्मू और कश्मीर, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, हरियाणा और उत्तर प्रदेश मे पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण की व्यवस्था लागू है।

काका कालेलकर आयोग—राष्ट्रपति ने 29 जनवरी, 1953 को काका कालेलकर के अध्यक्षता मे एक पिछड़ा वर्ग आयोग नियुक्त किया। इसे निर्देश दिया गया था कि यह पिछड़े वर्गों के निर्धारण के लिए कसौटियां निर्धारित करे तथा उनकी एक सूची तैयार करे तथा उनकी समस्याओं और कठिनाइयो को ज्ञात करे तथा उनकी दशा सुधारने के लिए क्या सहायता की जा सकती है, यह भी वताये। इस आयोग ने दो वर्ष बाद अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमे 2,399 जातियों व समुदायो को पिछड़े वर्ग मानने की सिफारिश की तथा इनकी स्थिति को सुधारने के लिए कई सामाजिक व आर्थिक उपाय सुझाये। इस आयोग ने भारत की प्रतिशत जनसंख्या को पिछड़ा वर्ग घोषित किया। पिछडेपन.के निर्धारण के लिए आयोग निम्नांकित कसौटियां सुझायीं :

(1) जाति सोपान मे निम्न सामाजिक स्थिति,

(2) शैक्षणिक प्रगति का अभाव,

(3) सरकारी सेवा में अपर्याप्त प्रतिनिधित्व,

(4) व्यापार और उद्योग के क्षेत्र में अपर्याप्त प्रतिनिधित्व।

इस आयोग ने पिछड़े वर्ग की सूची वनाने मे जाति को प्रमुख कारक माना। आयो ने कहा कि कम से कम 25 प्रतिशत स्थान प्रथम श्रेणी की सेवाओं में, 33.5 प्रतिशत स्थ द्वितीय श्रेणी मे और 40 प्रतिशत स्थान तृतीय और चतुर्थ श्रेणी की सेवाओं में पिछड़ी जाति के लिए आरक्षित किये जायं। आयोग ने 70 प्रतिशत स्थान मेडिकल, वैज्ञानिक और तकनीक शिक्षा मे आरक्षित करने तथा इनके कल्याण के लिए अलग मन्त्रालय वनाने की सिफारिश की।

मण्डल आयोग

जनता पार्टी के शासन काल में विहार के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री तथा तत्कालीन सास **बी. पी. मण्डल** की अध्यक्षता में पिछड़े वर्गो की समस्याओं के सन्दर्भ में एक आयोग क स्थापना की, जो मण्डल आयोग के नाम से जाना जाता है। इस आयोग ने 30 अप्रैल, 198 में अपनी रिपोर्ट दी। आयोग ने अनुसूचित जातियो एवं जनजातियों को छोड़कर भारत क कुल जनसंख्या का 52 प्रतिशत भाग पिछड़ा वर्ग माना। इसमे आयोग ने 1,344 जातियं को पिछडे वर्गो की श्रेणी मे रखा।

आयोग का मत था कि देश मे 52 प्रतिशत पिछड़ी जातियां है और इसी अनुपात मे इनके लिए स्थान सुरक्षित किये जाय, किन्तु संविधान की धारा 15(4) और 16(5) के अनुसार 50 प्रतिशत से अधिक स्थान आरक्षित नहीं किये जा सकते। 22.5 प्रतिशत स्थान तो पहले से ही अनुसूचित जातियों एव जनजातियों के लिए आरक्षित हैं। अतः इस कारण पिछड़ी जातियों की संख्या अधिक होने पर भी केवल 27 प्रतिशत स्थान ही इनके लिए आरक्षित करने की सिफारिश की जाती है। आयोग ने सभी पदोन्नतियों के लिए भी यह नीति लागू करने की वात कही। यदि आरक्षित कोटा नही भरा जाता है तो तीन वर्ष की अवधि के लिए इसे और आगे वढाया जाय, उसके वाद ही इसे आरक्षण से हटाया जाय। आयोग ने कहा

के अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों की तरह इन्हे भी आयु सीमा मे छूट दी जाय। आयोग ने सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों, बैंकों, केन्द्र एवं राज्य सरकारों से सहायता प्राप्त करने वाले निजी प्रतिष्ठानों, विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों मे भी इनके लिए आरक्षण की सिफारिश की। आयोग ने कहा कि केन्द्र और राज्य सरकारों को इन्हे भी वैसे ही वित्तीय सहायता देनी चाहिए जिस प्रकार से अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए दी जाती है। इन सिफारिशों को लागू करने के लिए आवश्यक कानूनी प्रावधान करने की भी सिफारिश की गई।

सन् 1990 में राष्ट्रीय मोर्चा पार्टी ने केन्द्र मे सरकार बनायी। श्री वी. पी. सिंह इस सरकार में प्रधानमन्त्री और चौधरी देवीलाल उपप्रधानमन्त्री बने। कुछ समय बाद वी. पी. सिंह ने उपप्रधानमन्त्री चौधरी देवीलाल को मन्त्रीपद से बर्खास्त कर दिया। देवीलाल ने अपना समर्थन जुटाने के लिए 9 अगस्त, 1990 को दिल्ली के बोट क्लब पर विशाल रैली की घोषणा की। वी. पी. सिंह देवीलाल की इस चाल को सफल नहीं होने देना चाहते थे। अतः पिछड़े वर्गो का सहयोग लेने के लिए 7 अगस्त, 1990 को वी. पी. सिंह ने मण्डल आयोग की रिपोर्ट को लागू करने की घोषणा कर दी और कहा कि केन्द्रीय सरकार एवं केन्द्रीय सरकार की सेवाओं के अधीन सभी सार्वजनिक प्रतिष्ठानों में सामाजिक व शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गो के लिए 27 प्रतिशत स्थान आरक्षित किये जाते हैं।

बिना मण्डल कमीशन की रिपोर्ट का लेखा-जोखा किये, उसे लागू करने की घोषणा से सभी राजनीतिक दल स्तब्ध रह गये। इस घोषणा के विरोध में देश के अनेक भागों मे छात्रों ने आन्दोलन, हड़तालें एवं तोड़-फोड़ की, रेलों एवं बसों को हानि पहुँचाई गई तथा लगभग 150 छात्रों ने आत्मदाह किया। देश में मण्डल समर्थक और विरोधी मोर्चे बने। सर्वोच्च न्यायालय की शरण ली गई और न्यायालय ने इस मण्डल आयोग की रिपोर्ट को लागू करने पर रोक लगा कर यथास्थिति बनाये रखने का आदेश दिया। बाद में न्यायालय ने मण्डल आयोग की सिफारिशों को लागू करने का आदेश दे दिया।

इस आयोग की सिफारिशों की कई आलोचनाएँ की गई हैं, जैसे, (1) इसे लागू करने की घोषणा वी. पी. सिंह की राजनीतिक चाल है जिसका उद्देश्य उस समय देवीलाल के पक्ष में बनने वाली राजनीतिक हवा का रुख अपने पक्ष में करना था। यह एक राजनीतिक बाजीगरी थी।

(2) इसमें वर्ग और जाति को एक ही माना गया है जबकि ये दोनों भिन्न-भिन्न अवधारणाएँ हैं।

(3) इसमें सम्मिलित जातियों की सूची का आधार 1931 की जनगणना रिपोर्ट है, जबकि उसके बाद स्थिति में बहुत परिवर्तन आ गया है। अतः यह सूची अपूर्ण है।

(4) आरक्षण चाहे किसी भी प्रकार का हो, योग्यता का तिरस्कार करता है, दम घोटता है तथा योग्य व्यक्तियों में निराशा, कुंठा और विद्रोह की भावना पैदा करता है।

बन्धुआ मजदूर
(BONDED LABOUR)

कमजोर वर्ग में उन बन्धुआ मजदूरों को भी सम्मिलित किया जाता है जो देश में गरीबी एवं दासता के प्रतीक हैं। अपनी आवश्यकता-पूर्ति हेतु गरीब लोग सेठ-स

इस शर्त पर ऋण लेते रहे है कि जब तक वे उनका ऋण नहीं चुका देंगे तब तक उधार देने वाले परिवार के यहाँ कार्य करेंगे। उधार देने वाला ऋणी व्यक्ति से गुलामों की तरह घर पर या अपने व्यवसाय मे काम लेता है। इस प्रकार बन्धुआ मजदूर गरीबी की चरम सीमा, दासता और शोषण एव मानव के मौलिक अधिकारों की हत्या के जीते-जागने उ है। इस समय सबसे बड़ी समस्या बन्धुआ मजदूरों का पता लगाने, उन्हें मुक्त करा उनके पुनर्वास की है। यह एक नैतिक दायित्व है। साथ ही यह प्रजातन्त्र एवं समाज समाज की स्थापना एव लोककल्याणकारी राज्य की दिशा में एक आवश्यक चरण है।

यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 23 के अन्तर्गत भिक्षावृत्ति एवं बेगार को समाप्त कर दि गया है फिर भी देश के विभिन्न भागों में बन्धुआ मजदूर प्रणाली विभिन्न रूपों में प्रचलित है। कुछ राज्य सरकारों ने इस प्रथा को रोकने के लिए अधिनियम भी बनाये किन्तु उन्हें आशातीत सफलता नहीं मिली है। प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने अपने बीस-सूत्री कार्यक्रम में बन्धुआ मजदूरों की समस्या पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया और नवीन आर्थिक कार्यक्रमो से उनकी समस्याओ के समाधान के लिए आशा की नयी किरण दिखायी दी। इस कार्यक्रम में बन्धुआ मजदूरी को समाप्त करने के महत्व को दर्शाया गया है। 25 अक्टूबर, 1975 में 'Bonded Labour System (Abolition) Ordinance' अध्यादेश लागू किया गया जो 1976 'Bonded Labour System (Abolition) Act' बना। इस अधिनियम के द्वारा देश मे बन्धुआ मजदूरी को समाप्त कर दिया गया है तथा बन्धुआ मजदूरों का पता लगाने का कार्य श्रम मन्त्रालय को सौंपा गया है।

देश मे बन्धुआ मजदूरो का पता लगाने के लिए गांधी शान्ति प्रतिष्ठान (Gandhi Peace Foundation) द्वारा राष्ट्रीय श्रम संस्थान (National Labour Institute) के साथ उ प्रदेश, बिहार, गुजरात, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, तमिलनाडु उत्तर प्रदेश के 295 जिलों के 1,000 गाँवों का मई एवं अक्टूबर 1978 में एक सर्वेक्षण किया गया। यह सर्वेक्षण विभिन्न राज्यो मे बन्धुआ मजदूरो के सन्दर्भ मे महत्वपूर्ण आँकड़े प्रस्तुत करता है। सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि उडीसा को छोड़कर देश में 22.4 लाख बन्धुआ श्रमिक है। देश में कुल बन्धुआ मजदूरो के 80 प्रतिशत लोग अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के है। अध्ययन के दौरान ही विभिन्न राज्यों द्वारा 1,20,000 बन्धुआ मजदूरों की पहचान की गयी और उन्हें मुक्त कराया गया। 31 मार्च, 1992 तक 2,50,289 बन्धुआ मजदूरों की विभिन्न राज्यो में पहचान की गयी जिनमें से 2,23,141 का पुनर्वास कराया गया। 1978-79 से 1989-90 तक विभिन्न राज्यों द्वारा इन पर 3130.38 लाख रुपये खर्च किये गये। राज्य सरकारो से प्रार्थना की गयी है कि वे इस कार्यक्रम को गरीबी उन्मूलन व बीस-सूत्री कार्यक्रम से जोड़ें। बिहार के सरदार एवं मध्यम वर्ग के कई लोग जनजातियों के स्त्री-पुरुषों को बन्धुआ मजदूरो के रूप में कार्य करने के लिए त्रिपुरा राज्य में ले गये जहाँ उनसे ईंटे बनाने का कार्य करवाया जाता है। उन्हें वहाँ न तो उचित मजदुरी दी जाती और न ही कोई सुविधाएँ। स्त्री-मजदूरो के साथ तो और भी दुर्व्यवहार किया जाता है, उन्हें एक निश्चित क्षेत्र मे ही रहने को कहा जाता तथा सप्ताह मे एक बार बाजार ले जाया जाता है जहाँ से वे 2.50 रु प्रति किलो के हिसाब से एक निश्चित दुकान से ही सडा-गला चावल खरीद सकती हैं। जब इस घटना की त्रिपुरा सरकार को रिपोर्ट की गयी तो उसने घटना की छानबीन कर 94

बन्धुआ मजदूरों को मुक्त कराया, उन्हें उचित मजदूरी, खाने-पीने एवं आवास की सुविधाए दीं और उन्हे पुनः उनके मूल निवास राँची के गाँवों में भेजा।

बन्धुआ मजदूरों के पुनर्वास के लिए केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना के अन्तर्गत निर्धारित की गई 4,000 रुपये की अधिकतम राशि को 1-2-1986 से बढाकर 6,250 रु कर दिया है। इससे पुनर्वास के प्रयास में अधिक वास्तविकता आ गयी है। इस 6,250 रुपये के निर्वाह अनुदान में से एक मजदूर को 500 रुपये की राशि मुक्त होने के तत्काल बाद दी जाती है।

राज्यों से प्राप्त सूचना से पता चला है कि 1985-86 के दौरान पहचाने गये और मुक्त किये गये 79.65 प्रतिशत बन्धुआ मजदूर अनुसूचित जातियो और अनुसूचित जनजातियों के थे। उत्तर प्रदेश में इसी अवधि के दौरान पहचाने गये और मुक्त किये गये कुल बन्धुआ मजदूरों में से अनुसूचित जाति के बन्धुआ मजदूरो की संख्या 94.25 प्रतिशत और अनुसूचित जनजाति के मजदूरों की संख्या 20.90 प्रतिशत थी।

केरल व हरियाणा में पहचाने गये और मुक्त किये गये बन्धुआ मजदूरों का शत-प्रतिशत पुनर्वास किया गया जबकि तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश मे यह उपलब्धि 95 प्रतिशत तथा गुजरात व राजस्थान में 90 प्रतिशत से अधिक रही। कर्नाटक, उड़ीसा और आन्ध्र प्रदेश में 75 प्रतिशत से भी कम बन्धुआ मजदूरो का पुनर्वास किया गया।

राजस्थान के डूँगरपुर जिले के जोरावरपुर और रतनपानी गाँवों के बन्धुआ मजदूरो की पुनर्वास योजना का अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के आयोग द्वारा अध्ययन किया गया। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि प्रत्येक परिवार को 15 या 16 बीघा जमीन और 600 रुपये उपलब्ध कराये गये। लाभार्थियों ने कुएँ खोदकर जमीन को खेती-योग्य बनाने में स्वयं पहल की।[1]

इस सन्दर्भ में यह देखा गया है कि केन्द्र सरकार तो आर्थिक सहायता देने को तैयार है किन्तु प्रान्तीय सरकारों ने इसमें कम रुचि दिखायी है। बन्धुआ मजदूर प्रणाली को समाप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि राज्य सरकारें केन्द्र द्वारा दी जाने वाली सहायता का पूरा-पूरा उपयोग करें, उनके पुनर्वास का कार्यक्रम बनाये, मुक्त किये गये श्रमिको को पुनः बन्धक न बना लिया जाय, इस बात की पूरी सावधानी रखी जाय, ग्रामीण ऋण राहत अधिनियम (Rural Debt Relief Act) को कठोरता से लागू किया जाय। इसके लिए सरकारी व गैर-सरकारी संगठन बनाये जायँ। कृषि में श्रमिकों के बन्धक बनाने के अवसर मौजूद हैं, अतः इस स्थिति पर भी नजर रखी जाय। बन्धुआ मजदूर प्रणाली के लिए प्रमुख रूप से गरीबी उत्तरदायी है, अतः बेकारी एवं गरीबी को समाप्त करने के उपाय किये जायँ। इन सारे उपायों द्वारा बन्धुआ मजदूरो की समस्याओं का अन्त किया जा सकता है।

भूमिहीन श्रमिक, सीमान्त किसान व छोटे किसान
(LANDLESS LABOURERS, MARGINAL FARMERS AND SMALL FARMERS)

-भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था की बहुत ही गम्भीर समस्या खेतिहर मजदूरों, सीमान्त किसानो एवं छोटे किसानों की है। इन तीनों की संख्या गाँवो में सर्वाधिक है और ये अत्यन्त गरीबी में जीवन व्यतीत करते है। इनकी स्थिति बहुत ही कमजोर एवं दयनीय है तथा विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों का इन्हें सामना करना पड़ता है। देश की पिछड़ी

1 अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति आयोग की रिपोर्ट (आठवीं रिपोर्ट, 1985-86), पृ.44-45।

इस शर्त पर ऋण लेते रहे है कि जब तक वे उनका ऋण नहीं चुका देगे तब तक उधार देने वाले परिवार के यहाँ कार्य करेंगे। उधार देने वाला ऋणी व्यक्ति से गुलामों की तरह खेत पर, घर पर या अपने व्यवसाय में काम लेता है। इस प्रकार बन्धुआ मजदूर गरीबी की चरम सीमा, दासता और शोषण एवं मानव के मौलिक अधिकारों की हत्या के जीते-जागते उदाहरण हैं। इस समय सबसे बड़ी समस्या बन्धुआ मजदूरों का पता लगाने, उन्हे मुक्त कराने एवं उनके पुनर्वास की है। यह एक नैतिक दायित्व है। साथ ही यह प्रजातन्त्र एवं समाजवादी समाज की स्थापना एव लोककल्याणकारी राज्य की दिशा मे एक आवश्यक चरण है।

यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 23 के अन्तर्गत भिक्षावृति एवं बेगार को समाप्त कर दिया गया है फिर भी देश के विभिन्न भागों में बन्धुआ मजदूर प्रणाली विभिन्न रूपों में प्रचलित है। कुछ राज्य सरकारो ने इस प्रथा को रोकने के लिए अधिनियम भी बनाये किन्तु उन्हें आशातीत सफलता नही मिली है। प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने अपने बीस-सूत्री कार्यक्रम में बन्धुआ मजदूरों की समस्या पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया और नवीन आर्थिक कार्यक्रमों से उनकी समस्याओ के समाधान के लिए आशा की नयी किरण दिखायी दी। इस कार्यक्रम में बन्धुआ मजदूरी को समाप्त करने के महत्व को दर्शाया गया है। 25 अक्टूबर, 1975 में 'Bonded Labour System (Abolition) Ordinance' अध्यादेश लागू किया गया जो 1976 में 'Bonded Labour System (Abolition) Act' बना। इस अधिनियम के द्वारा देश में बन्धुआ मजदूरी को समाप्त कर दिया गया है तथा बन्धुआ मजदूरों का पता लगाने का कार्य श्रम मन्त्रालय को सौंपा गया है।

देश में बन्धुआ मजदूरो का पता लगाने के लिए गांधी शान्ति प्रतिष्ठान (Gandhi Peace Foundation) द्वारा राष्ट्रीय श्रम संस्थान (National Labour Institute) के साथ आन्ध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश के 295 जिलों के 1,000 गाँवों का मई एवं अक्टूबर 1978 में एक सर्वेक्षण किया गया। यह सर्वेक्षण विभिन्न राज्यों में बन्धुआ मजदूरों के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण आँकड़े प्रस्तुत करता है। सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि उड़ीसा को छोड़कर देश में 22.4 लाख बन्धुआ श्रमिक है। देश में कुल बन्धुआ मजदूरों के 80 प्रतिशत लोग अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के है। अध्ययन के दौरान ही विभिन्न राज्यो द्वारा 1,20,000 बन्धुआ मजदूरों की पहचान की गयी और उन्हें मुक्त कराया गया। 31 मार्च, 1992 तक 2,50,289 बन्धुआ मजदूरो की विभिन्न राज्यों में पहचान की गयी जिनमें से 2,23,141 का पुनर्वास कराया गया। 1978-79 से 1989-90 तक विभिन्न राज्यो द्वारा इन पर 3130.38 लाख रुपये खर्च किये गये। राज्य सरकारो से प्रार्थना की गयी है कि वे इस कार्यक्रम को गरीबी उन्मूलन व बीस-सूत्री कार्यक्रम से जोड़ें। बिहार के सरदार एवं मध्यम वर्ग के कई लोग जनजातियों के स्त्री-पुरुषों को बन्धुआ मजदूरों के रूप में कार्य करने के लिए त्रिपुरा राज्य में ले गये जहाँ उनसे ईंटें बनाने का कार्य करवाया जाता है। उन्हें वहाँ न तो उचित मजदूरी दी जाती और न ही कोई सुविधाएँ। स्त्री-मजदूरों के साथ तो और भी दुर्व्यवहार किया जाता है, उन्हें एक निश्चित क्षेत्र में ही रहने को कहा जाता तथा सप्ताह में एक बार बाजार ले जाया जाता है जहाँ से वे 2.50 रु प्रति किलो के हिसाब से एक निश्चित दुकान से ही सड़ा-गला चावल खरीद सकती हैं। जब इस घटना की त्रिपुरा सरकार को रिपोर्ट की गयी तो उसने घटना की छानबीन कर 94

बन्धुआ मजदूरों को मुक्त कराया, उन्हें उचित मजदूरी, खाने-पीने एवं आवास की सुविधाएं दी और उन्हें पुनः उनके मूल निवास राँची के गाँवो मे भेजा।

बन्धुआ मजदूरों के पुनर्वास के लिए केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना के अन्तर्गत निर्धारित की गई 4,000 रुपये की अधिकतम राशि को 1-2-1986 से बढ़ाकर 6,250 रु. कर दिया है। इससे पुनर्वास के प्रयास में अधिक वास्तविकता आ गयी है। इस 6,250 रुपये के निर्वाह अनुदान मे से एक मजदूर को 500 रुपये की राशि मुक्त होने के तत्काल बाद दी जाती है।

राज्यों से प्राप्त सूचना से पता चला है कि 1985-86 के दौरान पहचाने गये और मुक्त किये गये 79.65 प्रतिशत बन्धुआ मजदूर अनुसूचित जातियो और अनुसूचित जनजातियों के थे। उत्तर प्रदेश में इसी अवधि के दौरान पहचाने गये और मुक्त किये गये कुल बन्धुआ मजदूरों में से अनुसूचित जाति के बन्धुआ मजदूरों की संख्या 94.25 प्रतिशत और अनुसूचित जनजाति के मजदूरों की संख्या 20.90 प्रतिशत थी।

केरल व हरियाणा में पहचाने गये और मुक्त किये गये बन्धुआ मजदूरों का शत-प्रतिशत पुनर्वास किया गया जबकि तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश में यह उपलब्धि 95 प्रतिशत तथा गुजरात व राजस्थान में 90 प्रतिशत से अधिक रही। कर्नाटक, उड़ीसा और आन्ध्र प्रदेश में 75 प्रतिशत से भी कम बन्धुआ मजदूरों का पुनर्वास किया गया।

राजस्थान के डूँगरपुर जिले के जोरावरपुर और रतनपानी गाँवों के बन्धुआ मजदूरो की पुनर्वास योजना का अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के आयोग द्वारा अध्ययन किया गया। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि प्रत्येक परिवार को 15 या 16 बीघा जमीन और 600 रुपये उपलब्ध कराये गये। लाभार्थियों ने कुएँ खोदकर जमीन को खेती-योग्य बनाने में स्वयं पहल की।[1]

इस सन्दर्भ में यह देखा गया है कि केन्द्र सरकार तो आर्थिक सहायता देने को तैयार है किन्तु प्रान्तीय सरकारो ने इसमें कम रुचि दिखायी है। बन्धुआ मजदूर प्रणाली को समाप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि राज्य सरकारें केन्द्र द्वारा दी जाने वाली सहायता का पूरा-पूरा उपयोग करें, उनके पुनर्वास का कार्यक्रम बनायें, मुक्त किये गये श्रमिकों को पुनः बन्धक न बना लिया जाय, इस बात की पूरी सावधानी रखी जाय, ग्रामीण ऋण राहत अधिनियम (Rural Debt Relief Act) को कठोरता से लागू किया जाय। इसके लिए सरकारी व गैर-सरकारी संगठन बनाये जायँ। कृषि में श्रमिकों के बन्धक बनाने के अवसर मौजूद हैं, अतः इस स्थिति पर भी नजर रखी जाय। बन्धुआ मजदूर प्रणाली के लिए प्रमुख रूप से गरीबी उत्तरदायी है, अतः बेकारी एवं गरीबी को समाप्त करने के उपाय किये जायँ। इन सारे उपायों द्वारा बन्धुआ मजदूरो की समस्याओं का अन्त किया जा सकता है।

भूमिहीन श्रमिक, सीमान्त किसान व छोटे किसान
(LANDLESS LABOURERS, MARGINAL FARMERS AND SMALL FARMERS)

भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था की बहुत ही गम्भीर समस्या खेतिहर मजदूरों, सीमान्त किसानो एवं छोटे किसानों की है। इन तीनों की संख्या गाँवों में सर्वाधिक है और ये अत्यन्त गरीबी में जीवन व्यतीत करते हैं। इनकी स्थिति बहुत ही कमजोर एवं दयनीय है तथा विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों का इन्हें सामना करना पड़ता है। देश की पिछड़ी

[1] अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति आयोग की रिपोर्ट (आठवीं रिपोर्ट, 1985-86), पृ. 44-45।

अर्थव्यवस्था का यह उपेक्षित व पिछडा हुआ भाग है। इनकी समस्याओं को सुलझाये बिना देश की कृषि अर्थव्यवस्था मे स्थायी सुधार लाना सम्भव नही है।

खेतिहर श्रमिको, (भूमिहीन श्रमिको) से हमारा तात्पर्य उन श्रमिकों से है जो कृषि कार्य द्वारा अपना जीवन-यापन करते है। 1950-51 की **'प्रथम खेतिहर श्रम जाँच समिति'** (First Agricultural Labour Enquiry Committee) मे उन व्यक्तियों को खेतिहर मजदूर कहा गया जो फसलो के उत्पादन का कार्य करते है। 1955-57 की द्वितीय खेतिहर श्रम जॉच समिति मे इस श्रेणी में उन मजदूरो को भी शामिल कर लिया गया जो खेती के अतिरिक्त अन्य सम्बन्धित कार्यो में मजदूरी करते हैं, जैसे पशु पालन, बागवानी, मुर्गी-पालन, आदि। **राष्ट्रीय श्रम आयोग** (National Commission on Labour) के अनुसार खेतिहर मजदूर वह है जो मूलतः अकुशल व अव्यवस्थित है और जिसके पास जीविकोपार्जन के लिए अपने श्रम के अतिरिक्त लगभग कुछ भी नहीं होता है। इस प्रकार ऐसे श्रमिक की आय का अधिकांश भाग खेती से प्राप्त मजदूरी पर निर्भर करता है। 1961 की जनगणना में उन व्यक्तियों को खेतिहर मजदूर ठहराया गया जो दूसरों की भूमि पर मजदूरी करते है और जिन्हें नकदी या वस्तु और उत्पादन के भाग के रूप मे मजदूरी मिलती है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि **खेतिहर मजदूर वे व्यक्ति है जो कृषि क्षेत्र में मजदूरी करते है या जो वर्ष के अधिकांश दिन मजदूरी करते हैं और जिनकी आय का अधिकांश भाग खेती से प्राप्त मजदूरी पर निर्भर करता है।**

श्रम के राष्ट्रीय आयोग ने खेतिहर मजदूरों को दो श्रेणियों में विभक्त किया है : (1) भूमिहीन मजदूर (Landless Labourer), (2) बहुत छोटे किसान जिनकी आय का मुख्य साधन कृषि जोतों के बहुत छोटे होने के कारण मजदूरी है। भूमिहीन श्रमिकों को भी दो भागों में बॉटा गया है : (अ) स्थायी श्रमिक जो कृषक परिवारों से बँधे होते है, (ब) अस्थायी श्रमिक। अस्थायी श्रमिकों की श्रेणी में वे छोटे किसान भी सम्मिलित है जिनके पास बहुत थोड़ी भूमि होती है, अतः वे दूसरो की भूमि पर मजदूरी करते है या दूसरो की भूमि को ठेके पर लेकर खेती करते है या बँटाई पर खेती करते है।

सीमान्त किसानों से तात्पर्य ऐसे किसानो से है जिनके पास एक हेक्टेयर से कम भूमि है। एक हेक्टेयर से 2 हेक्टेयर तक की भूमि वाले लघु किसान, 2 से 4 हेक्टेयर वाले अर्द्ध-मध्यम, 4 से 10 हेक्टेयर वाले मध्यम एवं 10 हेक्टेयर से अधिक भूमि वाले वृहद किसान माने जाते है। देश में 12 प्रतिशत सीमान्त, 14 प्रतिशत लघु, 21 प्रतिशत अर्द्ध-मध्यम, 30 प्रतिशत मध्यम और 23 प्रतिशत वृहत् जोतें (Large holdings) है। सीमान्त किसान देश मे 2.5 करोड है। खेतिहर मजदूर, सीमान्त किसान एवं छोटे किसान मिलकर कुल ग्रामीण परिवारों के 75 प्रतिशत भाग का निर्माण करते हैं। ये सभी ग्रामीण लोग गरीब है। 1961 में देश में 3.15 करोड़ खेतिहर मजदूर एवं 9.95 करोड किसान थे। 1971 की जनगणना के अनुसार देश में खेतिहर मजदूरो की संख्या 4.75 करोड़ थी। 1981 की जनगणना के अनुसार देश में 5.6 करोड़ खेतिहर मजदूर थे जबकि वर्तमान मे इनकी संख्या 7.8 करोड़ है। इस प्रकार खेतिहर मजदूर जिनमें भूमिहीन मजदूर भी सम्मिलित है, सीमान्त किसान एवं छोटे किसान मिलकर ग्रामीण कमजोर वर्ग का निर्माण करते है। यहाँ हम इन सभी की कुछ समस्याओं एवं उनके सुधार के लिए किये गये प्रयत्नों का उल्लेख करेगे।

समस्याएँ
(PROBLEMS)

भूमिहीन श्रमिको (खेतिहर मजदूरो), सीमान्त व छोटे किसानों की प्रमुख समस्याएँ निम्नांकित हैं :

(1) रोजगार की समस्या—खेतिहर मजदूरो की एक समस्या यह है कि उन्हें नियमित रूप से रोजगार नहीं मिल पाता और बेकारी एवं अल्प-रोजगार की स्थिति में रहना पड़ता है। इनका सारा जीवन बेकारी, गरीबी, शोषण, उत्पीड़न और अनिश्चितता से भरा हुआ है। कुछ स्थानों पर तो खेतिहर मजदूरों की दशा गुलामो जैसी है तथा भू-स्वामी इनसे बेगार लेते और बहुत ही कम मजदूरी देते हैं। ये अपने मालिक की नौकरी छोड़कर दूसरे मालिक की नौकरी करने के लिए स्वतन्त्र नहीं होते हैं। रोजगार की दृष्टि से अस्थायी श्रमिकों की दशा तो और भी खराब है तथा इन्हें वर्ष मे 3 से 6 महीने बेकारी की स्थिति में व्यतीत करने पड़ते हैं। फलस्वरूप इनमें बेरोजगारी और बढ जाती है। कृषि में मशीनीकरण से भी बेकारी में वृद्धि हुई है।

(2) अल्प आय—खेतिहर मजदूरों को वर्ष के एक बहुत बड़े भाग में बेकार रहना पड़ता है और यहाँ तक कि काम के दिनों मे इन्हें मजदूरी भी बहुत कम मिलती है। इन्हे कुछ मजदूरी नकदी में व कुछ वस्तुओं के रूप में भी मिलती है। यद्यपि इस सन्दर्भ मे वर्तमान समय में सरकार ने इनके लिए न्यूनतम मजदूरी तय कर दी है। फिर भी इसका पालन बहुत कम लोग ही कर रहे हैं। देश मे खेतिहर मजदूरो की औसत आय भी बहुत कम है।

(3) कार्य की दशाएँ—कम मजदूरी के अतिरिक्त खेतिहर मजदूरों को बहुत कठिन परिस्थितियों जैसे कड़ी धूप या भारी वर्षा में कठोर परिश्रम करना होता है। इनके काम के घण्टे अनिश्चित और अनियमित होते हैं तथा इन्हें छुट्टी व अन्य सुविधाएँ उपलब्ध नहीं होतीं। इसका प्रतिकूल प्रभाव इनके स्वास्थ्य, कार्य-क्षमता और जीवन पर पड़ता है।

(4) निम्न जीवन-स्तर—इन लोगों का जीवन-स्तर काफी निम्न है। कम आय के कारण ये लोग उपभोग पर बहुत कम खर्च कर पाते हैं और अपनी आवश्यक आवश्यकताएँ भी सरलता से नहीं पूरी नहीं कर पाते। ये अपनी आय का लगभग 77 प्रतिशत भाग खाद्य-पदार्थो पर, 6 प्रतिशत वस्त्रो पर, 8 प्रतिशत ईंधन व रोशनी पर तथा 9 प्रतिशत सेवाओं व अन्य मदो पर खर्च करते हैं। सामान्यतः ये लोग मोटा अनाज, जैसे ज्वार, बाजरा एवं मक्का खाते हैं। पौष्टिक पदार्थ जैसे माँस, मछली, दूध, फल, सब्जी, आदि का उपभोग तो ये नही के बराबर ही करते हैं। तन ढकने को पर्याप्त वस्त्र एवं रहने को पर्याप्त मकान भी इन्हे उपलब्ध नहीं होते। चिकित्सा व अन्य सुविधाओं का तो अत्यन्त अभाव है ही।

(5) ऋणग्रस्तता—कम आय के कारण अधिकांश खेतिहर मजदूर ऋणग्रस्त होते हैं, यहाँ तक कि अपनी आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी इन्हे ऋण लेना होता है। ऋण इन्हें विरासत मे मिलता है। ये लोग ऋण में जन्म लेते हैं व ऋण में ही मरते हैं। असम के चाय बागानों के मजदूरों के बारे में प्रो. गाडगिल ने लिखा है, "उनकी स्थिति गुलामों से बेहतर नहीं थी।"

(6) दयनीय सामाजिक स्थिति—देश के अधिकांश खेतिहर मजदूर उपेक्षित व दलित जातियो के सदस्य है जिनकी सामाजिक स्थिति बहुत नीची होती है और विभिन्न प्रकार से इनका शोषण होता है तथा इन्हे कई अधिकारो से वंचित कर दिया जाता है।

(7) सहायक धन्धों का अभाव—गॉवों में सहायक धन्धों का अभाव है। यदि किसी प्रकार गॉवो मे बाढ, अकाल, सूखा आदि के कारण से फसल नहीं होती है तो कृषि श्रमिको को कोई अन्य जीवन निर्वाह का साधन नही मिल पाता है जिसके परिणामस्वरूप वे ऋणग्रस्तता मे और डूब जाते है।

(8) संगठन का अभाव—कृषि श्रमिको की एक समस्या उनमे किसी भी प्रकार के संगठन का अभाव है। वे अशिक्षित, अज्ञानी एवं अनभिज्ञ है, साथ ही देश के दूर-दूर भागों मे फैले हुए है। संगठन के अभाव मे उनमे मोलभाव करने की क्षमता नहीं है, अतः वे अपनी मजदूरी वढवाने, कार्य के घण्टे नियमित कराने, वेगार वन्द कराने, आदि की आवाज तक नही उठा पाते।

(9) हरित क्रान्ति—हरित क्रान्ति के अन्तर्गत कृषि में उत्पादन के परम्परागत साधनो एव यन्त्रो के स्थान पर नवीन साधनो जैसे ट्रेक्टर, हल आदि का प्रयोग किया जाता है, नवीन खादो, वीजो एवं कीटनाशक दवाओं का प्रयोग किया जाता है। इससे उत्पादन में वृद्धि होती है। हरित क्रान्ति का लाभ गाँव के वड़े भूस्वामियों एवं किसानों को हुआ है। छोटे किसान एवं खेतिहर मजदूरो को इससे कोई लाभ नहीं मिला है। हरित क्रान्ति ने गाँवों की आर्थिक असमानता को और वढ़ावा दिया है। इससे भी कृषक असन्तोष वढा है।

भारत में कृषक आन्दोलन
(PEASANT OR AGRARIAN MOVEMENTS IN INDIA)

भारतीय किसानों एवं खेतिहर मजदूरों ने अपनी समस्याओं के समाधान हेतु देश के विभिन्न भागों में समय-समय पर आन्दोलन किये है जिन्हे हम कृषक आन्दोलन कह सकते हैं। **कृषक आन्दोलन ऐसे आन्दोलनों को कहते हैं जिनका मूलाधार कृषि की आवश्यकताओं से सम्वन्धित होता है, जो मूलतः अपने सत्तापरक स्वामियो से मुक्त होने के लिए किये जाते हैं।** आर. वी. पाण्डेय के अनुसार, 'कोई भी आन्दोलन कृषक आन्दोलन वन सकता है, वशर्ते उसका मूल उद्देश्य कृषको के अधिकार की लडाई हो, चाहे वह कृषकों द्वारा गठित हो अथवा अन्य समूहों द्वारा।' डॉ. तरुण मजूमदार के अनुसार, "कृषि कार्यो से सम्वन्धित प्रत्येक वर्ग के उत्थान तथा शोषण मुक्ति के लिए किये गये साहसी प्रयासों को कृषक आन्दोलन की श्रेणी मे रखा जा सकता है।" संक्षेप में, कृषक आन्दोलन वे आन्दोलन हैं जो खेतिहर मजदूरों या किसानों से सम्वन्धित हो और जो उनके शोषण, पतन और आर्थिक परतन्त्रता के खिलाफ उत्पन्न होते है। भारत में कृषक आन्दोलन के लिए अनेक कारक उत्तरदायी रहे हैं, जैसे—(i) कृषि से सम्वन्धित वस्तुओं के दाम वढना, (ii) फसल नष्ट हो जाना या प्राकृतिक प्रकोप, (iii) किसी विशेष फसल को पैदा करने के लिए किसानों पर दवाव डालना, (iv) श्रमिकों एवं किसानों का शोषण, (v) श्रमिकों को वन्धक वनाये रखना एवं उनसे वेगार लेना, आदि। अव हम यहाँ देश के विभिन्न भागों में हुए कुछ कृषक आन्दोलनो की विवेचना करेंगे :

सन् 1800 में विहार में नील की जवरन खेती के विरोध में चम्पारन में आन्दोलन हुआ। 1935 में किसानों ने विहार में जमींदारी प्रथा को समाप्त करने के लिए आवाज उठाई।

1947 तक यह आन्दोलन चला जिसमें अनेक स्थानों पर हत्याएँ, आगजनी एवं हमले की घटनाएँ हुई। 1920 में आगरा और अवध मे किसानो ने मूल्य वृद्धि, कर, बेगार, जुर्माना, नजराना एवं वेदखली को लेकर आन्दोलन किया। 1920-22 में गोरखपुर के पास एका नामक कृषक आन्दोलन किया गया जिसका उद्देश्य बीजो के दाम एवं सरकार द्वारा भूमि लगान मे की गई वृद्धि का विरोध करना था। 1936 मे उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले में 'निजाई बोल आन्दोलन' हुआ जिसमें किसानो ने भूस्वामियों के अत्याचारों का विरोध किया। 1970 में बस्ती में 'भूमि हथियाओ आन्दोलन' हुआ जिसमें हरिजनों एवं मुसलमानों ने भूस्वामियो की जमीनें छीनने के प्रयास किये। दक्षिणी भारत में 1836 से 1896 तक मोपला मुसलमानो ने हिन्दू भूपतियो के विरुद्ध आन्दोलन किया। 1930-35 मे तेलंगाना मे हैदराबाद निजाम एवं उनके रजाकारों के विरुद्ध किसानों ने आन्दोलन किया जो 1948 में विनोवा भावे के भू-दान आन्दोलन के बाद समाप्त हुआ।

गुजरात मे 1918 में खेड़ा आन्दोलन एव 1920 मे बारडोली आन्दोलन हुआ जिनमे किसानो ने बेगार, शोषण, लगान, महंगाई आदि का विरोध किया। महाराष्ट्र में 1875-76 में पूना-अहमदनगर एवं 1919-21 में सतारा मे कृषक आन्दोलन हुए। राजस्थान मे 1913-14 में बिजोलिया में तत्कालीन महाराणा, रावों एवं जागीरदारो के द्वारा किये गये अत्याचारो के विरुद्ध किसानों ने आन्दोलन किया। बंगाल के किसान आन्दोलनो मे तेभागा एव नक्सलबाड़ी आन्दोलन प्रमुख है।

चौधरी चरणसिह, देवीलाल, राजनारायण, नानाजी देशमुख एवं महेन्द्र सिंह टिकैत के नेतृत्व में प्रमुख रूप से उत्तरी भारत मे किसानो की समस्याओ को लेकर अनेक आन्दोलनों, प्रदर्शनों, धरनो, बन्द, सम्मेलनों, रैलियो एवं सभाओं का आयोजन किया गया है।

सुधार हेतु सरकार द्वारा किये गये प्रयत्न
(EFFORTS MADE BY GOVERNMENT FOR IMPROVEMENT)

भूमिहीन श्रमिकों (खेतिहर मजदूरो) की स्थिति को सुधारने के लिए हमारी सरकार ने विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों एवं योजनाओं का क्रियान्वयन किया है। इनमें से प्रमुख का यहाँ हम उल्लेख करेंगे :

(1) **भूमि सुधार**—भूमिहीन एवं खेतिहर मजदूरो की आर्थिक व सामाजिक स्थिति को सुधारने के लिए भू-सुधार से सम्बन्धित अधिनियम बनाये गये। अतीत काल से चली आ रही भूमि व्यवस्था के कारण भू-श्रमिकों का जो शोषण हो रहा था, उसे रोकने के लिए निम्नांकित उपाय अपनाये गये : (1) बिचौलियो को उखाड़ फेंकना। (2) रैयतवारी में सुधार, जैसे लगान के बारे में अधिनियम बनाना, पट्टेदारी की सुरक्षा और आसामी को स्वामित्व के अधिकार प्रदान करना। (3) जोत की उच्चतम सीमा निर्धारित करना। (4) चकबन्दी। (5) भू-अभिलेखों को आधुनिक बनाना। भू-सुधारों के अन्तर्गत ही जमींदारी उन्मूलन अधिनियम एवं भूमि सीलिंग एक्ट पारित किये गये। इन अधिनियमो के द्वारा भू-स्वामित्व को समाप्त कर दिया गया और एक निश्चित मात्रा से अधिक भूमि रखने पर रोक लगा दी गयी तथा भू-स्वामियो से अतिरिक्त भूमि लेकर भूमिहीन किसानो में बाँट दी गयी। मार्च 1980 में विभिन्न राज्यों में 15.74 लाख हेक्टेयर भूमि अतिरिक्त घोषित की गयी जिसमे 9.56 लाख हेक्टेयर भूमि सरकार ने अपने अधिकार में ली और लगभग 6.79 लाख हेक्टेयर भूमि भूमिहीनों मे वितरित की जिससे 11.54 लाख भूमिहीन व्यक्तियों को लाभ पहुंचा।

राजस्थान में 18 फरवरी, 1952 में राजस्थान भूमि सुधार एवं जागीर पुनर्ग्रहण अधिनियम पास किया गया जिसके अनुसार जागीरदारों को क्षतिपूर्ति देकर सरकार ने उनसे सीमा से अधिक भूमि को ग्रहण कर लिया। 1963 में 'राजस्थान भूमि सुधार एवं भूस्वामी सम्पत्ति अधिग्रहण अधिनियम' के द्वारा राजाओं की भूमि को भी सरकार ने अधिकार में ले लिया तथा ऐसी भूमि को भूमिहीनों में वितरित किया गया। ऐसे ही अधिनियम उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार एवं अन्य राज्यों में भी बने है। राजस्थान में अधिकतम भूमि की सीमा 7.3 से 70 8 हेक्टेयर, मध्य प्रदेश में 7 3 से 21.9 हेक्टेयर, बिहार में 6.1 से 18.2 हेक्टेयर तथा उत्तर प्रदेश में 7.3 से 18.3 हेक्टेयर है। भूमि की सीमा निर्धारण में उपज, सिंचित और असिंचित क्षेत्र तथा परिवार के सदस्यों की संख्या को आधार माना गया है।

(2) **न्यूनतम मजदूरी**—1948 में बने न्यूनतम मजदूरी कानून को कृषि क्षेत्र में भी लागू किया गया, यद्यपि इसमें कई व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं। इस अधिनियम में यह प्रावधान है कि मूल्य सूचकांक को देखकर वर्ष में दो बार संशोधित मजदूरी की दरें घोषित की जा सकती है। इस अधिनियम के क्रियान्वयन के लिए यह आवश्यक है कि मजदूर स्वयं संगठित होकर प्रयत्न करें और सरकार उन्हें सहयोग प्रदान करे। नवीन बीस-सूत्रीय कार्यक्रम के अनुसार कृषि क्षेत्र में मजदूरों की न्यूनतम मजदूरी 14 रुपये प्रतिदिन तय की गयी है।

(3) **बन्धक श्रम उन्मूलन**—1976 में बन्धक श्रम उन्मूलन अधिनियम बनाकर सरकार ने निर्धन वर्ग के लोगों के आर्थिक व शारीरिक शोषण को समाप्त कर दिया। सभी बन्धक मजदूर स्वतन्त्र घोषित कर दिये गये है और उनसे किसी प्रकार की बेगार नहीं ली जा सकती तथा उनके पुनर्वास की व्यवस्था भी की गयी है।

(4) **आवास सुविधा**—ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिहीन श्रमिकों को मकान बनाने हेतु भूमि उपलब्ध कराने की योजना राष्ट्रीय कार्यक्रम का एक अंग है। 30 सितम्बर, 1981 तक 86 77 लाख भूमिहीन श्रमिक परिवारों को मकान बनाने के लिए जमीन दी जा चुकी है। इनमें से 15.50 लाख परिवारों ने अपने मकान बना लिये हैं। छठी पंचवर्षीय योजना में सभी शेष 68 लाख भूमिहीन परिवारों को मकान बनाने के लिए 353.50 करोड़ रुपये देने का कार्यक्रम रखा गया। प्रति परिवार निर्माण के लिए 500 रुपये देने का प्रावधान किया गया। ग्रामीण आवास योजना के अन्तर्गत ग्रामों में मकान बनाने के लिए एक व्यक्ति को 5,000 रुपए तक का ऋण दिया जाता है। सन् 1985-86 से इन्दिरा आवास योजना प्रारम्भ की गयी जिसके अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों, जनजातियों और मुक्त किए गये बन्धुआ मजदूरों के लिए मकान बनाए जाते हैं। सातवीं योजना में इस आवास योजना के अन्तर्गत 10 लाख मकान बनवाने का प्रावधान किया गया। इस योजना के अन्तर्गत मकान बनाने हेतु प्रति इकाई 12,700 रुपए सहायता के रूप में दिये जाते है।

(5) **श्रम-संगठन**—खेतिहर श्रमिकों को संगठित करने के लिए छठी पंचवर्षीय योजना में 65 लाख रुपये का प्रावधान रखा गया। खण्ड स्तर पर मानद कार्यकर्ताओं (*honorary workers*) को नियुक्त किया गया जो कि श्रमिकों को उनके अधिकारों, दायित्वों व महत्व को बताते हैं व उनको संगठित करते है।

(6) **अन्य उपाय**—खेतिहर मजदूरों की दशा सुधारने के लिए सरकार ने कई अन्य उपाय भी अपनाये हैं, जैसे ट्रेड यूनियन अधिनियम, 1926 को कृषि मजदूरों पर भी लागू किया गया, वाणिज्य के आधार पर चलाये जा रहे कृषि फार्मों पर भी औद्योगिक विवाद

अधिनियम,1947 लागू किया गया। कर्मचारी भविष्य निधि और विभिन्न प्रावधान अधिनियम, 1952 उन खेतिहर मजदूरों पर लागू होता है जो विशिष्ट बागानों मे काम करते है। ट्रैक्टर, मशीन शक्ति और विजली का प्रयोग जिन कृषि फार्मों पर होता है, उन पर भी कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 लागू किया गया है।

खेतिहर मजदूरों की समस्या पर विचार करने के लिए सरकार ने 25 जनवरी, 1978 को ग्रामीण असंगठित श्रमिको सम्बन्धी एक सम्मेलन बुलाया जिसमे इनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए सरकार को सुझाव देने हेतु एक स्थायी केन्द्रीय समिति बनायी गयी है। भारत सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सघ कन्वेशन संख्या 141 पर हस्ताक्षर कर दिये है। इसके अन्तर्गत हस्ताक्षर करने वाले देशों के लिए जरूरी है कि वे स्वैच्छिक तौर पर ग्रामीण श्रमिको के लिए एक शक्तिशाली व स्वतन्त्र संस्था स्थापित करें।

इनके अतिरिक्त, खेतिहर मजदूरो की सहायता व कल्याण के लिए और कई उपाय किये गये है। सिंचाई सुविधाओं का विस्तार, गाँवों में उद्योगों का विकास, मजदूरो के लिए शिक्षा, प्रशिक्षण, चिकित्सा, पीने का पानी, मनोरंजन और सहकारी संगठन की व्यवस्था की गयी।

कार्यक्रम की कमियाँ

सरकार द्वारा खेतिहर मजदूरों की समस्याओं को हल करने के लिए अनेक प्रयत्न किये गये फिर भी वे पूरी तरह सफल नही हो पाये है क्योंकि इनमें अनेक कमियाँ हैं .

(1) सुधार कानूनों का नौकरशाही द्वारा सही अर्थ न लगाना।

(2) नौकरशाही में भ्रष्टाचार के कारण सुधार कार्यक्रमों का सही क्रियान्वयन न होना।

(3) कर्मचारियों में प्रेरणा का अभाव।

(4) जिन लोगों के लिए सुधार कार्यक्रम बनाये गये, उन्हें इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन मे सम्मिलित नहीं किया गया। सामान्यतः गाँव के अभिजात-वर्ग के लोग ही इस कार्यक्रम के अगुआ होते हैं जो सही न्याय नहीं करते हैं। गरीबो के पास पैसे और प्रभाव का अभाव होने के कारण, वे अपने पक्ष में न्याय नहीं करा पाते है।

(5) राजनीतिक इच्छा की कमी (Lack of Political will) के कारण भी भू-सुधार के प्रयत्न सफल नही हुए। केरल, महाराष्ट्र, पश्चिमी बंगाल, जहाँ राजनीतिक इच्छा प्रबल थी, वहाँ भू-सुधार अन्य राज्यो की अपेक्षा अधिक सफल रहे।

समस्या समाधान हेतु सुझाव
(SUGGESTIONS FOR IMPROVEMENT)

भूमिहीन श्रमिकों (खेतिहर मजदूरों) की समस्याओं के समाधान के लिए हम निम्न सुझाव दे सकते हैं :

(1) इनके लिए काम के घण्टो का निर्धारण किया जाय व काम के दौरान खाने-पीने व विश्राम का प्रबन्ध किया जाय।

(2) कार्य दशाओं में सुधार किया जाय।

(3) बच्चों व स्त्रियों को भारी काम न सौंपे जायँ।

(4) न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण और उसे लागू करने हेतु समुचित व्यवस्था की जाय।

(5) मजदूर संघ के रूप में कृषि श्रमिकों को संगठित किया जाय जिससे वे भूस्वामी व महाजनो से अपने शोषण को रोक सकें और अपने सुधार के लिए मालिकों व सरकार पर दबाव डाल सके।

(6) इनके लिए सामाजिक सुरक्षा एवं सेवाओं जैसे अस्पताल, पीने का पानी, उपभोग की सस्ती वस्तुएँ, शिक्षा, आदि की समुचित व्यवस्था की जाय।

(7) अतिरिक्त भूमि का भूमिहीन किसानों में अधिकाधिक तेज गति से वितरण किया जाय।

(8) विभिन्न उद्योग-धन्धो को बढ़ावा दिया जाय और उसके लिए प्रशिक्षण, वित्त और तकनीकी सहायता जुटायी जाय ताकि ये कृषि के अतिरिक्त समय मे बेकार न रहें।

(9) इनके लिए आवास की उचित व्यवस्था की जाय।

प्रश्न

1. भारत मे पिछड़े वर्गों, बन्धुआ मजदूरो एवं सीमान्त कृपकों की प्रमुख समस्याएँ क्या हैं? उन्हे हल करने के उपाय बताइए।
2. पिछडे वर्गो के सन्दर्भ मे मण्डल आयोग की सिफारिशों की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।
3. भारत मे कृपक आन्दोलनो पर टिप्पणी लिखिए।
4. सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :
   (i) बन्धुआ मजदूर, (अजमेर, 1994; राज., 1995)
   (ii) सीमान्त किसान, (अजमेर, 1994; राज., 1995)
   (iii) भूमिहीन मजदूर,
   (iv) पिछड़े वर्ग,
   (v) मण्डल आयोग,
   (vi) काका कालेलकर आयोग।
5. भूमिहीन श्रमिको और बन्धक श्रमिको की समस्याओ की विवेचना कीजिए। इनकी दशा सुधारने के लिए कुछ सुझाव दीजिए। (अजमेर, 1991)
6. 'कमजोर वर्ग के विकास की समस्या' पर एक लेख लिखिए। (राज., 1994, 96)
7. बन्धक श्रमिक (बन्धुआ मजदूर) की प्रकृति स्पष्ट कीजिए। भारत में उनकी प्रमुख समस्याएं क्या है? (राज., 1993, अजमेर, 1996)
8. भारत मे खेतिहर मजदूरों एवं सीमान्त किसानों की क्या समस्याए हैं? सरकार ने इनके सुधार के लिए क्या प्रयत्न किए है? (राज., 1996)

15

राष्ट्रीय एकीकरण की समस्याएं
(साम्प्रदायिकता, क्षेत्रवाद, भाषावाद एवं जातिवाद)

[PROBLEMS OF NATIONAL INTEGRATION]
(Communalism, Regionalism, Linguism and Casteism)

राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या ने भारतीय राजनीतिज्ञो, समाज-सुधारको एवं शिक्षाशास्त्रियो का ध्यान समय-समय पर अपनी ओर आकर्षित किया है। पिछले कुछ वर्षो में भाषावाद, क्षेत्रवाद, आतंकवाद एवं पृथक प्रान्त की मांग, आदि को लेकर हुई हड़तालों, तोड़-फोड़, दंगों और संघर्षो ने राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या को और भी गम्भीर बना दिया है। समय-समय पर अनेक राजनीतिक दलों ने सत्ता में आने के लिए राष्ट्रीय हितों को तिलांजलि देकर स्थानीय एवं प्रान्तीय हितों को अधिक महत्व दिया। यहां तक कि अखिल भारतीय राजनीतिक दलों ने भी प्रान्तो के दबाव के सम्मुख अपने घुटने टेके है। इन सभी घटनाओं ने आलोचको को यह कहने का अवसर दिया है कि भारत कभी भी एक सगठित राष्ट्र नही बन सकता।

विश्व में भारत का जनसंख्या की दृष्टि से दूसरा स्थान है। यहां अनेक भाषा-भाषी लोग, अनेक प्रजातियों, धर्मो, मतों, सम्प्रदायों तथा सस्कृतियो को मानने वाले व्यक्ति निवास करते हैं। इस विविधता के बावजूद भी भारत में प्राचीन समय से ही सामाजिक-सांस्कृतिक एकता बनी रही है। समय-समय पर यहां ऐसे महापुरुषों का जन्म हुआ है जो देश को एकता के सूत्र में पिरोते रहे, यद्यपि राजनीतिक और प्रशासकीय दृष्टि से सम्पूर्ण भारत एक ही सत्ता के नीचे एक राष्ट्र के रूप में अंग्रेजों के पूर्व बहुत कम ही रहा है। अंग्रेजो के शासनकाल में सारा देश राजनीतिक दृष्टि से भी एक राष्ट्र था और सम्पूर्ण भारत पर एक ही प्रकार का शासन कायम हुआ। आजादी के बाद सम्पूर्ण भारत को स्वतन्त्र राष्ट्र का दर्जा तो मिला किन्तु इसकी निर्मायक इकाइयों ने अनेक ऐसे विवाद खड़े कर दिए जिससे राष्ट्रीय एकीकरण को धक्का लगा। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता का प्रश्न एक ज्वलन्त समस्या के रूप में उठ खड़ा हुआ। यदि भारत को एक राष्ट्र के रूप मे जीवित रहना है तो इसे राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग मे आने वाली सभी कठिनाइयों से मुक्ति पानी होगी। अब हम यहां राष्ट्रीय एकीकरण का अर्थ और परिभाषा, राष्ट्रीयता के निर्मायक तत्वो, राष्ट्रीय एकता में आने वाली बाधाओं और उन्हे दूर करने के लिए किए गए प्रयत्नों एवं सुझावों का उल्लेख करेंगे।

राष्ट्रीय एकीकरण क्या है
(WHAT IS NATIONAL INTEGRATION)

राष्ट्र और राष्ट्रीयता की धारणा का उदय यूरोप में सन् 1789 के बाद हुआ। फ्रांस की क्रान्ति के पूर्व इन शब्दों का कोई विशिष्ट अर्थ नहीं था। फ्रांस और इंगलैण्ड में राष्ट्रीयता का उदय एक राजनीतिक घटना थी जबकि इटली और जर्मनी में राष्ट्रवाद का उदय सांस्कृतिक प्रारूप (Cultural Model) के आधार पर हुआ जिसके अन्तर्गत आगे चलकर भाषा और प्रजाति के सिद्धान्त को भी राष्ट्र-निर्माण में सम्मिलित कर लिया गया। छोटे-छोटे स्थानीय समूहों ने जिनकी एक भाषा और एक संस्कृति थी, अपने राजनीतिक, कानूनी और सामाजिक हितों की रक्षा के लिए अपने को एक राष्ट्र कहना प्रारम्भ किया। पश्चिमी देशों ने अपने साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का प्रसार अफ्रीका एवं एशिया के देशों में किया। परतन्त्र देशों ने धीरे-धीरे एक-एक करके विदेशी जुए को उतार फेंकने और स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए अपने सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और भाषायी मतभेदों को भुलाकर एकजुट होकर प्रयास किया जिसके परिणामस्वरूप वहां राष्ट्रीयता की भावना पनपी। कालान्तर में ये देश पश्चिमी देशों के विरोधी हो गए तथा इन्होंने स्वयं की भाषा और संस्कृति को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया।

साधारणतः राष्ट्र का अर्थ उस मानव-समूह से लिया जाता है जिसमें एकता की भावना पायी जाती हो। राष्ट्र की परिभाषा करते हुए जे. एस. मिल लिखते हैं, "राष्ट्र मानव-जाति का एक ऐसा भाग है जो अन्य लोगों की तुलना में एक-दूसरे से सामान्य सहानुभूतियों के द्वारा संयुक्त हो जिसमें एक ही सरकार के अधीन रहने की प्रबल इच्छा हो।"[1] जेक्यूस मारिटेन लिखते हैं, "एक राष्ट्र ऐसे लोगों का एक समुदाय है जिनमें ऐतिहासिक जागरूकता पायी जाती है, जिनका एक भूतकाल होता है, जो अपने आप को अनिवार्यतः आन्तरिक रूप से प्यार करते हैं।"[2] इस प्रकार एक राष्ट्र एक भौगोलिक क्षेत्र में निवास करने वाले उन लोगों का एक ऐसा समुदाय है जिनका एक भूतकाल और इतिहास होता है जिनमें 'हम' की और एकता की भावना पायी जाती है तथा जिनकी एक भाषा, संस्कृति, सामान्य परम्परा, सामान्य-चेतना और राजनीतिक व्यवस्था होती है।

राष्ट्रीयता को कानूनी दृष्टि से राज्य की सदस्यता के रूप में समझा जाता है। तात्विक दृष्टि से राष्ट्रीयता को एक ऐसी अनुभूति के रूप में समझा जाता है जो भौगोलिक, ऐतिहासिक, प्रजातीय, सांस्कृतिक तथा ऐसे ही बन्धनों से उत्पन्न होती है। वर्तमान समय मे राष्ट्रीयता को एक सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक भावना समझा जाता है। प्रो. जिमर्न ने राष्ट्रीयता की परिभाषा देते हुए लिखा है, "राष्ट्रीयता मेरे लिए एक राजनीतिक प्रश्न बिल्कुल नहीं है। यह प्रमुखतः तथा अनिवार्य रूप से एक आध्यात्मिक प्रश्न है, राष्ट्रीयता धर्म की भांति व्यक्तिगत है, मनोवैज्ञानिक है, एक मानसिक स्थिति है तथा अनुभव करने, विचार करने और रहने का एक ढंग है।"[3] इस प्रकार राष्ट्रीयता आध्यात्मिक भावना पर आधारित है। एक ही देश में विभिन्न भाषा, धर्म तथा संस्कृति के होते हुए भी राष्ट्रीयता में एकता की भावना पायी जाती है।

1 J. S Mill, *Representative Government*, Ch XVI
2 Jaques Maritain, *Men and the State*, pp. 4-5
3 Zimmern, *Nationality and Government*, p 59.

राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता को समझने के बाद एकीकरण किसे कहते हैं, यह जान लेना आवश्यक है। **समाजशास्त्रीय दृष्टि से एकीकरण एक प्रक्रिया और अवस्था दोनों है** (Integration is a process and condition)। प्रक्रिया के रूप में एकीकरण के लिए प्रयास किए जाते हैं जबकि अवस्था के रूप में एकीकरण एक ऐसी स्थिति है जिसमें इसे प्राप्त कर लिया गया हो। के. सी. पाण्डे के मतानुसार, **साहित्यिक दृष्टि से एकीकरण का अर्थ है कई इकाइयों द्वारा एक सम्पूर्णता का निर्माण। इसमें विभिन्नता की धारणा निहित है तथा यह विचार भी निहित है कि विभिन्न इकाइयों को साथ रखा जाय।**[1] इसका अर्थ यह भी हुआ कि जो इकाइयां अलग-अलग हैं वे एक-दूसरे की सहायता करने एवं पूरक बनने की इच्छा रखती हैं। इसके अभाव में एकीकरण सम्भव नहीं होगा। अतः एकीकरण में सम्पूर्णता का निर्माण करने वाली विभिन्न इकाइयों का लाभ निहित होता है और इस कारण वे एकता बनाए रखना चाहती हैं।

राष्ट्रीय एकीकरण की अवधारणा को अनेक रूपों में देखा गया है, जैसे राजनीतिक व प्रशासकीय दृष्टि से एक सत्ता के अन्तर्गत कई छोटे-छोटे राज्यों के बंध जाने, सांस्कृतिक-सामाजिक दृष्टि से एक ही प्रकार की सांस्कृतिक प्रथाओं, रीति-रिवाजों का पालन करने, एक भाषा, त्यौहारों, उत्सवों आदि के प्रचलित होने तथा मानसिक दृष्टि से सभी लोगों में एकता की भावना के उत्पन्न होने के रूप में। इस प्रकार कुछ लोग राष्ट्रीय एकता को मूर्तरूप में देखते हैं तो कुछ इसकी व्याख्या मानसिक बन्धनों के रूप में अमूर्त रूप से करते है।

राष्ट्रीय एकीकरण को परिभाषित करते हुए डॉ. घुरिये लिखते हैं, **"यहां राष्ट्रीय एकीकरण को मनोवैज्ञानिक और शिक्षण प्रक्रिया के रूप में परिभाषित या वर्णित किया जा सकता है जिसमें एकता, दृढ़ता और सम्बद्धता की भावना का विकास सम्मिलित है, जिसमें लोगों के हृदयों में सामान्य नागरिकता की भावना तथा राष्ट्र के प्रति वफादारी की भावना पायी जाती है।"**[2] डॉ. घुरिये ने अपनी परिभाषा में राष्ट्रीय एकीकरण को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया है जिसमें मानसिक एवं शैक्षणिक प्रक्रिया के साथ-साथ लोगों के मन मे राष्ट्र के प्रति एकता, दृढ़ता, संगठन और वफादारी की भावना पायी जाती है। ऐसे सभी लोग अपने को एक ही राष्ट्र का नागरिक स्वीकार करते है। सम्बद्धता (Cohesion) की भावना राष्ट्रीय एकीकरण के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यही भावना लोगो को एक सूत्र में पिरोती है।

ब्रजमोहन के अनुसार, **"हम राष्ट्रीय एकीकरण को एक मनो-सामाजिक प्रक्रिया के रूप मे परिभाषित कर सकते हैं जिसमें स्थानीय वफादारी से परे राष्ट्र द्वारा स्वीकृत उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए सभी समूहों द्वारा सहभागिक प्रयास किया जाता है। एक अव्यवहार्य लक्ष्य के रूप में राष्ट्रीय एकीकरण एक अमूर्त धारणा है क्योंकि इच्छित और वास्तविक में सदा ही पिछड़ापन पाया जाता है।"**[3]

1 "Integration literally means to make up a whole out of parts It presupposses diversities and the idea is to bind the parts together."
—K C. Pandey, *Religionalism and Problems of National Integration*, p 7.

2 "Herein is defined or described national integration as a psychological and educational process involving the development of a feeling of unity, solidarity and cohesion in the hearts of the people a sense of common citizenship (destiny) and a feel

3 "We beyor

accomplishment of nationally accepted goals As a utopian target national integration is an abstract concept because the lag between desired and real level would always exist."
—Brij Mohan, *India's Social Problems*, p 108

इस प्रकार हम राष्ट्रीय एकीकरण को एक मानसिक तथा शैक्षणिक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित कर सकते हैं। एकीकरण की स्थिति में विभिन्न इकाइयां अपने सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, भाषाई, धार्मिक, जातीय एवं क्षेत्रीय भेदभावों को भुलाकर राष्ट्र-भक्ति एवं देश-प्रेम की भावना से प्रेरित होकर सामूहिक कल्याण के लिए प्रयत्न करती हैं। राष्ट्रीय एकीकरण की अवस्था में सभी देशवासी छोटे-मोटे मतभेदों और संकुचित स्थानीय स्वार्थों को भुलाकर एकात्मकता की अनुभूति करते हैं। वे यह महसूस करते हैं कि सम्पूर्ण देश एक है, सारे देशवासी हमारे बन्धु-बान्धव हैं। इस स्थिति में सभी लोगों में अपनत्व की भावना पायी जाती है और उनके लिए सारा देश एक विराट पुरुष के रूप में प्रेरणा का स्रोत होता है।

राष्ट्रीय एकीकरण के आधार
(BASES OF NATIONAL INTEGRATION)

किसी भी राष्ट्र की एकता का निर्माण किसी एक तत्व के सम्मिलन से न होकर कई तत्वों के सम्मिलन से होता है। वेरनर और लेनडेकर (Werner and Landecker) ने सन् 1950-54 में अमरीकन जरनल ऑफ सोशियोलोजी में अपने एक लेख 'एकीकरण के प्रकार और उनका माप' में चार प्रकार के एकीकरण का उल्लेख किया है यथा—(i) सांस्कृतिक एकीकरण, (ii) आदर्शात्मक एकीकरण, (iii) संरचनात्मक एकीकरण, (iv) प्रकार्यात्मक एकीकरण। इन चारों प्रकार के एकीकरणों में चार भिन्न तत्वों को आधार माना गया है। जेम्स एस. कोलमैन एवं कार्ल जी. रोजबर्ग (James S Coleman and Carl G. Rosberg) ने भी राष्ट्रीय एकीकरण के दो प्रकारों का उल्लेख किया है—(i) राजनीतिक एकीकरण, (ii) भू-क्षेत्रीय एकीकरण। इन दोनों वर्गीकरणों का आधार क्रमशः राजनीतिक सत्ता और प्रशासन तथा भौगोलिक इकाइयां हैं।

भारत में अनेकता के बीच भी एकता के दर्शन होते हैं। भारत में राष्ट्रीय एकीकरण की अवस्था को निर्मित करने वाले प्रमुख तत्व एवं आधार इस प्रकार है :

(1) **भौगोलिक एकता**—भौगोलिक दृष्टि से सम्पूर्ण भारत को हम एक इकाई के रूप में देख सकते है। उत्तर में हिमालय एवं दक्षिण में हिन्द महासागर इसकी सीमा तय करते है। कुछ समय पूर्व तक बर्मा, लंका, पाकिस्तान और बंगलादेश भी भारत की भौगोलिक सीमा के अन्तर्गत ही आते थे। वर्तमान में कश्मीर से कन्याकुमारी तक और असम से गुजरात तक भारत राष्ट्र फैला हुआ है। उत्तर में बद्रीनाथ, दक्षिण में रामेश्वरम्, पूर्व में पुरी और पश्चिम मे द्वारिका भारत के धार्मिक तीर्थ स्थल हैं जो सभी देशवासियों को एकता के सूत्र मे पिरोते है और उनमे एक ही भौगोलिक क्षेत्र में निवास करने की भावना को जागृत करते हैं। देश की प्राकृतिक सीमाओं ने देशवासियों मे एकता और जन्म-भूमि के प्रति अगाध प्रेम पैदा किया है। "माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्या" (पृथ्वी मेरी मां है और मै इसका पुत्र हूं), "जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि" (जिस धरती पर जन्म लिया है वह स्वर्ग से भी प्यारी है) आदि धारणाओ ने देश के लोगो मे बलिदान और त्याग की भावना पैदा की है। भारत माता या हिन्दुस्तान जैसे शब्दों के उच्चारण मात्र से हमारे शरीर में एक स्पन्दन पैदा हो जाता है।

(2) **ऐतिहासिक एकता**—सम्पूर्ण भारत का एक ही इतिहास रहा है। इतिहासवेत्ताओं की मान्यता है कि अति प्राचीन काल में सारे भारत में द्रविडों का निवास था, फिर यहां

आर्यो ने आक्रमण किया और वे यहीं बस गए। धीरे-धीरे आर्य संस्कृति सम्पूर्ण भारत में फैल गयी। वैदिक युग से आज तक का भारतीय इतिहास इस बात का प्रमाण है कि यहां विभिन्न धर्म, मत, सम्प्रदाय, जातियां और प्रजातियां बनी रही हैं फिर भी देश मे समन्वय और एकता की भावना साधारतणः सदैव ही विद्यमान रही है।

(3) धार्मिक समन्वय—भारत विभिन्न जातियों-प्रजातियो की ही नही वरन् अनेक धर्मों की जन्म-भूमि भी रहा है। हिन्दू, जैन, बौद्ध एवं सिक्ख धर्मों का उदय भारत में ही हुआ है। प्रत्येक धर्म में भी कई मतमतान्तर है और उनके अनुयायी हजारों वर्षो से साथ-साथ निवास कर रहे है। ऊपरी तौर पर इन धर्मो मे हमें भिन्नता दिखायी देती है किन्तु सभी के मूल सिद्धान्तों में समानता है। सभी धर्म आध्यात्मवाद, ईश्वर, नैतिकता, दया, ईमानदारी, सत्य, अहिंसा के मौलिक सिद्धान्तों में विश्वास करते हैं। धार्मिक सहिष्णुता और समन्वय की भावना ने ही सभी लोगों में एक होने का भाव पैदा किया है। देश के चारो कोनो मे स्थित हमारे धार्मिक तीर्थ-स्थान भी धार्मिक एकता के प्रतीक है। गांव के कुएं पर स्नान करते समय एक व्यक्ति गंगा, गोमती, नर्वदा, कावेरी, सिन्धु, सरस्वती आदि सभी नदियों से उस जल मे प्रवेश करने की प्रार्थना करता है। इस प्रकार से देश के लोग विभिन्न भागो में स्थित नदियों, पहाड़ो, मन्दिरों और तीर्थ स्थानों के उपासक है जो इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि धर्म ने भारत को सदियो से एकता के सूत्र मे बांधने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। यहां इस्लाम एव ईसाई धर्म को मानने वाले लोग भी करोड़ों की संख्या मे है। लेकिन भारत एक धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र है जहा प्रत्येक को अपने धर्म पालन की पूर्ण स्वतन्त्रता है। किन्तु जब धार्मिक विद्वेष पनपता है तो वह एकता के मार्ग में बाधक बन जाता है। परन्तु यदि देशवासियों में अटूट राष्ट्र प्रेम कूटकूट कर भरा हो तो धार्मिक मतमतान्तर राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग मे बाधक सिद्ध नही होते।

(4) सामाजिक-सांस्कृतिक एकता—प्राचीन काल से ही भारत की सामाजिक संरचना एवं संस्कृति मे एकता के दर्शन होते हैं। संयुक्त परिवार प्रणाली, जाति व्यवस्था, वर्णाश्रम व्यवस्था, आदि सम्पूर्ण भारतीय समाज में प्रारम्भ से ही मौजूद रही है। भाषा, रहन-सहन और खान-पान में भेद होने के बावजूद भी कई सामाजिक-धार्मिक उत्सवो एवं त्यौहारों का प्रचलन सामान्य रूप से सारे देश में रहा है। होली, दिवाली, रक्षा-बन्धन, दशहरा, रामनवमी जैसे त्यौहार धूमधाम से सभी प्रान्तो मे मनाए जाते है। राम, कृष्ण, हनुमान, दुर्गा, सीता, लक्ष्मी, सरस्वती आदि का पूजन सभी लोग करते है। आध्यात्मवाद, पुनर्जन्म, जीवन-चक्र, स्वर्ग-नरक आदि से सम्बन्धित विचारों मे सभी भारतीयों का विश्वास रहा है। सदियों से पुरानी अनेक प्रथाएं, रीति-रिवाज, रूढ़ियां एवं परम्पराएं अब भी यहां प्रचलित हैं। सांस्कृतिक सहिष्णुता के कारण यहां अनेक बाह्य संस्कृतियां भारतीय संस्कृति में विलीन हो गयी। भारतीय संस्कृति का स्वरूप अनेक संस्कृतियों के सम्पर्क के बावजूद भी अक्षुण्ण बना रहा। वर्तमान समय में भी विभिन्न धर्म, जाति, क्षेत्र एवं भाषा समूहों के बावजूद भी यहां एकता के भाव विद्यमान हैं। शिक्षितों एवं अशिक्षितों, ग्रामीण एवं शहरी लोगों तथा प्रशासक एवं जनता में सामाजिक दृष्टि से निर्माणात्मक सम्बन्ध आज कायम है। प्रजातन्त्र ने देश में भाई-चारे और समानता की भावना के विकास में योग दिया है।

(5) राजनीतिक एकता—राजनीतिक एकता से तात्पर्य है—सम्पूर्ण देश का एक केन्द्रीय सत्ता के शासन में होना। अशोक एवं अकबर के समय को छोडकर सम्पूर्ण भारत कभी भी

एक ही प्रशासक के अधीन नही रहा। अग्रेजो के शासनकाल मे पहली बार सारे देश पर एक ही सरकार का शासन रहा। राजनीतिक सीमा के साथ-साथ इस समय भौगोलिक सीमा का भी निर्धारण हुआ। सुव्यवस्थित रूप से भारत में राजनीतिक एकता का उदय स्वतन्त्रता के सघर्ष के दौरान हुआ जो आज तक बना हुआ है।

(6) **मानसिक एकता**—मानसिक एकता का अर्थ है कि भारत के विभिन्न प्रान्तो मे रहने वाले, विभिन्न धर्मो को मानने वाले, अनेक संस्कृतियों एवं रीति-रिवाजों को मानते हुए सभी लोग मानसिक रूप से अपने आप को भारत राष्ट्र का एक अंग माने तथा व्यक्तिगत एवं क्षेत्रीय हितो के स्थान पर राष्ट्रीय हितो को महत्व दें। सभी देशवासी अपने को मानसिक एकता के सूत्र मे बधा हुआ महसूस करें और अवसर आने पर बड़े से बड़ा त्याग करने को तत्पर रहें। इस प्रकार मानसिक एकता में एक **राष्ट्रीय मन** (National Psyche) के निर्माण की स्थिति पायी जाती है। इस प्रकार की एकता हमें भारत-चीन तथा भारत-पाकिस्तान युद्ध के समय देखने को मिली जब सारा राष्ट्र छोटे-मोटे मतभेदों को भुलाकर एक विराट पुरुष के रूप में उठ खड़ा हुआ।

(7) **जातीय एकता**—हिन्दू जाति-व्यवस्था एक खण्डात्मक संरचना है जिसमे अनेक उपजातियां सम्मिलित है। प्रत्येक खण्ड की अपनी विशेषताएं, रीति-रिवाज और प्रथाए है। इन विभिन्नताओं के बावजूद सभी जातियों मे कई समानताएं भी हैं। विभिन्न जातियों के बीच पायी जाने वाली पारस्परिक अन्त:निर्भरता ने भी जातियों को एकता के सूत्र में पिरोये रखा। प्रारम्भ मे भारत विभिन्न धर्मो, प्रजातियों एवं संस्कृतियो का **द्रवण-पात्र** (Melting pot) रहा है। समय-समय पर अनेक बाह्य आक्रमणकारी लोग यहां आते रहे हैं किन्तु वे सभी भारतीय जाति-व्यवस्था मे घुल-मिल गए और उसी के अंग बन गए। जाति व्यवस्था ने सारे भारत की एकता उस समय भी बनाए रखी जबकि सम्पूर्ण यूरोप बर्बरता के दलदल में डूबा हुआ था।

(8) **आर्थिक हित**—राष्ट्रीय एकीकरण को जन्म देने मे समान आर्थिक हितो की पूर्ति भी महत्वपूर्ण है। सभी देशवासी अपनी आर्थिक समस्याओ को हल करने के लिए एक होकर प्रयास करते रहे है। पचवर्षीय योजनओं और विकास योजनाओं ने भारतीयो के मन मे एकता का भाव पैदा किया है।

(9) **सामान्य आधिपत्य और कष्ट**—सामान्य आधिपत्य और कष्ट भी एकता का निर्माण करते है। अंग्रेजों के शासन को समाप्त करने के समय तथा चीन और पाकिस्तान के युद्ध के दौरान सारे देश में एकता का भाव दिखायी पड़ता था।

(10) **राजनीतिक चेतना**—राजनीतिक चेतना भी राष्ट्रीय एकीकरण के सुदृढ निर्माण के लिए आवश्यक है। भूतकालीन राजनीतिक जीवन और भविष्य के राजनीतिक जीवन की आकांक्षाएं भी लोगो को राष्ट्रीय एकीकरण के सूत्र में पिरोने में सहायक हैं।

स्पष्ट है कि सम्पूर्ण भारत प्राचीन एकता के सूत्र में बंधा रहा है। किन्तु समय-समय पर इसकी राजनीतिक एकता बनती और बिगड़ती रही है, फिर भी एकता के अन्य तत्वों ने राष्ट्र के सभी लोगो को एकीकरण के सूत्र में संजोए रखा है।

भारत में राष्ट्रीयता का उदय
(RISE OF NATIONALISM IN INDIA)

भारत में राष्ट्र-निर्माण और राष्ट्रीय एकता के उदय को ऐतिहासिक दृष्टि से तीन भगो मे बांटा जा सकता है :

(1) अंग्रेजों के पूर्व का काल, (2) अंग्रेजो के समय मे, तथा

(3) स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद का काल।

(1) अंग्रेजो के पूर्व का काल—यह काल अति प्राचीन समय से लेकर अग्रेजों के आवागमन के पूर्व तक रहा है। इस काल में सारे देश मे आध्यात्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक एकता व्याप्त थी, किन्तु राजकीय और प्रशासकीय एकता नही थी। इस प्रकार की एकता को बनाए रखने में यहां की भौगोलिक परिस्थितियों एवं सामाजिक-सांस्कृतिक तत्वो का योग रहा है। हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक फैले इस विशाल उपमहाद्वीप में अनेक भौगोलिक विषमताएं तथा जलवायु सम्बन्धी भिन्नताएं है। घने जंगल, रेगिस्तान, समुद्रतटीय भाग, कलकल बहती नदियां एवं विभिन्न प्रकार की वनस्पति ने भारतीयो के जीवन, सामाजिक संगठन एवं इतिहास को प्रभावित किया है। अनेक मानव-शास्त्रीय और पुरातत्वीय खोजो ने इस बात को स्पष्ट किया है कि प्राचीन समय से ही भारत एक सामाजिक-सांस्कृतिक इकाई रहा है। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की संस्कृति वैदिक युग से भी प्राचीन है। आधुनिक भारतीय समाज के अवशेष पाषाण युग और पूर्व-पाषाण युग में भी मिलते हैं जो यह बताते है कि सम्पूर्ण भारत का एक सामान्य इतिहास रहा है। प्राचीन काल से ही यहां अनेक धर्मों, प्रजातियों और संस्कृतियो के लोग आते रहे किन्तु उनका कोई पृथक् अस्तित्व नहीं बना रहा वरन् वे भारतीय संस्कृति एवं समाज-व्यवस्था मे विलीन हो गए। आर्यों के आगमन से ही यहां की समाज-व्यवस्था में जाति जैसी संस्था का उदय हुआ जो अब तक चली आ रही है। इस व्यवस्था ने समाज के विभिन्न उपखण्डों को एकता में बांधे रखा है। जाति पंचायत, ग्राम पंचायत, संयुक्त परिवार प्रणाली, आदि सामाजिक संगठनों का प्रचलन भी प्राचीन काल से ही रहा है। चन्द्रगुप्त मौर्य और उसके पौत्र अशोक के समय में भी सम्पूर्ण भारत एक था। तक्षशिला और नालन्दा विश्वविद्यालयों में भारत के विभिन्न भागों से छात्र पढ़ने आते थे।

विदेशी पर्यटक **मैगस्थनीज** ने अपने यात्रा वर्णन में भारतीय संस्कृति की एकता का उल्लेख किया है। महाभारत काल में भी राज-घराने के लोगों ने भारत के विभिन्न भागों में विवाह द्वारा अपने सम्बन्ध स्थापित किए थे। धृतराष्ट्र की पत्नी गान्धारी गान्धार देश (वर्तमान अफगानिस्तान) की थी। इस प्रकार से सौवीरा (सिन्ध), कामरूप (असम), द्रविड़ देश (मदुराई), विदर्भ (बरार) आदि स्थानों से भी यहां के शाही घरानों के सम्बन्ध थे। स्वयं श्रीराम ने जो अयोध्यावासी थे, जनकपुरी (नेपाल) में विवाह किया था। दक्षिण में पांड्या वंश के शासक उत्तर के पाण्डवों के ही वंशज थे। ये सभी उदाहरण इस बात के द्योतक हैं कि सम्पूर्ण देश में राजघराने के लोग एक ही थे। रामायण में उत्तर और दक्षिण की संस्कृति का उल्लेख है। राम उत्तर की संस्कृति और रावण दक्षिण की संस्कृति से सम्बन्धित रहे हैं। रामायण, महाभारत, विभिन्न धर्मग्रन्थ तथा कालिदास आदि अनेक विद्वानों की रचनाओं में सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति के दर्शन होते हैं। शंकराचार्य ने जो कि मालाबार के निवासी थे, संस्कृत में वेदान्त की रचना की। उनके दर्शन का आज भी लोगों पर काफी प्रभाव है। तमिल के वैष्णव सन्तो के आधार

पर रामानुज ने वैष्णव धर्म में सुधार प्रस्तुत किए। इस प्रकार प्राचीन समय से ही सम्पूर्ण देश सामाजिक-सां कृतिक एकता के सूत्र में बंधा रहा है।

(2) अं जों के समय में पहली बार सामाजिक-सांस्कृतिक एकता के साथ-साथ भारत में राजनीतिक और प्रशासकीय एकता स्थापित हुई। अंग्रेजों ने सम्पूर्ण भारत पर एकछत्र राज किया और देश के भीतर अनेक छोटे-छोटे सामन्तों और शासकों को अपने राजनीतिक आधिपत्य मे रखा। वर्तमान मे जिस राष्ट्रीयता की धारणा का उदय पश्चिमी देशों मे हुआ है उसमें एक शासन के अन्तर्गत शासित रहने को भी महत्वपूर्ण माना गया है। अंग्रेजो के शासनकाल मे ही भारत की भौगोलिक सीमा के साथ-साथ राजनीतिक सीमा का भी निर्धारण हुआ। अंग्रेजों के शासन ने देश में राष्ट्रीय जागरण में योग दिया। कांग्रेस ने देश के विभिन्न भागों में निवास करने वाले लोगो को अपने धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, भाषायी और क्षेत्रीय मतभेदों को भुलाकर आजादी के संघर्ष मे भाग लेने की प्रार्थना की। इस आह्वान को देशवासियों ने स्वीकार किया और सभी नर-नारियों ने कन्धे से कन्धा मिलाकर विदेशी शासन को समाप्त करने में सहयोग दिया। आजादी के संघर्ष के दौरान सारे राष्ट्र में एकता की लहर दौड़ पड़ी।

किन्तु इस चेतना और एकता को भी अंग्रेजों ने गहरी चोट पहुंचायी तथा उन्होंने विभाजन की नीति अपनायी और भारतीय समाज के विभिन्न अंगों में परस्पर तनाव और संघर्ष की स्थिति उत्पन्न कर दी जिसके परिणामस्वरूप देश का विभाजन हुआ।

(3) **स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद**—सन् 1947 में देश स्वतन्त्र हुआ और पाकिस्तान को छोड़कर, शेष भाग को धर्मनिरपेक्ष भारत राष्ट्र के नाम से जाना जाने लगा। सरदार पटेल के सद्प्रयत्नो से कई रियासतों को भारतीय संघ में मिला दिया गया और इससे राजनीतिक एकीकरण का कार्य पूरा हुआ, किन्तु अब भी भावात्मक एकीकरण की आवश्यकता बनी हुई थी। इस समय एक देश, एक भाषा, एक संस्कृति और एक शासन की बात की गयी। सम्पूर्ण देश के लिए एक सविधान बनाया गया और एक सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गयी। अखिल भारतीय सेवाएं जैसे आई.ए.एस., आई.पी.एस., आई.एफ. एस. आदि का निर्माण किया गया। सारे राष्ट्र के लिए एक झण्डा (तिरंगा), एक गान (जन-गण-मन), एक चिह्न (त्रिमूर्ति शेर) तथा एक गीत (वन्देमातरम्) निर्धारित किया गया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी राष्ट्रीय एकता निर्बाध रूप से अधिक समय तक नही बनी रह सकी। कभी भाषा के नाम पर, कभी क्षेत्र के नाम पर, तो कभी धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर तनाव और संघर्ष हुए जिन्होने सम्पूर्ण देश को एक बार फिर झकझोर दिया। केन्द्रीय एवं राज्य सरकारो में और विभिन्न राज्यो मे परस्पर नदी पानी वितरण, सीमा-निर्धारण एवं विभिन्न योजनाओं को लेकर विवाद हुए, यहां तक कि चेन्नई जैसे राज्य में भारतीय संघ से पृथक् होने और अलग राज्य बनाने तक की भी मांग उठी। पंजाब में कुछ उग्रवादियों ने 'खालिस्तान' नामक पृथक् राज्य बनाने की मांग की है। इस प्रकार इस काल में सम्पूर्ण राष्ट्र को एकता मे बांधे रखने की आवश्यकता बनी रही। इसके लिए समय-समय पर हमारे नेताओ ने प्रयास भी किए। सन् 1955 में बंगलौर में स्वर्गीय प्रधानमन्त्री नेहरू ने राष्ट्रीय एकीकरण पर बल देते हुए कहा था, "हम भारतीय गणतन्त्र के नागरिक भूमि पर पांवो को दृढ़ता से रोपे हुए आकाश की ओर निहारते हुए, कमर सीधी करके खड़े हों और समन्वय तथा एकीकरण स्थापित करें। कुछ सीमा तक राजनीतिक एकीकरण तो हो गया है, लेकिन मैं जिस एकीकरण को चाहता हूं,

वह बहुत गहन है—वह है भारतीय लोगों का भावात्मक एकीकरण—जिससे कि हम एकता मे बँधे और एक राष्ट्रीय इकाई का निर्माण करें, साथ ही हम सभी आश्चर्यजनक विभिन्नताओ को बनाये रखें।" इस प्रकार नेहरूजी ने विभिन्नता में एकता (Unity in diversity) की बात कही थी। समय-समय पर अनेक सम्मेलनों तथा कान्फ्रेंसों आदि का आयोजन भी किया जाता रहा है जिनमें राष्ट्रीय एकता हेतु अनेक सुझाव दिये गये फिर भी आज देश में भावात्मक एकता एक कल्पना मात्र बनकर रह गयी है।

भारत में राष्ट्रीय एकीकरण की समस्याएं
(PROBLEMS OF NATIONAL INTEGRATION IN INDIA)

साम्प्रदायिकता, क्षेत्रवाद, भाषावाद एवं जातिवाद ने राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग मे एक बहुत बड़ी बाधा उत्पन्न की है। समय-समय पर भारत में आक्रमणकारी के रूप में विभिन्न धर्मो, प्रजातियो एवं संस्कृतियों के लोग आते रहे हैं। कई सांस्कृतिक एवं धार्मिक समूहो का तो भारतीय समाज से सामंजस्य हो गया, कई उसमें विलीन हो गये, किन्तु कइयों ने अपना पृथक् अस्तित्व बनाये रखा और समय-समय पर धार्मिक एवं सांस्कृतिक तनावों को जन्म दिया। भारत में साम्प्रदायिक तनावों एवं दंगों में ये तनाव गम्भीर और महत्वपूर्ण समस्याएं पैदा करते रहे जो हिन्दुओं एवं मुसलमानों के बीच हुए। हिन्दू मुसलमानो को और मुसलमान हिन्दुओं को शंका की दृष्टि से देखते रहे, दोनों एक-दूसरे के खून के प्यासे रहे, दोनो ने एक-दूसरे से रक्त-रंजित होलियां खेलीं। साम्प्रदायिकता के कारण ही 1947 में देश के टुकडे हुए और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी अनेक स्थानों पर उपद्रव एवं दंगे हुए। अलीगढ, रांची, मेरठ, कलकत्ता, औरंगाबाद, अहमदाबाद, मुरादाबाद, बिहारशरीफ, जलगांव एवं जमशेदपुर के दंगो की रक्त-रंजित यादें अभी ताजा ही हैं। पण्डित नेहरू साम्प्रदायिकता को भारत का शत्रु नम्बर एक मानते थे। फरवरी 1948 में उन्होंने गांधीजी की हत्या पर अपने रेडियो प्रसारण मे कहा था, "हम सबको साम्प्रदायिकता को नष्ट करने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगानी चाहिए जिसने हमारे युग के महानतम व्यक्ति की हत्या कर दी है।"[1] 27 फरवरी, 1957 को अपने एक भाषण मे उन्होने कहा, "साम्प्रदायिकता के मुद्दे पर कोई समझौता नही हो सकता, फिर वह चाहे हिन्दू साम्प्रदायिकता हो, चाहे मुस्लिम साम्प्रदायिकता क्योंकि वह भारतीय राष्ट्रत्व और भारतीय राष्ट्रीयता के विरुद्ध एक भारी चुनौती है।"[2]

साम्प्रदायिकता के समान ही भारत में क्षेत्रवाद, जातिवाद एवं भाषावाद की समस्याएं भी मुंह-बाये खड़ी हैं। ये चारों समस्याएं एक-दसरे से सम्बन्धित है, एक-दूसरे को उत्पन्न करती हैं। राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में भी ये सबसे बड़ी बाधाएं हैं। अतः हम यहां इन चारो समस्याओं का क्रमशः विस्तार से उल्लेख करेंगे।

(1) साम्प्रदायिकता
(COMMUNALISM)

राष्ट्रीय एकीकरण में साम्प्रदायिकता का बाधक तत्व के रूप में उल्लेख करने से पूर्व साम्प्रदायिकता के अर्थ को जान लेना आवश्यक है।

1 N. L. Gupta (ed.) *Nehru on Communalism* December 1965, p. 206.
2 *Ibid.*, p. 253.

रेण्डम हाउस डिक्शनरी के अनुसार, "साम्प्रदायिकता अपने ही जातीय समूह के प्रति न कि समग्र समाज के प्रति तीव्र निष्ठा की भावना है।"[1]

श्रीकृष्णदत्त भट्ट के अनुसार सम्प्रदायवाद का अर्थ है, मेरा सम्प्रदाय, मेरा पन्थ, मेरा मत ही सबसे अच्छा है। उसी का महत्व सर्वोपरि होना चाहिए। मेरे सम्प्रदाय की ही तूती बोलनी चाहिए। उसी की सत्ता मानी जानी चाहिए। अन्य सम्प्रदाय हेय है। उन्हें या तो पूर्णतः समाप्त कर दिया जाना चाहिए या यदि वे रहें भी तो मेरे मातहत होकर रहे। मेरे आदेशो का सतत पालन करे। मेरी मर्जी पर आश्रित रहें।" वे पुनः लिखते है, "अपने धार्मिक सम्प्रदाय से भिन्न अन्य सम्प्रदाय अथवा सम्प्रदायो के प्रति उदासीनता, उपेक्षा, दयादृष्टि, घृणा, विरोध और आक्रमण की भावना 'साम्प्रदायिकता' है, जिसका आधार वह वास्तविकता या काल्पनिक भय या आशंका है कि उक्त सम्प्रदाय हमारे अपने सम्प्रदाय और संस्कृति को नष्ट कर देने या हमें जान-माल की क्षति पहुंचाने के लिए कटिबद्ध है।"[2]

स्मिथ (Smith) के अनुसार, "एक साम्प्रदायिक व्यक्ति अथवा समूह वह है जो अपने धार्मिक या भाषा-भाषी समूह को एक ऐसी पृथक् राजनीतिक तथा सामाजिक इकाई के रूप में देखता है जिसके हित अन्य समूहों से पृथक् होते है और जो अक्सर उनके विरोधी भी हो सकते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से **साम्प्रदायिकता की निम्नांकित विशेषताएं प्रकट होती हैं :**

(1) **साम्प्रदायिकता का सम्बन्ध धार्मिक समूहों से है** अर्थात् एक धर्म के व्यक्ति अपने को एक सम्प्रदाय से सम्बन्धित मानते हैं, किन्तु जहां एक धर्म में ही विभिन्न मत-मतान्तर है वहां साम्प्रदायिकता का सम्बन्ध एक धर्म मे ही विभिन्न छोटे-छोटे सम्प्रदायों से होता है; जैसे इस्लाम धर्म में ही शिया और सुन्नी तथा हिन्दुओं मे शैव, वैष्णव, कबीर, रैदास, आदि अलग-अलग धार्मिक सम्प्रदाय है।

(2) साम्प्रदायिकता में यह भाव विद्यमान होते है कि **अपना ही धर्म श्रेष्ठ है, अपनी ही भाषा एवं संस्कृति श्रेष्ठ है।**

(3) साम्प्रदायिकता में अन्य धर्मो, भाषाओं एवं संस्कृतियों के प्रति घृणा, तिरस्कार एवं उपेक्षा के भाव पाये जाते है। ये **विरोधी भाव** ही साम्प्रदायिक तनाव एवं संघर्ष पैदा करते हैं।

(4) *साम्प्रदायिकता पारस्परिक स्नेह एवं सहयोग के स्थान पर* **सामाजिक एवं राजनीतिक अलगाव** पैदा करती है।

(5) साम्प्रदायिकता का आधार लोगों में उत्पन्न यह वास्तविकता या काल्पनिक भय है कि अन्य धार्मिक समूह उनके सम्प्रदाय और संस्कृति को नष्ट कर देंगे और जान-माल की क्षति पहुंचायेगे।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि **साम्प्रदायिकता वह संकीर्ण मनोवृत्ति है जो एक धर्म अथवा सम्प्रदाय के लोगों में अपने आर्थिक एवं राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए पायी जाती है और उसके परिणामस्वरूप विभिन्न धार्मिक समूहों में तनाव एवं संघर्ष पैदा होते हैं।**

1 *The Random House Dictionary of English Language*, 1867, p 297.

2 श्री कृष्णदत्त भट्ट, सामाजिक विघटन और भारत, पृ. 478-79।

साम्प्रदायिक तनावों एवं उपद्रवों के कारण (Causes of Communal Tensions and Riots)

साम्प्रदायिक उपद्रवो के प्रमुख कारण इस प्रकार है .

(1) गौवध—जब भी किसी गाय की हत्या की जाती है तो हिन्दुओ मे मुसलमानो के प्रति विद्रोह भड़क उठता है और दंगे शुरू हो जाते है क्योंकि हिन्दू गाय को आदर एवं सम्मान की दृष्टि से देखते हैं, उसके साथ उनका भावात्मक लगाव है और वे उसे गौ-माता के रूप मे पूजते हैं।

(2) मस्जिद के सामने गाने एवं बजाने के कारण भी साम्प्रदायिक दगे हुए है।

(3) किसी हिन्दू द्वारा होली के अवसर पर मुसलमान पर रग छिड़क देने पर भी साम्प्रदायिक दंगे हुए है।

(4) मुसलमानों द्वारा मन्दिरो में तोड़-फोड करने या मूर्ति-भजन करने अथवा हिन्दुओं द्वारा मस्जिदों में तोड-फोड़ करने के कारण भी उपद्रव हुए है।

(5) हिन्दुओ के जुलूस पर पथराव करने अथवा मुसलमानो के धार्मिक जुलूस या मोहर्रम के समय पथराव की घटना के कारण भी साम्प्रदायिक तनाव भडक उठते है।

(6) साम्प्रदायिक तनाव का एक कारण मुसलमानो की देशभक्ति मे अविश्वास किया जाना है।

(7) हिन्दू व मुसलमानो का एक-दूसरे के प्रति सन्देह, भय एवं पूर्वाग्रह भी तनाव पैदा करते रहे है।

(8) दोनो में आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा एवं आर्थिक हितो की सुरक्षा को लेकर भी उपद्रव हुए हैं।

(9) कई साम्प्रदायिक उपद्रव तो केवल झूठी अफवाहे फैलाने के कारण हुए है।

(10) कुछ अराजक तत्वों ने भी इस प्रकार के दंगे भडकाये है क्योंकि दगों के समय उन्हें लूट-पाट करने एवं अपनी वासनाओं को तृप्त करने का अवसर मिलता है।

(11) संकीर्ण राजनीति, जातिवाद, भाषावाद, भाई-भतीजावाद एवं पक्षपात, आदि के कारण भी कई साम्प्रदायिक उपद्रव हुए है।

राउरकेला, काशी, अयोध्या एवं अन्य स्थानो पर हुए दंगों का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि इन उपद्रवो का कारण प्रतिरोध, अफवाह, प्रशासन की ढिलाई, साम्प्रदायिक तनाव, उत्तेजनापूर्ण वातावरण, राजनीतिक दलों एवं समाचार-पत्रों द्वारा पैदा की गयी उत्तेजना, आदि है।

साम्प्रदायिकता (साम्प्रदायिक तनाव) के लिए उत्तरदायी कारक [Factors Rsponsible for Communalism (Communal Tensions)]

भारत में साम्प्रदायिकता के उदय के लिए निम्नांकित कारक उत्तरदायी हैं :

(1) **ऐतिहासिक कारक (Historical Factors)**—यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि मुसलमान बाहर से आये और उन्होने भारत में अपने धर्म प्रचार के लिए तलवार एवं जोर-जबरदस्ती का सहारा लिया। औरगंजेव तथा कई अन्य मुस्लिम शासकों ने लोगों को जबरन मुसलमान बनाया। इस कारण से हिन्दुओं के मन में उनके प्रति घृणा पैदा हुई। इतिहास इस बात का साक्षी है कि हिन्दू और मुसलमान लम्बे समय से संघर्ष करते रहे है

और परस्पर अनेक पूर्वाग्रहो, भय और आशंकाओं से ग्रस्त रहे है। मुस्लिम लीग की मांग ने भारत के दो टुकडे किये, भारत का खण्डित होना आज भी कई लोगों को पसन्द नहीं आता। विभाजन के समय दोनो ओर से होने वाले दंगो से हुई हानियों को कई लोग आज भी नही भुला पाये है। कुछ राजनीतिक दल अपने स्वार्थो की पूर्ति के लिए साम्प्रदायिकता का सहारा लेते है और समय समय पर हिन्दू एवं मुसलमानों को लडाते रहते है।

(2) मनोवैज्ञानिक कारक (Psychological Factors)—साम्प्रदायिकता का एक कारक मनोवैज्ञानिक भी है। हिन्दू एवं मुसलमान दोनों मे ही एक-दूसरे के प्रति घृणा, द्वेष, प्रतिकार, विरोध एवं पृथक्करण के मनोभाव पाये जाते है। इस प्रकार की मनोवृत्ति का कारण प्राचीन समय से चली आ रही भ्रान्तियां एवं पूर्वाग्रह है। हिन्दू मुसलमानों की राष्ट्रीय वफादारी में शंका व्यक्त करते है, यद्यपि हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के युद्धो के दौरान कई देशभक्त मुसलमानों ने भारत भूमि के लिए प्राण तक न्यौछावर किये हैं। पारस्परिक अविश्वास ने भी साम्प्रदायिकता को वढ़ावा दिया है। मुसलमान सदैव यह सोचते रहे है कि वे अल्पसंख्यक है, अतः बहुसख्यक समाज उनका आर्थिक-सामाजिक शोषण कर रहा है और उन्हे अपने विकास के उचित अवसर प्राप्त नही होने दे रहा है।

(3) सांस्कृतिक भिन्नता (Cultural Differences)—साम्प्रदायिकता को जन्म देने में एक महत्वपूर्ण कारक हिन्दू एवं मुसलमानों की सांस्कृतिक भिन्नता है। दोनो में रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, पहनावे, धर्म एवं विचारधारा में बहुत अन्तर है। मुसलमान मूर्ति पूजक नही है, हिन्दू है, मुसलमान एकेश्वरवादी है, हिन्दू बहुदेववाद में विश्वास करते है, हिन्दू मूलत' एक-विवाही है, तलाक एव विधवा विवाह उनमे नहीं होता, जबकि मुसलमान बहुविवाही हैं, तलाक एवं पुनर्विवाह का उनमे,प्रचलन है। यही नही उनके राष्ट्रीय वीरों, देवी देवताओ में भी भिन्नता है। हिन्दू चोटी रखता है, मुसलमान नहीं, हिन्दू धोती पहनते है, मुसलमान लुंगी, हाथ धोते समय हिन्दू पानी को कोहनी से कलाई की तरफ गिराते हैं जबकि मुसलमान कलाई से कोहनी की तरफ। हिन्दू पूर्व की तरफ मुंह करके पूजा करता है तो मुसलमान पश्चिम की तरफ़ मुंह करके। इस प्रकार दैनिक जीवन की छोटी-छोटी क्रियाओ से लेकर जीवनपथ के संस्कारो तक में अन्तर पाया जाता है। यह सांस्कृतिक भेद मनमुटाव एवं तनाव पैदा करता है और दोनों सम्प्रदायो में अलगाव की स्थिति बनी रहती है।

(4) भौगोलिक कारक (Geographical Factors)—भौगोलिक कारकों ने भी साम्प्रदायिकता को वढावा दिया। भारत मे अधिकांशतः निवास का प्रतिमान यह है कि एक ही धर्म, जाति एवं भाषा-भाषी समूह एक ही भौगोलिक क्षेत्र में निवास करते हैं। इसके परिणामस्वरूप उनके 'हम समूह' (We group) में तो सहयोग एवं आत्मीयता की भावना पायी जाती है, किन्तु वाह्य समूहों (Out group) के प्रति घृणा, द्वेष एवं विरोध के भाव पाये जाते हैं जो कि साम्प्रदायिक तनावो को जन्म देते हैं।

(5) धार्मिक असहिष्णुता (Religious Intolerance)—विश्व के सभी धर्मों के मूल सिद्धान्तों में अनेक समानताएं हैं, किन्तु छोटे-छोटे विभेद भी हैं। इन विभेदो के कारण ही एक धर्म को मानने वाले लोग अपने धर्म को दूसरों से श्रेठ समझते हैं। धर्मगुरु, पादरी, पैगम्बर एवं मौलवी अपने अनुयायियों को धार्मिक कट्टरता की शिक्षा देते रहे हैं, दूसरे धर्म के लोगो को मारना, अपने धर्म का प्रचार करना ये पुण्य मानते हैं। हिन्दू मुसलमानो को म्लेच्छ एवं

मुसलमान हिन्दुओं को काफिर कहकर पुकारते हैं। धार्मिक अन्ध-विश्वास का पालन करने एवं धर्म-गुरुओं द्वारा गलत दिशा-निर्देश करने के कारण भी साम्प्रदायिक तनावो मे वृद्धि हुई है।

(6) राजनीतिक स्वार्थ (Political Interest)—आजादी के बाद भारत ने प्रजातन्त्रीय शासन प्रणाली अपनायी। प्रजातन्त्र मे बहुमत के आधार पर सरकार का चुनाव जनता द्वारा किया जाता है। चुनावों मे विजय प्राप्त करने एवं सत्ता हथियाने के लिए कई राजनीतिक दलो का गठन धार्मिक आधार पर किया गया। ये राजनीतिक दल पंचायत से लेकर संसद तक के चुनावों में अपने उम्मीदवार खड़े करते है और साम्प्रदायिकता के आधार पर वोट मांगते है। उम्मीदवार का चयन करते समय भी इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि जहां जिस सम्प्रदाय की बहुलता है वहां से उसी सम्प्रदाय का व्यक्ति चुनाव लड़े। मत प्राप्त करने एवं राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ये नेता साम्प्रदायिकता की आग भडकाते है। उनका मूल उद्देश्य अपने सम्प्रदाय के लोगों की भलाई नहीं वरन् अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षा की पूर्ति है।

(7) साम्प्रदायिक संगठन (Communal Organizations)—जैन, सिक्ख, हिन्दू और मुसलमानों मे कई साम्प्रदायिक संगठन पाये जाते हैं। ये साम्प्रदायिक संगठन अपने-अपने मतावलम्बियों को संगठित करते हैं और उन्हें दूसरों के प्रति भड़काते हैं। वे यह प्रचार करते हैं कि यदि वे संगठित नहीं रहे तो उनका अस्तित्व खतरे में है। यही नही, वे अपनी रक्षा के लिए हथियार चलाने का प्रशिक्षण एवं हथियारों का वितरण भी करते है। जब एक स्थान पर किसी सम्प्रदाय के प्रति अन्याय किया जाता है तो दूसरे स्थानों पर भी उपद्रव की आग भड़क उठती है और वहां पर हुई हानि का बदला दूसरे स्थानों पर लिया जाता है।

(8) असामाजिक तत्व एवं निहित स्वार्थ (Anti-social Elements and Vested Interests)—साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने में समाज-विरोधी तत्वो एवं निहित स्वार्थ वालों का भी महत्वपूर्ण हाथ होता है। समाज में कुछ लोग ऐसे होते हैं जो तनाव एवं संघर्ष की स्थिति पैदा करते रहते है जिससे उन्हें लूटपाट करने एवं यौन-व्यभिचार करने का अवसर प्राप्त हो तथा वे अपने व्यक्तिगत झगड़ो का बदला ले सके। ऐसे लोग होली, दिवाली, रामनवमी, मुहर्रम, ईद, आदि के अवसर पर जुलूस, आदि पर पत्थर फेंकने, रंग छिडकने, आग लगा देने, आदि का कार्य करते हैं जिससे कि उपद्रव पैदा हो। इन उपद्रवों के कारण लोग स्थान छोड़कर चले जाते है, उन स्थानो पर मकान बनाने अथवा कारखाना लगाने के लिए असामाजिक तत्वों द्वारा कब्जा कर लिया जाता है। अक्सर यह देखा गया है कि उपद्रव पैदा करने वाले व्यक्ति तनाव पैदा करके दूर भाग जाते हैं और उनकी कीमत बेचारे गरीब एवं अज्ञानी लोगों को चुकानी पडती है।

(9) धर्म-निरपेक्षता का दुरुपयोग (Misuse of Secularism)—भारतीय संविधान भारत को एक धर्म-निरपेक्ष राज्य घोषित करता है। इसका अर्थ है भारत मे प्रत्येक धर्म एवं सम्प्रदाय को फलने, फूलने एवं विकास के समान अवसर उपलब्ध होगे, कोई भी धर्म 'राज धर्म' के रूप में स्वीकार नहीं किया गया है। राज्य के लिए सभी धर्म समान हैं। हिन्दू, मुसलमान एवं ईसाइयों के लिए अलग-अलग प्रकार के सामाजिक विधानों की व्यवस्था की गयी है। उनके परिवार, विवाह एवं उत्तराधिकार के नियमो में भेद पाया जाता है। यद्यपि इस प्रकार के भेद का उद्देश्य सभी सम्प्रदायों को स्वतन्त्र विकास के एवं बने रहने के अवसर प्रदान करना है, किन्तु सम्पूर्ण भारत के लिए समान विधान के अभाव में लोगों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक

दूरी बनी रहती है और वे परस्पर एक नहीं हो पाते। धर्म-निरपेक्षता का अनुचित लाभ उठाकर कई बार एक धार्मिक समूह ने दूसरे पर अपने आपको थोपने की कोशिश की जिसके परिणामस्वरूप तनाव एवं संघर्ष पैदा हुए।

उपर्युक्त सभी कारक इस बात को स्पष्ट करते हैं कि भारत में साम्प्रदायिकता अनेक सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक एव राजनीतिक कारकों का मिश्रित फल है, आज इसकी जड़ें गहराई में जम चुकी हैं जिसे उखाड़ फेंकने के लिए दृढ़ संकल्प, सच्चाई एवं ईमानदारी पूर्वक प्रयासो की आवश्यकता है।

साम्प्रदायिकता एवं राष्ट्रीय एकीकरण (Communalism and National Integration)

एक लम्बे समय से भारत में साम्प्रदायिकता फलती-फूलती रही है। इसके कारण अनेक बार सम्पूर्ण राष्ट्र को कई प्रकार की हानियां उठानी पडी हैं। यह राष्ट्रीय एकीकरण में बाधा उत्पन्न करती रही है। साम्प्रदायिकता ने राष्ट्रीय एकीकरण में निम्नांकित प्रकार से बाधा उत्पन्न की है :

(1) देशव्यापी दुष्प्रभाव (Nation-wide Impact)—साम्प्रदायिकता सदैव ही राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बाधक रही है। विभिन्न सम्प्रदाय के लोगों में अलगाव के भाव पाये जाते है, अत. वे कभी भी सारे देश को एक बनाने एवं राष्ट्रीय उत्थान की बात नही सोचते। साम्प्रदायिकता ने भावात्मक एकता के लिए भी खतरा उत्पन्न किया है और हिन्दू व मुसलमानो मे परस्पर मनमुटाव एवं विरोधी भाव पैदा किये हैं। जब-जब भी साम्प्रदायिक नेताओं ने विषवमन किया है उसकी लहरे देश के कोने-कोने तक पहुंची हैं, लोगों में तनाव एवं संघर्ष पैदा हुए है, विभाजन, घृणा एवं अविश्वास की भावनाएं तीव्र हुई है और विभिन्न सम्प्रदाय के लोगों मे परस्पर सहयोग एवं सहिष्णुता पैदा नही हो सकी और सम्पूर्ण देश एक राष्ट्रीय चरित्र के रूप में नहीं उभर सका तथा राष्ट्रीय जीवन में असुरक्षा उत्पन्न हुई।

(2) तनाव एवं संघर्ष (Tension and Conflict)—साम्प्रदायिकता के कारण किसी भी सम्प्रदाय का विकास तो नही हुआ, किन्तु उसके कारण विभिन्न सम्प्रदायो के बीच अविश्वास, घृणा, पूर्वाग्रह एवं संघर्ष अवश्य पैदा हुए जिसके परिणामस्वरूप देश में आन्तरिक कलह हुए, प्रशासन एवं न्याय व्यवस्था के लिए एक चुनौती पैदा हुई, लोगों ने एक-दूसरे के प्रति झूठे एवं घृणित प्रचार किये, जिससे उत्तेजना एवं हिंसा की आग भडकी और कई लोगों को आत्माहुति देनी पड़ी।

(3) जन-धन की हानि (Loss of Life and Property)—साम्प्रदायिक दंगों एव उपद्रवों के कारण हजारो लोगों की जानें गयी हैं, अनेक के साथ मारपीट एवं अनैतिक व्यवहार हुए हैं। मकान, दुकानें, सरकारी कार्यालय, स्कूल, भवन, रेल; डाकतार कार्यालयो में आग लगा दी जाती है जिसके कारण अरबों रुपये की सम्पत्ति नष्ट हो जाती है और आर्थिक विकास अवरुद्ध हो जाता है।

(4) राजनीतिक दुष्परिणाम (Political Evil Consequences)—साम्प्रदायिकता के कारण देश में राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न होती है, लोगो का प्रशासन एवं सरकार के प्रति विश्वास उठ जाता है। राजनीतिक दलों को सरकार की अलोचना करने का मौका मिलता है, वे अपनी आलोचनाओ के द्वारा और अधिक तनावों को जन्म देते हैं, शान्ति स्थापित करने के लिए न्याय एवं व्यवस्था की समस्या पैदा हो जाती है, लोगों का जीवन खतरे में

पड जाता है और उनमें असुरक्षा के भाव पैदा होते है। इससे राष्ट्रीय एकता मे बाधा उत्पन्न होती है।

(5) आर्थिक विकास मे बाधक (Hindrance in Economic Development)—साम्प्रदायिकता के कारण समाज की आर्थिक प्रगति अवरुद्ध हुई है। उपद्रवो के समय कई कारखानो एवं उद्योगों मे तोड-फोड़ एवं आगजनी की घटनाओं से निर्माण कार्य बन्द हो जाता है। ऐसे क्षेत्रों में पूंजीपति पूंजी नहीं लगाना चाहते जहा साम्प्रदायिक तनाव पैदा होते रहते हैं। इससे उस क्षेत्र का विकास रुक जाता है एवं नवीन उद्योगो की स्थापना न होने के कारण बेकारी एवं निर्धनता की समस्या पैदा होती है, राष्ट्रीय उत्पादन घटता है और लाभांश भी कम हो जाता है। इससे राष्ट्रीय एकीकरण मे बाधा उत्पन्न होती है।

(6) असामाजिक तत्वों मे वृद्धि (Increase in Anti-social Elements)—साम्प्रदायिक संघर्षो एवं उपद्रवों के समय असामाजिक तत्वों को खुलकर खेलने का मौका मिलता है, प्रशासन की ढिलाई का वे पूरा-पूरा लाभ उठाते हैं और वे इस प्रकार के अवसर की ताक में रहते हैं जब साम्प्रदायिकता की आग भडके जिससे कि वे लूट-पाट कर सके, पैसा एकत्रित कर सकें और जिन लोगों से उनकी व्यक्तिगत दुश्मनी है उनसे बदला ले सकें। जब सरकार द्वारा इस प्रकार के तत्वों पर पूर्ण नियन्त्रण नही किया जाता तो ये उपद्रवों के बाद भी अपराधी एवं असामाजिक कार्यो में संलग्न रहते हैं।

(7) सामाजिक-सांस्कृतिक विघटन (Socio-cultural Disorganization)—साम्प्रदायिकता के कारण सामाजिक एवं सांस्कृतिक विघटन पैदा होता है। विभिन्न धर्मो, सम्प्रदायों एवं संस्कृतियों के लोग परस्पर मिल नहीं पाते, अतः एकीकरण की प्रक्रिया अवरुद्ध हो जाती है और पृथकृता के भाव बने रहते हैं। जब-जब भी साम्प्रदायिक संघर्ष होते हैं भूतकाल मे सामाजिक एवं सांस्कृतिक एकता के लिए किये गये प्रयास मिट्टी में मिल जाते हैं और समाज में पुनः अविश्वास, भय, शंका तथा घृणा का वातावरण पैदा हो जाता है।

साम्प्रदायिक उपद्रवों की लहर केवल भारत तक ही सीमित नहीं रहती वरन् यह पडोसी देशो एवं पाकिस्तान में भी अपना प्रभाव छोड़ती है और वहां पर भी अल्पसंख्यक सम्प्रदायो के साथ दुर्व्यवहार किया जाता है उन्हे भी जन-धन की हानि उठानी पड़ती है और सम्पूर्ण सामुदायिक जीवन दूषित हो जाता है। अतः साम्प्रदायिकता की समस्या का निराकरण अति आवश्यक है, नहीं तो यह सदैव हमारे आर्थिक एवं राजनीतिक विकास में बाधा उत्पन्न करती रहेगी और देश की एकता के लिए खतरा बनी रहेगी।

साम्प्रदायिकता निवारण के लिए किये गये प्रयत्न एवं सुझाव (Efforts Made and Suggestions to Eradicate Communalism)

साम्प्रदायिकता की समस्या को हल करने के उद्देश्य से केन्द्रीय स्तर पर राष्ट्रीय एकता परिषद् का गठन किया गया। 16 अक्टूबर, 1969 को दिल्ली में हुई इसकी बैठक में यह तय किया गया कि देश के सभी राजनीतिक दलों को जन-साधारण में साम्प्रदायिक सद्भाव जागृत करने के लिए विचार-विमर्श तथा शिक्षा के व्यापक कार्यक्रम अपनाने चाहिए। इस बैठक में इस बात पर भी जोर दिया गया कि देश की प्रशासनिक इकाइयों को साम्प्रदायिक दंगों को समाप्त करने हेतु कठोर कदम उठाने चाहिए। इस अवसर पर इस ओर भी ध्यान

आकृष्ट किया गया कि अल्पसंख्यक समूहों की समस्याओं के निराकरण पर विशेष ध्यान दिया जाय।

हिन्दुस्तान टाइम्स ने 31 अक्टूबर, 1968 के अंक में 'बुद्धिजीवी और साम्प्रदायिकता का विनाश' नामक लेख मे बताया कि भारत में अल्पसंख्यकों की समस्याओं के कारण साम्प्रदायिकता की समस्या का विकास होता है। यदि बहुसंख्यक हिन्दू इन अल्पसंख्यकों को सहयोग प्रदान करें तो यह समस्या हल हो सकती है। लेख में समाज वैज्ञानिक द्वारा अनुसन्धान कार्य किये जाने पर भी जोर दिया गया। 1968 में मुख्यमन्त्रियो के सम्मेलन में भी इस विषय पर काफी चर्चा की गयी। साम्प्रदायिकता की समस्या को हल करने के लिए निम्नांकित सुझावो पर तुरन्त ध्यान दिया जाना चाहिए :

(1) प्रजातान्त्रिक मूल्यों के आधार पर **प्रत्येक व्यक्ति के महत्व को मान्यता** दी जाय। धर्म-निरपेक्षता के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के मूल्यो को पूर्णतः स्वीकार किया जाय।

(2) देश की सम्पूर्ण जनसंख्या के लिए **सामाजिक सुरक्षा की पूर्ण व्यवस्था करना अत्यन्त आवश्यक है।** भारत का साधारण व्यक्ति अनेक असुरक्षाओं के मध्य रहता है। साधारण जनता जो कि अभावो के बीच पलती है, विविध प्रकार के खतरों से सुरक्षा प्रदान करना सरकार का प्रमुख दायित्व है। राष्ट्रीय आय तथा साधनो को इस प्रकार से काम में लिया जाना चाहिए कि अधिकतर लोगों की अधिक से अधिक आवश्यकताओ की पूर्ति हो सके। इसके लिए शोषण एवं एकाधिकार को समाप्त करना आवश्यक है।

(3) **किसी भी राजनीतिक दल अथवा संगठन को धार्मिक आधार पर घृणा एवं वैमनस्य फैलाने की स्वतन्त्रता नहीं दी जानी चाहिए।** ऐसा करने वालों के विरुद्ध सरकार को कड़ी कार्यवाही करनी चाहिए तथा इस प्रकार के संगठनों के निर्माण पर रोक लगा दी जानी चाहिए।

(4) अनिवार्य शिक्षा द्वारा लोगों मे ज्ञान की ज्योति जलायी जाय। शिक्षा का पाठ्यक्रम इस प्रकार का हो जो पारस्परिक सद्भाव, राष्ट्रीय चरित्र एवं एकीकरण को बढावा दे। इसके लिए राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा की नीति तैयार की जानी चाहिए।

(5) **प्रशासनिक शिथिलता को समाप्त किया जाय एवं साम्प्रदायिक तनाव** पैदा करने वालों के विरुद्ध कठोर कदम उठाया जाय। अधिकारियो को प्रशासकीय कार्य एवं दायित्वों को पूर्ण गम्भीरता के साथ निभाना चाहिए। स्वच्छ प्रशासन तभी सम्भव है जब राजनीतिज्ञो का हस्तक्षेप कम-से-कम हो।

(6) साम्प्रदायिकता को समाप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि ग्राम स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक के नेता समाज और देश के हितों को प्रधानता देते हुए **प्रगतिशील दृष्टिकोण** अपनायें। नेताओं को जाति, धर्म, भाषा, प्रान्तीयता और संकीर्ण स्वार्थों के दृष्टिकोण से सोचने और कार्य करने की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाना होगा।

(7) **साम्प्रदायिक सहिष्णुता का प्रचार किया जाय।** विभिन्न सम्प्रदायो के त्यौहारों और उत्सवों को सामूहिक रूप से राष्ट्रीय स्तर पर मनाया जाय और उन्हें परस्पर सम्पर्क में आने का अधिकाधिक अवसर प्रदान किया जाय जिससे वे एक-दूसरे को समझ सकेंगे, पारस्परिक सद्भाव पैदा होगा और शान्ति रह सकेगी।

(8) साम्प्रदायिकता की समस्या के निवारण के लिए चलचित्र, रेडियो, टेलीविजन, पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से साम्प्रदायिक एकता एवं सद्भाव का प्रचार किया जाना चाहिए। आज ऐसे सद्साहित्य की बहुत अधिक आवश्यकता है जो विभिन्न धर्मावलम्बियो के बीच व्याप्त घृणा, वैर, विरोध एवं विद्वेष को समाप्त कर प्रेम, मैत्री और एकता का पाठ पढाये।

(9) साम्प्रदायिक सद्भाव पैदा करने में स्त्रियो द्वारा विशेष योगदान दिया जा सकता है। अतः उन्हें शिक्षित कर राष्ट्रीय हितों एवं सामाजिक सुधारो के प्रति जागरूक बनाया जाय। वे अपने संगठन बनाकर हिन्दू-मुस्लिम बस्तियों में सद्भाव एवं सहयोग पैदा करने का कार्य कर सकती हैं।

(10) साम्प्रदायिकता की समस्या के निवारण के लिए अल्पसंख्यकों की दशा सुधारने का प्रयत्न किया जाय। उन्हें शिक्षा देने, नौकरी एवं व्यवसाय करने की पूर्ण सुविधाए दी जायं। उनकी बेकारी एवं निर्धनता की समस्या को हल किया जाय।

(11) सामाजिक तत्वों एवं राजनीतिक स्वार्थी समूहों से सख्ती के साथ निपटा जाय।

(12) लोगों को नैतिक शिक्षा प्रदान की जाय।

(13) साम्प्रदायिकता के आधार पर लड़े गये चुनावो को अवैध घोषित किया जाय।

(14) सम्पूर्ण देशवासियों के लिए समान सामाजिक विधान बनाये जायं जिससे पारस्परिक भेदभाव समाप्त होंगे एवं एकता को बल मिलेगा।

(15) अल्पसंख्यकों को दी जाने वाली सुविधाएं समाप्त की जायं क्योंकि सभी एक विशाल भारत के अंग है, अतः किसी के लिए भी विशेष सुविधाएं जुटाना उपयुक्त नही है। गुजरात, बिहार एवं उत्तर प्रदेश में हुए दंगों का एक कारण अल्पसंख्यकों को दी जाने वाली विशेष सुविधाएं हैं।

(16) डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने साम्प्रदायिकता को समाप्त करने के लिए विभिन्न सम्प्रदाय के लोगों द्वारा सहजीवन व्यतीत करने का सुझाव दिया है। इससे प्रेम, सद्भाव, मैत्री एवं विश्वास पैदा होगा।

(17) गांधीजी एवं विनोबाजी ने साम्प्रदायिकता को समाप्त करने के लिए शान्ति सेना बनाने का सुझाव दिया है जो विभिन्न स्थानों पर शान्ति कायम करने, दगों का दमन करने, पारस्परिक एकता, विश्वास एवं मैत्री पैदा करने का कार्य करे।

साम्प्रदायिकता से छुटकारा पाने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि व्यक्ति के जीवन को इस तरह से संस्कारित किया जाय कि उनमें प्रखर राष्ट्रीयता जागृत हो, राष्ट्र-भक्ति के भाव जागे और वे संकीर्ण स्वार्थों से ऊपर उठें। यह सब कुछ उसी समय सम्भव है जब व्यक्तियों का समाजीकरण प्रारम्भ से ही इस प्रकार से हो कि वे अपने आपको भारत राष्ट्र का योग्य नागरिक बना सके।

(2) क्षेत्रवाद
(REGIONALISM)

देश की अखण्डता एवं राष्ट्रीय एकता के लिए सबसे बड़ा खतरा क्षेत्रवाद की भावना है। क्षेत्रवाद की भावना ने ही देश का विभाजन हिन्दुस्तान व पाकिस्तान में किया और आजादी के बाद भी इसी भावना के कारण देश के विभिन्न भागों से पृथक्करण की आवाज उठी। क्षेत्रवाद की भावना ने राष्ट्र की भावात्मक एवं राजनीतिक एकता की छवि धूमिल कर

दी और समय-समय पर देश को तनाव एवं संघर्षों से जूझना पड़ा है। एक क्षेत्र के लोगों ने दूसरे ,क्षेत्र के लोगों के साथ उसी प्रकार का व्यवहार किया है जैसा कि दुश्मन राष्ट्र के प्रति किया जाता है। क्षेत्रवाद की भावना ने राष्ट्रीयता की जड़े खोखली कर दी और देश के सम्मुख अनेक आर्थिक एवं राजनीतिक संकट उत्पन्न कर दिये हैं। एक क्षेत्र के लोगो ने भाषा, आर्थिक विकास एवं सकीर्ण राजनीतिक हितों को लेकर आन्दोलन छेड़े और क्षेत्रीयता की भावना को राष्ट्रीय भावना से भी ऊंचा स्थान दिया।

साधारण अर्थो मे प्रान्तवाद और क्षेत्रवाद का पर्यायवाची शब्दों के रूप में प्रयोग किया जाता है जिसका अर्थ है, स्थानीयतावाद, पृथक्करणवाद और अलगाव।[1] **वेबस्टर डिक्शनरी** के अनुसार, "क्षेत्रवाद मे एक विशिष्ट उप-राष्ट्र या अधो-राष्ट्र क्षेत्र के प्रति जागरूकता और भक्ति पायी जाती है जिसकी विशेषता सामान्य संस्कृति, पृष्ठभूमि या हित है।"[2]

हेडविग हिट्ज लिखते है, "क्षेत्रवाद एक क्षेत्र विशेष के व्यक्तियों के विशेष अनुराग तथा पक्षपातपूर्ण धारणाओं से सम्बद्ध है .... और इसलिए इसके अन्तर्गत आधुनिक राजनीतिक तथा सास्कृतिक जीवन की विविध समस्याओं जैसे अल्पसंख्यको की समस्या, प्रशासनिक विवेकीकरण, स्थानीय स्वशासन, स्वदेश पूजा तथा स्थानीय देशभक्ति, आदि का समावेश होता है।"

लुण्डबर्ग के अनुसार, "क्षेत्रवाद उस अध्ययन से सम्बन्धित है जिसमें एक भौगोलिक क्षेत्र तथा मानव व्यवहार के बीच पाये जाने वाले सम्बन्ध पर बल दिया जाता है। इस रूप में क्षेत्रीयता एक प्रकार का विश्व-परिस्थिति का विज्ञान है क्योंकि इसकी रुचि विभिन्न क्षेत्रों के बीच तथा एक ही क्षेत्र के विभिन्न अंगों के बीच पाये जाने वाले प्रकार्यात्मक सावयवी सम्बन्धों मे है।" लुण्डबर्ग ने अपनी इस परिभाषा में क्षेत्रवाद को एक विज्ञान के रूप में देखा है जो मानवीय व्यवहार एवं क्षेत्र के बीच पाये जाने वाले सम्बन्धो का अध्ययन करता है। प्रत्येक क्षेत्र मे अपनी विशेषताएं एवं चरित्र होता है जो वहां के निवासियों के व्यवहार से स्पष्ट झलकता है।

बोगार्डस की मान्यता है कि एक भौगोलिक क्षेत्र के साधनो का विकास इस प्रकार से हो जाय कि वहां के लोगों में सामूहिक हितों, क्षेत्रीय लक्षणों एवं आदर्शो का विकास हो जाय तो उसे क्षेत्रवाद कहेगे। उनका मत है कि क्षेत्रीयता मे एक सांस्कृतिक समग्रता होती है। दूसरे शब्दों मे, एक क्षेत्र में एक जैसी संस्कृति पायी जाती है, उसका एक सांस्कृतिक इतिहास होता है, इसके निवासियो की भाषा-भावना, विचारों एवं व्यवहारो में समानता पायी जाती है। क्षेत्रीय संस्कृति राष्ट्रीय संस्कृति के ऊपर नही होती है जैसा कि **मुकर्जी** लिखते है, क्षेत्रीयता राष्ट्रीयता के अधीन होती है।

वर्तमान में क्षेत्रवाद का वैज्ञानिक अर्थ के स्थान पर सकुचित अर्थ में प्रयोग हुआ है, इसलिए ही इसने राष्ट्रीय संकट को जन्म दिया है। संकुचित अर्थ मे क्षेत्रवाद का तात्पर्य क्षेत्र के निवासियों द्वारा अपने आप को दूसरे क्षेत्र के लोगों से श्रेष्ठ समझना है तथा अपने आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक हितों को सर्वोच्च प्राथमिकता देना है। अपनी भाषा

1 A. K. Chatterji, *Sociological Context of Regionalism in India, a Conceptual Framework Regionalism and National Integration* (ed) Satish Chandra and Others, p. 31.

2 *Webster's Third International Dictionary*, II, 1902 (Chicago 1966)

को अन्य भाषाओं से श्रेष्ठ समझना है। दूसरे शब्दों में, क्षेत्रवाद अन्य क्षेत्रों एवं सम्पूर्ण राष्ट्र की तुलना में अपने ही क्षेत्र को श्रेष्ठ मानने एवं सभी क्षेत्रों में उसे प्राथमिकता देने की पक्षपातपूर्ण भावना है।

क्षेत्रवाद की विशेषताएं (Characteristics of Regionalism)

क्षेत्रवाद को और अधिक स्पष्ट करने के लिए उसकी विशेषताओं का उल्लेख करना उचित होगा। सैद्धान्तिक रूप से क्षेत्रवाद की निम्नांकित विशेषताएं है :

(i) क्षेत्र के आधार पर प्रशासन का विवेकीकरण पाया जाता है।

(ii) राष्ट्रीय एकता के लिए जब सभी इकाइयो पर एक ही राजनीतिक विचारधारा, भाषा, सांस्कृतिक प्रतिमान, आदि थोपे जाते है तो प्रतिक्रिया स्वरूप सामाजिक-सांस्कृतिक प्रति-आन्दोलन (Counter Movement) किया जाता है।

(iii) संघात्मक संरचना में अधिकाधिक उप-संस्कृतिया स्वायत्तता प्राप्त करने के लिए राजनीतिक प्रति आन्दोलन (Political Counter Movement) करती है।

(iv) इकाइयो में राजनीतिक आकांक्षाओं (Political Aspirations) को प्राप्त करने के लिए पृथक्करण की प्रवृत्ति देखने को मिलती है। ऐसा करने के पीछे चार उद्देश्य हो सकते हैं :

(1) क्षेत्रीय संस्कृति को पुनर्जीवित करना और उप-संस्कृति का निर्माण करना। (2) प्रशासकीय और राजनीतिक जुए को उतार फेंकना। (3) केन्द्र व राज्य तथा क्षेत्र की दो या अधिक संस्कृतियो के बीच टकराव को दूर करना। (4) केन्द्र व राज्यों या उप-संस्कृतियों में आर्थिक व राजनीतिक सन्तुलन कायम करना। क्षेत्रवाद की कुछ अन्य विशेषताए निम्न प्रकार से हैं :

(1) क्षेत्रवाद स्थानीय देशभक्ति तथा क्षेत्रीय श्रेष्ठता की भावना को बल देता है—एक क्षेत्र के लोगों में सांस्कृतिक समानता पायी जाती है। उनके विचारो, आदर्शो, कला, धर्म, प्रथाओ, रीति-रिवाजो एवं भाषा में एकरूपता पायी जाती है। उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक हित या समस्याएं समान होती हैं। अतः वे एकता के सूत्र में बंध जाते हैं तथा अपने क्षेत्र के प्रति उनमें प्रगाढ़ देशभक्ति की भावना होती है और कभी-कभी तो वे राष्ट्रीय हितो को भी तिलांजलि देकर क्षेत्रीय हितों की रक्षा करते हैं। यही नहीं, वे अपने क्षेत्र को अन्य क्षेत्रो एवं राष्ट्र से भी श्रेष्ठ समझने लगते हैं। परिणामस्वरूप क्षेत्रीय तनाव एवं संघर्षो का जन्म होता है।

(2) क्षेत्रवाद एक सीखा हुआ व्यवहार है—प्रत्येक क्षेत्र की एक संस्कृति होती है, वहां के लोगों में क्षेत्र के प्रति एक विशिष्ट भावना होती है जिसे वहां के निवासी सीखते हैं। यह उन्हें वशानुक्रम में नही मिलती वरन् यह सांस्कृतिक विरासत का ही परिणाम है।

(3) क्षेत्रवाद की मात्रा में अन्तर होता है—क्षेत्रवाद की मात्रा में भिन्नता पायी जाती है। इसके दो अर्थ हैं—एक अर्थ यह है कि क्षेत्रवाद का रूप अत्यधिक उग्र हो सकता है जब क्षेत्रीय हितों के सम्मुख राष्ट्रीय हितों को भी तिजांजलि दे दी जाती है या यह इतना उदार हो सकता कि इसमें एक समान राष्ट्रों को भी सम्मिलित कर लिया जाता है अथवा उग्रता एवं उदारता की भावना के बीच का कोई स्वरूप हो सकता है।

(4) संकीर्ण क्षेत्रवाद स्वशासन एवं पृथक्करण को बल प्रदान करता है—जब लोगों मे संकीर्ण क्षेत्रवाद पाया जाता है और वे अपने ही क्षेत्र को दूसरे क्षेत्रों से श्रेष्ठ समझते हैं तो तब वे क्षेत्रीय स्वशासन की माग करते हैं तथा केन्द्र और राष्ट्र से पृथक् होने की मांग करते हैं जैसा कि असम के नागा लोगों ने एवं तमिलनाडु के लोगो ने समय-समय पर इस प्रकार की मांग की है। कुछ उग्रवादी सिक्खो ने पंजाब मे 'खालिस्तान' की मांग की है और इसे स्वीकार करने के लिए बैक लूटे गये तथा कई निर्दोष लोगों की जानें ली गयीं। जरनैल सिह भिंडरावाला एवं उसके समर्थक स्वर्ण मन्दिर से उग्रवादी गतिविधियों का संचालन करते रहे और अन्तत· सरकार ने **'ब्लूस्टार एक्शन'** लेकर स्वर्ण मन्दिर में सेना भेजी और पवित्र धार्मिक स्थल को आतकवादियों से मुक्त कराया। इस प्रकार पृथकतावादी मांग एवं भावना राष्ट्रीय तनाव एवं संघर्ष पैदा करती है और राष्ट्रीय एकीकरण में बाधक होती है।

(5) क्षेत्रवाद संकीर्ण मनोवृत्ति का सूचक है—सामान्यतः क्षेत्रवाद संकीर्णता ही पैदा करता है क्योकि एक क्षेत्र के लोग अपनी भाषा, संस्कृति, आदर्श और सिद्धान्तों को ही श्रेष्ठ समझने लगते है, अपने हितो को ही सर्वोच्च प्राथमिकता देते हैं तथा अपनी मांगें मनवाने हेतु तोड़-फोड़, दंगे, विरोध एवं आन्दोलनों का सहारा लेते हैं। वे अन्य क्षेत्रो के लोगों के प्रति न्याय की भावना नहीं रखते वरन् अपने क्षेत्रवासियों के प्रति ही पक्षपात से परिपूर्ण होते हैं। राष्ट्रीय राष्ट्रभक्ति के स्थान पर क्षेत्रवाद में स्थानीय वफादारी को अधिक महत्व दिया जाता है।

क्षेत्रवाद के लिए उत्तरदायी कारक (Factors Responsible for Regionalism)

भारत में क्षेत्रवाद की भावना को पैदा करने के लिए भौगोलिक, मानव पर्यावरण, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक शक्तियों का योगदान रहा है। वर्तमान में भारत में क्षेत्रवाद को जन्म देने मे चार प्रमुख मुद्दे रहे हैं :

(i) भाषा समस्या, आर्थिक विषमता और स्थानीय नेतृत्व को अधिक मजबूत बनाने, आदि विषयो को लेकर एक क्षेत्र के लोग अपने को सम्पूर्ण भारत के स्थान पर एक प्रान्त या क्षेत्र से अधिक जुडा मानते है। (ii) राष्ट्रीय नेतृत्व के स्थान पर स्थानीय नेतृत्व पर अधिक बल दिया जाता है। (iii) केन्द्र व राज्यों मे आर्थिक एव राजनीतिक हितों को लेकर टकराव। (iv) केन्द्रीय सत्ता का उल्लंघन।

भारत में क्षेत्रवाद की धारणा के उदय के प्रमुख तीन कारक रहे है—(i) राजनीतिक, (ii) आर्थिक, (iii) सामाजिक।

(1) राजनीतिक कारक—क्षेत्रवाद को जन्म देने में प्रमुख कारक केन्द्र व राज्यों के तथा एक राज्य या राज्यों से तनावपूर्ण सम्बन्ध भी है। ये तनाव कई कारको को लेकर उत्पन्न हुए; जैसे विभिन्न प्रोजेक्ट्स किस प्रान्त में लागू किये जायें, केन्द्र से दी जाने वाली आर्थिक सहायता, प्रान्तो द्वारा अधिकाधिक खाद्यान्न देने की मांग, प्रान्तों की सीमा निर्धारण, नदी पानी बंटवारे का विवाद, आदि। अपनी मांगो को मनवाने के लिए स्थानीय एवं प्रान्तीय राजनीतिक दबाव समूहों का उदय हुआ जिन्होने स्थानीय राजनीति को जन्म दिया। कई राजनीतिक दलो ने भी क्षेत्रवाद की भावना को उभारा है। वे धर्म, भाषा, आदि के नाम पर लोगो को उकसाते रहे और उनकी शक्ति का दुरुपयोग राजनीतिक सत्ता हथियाने हेतु किया गया है। भारत मे ऐसे कई दल है जिनका विस्तार केवल क्षेत्र विशेष तक ही सीमित है; जैसे विशाल हरियाणा पार्टी व द्रविड़ मुनेत्र कड़गम, तेलुगू देशम, सिक्किम गण संग्राम परिषद्, आदि।

(2) आर्थिक कारक—क्षेत्रवाद की भावना को जन्म देने मे आर्थिक कारकों ने भी योग दिया। आर्थिक रूप से पिछड़े हुई क्षेत्रो ने अपने यहा उद्योग खोलने की माग की। ऐसा करते समय वे यह भूल जाते हैं कि आर्थिक दृष्टि से वह उद्योग उस क्षेत्र मे लाभदायक सिद्ध होगा या नहीं। जब प्रान्तीय दबाव गहन हो जाता है तो उद्योग के आर्थिक दृष्टिकोण को त्यागना होता है। योजना बनाने वाले के सम्मुख भी तब एक समस्या आ जाती है। राजनेता जन भावनाओं को उभारकर समूह मनोविज्ञान का शोषण करते समय यह भूल जाते हैं कि इन आर्थिक समस्याओ को प्रजातन्त्रीय तरीके से किस प्रकार हल किया जाय। आर्थिक विकास की कौन-सी योजनाएं किस क्षेत्र में प्रारम्भ हों, इस बात को लेकर केन्द्र एवं राज्यो के बीच उत्पन्न विवाद हमारे योजनाबद्ध आर्थिक विकास मे बाधा उत्पन्न करते रहे हैं। यदि हम भारत के विभिन्न प्रान्तों की प्रति व्यक्ति आय को देखें तो पाएंगे कि महाराष्ट्र, पंजाब पश्चिमी बंगाल और गुजरात में अन्य राज्यो की तुलना मे प्रति व्यक्ति आय अधिक है। इसी प्रकार से सार्वजनिक क्षेत्रो में उद्योगो की स्थापना मे बिहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, आदि राज्यो में पूंजी का विनियोग अधिक किया गया है। इस प्रकार आर्थिक कारणों ने भी क्षेत्रवाद को बढ़ावा दिया और राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में बाधा उत्पन्न की।

(3) सामाजिक सांस्कृतिक कारक—क्षेत्रवाद को जन्म देने में सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों का भी योगदान रहा है। भाषा, संस्कृति, आदि की समस्याओं और क्षेत्रीय आधार पर बनी सेनाओं जैसे शिव सेना, लच्छित सेना एव हिन्दी सेना, आदि ने भी क्षेत्रवाद को बढ़ावा दिया। इन सैनाओं का उद्देश्य सामूहिक समस्याओं को हल करना था। भारत की भौगोलिक परिस्थितियां इस प्रकार की है कि सम्पूर्ण भारत भौगोलिक दृष्टि से कई भागों में विभक्त है। इससे एक भौगोलिक क्षेत्र मे एक प्रकार की संस्कृति ने जन्म लिया जबकि दूसरे मे दूसरी प्रकार की संस्कृति ने। एक सांस्कृतिक क्षेत्र अपने को दूसरे से श्रेष्ठ समझता है। सांस्कृतिक श्रेष्ठता के दावों को लेकर भी क्षेत्रवाद पनपा है।

(4) भौगोलिक कारक—भारत में क्षेत्रवाद को जन्म देने में भौगोलिक कारकों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। भारत को हम प्रमुख चार भौगोलिक क्षेत्रो में बांट सकते हैं :

(i) उत्तरी पर्वतीय प्रदेश, (ii) गंगा सिन्धु का मैदान, (iii) दक्षिण का पठारी भाग, एवं (iv) समुद्र-तटीय भाग। प्रत्येक की भौगोलिक विशेषता मिट्टी, जंगल, भू-भाग की आकृति और मौसम एक विशिष्ट प्रकार की है जो दूसरे भू-भाग से नहीं मिलती। भौगोलिक विभेद ने वहां के लोगों के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं सामूहिक जीवन को प्रभावित किया है और एक विशिष्ट रूप प्रदान किया है। यही कारण है कि एक क्षेत्र की भाषा, धर्म, निवास, व्यवस्था, प्रथाएं, रीति-रिवाज एवं आर्थिक हित दूसरे क्षेत्र से भिन्न हैं। इसके परिणामस्वरूप लोगों में क्षेत्रवाद की भावना को बल मिला है।

(5) ऐतिहासिक कारक—भौगोलिक कारकों की भांति ऐतिहासिक कारकों ने भी क्षेत्रवाद को जन्म दिया है। प्रत्येक क्षेत्र का अपना एक इतिहास रहा है। प्राचीन समय में अलग-अलग क्षेत्र में अलग-अलग राजा राज्य करते थे। प्रत्येक सामन्त का एक सीमा तक राज्य का विस्तार था। एक राजा अथवा सामन्त के शासन के अधीन रहने वाले लोगो में सांस्कृतिक-सामाजिक एकता एवं समानता पनपी। सम्पूर्ण भारत कभी भी राजनीतिक दृष्टि से अंग्रेजों के काल को एवं चन्द्रगुप्त व अशोक के काल को छोड़कर एक शासन के अधीन नहीं रहा। इतिहास ने ही क्षेत्रीय भिन्नता विरासत में दी है जो आज तक समाप्त नहीं हुई है।

(6) **भाषावाद**—क्षेत्रीय भावना को बढ़ावा देने मे भाषा की समस्या ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। एक क्षेत्र के लोग एक भाषा का प्रयोग करते हैं। अपनी ही भाषा, उसकी शब्दावली, शैली एवं साहित्य को लेकर भी भारत मे अनेक बार दंगे हुए हैं और आज भी यह समस्या ज्यो की त्यो है। भाषावाद पर हमने आगे विस्तार से उल्लेख किया है।

(7) **मनोवैज्ञानिक कारक**—अपने क्षेत्र के प्रति मानसिक लगाव तथा उसकी उन्नति की भावना ने भी क्षेत्रवाद को जन्म दिया है, लेकिन यह भावना जब ईर्ष्या, द्वेष एवं संघर्ष का रूप ले लेती है तो राष्ट्रीय एकता को भी खतरा उत्पन्न हो जाता है।

क्षेत्रवाद के दुष्परिणाम (Evil Consequence of Regionalism)

क्षेत्रवाद के कई दुष्प्रभाव सामने आये है, जैसे राजनीतिक दलो मे साम्प्रदायिकता पनपी है, क्षेत्रीय पक्षपात की भावना, अन्तर्क्षेत्रीय तनाव एवं संघर्ष, भाषावाद व आर्थिक तथा राजनीतिक हितो आदि को लेकर टकराव उत्पन्न हुए है। इससे क्षेत्रीय अहमवाद अर्थात् अपने ही क्षेत्र को प्रधानता देने की प्रवृत्ति को बल मिला है। प्रान्तों ने अधिकाधिक स्वायत्तता और अधिकारों की मांग की है जिसके परिणामस्वरूप पृथकतावादी विचारों ने जोर पकड़ा है। इन सभी ने प्रजातन्त्र और राष्ट्रीय एकीकरण के लिए खतरा उत्पन्न किया है। क्षेत्रवाद के विभिन्न दुष्परिणाम इस प्रकार से है ·

(1) **विभिन्न क्षेत्रों मे संघर्ष**—क्षेत्रवाद ने विभिन्न क्षेत्रो के बीच तनाव एवं संघर्ष पैदा किया है। प्रत्येक क्षेत्र यह चाहता है कि उसके यहा कोई कारखाना लगे, प्रोजेक्ट शुरू हो, विश्वविद्यालय खुले और उसे ही केन्द्र द्वारा अधिकाधिक सहायता प्रदान की जांय। राजस्थान में ही उच्च न्यायालय को जोधपुर से हटाकर जयपुर ले जाने के विवाद में काफी तनाव पैदा हुआ था।

(2) **राज्य एवं केन्द्र के बीच तनाव**—क्षेत्रवाद को लेकर राज्यों एवं केन्द्र के बीच भी तनाव पैदा हुआ है। केन्द्र सरकार किसी भी पिछड़े राज्य के हितो का अधिक ध्यान नही रखती है तो वह केन्द्र से रुष्ट होकर आन्दोलन करता है या किसी क्षेत्र को अधिक सहायता दे दी जाती है तो दूसरे क्षेत्र वाले रोष प्रकट करते है।

(3) **स्वार्थी नेतृत्व का उदय**—क्षेत्रवाद की भावना का स्वार्थी राजनेता शोषण करते है। जब उनके पास और कोई हथियार नही होता है तो वे क्षेत्रीय हितो की दुहाई देकर लोगो की भावनाओ को भड़काते हैं तथा सस्ती लोकप्रियता प्राप्त करने का प्रयत्न करते है। ऐसे ही लोग सही अर्थ मे राष्ट्र-विरोधी हैं।

(4) **भाषावाद का अन्त**—प्रत्येक क्षेत्र का सम्बन्ध एक भाषा विशेष से भी है। जब कभी क्षेत्रवाद का नारा बुलन्द किया जाता है तो भाषा की समस्या भी उठ खड़ी होती है। भाषा को लेकर लोगों मे तनाव पैदा हो जाता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का अपनी मातृभाषा के प्रति मानसिक लगाव पाया जाता है।

(5) **राष्ट्रीय एकीकरण एवं प्रजातन्त्र को खतरा**—क्षेत्रवाद राष्ट्रीय एकीकरण व प्रजातन्त्र को खतरा उत्पन्न कर देता है। किसी राष्ट्र की एकता व अक्षुण्णता बनाये रखने तथा प्रजातन्त्र की सफलता के लिए यह जरूरी है कि वहां के लोगों मे परस्पर सहयोग और भाई-चारे की भावना कायम रहे जबकि क्षेत्रवाद में पारस्परिक तनाव; द्वेष एवं संघर्ष पैदा होता है जो राष्ट्र एवं प्रजातन्त्र विरोधी है। यह एकता के स्थान पर पृथक्करण पर जोर देती है।

क्षेत्रवाद की भावना को दूर करने के उपाय (Measures to Eradicate Regionalism)

क्षेत्रवाद की भावना को समाप्त करने के लिए निम्नांकित उपाय अपनाये जाने चाहिए .

(1) राष्ट्रीय भावना का प्रसार—देशवासियों में राष्ट्रीय एकता की भावना का संचार किया जाय। इसके लिए चल-चित्र, रेडियो, पत्र-पत्रिकाओं, सम्मेलनों, आदि का आयोजन किया जाना चाहिए। लोगो को यह बताया जाय कि राष्ट्रीय हित में ही सभी क्षेत्रो के हित समाये हुए है।

(2) राष्ट्रीय इतिहास पर बल—लोगों को हमारे गौरवशाली इतिहास की जानकारी करायी जाय तथा उन्हें यह बताया जाय कि किस प्रकार से हमारे राष्ट्रीय नेताओ ने क्षेत्रवाद की भावना का दमन कर देश को एकता के सूत्र में पिरोया।

(3) क्षेत्रवादी राजनीतिक दलों पर प्रतिबन्ध—ऐसे राजनीतिक दलों को जो क्षेत्रवाद के आधार पर बने हुए है एवं क्षेत्रीयता को भड़काते है, समाप्त कर दिया जाय। उदाहरण के लिए, झारखण्ड पार्टी, विशाल हरियाणा पार्टी, शिव सेना, लच्छित सेना, कूकी नेशनल ऐसोसियेशन, नगालैण्ड नेशनलिस्ट ऑरगेनाइजेशन, द्रविड मुनेत्र कषगम, मनीपुर हिल यूनियन, मनीपुर पीपुल्स पार्टी, महाराष्ट्रवादी गोमान्तक दल, आदि जो कि क्षेत्रीय भावना के आधार पर गठित किये गये हैं।

(4) यातायात के साधनों का प्रसार—यातायात के साधनों का अधिकाधिक प्रसार एवं विस्तार किया जाय जिससे लोगों की गतिशीलता बढ़ेगी और विभिन्न क्षेत्रों के लोग जब परस्पर मिलेंगे-जुलेंगे तो उनकी संकीर्ण क्षेत्रवाद की भावना दूर होगी।

(5) शिक्षण संस्थाओं में क्षेत्रीय आधार पर चयन रोका जाय—आजकल प्रत्येक शिक्षण संस्था एवं विश्वविद्यालय में छात्रों को प्रवेश देने से पूर्व यह देखा जाता है कि वह किस क्षेत्र का है। इस प्रवृत्ति को समाप्त किया जाय एवं सभी क्षेत्र के लोगों को समान रूप से शिक्षा की सुविधाएं प्रदान की जायं।

(6) राष्ट्रभाषा का प्रसार किया जाय—सारे देश में हिन्दी का प्रसार किया जाय। जब तक सभी क्षेत्र के लोग इसे सहर्ष स्वीकार नहीं कर लें उन पर हिन्दी थोपी नहीं जाय, साथ ही क्षेत्रीय भाषाओं को भी महत्व दिया जाना चाहिए। भाषायी झगड़ों का उचित समाधान किया जाना चाहिए।

(7) आर्थिक असन्तुलन को समाप्त किया जाय—क्षेत्रवाद को जन्म देने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त आर्थिक विषमता भी उत्तरदायी है। अतः यह विषमता दूर की जानी चाहिए। इसके लिए केन्द्र उन राज्यों को अधिक सहायता प्रदान करे जो आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं।

(8) केन्द्र व राज्यों के बीच मधुर सम्बन्ध कायम किये जायं—केन्द्र द्वारा राज्यों के प्रति किसी प्रकार का पक्षपात नहीं बरता जाना चाहिए। केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में सभी प्रान्तों का उचित प्रतिनिधित्व होना चाहिए। केन्द्र सरकार को राज्य सरकार एवं क्षेत्रीय नेताओं को ऐसे अवसर नही देने चाहिए जिससे उनमें कुण्ठा की भावना पैदा हो जो क्षेत्रवाद का रूप धारण कर भड़क उठे। सीमा विवादों को भी शान्तिपूर्वक तरीकों से हल किया जाय।

(9) सांस्कृतिक एकीकरण को बढ़ावा दिया जाय। विभिन्न क्षेत्र के लोगों के खेल-कूद, नाटक, नृत्य, गीत एवं संगीत तथा रंगारंग कार्यक्रमो का आयोजन किया जाय जिससे उनमे परस्परिक सद्भाव एवं सहयोग पनपेगा एवं क्षेत्रवाद की संकीर्ण मनोवृत्ति समाप्त होगी।

(10) दबाव की जनीति से शक्तिपूर्वक निपटा जाय—जो लोग आत्मदाह, त्याग-पत्र, हड़ताल एवं आन्दोल- करने की धमकी देते है एवं अपने क्षेत्र की उचित व अनुचित मांगो को मनवाने के लिए द ाव डालते हैं, उनके प्रति कठोर कानूनी कार्यवाही की जानी चाहिए।

उपर्युक्त विवेचना ् स्पष्ट है कि क्षेत्रवाद की भावना एक ऐसा कुष्ठ रोग है जो राष्ट्र की सुन्दर छवि को बिगाड़ देता है। स्वार्थी नेता अपने क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति के लिए क्षेत्रवाद का नारा बुलन्द करते है। क्षेत्रवाद की भावना से मुक्ति पाना आवश्यक है अन्यथा राष्ट्रीय एकीकरण को खतरा बना रहेगा तथा यह प्रजातन्त्र के मार्ग मे कंट्क बन जायेगा जिसका परिणाम सारे राष्ट्र को सामूहिक रूप से भुगतना होगा।

(3) भाषावाद
(LINGUISM)

भारत के विभिन्न क्षेत्रो में भिन्न-भिन्न बोलियां एवं भाषाएं बोली जाती हैं। इनकी सख्या लगभग 1,650 है। इनमें से 15 भाषाएं तो समृद्ध है। सर्वाधिक प्रयुक्त होने वाली भाषाओ में हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, गुजराती, मराठी, असमी, कश्मीरी, बंगाली, तमिल, तेलुगू, मलयालम, कन्नड़, आदि हैं। भारत मे कभी भी सम्पूर्ण देश की एक भाषा नहीं रही है। भाषायी क्षेत्र ने यहां के सामाजिक जीवन को भी प्रभावित किया है और एक भाषा वालों ने अपने सम्बन्ध अपने भाषायी क्षेत्र तक ही सीमित रखे है। श्रीमती कर्वे का मत है कि यदि हम भारतीय संस्कृति को समझना चाहते हैं तो हमें जाति एवं परिवार के साथ-साथ भाषायी क्षेत्र का अध्ययन करना होगा। मानव जीवन में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है जो उसे पशु जगत से भिन्न करती है तथा उसकी सभ्यता, संस्कृति भी जुड़ी हुई है क्योंकि विभिन्न धर्मावलम्बी अपनी अलग-अलग भाषा मानते हैं; जैसे हिन्दू संस्कृत एवं हिन्दी, मुसलमान अरबी एवं उर्दू तथा सिक्ख गुरुमुखी को। भाषा ने सामाजिक एवं शैक्षणिक जगत में कई समस्याएं भी खड़ी की हैं, लोगो में पारस्परिक वैमनस्य पैदा किया है। इसके कारण दंगे, झगड़े, तोड़-फोड़ तथा आगजनी की घटनाएं घटी हैं। भाषा के विवाद ने पृथकतावादी प्रकृति तेज करने में आग में घी का काम किया है।

भाषावाद क्या है (What is Linguism)

अपनी ही भाषा को सर्वश्रेष्ठ मानकर उसका समर्थन करने के लिए आन्दोलन करना एवं अन्य भाषाओं का विरोध करना भाषावाद कहलाता है। भाषावाद में अपनी भाषा को ऊंचा एवं अन्य भाषाओं को निम्न तथा त्याज्य माना जाता है। भाषावाद मे साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध भाषा को अस्पष्ट और असमृद्ध भाषा से उच्च समझा जाता है। भाषा के साथ व्यक्ति का मानसिक लगाव होता है। अतः जब एक भाषा बोलने वालों पर दूसरी भाषा थोपी जाती है तो तनाव पैदा होता है, तोड़-फोड़, हड़ताले, दंगे और आन्दोलन होते हैं और भाषावाद का नारा बुलन्द किया जाता है।

प्रत्येक क्षेत्र की अपनी एक भाषा होती है जिसका प्रयोग वहां पर निवास करने वाले सभी व्यक्ति करते हैं। इससे भाषा के प्रति लोगो में अन्ध-भक्ति पैदा हो जाती है और वे अन्य भाषाओ की तुलना में अपनी ही भाषा को सवश्रेष्ठ समझने लगते हैं, उसी की उन्नति चाहते है, वे यह चाहते हैं कि अन्य क्षेत्रों के व्यक्ति भी उसी क्षेत्र की भाषा को ग्रहण करें तथा दूसरी भाषाएं बोलने वाले व्यक्तियों का बहिष्कार किया जाय। भाषावाद मे व्यक्ति का

मूल्यांकन केवल इसी आधार पर किया जाने लगता है कि वह किस भाषा का प्रयोग करता है। भाषावाद की वह प्रवृत्ति विभिन्न क्षेत्रों में तनाव, संघर्ष तथा पृथक्करण पैदा करती है। भाषायी जागृति के कारण प्रत्येक क्षेत्र अपने को दूसरे क्षेत्र से अलग समझने लगता है, पृथक् राज्य की मांग की जाती है और इसके लिए आन्दोलन एवं उपद्रव किये जाते हैं।

भाषावाद का विकास (Development of Linguism)

यह एक आम धारणा है कि एक राष्ट्र की एक ही भाषा होनी चाहिए। एक राष्ट्र एक भाषा की धारणा पश्चिम से ग्रहण की गयी है क्योंकि वहां विभिन्न भाषा-भाषी लोग एक ही राष्ट्र के अन्तर्गत एक ही भाषा को राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्वीकार करके रह रहे है। भारतीय राजनीतिज्ञो ने भी यहां वही प्रतिमान अपनाया। अंग्रेजों से पहले सम्पूर्ण भारत छोटे-छोटे सामन्तों के अधीन था। राजकाल की भाषा अभिजात वर्ग की भाषा ही थी। प्रजातन्त्रीय प्रणाली के अभाव में साधारण व्यक्ति राजकाज के कार्यो में भाग नही लेता था। अतः ग्यारहवीं सदी तक राजकाज की भाषा की समस्या नही थी।

भाषा का विवाद मुसलमानों और अंग्रेजों के आगमन के बाद पैदा हुआ। मुसलमानों ने उर्दू को और अंग्रेजी को राजकाज और न्यायालय की भाषा बनाया। आजादी के संघर्ष के दौरान कांग्रेस ने गांधीजी के आगमन के साथ स्थानीय भाषाओं को महत्व दिया। कांग्रेस ने 1920 में नागपुर के अधिवेशन में भाषा के आधार पर प्रान्तों के निर्माण और अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की मांग की। स्वतन्त्र भारत की संविधान निर्मात्री सभा ने भी हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप मे प्रतिष्ठित किया जिसकी लिपि देवनागरी रखी गयी। भारतीय संविधान मे राजकाज, सर्वोच्च एवं उच्च न्यायालय की भाषा का उल्लेख किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 343 में केन्द्र की राजकाज की भाषा के लिए देवनागरी लिपि में हिन्दी का उल्लेख किया गया है। इसी अनुच्छेद मे यह कहा गया है कि संविधान लागू होने के 15 वर्षो तक अंग्रेजी राजकाज की भाषा बनी रहेगी तथा पार्लियामेण्ट को यह अधिकार दिया गया कि वह चाहे तो इस अवधि को और आगे बढा सकती है। अनुच्छेद 350, 350-अ, 350-ब तथा 351 में अल्प भाषा-भाषियो के लिए विशेष प्रावधान है। अनुच्छेद 350 अल्प भाषा-भाषियों को अपनी शिकायतें केन्द्रीय या राज्य अधिकारियों को करने की सुविधा प्रदान करता है। अनुच्छेद 347 राष्ट्रपति को यह अधिकार देता है कि किसी राज्य की जनता यदि एक उचित मात्रा में किसी भाषा का प्रयोग करती है तो वह इस भाषा को राज्य की मान्यता प्रदान कर दे।

वर्तमान में भारत में भाषा समस्या अनेक पहलुओं को लेकर पैदा हुई है, जैसे (i) राष्ट्रभाषा क्या हो, (ii) अहिन्दी भाषी प्रान्तों में हिन्दी का प्रचलन, (iii) अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी का प्रयोग, (iv) शिक्षा का माध्यम क्या हो? (v) विभिन्न प्रान्तों एवं केन्द्रों के बीच सम्पर्क-भाषा क्या हो, (vi) भाषा के आधार पर प्रान्तों का निर्माण, आदि। 1953 में राज्य पुनर्गठन आयोग एवं 1961 में हुए मुख्यमन्त्रियों के सम्मेलन के सुझावों को लेकर देश मे यत्र-तत्र विरोध एवं आन्दोलन हुए।

भाषावाद के उदय के कारण (Causes of Linguism)

भारत मे भाषा की समस्या के लिए उत्तरदायी कुछ प्रमुख कारण अग्र प्रकार से हैं :

(1) भौगोलिक कारण—भारत के विभिन्न क्षेत्रों में निवास करने वाले लोगों की बोलियां एवं भाषाएं भिन्न-भिन्न हैं। एक क्षेत्र मे निवास करने वाले लोग अपने भावों एवं विचारों को प्रकट करने के लिए एक भाषा का प्रयोग करते हैं; पारस्परिक परिचय एवं मेल-जोल बढ़ाते है। प्रत्येक भाषा के साहित्य में स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों, झीलों, पहाड़ों, मैदानों, पशु-पक्षी एवं वनस्पति तथा संस्कृति का उल्लेख पाया जाता है। कवि एवं साहित्यकार भी अपनी रचनाओं मे स्थानीय रंग भरते हैं। अपने क्षेत्र की भाषा के प्रति लोगों मे अगाध प्रेम होता है, वे उसका विकास चाहते है तथा वे यह पसन्द नहीं करते कि उन पर दूसरे क्षेत्र की भाषा थोपी जाय और जब ऐसा होता है तो वे उठ खड़े होते हैं, संघर्ष करते हैं, आन्दोलन करते है और भाषा विद्वेष उत्पन्न होता है।

(2) ऐतिहासिक कारण—भाषावाद की जड़ें इतिहास मे गड़ी हुई है। अति प्राचीनकाल से यहां आक्रमणकारी के रूप में विदेशी आते रहे हैं। वे अपने साथ अपनी भाषा भी लाये। मुसलमान अरबी एवं फारसी भाषा लेकर आये जो हिन्दी के साथ मिलकर उर्दू भाषा बनी। अंग्रेज अंग्रेजी भाषा लेकर आये और उसका इतना प्रसार किया कि लाख प्रयास करने पर भी अंग्रेजीयत को बू जाती नहीं। भाषाओं के साथ-साथ साहित्य एवं संस्कृति का भी पदार्पण हुआ। धीरे-धीरे भारत में भाषाओं की संख्या बढ़ी और उनके प्रयोग करने वालों की भी वृद्धि हुई, भाषाएं, फलने-फूलने लगीं। कभी-कभी भाषा की समस्या को लेकर तनाव एवं संघर्ष भी पैदा हुए।

(3) राजनीतिक कारण—भाषावाद को जन्म देने में राजनीति एवं राजनीतिक दलों का स्वार्थ भी एक महत्वपूर्ण कारण रहा है। राज-काज, न्यायालय एवं शिक्षा की भाषा क्या हो, इस बात को लेकर राजनीतिक दलों ने अपनी-अपनी मांगे रखीं। भाषा के प्रश्न को लेकर कई राजनीतिज्ञों ने चुनाव लड़े, लोगो को भडकाया। अकाली दल पंजाबी भाषा को लेकर, द्रविड़ मुनेत्र कड़गम हिन्दी के प्रति विरोध को लेकर चुनाव मैदान में आ डटे। भाषा की समस्या को राजनीति में घसीटा गया और लोगों ने अपने राजनीतिक हित साधे। इस प्रकार दूषित नेतृत्व ने भाषायी तनाव पैदा किये।

(4) आर्थिक कारण—जब एक भाषा की समृद्धि एवं साहित्य के लिए राज्य द्वारा आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है और दूसरी को नहीं अथवा जब एक भाषा विशेष के जानने वाले को सरकारी एवं गैर-सरकारी नौकरियों में प्राथमिकता दी जाती है, शैक्षणिक सुविधाएं दी जाती हैं तो दूसरी भाषा-भाषी लोग उसका विरोध करते है तथा भाषावाद पनपता है।

(5) मनोवैज्ञानिक कारण—भाषावाद के लिए मनोवैज्ञानिक कारण भी महत्वपूर्ण है। व्यक्ति का अपनी भाषा के प्रति स्वाभाविक लगाव होता है और दूसरी भाषाओं के प्रति ईर्ष्या एवं द्वेष। अपनी भाषा के प्रति व्यक्ति गर्व एवं आत्मसम्मान महसूस करता है और दूसरी भाषा को हेय दृष्टि से देखता है। इस प्रकार की संकीर्ण मनोवृत्ति भी भाषायी विवाद एवं तनाव को उत्पन्न करती है।

(6) उत्तर और दक्षिण की भ्रान्ति—भाषावाद को बढ़ावा देने का एक कारण उत्तर भारत के राज्यों एवं दक्षिण भारत के राज्यों में फैली भ्रान्तियां हैं। दक्षिण में यह भ्रान्त धारणा पनपी कि सरकार एवं प्रशासन पर उत्तर भारत का ही वर्चस्व है, संविधान में हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा स्वीकार किया गया है। कई लोगों ने यह प्रचार करना शुरू किया कि यदि हिन्दी

राष्ट्रभाषा हो गयी तो अहिन्दी भाषी प्रान्तो के व्यक्तियो को केन्द्रीय सरकार की सेवाओ में स्थान नही मिलेगा, उन पर हिन्दी जबरन थोपी जायेगी और वे उत्तरी भारत के गुलाम बन जायेंगे। उधर दक्षिण में अंग्रेजी को अत्यधिक महत्व देने के कारण उत्तरी भारत के राज्यो मे दक्षिणी राज्यों के प्रति वैमनस्य पैदा हुआ। इस प्रकार दोनों मे भ्रान्तियो एवं त्रुटिपूर्ण प्रचार के कारण भाषायी दंगे एवं आन्दोलन हुए।

(7) **क्षेत्रवाद**—क्षेत्रवाद की भावना के कारण एक क्षेत्र के लोग अपनी भाषा, सस्कृति, खान-पान एवं वेश-भूषा को श्रेष्ठ समझने लगते है। भाषावाद एव क्षेत्रवाद परस्पर सम्बन्धित एवं पूरक भी हैं। एक क्षेत्र के निवासी अपनी भाषा के आधार पर राज्य निर्माण करने की मांग उठाते हैं और वे अपना पृथक् अस्तित्व चाहते हैं।

(8) **अंग्रेजी समर्थकों का षड्यन्त्र**—देश मे करीब 2 प्रतिशत लोग ही अंग्रेजी जानते है। अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग सरकारी एवं गैर-सरकारी उच्च पदो पर आसीन है। वे यह चाहते है कि अंग्रेजी राष्ट्रभाषा के रूप में बनी रहे। अत वे जान-बूझकर हिन्दी को राष्ट्रभाषा नही बनाना चाहते और विभिन्न भाषाएं बोलने वालों को परस्पर लड़ाते रहते है एव इस विवाद को हल नही होने देते।

(9) **सामाजिक कारण**—प्रत्येक भाषा का सम्बन्ध एक समाज एवं सस्कृति से होता है। प्रत्येक समाज की कुछ सामाजिक-सांस्कृतिक मान्यताएं होती है जिनका उल्लेख उनकी भाषा में ही मिलता है। उस समाज के रीति-रिवाजों, कला, धर्म, दर्शन, प्रथाओं, आदि का वर्णन जिस भाषा एवं साहित्य में होता है, उसके प्रति लोगो में आत्मीयता के भाव होते है, वे उस भाषा को पढ़ना-लिखना और बोलना अपना गौरव समझते है। उस भाषा के प्रयोग से उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ती है। दूसरी भाषा को लोग सम्मान नही देते। ऐसी स्थिति में भी तनाव एवं विरोध पैदा होता है।

भाषावाद के परिणाम (Consequences of Linguism)

भाषावाद के कारण उत्पन्न तनावों एवं संघर्षो का हमने ऊपर उल्लेख किया। इसके अन्य परिणाम निम्न प्रकार से है :

(1) **राष्ट्रीय एकीकरण में बाधक**—समय-समय पर भाषा के प्रश्न को लेकर विभिन्न प्रान्तो के लोगों में तनाव एवं मनमुटाव पैदा हुआ। वे भाषा के आधार पर पृथक् राज्य की मांग करने लगे, इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय एकता को खतरा उत्पन्न हुआ तथा पृथकृतावादी शक्तियों को प्रोत्साहन मिला।

(2) **मानसिक विकास में बाधा**—भारतवासी भाषा विवाद में ही फंसे रहे और उन्होंने अपने मानसिक एवं बौद्धिक विकास के लिए विशेष प्रयत्न नहीं किये। विभिन्न भाषाएं होते हुए भी रूस एवं अन्य देशों ने बहुत अधिक प्रगति की, किन्तु उनकी तुलना में भारतीयों का साहित्य एवं विज्ञान के क्षेत्र में योगदान काफी सीमित है। हमने अपनी मौलिक देन देने के बजाय विदेशो का अनुगमन एवं अनुसरण ही किया है।

(3) **सांस्कृतिक एकीकरण मे बाधा**—भाषावाद की समस्या के कारण विभिन्न क्षेत्रों की संस्कृतियों मे आदान-प्रदान कम हुआ। वे एक-दूसरे के निकट आने की बजाय दूर होती गयी, उनमें विरोध एवं तनाव पैदा हुआ और सांस्कृतिक एकीकरण का मार्ग अवरुद्ध हुआ।

(4) **सांस्कृतिक एकीकरण में बाधा**—भाषावाद की समस्या के कारण विभिन्न क्षेत्रों की संस्कृतियों में आदान-प्रदान कम हुआ। वे एक-दूसरे के निकट आने की वजाय दूर होती गयी, उनमें विरोध एवं तनाव पैदा हुआ और सांस्कृतिक एकीकरण का मार्ग अवरुद्ध हुआ।

(4) **क्षेत्रवाद का विकास**—भाषावाद ने क्षेत्रवाद को जन्म दिया। एक क्षेत्र के लोग एक भाषा का प्रयोग करते है, अत वे अपने ही क्षेत्र को श्रेष्ठ समझने लगे एवं दूसरे क्षेत्रों के विकास के वजाय अपने ही क्षेत्र का विकास करने के लिए दवाव डालने लगे। इससे क्षेत्रीय असन्तुलन की समस्या भी पैदा हुई।

(5) **शिक्षण संस्था मे अशान्ति**—भाषा की समस्या ने युवा वर्ग एवं छात्रों में आन्दोलन एव उपद्रवो को जन्म दिया। क्षेत्रीय भाषा, राष्ट्रीय भाषा एवं अंग्रेजी को लेकर उत्तर एवं दक्षिण की शिक्षण संस्थाओ के छात्रो ने रोष प्रकट किया, शिक्षण संस्थाएं वन्द करनी पड़ीं, शिक्षण सस्थाओ का वातावरण दूषित हो गया तथा विभिन्न भाषाएं बोलने वाले छात्रों में परस्पर सघर्ष हुए।

(6) **आर्थिक हानि**—भाषा विवाद को लेकर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में आगजनी एवं तोड़-फोड की घटनाएं हुई, मकान, दुकाने, आफिस, रेल, डाक व तार कार्यालय जला दिये। व्यापार, संचार एव यातायात व्यवस्था ठप्प कर दी गयी, वाजार वन्द रखे गये, लूटपाट की घटनाएं हुई, मार-पीट हुई। इस प्रकार भाषावाद के कारण कई लोगों को जन-धन की हानि उठानी पड़ी।

(7) **तनाव एवं संघर्ष**—भाषावाद को लेकर अनेक स्थानों पर झगड़े एवं दंगे-फसाद हुए, कई लोगों की जाने गयी एवं अनेक लोगों के साथ अमानवीय व्यवहार किया गया। हम भाषावाद के कारण उत्पन्न तनावों एवं दंगो का उल्लेख कर चुके है।

भाषा समस्या को हल करने के प्रयत्न एवं सुझाव (Efforts and Suggestions to Solve the Language Problem)

भाषा की समस्या को हल करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने कई संवैधानिक प्रयास किये। सविधान की धाराओ, अनुसूचियों एवं अनुच्छेदों में जो प्रावधान किये गये हैं, उनका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। इसके अतिरिक्त **भाषायी प्रान्त कमीशन**, राज्य पुनर्गठन आयोग, 1961 के मुख्यमन्त्रियों के सम्मेलन के सुझावो, त्रिभाषा सूत्र, ससद द्वारा निर्मित 1967 की भाषा कमेटी के सुझावों, आदि पर भी सरकार ने अमल किया है। 1967 मे ही हिन्दी-भाषी प्रान्तों में वाइस-चान्सलरों की बैठक बुलायी गयी जिनमें उन्हें निर्देश दिया गया कि 5 वर्ष के भीतर हिन्दी को लागू करने के प्रयास किये जायें।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भाषा समस्या ने देश के सभी प्रान्तों में घृणा, हिंसा, तनाव और संघर्ष की स्थिति पैदा की जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय एकीकरण को धक्का लगा, देश के विभिन्न भागों मे वसने वाले लोगों में परस्पर घृणा, द्वेष और मनमुटाव को वढ़ावा मिला। अतः यह आवश्यक है कि भाषा की समस्या को सदा के लिए समाप्त कर दिया जाय। इसके लिए हम निम्नांकित उपाय अपना सकते हैं :

(1) **राष्ट्रीय भाषा का विकास**—सम्पूर्ण देश के लिए एक राष्ट्रभाषा होना आवश्यक है और इसका स्थान हिन्दी ही ले सकती है। हमारे संविधान में भी हिन्दी को राष्ट्रभाषा के स्थान पर प्रतिष्ठित किया गया है। महात्मा गांधी, विनोवा भावे, स्वामी दयानन्द एवं लोकमान्य

तिलक, आदि जो कि अहिन्दी प्रान्तों के थे, ने भी इस बात को स्वीकार किया है। हिन्दी मे ही राष्ट्रभाषा बनने के गुण है। आवश्यकता इस बात की है कि अहिन्दी-भाषी प्रान्तों में हिन्दी सीखने के कार्यक्रम मे तेजी लायी जाय।

(2) **शिक्षा का माध्यम प्रान्तीय मातृभाषा** हो जिससे कि शिक्षा का कार्य सरलता से सम्पन्न हो सके और बच्चो को सीखने मे कठिनाई न आये।

(3) **अल्पसंख्यकों की भाषा को उचित संरक्षण** प्रदान किया जाना चाहिए।

(4) **साम्प्रदायिकता पर रोक** लगायी जाय क्योंकि भाषा विवाद खडा करने में सम्प्रदायो का भी योगदान रहा है।

(5) **सभी भाषाओं को फलने-फूलने एवं विकास के अवसर प्रदान किये जायें।** इस प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध करायी जायं कि वे अपने साहित्य एवं शब्दकोश में वृद्धि कर सकें। किसी भी व्यक्ति पर कोई भी भाषा थोपी नहीं जाय। विभिन्न भाषा-भाषी लोग परस्पर स्वेच्छा से एक-दूसरे की भाषाएं सीखें। दूसरे क्षेत्र की भाषा सीखने वाले व्यक्तियो के लिए प्रोत्साहन एवं पुरस्कार की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(6) विनोबाजी का सुझाव है कि **भारत की सभी भाषाएं नागरी लिपि में लिखी जायें।** इससे एक-दूसरे की भाषा सीखने में बड़ी सहायता मिलेगी और एकता के लिए इसका उत्तम उपयोग हो सकेगा। गांधी एवं विनोबा के साहित्य का अधिकाधिक उपयोग हिन्दी के कारण ही हो सका। **विनोबा जी** कहते है, "अगर हिन्दी भाषा का आधार न होता तो मै कश्मीर से कन्याकुमारी तक और असम से केरल तक के गांव-गांव में जाकर भूदान-ग्रामदान का क्रान्तिकारी सन्देश नही पहुंचा सकता था।"

भाषा विवाद को हल करने के लिए सरकार एवं राजनेताओ को सूझ-बूझ से काम लेना होगा। उन्हे अपने संकीर्ण एवं तुच्छ स्वार्थो के स्थान पर राष्ट्रीय हितों का पोषण करना होगा। यदि वे इस प्रकार का दृढ़ संकल्प लें और प्रतिज्ञा करे तो यह समस्या भी शान्तिपूर्वक हल हो जायेगी और राष्ट्रीय एकीकरण में सहायता मिलेगी।

(4) जातिवाद
(CASTEISM)

जातिवाद वह संकुचित भावना है जिसके वशीभूत ही व्यक्ति समाज और राष्ट्र को विशेष महत्व नही देकर अपने जाति-हितों को सर्वोपरि मानता है और अपनी जाति के स्वार्थो की दृष्टि से सोचता है। जातिवाद ने जातियो को आन्तरिक दृष्टि से शक्तिशाली बनाने में योग दिया है। वर्तमान मे जाति के नाम पर शिक्षण संस्थाएं, धर्मशालाएं, औद्योगिक संस्थान, औषधालय, मन्दिर एवं अन्य संगठन पाये जाते है। इन संगठनो के माध्यम से जाति-विशेष की स्थिति को सामाजिक संस्तरण की प्रणाली में ऊंचा उठाने का प्रयत्न किया जाता है। ये [illegible]

[illegible] न्हें अपनी सामाजिक स्थिति [illegible] स्थिति के निर्धारण मे जन्म और जाति का महत्व सापेक्ष दृष्टि से कम होता जा रहा है। अब धन, उच्च शिक्षा, उच्च नौकरी तथा राजनीतिक शक्ति, आदि के आधार पर व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा का निर्धारण होने लगा है। ऐसी स्थिति में अपनी जाति के सदस्यों को अपनी सामाजिक स्थिति को ऊंचा उठाने के अवसर प्रदान करके सामाजिक संस्तरण की प्रणाली में जाति को ऊंचा उठाया जा

सकता है। यही कारण है कि उच्च सामाजिक स्थिति प्राप्त व्यक्ति अपनी जाति के व्यक्तियों को उच्च शिक्षा, राजकीय एव अन्य नौकरियो में प्रवेश, धन कमाने के अवसर तथा राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने का मौका प्रदान करना चाहते है। आज विभिन्न जातियां इसी दिशा में प्रयत्नशील है और जातीय सगठनो के निर्माण मे लगी हुई है, अपनी जाति के लोगो को हर कीमत पर सब प्रकार की सुख-सुविधाएं पहुंचा रही है, चाहे इससे राष्ट्रीय अहित ही क्यों न हो।

जातिवाद का अर्थ (Meaning of Casteism)

जातिवाद या जाति-भक्ति एक जाति के सदस्यों की वह संकुचित भावना है जो समाज या राष्ट्र के सामान्य हितो का ध्यान नही रखते हुए अपनी ही जाति के अन्य सदस्यो के हितों को बढ़ावा देने, उनकी सामाजिक स्थिति को उन्नत करने और उन्हें आगे बढाने के अवसर प्रदान करने के लिए प्रेरित करती है। जातिवाद वह भावना है जो एक जाति के सदस्यों को अपनी ही जाति वालों के उत्थान, एकता एवं सामाजिक स्थिति को ऊंचा उठाने मे मदद करती है। इस भावना के कारण एक जाति के सदस्यों की निष्ठाएं अपनी जाति के लोगो तक ही केन्द्रित हो जाती हैं, वे अपनी जाति के क्षुद्र स्वार्थ के दृष्टिकोण से ही सोच पाते है। उनमें अपनी जाति वालों के प्रति तो अपनेपन की भावना पायी जाती है, परन्तु अन्य जाति वालों के प्रति पृथक्करण की। यह प्रवृत्ति साम्प्रदायिकता की पोषक और राष्ट्रीय एकता में बाधक है।

जातिवाद की संकुचित भावना के कारण व्यक्ति जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी जाति के सदस्यों को ही प्राथमिकता देने का तत्पर रहता है। जातिवाद का अर्थ स्पष्ट करते हुए डॉ. के. एन. शर्मा ने लिखा है, **"जातिवाद या जाति-भक्ति एक ही जाति के व्यक्तियो की यह भावना है जो देश के या समाज के सामान्य हितो का ख्याल न रखते हुए केवल अपनी जाति के सदस्यों के उत्थान, जातीय एकता और जाति की सामाजिक प्रस्थिति को दृढ़ करने के लिए प्रेरित करती हो।"**[1] इस परिभाषा मे दो पक्षो पर जोर दिया गया है—प्रथम, मनोवैज्ञानिक पक्ष पर और द्वितीय, व्यावहारिक पक्ष पर। मनोवैज्ञानिक पक्ष के अन्तर्गत व्यक्ति की भावनाएं और व्यावहारिक पक्ष के अन्तर्गत उसकी क्रियाएं आती हैं। जातिवाद से प्रभावित व्यक्ति अपनी जाति के प्रति न केवल तीव्र भक्ति-भावना रखता है, बल्कि अपनी क्रियाओ द्वारा भी जाति के अन्य लोगों के स्वार्थ की चिन्ता करता है, उन्हें उच्च शिक्षा दिलाने, नौकरी और व्यापार मे प्राथमिकता देने और राजनीति में आगे बढ़ाने का भी प्रयत्न करता है। उसके ऐसा करने से जाति-विशेष में तो आन्तरिक दृढ़ता अवश्य बढ़ती है, परन्तु अन्य जातियो के न्यायपूर्ण हितों की पूर्ति में बाधा पहुंचती है।

काका कालेलकर ने जातिवाद के सम्बन्ध मे लिखा है कि, **जातिवाद अन्ध और परिमित समूह-भक्ति है, जो न्याय के सामान्य सामाजिक मानदण्डों के औचित्य, नैतिकता तथा सार्वभौमिक भ्रातृत्व की उपेक्षा करती है।**

डॉ. एन. प्रसाद ने बतलाया है कि जातिवाद राजनीतिकता मे रूपान्तरित एक जाति के प्रति निष्ठा है।

1 डॉ. के. एन शर्मा, **भारतीय समाज और संस्कृति**, पृष्ठ 318।

इस सम्बन्ध मे के. एम. पन्निकर की मान्यता है कि राजनीतिक भाषा में उपजाति के प्रति निष्ठा का भाव ही जातिवाद है। आपने अन्यत्र लिखा है कि जब तक उपजाति की अवधारणा पायी जाती है तब तक जातिवाद अपरिहार्य है क्योंकि यह एक ऐसी स्थायी निष्ठा है जो हिन्दुओं ने उत्तराधिकार में प्राप्त की है। स्पष्ट है कि जातिवाद वह संकीर्ण भावना है जो एक जाति के सदस्यों को अन्य लोगों के सामान्य हितों की चिन्ता नहीं करते हुए अपनी ही जाति के लोगों को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्राथमिकता देने को प्रेरित करती है।

जातिवाद के विकास के कारक (Factors Responsible for Casteism)

जातिवाद के विकास में अनेक कारणों का योग रहा है जिनमे से प्रमुख निम्न है :

(1) **वैवाहिक प्रतिबन्ध**—वैवाहिक प्रतिबन्ध के अन्तर्गत जाति अन्तर्विवाह की प्रथा आती है। इस प्रथा के अनुसार प्रत्येक के लिए अपने ही जातीय समूह मे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक है। वैवाहिक क्षेत्र के अपनी ही जाति या उपजाति तक सीमित होने की वजह से जीवन-साथी के चुनाव की समस्या आती है। ऐसी स्थिति मे लोगो का यह प्रयत्न रहता है कि अपनी ही जाति वालों को विभिन्न क्षेत्रो में आगे बढने और नौकरियों तथा सुख-सुविधाओं को प्राप्त करने के अवसर मिलें।

(2) **यातायात एवं सन्देशवाहन के साधनों का विकास**—यातायात और सन्देशवाहन के साधनो के विकास ने जातिवाद को राष्ट्रव्यापी बना दिया है। एक ही जाति के लोग देश के विभिन्न कोनों तक पहुंच गये हैं। जाति-बिरादरी वालों के आज प्रान्तीय ही नही, बल्कि अखिल भारतीय सम्मेलन होते हैं जिनमें अपनी जाति के सदस्यो के हितों के संरक्षण पर विचार-विमर्श किया जाता है। आज तो विभिन्न जातियों के पत्र-पत्रिकाएं तक निकलने और संगठन बनने लगे है जिनके फैलाव का क्षेत्र काफी व्यापक है। जातीय आधार पर बने ऐसे संगठनों को रूडाल्फ व रूडाल्फ ने पैरा-कम्यूनिटीज (Para Communities) नाम दिया है।

(3) **जातीय स्थिति को ऊंचा उठाने की लालसा**—जातीय प्रतिष्ठा को ऊंचा उठाने और सामाजिक संस्तरण की प्रणाली में अपनी जाति की स्थिति को उन्नत करने की इच्छा ने जातिवाद के विकास मे विशेष सहायता पहुंचायी है। आज अर्जित प्रस्थिति का महत्व बढता जा रहा है और इसी कारण जाति के सदस्यों को नवीन पैमानों के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों में आगे बढने के अवसर प्रदान करना आवश्यक हो गया है। इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति संकुचित दृष्टिकोण से सोचता और व्यवहार करता है।

(4) **जजमानी प्रथा का विघटन**—जजमानी प्रथा के टूटने से जातिवाद को प्रोत्साहन मिला है। इस प्रथा ने उन्नीसवी शताब्दी के पहले तक विभिन्न जातियों को कार्यात्मक आधार पर एकता के सूत्र में बांध रखा था। प्रत्येक जाति अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्य जातियों पर निर्भर थी। जातियां एक-दूसरे के लिए कुछ आवश्यक सेवाएं प्रदान करती थी और बदले में कुछ वस्तुएं प्राप्त करती थी। यह पारस्परकि निर्भरता प्रत्यक्ष और परम्परागत थी। आज जजमानी प्रथा के टूटने से विभिन्न जातियों के उदग्र सम्बन्ध (Vertical relations) समाप्त हो चुके हैं और एक जाति के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों, जिन्हें क्षैतिज सम्बन्ध (Horizontal Relations) कहते हैं, में दृढ़ता आयी है। इसके फलस्वरूप जातिवाद को प्रोत्साहन मिला है।

(5) **औद्योगीकरण**—औद्योगिक विकास ने जातिवाद को बढ़ाने में योग दिया है। औद्योगीकरण के कारण अनेक नवीन व्यवसायों का विकास हुआ है जिनका किसी जाति विशेष के साथ कोई सम्बन्ध नहीं पाया जाता। आज विभिन्न जाति के व्यक्ति एक ही व्यवसाय में और एक ही जाति के लोग भिन्न-भिन्न व्यवसायों में लगे हुए हैं। औद्योगीकरण के कारण परिवार तथा जाति के वंशानुगत पेशों को चोट पहुंची है। परिणाम यह हुआ है कि आर्थिक सुरक्षा समाप्त हो गयी है। साथ ही जनसंख्या की तेजी से वृद्धि एवं औद्योगिक विकास की धीमी गति के कारण लोगों को योग्यतानुसार नौकरियां प्राप्त करने के अवसर नही मिले है। ऐसी स्थिति मे जाति के द्वारा अपने सदस्यो को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने हेतु लोग अपनी ही जाति वालो को उच्च पद प्राप्त करने के अवसर देना चाहते है।

(6) **नगरीकरण**—नगरों की दशाओं ने भी जातिवाद को प्रोत्साहित किया है। नगरों मे विभिन्न जातियों, धर्मो, संस्कृतियों तथा आर्थिक स्तरों के लोग पाये जाते है। यहां विभिन्न स्वार्थों के आधार पर बने संगठन भी दिखलायी पड़ते है। ऐसी स्थिति में जाति ही पीछे क्यो रहती? नगरों मे घनिष्ठ एवं दृढ़ समूह के रूप में जातीय संगठन बनने लगे जो अपनी जाति के लोगों की स्वार्थ-पूर्ति के कार्य मे लग गये। नगर में माहेश्वरी समाज, खण्डेलवाल युवक मण्डल तथा गुर्जर गौड़ ब्राह्मण पंचायत, आदि के रूप में अनेक जातीय संगठन पाये जाते है।

(7) **जातियों का विभेदीकृत विकास**—जातियों के विभेदीकृत विकास ने जातिवाद को प्रोत्साहित करने में सहायता पहुंचायी है। कुछ जातियों को विशेषाधिकार प्राप्त रहे है और कुछ अनेक निर्योग्यताओ से पीडित रही है। ऐसी दशाओं में कुछ जातियों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने, उच्च नौकरियों में आने तथा धन कमाने एवं अपनी सामाजिक स्थिति को ऊंचा उठाने के विशेष अवसर मिले हैं। परिणाम यह हुआ है कि कुछ जातियों ने आर्थिक व राजनीतिक शक्ति प्राप्त कर ली और कई जातियों को इससे वंचित रहना पड़ा। कुछ जातियां अपने परम्परागत व्यवसायों में ही लगी रही और उन्हे आर्थिक दृष्टि से प्रगति करने और अपने जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने का मौका नहीं मिला। इस स्थिति ने विभिन्न जातियों मे कटुता को बढ़ाया है और परिणामस्वरूप जातीय संगठन दृढ हुए है। विभिन्न जातियों के उदग्र सम्बन्ध कमजोर और क्षैतिज सम्बन्ध मजबूत हुए हैं। इस सारी परिस्थिति ने लोगों को अपनी जाति या उपजाति के संकुचित स्वार्थ के दृष्टिकोण से सोचने के लिए प्रेरित किया है।

(8) **संस्कृतिकरण**—संस्कृतिकरण (Sanskritization) की प्रक्रिया का उल्लेख डॉ. श्रीनिवास ने किया है। संस्कृतिकरण वह प्रक्रिया है जिसमें एक निम्न जाति, ब्राह्मण, क्षत्रिय या प्रभुजाति (Dominant Caste) के खान-पान, रहन-सहन, देवी-देवता, प्रथाओं, रीति-रिवाजों, वेश-भूषा, व्यवहार और जीवन जीने के ढंग को अपनाती है। एक या दो पीढ़ी पहले वह अपने सम्बन्ध किसी ऊंची जाति से बताती है, बाल विवाह करना प्रारम्भ कर देती है, विधवा विवाह पर रोक लगा देती है तथा मांस और मदिरा का त्याग कर देती है। ऐसा करके वह निम्न जाति सामाजिक संस्तरण मे ऊंचा उठना चाहती है। यह कार्य जाति के किसी एक या दो व्यक्तियों द्वारा नहीं वरन् सम्पूर्ण समूह द्वारा एक साथ होता है। संस्कृतिकरण करने वाली जाति में जातिवाद की भावना पैदा होती है, वह अन्य निम्न जातियो से अपने को श्रेष्ठ समझने लगती है। उधर उच्च जातियां संस्कृतिकरण करने वाली जाति की नयी स्थिति को स्वीकार नहीं करतीं। परिणामस्वरूप उच्च एवं संस्कृतिकरण करने वाली जाति के बीच संघर्ष पैदा होता है—यह संघर्ष जातिवाद को और अधिक बढ़ावा देता है।

(9) जातीय संगठन—जातिवाद को विकसित करने में जातीय संगठनों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। आज अनेक जातियो के क्षेत्रीय एव राष्ट्रीय संगठन पाये जाते हैं; जैसे अखिल भारतीय लाड बनिया संघ, अखिल भारतीय ब्राह्मण संघ, 'गुर्जर-गौड़ ब्राह्मण संघ राजस्थान' आदि। इन जातीय संगठनों की अपनी पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं, सम्मेलन एवं गोष्ठियां होती है, चुनाव में व्यक्ति विशेष को ही मत देने पर जोर दिया जाता है। अपनी जाति के सदस्यों को संगठित करने एवं उनके हितों की रक्षा के प्रयत्न भी जातीय संगठन द्वारा किये जाते है।

(10) राजनीति—प्रजातन्त्र में वोट की कीमत होती है और वोट प्राप्त करने का एक तरीका है लोगो में जातीय भावनाओं को उभारा जाय। जिस क्षेत्र में जाटो की बहुलता है उस क्षेत्र से जाट, जिनमें क्षत्रियों, अहीरों, मुसलमानों की बहुलता है उनमें क्षत्रियै, अहीर और मुसलमान को ही चुनाव में उम्मीदवार के लिए चुना जाता है। चुनावो में जाति के नाम पर वोट मांगे जाते और दिये जाते हैं। पंचायत से लेकर संसद तक के चुनावो में यही होता है। जो लोग मंच पर आकर जाति-विहीन एवं वर्ग-विहीन समाज की बात करते है, वे गुप्त रूप से चुनावों मे जातीय आधार पर वोट प्राप्त करने के समझौते करते हैं। इस प्रकार राजनीति ने जातिवाद को बढ़ावा दिया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विविध कारकों ने जातिवाद के विकास में योग दिया है।

जातिवाद के दुष्परिणाम : राष्ट्रीय एकीकरण में बाधक (Evil Effects of Casteism . Hindrance in National Integration)

जातिवाद के फलस्वरूप अनेक गम्भीर समस्याएं उत्पन्न हुई हैं। ये समस्याएं निम्न हैं :

(1) जातिवाद प्रजातन्त्र विरोधी है—आजादी के बाद भारत ने प्रजातन्त्र को अपनाया। स्वतन्त्र भारत के संविधान के अनुच्छेद 15(1) में कहा गया है कि राज्य किसी नागरिक के साथ धर्म, मूल, वंश, जाति, लिंग, जन्म, आदि के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा, किन्तु जातिवाद प्रजातन्त्र के सिद्धान्तो के विरुद्ध है।

प्रजातन्त्र का अर्थ है जनता के लिए जनता द्वारा जनता का राज्य। प्रजातन्त्र के तीन मूल सिद्धान्त है—स्वतन्त्रता, समानता एवं भाई-चारा (Freedom, Equality and Fraternity)। प्रजातन्त्र में प्रत्येक व्यक्ति को विकास के पूर्ण अवसर उपलब्ध होते है, किसी भी व्यक्ति के साथ ऊंच-नीच का भेद-भाव नहीं किया जाता। सभी को समान समझा जाता है चाहे वह राष्ट्रपति का पुत्र हो या चतुर्थ श्रेणी का कर्मचारी; भाई-चारा प्रजातन्त्र का मानसिक पक्ष है। भाई-चारे में समानता भी स्वाभाविक है। प्रजातन्त्र में सभी प्रकार के धर्म, लिंग, रंग, आयु, प्रजाति, आदि से सम्बन्धित लोगों का सहयोग, सहायता एवं त्याग अपेक्षित है। इनके बिना प्रजातन्त्र सफल नहीं हो सकता।

किन्तु **जातिवाद अप्रजातान्त्रिक है**, यह प्रजातन्त्र के तीनों मूल सिद्धान्तो पर प्रहार करता है। जातिवाद में ऊंच-नीच की भावना पायी जाती है। जाति में व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का निर्धारण जन्म से ही होता है, इसमें विवाह, शिक्षा, व्यवसाय सभी का क्षेत्र निश्चित है। जातिवाद व्यक्ति के गुणों पर नही, उसके जन्म पर जोर देता है, जबकि प्रजातन्त्र व्यक्ति का मूल्यांकन उसके गुणों के आधार पर करता है। जातिवाद संकुचित निष्ठा, अन्ध-भक्ति एवं पक्षपात पर आधारित है। जातिवाद प्रजातन्त्र की तरह समानता पर नहीं वरन् जन्म से ही

असमानता पर आधारित है। एक निम्न जाति में जन्म लेने वाला व्यक्ति चाहे कितना ही गुणी, शिक्षित एवं दक्ष क्यों न हो, वह उच्च जाति के व्यक्ति के समकक्ष नहीं माना जायेगा। विभिन्न जातियों के बीच असमानता का सिद्धान्त स्वीकार किये जाने के कारण जातिवाद मे भाई-चारे की भावना का अभाव पाया जाता है। जातीय भेद के कारण जातीय तनाव व द्वेष, विषमता एवं घृणा उत्पन्न होती है।

जातिवाद के वशीभूत हो व्यक्ति सम्पूर्ण समाज एवं राष्ट्र के हित से सोच ही नहीं पाता और केवल अपनी जाति के व्यक्तियों को सब प्रकार की सुख-सुविधाएं एवं राजनीतिक शक्ति प्रदान करना चाहता है। परिणाम यह होता है कि चुनावों में जातिवाद के आधार पर वोट लिये एवं दिये जाते है। कई लोग कहते है कि हम वोट और वेटी तो अपनी जाति वाले को ही देंगे। राजनीतिक दल भी उम्मीदवारों का चयन करते समय क्षेत्र विशेष की बहुसंख्यक जाति का विशेष रूप से ध्यान रखते हैं। पंचायतों, म्यूनिसिपल कमेटियों, विधान सभा एवं संसद के चुनावो के अध्ययन उपर्युक्त बात की पुष्टि करते हैं। डॉ. एम. एन. श्रीनिवास ने मैसूर राज्य का उदाहरण देते हुए लिखा है कि वहां पंचायत के चुनावों से लेकर राज्य के मन्त्रियो एवं सचिवो तक की नियुक्तियो में जातीय आधार अपनाया जाता है। जातिवाद का विष धीरे-धीरे राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक सभी क्षेत्रों में फैल रहा है और आज जातीय निष्ठा में वृद्धि हुई एवं सामाजिक तथा राष्ट्रीय हितों की बलि दी गयी है।

(2) जातिवाद राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में बाधक है—जातिवाद के कारण छोटे-छोटे जातीय समूह सगठित हो जाते है तथा व्यक्ति की सामुदायिक भावना बहुत अधिक संकुचित हो जाती है। वह राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार नही करके जातिगत कल्याण की दृष्टि से सोचता है। समाज के सैकड़ो-हजारों छोटे-छोटे खण्डो में विभक्त हो जाने और अपनी जाति या उपजाति को सर्वोपरि समझने से स्वस्थ राष्ट्रीयता के विकास एवं राष्ट्रीय एकीकरण में बाधा उपस्थित होती है। जातिवाद के कारण संविधान की धारा 15(1) की अवहेलना होती है। इस धारा मे बतलाया गया है कि राज्य किसी के साथ किसी भी आधार पर कोई भेद-भाव नहीं करेगा। वास्तविकता यह है कि अनेक राजनेता और बड़े-बड़े अधिकारी भी जातिवाद की संकुचित मनोवृत्ति के शिकार है जो उन्हें राष्ट्रीय हितों की कीमत पर संकुचित जातिगत स्वार्थों की पूर्ति के लिए प्रेरित करती है।

(3) जातिवाद औद्योगिक कुशलता में भी बाधक है—आज देश में अनेक उद्योग-धन्धों का विकास होता जा रहा है जिनमे योग्य एवं प्रतिभाशाली व्यक्तियों को उच्च पदों पर आसीन करने की आवश्यकता है। होता यह है कि बड़े-बड़े उद्योगों में लोग अपनी ही जाति के व्यक्तियों को उच्च पदों पर आने का अवसर देते हैं। ऐसी स्थिति में औद्योगिक कुशलता में कमी आती है और श्रेष्ठ प्रतिभाओं का लाभ समाज को नहीं मिल पाता। आज यह बात जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में दिखायी पड़ती है।

(4) नैतिक पतन—जातिवाद कुछ सीमा तक नैतिक पतन के लिए भी उत्तरदायी है। जातिवाद की भावना व्यक्ति को पक्षपातपूर्ण व्यवहार के लिए प्रेरित करती है। अनेक नेता, मन्त्री तथा उच्च पद प्राप्त अधिकारी अपनी जाति के लोगों के साथ पक्षपात करते रहे हैं, भाई-भतीजावाद को पनपाते रहे हैं। वे सभी सुविधाएं अथवा लाभ अपनी जाति वालों को पहुंचाने का प्रयत्न करते रहे है। परिणाम यह हुआ है कि राजनीति एवं प्रशासन के क्षेत्र मे भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिला है।

(5) **भेदभाव को बढ़ावा**—जातिवाद व्यक्ति-व्यक्ति के बीच भेदभाव की दीवार खडी कर देता है। व्यक्ति अपनी जाति से ऊपर उठकर समाज, राष्ट्र और मानवता के दृष्टिकोण से सोच ही नहीं पाता। जातिवाद के कारण विभिन्न जातियों के बीच जातीय संघर्ष बढे है। यह सारी स्थिति किसी भी दृष्टि से श्रेयस्कर नही है।

(6) **गतिशीलता में बाधक**—जाति व्यक्ति की गतिशीलता मे भी बाधक रही है। अधिक धनोपार्जन करने, शिक्षा प्राप्त करने एवं प्रशिक्षण के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपना मूल निवास छोड़कर अन्यत्र जाये, किन्तु जातीय प्रेम एवं बन्धन उसे अपना घर छोडकर जाने मे रोडा उपस्थित करते है। एक जाति का व्यक्ति दूसरी जाति के व्यवसायों में दक्ष होने पर भी जातिवाद की भावना के कारण उन्हें ग्रहण नही कर सकता। प्रमुखत: ग्रामीण क्षेत्रो के लिए तो यह बात अधिक सही है। गांवों में जाति का नियन्त्रण इतना कठोर है कि व्यक्ति उसकी अवहेलना नहीं कर सकता, वह अपनी जाति के दायरे तक ही सीमित रहता है। इस प्रकार गतिशीलता के अभाव मे व्यक्ति की प्रगति भी अवरुद्ध हो जाती है।

(7) **भ्रष्टाचार**—जातिवाद की भावना ने सभी क्षेत्रों में भ्रष्टाचार एवं भाई-भतीजावाद को जन्म दिया है। जाति के नाम पर वोट मागना एवं देना, उम्मीदवार खडे करना एक आम बात है। ऐसे व्यक्तियों में राष्ट्रीय निष्ठा के स्थान पर जातीय निष्ठा ही अधिक होती है, लोगो में संकुचित मनोवृत्ति पैदा होती है, सरकारी एवं गैर-सरकारी नौकरियों मे तथा लाभ प्रदान करने में अपनी जाति के व्यक्ति को ही प्राथमिकता दी जाती है। इससे विभिन्न जातियों मे परस्पर अविश्वास, मनमुटाव एवं संघर्ष पैदा होता है। इस प्रकार जब व्यक्ति अपनी जाति के सदस्यो के लिए गैर-कानूनी कार्य भी करने लगता है तो भ्रष्टाचार पनपता है।

(8) **सामाजिक समस्याओं का उदय**—कठोर जातीय नियमों के कारण ही समाज में आज अनेक समस्याए पायी जाती हैं। बाल-विवाह, दहेज प्रथा, विधवा पुनर्विवाह पर रोक, कुलीन विवाह, आदि समस्याएं जातिवाद की ही देन हैं। परिवार एवं विवाह के सन्दर्भ में व्यक्ति जाति द्वारा निर्धारित नियमों का ही पालन करता है क्योंकि वह जानता है कि ऐसा न करने पर उसे जाति से बहिष्कृत कर दिया जायेगा और जाति के सदस्यों का उसे संरक्षण प्राप्त नही होगा। जातिवाद की भावना रूढ़िवादी विचारों की समर्थक एवं नवीन परिवर्तन की विरोधी है। अतः जाति से जनित समस्याएं अनेक प्रयत्नो एवं आन्दोलनों के बावजूद भी समाप्त नही हो पायी है।

(9) **जातीय संघर्ष**—जातिवाद की भावना ने सामाजिक तनाव एवं जातीय संघर्षों को भी जन्म दिया है। जब एक जाति अपने को श्रेष्ठ समझकर अपने सदस्यों का ही पक्ष लेती है और अन्य जातियों से घृणा करती है तो जातियों में परस्पर टकराव पैदा होता है, जातीय दंगे, मार-पीट, तोड-फोड एवं आगजनी की घटनाएं घटती है। जाटो एवं राजपूतो के बीच जातिवाद के आधार पर अनेक संघर्ष हुए हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि जातिवाद व्यक्ति-व्यक्ति के बीच भेदभाव की दीवार खडी करता है। व्यक्ति अपनी जाति से ऊपर उठकर समाज, राष्ट्र और मानवता के दृष्टिकोण से सोच ही नही पाता। यह स्थिति किसी भी दृष्टि से श्रेयस्कर नही कही जा सकती। **डॉ. घुरिये** ने जातिवाद के दुष्परिणामों की ओर संकेत करते हुए लिखा है, "यह जातिवाद की भावना ही है जो दूसरी जातियों के प्रति विरोध उत्पन्न करती है और राष्ट्रीय चेतना की वृद्धि के लिए दूषित वातावरण का निर्माण करती है। यह जातिवाद ही है जिसके विरुद्ध हमें लड़ना है

और इसे पूर्णतया समाप्त कर देना है। यदि जातिवाद की समस्या हल न हुई तो इसका परिणाम यह होगा कि बड़ी संख्या में ऐसे संगठित समूह उत्पन्न हो जायेंगे जो दूसरों के हितों पर कुठाराघात करके अपने हितों को आगे बढ़ायेंगे। इसके फलस्वरूप तीव्र संघर्ष उत्पन्न होंगे।"[1] स्पष्ट है कि जातिवाद राष्ट्रीय एकीकरण के लिए बहुत बड़ी बाधा है, एक गम्भीर समस्या है।

जातिवाद के निराकरण के उपाय (Measures to Eradicate Casteism)

जातिवाद के निराकरण के लिए समय-समय पर अनेक सुझाव दिये जाते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि जातिवाद की समस्या से छुटकारा प्राप्त करने के लिए जाति व्यवस्था को समाप्त कर देना चाहिए। कुछ नेतागण तो यह कहते रहे हैं कि शीघ्र ही जाति विहीन समाज की रचना होगी, लेकिन अभी तक न तो ऐसा हुआ है और न ही निकट भविष्य में इसकी सम्भावना दिखायी देती है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक जाति के ऐतिहासिक और सामाजिक सम्बन्ध पाये जाते हैं जिन्हें समाप्त करना कोई सरल कार्य नहीं है। अतः जातिवाद को समाप्त करने हेतु जाति व्यवस्था को समाप्त करना अव्यावहारिक प्रतीत होता है।

कुछ लोग कानून के द्वारा जाति व्यवस्था और जातिवाद को समाप्त करने का सुझाव भी देते हैं। यद्यपि कानून सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण माध्यम अवश्य है, परन्तु जब तक लोगों की मनोवृत्तियों में परिवर्तन नहीं आता तब तक कानून कोई महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन लाने में सफल नहीं हो सकता। क्या कानून के माध्यम से आज तक बाल-विवाहों को समाप्त और विधवा-विवाहों को प्रोत्साहित किया जा सका है? यदि नहीं, तो फिर कानून के द्वारा जाति व्यवस्था और इसके परिणामस्वरूप पनपने वाले जातिवाद को कैसे समाप्त किया जा सकता है? ऐसी स्थिति में हमें जातिवाद के निराकरण के लिए कुछ अन्य उपायों पर विचार करना चाहिए जो इस प्रकार हैं :

(1) **अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन**—जातिवाद को समाप्त करने के लिए डॉ. घुरिये का सुझाव है कि अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। अन्तर्जातीय विवाह उसी समय प्रचलित हो सकते हैं जब ऐसे विवाहों के लिए देश में उपयुक्त वातावरण तैयार किया जाय। यह तभी हो सकता है जब शिक्षा के माध्यम से लोगों की मनोवृत्तियों में परिवर्तन लाया जाय तथा विभिन्न जातियों के लड़के-लड़कियों को एक-दूसरे के निकट आने का अवसर दिया जाये। डॉ. घुरिये ने बतलाया है कि वास्तव में यदि जाति-प्रथा और जातिवाद को अत्यधिक आघात पहुंचाने वाला कोई तत्व है तो वह है अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन। आवश्यकता इस बात की है कि अन्तर्जातीय विवाह करने वालों को प्रेरणास्वरूप कुछ सुविधाएं प्रदान की जायें।

(2) **उचित शिक्षा**—पी. एच. प्रभु की मान्यता है कि उचित शिक्षा के द्वारा व्यवहार के आन्तरिक स्रोतों पर प्रभाव डालकर जातिवाद को दूर किया जा सकता है। शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए कि बच्चों में जाति-पांति सम्बन्धी भेदभाव उत्पन्न ही नहीं हो, धर्म-निरपेक्षता को बढ़ावा मिले और जातिवाद के विरोध में स्वस्थ जनमत का निर्माण हो। शिक्षा और सामाजिक सम्पर्क के द्वारा एक जातीय समूह की दूसरे समूह के प्रति कलुषित धारणाओं को बदला जा सकता है। लोगों की मनोवृत्तियों को बदलने के लिए चलचित्रों का प्रयोग किया जा सकता है।

1 G S Ghurye, *Caste, Class and Occupation*, Chap. XII.

(3) **वैकल्पिक समूहों का निर्माण—डॉ. राव के अनुसार वैकल्पिक समूहों के निर्माण से जातिवाद की समस्या को हल किया जा सकता है।** यहां लोग जातीय समूहो के माध्यम से ही अपनी सामूहिक प्रवृत्तियों को व्यक्त करते हैं। यदि उन्हें वैकल्पिक समूह उपलब्ध हों तो वे इनकी सदस्यता प्राप्त कर इनके माध्यम से सामूहिक मनोवृत्तियों को व्यक्त तथा अपनी विविध क्रियाओ को संगठित कर सकेंगे। सामाजिक और सांस्कृतिक संगठनों के निर्माण से विभिन्न जातियों के व्यक्तियों को एक-दूसरे के निकट आने और एक-दूसरे को समझने का मौका मिल सकेगा। ऐसी स्थिति में उनमें समानता और बन्धुत्व की भावना पनपेगी और जातिवाद दूर हो सकेगा। यहां यह सावधानी रखना अत्यन्त आवश्यक है कि कही इन संगठनों में भी जातिवादिता प्रवेश न कर जाय।

(4) **विभिन्न जातियों में आर्थिक एवं सांस्कृतिक समानता को प्रोत्साहन—श्रीमती इरावती कर्वे ने सुझाव दिया है कि जातिवाद से छुटकारा प्राप्त करने के लिए विभिन्न जातियो में आर्थिक एवं सांस्कृतिक समानता लाना आवश्यक है।** इस समानता के आने पर लोग अपनी ही जाति के संकुचित दायरे में सीमित नही रहेगे और उन्हें विभिन्न जाति के लोगों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में सहायता मिलेगी।

(5) **जाति शब्द का बहिष्कार**—जातिवाद को समाप्त करने तथा अस्पृश्यता निवारण हेतु **सितम्बर 1955 मे दिल्ली मे आयोजित सेमिनार में सुझाव दिया गया कि जाति शब्द का कम से कम प्रयोग किया जाय।** सेमिनार में बताया गया कि सरकार के द्वारा यह प्रयत्न किया जाना चाहिए कि प्रार्थना-पत्रों, स्कूल के रजिस्टरों, धर्मशालाओं तथा दुकान, आदि के नामों में जाति शब्द का कही कोई प्रयोग नहीं किया जाय। यह सुझाव केवल जाति व्यवस्था की ऊपरी सतह को प्रभावित करने वाला ही है।

/ (6) **सांस्कृतिक एकीकरण को प्रोत्साहन—डॉ. श्रीनिवास** ने बताया है कि वयस्क मताधिकार प्रणाली, पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से होने वाली क्रान्ति, शिक्षा का प्रचार, पिछड़ी जातियो का उत्थान तथा उनके रहन-सहन के तरीकों पर उच्च जातियो की संस्कृति के प्रभाव से जाति व्यवस्था के बहुत-से दोष दूर हो सकेगे। इन दोषों मे से जातिवाद भी एक है।

(7) **जातीय संगठनों पर प्रतिबन्ध**—जातिवाद को समाप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि जाति के नाम पर बनने वाले क्षेत्रीय एवं प्रान्तीय संगठनो पर रोक लगा दी जाय क्योंकि ये संगठन ही जातिवाद की भावना पैदा करने एवं उभारने के लिए उत्तरदायी हैं। इसके लिए कानूनी उपायों के साथ-साथ जनमत को जागृत करने का प्रयास भी किया जाना चाहिए।

(8) [illegible] के लिए यह आवश्यक है कि व्याव[illegible] केवल पुस्तकों की शोभा बनक[illegible] होते हैं। उदाहरण के लिए, अन्तर्जातीय विवाह को कानूनी स्वीकृति प्राप्त है, किन्तु इस प्रकार का विवाह करने वाले को आर्थिक संरक्षण भी प्राप्त होना आवश्यक है। इसी प्रकार से छुआछूत को समाप्त करने के लिए बनाये गये सामाजिक विधान भी अधिक कारगर सिद्ध नहीं हुए हैं।

(9) **जातिगत राजनीति की समाप्ति**—पिछले कुछ वर्षों में पंचायतों से लेकर संसद तक के चुनावों में जाति के आधार पर उम्मीदवारो का चयन किया गया है और मत दिये एवं लिये जाते रहे हैं। जब तक जाति के आधार पर चुनाव लड़े जाते रहेंगे तब तक जातिवाद

समाप्त नही हो सकता क्योंकि जो उम्मीदवार जाति के आधार पर चुनाव जीतता है, उसे अपनी जाति के सदस्यो के काम करने ही पड़ते है, उनके प्रति पक्षपात एवं सहानुभूति रखनी ही होती है। ऐसा होने पर जातिवाद समाप्त कैसे हो सकता है। अत. जातिगत राजनीति को समाप्त करना जातिवाद को समाप्त करने के लिए आवश्यक है।

(10) **आर्थिक विकास**—जातिवाद से छुटकारा प्राप्त करने के लिए आर्थिक विकास अत्यन्त आवश्यक है। आर्थिक विकास से लोगो को रोजगार प्राप्त करने की सुविधा उपलब्ध और बेरोजगारी समाप्त हो सकेगी। इसका परिणाम यह होगा कि नौकरियां आदि प्राप्त करने के लिए लोगो को अपनी जाति वालो के पास नही दौड़ना पड़ेगा। अतः देश के आर्थिक विकास पर विशेष जोर देना आवश्यक है।

जातिवाद के निराकरण हेतु किये गये प्रयत्न (Efforts Made to Remove Casteism)

स्वतन्त्र भारत में जातिवाद को समाप्त करने हेतु अनेक प्रयत्न किये गये है। उदाहरण के रूप मे, साक्षरता के प्रसार, वैकल्पिक समूहों के निर्माण, जाति तथा धर्म के आधार पर सबके साथ समानता के व्यवहार को प्रोत्साहन देने और आर्थिक एवं सांस्कृतिक समानता लाने हेतु अनेक कदम उठाये गये है। यहां पिछड़ी जातियों, अछूतों एवं जनजातियों की निर्योग्यताओं को समाप्त कर उन्हें उच्च जातियो के समकक्ष लाने का प्रयत्न भी किया गया है। 'अस्पृश्यता निवारण अधिनियम, 1955' के द्वारा अस्पृश्यता को कानून के द्वारा समाप्त कर दिया गया है। पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से देश के औद्योगिक विकास का भी भरसक प्रयास किया गया है ताकि लोगो को नौकरियां प्राप्त हो सकें। जैसे-जैसे साक्षरता बढती है, स्कूलों एवं कॉलेजो मे विभिन्न जातियो के बालक-बालिकाओं को एक-दूसरे के साथ अध्ययन एवं सम्पर्क स्थापित करने के अवसर बढते हैं, अन्तर्जातीय विवाहो की संख्या मे वृद्धि होती है, औद्योगीकरण और नगरीकरण की गति तीव्र होती है, उसके साथ ही साथ जातिविहीन वातावरण की सृष्टि और जातिवाद की संकुचित भावना का अन्त हो सकेगा।

जातिवाद की सम-सामयिक प्रवृत्तियां
(CONTEMPORARY TRENDS IN CASTEISM)

औद्योगीकरण, नगरीकरण, यातायात के विकसित साधनों, छापाखाने के आविष्कार एवं नवीन शिक्षा, आदि के प्रभाव के कारण जाति व्यवस्था में अनेक परिवर्तन आये हैं और जातिवाद का नवीन रूप विकसित हुआ है। जाति के विवाह, खानपान, व्यवसाय एवं छुआछूत से सम्बन्धित परम्परागत नियमों मे परिवर्तन हुए हैं, जाति की सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृढ़ता शिथिल हुई है। पहले व्यक्ति का जीवन गांव एवं नगर तक ही सीमित था। अतः वह परिवार, नातेदारी, धर्म एवं जातीय बन्धनों एवं नियमों से बंधा हुआ था। जाति के नियमों को तोड़ने अथवा उनका उल्लंघन करने का अर्थ होता था सामाजिक बहिष्कार, निन्दा एवं आलोचना जो व्यक्ति की सामाजिक स्थिति एवं कभी-कभी तो उसके जीवन को ही संकट में डाल देती थी। तब जातिवाद का एक ही उद्देश्य था, विभिन्न जातियों के बीच पायी जाने वाली सांस्कृतिक भिन्नता एवं सामाजिक दूरी को बनाये रखना तथा साथ ही रक्त की पवित्रता को बनाये रखने के लिए विभिन्न जातियो के बीच विवाह की सम्भावनाओं पर नियन्त्रण रखना।

किन्तु आज जातिवाद का रूप बदला है, अब सांस्कृतिक एवं सामाजिक भिन्नता को बनाये रखने के बजाय जातिवाद का नारा बुलन्द कर राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक हितों

एवं उद्देश्यो को पूरा किया जाता है। पहले जातिवाद का नारा केवल एक जाति विशेष द्वारा ही दिया जाता था, किन्तु आज कई जातियां मिलकर अपना एक संगठन बनाती हैं एवं राजनीतिक-आर्थिक लाभ हड़प लेना चाहती हैं। कई अनुसूचित जातियो ने मिलकर एक ही जातीय संघ बनाकर नौकरी एवं विभिन्न पदों पर आरक्षण की व्यवस्था को लेकर आन्दोलन किए हैं। इसके परिणामस्वरूप उच्च जातियो ने भी आरक्षण को हटाने की मांग की है इस प्रकार का विवाद बिहार से प्रारम्भ हुआ और अब वह उत्तर प्रदेश, राजस्थान एवं अन्य प्रान्तों में भी जोर पकड़ता जा रहा है। ऊपरी तौर पर अपने आपको धर्म-निरपेक्ष एवं असाम्प्रदायिक बताने वाले तथा वर्गविहीन एवं जातिविहीन समाज की स्थापना का दावा करने वाले राजनीतिज्ञ भी अवसर आने पर जातिवाद का सहारा लेते है एवं अपना हित साधन करते हैं। **रजनी कोठारी**[1] ने राजनीतिक प्रभाव से विकसित होने वाले जातिवाद का अपनी पुस्तक में सुन्दर उल्लेख किया है। **रूडोल्फ एवं रूडोल्फ**[2] ने जाति की उदग्र (Vertical) तथा समानान्तर (Horizontal) गतिशीलता के लिए जातिवाद की भावना को महत्वपूर्ण माना है। जातिवाद के आधार पर जातीय संगठन बनाये जाते हैं और जातियां सांस्कृतिक व सामाजिक गतिशीलता ग्रहण कर अपना आधुनिकीकरण करती हैं।

उपर्युक्त उल्लेख से स्पष्ट है कि जातिवाद का परम्परात्मक स्वरूप बदल रहा है और अब वह सामाजिक-सांस्कृतिक विशेषताओं को बनाये रखने की अपेक्षा आर्थिक एवं राजनीतिक स्वार्थो की पूर्ति के प्रति अधिक सजग है।

राष्ट्रीय एकीकरण में बाधक अन्य कारक
(OTHER FACTORS AS HINDRANCE TO NATIONAL INTEGRATION)

(1) धार्मिक पूर्वाग्रह (Religious Prejudices)—भारत में अनेक धर्मों का प्रचलन रहा है, किन्तु कभी-कभी छोटे-छोटे स्वार्थो को लेकर विभिन्न धर्मावलम्बियों के बीच तनाव और संघर्ष हुए है, अधिकांशतः हिन्दुओं और मुसलमानों में। हिन्दू एवं मुस्लिम धर्म में टकराव उस समय प्रारम्भ हुआ जब मुसलमान आक्रमणकारी के रूप में यहाँ आये और उन्होंने यहाँ के मूल निवासियो को जबरन मुसलमान बनाया। इस प्रकार धार्मिक पूर्वाग्रहों ने भी विभिन्न धर्मावलम्बियो के बीच फूट, तनाव और मतभेद पैदा किया जिससे राष्ट्रीय एकता को धक्का लगा।

(2) उग्रपंथी विचार एवं हिंसात्मक गतिविधियाँ—कई ऐसे दल और संगठन हैं जो हिंसा में विश्वास करते हैं और उन्होंने अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए हिंसा का सहारा लिया है। नक्सलवादियो ने बंगाल, बिहार, उडीसा, आन्ध्र और अन्य प्रान्तों में तोड-फोड और मारकाट की। फासिस्ट और माओवादी विचारधारा के समर्थकों ने भी समय-समय पर हिंसा की घटनाएँ की हैं। आनन्द मार्ग के प्रणेता प्रभात सरकार उर्फ आनन्द मूर्ति का विचार है कि प्रजातन्त्र पीडतन्त्र या मूर्खतन्त्र है। वे प्रजातन्त्र के स्थान पर एकतन्त्र में विश्वास करते हैं तथा इससे मुक्ति के लिए रक्त-क्रान्ति को आवश्यक मानते हैं। इस प्रकार के प्रतिक्रियावादी और तोड़-फोड़ करने वाले तत्वों ने भी राष्ट्रीय एकीकरण को ठेस पहुंचाई है।

(3) अत्यधिक आर्थिक विषमता—राष्ट्रीय एकीकरण को आर्थिक विषमता ने भी खतरे में डाला है। दिनोंदिन बढ़ती महँगाई, बेकारी और गरीब-अमीर के बीच बढ़ती खाई ने भी

1 Rajni Kothari, *Caste in Indian Politics.*
2 Lloyd I. Rudolph and S. H. Rudolph, *The Modernity of Tradition.*

लोगो के बीच विद्रोह की भावना पैदा की है। देश में करोड़ो लोग गरीबी की रेखा से भी नीचे का जीवन व्यतीत कर रहे है। दूसरी ओर कुछ लोग कालाबाजारी, स्मगलिंग, मुनाफाखोरी, मिलावट औ. सग्रह करके सम्पन्न बन रहे है। प्रो. एम. वी माथुर[1] का मत है कि ऊपरी तौर पर तो ऐस लगता है कि हमारे देश में होने वाली घटनाओं के पीछे साम्प्रदायिकता, भाषावाद और क्षे.वाद का हाथ है, किन्तु इसके मूल में विकास की कमी और उपलब्ध साधनो का उचित वितरण न होना है। इस आर्थिक विषमता ने भ्रष्टचार को जन्म दिया है। अत्यधिक आर्थिक विषमता विभिन्न वर्गो मे ईर्ष्या-द्वेष, अशान्ति और संघर्ष के लिए उत्तरदायी है। ऐसी स्थिति मे राष्ट्रीय एकता मे बाधा उत्पन्न होती है।

(4) राष्ट्रीय जागृति की कमी ने भी विघटनकारी तत्वो को खुलकर खेलने का अवसर दिया है और उन्होने राष्ट्रीय एकता पर कुठाराघात किया है।

(5) राष्ट्रीय चरित्र मे गिरावट ने भी एकीकरण मे बाधा उत्पन्न की है।

(6) स्वार्थपूर्ण नेतृत्व और राजनीतिक अवसरवादिता ने भी राष्ट्रीय हितो के स्थान पर वैयक्तिक और दलीय हितों को महत्व देकर लोगो मे फूट, तनाव और संघर्ष को जन्म दिया है। राजनीतिक दल धर्म, भाषा और जाति के नाम पर चुनाव जीतने का पूरा प्रयत्न करते है। वे प्रादेशिक एवं क्षेत्रीयता की संकीर्ण भावनाओं को पनपाते और विघटनकारी तत्वो से अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए सांठ-गांठ करते है।

(7) विकास योजनाओ की असफलताओ ने भी लोगो में असन्तोष और रोष पैदा किया है।

(8) राज्यो और केन्द्रो के तनावपूर्ण सम्बन्धों ने भी एकता की भावना को ठेस पहुंचाई है।

(9) छात्र असन्तोष ने भी विभिन्न आन्दोलनो को जन्म दिया है और इन आन्दोलनों मे छात्रो ने तोड़-फोड और हिंसात्मक उपायों का सहारा लिया है।

इस प्रकार हम देखते है कि समय-समय पर विभिन्न कारकों ने राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग मे बाधा उपस्थित की है। इन बाधाओं के कारण देश मे समय-समय पर हिंसा की आग भड़की है। प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ सम्पन्न हुई हैं, पृथकतावादी शक्तियों ने सिर उठाया है, राष्ट्रीय दृढ़ता का ह्रास हुआ है, वाह्य आक्रमण और आन्तरिक संकट पैदा हुए हैं, राष्ट्रीय शक्ति और स्रोतों की हानि हुई है। देश में राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक अस्थिरता उत्पन्न हुई है। साथ ही स्वार्थी तत्वो ने 'बहुजन हिताय' की कीमत पर अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति की है। अत आवश्यकता इस बात की है कि राष्ट्रीय एकीकरण में बाधक इन तत्वों से शक्ति के साथ निपटा जाय और एक सशक्त राष्ट्र का निर्माण किया जाय। राष्ट्रीय एकीकरण को बनाये रखने के लिए जिन प्रयत्नों की आवश्यकता है, हम यहाँ उनका उल्लेख करेंगे।

राष्ट्रीय एकीकरण के उपाय
(MEASURES FOR NATIONAL INTEGRATION)

राष्ट्रीय एकीकरण को बनाये रखने के लिए अग्रलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं :

1 "Lot of things happened in our country in the name of communal disturbances, linguistic disturbances, regional rivalaries but their root cause lies in having lack of development and lack of equitable distribution of whatever we have got."
—*Prof. M V Mathur*

(1) सारे देश में राष्ट्रीय एकीकरण के लिए प्रचार-प्रसार किया जाय और इसके लिए रेडियो, सिनेमा, टेलीविजन, अखवार, पत्र-पत्रिकाओ आदि का उपयोग किया जाय। वर्तमान समय में ये सभी साधन जनमत-निर्माण के सशक्त साधन है। जनता को ऐसे लोगों से सावधान रहने को कहा जाय जो साम्प्रदायिक और धार्मिक विद्वेष फैलाते है और ऐसे लोगो की सार्वजनिक रूप से निन्दा की जानी चाहिए।

(2) शिक्षण संस्थाओं मे सभी धर्म, प्रान्त, भाषा, सस्कृति, आदि से सम्बन्धित लोगों को एक ही साथ शिक्षा प्रदान की जाय। जाति, धर्म और सम्प्रदाय के आधार पर चलने वाली ऐसी शिक्षण संस्थाओं एवं छात्रावासों पर रोक लगायी जाय जो धार्मिक और साम्प्रदायिक पूर्वाग्रह पैदा करते हैं। शिक्षा का अधिकाधिक प्रसार किया जाय क्योंकि अज्ञानता अनेक बुराइयों को जन्म देती है। राष्ट्रीय स्तर पर ऐसे विश्वविद्यालयों की स्थापना की जाय जो सभी धर्मों के सिद्धान्तों की शिक्षा प्रदान करें। शिक्षण संस्थाओं में राष्ट्रीय गान के बाद ही शिक्षण प्रारम्भ किया जाय तथा सभी छात्रों में समभाव, राष्ट्रीयता और देश-प्रेम की भावना पैदा की जाय।

(3) विभिन्न प्रकार के धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों (prejudices) को समाप्त किया जाय और इसके लिए जनमत तैयार किया जाय।

(4) राजनीतिक दल जाति, जनजाति एवं क्षेत्रीय भावनाओं को छोड़ें और राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखकर कार्य करें। उन्हे वोट की राजनीति से ऊपर उठ कर देश हित को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी चाहिए।

(5) अन्तर्प्रान्तीय सहयोग को बढावा दिया जाय। राष्ट्रीय स्तर पर इस प्रकार के खेलों, शिविरों, सांस्कृतिक कार्यक्रमो, आदि का आयोजन किया जाय जिसमें सभी प्रान्तों के व्यक्ति भाग ले सकें ताकि विभिन्न प्रान्तों में परस्पर मेल-मिलाप एवं सहयोग की भावना उत्पन्न हो सके।

(6) जनजातियों और अल्पसंख्यकों के हितों को भी उचित संरक्षण प्रदान किया जाय जिससे वे अपने को उपेक्षित न समझें और उनमें हीनता एवं उग्रता की भावना न पनपे।

(7) प्रतिक्रियावादियों, फासिस्ट ताकतो, माओवादियों और ऐसे ही अन्य संगठनों पर रोक लगायी जाय जो हिंसा और आतंक में विश्वास करते हों। ऐसे तत्वों से निपटने के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था की जाय।

(8) केन्द्र एवं प्रान्तों के आपसी सीमा-विवादों, नदी जल विवादो, आदि के लिए इस प्रकार के ट्रिब्यूनल बनाये जायें जिनमें सम्बन्धित पक्षो के भी प्रतिनिधि हों ताकि वे अपनी वात भी कह सकें और उनके द्वारा लिये गये निर्णयो का पूर्ण निष्ठा के साथ पालन किया जा सके।

(9) सभी भाषाओ की शिक्षा देने के साथ-साथ हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा बनाने के लिए प्रचार, प्रसार एवं प्रशिक्षण का कार्य किया जाय। हिन्दी अहिन्दी भाषी प्रान्तों पर थोपी नहीं जाय वरन् उन प्रान्तों में ऐसे प्रयास किये जायँ कि वे स्वयं ही हिन्दी को अपनाने के लिए आग्रह करें। अंग्रेजी को ऐच्छिक विषय के रूप में चालू रखा जाय।

(10) जो संगठन, सेनाएँ एवं दल लोगों में प्रान्तीयता और भाषायी भावनाएँ भड़काकर समूह मनोविज्ञान का शोषण करते हैं, उन पर प्रतिवन्ध लगाये जायें।

(11) सभी प्रान्तों और लोगों के आर्थिक हितों की रक्षा की जाय। केन्द्र द्वारा प्रारम्भ की जाने वाली विकास योजनाएँ लागू करते समय प्रान्त की आर्थिक स्थिति, जनसंख्या और उपलब्ध साधनों का भी ध्यान रखा जाय तथा उद्योगों का केन्द्रीकरण न किया जाय। ऐसा करने से उन क्षेत्रो में पानी, बिजली, गन्दी बस्तियों, मकानों और अपराधों की समस्या पैदा होती है।

(12) यातायात के साधनों (सड़कों आदि) का अधिकाधिक विकास कर लोगों को भौगोलिक गतिशीलता के लिए प्रोत्साहित किया जाय ताकि वे अपने घर, गॉव और प्रान्त छोड़कर बाहर जाये और कूपमण्डूकता एवं संकीर्णता से मुक्ति पायें। ऐसा होने पर वे अपने विचारों में विश्व-दृष्टिकोण पैदा कर सकेंगे।

(13) अधिकाधिक धर्म-निरपेक्ष मूल्यों को बढ़ावा और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को प्रोत्साहन दिया जाय ताकि मानव धर्म और मानवीय दृष्टिकोण का तार्किक विकास हो।

(14) प्रो. रजनी कोठारी ने राष्ट्रीय एकीकरण के लिए **समाज के सब वर्गों में राजनीतिक व्यवस्था के प्रवेश का सुझाव** दिया है। आपके अनुसार, "भारत जैसे विशाल देश में जहाँ इतने विविध प्रकार के लोग रहते हैं, एकता की स्थापना इसी से हो सकती है कि सब तत्वों को राजनीतिक सत्ता व अधिकार में भाग दिया जाय और सबको साथ लेकर चला जाय। इसके लिए जरूरी है कि समाज के सब वर्गों का राजनीतिक व्यवस्था में प्रवेश हो। राजनीति की इस रचनात्मक भूमिका से ही एकीकरण की प्रवृत्तियों को बल मिलता है।"[1] राजनीतिक व्यवस्था में सब वर्गों को भागीदार बनाना आवश्यक है।

राष्ट्रीय एकीकरण हेतु प्रयत्न
(EFFORTS MADE FOR NATIONAL INTEGRATION)

आजादी के बाद से ही राष्ट्रीय एकीकरण की आवश्यकता महसूस की जाने लगी थी क्योंकि जो एकता देश में आजादी के संघर्ष के दौरान पैदा हुई, वह स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद लड़खड़ाने लगी थी और देश में अनेक स्थानों पर भाषावाद, क्षेत्रवाद, जातिवाद, साम्प्रदायिकता, आदि को लेकर कई दंगे और संघर्ष हुए थे। इन विघटनकारी घटनाओं को रोकने और एकीकरण को प्रोत्साहन देने के लिए 1961 में भारत सरकार ने भावात्मक एकीकरण समिति (Emotional Integration Committee) की स्थापना की। इस समिति के उद्घाटन के अवसर पर श्री नेहरू ने एकीकरण के विभिन्न सांस्कृतिक, शैक्षणिक, भाषायी और प्रशासकीय पक्षों को स्पष्ट किया। नेहरूजी स्वयं राष्ट्रीय एकीकरण के महान् समर्थक थे। उन्होंने समय-समय पर एकीकरण के लिए पुरजोर कोशिश की। भारत के 14वें स्वतन्त्रता दिवस के अवसर पर लाल किले से प्रसारित अपने भाषण में श्री नेहरू ने राष्ट्रीय एकीकरण पर बल देते हुए कहा था, "भारत मे जबकि नये सूर्य का उदय हो रहा है, हम सभी के लिए यह उपयुक्त होगा कि हम सही मार्ग पर रहें, धीरे-धीरे एकता की ओर बढ़ें, स्वतन्त्रता की रक्षा करे और राष्ट्रीय समृद्धि के लिए कार्य करें।"[2] भारतीय एकीकरण समिति ने कई निर्णय लिये जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं—(1) यदि कोई व्यक्ति या समूह भारतीय संघ से पृथक् होने की वकालत करता है तो ऐसा करना अपराध माना जायेगा। (2) इंजीनियरिंग, मेडिकल एवं वन विभाग की अखिल भारतीय सेवाएँ बनायी जायें तथा इन सेवाओं में अफसरों का क्रमावर्तन (Rotation)

1 Rajni Kothari, *Politics in India*, p 337.
2 J. L. Nehru, quoted by G. S. Ghurye, *op cit.*, p. 499.

हो। (3) प्रत्येक प्रान्त के उच्च न्यायालय में एक न्यायाधीश उस प्रान्त के बाहर का हो। (4)अल्पसंख्यको की भाषा को सरक्षण प्रदान किया जाय।

28 सितम्बर, 1961 को त्रि-दिवसीय राष्ट्रीय एकीकरण कान्फ्रेंस का दिल्ली मे आयोजन किया गया। राष्ट्रीय एकीकरण समिति तथा सन् 1958 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एवं सन् 1961 में प्रान्तों के मुख्यमन्त्रियों की बैठकों मे प्रकट किये गये विचारो एव सुझावो का विस्तारपूर्वक लेखा-जोखा किया गया। इस कान्फ्रेस ने निम्नांकित निर्णय लिए—(1) लोगों मे समझ, पारस्परिक सद्भाव और राष्ट्रीय दृढता पैदा करने के लिए सभी राज्यो के विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों मे दूसरे प्रान्तों के अध्ययन करने वाले छात्रो को भी छात्रवृत्तियाँ, प्रवेश और अन्य सुविधाएँ दी जायें। (2) भारत/मे सभी स्कूलो मे शिक्षण कार्य राष्ट्रगान के बाद ही प्रारम्भ किया जाय। (3) राष्ट्रीय एकीकरण का विकास करने के लिए राजनीतिक दलों, प्रेस, छात्रों एवं सामान्य नागरिको के लिए व्यवहार के नियम तय किये जायें। (4) इस कान्फ्रेंस में राष्ट्रीय एकता परिषद् की स्थापना करने का सुझाव भी दिया गया जिसके अध्यक्ष प्रधानमन्त्री होगे। (5) यह परिषद् छात्रो, राजनीतिक दलो, प्रेस एवं जनता के लिए व्यवहार के नियम बनायेगी तथा अल्पसंख्यको की शिकायते दूर करने के सुझाव देगी। राजनीतिक एवं अन्य उद्देश्यों के लिए किये जाने वाले उपवास के औचित्य पर भी विचार करेगी। (6) राष्ट्रीय एकीकरण के लिए आर्थिक कार्यक्रमो को लागू करने में क्षेत्रीय सन्तुलन लाया जाय तथा अल्पसंख्यकों एवं ग्रामीण क्षेत्रों के विकास पर अधिक जोर दिया जाय। (7) सभी प्रकार के झगड़ों का निपटारा शान्तिपूर्ण तरीकों से हो।

सन् 1961 में राष्ट्रीय एकीकरण परिषद् की स्थापना इन्दिरा गांधी की अध्यक्षता मे हुई जिसके सोलह सदस्य थे। इस परिषद् ने अपनी रिपोर्ट में एकीकरण के लिए निम्नांकित सुझाव दिये : (1) नौकरी में समुदायों की संख्या के आधार पर स्थान सुरक्षित नही किये जायँ। (2) अल्पसंख्यक समुदायों को व्यावसायिक एवं तकनीकी प्रशिक्षण सुविधाएँ दी जायँ तथा उन्हें सरकारी और गैर-सरकारी सेवाओ, उद्योग एवं वाणिज्य मे सेवा करने के अवसर प्रदान किये जायँ।

मार्च सन् 1968 में राष्ट्रीय एकीकरण परिषद् की तीन उप-समितियाँ बनायी गयी जो साम्प्रदायिकता, क्षेत्रीय विभेद और जन-शिक्षण एवं प्रचार-प्रसार से सम्बन्धित थीं। इस परिषद् की तीनों कमेटियों ने राष्ट्रीय एकीकरण के लिए निम्नांकित सुझाव दिये ·

साम्प्रदायिक कमेटी ने अफवाहें फैलाने, उत्तेजक समाचार छापने, साम्प्रदायिक तनावों को बढ़ावा देने, पूजा-गृहों एवं धार्मिक समाजों में साम्प्रदायिकता का प्रचार करने, आदि पर रोक लगाने के लिए कठोर कार्यवाही करने की सलाह दी तथा साम्प्रदायिक दंगों की निष्पक्ष जाँच कराने की बात कही। नागरिकों मे परस्पर सद्भाव और सामंजस्य पैदा करने के लिए जिला और राज्य स्तर पर नागरिक परामर्श समितियो की स्थापना करने का भी सुझाव दिया।

क्षेत्रीयता की समस्या से सम्बन्धित कमेटी ने भाषा और सीमा विवादो को सुलझाने के लिए स्थायी समिति के निर्माण का सुझाव दिया। अन्तर्राज्यीय जल-विवादो का निपटारा अन्तर्राज्यीय जल-विवाद अधिनियम, 1956 (Inter-State Water Dispute Act, 1956) के आधार पर हो। क्षेत्रीय एवं आर्थिक विषमता को दूर करने के प्रयत्न किये जायँ जिनका आधार जनसंख्या न होकर पिछड़ापन हो। जन आक्रोश को भड़काने वाले एवं क्षेत्रीय भावना पैदा करने वाले संगठनो और सेवाओ पर रोक लगा दी जाय।

शिक्षा तथा जन समूह संचार समिति ने केन्द्र द्वारा एक राष्ट्रीय बोर्ड की स्थापना की बात कही जो कि पाठ्य-पुस्तको का निर्धारण करे। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा को बढ़ावा दिया जाय एवं विश्वविद्यालयों में अन्य राज्यो के छात्रों को भी योग्यता छात्रवृत्तियाँ दी जायँ।

सन् 1969 में 'राष्ट्रीय एकता परिषद्' की स्थायी समिति ने राजनीतिक दलों से अपील की कि वे साम्प्रदायिक मेल-मिलाप एवं आपसी सहयोग बढाने हेतु जन-आन्दोलन चलायें। नवम्बर 1970 में राष्ट्रीय एकता परिषद् की बैठक में एक 'संगठन समिति' बनायी गयी। इसने सुझाव दिया कि साम्प्रदायिकता को किसी भी रूप में बढ़ावा नहीं दिया जाय तथा अल्पसंख्यको की समस्याएँ हल की जानी चाहिए। दिसम्बर 1970 में अखिल भारतीय साम्प्रदायिकता विरोधी समिति का गठन किया गया। इसने सुझाव दिया कि साम्प्रदायिक संगठनो पर कानूनी प्रतिबन्ध लगा दिये जायें। 1976 मे राष्ट्रीय एकता से सम्बन्धित समस्याओं पर गम्भीरता से विचार करने के लिए दो कार्य दल बनाये गये, इसने साम्प्रदायिक एवं अन्य प्रकार की हिंसा की समाप्ति का सुझाव दिया। इसने बताया कि अल्पसंख्यकों की रोजगार सम्बन्धी एवं अन्य समस्याओ को हल किया जाये। आदिवासियो एवं अनुसूचित जातियों के प्रति विभेदकारी एव अमानवीय व्यवहार को रोका जाये। सन् 1980 और फिर 1986 मे राष्ट्रीय एकता परिषद् का पुनः गठन किया गया। इसने देश में बढ़ती साम्प्रदायिकता एवं विशेषतः पंजाब की स्थिति पर चिन्ता व्यक्त की। 3 फरवरी, 1990 को प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता में 'राष्ट्रीय एकता परिषद्' का फिर से गठन किया गया। अप्रैल 1990 में परिषद् की बैठक हुई जिसमे कश्मीर की स्थिति को विस्फोटक बताया गया और कहा गया कि राष्ट्र की एकता को तोड़ने वाले लोगो के साथ सरकार किसी प्रकार का कोई समझौता नही करेगी। समय-समय पर राष्ट्रीय एकता परिषद् की बैठकें होती रहती है जो राष्ट्रीय एकता को चुनौती देने वाली समस्याओं पर विचार करती और बाधक कारको को दूर करने का प्रयत्न करती रहती हैं।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्राचीन काल से ही भारत में राष्ट्रीय एकता मौजूद रही है। अति प्राचीन काल में इसका आधार सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक एवं ऐतिहासिक समानता रहा है। वर्तमान मे इसमे राजनीतिक एकता भी जुड गयी है। एकता को समय-समय पर भाषावाद, क्षेत्रवाद, जातिवाद, धर्म, साम्प्रदायिकता, आदि की भावनाओ ने नष्ट करने का प्रयास किया है। इन बाधाओ से निपटने के लिए अनेक महापुरुषों ने प्रयास किये है। सरकार ने कई सम्मेलनो और परिषदों का आयोजन एवं गठन किया है जिन्होंने समय-समय पर एकीकरण के लिए अनेक सुझाव दिये है। सभी प्रकार की बाधाओं और विघटनकारी शक्तियों से लोहा लेते हुए भी भारत ने अपनी सदियों पुरानी राष्ट्रीय एकता और अक्षुण्णता को बनाये रखा है। आज भी यह एक सशक्त राष्ट्र के रूप में सिर ऊँचा किये खड़ा है। इस सन्दर्भ में **हर्बर्ट रिजले** ने उचित ही लिखा है, "भारत में धर्म, रीति-रिवाज और भाषा तथा सामाजिक और भौतिक विभिन्नताओं के होते हुए भी जीवन की एक विशेष एकरूपता कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक देखी जा सकती है। वास्तव मे भारत का एक अलग चरित्र एवं व्यक्तित्व है जिसकी अवहेलना नही की जा सकती।"[1]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अनेक कारकों के संयुक्त प्रभाव के फलस्वरूप हमारे देश मे राष्ट्रीय एकीकरण की विकट समस्या रही है। यह सत्य है

1 Sir Herbert Risley, *People of India*.

कि धार्मिक दृष्टि से देश के विभिन्न भागों में भावात्मक एकता अवश्य पायी जाती है। लेकिन अंग्रेजों के शासन काल में तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् अनेक निहित स्वार्थों के कारण राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में बाधाएँ विविध रूपो में उत्पन्न हुई है। वोटों की राजनीति ने भी कई बार संकीर्ण मनोवृत्तियों को बढ़ावा दिया है। यदि लोगों के सामने एक समग्र राष्ट्र की स्पष्ट कल्पना हो, इस देश के कण-कण, नदी-नाले, पर्वतमालाओ से प्यार हो और इन सबसे ऊपर प्रखर राष्ट्रीय चरित्र हो तो राष्ट्रीय एकीकरण की कोई समस्या नही रहेगी। यह सब उसी समय सम्भव है जब देश का नेतृत्व समर्पित भावना से कार्य करे और व्यक्तिगत एवं दलीय क्षुद्र स्वार्थो से अपने को मुक्त रखे। साथ ही यह भी आवश्यक है कि देश मे सभी समूह, चाहे वे आदिवासी समूह हों, हरिजन समूह हों, उच्च या निम्न जातीय समूह हों, हिन्दू, मुस्लिम या ईसाई समूह हों, अपने-अपने दृष्टिकोण में क्रान्तिकारी परिवर्तन लायें और तार्किक, धर्म-निरपेक्ष तथा सार्वभौम बनें।

आज कश्मीर, पंजाब एवं असम मे विघटनकारी तत्व खुल कर अपनी राष्ट्र विरोधी गतिविधियाँ चला रहे हैं। मन्दिर-मस्जिद विवाद ने साम्प्रदायिकता को भड़काया है। आरक्षण तथा मण्डल आयोग के कारण जातीय तनाव एवं विद्वेष बढा है। पिछले कुछ वर्षो में देश मे अलगाववादी, आतंकवादी एवं हिंसक गतिविधियाँ बढी है। इस स्थिति से निपटने के लिए देश आवश्यक साहस नही जुटा पा रहा है। फिर भी यह सत्य है कि देश टूटेगा नही। आवश्यकता इस बात की है कि सरकार विघटनकारी ताकतों का डट कर मुकाबला करे, राजनीतिक दल इस कार्य में सरकार का सहयोग करें और राष्ट्रीय एकता के मार्ग में आने वाली सभी बाधाओं को दृढ़ निश्चय एवं निडरता के साथ दूर करें। इसके लिए वोटो की राजनीति से अलग हट कर प्रयत्न करना पड़ेगा।

प्रश्न

1. राष्ट्रीय एकीकरण की अवधारणा समझाइए। भारत मे राष्ट्रीय एकीकरण मे बाधक कारको की व्याख्या कीजिए। इन्हें कैसे दूर किया जा सकता है? (अजमेर, 1991, राज., 1994)
2 "भारत में विभिन्न सांस्कृतिक विभेदों के रहते हुए भी हम एकता स्थापित कर सकते हैं।" विवेचना कीजिए।
3 भारत मे राष्ट्रीय एकीकरण प्राप्त करने के उपाय बताइए।
4 भारत मे राष्ट्रीय एकीकरण मे क्षेत्रवाद, भाषावाद एव जातिवाद जैसे मुख्य बाधक तत्वो पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।
5. भारत मे राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया के प्रतिकूल कौन-सी शक्तियाँ कार्य कर रही है? इनको सविस्तार समझाइए।
6 राष्ट्रीय एकीकरण की अवधारणा स्पष्ट कीजिए एवं हमारे देश मे इसे प्रतिस्थापित करने के लिए कुछ रचनात्मक सुझाव प्रस्तुत कीजिए। (अजमर, 1990)
7. "जातिवाद और साम्प्रदायिकता को मात्र कानून ही समाप्त नहीं कर सकता।" इस कथन के सन्दर्भ मे भारतीय सामाजिक दृश्य से इन बुराइयों को दूर करने के उपाय बताइए। (अजमेर, 1995, राज., 1995)
8 संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :
(अ) क्षेत्रवाद, (अजमेर, 1997)
(ब) जातिवाद, (अजमेर, 1997)

9 "जाति और धर्म भारतीय राष्ट्रीय एकीकरण मे मुख्य बाधाएँ हैं।" समझाइए।
(राज., 1987)

10. राष्ट्रीय एकता की अवधारणा स्पष्ट कीजिए। किस प्रकार भाषायी एवं क्षेत्रीय अन्तर इनमें बाधाएँ हैं? इन बाधाओ को दूर करने के उपाय समझाइए। (राज., 1988)

11 जातिवाद क्या है? जातिवाद ने हमारे समाज के स्वस्थ विकास में किस प्रकार बाधा पहुंचायी है? *(अजमेर, 1991)*

12. भारत में राष्ट्रीय एकीकरण की विभिन्न समस्याओ की विवेचना कीजिए।
(अजमेर, 1993)

13 भारत में राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या पर एक निबन्ध लिखिए।
(अजमेर, 1993; राज., 1996)

14. भारत मे राष्ट्रीय एकता में क्या मुख्य बाधाएं हैं? व्याख्या कीजिए। (राज., 1995)

15 राष्ट्रीय एकता की अवधारणा स्पष्ट करते हुए भारत मे राष्ट्रीय एकता स्थापित करने हेतु उपाय सुझाइए। (अजमेर, 1994)

16 एक बहुआयामी (अनेकतावादी) समाज जैसे भारत में हम राष्ट्रीय एकीकरण के लक्ष्य को कैसे प्राप्त कर सकते हैं? विवेचना कीजिए। (राज., 1994, 95)

17 राष्ट्रीय एकीकरण पर जातिवाद का क्या प्रभाव पड़ा है? क्या आधुनिक भारत में जातिवाद कम हो रहा है? (राज., 1996; अजमेर, 1996)

18 जातिवाद तथा साम्प्रदायिकता का राष्ट्रीय एकीकरण पर क्या प्रभाव पड़ा है? आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए। *(राज., 1995)*

19. भारत मे सम्प्रदायवाद की समस्याओं का विवेचन कीजिए। (राज., 1993)

20. भाषावाद एवं क्षेत्रवाद पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए। (राज., 1992)

21. भारत मे सम्प्रदायवाद के विकास के कारणों का उल्लेख कीजिए और उनके निराकरण के सुझाव दीजिए। (अजमेर, 1997)

16

भ्रष्टाचार

[CORRUPTION]

वर्तमान समय में भ्रष्टाचार की समस्या सभी देशो में पायी जाती है और इसका कोई न कोई रूप सर्वत्र देखने को मिलता है। प्राचीन समय में छोटे-छोटे राज्य होने और आमने-सामने के घनिष्ठ सम्बन्ध तथा पारस्परिक परिचय के कारण भ्रष्टाचार की गम्भीर समस्या नही थी। उस समय अधिकारियों का अधिकार-क्षेत्र भी सीमित था। अतः उनके भ्रष्ट होने के अवसर कम थे। लघु समाजों एवं प्राचीन समाजों मे राजनीतिक पद उच्च जातियो के लोगों के पास ही थे। अतः उस समय भ्रष्टाचार कुछ सीमित लोगों तक ही व्याप्त था। चाणक्य ने अपनी पुस्तक **'अर्थशास्त्र'** में विभिन्न प्रकार के भ्रष्टाचारों का उल्लेख किया है। अंग्रेजी राज्य की स्थापना और विशेषतः स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारत में सार्वजनिक जीवन मे भ्रष्टाचार काफी बढ़ गया है।

भ्रष्टाचार में व्यक्ति सामाजिक नियमों का सोच-समझकर उल्लंघन करता है तथा अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए दूसरो के हितों की अवहेलना करता है। भ्रष्टाचार में एक व्यक्ति व्यक्तिगत लाभ के लिए अपने अधिकारों का दुरुपयोग करता है, मिलावट करता है, रिश्वत लेता है। निर्माण के कार्यों में घटिया स्तर की वस्तुओं का उपयोग करता है, पक्षपात का सहारा लेता है। आजादी के बाद भारत में भ्रष्टाचार की मात्रा बढ़ी है और व्यापारी, उद्योगपति, विधायक, मन्त्री, डॉक्टर, इन्जीनियर, प्रशासक एवं राजनीतिज्ञों द्वारा भ्रष्टाचार किए जाने के अनेक मामले प्रकाश में आए हैं। इसके निवारण के लिए समय-समय पर कई विभागों और समितियो की स्थापना की जाती रही है किन्तु भ्रष्टाचार उन्मूलन के स्थान पर इसमें बढ़ोत्तरी ही हुई है। बोफोर्स तोप काण्ड, पनडुब्बी काण्ड, बिहार में चारा घोटाला काण्ड एवं हवाला काण्ड, आदि उच्च स्तर पर राजनीतिक एवं प्रशासकीय भ्रष्टाचार के ज्वलन्त उदाहरण है जिसमें अखिल भारतवर्षीय स्तर के राजनेता और उच्च अधिकारी लिप्त रहे हैं। यह नैतिक पतन की चरम सीमा है जिसमें ऐसा प्रतीत होता है कि मानो रक्षक ही भक्षक बना गया हो।

भ्रष्टाचार की अवधारणा
(CONCEPT OF CORRUPTION)

भ्रष्टाचार शब्द का प्रयोग बड़े व्यापक अर्थो में हुआ है। पुलिस एवं सरकारी अधिकारियों द्वारा घूस लेना, यौन-अनाचार, व्यापारियों द्वारा कम तोलना, मिलावट करना, स्मगलिंग, कालाबाजारी, न्यायाधीशों द्वारा पैसा लेकर अपराधी को मुक्त कर देना, चुनाव में जीतने के

लिए गड़बड़ियां करना, चन्दे की रकम में गोलमाल करना, आदि सभी भ्रष्टाचार के अन्तर्गत आते हैं। भ्रष्टाचार के स्थान पर अनुचित लाभ (Graft) शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। अनुचित लाभ एक विस्तृतकोणी अवधारणा है जिसमे अनेक प्रकार के लाभ सम्मिलित हैं। इसमे पुलिस द्वारा ट्रैफिक के नियमों को तोड़ने वालो से सिगरेट स्वीकार करने से लेकर बड़े-बड़े घोटाले तक आते है। 'ग्राफ्ट' भ्रष्टाचार का ही एक चरण है। इसमें व्यक्ति अपनी शक्ति एव राज्य के साधनों का व्यक्तिगत हितो और पार्टी के हितों के लिए दुरुपयोग करता है। यह लाभ आर्थिक ही हो, यह आवश्यक नहीं है।[1] भ्रष्टाचार व्यक्तिगत लाभ के लिए किया जाता है।

भ्रष्टाचार के अनेक प्रकार होने के कारण इसकी परिभाषा कठिन प्रतीत होती है। भ्रष्टाचार की कुछ परिभाषाएं इस प्रकार हैं : भ्रष्टाचार निरोधक समिति, 1964 के अनुसार, "शब्द के व्यापक अर्थ में एक सार्वजनिक पद (Office) अथवा जनजीवन में उपलब्ध एक विशेष स्थिति (position) के साथ संलग्न शक्ति तथा प्रभाव का अनुचित या स्वार्थपूर्ण प्रयोग ही भ्रष्टाचार है।"[2]

रॉबर्ट सी. ब्रुक्स के अनुसार, "कोई प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करने के लिए जान-बूझकर प्रदत्त कर्त्तव्य का पालन न करना राजनीतिक भ्रष्टाचार है। भ्रष्टाचार सदैव कभी किसी स्पष्ट अथवा अस्पष्ट लाभ के लिए कानून एवं समाज के विरोध मे किया जाने वाला कार्य है।"[3]

इलियट व मैरिल के अनुसार, "प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष लाभ प्राप्ति हेतु जान-बूझकर निश्चित कर्तव्य का पालन न करना ही भ्रष्टाचार है।"[4]

भारतीय दण्ड विधान की धारा 161 के अनुसार, "कोई भी सार्वजनिक कर्मचारी वैध पारिश्रमिक के अतिरिक्त अपने या किसी दूसरे व्यक्ति के लिए जब कोई लाभ इसलिए लेता है कि सरकारी निर्णय पक्षपातपूर्ण ढंग से किया जाए तो यह भ्रष्टाचार है तथा इससे सम्बन्धित व्यक्ति भ्रष्टाचारी है।" यह परिभाषा केवल राज्य कर्मचारियों तक ही सीमित है।

भ्रष्टाचार मे व्यक्ति किसी भी तरीके से अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करता है। भ्रष्टाचार की विशेषताएं इस प्रकार हैं :

(1) भ्रष्टाचार मे स्वार्थपूर्ति के लिए लघु मार्ग (*short cut*) अपनाया जाता है।

(2) इसमे नकद या वस्तु के रूप मे घूस दी जाती है।

(3) इसमे अयोग्य के प्रति पक्षपात व योग्य के प्रति अन्याय होता है। इससे अन्ततः समाज को हानि होती है।

(4) यह लेन-देन के सिद्धान्त पर आधारित है।

(5) भ्रष्टाचार में पैसा उद्देश्य भी है और साधन भी है।

(6) भ्रष्टाचार में कानून या नियमों की अवहेलना की जाती है। कभी-कभी कानून के विपरीत न होने पर भी न्याय एवं नैतिकता के विरुद्ध आचरण भ्रष्टाचार कहलाता है।

1 Elliott and Merrill, *Social Disorganization*, p 536
2 *Report of the Committee on Prevention of Corruption* (1974), Govt. of India, Ministry of Home Affairs, p. 5.
3 R. C. Brooks, *Corruption in American Politics and Life* (1910)
4 "Corruption in a willful failure to perform a specified duty in order to receive some direct or indirect personal gains" —Elliott and Merrill, *op cit.*, p 525

(7) भ्रष्टाचार में व्यक्ति अपने निश्चित कर्तव्य का उल्लंघन करता है।

(8) भ्रष्टाचार में कर्तव्यो का उल्लंघन जान-बूझकर किया जाता है।

(9) भ्रष्टाचार मे कर्तव्यों का उल्लंघन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई अनुचित लाभ उठाने के लिए किया जाता है।

भ्रष्टाचार के कारण
(CAUSES OF CORRPUTION)

भ्रष्टाचार के प्रमुख कारण इस प्रकार है :

(1) **राजनीतिक इकाइयों का बड़ा आकार**—राजनीतिक सस्थाओ का विशाल क्षेत्र होने के कारण सभी व्यक्ति इन संस्थाओं के कार्यो का लाभ नहीं उठा पाते। प्राचीन समय में स्थानीय और लघु समुदायों में राजनीतिक लाभ प्राप्त करना सरल था, किन्तु वर्तमान मे इन लाभों के सभी व्यक्ति हिस्सेदार नही बन सकते। अत: इन्हे प्राप्त करने के लिए भ्रष्टाचार की विधियों का प्रयोग किया जाता है।

(2) **प्रजातन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था के दोष**—प्रजातन्त्र में दलीय प्रणाली महत्वपूर्ण है। दल को समर्थन देने वाले व्यक्ति अपने हितो के अनुरूप शासक दल से कार्य करवाते है। दलगत राजनीति भी भ्रष्टाचार के लिए उत्तरदायी है। अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए सत्तारूढ दल सभी प्रकार के उचित व अनुचित कदम उठाता है। भारत में 'आयाराम गयाराम' (दल-बदल) की राजनीति ने भ्रष्टाचार को बढावा दिया है।

(3) **व्यापार एवं राजनीति में निकट सम्बन्ध**—बड़े-बडे व्यापारियों और राजनीतिज्ञों के बीच गठबन्धन के कारण कई उद्योगपति चुनाव के समय राजनीतिज्ञो तथा विशेषतः सत्तारूढ़ दल को भारी रकम आर्थिक सहायता के रूप में देते है तथा सत्ता में आने पर उनसे कई लाभ उठाते हैं। ऐसे लोग चाहते हैं कि वे कम टैक्स चुकाए, टैक्स की चोरी करें, वस्तुओं में मिलावट करें और वस्तुओं का संग्रह करे, अधिक मुनाफा कमाएं और इन सारे कार्यो के लिए कई राजनेता उन्हें संरक्षण प्रदान करते है। राजनीतिक भ्रष्टाचार के लिए अंग्रेजी में 'ग्राफ्ट' शब्द का प्रयोग हुआ है। सुविधा प्राप्त करने हेतु व्यापारियो द्वारा राजनेताओं को आर्थिक या चुनाव सम्बन्धी सहायता प्रदान करना 'ग्राफ्ट' ही है।

(4) **सरकारी कार्यों का विस्तृत क्षेत्र**—आजकल सरकार के कार्यों का दिनो-दिन विस्तार हो रहा है। व्यापार, वाणिज्य, कृषि, विजली, सडक निर्माण, समाज-कल्याण, सफाई, भवन निर्माण, उद्योग, यातायात, रक्षा, शिक्षा और अनेक अन्य विषयो से सम्बन्धित कार्य राज्य द्वारा किए जाने लगे है। इन कार्यों का संचालन सरकारी कर्मचारियो द्वारा किया जाता है। यह आवश्यक नहीं है कि इनमें लगे सभी अधिकारी पूरी तरह से ईमानदार हों। होता यह है कि कई राजकीय कर्मचारी एवं अधिकारी अपने पद एवं अधिकारो का दुरुपयोग कर व्यक्तिगत लाभ कमाते है। सरकारी निर्णयों के लिए एक नहीं बल्कि अनेक व्यक्ति उत्तरदायी होते हैं, इस स्थिति का भी वे लाभ उठाते है।

(5) **सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन**—वर्तमान समय में सामाजिक मूल्य बदले हैं। अब व्यक्तिवाद और भौतिक लाभ को अधिक महत्व दिया जाने लगा है। आज व्यक्ति का मूल्यांकन धन के आधार पर होने लगा है। अतः व्यक्ति सभी प्रकार के अनुचित साधनों का प्रयोग कर धनवान बनना चाहता है।

(6) **मुद्रा अर्थव्यवस्था**—मुद्रा व्यवस्था के प्रचलन के कारण धन संग्रह करना और उसे छिपाकर रखना आजकल सरल हो गया है।

(7) **भ्रष्टाचार उन्मूलन के कारगर तरीकों का अभाव**—देश में अब तक भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए सशक्त एवं कारगर कदम नही उठाए गए हैं और न ही भ्रष्टाचार के दोषी व्यक्तियों के लिए कठोर दण्ड की ही व्यवस्था की गयी है। इससे भ्रष्टाचारियों को अपनी शक्ति व पद का दुरुपयोग करने की चिन्ता नही रहती और वे निश्चिन्त होकर ऐसा करते है।

(8) **विकास के असमान अवसर**—सभी लोगों को विकास के समान अवसर प्राप्त न होने के कारण भी कई लोग अपना विकास करने एवं साधन जुटाने के लिए भ्रष्टाचार का सहारा लेते है।

(9) **निर्धनता**—निर्धनता भी व्यक्ति को भ्रष्ट आचरण के लिए प्रोत्साहित करती है।

(10) **चारित्रिक एवं नैतिक पतन**—चरित्र एवं नैतिकता में पतन भ्रष्टाचार के लिए काफी कुछ सीमा तक उत्तरदायी है। आज व्यक्ति का मूल्यांकन धन के आधार पर किया जाता है, चाहे वह अनैतिक तरीके से ही क्यों न एकत्रित किया गया हो। धनी व्यक्ति की समाज में अधिक प्रतिष्ठा होती है। ईमानदार, कर्त्तव्यनिष्ठ एवं सच्चे व्यक्ति की खिल्ली उड़ाई जाती है क्योंकि उसने महत्वपूर्ण पद पर रहकर भी आर्थिक लाभ नहीं उठाया। खुद भी खाए और दूसरो को भी खाने दे, ऐसा व्यक्ति ही आज व्यावहारिक माना जाता है। आज देश में चारों ओर चरित्र एवं नैतिकता का संकट है जो भ्रष्टाचार को बढ़ावा दे रहा है।

(11) **प्रशासकीय कठिनाइयां**—प्रशासकीय कठिनाइयों और बारीकियों से सभी व्यक्ति परिचित नही है। अतः झंझटों से मुक्ति पाने के लिए वे रिश्वत के रूप में रुपया देकर अपना काम निकलवा लेते है।

(12) **पूंजी संग्रह की प्रवृत्ति**—आज लोगों में धन संचय की प्रवृत्ति बढ़ी है और सभी व्यक्ति धन कमाकर प्रतिष्ठा अर्जित करना चाहते हैं। इसका कारण धन का दिनोंदिन बढ़ता हुआ महत्व है चाहे वह अनुचित साधनों से ही क्यों न कमाया गया हो।

(13) **शिक्षा का अभाव**—भारत में 52.21 प्रतिशत जनसंख्या ही शिक्षित है। अशिक्षितों की अनभिज्ञता का लाभ उठाने के लिए कर्मचारी एवं अधिकारीगण उनसे किसी न किसी प्रकार से रिश्वत के रूप में रुपया ऐंठ लेते हैं।

(14) **बेकारी**—बेकारी से मुक्ति पाने के लिए भी व्यक्ति घूस देकर नौकरी प्राप्त करना चाहता है। इससे भी भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है।

(15) **कानून की अनभिज्ञता**—विभिन्न क्षेत्रों में कानूनों की अनभिज्ञता है एवं कानूनों की बारीकियों से सभी लोग परिचित नहीं हैं। अतः जो लोग कानून के रक्षक माने जाते हैं, वे लोगों की कानून के प्रति अनभिज्ञता का लाभ उठाकर रिश्वत लेते है।

(16) **अपर्याप्त वेतन**—जिन कर्मचारियों को वेतन कम मिलता है, वे अपनी आवश्यकताओं एवं सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करने के लिए भ्रष्ट तरीकों से धनोपार्जन करते हैं।

(17) **अत्यधिक प्रतिस्पर्द्धा**—आज राजनीतिक एवं आर्थिक क्षेत्र में अत्यधिक प्रतिस्पर्द्धा है। आज अधिकतर व्यक्ति वैध या अवैध तरीके अपनाकर सफलता प्राप्त करना चाहते हैं। ईमानदारी, सच्चाई एवं वैध तरीके से जब सफलता हाथ नहीं लगती तो गैर-कानूनी एवं भ्रष्ट तरीके अपनाए जाते हैं।

(18) आबादी की भिन्नता—बड़े नगरों में विभिन्न धर्मों, जातियों, वर्गों एवं सम्प्रदायों के लोग रहते हैं। परिचितता एवं निकट सम्बन्धों के अभाव में किसी भी कार्य को करने के लिए व्यक्ति आर्थिक लाभ चाहता है।

(19) भ्रष्टाचार पनपाने में उच्चाधिकारियों का सहयोग—भ्रष्टाचार तभी पनपता है जब उच्चाधिकारियों का भी सहयोग हो। यदि कलक्टर और एस.पी. भ्रष्ट होंगे तो उनके अधीन कर्मचारी भी भ्रष्ट होंगे। एक कहावत है कि भ्रष्टाचार ऊपर से और क्रान्ति नीचे से प्रारम्भ होती है। कुछ ही समय पूर्व प्रधानमन्त्री कार्यालय में हुए जासूसी कांड से प्रकट होता है कि इसमें उच्चस्तरीय प्रशासनिक अधिकारी, राष्ट्रपति के निजी सचिव के सहायक एवं अन्य सचिव तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति सम्मिलित थे जो कि भारत सरकार के महत्वपूर्ण दस्तावेज एवं गुप्त सूचनाएं विदेशी सरकारों को बेच देते थे। जब रक्षक और शासन करने वाले व्यक्ति ही भक्षक और भ्रष्ट हों तो सामान्य लोगों से क्या अपेक्षा की जा सकती है।

(20) कर्मचारी संघ—आज सरकारी और गैर-सरकारी सभी विभागों में कर्मचारियो के संघ एवं संगठन बने हुए हैं। जब भी किसी कर्मचारी पर रिश्वत लेने या भ्रष्ट होने का आरोप लगाया जाता है या उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही की जाती है या उसका स्थानान्तरण कर दिया जाता है तो वे संगठन ऐसी किसी भी कार्यवाही का सामान्यतः विरोध करते हैं। वे कर्मचारी के प्रति अन्याय एवं शोषण का नारा बुलन्द करते है तथा हड़ताल करते है। ये सम्पूर्ण शासन-तन्त्र को ही पंगु कर देते हैं। ऐसी स्थिति में भ्रष्ट अधिकारियो के विरुद्ध कोई कदम उठाना बड़ा कठिन होता है। फलस्वरूप भ्रष्टाचार को प्रश्रय एवं बढावा मिलता है।

भारत में भ्रष्टाचार के प्रकार (क्षेत्र)
(TYPES OR SCOPE OF CORRUPTION IN INDIA)

(1) राजनीतिक भ्रष्टाचार—राजनीतिक दलों एवं नेताओं द्वारा सत्ता प्राप्त करने, वोट प्राप्त करने एवं पदों पर बने रहने के लिए भ्रष्ट तरीकों का सहारा लिया जाता है। चुनाव के लिए ये उद्योगपतियों एवं व्यापारियों से चन्दा लेते हैं और बदले में उन्हे परमिट, राजनीतिक संरक्षण, वस्तुओं का संग्रह करने एवं मूल्य वृद्धि की छूट देते हैं। सरकारी कर्मचारियों के चयन, स्थानान्तरण, अपदस्थ करने तथा प्रतियोगी परीक्षाओं में सफलता प्राप्त करने के लिए राजनेताओ का सहारा लिया जाता है। विभिन्न प्रकार के ठेके प्राप्त करने एवं सरकारी विभागों में अपने माल को ही बेचने के लिए राजनेताओं को भारी रकम रिश्वत के रूप में दी जाती है। दल-बदल एवं भाई-भतीजावाद भी राजनीतिक भ्रष्टाचार के उदाहरण हैं।

कई सरकारी अधिकारी परमिट देने, ठेके देने, पदों पर चयन करने व स्थानान्तरण करने के लिए भ्रष्ट तरीके अपनाते है। पुलिस विभाग में भी भ्रष्टाचार का बोलबाला है। कई बार ईमानदार पुलिस अधिकारियों को भ्रष्ट लोग तरह-तरह से परेशान करते है। चुनाव प्रक्रिया में भी भ्रष्टाचार पाया जाता है, जैसे पोलिंग बूथ पर कब्जा कर लेना, जाली मतदान, पैसा एवं शराब का वितरण कर मत बटोरना, मतदान के समय मारपीट एवं पुलिस के सहयोग से लोगों को डराना-धमकाना, आदि।

(2) व्यापार में भ्रष्टाचार—इसके अन्तर्गत हम अनेक भ्रष्ट तरीके देख सकते है, जैसे मिलावट करना, अनुचित लाभ कमाना, वस्तुओं का संग्रह करना, मूल्य वृद्धि, चोरी-छिपे माल बेचना, बाजार में कृत्रिम कमी पैदा करना तथा कालाबाजारी करना, आय छिपाना,

टैक्स की चोरी करना, झूठी एवं फर्जी फर्मों के नाम परमिट प्राप्त करना आदि। ये सारे कार्य व्यापारी लोग राजनीतिज्ञों एवं प्रशासकीय अधिकारियों के सहयोग से ही कर पाते हैं। शेयर घोटाला इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

काला धन (Black Money)

काला धन भी भ्रष्टाचार का ही एक विशिष्ट स्वरूप है। काला धन एक आर्थिक व सामाजिक समस्या है। यह समाज में असमानता और निराशा पैदा करता है तथा समानान्तर अर्थव्यवस्था खड़ी करता है। काला धन वह आय है जिस पर कर का भुगतान नहीं किया गया है (Black money is tax-evaded income)। किसी भी देश मे काला धन कितना है इसकी वास्तविक गणना करना एक कठिन कार्य है, इसका केवल एक अन्दाज ही लगाया जा सकता है। प्रो. कालडोर के अनुसार भारत में 1953-54 में 600 करोड़ रुपये का काला [illegible] रुपये का [illegible] 70,000 [illegible] के रूप में बढ़ते है। विद्वानों का मत है कि देश में धन का 26% भाग काला धन है जबकि अमेरिका मे 8% भाग ही है।

देश में काले धन को जन्म देने के लिए कई कारण उत्तरदायी है जैसे (i) अव्यावहारिक कर नियम, (ii) आबकारी कर की विभिन्न दरें, (iii) नियन्त्रण नीति, (iv) कोटा व्यवस्था, (v) वस्तुओ का अभाव, (vi) मुद्रास्फीति, (vii) चुनाव आदि।

काला धन सरकारी खजाने पर बुरा प्रभाव डालता है, समाज में विषमता को बढ़ाता है और आर्थिक विकास की योजनाओं को निष्फल करता है। यह समाज में अपराधों को जन्म देता है तथा ईमानदार लोगों में निराशा पैदा करता है।

काले धन को समाप्त करने और उसे सफेद धन में परिवर्तित करने के लिए सरकार ने समय-समय पर कई योजनाओं की घोषणा की है, तथा काला धन घोषित करने के अवसर भी प्रदान किए हैं। कर की दर को कम करके भी काले धन की वृद्धि को रोका जा सकता है। साथ ही प्रशासनिक भ्रष्टाचार को रोककर तथा सरकारी नियन्त्रण को उदार बना करके भी काले धन की वृद्धि को रोका जा सकता है।

(3) **श्वेतवसन अपराध**—इस श्रेणी में उच्च वर्ग के व्यक्ति जैसे उद्योगपति, वकील, न्यायाधीश, प्रशासक, डॉक्टर, इन्जीनियर, प्राध्यापक, आदि आते हैं जो अपने व्यवसाय के दौरान भ्रष्ट तरीके अपनाते हैं।

(4) **संगठित अपराध**—कई लोग भ्रष्टाचारी गतिविधियों के संचालन के लिए संगठन का निर्माण करते है और योजनाबद्ध रूप से धन कमाने के लिए कानून की अवहेलना करते है।

(5) **शैक्षणिक भ्रष्टाचार**—परीक्षा में नकल करवाना, पेपर आउट कराना, अंक बढ़ाना, ट्यूशन के लिए छात्रों को मजबूर करना, कम वेतन देकर अधिक पर हस्ताक्षर करवाना, आदि शैक्षणिक भ्रष्टाचार के उदाहरण हैं।

(6) **पुलिस विभाग में भ्रष्टाचार**—भारत में भ्रष्टाचार निवारण के सन्दर्भ मे जितने भी आयोग गठित किए गए, उन सभी ने पुलिस में व्याप्त भ्रष्टाचार की ओर ध्यान आकर्षित किया है। पुलिस के पास अपराध से सम्बन्धित अनेक अधिकार हैं जिनका पुलिस कर्मी कई

वार दुरुपयोग करते हैं। वेश्यावृत्ति, जुआ, चोरी, मद्यपान, काला-बाजारी, स्मगलिंग एवं विभिन्न प्रकार के अपराधों को पुलिस का संरक्षण प्राप्त होता है। कई बार तो डकैती तक में उनका हाथ होता है। पुलिस को घूस देकर अथवा उनका निश्चित हिस्सा देकर लोग खुले आम भ्रष्टचार में लगे होते हैं। ऐसे व्यक्ति कानून की गिरफ्त से साधारणतः बच जाते है। पुलिस को भी राजनीतिक संरक्षण प्राप्त होता है। तांगा एवं रिक्शा चालकों से लेकर करोडपतियों तक में फैले भ्रष्टाचार को पुलिस का आशीर्वाद प्राप्त होता है।

(7) न्यायालयों में भ्रष्टाचार—आज न्यायिक क्षेत्र भी भ्रष्टचार से मुक्त नही रहा है। मुकदमे की तारीखे बदलवाने, झूठी गवाहियां देने, अपने पक्ष में निर्णय करवाने, कानूनों का समुचित रूप से पालन न कराने, श्रम कानूनो का उल्लघन करने, आदि के लिए न्यायाधीशों एव सम्बन्धित लोगों को घूस दी जाती है। न्याय के क्षेत्र मे घूस देने का एक दिलचस्प उदाहरण सामने आया है। एक व्यक्ति न्यायाधीश-कक्ष मे प्रवेश करने लगा तो वहां के कर्मचारी ने उसे रोका और वहां पर लगी गांधीजी की एक फोटो की ओर उसने इशारा किया। इस फोटो मे गांधीजी एक हाथ से आशीर्वाद देते हुए बताए गए थे। नौकर ने कहा कमरे में घुसने की फीस पांच रुपये है, देखो स्वयं गांधीजी अपने हाथ से पांच रुपए देने का संकेत कर रहे है। देश के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश वी. रामास्वामी पर उनके द्वारा किए गए भ्रष्टाचार एवं वित्तीय अनियमितताओं के कारण संसद मे महाभियोग लगाया गया। उन पर लगाये गए आरोपो की पुष्टि संसदीय समिति ने कर दी फिर भी महाभियोग प्रस्ताव पारित नही हो पाया। इससे स्पष्ट है कि जब देश में कुछ प्रमुख नेता ही भ्रष्टाचार का समर्थन करें तो देश से भ्रष्टाचार को कैसे दूर किया जा सकता है।

(8) स्थानीय स्वायत्त शासन मे भ्रष्टाचार—पंचायतों एवं नगरपालिकाओं में भी जो स्वायत्त शासन की संस्थाएं हैं, भ्रष्टाचार पाया जाता है। सरकारी भूमि पर अवैध कब्जा करने वाले नगर परिषद एवं पंचायत के अधिकारियों को घूस देकर उसे अपने नाम करा लेते हैं। सफाई, व्यापार, चुंगी, निर्माण, शिक्षा आदि से सम्बन्धित नगरपालिकाओं के विभागों मे भ्रष्ट तरीकों से लोग अपना उल्लू सीधा करते रहते हैं।

(9) धार्मिक क्षेत्र में भ्रष्टाचार—धार्मिक क्षेत्र में भी कई रूपों में भ्रष्टाचार पाया जाता है। लोग मन्दिर, मस्जिद, धर्मशाला, अनाथालय, गौशाला, आदि बनवाने के लिए चन्दा वसूल करते है और चन्दे की रकम हडप जाते है। धार्मिक स्थानों पर पण्डे, पुजारियों एवं महन्तों द्वारा मादक द्रव्य व यौन अनाचार से सम्बन्धित भ्रष्ट तरीके अपनाए जाते हैं।

(10) सामाजिक क्षेत्र में भ्रष्टाचार—सामाजिक क्षेत्र में भी भ्रष्टाचार के कई रूप देखने को मिलते है। दहेज प्राप्त करने एवं दहेज जुटाने हेतु, अवैध यौन व्यवहार, सार्वजनिक निर्माण कार्य, अस्पृश्यता, शराब एवं मादक द्रव्यों का प्रयोग करने, आदि से सम्बन्धित भ्रष्ट तरीकों को अपनाया जाता है और इसके लिए सम्बन्धित अधिकारियों द्वारा रकम वसूल की जाती है।

(11) चिकित्सा के क्षेत्र में—चिकित्सा के क्षेत्र में भी अनेक प्रकार के भ्रष्टाचार पाए जाते हैं जैसे अवैध गर्भपात के लिए डॉक्टरों द्वारा पैसा लेना, भ्रूण हत्या, नकली दवाइयों का निर्माण, इलाज एवं ऑपरेशन के लिए अधिक रकम लेना, किसी विशेष कम्पनी की दवाइयों की बिक्री हेतु दवा कम्पनियों से पैसा लेकर सांठ-गांठ करना, झूठे बीमारी एवं मारपीट में चोट आ जाने सम्बन्धी प्रमाण-पत्र देना, आदि।

(12) **ठेके के क्षेत्र में**—ठेकेदारो द्वारा भी सार्वजनिक निर्माण कार्य मे भ्रष्ट तरीके अपनाए जाते है। सीमेण्ट में अधिक रेत मिलाकर वे खूब पैसे कमाते हैं। उनके द्वारा बनाए गए मकान, पुल एवं सड़कें समय से पूर्व ही नष्ट हो जाते हैं। ठेके प्राप्त करने के लिए इन्जीनियरों और ओवरसियरो से लेकर चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों तक को घूस दी जाती है।

भारत में राजीव गाँधी के शासन काल मे बोफोर्स तोपें एवं पनडुब्बियों के खरीदने में करोडो रुपया दलाली के रूप मे दिये जाने का मामला संसद में उठा, किन्तु आज तक यह पता नही लगाया जा सका कि दलाली की यह भारी रकम किसने ली। इस प्रकार जब देश मे सुरक्षा का क्षेत्र ही भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं है तो भ्रष्टाचार उन्मूलन की बात हास्यास्पद लगती है।

इस प्रकार हम देखते है कि भ्रष्टाचार का क्षेत्र बहुत व्यापक है और इसने सार्वजनिक जीवन के सभी क्षेत्रो में अपनी जड़ें जमा रखी है। आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, सामाजिक प्रशासन, स्वायत्त शासन, आदि कोई भी क्षेत्र इससे अछूता नहीं बचा है।

भ्रष्टाचार के परिणाम
(CONSEQUENCES OF CORRUPTION IN PUBLIC LIFE)

भ्रष्टाचार भी त्याग की तरह ऊपर से ही शुरू होता है और नीचे की ओर प्रसारित होकर सम्पूर्ण समाज को अपने रंग में रंग लेता है।[1] भ्रष्टाचार के निम्न परिणाम होते हैं :

(1) **वृहत वफादारी के स्थान पर स्थानीय वफादारी बढ़ती है** और देश एवं सामुदायिक हितों के स्थान पर व्यक्तिगत व स्थानीय हितों को महत्व दिया जाता है, परिणामस्वरूप **राजनीतिक स्थिरता और एकता खतरे** में पड़ जाती है।

(2) **मिर्डल** का मत है कि भ्रष्टाचार के कारण लालफीताशाही व उत्तरदायित्व से भागने की प्रवृत्ति बढ़ती है और लोग अक्षम हो जाते हैं तथा विकास का कार्य रुक जाता है।

(3) **नियमहीनता और कानूनों की अवहेलना** में वृद्धि होती है।

(4) कीमते बढ़ती है।

(5) लोगों में निराशा, तनाव एवं संघर्ष पैदा होता है।

(6) राष्ट्रीय चरित्र एवं नैतिकता का पतन होता है।

भ्रष्टाचार उन्मूलन : प्रयत्न एवं सुझाव
(ERADICATION OF CORRUPTION : EFFORTS AND SUGGESTIONS)

भ्रष्टाचार के कारण सामाजिक मूल्यों की अवहेलना होती है। समाज में बेईमान, चोर एवं घूसखोर लोग आरामदायक जीवन व्यतीत करते हैं तथा नेक व ईमानदार लोगों को कठिनाइयो का सामना करना पड़ता है। भ्रष्टाचार को दूर करने हेतु समय-समय पर कई संकल्प किए गए। अनेक समितियों और आयोगो का गठन किया गया, फिर भी इससे छुटकारा नहीं मिल पाया है। भ्रष्टाचार निवारण हेतु निम्न उपाय अपनाए जाने चाहिए :

(1) व्यावसायिक वर्गों मे सुरक्षा तथा सरकारी नियुक्तियों मे स्थिरता उत्पन्न की जाए।

(2) राजनीतिक कार्यकर्ताओं, अधिकारियों तथा व्यापारियों मे ईमानदारी की भावना पैदा की जाए।

(3) लोगों में नैतिक गुणों, चरित्र एवं व्यावहारिक आदर्शों को उत्पन्न किया जाए।

1 "Corruption like sacrifice starts at the top and percolating down, colours the *whole society*" —Ronald Segel, *The Crisis in India*, pp. 277-310

(4) कठोर कानूनी व्यवस्था उत्पन्न की जाए तथा भ्रष्टाचार निवारण हेतु भ्रष्टाचार निवारण विभाग की स्थापना की जाए एवं केन्द्रीय इन्टेलीजेन्स ब्यूरो द्वारा भ्रष्ट अधिकारियो की जांच करने की व्यवस्था हो। पुलिस तथा सतर्कता विभाग ईमानदारी से काम करे।

(5) वेकारी समाप्त की जाए।

(6) निर्धनता को दूर किया जाए।

(7) आय-कर का मूल्यांकन सार्वजनिक रूप से हो।

(8) अधिकारियों के स्वविवेकी अधिकारों को कम किया जाए।

(9) मन्त्रियो एवं विधायकों के विरुद्ध भ्रष्टाचार की शिकायतें सुनने के लिए आयोग का गठन किया जाए।

(10) जनसाधारण में जागरण पैदा किया जाए।

(11) सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन कर धन के स्थान पर व्यक्ति के गुणो को महत्व दिया जाए।

(12) भ्रष्ट लोगों की सार्वजनिक रूप से निन्दा की जाए।

(13) शिकायत करने वालों को सुरक्षा प्रदान की जाए।

(14) राजनीतिक दलों को चन्दा देने पर नियन्त्रण लगाया जाए।

भारत सरकार ने भ्रष्टाचार निवारण के लिए समय-समय पर कई प्रयास किए है। सन् 1947 में भ्रष्टाचार निवारण कानून पास किया गया। भ्रष्टाचार अधिनियम की कार्यान्विति के सम्बन्ध में आवश्यक सुझाव देने के लिए 1949 में टेकचन्द समिति की स्थापना की गयी। 1953 में आचार्य कृपलानी की अध्यक्षता में रेलवे भ्रष्टाचार जांच कमेटी निर्मित की गयी। गृह मन्त्रालय ने सन् 1955 में प्रशासन सतर्कता विभाग (Administrative Vigilance Division) की स्थापना की। जून 1962 में तत्कालीन गृहमन्त्री ने सन्तानम् कमेटी की स्थापना की जिसने 1964 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। 1964 में तत्कालीन गृहमन्त्री गुलजारीलाल नन्दा ने भी भ्रष्टाचार निवारण के लिए सन्तानम् कमेटी की सिफारिशो को लागू करने एवं अन्य कड़े कदम उठाने की घोषणा की।

सन्तानम् कमेटी ने भ्रष्टाचार निवारण हेतु निम्नांकित सुझाव दिए :

(1) सरकारी कर्मचारियों के लिए सर्वत्र एक-सी आचार-संहिता बनायी जाए।

(2) संविधान की उन धाराओं को बदला जाए जो अनुशासन की कार्यवाही में बाधक हैं।

(3) भ्रष्टाचार को रोकने के लिए योजनाबद्ध रूप से सामाजिक, आर्थिक, कानूनी एवं प्रशासनिक उपाय अपनाए जाएं।

(4) भ्रष्टाचार से सम्बन्धित सभी नियमों में उचित संशोधन किए जाएं।

(5) लाइसेंस और परमिट की स्वीकृति किसी व्यापारिक संस्था के सदस्य होने पर ही दी जाए एवं दुरुपयोग करने वालों के विरुद्ध कार्यवाही की जाए।

(6) लालफीताशाही को समाप्त किया जाए।

(7) नागरिकों को इस बात की शिक्षा दी जाए कि किन अधिकारियो की शिकायतें किसके पास करनी चाहिए।

(8) सरकारी कर्मचारियों के निवास, चिकित्सा एवं बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था की जाए।

(9) ईमानदार व्यक्तियों को ही उच्च पद प्रदान किए जाएं।

(10) जो समाचार गुप्त न हो वे जनता में शीघ्र प्रसारित किए जाएं।

(11) भ्रष्ट अधिकारियों के कारनामों का व्यापक प्रचार किया जाए एवं उन्हें कठोर दण्ड दिया जाए।

(12) गैर-सरकारी संस्थाओ द्वारा उचित रूप से काम करने पर ही उन्हें राज्य द्वारा सहायता दी जाए।

(13) उपयुक्त सामाजिक वातावरण का निर्माण किया जाए।

(14) मन्त्रियों एवं विधायको के लिए आचार-संहिता बनायी जाए।

(15) समाचार-पत्रो में छपी भ्रष्टाचार की शिकायतों की जांच की जाए एवं झूठी शिकायतें होने पर समाचार-पत्रों के विरुद्ध कार्यवाही की जाए।

भ्रष्टाचार रोकने के लिए गुन्नार मिर्डल[1] ने निम्नांकित सुझाव दिए है :

(1) लाइसेंस तथा परमिट सम्बन्धी अधिकार पर इस प्रकार के नियन्त्रण हो कि भ्रष्टाचार न पनपे।

(2) कम वेतन पाने वालों के वेतन, सामाजिक स्तर व प्रतिष्ठा में वृद्धि की जाए।

(3) भ्रष्टाचार निरोध के लिए सतर्कतामूलक कार्यवाही बढायी जाए।

(4) भ्रष्टाचार के अपराधियो को दण्ड देने हेतु सुगम कानून बनाए जाएं।

(5) घूंस देने वालों के विरुद्ध भी कड़ी कार्यवाही की जाए।

(6) आय-कर एवं आय-व्यय के विवरण गुप्त न रहें।

(7) मन्त्री एवं उच्चाधिकारियों में ईमानदारी हो।

(8) व्यापारियों द्वारा दिये जाने वाले राजनीतिक चन्दों पर रोक लगायी जाए।

(9) जो लोग शिकायत करते है, उन्हे सुरक्षा प्रदान की जाए।

(10) भ्रष्टाचार सम्बन्धी झूठी खबरें छापने वाले समाचार-पत्रों के विरुद्ध कार्यवाही की जाए।

सन् 1964 में भ्रष्टाचार निवारण समिति ने अपनी रिपोर्ट मे भ्रष्टाचार निवारण के लिए कई सुझाव दिए जिसमें से प्रमुख ये है :

(1) सतर्कता विभाग की स्थापना की जाए।

(2) मन्त्रियो के विरुद्ध भ्रष्टाचार की शिकायतों की सुनवाई राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त एक-सदस्यीय समिति के द्वारा हो। यह समिति आवश्यकता होने पर केन्द्रीय जांच ब्यूरो की सहायता भी ले सकती है।

(3) विधानसभा एवं लोकसभा के सदस्यों के लिए आचार-संहिता तैयार की जाए।

(4) न्यायपालिका के क्षेत्र में भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय के पथ-प्रदर्शन में सभी उच्च न्यायालयों मे सतर्कता आयोगों का गठन किया जाए।

भ्रष्टाचार निवारण के लिए सदाचार समितियों का गठन किया जाए। इनके सदस्य रिश्वत न लेने एवं न देने की प्रतिज्ञा करें तथा इस प्रकार के कार्यों में लगे लोगो की क्रियाओं को उजागर करें। राजनीतिज्ञ एवं उच्चाधिकारी भ्रष्टाचार के केन्द्र होते हैं, अतः जब तक इनमे नैतिकता, सच्चाई, ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा और देश-प्रेम की भावना विकसित नहीं

1 गुन्नार मिर्डल, एशियन ड्रामा, खण्ड 2, पृ. 955-956 ।

होगी, सार्वजनिक जीवन से भ्रष्टाचार का निवारण असम्भव है। अतः इन लोगो को समाज के सम्मुख अपना आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए ताकि वे स्वयं दूसरों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन सके।

भ्रष्टाचार निवारण के लिए आवश्यक है कि भ्रष्टाचार मे लिप्त लोगों को कठोर से कठोर दण्ड दिया जाए ताकि लोगों के सम्मुख उदाहरण प्रस्तुत हो तथा लोग दण्ड के भय से भ्रष्टाचारी तरीका नही अपनाएं। आम व्यक्ति भ्रष्टाचार मे इसीलिए लिप्त है क्योंकि वह जानता है कि रिश्वत देकर संगीन से संगीन मामला रफा-दफा किया जा सकता है। विधायको, लोकसभा के सदस्यो, मन्त्रियों, राजनीतिक दल के सदस्यों एवं उच्च पदों पर आसीन अधिकारियों से पूर्ण ईमानदारी एवं कर्तव्यनिष्ठा की अपेक्षा की जाती है। यह सब कुछ होने पर ही भ्रष्टाचार उन्मूलन की आशा की जा सकती है।

प्रश्न

1. क्या आप इस विचार से सहमत है कि भारतीय लोक जीवन मे भ्रष्टाचार बढ़ रहा है? इसके कारणों की विवेचना कीजिए।
2. भारतीय लोक जीवन में भ्रष्टाचार के विभिन्न स्वरूप कौन-कौनसे है? इस भ्रष्टाचार के लिए मुख्यतया कौन उत्तरदायी है?
3. भारत में भ्रष्टाचार का समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत कीजिए।
4. भारत में भ्रष्टाचार पर एक निबन्ध लिखिए। (अजमेर, 1993)
5. सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार से आप क्या समझते है? स्वतन्त्र भारत में भ्रष्टाचार क्यों बढ़ा है? इसके कारणों की विवेचना कीजिए।
6. भ्रष्टाचार के सम्बोध (अवधारणा) को स्पष्ट कीजिए तथा इसे रोकने के उपायो का उल्लेख कीजिए। (अजमेर, 1995)
7. भ्रष्टाचार की अवधारणा (सम्प्रत्यय) को स्पष्ट कीजिए। भारत मे भ्रष्टाचार के कारणों की विवेचना कीजिए। (अजमेर, 1996)
8. 'भ्रष्टाचार' पर सक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। (अजमेर, 1994, 97; राज., 1995)

17

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा

[VIOLENCE AGAINST WOMEN]

स्त्रियों के सन्दर्भ मे भारतीय समाज में दो प्रकार के दृष्टिकोण पाए जाते हैं। एक दृष्टिकोण समाज मे स्त्री को पुरुषों के समकक्ष सम्मान एवं प्रस्थिति दिलाने के पक्ष में है तो दूसरा दृष्टिकोण उन्हें पुरुषो से निम्न दर्जे का मानता है, अतः उन्हें अनेक अधिकारों से वंचित [illegible] उत्पत्ति का प्रतीक मानते [illegible] अनुसार स्त्री पुरुष की

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता'

अर्थात् जहां नारी की पूजा होती है, वहां देवता निवास करते है। यदि वास्तव मे समाज में नारी को यही स्थान प्राप्त है तो नारी के प्रति किसी भी प्रकार का अपराध, अत्याचार एव हिंसा नहीं हो सकती। नारी के प्रति दूसरा दृष्टिकोण नारी को समाज में पुरुषो के समान अधिकार दिलाने का विरोधी है। इसी कारण से समाज मे नारी को उत्पीड़ित किया जाता है, उसका शोषण एवं दमन होता है, उसके प्रति हिंसा बरती जाती है, उसके साथ बलात्कार किया जाता है, उसे प्रताड़ित किया जाता है, जलाया जाता है, पीटा जाता है और उसकी हत्या तक कर दी जाती है। नारी के प्रति किए जाने वाले इन्ही अपराधों एवं दुर्व्यवहारों को देखकर ही मैथिलीशरण गुप्त ने कहा था :

'नारी जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आंचल में है दूध और आंखों में पानी।'

महिलाओं के प्रति हिंसा एवं अपराध कोई आज के युग की ही घटना नहीं है वरन् प्राचीन भारत में भी इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। महाभारत काल में युधिष्ठिर ने अपनी पत्नी द्रौपदी को जुए मे दांव पर लगा दिया था और दुर्योधन ने भरी सभा में उसका चीर-हरण कर अपमानित किया था। रामायण काल मे रावण ने सीता का अपहरण किया था। विधवाओं को भारत में अनेक अधिकारों से वंचित किया जाता रहा तथा नाना प्रकार के कष्ट दिए जाते रहे है। दहेज को लेकर नारी को जला देने या हत्या कर देना आज के युग की सबसे बड़ी त्रासदी है। सतीत्व के नाम पर महिलाओं को इसी देश मे जिन्दा जलाया जाता रहा है। हम आए दिन पत्र-पत्रिकाओं में बलात्कार की घटनाएं पढ़ते रहते है जिनमें से कुछ में तो पुलिस और प्रशासन भी शामिल होता है।

इस प्रकार से महिलाओं का उत्पीड़न एवं शोषण, उनके साथ बलात्कार, उन्हे बहला फुसला कर भगा ले जाना एव वेश्यावृत्ति के लिए उन्हे बेच देना, उनके साथ मारपीट एवं गाली-गलौज करना, उन्हें जला देना, उनकी हत्या कर देना, आदि महिला अपराध के कुछ प्रमुख उदाहरण है।

वर्तमान में समाजशास्त्र में महिलाओं के बारे मे अध्ययन मे रुचि का विकास हुआ है। रैडिकल समाजशास्त्री जो समाज के दलित एवं उपेक्षित वर्ग के अध्ययन में रुचि रखते हैं, भी महिलाओं के अध्ययन के प्रति काफी संवेदनशील है। समाज-सुधारको, राज्य सरकारो, विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में स्थापित महिला अध्ययन प्रकोष्ठों, मनोरोग विशेषज्ञों, अपराधशास्त्रियो, आदि ने भी महिला अध्ययनों में रुचि दर्शायी है और महिलाओ से सम्बन्धित अनेक आयामों का अध्ययन किया जा रहा है। वर्तमान में कुछ लोग अपराध में महिलाओं की भूमिका एवं महिलाओं के प्रति हिंसा एवं अपराध विषयो मे भी रुचि लेने लगे हैं। हम यहां महिलाओं के प्रति किए जाने वाली हिसा व अपराधों, उनके कारणों एवं उन्हें रोकने सम्बन्धी उपायो, आदि विषयों पर सविस्तार चर्चा करेंगे।

महिलाओं के प्रति हिंसा
(VIOLENCE AGAINST WOMEN)

महिलाओं के प्रति हिंसा से तात्पर्य है महिलाओ के निकट रिश्तेदारों; जैसे माता-पिता, भाई-बहिन, सास-ससुर, देवर, ननद, भाभी या परिवार के किसी भी सदस्य अथवा अन्य व्यक्तियों द्वारा किया जाने वाला हिसात्मक व्यवहार एवं उत्पीड़न जो नारी को शारीरिक मानसिक आघात पहुंचाता है।

नन्दिता गांधी एवं **नन्दिता शाह** ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है, "महिला के प्रति हिंसा के अन्तर्गत बलात्कार, दहेज हत्याएं, पत्नी को यातनाएं देने, यौनिक हतोत्साहन तथा संचार माध्यम में स्त्री को गलत ढंग से समाहित किया जा सकता है।"[1]

महिलाओ के विरुद्ध हिसा को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है :

(1) **अपराधिक हिंसा**; जैसे बलात्कार एवं अपहरण, आदि।

(2) **घरेलू हिंसा**; जैसे दहेज सम्बन्धी मृत्यु, पत्नी को पीटना, लैंगिक दुर्व्यवहार, आदि।

(3) **सामाजिक हिंसा**; जैसे पत्नी एवं पुत्र-वधू को मादा भ्रूण की हत्या के लिए बाध्य करना, महिलाओ से छेड़-छाड़, विधवा को सती होने के लिए बाध्य करना, दहेज के लिए तंग करना एवं स्त्री को सम्पत्ति मे हिस्सा न देना, आदि।

हम यहां महिलाओं के प्रति हिंसा के विभिन्न रूपों एवं उनके कारणों का उल्लेख करेंगे।

महिलाओं के प्रति यौन एवं अन्य प्रकार के उत्पीड़न
(SEXUAL AND OTHER TYPES OF HARASSMENT TOWARDS WOMEN)

भारत में महिलाओं का उत्पीड़न प्राचीनकाल से ही होता रहा है जिसका उल्लेख हमें प्राचीन धर्म ग्रन्थों एवं पुस्तकों में मिलता है। समाज में प्रचलित रीति-रिवाजों, मूल्यों, विश्वासों एवं विचारधाराओं का भी महिला उत्पीड़न में योगदान रहा है। आजादी के बाद महिलाओं के कल्याण के लिए कई वैधानिक प्रयत्न किए गए, उनमें शिक्षा का प्रसार हुआ है, वे आर्थिक

1 N. Gandhi and N. Shah, *The Issues at Stake, Theory and Practice in the Contemporary Women's Movement in India*, pp. 32-33.

रूप से आत्मनिर्भर हुई है। इनके बावजूद भी उनके प्रति किए जाने वाले अत्याचारों एवं अपराधों में कोई उल्लेखनीय कमी नही आयी है। बलात्कार, दहेज प्रथा, महिलाओं को जला देने, भगा ले जाना, अपहरण करने, उन्हें मारने-पीटने की घटनाएं आज भी अखबारो की सुर्खियो में रहती है। नैना साहनी हत्याकाड जिसमे नैना साहनी को उसके पति ने टुकडे-टुकड़े करके तंदूर में जला दिया था, की याद अभी तरोताजा है। राजस्थान मे डिग्गीढाणी नामक गांव मे श्रीमती बदाम बाई को डायन बताकर उसके प्रति किया गया अत्याचार समाज पर कलंक है।

भारत में महिलाओं के प्रति किए जाने वाले अपराधों एवं हिसा की जानकारी हमे गृह मन्त्रालय, पुलिस अन्वेषण विभाग तथा नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल डिफेन्स विभाग द्वारा प्रसारित आंकड़ो से होती है। 1987 से 1991 के बीच भारत में महिलाओं के प्रति किए जाने वाले अपराधो मे 37 6 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इस अवधि मे दहेज सम्बन्धी हत्या मे 169 7% की वृद्धि हुई। भारत में प्रत्येक 33 मिनट में महिलाओ के प्रति एक अपराध की घटना होती है। महिलाओं के साथ किये जाने वाले अपराधों में से $\frac{2}{3}$ अपराध भारत के पांच राज्यों—मध्य प्रदेश (17.6), उत्तर प्रदेश (15 7), महाराष्ट्र (13.9%), आन्ध्र प्रदेश (7 9%), तथा राजस्थान (7 5%) में होते हैं। 37.4% महिला अपराध शेष भारत के सभी राज्यो एवं केन्द्र शासित प्रदेशो मे होते है।

महिलाओं के बारे में प्रदर्शित किए गए ये आंकडे अपूर्ण है क्योंकि उनके प्रति किए गए सभी अपराधों को पुलिस में दर्ज नहीं कराया जाता है तथा नारी के प्रति घर मे ही किए जाने वाले अपराधो को घरेलू मामला समझ कर पुलिस उनमें हस्तक्षेप नहीं करती और स्त्रिया भी उन्हे बाहर उजागर करना उचित नहीं मानती।

नारी उत्पीडन का एक प्रमुख रूप यौन उत्पीड़न (Sexual harassment) है। स्त्रियां जहां कार्य करती हैं, वहां उनके मालिको एवं बॉस द्वारा कभी-कभी कुछ स्त्रियो का यौन शोषण भी किया जाता है। उन्हें ऐसा करने के लिए आर्थिक एवं अन्य प्रकार के प्रलोभन भी दिए जाते है और समर्पण न करने की स्थिति में उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है। उन्हें परेशान किया जाता है, उन पर झूठे आरोप लगाकर उन्हे फंसाया जाता है जिनसे तंग आकर या तो वे नौकरी छोड़ देती हैं या अपना समर्पण कर देती हैं। ऐसी स्थिति में स्त्री मे हीनता की भावना पैदा हो जाती है। सामान्यतः स्त्रियों से यह अपेक्षा की जाती है कि यदि उनके साथ कोई यौन सम्बन्धी भद्दी मजाक या छेड़छाड़ करता है तो उन्हे बर्दाश्त कर लेना चाहिए। होटलों में काम करने वाली महिलाओं से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने कामुक हाव-भाव एवं मुद्राओं से ग्राहकों को आकर्षित करें। पुरुष ऐसी स्थिति में यदि गन्दे प्रस्ताव रखता है तो स्त्री को चतुराई से उन्हें टाल देना चाहिए। यह व्यावसायिक चतुराई है। इंग्लैण्ड मे एक अध्ययन में यह पाया गया है कि 10 कामकाजी महिलाओं (Working Women) में से 7 यौन उत्पीड़न की शिकार थी। यौन उत्पीड़न की स्थिति में कई बार महिलाओं को लम्बी छुट्टियां लेनी पड़ती हैं या नौकरी छोड़ देनी पड़ती है, किन्तु ऐसा करने पर उन्हें आर्थिक संकटों का मुकाबला करना पड़ता है।

बलात्कार
(RAPE)

भारतीय दण्ड संहिता (Indian Penal Code) की धारा 376 के अनुसार बलात्कार एक दण्डनीय अपराध है जिसमें अपराधी को आजीवन कारावास तक हो सकता है। इस धारा के अनुसार जब कोई पुरुष किसी स्त्री से उसकी इच्छा के विरुद्ध या सम्मति के बिना या मृत्यु का भय दिखाकर सम्मति से संभोग करता है तो वह बलात्कारी कहलाता है। बलात्कार की समस्या सभी समाजों में पायी जाती है, किन्तु भारत की तुलना में पाश्चात्य देशों मे ऐसी घटनाएं अधिक घटित होती हैं। बलात्कार के सभी मामलों की जानकारी सम्भव नही है। केवल कुछ मामले ही पुलिस में दर्ज करवाए जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि सरकारी आंकड़ों की तुलना में वास्तविक बलात्कार की संख्या पांच गुना से भी अधिक है। लंदन में 1236 स्त्रियों का एक सर्वेक्षण किया गया तो पाया कि प्रत्येक 6 महिलाओं में से एक के साथ बलात्कार हुआ है। शेष पांच में से एक ने उसके प्रति किए जाने वाले बलात्कार के प्रयत्न के प्रति संघर्ष किया। बलात्कार के जितने मामले हुए, उनमें से आधे स्त्री के घर पर और आधे बलात्कारी के घर पर हुए।[1] जिन महिलाओं के साथ बलात्कार हुए, उनमे से अधिकांश उस घटना को भुला देना चाहती हैं, वे अपना मेडिकल मुआयना करवाना एवं पुलिस व न्यायालय द्वारा जांच करवाना नहीं चाहतीं क्योंकि कानूनी प्रक्रिया लम्बा समय लेने वाली एवं परेशानी पैदा करने वाली होती है। वकीलों द्वारा इस सन्दर्भ में पूछे जाने वाले प्रश्न भी नारी को पीड़ा पहुंचाने वाले होते हैं। पेशी का माहौल भी नारी में भय पैदा करता है तथा नारी को आरोपी से न्यायालय में आमना-सामना भी करना पड़ता है। न्यायालय भी नारी के प्रमाणों के आधार पर ही आरोपी को दण्डित नहीं करता है, उसे अन्य प्रमाण भी देने होते हैं जिन्हे जुटाना कठिन होता है। राजस्थान में आंगनवाड़ी में काम करने वाली महिला भंवरी बाई के साथ कुछ लोगों ने बलात्कार किया, किन्तु प्रमाणों के अभाव में बलात्कारियों के प्रति कोई ठोस कार्यवाही नहीं की जा सकी है। इसी प्रकार से उत्तराखण्ड की स्थापना की मांग को लेकर दिल्ली में प्रदर्शन करने जाने वाली महिलाओं के साथ भी पुलिस द्वारा बलात्कार किया गया, किन्तु दोषी पुलिस कर्मियों के प्रति कोई कठोर कार्यवाही नहीं की गई। बलात्कार किया गया है इसका प्रमाण जुटना, बलात्कारी को पहचानना और यह सिद्ध करना कि बिना स्त्री की सहमति के यह घटना घटी है, एक कठिन कार्य है। निर्जन एवं रात्रि में अंधेरे स्थानों पर किए गए बलात्कार के प्रमाण जुटना तो और भी कठिन हो जाता है।

पति द्वारा पत्नी के प्रति किए गए बलात्कार को कानूनी रूप से बलात्कार नही माना जाता है क्योंकि यह विवाह का एक प्रतिफल माना जाता है। जब तक तलाक न हो जाए स्त्री-पुरुष को पृथक्-पृथक् रहने की राजाज्ञा प्राप्त होने पर भी यदि कोई पुरुष अपनी पत्नी से बलात्कार करता है तो उसे बलात्कार नहीं माना जाता। विवाह में बलात्कार को अवैध नहीं माना गया है। कुछ पश्चिमी देशों जैसे कनाडा, डेनमार्क, स्वीडन एवं नार्वे में विवाहित पुरुष यदि अपनी पत्नी के साथ बलात्कार करता है तो वह जुर्म है।

भारत मे 1988 में 7,500 बलात्कार के मामले दर्ज किए गए। 1993 में 9,600 बलात्कार की घटनाएं हुईं। अमेरिका में एक लाख पर प्रतिवर्ष 26, कनाडा में 8, इंग्लैण्ड में

1 Hall Ruth; *Ask Any Women* : A London Enquiry into Rape and Sexual Assualt 1985.

5.5 तथा भारत में 0 5 बलात्कार की घटनाएं होती हैं। आयु के आधार पर इन घटनाओ का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि 64.1% बलात्कार 16 से 30 वर्ष की महिलाओ के साथ, 20.5% मामले 10 वर्ष से कम आयु की लड़कियों के साथ तथा 12.8% मामले 30 वर्ष से अधिक आयु की महिलाओं के साथ घटित हुए है।

जिन महिलाओ के साथ बलात्कार किया गया, उनकी विशेषताएं इस प्रकार है :

(1) अधिकांशत: बलात्कार गरीब महिलाओं के साथ हुए।
(2) कामकाजी महिलाओं के साथ बलात्कार उनके ऑफिस के बॉस द्वारा किए जाते है।
(3) फैक्ट्री मे काम करने वाली श्रमिक महिलाओं के साथ बलात्कार उनके मालिको द्वारा किए जाते है।
(4) अस्पताल में मरीजों के प्रति बलात्कार अस्पताल के कर्मचारियों द्वारा किए जाते है।
(5) जेल में महिला कैदियों के साथ बलात्कार जेल कर्मचारियों द्वारा किए जाते हैं।
(6) आवारागर्दी करने वाली एवं संदिग्ध हालत मे पायी जाने वाली स्त्रियों के साथ बलात्कार पुलिस कर्मियों द्वारा किए जाते है।
(7) पागल, गूंगी, बहरी, अपंग एवं भिखारिन महिलाओ के साथ भी बलात्कार किए जाते है।

बलात्कार से पीड़ित महिलाएं उनके प्रति किए गए अपराध को खामोशी से बर्दाश्त कर लेती है। विरोध करने पर उन्हें सामाजिक निन्दा एवं अपमान का डर होता है। साथ ही नौकरी छूट जाने का भय, बच्चों व परिवार का भरण-पोषण करने की चिन्ता भी उन्हें सब कुछ बर्दाश्त करने के लिए मजबूर कर देती है।

डॉ. आहूजा ने राजस्थान में बलात्कार से पीड़ित महिलाओं का अध्ययन करने पर पाया कि बलात्कार की घटना सदैव अपरिचित लोगों मे नही होती है। बलात्कार एक व्यक्ति द्वारा भी किया जा सकता है और एक से अधिक द्वारा समूह में भी। बलात्कार के लिए महिलाओं को आर्थिक प्रलोभन भी दिया जाता है और उन पर मौखिक दबाव भी डाला जाता है। उन्होंने पाया कि सर्वाधिक बलात्कार 15 से 20 वर्ष की आयु की स्त्रियो के साथ हुए तथा सर्वाधिक बलात्कार 23 से 30 वर्ष की आयु समूह के पुरुषों द्वारा किए गए। इसका तात्पर्य है कि बलात्कार में आयु एक महत्वपूर्ण तथ्य है और युवा अवस्था इसको प्रेरित करने मे मूल रही है।

सामाजिक अध्ययनकर्ताओं ने बलात्कार सम्बन्धी अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष निकाला कि :

(1) यह धारणा गलत है कि यदि महिला विरोध करे तो उसके साथ बलात्कार नहीं हो सकता।
(2) बलात्कार केवल सुन्दर स्त्रियों के साथ ही होता है, यह विचार त्रुटिपूर्ण है।
(3) यह सोचना भी त्रुटिपूर्ण है कि जिन महिलाओं के साथ बलात्कार होता है, वे उसका आनन्द लेती हैं।

(4) यह विचार सही नहीं है कि अधिकांश बलात्कारी मानसिक रूप से परेशान व्यक्ति होते हैं।

(5) यह कहना भी सही नही है कि अधिकांश बलात्कार स्वतः होते है और उनकी अग्रिम योजना नहीं बनायी जाती।

(6) यह कहना भी उचित नहीं है कि बलात्कार का सम्बन्ध पुरुष में अत्यधिक काम उत्तेजना की भावना तथा उच्चता एवं शक्ति की भावना से है।

(7) मैथुन की तीव्र इच्छा एवं बलात्कार में कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नही है।

पिछले कुछ वर्षों में पश्चिमी देशों में नारी संगठन बलात्कार के बारे में वैधानिक एवं जन सोच को बदलने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। वे इस बात पर बल देते रहे है कि बलात्कार को यौन अपराध न माना जाए वरन् इसे एक हिंसक अपराध (Violent Crime) माना जाए। यह मात्र एक शारीरिक आक्रमण ही नहीं वरन् यह व्यक्ति की निष्ठा और सम्मान पर भी आक्रमण है। इस अभियान का असर हुआ है और आज कई पश्चिमी देशों में बलात्कार को वैधानिक रूप से एक विशेष प्रकार की अपराधिक हिंसा के रूप में स्वीकार किया गया है।

अमेरिका में एक स्त्री संगठन ने बलात्कार से बचने के लिए कुछ उपाय सुझाए है। वे हैं :

(1) अपने घर को अत्यधिक सुरक्षित बनाइए। घर के ताले, खिड़कियां एवं दरवाजे कार्य करने की स्थिति में होने चाहिए। यदि आप घर बदले तो ताले भी बदल दीजिए।

(2) यदि आप अकेले रह रहे हो तो ऐसा प्रकट करें कि यहां एक से अधिक व्यक्ति रहते हैं, यह बहाना करें कि घर में पुरुष भी है। जब कोई दरवाजा खटखटाए तो आप जोर से कहें कि दरवाजा मै खोल रही हूं तुम कमरे में ही रहो।

(3) दरवाजे पर पूरा नाम लिखने के स्थान पर अपना छोटा नाम लिखे जैसे सन्तोष कुमारी अग्रवाल के स्थान पर एस. के. अग्रवाल लिखें।

(4) अजनवी से दूर रहें तथा अजनवी के आने पर दरवाजा न खोलें।

(5) निर्जन मकानों में अकेले न रहें।

(6) रात्रि में गलियों एवं विश्वविद्यालयों में अकेले न घूमे।

(7) अपने पास हथियार, लाइटर, कांटे-छुरी एवं सीटी (Whistle) रखें। समूह में घूमे अकेले नहीं।

(8) यदि आप कार चलाती हैं तो कार के दरवाजे बिना ताला लगाए न छोड़ें तथा कार में बैठने से पूर्व पीछे की सीट की जांच कर लें।

(9) आक्रमण होने पर बलात्कार-बलात्कार (Rape-Rape) न चिल्लाएं वरन् कहें गोली चलाओ-गोली चलाओ (Fire-Fire)।

भगा ले जाना व अपहरण करना
(ABDUCTION AND KIDNAPPING)

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 366 के अनुसार भगा ले जाने का तात्पर्य है किसी महिला को जबरदस्ती, कपटपूर्वक या धोखाधड़ी करके उसे बहला फुसला कर ले जाना तथा उसके साथ अवैध यौन सम्बन्ध स्थापिता करना या उसे उसकी इच्छा के विरुद्ध विवाह के लिए

बाध्य करना जबकि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 361 के अनुसार अपहरण का तात्पर्य है एक नाबालिग (18 वर्ष से कम आयु की लड़की व 16 वर्ष से कम आयु का लड़का) को उसके माता-पिता या वैधानिक संरक्षक की अनुमति के बिना ले जाना। अपहरण में जिसका अपहरण किया जाता है, उसकी सहमति का कोई महत्व नहीं होता जबकि भगा ले जाने मे, जिसे भगाया जाता है उसकी सहमति अपराधी को क्षमा कर देती है।

भारत मे प्रतिवर्ष लगभग 1,500 महिलाओ को भगाकर ले जाया जाता है अथवा उनका अपहरण किया जाता है। दूसरे शब्दों मे प्रतिदिन 42 लडकियों को भगाने या अपहरण के मामले होते है। दूसरे शब्दों मे प्रति एक लाख जनसंख्या पर दो मामले भगा ले जाने या अपहरण के होते है। जिन्हें भगाया जाता है उनमे से 54.8% महिलाएं 18 से 30 वर्ष की आयु की, 35.3% 30 से 50 वर्ष की आयु की, 4 5% 18 वर्ष से कम आयु की तथा 5 4% 50 वर्ष से अधिक आयु की होती हैं। अपहरण के सर्वाधिक मामले उत्तर प्रदेश मे (3,099) तथा उसके बाद क्रमशः राजस्थान (2,018), बिहार (1,219), मध्य प्रदेश (1,202) तथा असम (1,010) मे हुए हैं।

डॉ. आहूजा द्वारा अपहरण और भगा ले जाने सम्बन्धी किए गए एक अध्ययन से ज्ञात होता है कि (i) विवाहित की अपेक्षा अविवाहित लड़कियों को अधिक भगाया जाता है। (ii) भगाने वाला एव भागने वाली दोनों ही एक दूसरे से परिचित होते हैं। (iii) इन दोनों का सम्पर्क उनके घरों अथवा पड़ोस के कारण होता है। (iv) अधिकांशतः भगा ले जाने में एक ही व्यक्ति का हाथ होता है। (v) भगा ले जाने का प्रमुख उद्देश्य मैथुन एवं विवाह होता है। 1/10 मामलो मे आर्थिक उद्देश्य से भी ऐसा किया जाता है। (vi) भगा ले जाने के लिए माता-पिता के नियन्त्रण का अभाव, परिवार मे स्नेहपूर्ण सम्बन्धों का अभाव, आदि प्रमुख कारण हैं।

हत्या
(MURDER)

हत्या के मामले स्त्री और पुरुष दोनों ही के साथ घटित होते हैं, किन्तु विश्व मे सर्वत्र ही स्त्रियों की तुलना में पुरुषों की ही हत्या अधिक होती है। अमेरिका मे प्रति वर्ष कुल हत्या का 20 से 25 प्रतिशत भाग महिला हत्या का होता है जबकि भारत में यह प्रतिशत केवल 10 ही है। भारत में हत्या में सम्मिलित लोगों में 96 7 प्रतिशत पुरुष एवं 3.34 प्रतिशत महिलाएं होती है। डॉ. आहूजा द्वारा हत्या सम्बन्धी किए गए अध्ययन में यह पाया गया कि हत्या करने वाले एवं हत्या के शिकार एक ही परिवार के होते है (लगभग 94%)। 80% हत्यारे 25 से 40 वर्ष की आयु समूह में से थे। हत्या की शिकार औरतों का प्रतिशत लगभग 50 था। जिन स्त्रियो की हत्या की गई, उनमें से आधी स्त्रियों के सन्तानें थी। अधिकांश हत्यारे निम्न व्यवसाय एवं आयु समूह से सम्बन्धित थे। 2/3 हत्याएं भावावेश मे तथा अनियोजित ढंग से की गई थीं। महिलाओं की हत्या के प्रमुख कारण स्त्री की लम्बी बीमारी, अन्य पुरुषों से यौन सम्बन्ध एवं छोटे-मोटे घरेलू झगड़े थे।

दहेज हत्याएं
(DOWRY DEATHS)

भारत में दहेज एक गम्भीर समस्या बनी हुई है। दहेज के अभाव में भारत में हजारों स्त्रियो को प्रति वर्ष जलाया जाता है, उन्हें सास-ससुर, देवर-जेठ, पति एवं सुसराल पक्ष

वालों के द्वारा कई प्रकार की यातनाएं दी जाती हैं। उन्हें भूखा रखा जाता है, अपने पीहरवालों से पैसा मंगाने के लिए तंग किया जाता है और यहां तक कि आत्महत्या करने एवं घर छोड़कर चले जाने तक के लिए मजबूर किया जाता है जिससे कि पति दूसरी शादी कर दहेज जुटा सके। यद्यपि 1961 में भारत सरकार ने 'दहेज निरोधक अधिनियम' (Dowry Prohibition Act) बना दिया और इस अधिनियम के अन्तर्गत दहेज लेना व देना दोनों ही अपराध माने गये हैं, किन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि दहेज समाज में केन्सर की तरह बढ़ता ही जा रहा है और दहेज सम्बन्धी मुकदमों की संख्या नगण्य है। देश मे प्रतिवर्ष लगभग पांच हजार हत्याएं दहेज के कारण होती हैं। भारत में प्रतिदिन 33 तथा प्रतिवर्ष 5,000 हत्याएं दहेज से सम्बन्धित होती हैं। चूंकि अधिकांश दहेज सम्बन्धी हत्याएं लड़की की ससुराल में ही होती हैं, अतः ससुराल वाले हत्या सम्बन्धी प्रमाण मिटा देते है और उसे आत्महत्या या हादसे का रूप दे देते है। साक्षी के अभाव में अपराधी अक्सर बच जाते है।

सामान्यतः यह देखा गया है कि दहेज सम्बन्धी हत्या एवं उत्पीडन के मामले निम्न एवं उच्च वर्ग की तुलना में मध्यम वर्ग मे अधिक होते है। दहेज मे उत्पीड़ित 70% महिलाएं 21 से 24 वर्ष के आयु समूह में से होती है। दहेज की समस्या निम्न जातियो की तुलना में उच्च जातियों में अधिक पायी जाती है। स्त्री की शिक्षा के स्तर एवं दहेज हत्या में कोई कार्य-कारण का सम्बन्ध नहीं पाया जाता है। सोचा यह गया था कि शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ दहेज से सम्बन्धित बुराइयों का अन्त होगा, किन्तु हुआ इसके बिल्कुल विपरीत और प्रतिवर्ष दहेज सम्बन्धी हत्याएं एवं उत्पीड़न की घटनाएं बढ़ती ही जा रही है जो पूरे समाज के लिए शर्म की बात है।

पत्नी को पीटना : गृह हिंसा
(WIFE BATTERING : DOMESTIC VIOLENCE)

भारत में पत्नी के रूप में नारी की प्रतिष्ठा रही है और उसे यहा गृह-लक्ष्मी की संज्ञा से सम्बोधित किया गया है। पत्नी को पुरुष की अर्द्धांगिनी, सहधर्मचारिणी, धर्मपत्नी भी कहा जाता है, यहां पत्नी के अभाव में पति द्वारा किए गए धार्मिक कार्यो को निष्फल माना गया है, किन्तु यह तस्वीर का एक पहलू है। पत्नी के साथ दुर्व्यवहार करने एवं उसे मारने-पीटने की घटनाएं भी कई बार सुनने में आती है। विवाह के बाद पति से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी पत्नी का भरण-पोषण करेगा, उसे प्रेम करेगा और संरक्षण प्रदान करेगा। भारत में पति के लिए 'भर्ता' शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ है भरण-पोषण करने वाला। सामान्यतः यह माना जाता है कि घर नारी के लिए सुरक्षा एवं प्रसन्नता की दृष्टि से स्वर्ग है, किन्तु अनेक स्त्रियों के प्रति घर में हिंसा का व्यवहार किया जाता है। उन्हे लातों, घूसों, चांटों व लकडियों से मारा जाता है, हड्डियां तक तोड़ दी जाती हैं। पहल[1] ने अपने अध्ययन में पाया कि पतियों द्वारा अपनी पत्नियो को चाकुओं से गोदा गया। फर्नीचर फेंक कर मारा गया, सीढ़ियों से गिराया गया और कुछ स्त्रियों के तो पैरों मे कीलें ठोकी गईं।

19वीं सदी के अन्त तक इंग्लैण्ड में ऐसा कोई कानून नहीं था जो पुरुष को अपनी पत्नी के साथ गाली-गलौज करने, चोट पहुंचाने या हत्या करने से रोके, किन्तु आज तो वहां

1 Pahl, I., *A Refuge for Battered Women*, p. 32

नारी को अधिक कानूनी सुरक्षा प्राप्त है। कानूनी दृष्टि से आज नारी चाहे अच्छी स्थिति में क्यों न हो, किन्तु फिर भी स्त्रियां घर में उनके प्रति की गयी हिंसा के विरुद्ध पुलिस में शिकायत नही करतीं और कानून व न्यायालय की शरण नही लेती हैं। इस बारे मे पुलिस का दृष्टिकोण भी असहयोगी ही होता है, वह इसे घरेलू मामला, पति-पत्नी का निजी मामला मान कर कोई कार्यवाही नही करती। जब कभी ऐसी स्थिति में पुलिस से मदद मांगी जाती है तो वह केवल झगड़े को शान्त करने तक ही हस्तक्षेप करती है, पुरुष पर दबाव डालने या उस पर आरोप लगाने मे उसकी कोई रुचि नहीं होती है।

नारी की यह मजबूरी है कि उसके साथ हिंसा का व्यवहार होने पर भी वह आर्थिक व सामाजिक कारणों, बच्चों के प्रति अपने दायित्वों एवं सामाजिक निन्दा से बचने, आदि कारणो से सब कुछ शान्त भाव से सहन करती रहती है। वह इसे ही अपना भाग्य मानती है, पूर्व जन्म के कर्मो का फल मानती है। समाज के लोग भी उसे सहिष्णु होने का ही उपदेश देते रहते है। उसे कहा जाता है—'पति के घर में डोली में बैठ कर आयी थी, अब तो यहां से तुम्हारी अर्थी ही उठेगी।' और वह बेचारी जहर के घूंट पीकर जिन्दा लाश की तरह घर मे बनी रहती है। डॉ आहूजा ने अपने अध्ययन में पाया कि 25 वर्ष से कम आयु की स्त्रियों के साथ पीटने की घटनाएं अधिक होती हैं। कम आय वाले परिवारों में ऐसी घटनाएं अपेक्षतया अधिक होती हैं। पत्नी को पीटने के कारणों में यौन सम्बन्धों में असमायोजन, भावात्मक गड़बड़, पति की अहंभावना या हीनभावना, पति का शराबी होना, ईर्ष्या एवं पत्नी द्वारा पति के दुर्व्यवहार के प्रति निष्क्रियता बरतना, आदि प्रमुख हैं। शिक्षित स्त्रियों की तुलना मे अशिक्षित स्त्रियों को अधिक पीटा जाता है।

विधवाओं के प्रति हिंसा (Violence Against Widows)

भारत में विशेष रूप से हिन्दुओं में विधवाओं की एक गम्भीर समस्या है क्योंकि हिन्दुओ में विवाह एक धार्मिक संस्कार माना गया है और यह पति-पत्नी का जन्म-जन्मान्तर का बन्धन है जिसे तोड़ा नहीं जा सकता। अतः पति की मृत्यु के बाद पत्नी को दूसरा विवाह करने की छूट नहीं है। यही कारण है कि पति की मृत्यु के बाद से ही विधवा स्त्री के दुःख प्रारम्भ हो जाते है। उसके सिर को मुंडवा दिया जाता है, वह अच्छे वस्त्र नहीं पहन सकती, शृंगार नहीं कर सकती, इत्र व तेल का प्रयोग नहीं कर सकती, सार्वजनिक उत्सवों एवं शुभ कार्यों मे उसकी उपस्थिति को अपशकुन माना जाता है। सास-ससुर एवं पति के परिवार के लोग विधवा पर अत्याचार करते हैं, उसे डायन की संज्ञा देते है जिसने अपने पति को ही खा लिया है। विधवाओं के भी अनेक प्रकार हो सकते है;जैसे बिना बच्चों वाली युवा विधवा, एक-दो बच्चों वाली प्रौढ़ विधवा एवं अधिक उम्र वाली विधवा,अधिकांशतः युवा एवं प्रौढ़ विधवाओ की समस्याएं ही अधिक हैं। अधिक उम्र वाली विधवा तो अपने बच्चों के परिवार का अंग बन जाती है, वह अपने पोते-पोतियों की देखरेख करने, खाना पकाने, घर के कार्यों में मदद करने एवं मार्गदर्शन करने की दृष्टि से उपयोगी मानी जाती है। युवा एवं प्रौढ़ विधवाओं की समस्याएं गम्भीर होती है। उनके साथ ही अनेक प्रकार के दुर्व्यवहार किए जाते हैं। उन्हें पीटा ज़ाता है, गालियां दी जाती हैं, उनके साथ व्यभिचार एवं लैंगिक दुर्व्यवहार का प्रयत्न किया जाता है, उन्हें पति की सम्पत्ति से वंचित किया जाता है। भारत में स्त्रियों मे अशिक्षा की अधिकता के कारण उन्हें पति के व्यापार, सम्पत्ति, बीमे की रकम और जमापूंजी,

आदि की जानकारी नहीं होती है। इसका लाभ उठाकर उसके ससुराल वाले उससे कागजों पर अंगूठा लगवा कर उसकी वैधानिक सम्पत्ति को हडपने का प्रयत्न करते है। विधवाओ के उत्पीडन के तीन प्रमुख कारण होते हैं—शक्ति, सम्पत्ति और कामवासना की पूर्ति। आयु, शिक्षा और वर्ग की सदस्यता का भी विधवा उत्पीडन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस दृष्टि से वृद्ध विधवाओं की तुलना में युवा विधवाओं, शिक्षित विधवाओ की तुलना में अशिक्षित विधवाओं तथा उच्च वर्ग की विधवाओं की तुलना में मध्यम एवं निम्न वर्ग की विधवाओ को अधिक उत्पीड़ित किया जाता है। विधवा स्त्री की निष्क्रिय कायरता भी उसके उत्पीड़न का प्रमुख कारक है। यद्यपि विधवाओं को पुनर्विवाह की छूट देने की दृष्टि से भारत में 'विधवा पुनर्विवाह अधिनियम',1856 वना हुआ है, किन्तु विधवाओं द्वारा पुनर्विवाह वहुत कम ही किए जाते हैं।

वेश्यावृत्ति
(PROSTITUTION)

एक सामाजिक बुराई के रूप में वेश्यावृत्ति अति प्राचीन काल से प्रचलित रही है। वेश्यावृत्ति को यौन तृप्ति का एक विकृत एवं घृणित साधन माना गया है। इससे व्यक्ति का शारीरिक एवं नैतिक पतन होता है, उसे आर्थिक हानि उठानी पड़ती है तथा यह मानव के पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में विष घोल देती है। **इलियट और मैरिल** लिखते है, "वेश्यावृत्ति एक भेद-रहित और धन के लिए स्थापित किया गया अवैध यौन सम्बन्ध है जिसमें भावात्मक उदासीनता होती है।" वेश्यावृत्ति को रोकने के लिए 1956 में **'स्त्रियों तथा कन्याओं का अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम'** पारित किया गया, फिर भी यह प्रकट और अप्रकट दोनों ही रूप मे भारत में विद्यमान है। प्रकट समूह में वे वेश्याए आती है जो रजिस्टर्ड होती हैं तथा स्पष्ट रूप से वेश्यालय चलाती हैं। शहरों में ऐसे क्षेत्र को जहां वेश्याएं रहती हैं 'लाल रोशनी क्षेत्र' (Red Light Area) कहते हैं। अप्रकट रूप से वेश्यावृति करने वाली स्त्रियां नौकरी या व्यवसाय के साथ-साथ यह कार्य भी करती हैं। वर्तमान में वडे-वड़े शहरों के शराबघरों, होटलों, कैबरे स्थलों, नाचघरो तथा क्लवों में शिक्षित और उच्च घरों की लड़कियां भी इस व्यवसाय में लगी होती हैं। होटलों के मालिक, टैक्सी ड्राइवर, कैबरे नृत्य के संयोजक एवं अन्य दलाल अपना कमीशन लेकर इस कार्य मे सहयोग देते है।

वेश्यावृत्ति का एक रूप **देवदासी प्रथा** भी है। इस प्रथा के अनुसार लडकियों को मन्दिरो में देवताओं की सेवा के लिए भेट चढा दिया जाता है। ये लडकिया मन्दिरो में गायन एवं नृत्य का कार्य तो करती ही है, साथ ही पंडितो,पुजारियों एवं जमींदारों की यौन-भूख वुझाने का कार्य भी करती है। गरीवी, विलासी जीवन व्यतीत करने की लालसा, स्त्री की आर्थिक पराश्रितता, पारिवारिक परिस्थितियां, विवाह विच्छेद, विधवा विवाह पर रोक, दहेज-प्रथा, दुखी वैवाहिक जीवन, अनैतिक व्यापार, अवैध सम्बन्ध, असामान्य कामुकता एवं धार्मिक कारण लड़कियों को वेश्यावृत्ति करवाने के लिए प्रमुख उत्तरदायी कारक हैं।

वेश्यावृत्ति के कारण नारी जगत का अपमान होता है, वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक विघटन मे वृद्धि होती है, नैतिक पतन होता है, आर्थिक हानि होती है, यौन रोगों में वृद्धि होती है। अतः मानवता का यह तकाजा एवं नैतिकता की मांग है कि वेश्याओं को इस कुकर्म से रोक कर *नारी जाति के प्रति किए जाने वाले इस अपराध से नारी की रक्षा* की जाए।

नारी हत्या तथा भ्रूण हत्या
(FEMICIDE AND TOETICIDE)

भारतीय समाज पुरुष प्रधान है तथा यहां लड़की की तुलना में लडके को अधिक महत्व दिया जाता है। धार्मिक दृष्टि से भी पुत्र प्राप्ति आवश्यक माना गया है क्योंकि वही श्राद्ध एवं तर्पण द्वारा मृत पिता एवं पूर्वजों को स्वर्ग पहुंचाता है। उत्तराधिकार की दृष्टि से भी पुत्र का होना आवश्यक है, किन्तु कई वार किसी परिवार में लड़कियों की संख्या अधिक होने पर लडकी के पैदा होते ही मार दिया जाता है (female infanticide) जो नारी हत्या का ही एक रूप है। नारी हत्या हमे प्रकट और अप्रकट कई रूपों में देखने को मिलती है। माता के गर्भ में ही नारी शिशु को मार देना या जन्म के वाद उसे मार देना या दहेज के लोभ में वहू को जला देना या पीट-पीट कर मार देना, उसका उत्पीड़न करना या ऐसी परिस्थितियां पैदा कर देना जिनमें नारी आत्महत्या करने के लिए विवश हो जाए, जहर देकर मार देना, गलाघोट देना, आदि सभी नारी हत्या के प्रत्यक्ष रूप है। नारी हत्या का अप्रत्यक्ष रूप वह है जिसमे नारी शिशु के पालन-पोषण एवं चिकित्सा की ओर उचित ध्यान नहीं देने से वे मौत की शिकार हो जाती हैं। वैज्ञानिक प्रगति ने मानव को हजारों सुख-सुविधा के साधन जुटाए है, आज हम माता के गर्भ की जांच जिसे 'एमनियोसेंटेसिस' (Amniocentesis) कहा जाता है, के द्वारा भ्रूण की जांच कर यह पता लगा सकते है कि उत्पन्न होने वाला शिशु लडका है या लड़की। इस वैज्ञानिक ज्ञान का लोगों ने दुरुपयोग किया है और वह यदि भ्रूण लडकी का है तो उसका गर्भपात करवा देते हैं जो भ्रूण हत्या है। लड़के की चाह में लडकी की हत्या मानवता के माथे पर वहुत वड़ा कलंक है। आज के युग में तो लड़का व लडकियां सभी समान है। वास्तव में जो स्थितियां देखने व सुनने में आती हैं उनके अनुरूप तो लडकों की [illegible]

आज जीवन के हर क्षेत्र में लडकियो को दक्षता से कार्य करते हुए देखा जा सकता है। अतः लोगों के मन से यह भ्रम निकालना होगा कि पुत्र प्राप्ति आवश्यक है और उसकी चाह मे किसी भी रूप में नारी हत्या अमानवीय है एवं नैतिकता व कानून के विरुद्ध अपराध है। नारी हत्या में पुरुष की अपेक्षा स्वयं नारी का योगदान भी कम नही होता है। वास्तव मे देखा जाए तो नारी ही नारी की दुश्मन है। अतः सर्वप्रथम तो नारी को ही नारी के विरुद्ध होने वाले अपराधों को रोकने के लिए उठ खड़ा होना पडेगा।

छेड़छाड़
(TEASING)

नारी के विरुद्ध अपराधों में छेडछाड़ भी एक बढ़ती हुई प्रवृत्ति है। महाविद्यालयों के परिसर मे, रेलों एवं बसो में, वाजारों मे मनचले एवं उद्दण्ड किस्म के लड़कों द्वारा लड़कियों को भद्दे और गन्दे इशारे किए जाते है, उन पर फब्तियां कसी जाती है, उन्हें अपशब्द कहे जाते है, उनके साथ गाली-गलौज की जाती है, उनको छूने का प्रयत्न किया जाता है, उन्हें नोंचने या उनके चिकुटी काटने, नाखुन चुभोने जैसी गन्दी हरकतें की जाती है। कभी-कभी ऐसे लोगों की सार्वजनिक रूप से जनता द्वारा पिटाई भी कर दी जाती है या पुलिस की गिरफ्त में आ जाने पर अच्छी खासी मरम्मत भी हो जाती है। इस प्रकार की गुण्डागर्दी बडे

शहरो में और विशेष रूप से उत्तरी भारत में अधिक पायी जाती है। दिल्ली, कानपुर, आगरा, बनारस और अन्य बड़े शहरों में छेड़छाड की घटनाएं ज्यादा होती है। ऐसी घटनाओं के विरोध में दिल्ली एवं अन्य नगरों मे नारी संगठनों द्वारा प्रदर्शन भी कए गए है तथा गुण्डागर्दी के खिलाफ कानूनी कार्यवाही हेतु अभियान भी चलाए गए है, किन्तु कानून की लम्बी और थका देने वाली महंगी प्रक्रिया के कारण सज्जन व्यक्ति इस पचड़े में नही पड़ना चाहते और इससे गुण्डो के हौसले और बुलन्द होते हैं। नारी के प्रति छेड़छाड की घटनाओं को सिनेमा एवं केम्पस जैसे सीरियलों से बढावा ही मिला है क्योंकि इनमे प्रदर्शित अच्छाई से नही वरन् बुराई से ही लोग अधिक प्रभावित होते हैं। ऐसी घटनाओ से बचने के लिए स्वयं लड़कियो को ही अपने आपको समर्थ बनाना होगा, जूडो-कराटे सीख कर आत्म रक्षा के उपाय करने होंगे, समूह बनाकर ऐसे गुण्डों से उन्हें ही निपटना होगा। सब कुछ सरकार, पुलिस और कानून पर ही नहीं छोड़ा जा सकता।

नारी के विरुद्ध उपर्युक्त अपराधों एवं बढ़ती हिंसा के अतिरिक्त भद्दे और भौंडे विज्ञापनो में नारी के नग्न एवं अर्द्ध-नग्न चित्रों के द्वारा वस्तुओं को बेचने का प्रयास भी नारी की मजबूरी का लाभ उठाना ही है। नाचघरों एवं होटलों में उससे कैबरे नृत्य करवाना भी अप्रत्यक्ष रूप से नारी की मांसल देह का शोषण ही है, किन्तु इन सब के लिए मात्र पुरुष को ही उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता, स्त्री भी कम जिम्मेदार नहीं है। अतः सब से पहला प्रयास तो स्वयं नारियो को ही अपने आप को संयत करके व नैतिक बना कर करना होगा, अन्य उपाय तो बाद में आते हैं।

हिंसा की शिकार कौन (Who are the Victims of Violence)

जिन महिलाओं के साथ अपराध किया जाता है, जिनके विरुद्ध हिसा की जाती वे हैं :

(1) जो गरीब, असहाय एवं अवसादग्रस्त (depressed) होती हैं, जो स्वयं अपनी नजरों में गिर चुकी होती हैं तथा उनके प्रति किए गए अपराध एवं हिसा के कारण भावात्मक रूप से विघटित हो चुकी होती है।

(2) जो विघटित परिवारों में रहती हैं तथा जिन पर परिवार के सदस्यों का दबाव बना रहता है जिससे उनमें अनेक प्रकार की कुंठाएं पायी जाती हैं।

(3) जिनमें मानसिक एवं सामाजिक परिपक्वता का अभाव पाया जाता है।

(4) जिनके ससुराल पक्ष के लोग विकृत व्यक्तित्व के होते है।

(5) जिनके पति शराबी एवं नशेबाज होते हैं।

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के कारण
(CAUSES OF VIOLENCE AGAINST WOMEN)

हम यहां उन कारणों का उल्लेख करेंगे जो महिलाओं के प्रति हिंसा को प्रेरित करते हैं :

(1) पुरुष प्रधानता (Male Domination)—भारत में ही नहीं वरन् विश्व के लगभग सभी समाजों में पुरुषो की प्रधानता पायी जाती है। वह शक्ति का प्रतीक माना जाता है। पुरुष अपनी श्रेष्ठता, शक्ति एवं पुरुषत्व को स्थापित एवं साबित करने के लिए नारी पर अत्याचार करता है।

(2) स्त्रियों की पुरुषो पर आर्थिक निर्भरता (Economic dependency of Women on Men)—भारत मे स्त्रियों की पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता पायी जाती है। पति ही पत्नी

का भरण-पोषण करता है। ऐसी स्थिति में उसे पति के अत्याचार सहन करने पड़ते हैं। यदि उसे पति घर से निकाल देता है तो वह बेसहारा हो जाएगी एवं जीवनयापन की कठिनाई भी सामने आएगी।

(3) अशिक्षा (Illiteracy)—भारत में स्त्रियों मे साक्षरता का प्रतिशत 1991 की जनगणना के अनुसार 39.29 है तथा पुरुषों में 64.13 है। शिक्षा के अभाव के कारण महिलाएं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं है तथा वे यह भी नहीं जानतीं कि उनके हितों की रक्षा के लिए कौन-कौन से कानून बने हुए है तथा उन पर अत्याचार होने पर उन्हें किन संगठनों की मदद लेनी चाहिए। अशिक्षा उन्हें घर की चहारदीवारी तक ही कैद करके रख देती है और वह अत्याचार सहने के लिए मजबूर हो जाती है।

(4) महिलाओं के प्रति विद्वेष (Hostility towards Women)—कई पुरुषों में महिलाओं के प्रति विद्वेष की भावना भरी होती है जिसे वे उनके प्रति अत्याचार करके शान्त करते हैं। जिन लोगो को अपने भूतकाल में किसी स्त्री ने तंग किया हो या जिसका प्रेम असफल हो गया हो, वह सम्पूर्ण नारी जगत के प्रति बदले की भावना से प्रेरित हो कर कार्य करता है। उसके मन में स्त्रियों के प्रति घृणा एवं ईर्ष्या इतनी गहराई से बैठ जाती है कि उसके जीवन का उद्देश्य ही नारी उत्पीडन हो जाता है और वह नारी को अपमानित करने में ही सुख की अनुभूति करता है।

(5) सामाजिक [illegible]
है जिनमें बाल-विवाह [illegible]
इन कुप्रथाओ का शिकार महिलाओं को ही होना पड़ता है और उनसे सम्बन्धित अत्याचार भी महिलाओ को ही झेलने पड़ते है।

(6) पारिवारिक तनाव (Family Tensions)—पारिवारिक तनाव भी महिलाओ के प्रति अत्याचार के लिए उत्तरदायी है। जब पति-पत्नी के स्वभाव में सामंजस्य नही होता है। विचारों में अन्तर होता है तब भी पुरुष अपने को पत्नी पर थोपने का प्रयत्न करता है, उसे अपने अनुकूल बनने के लिए बाध्य करता है और अनुकूल न बनने एवं विरोध करने की स्थिति में पति द्वारा पत्नी पर जुल्म ढाए जाते हैं।

(7) पीड़ित द्वारा भड़काना (Provocation by Victim)—कई बार पीड़ित स्त्रियों का व्यवहार ऐसा होता है जो पति को अत्याचार करने के लिए प्रेरित करता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई स्त्री अपने पति की दूसरो के सामने बुराई करती है, वह ऐसे लोगों से बातचीत करती है जिन्हें उसका पति पसन्द नहीं करता है, पति के परिवार वालो के प्रति दुर्व्यवहार करती है, घर की ओर ध्यान नहीं देती है, किसी पराए मर्द से अनैतिक सम्बन्ध रखती है, सास-ससुर की आज्ञा का पालन नहीं करती है, पति के मामले मे अनावश्यक हस्तक्षेप करती है या उस पर शक करती है, उसे ताने देती है या अपमानित करती है तो ऐसी स्थिति में पति भड़क जाता है और पत्नी के प्रति मार-पीट, गाली-गलौज एवं दुर्व्यवहार करता है। कई बार यह भी देखा जाता है कि जिन महिलाओ के साथ बलात्कार हुआ, वे ऐसी भाव-भंगिमाएं एवं मुद्राएं प्रकट कर रही थीं कि पुरुष बलात्कार के लिए उत्तेजित हो गया। हत्या के मामलों में भी यह पाया गया कि महिला ने बहस के दौरान ऐसी स्थिति पैदा कर दी की पुरुष हत्या के लिए उद्वेलित हो गया। भगा ले जाने के मामलो में भी लड़कियो

ने ऐसा करने के लिए अपनी सहमति दी थी, किन्तु पकड़े जाने पर पुलिस एवं माता-पिता के दवाव में आकर उसने पुरुष पर जबरन भगा ले जाने का आरोप लगा दिया।

(8) नशा (Intoxication)—वे पुरुष जो शराब पीते हैं या अन्य प्रकार का नशा करते है, नशे के दौरान भी पत्नी के प्रति अत्याचार करते है। वलात्कार के कई मामलो में यह पाया गया कि वलात्कारी नशे में धुत्त था। पति शराब पीकर जव घर आता है और पत्नी से कहा सुनी हो जाती है तव भी वह पत्नी को गाली देने या पीटने का कार्य करता है। इसका कारण यह है कि नशे की हालत मे व्यक्ति को अपने द्वारा किए गए कार्यो के परिणामों की जानकारी नहीं होती है जिसके लिए वह होश में आने पर पश्चाताप करता है। ऐसा भी देखा गया है कि कई वार व्यक्ति अपराध करने के लिए साहस जुटाने के लिए भी शराब का सेवन करता है।

(9) अपराधी के प्रति निष्क्रियता (Passiveness towards Criminal)—कई वार अपराध की शिकार महिलाएं अपने प्रति किए गए अपराध को बर्दाश्त करती रहती है और वे पुलिस या न्यायालय की शरण मे जाने या अन्य लोगों से मदद लेने का प्रयत्न नही करती है। ऐसी स्थिति में अपराधी को निरन्तर अपराध करने की प्रेरणा मिलती रहती है और वह ऐसा करता चला जाता है।

(10) परिस्थितिवश प्रेरणा (Situational Urge)—कई वार परिस्थितियां ही ऐसी हो जाती है कि व्यक्ति अपराध कर वैठता है। उदाहरण के लिए, अन्धेरी रात्रि में कोई स्त्री अकेले वीरान स्थान से गुजर रही हो तो वहां उपस्थित व्यक्ति वलात्कार के लिए प्रेरित हो जाता है। खेत, खान या फैक्ट्री मे स्त्री के अकेले होने पर भी मालिक उसके साथ छेडछाड या अवैध सम्वन्ध का प्रयत्न कर सकता है।

महिलाओं के प्रति हिंसा को रोकने के उपाय : सुझाव
(MEASURES TO CHECK VIOLENCE AGAINST WOMEN . SUGGESTIONS)

महिलाओं के प्रति किए जाने वाली हिंसा को रोकने के लिए हम निम्नांकित उपाय अपना सकते हैं :

(1) आश्रय की व्यवस्था (Arrangement for Shelter)—सरकार और स्वयंसेवी संगठनों को ऐसी महिलाओं के लिए आवास की व्यवस्था करनी चाहिए जो पति और ससुराल वालों के अत्याचार से तंग आकर घर छोड़ना चाहती है। जिन महिलाओं का अपहरण किया गया है या जिन्हें भगा कर ले जाया गया है वे जव पकड ली जाती है तो उनके लिए तथा जिन्हें मारने की धमकियां दी जा रही है या जिनके प्रति प्रतिदिन हिंसा हो रही है, ऐसी महिलाओं के लिए सुरक्षित, स्थायी या अस्थायी आश्रय जुटना चाहिए।

(2) रोजगार की व्यवस्था (Arrangement for Employment)—स्त्रियों द्वारा उनके प्रति की जाने वाली हिंसा को बर्दाश्त करने का एक कारण आर्थिक है। वे अपने व अपने वच्चों के भरण-पोषण के लिए पति एवं ससुराल पक्ष के लोगों पर निर्भर होती हैं। यदि ऐसी महिलाओं के लिए रोजगार एवं नौकरी की व्यवस्था की जाए, उन्हें छोटा-मोटा व्यवसाय करने के लिए ऋण की सुविधा उपलब्ध करायी जाए और परामर्श की सुविधा प्रदान करायी जाए तो वे अपने प्रति की गयी हिंसा को सहन नहीं करेंगी और आत्मनिर्भर वनने का प्रयास करेगी।

(3) शिक्षा की सुविधा प्रदान की जाए (Provide Educational Facilities)—स्त्री पर अत्याचार का एक कारण स्त्रियों का अशिक्षित होना भी है। इसे रोकने के लिए स्त्री शिक्षा का प्रसार किया जाए, जो पढ़ाई छोड़ चुकी हैं और आगे पढ़ना चाहती हैं, उनके लिए निःशुल्क शिक्षा एवं व्यावसायिक एवं अन्य प्रकार के प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए। इससे उनमे आत्मविश्वास बढ़ेगा, वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होंगी और अपने प्रति किए जाने वाले अत्याचारों का विरोध कर सकेंगी।

(4) दण्ड की व्यवस्था (Punishment)—जो लोग अपनी पत्नियों को परेशान करते है, उनकी सामाजिक निन्दा की जाए और उन्हे सार्वजनिक रूप से दण्डित किया जाए, जिससे कि अन्य लोगों को भी सबक मिले और वे ऐसा करने के लिए प्रेरित न हों।

(5) महिला न्यायालयों की स्थापना (Establishment of Women Courts)—महिलाओं के प्रति किए गए अपराधों एवं हिंसा की सुनवायी के लिए पृथक् से महिला न्यायालयों की स्थापना की जाए जिसमें अनुभवी महिला न्यायाधीश हों। इससे सामान्य न्यायालयों में जाने का महिलाओ में जो भय होता है वह समाप्त होगा और वे अपनी बात को इन न्यायालयों में साफ-साफ कह पाएंगी। ऐसे न्यायालयों की सुनवायी एवं कार्यवाही सार्वजनिक रूप से न हो। उनमें केवल न्यायाधीश, परिवादी एवं पीड़ित महिला की मदद करने वाले लोगों एवं आरोपियों को ही आने की इजाजत हो।

(6) कानूनी सहायता एवं परामर्श (Legal Aid and Consultancy)—पीड़ित महिलाओं को कानूनी सहायता प्रदान करने एवं उनके विवादों को निपटाने के लिए स्वयंसेवी संगठनों के आगे आना होगा और वे मुफ्त में ऐसी पीड़ित महिलाओं की मदद करें एवं उन्हें उचित सलाह देकर उनका मार्ग दर्शन करें ताकि वे पुनः सुखी जीवन व्यतीत कर सकें।

(7) महिला संगठनों का निर्माण (Formation of Women Organizations)—पीड़ित महिलाओं को अत्याचारों से मुक्ति दिलाने, उन्हें कानूनी एवं आर्थिक मदद देने, उन्हे नैतिक सम्बल देने एवं उनमे आत्मविश्वास जगाने के लिए अधिकाधिक महिला संगठनों की स्थापना की जाए। ऐसे संगठन पीड़ित महिला के पति, सास-ससुर एवं ससुराल पक्ष वालों से बातचीत कर, उन पर सामाजिक व नैतिक दवाव डालकर समस्या का समाधान करने का प्रयत्न करें। व्यक्तिगत स्तर के स्थान पर यदि महिलाओं द्वारा सामूहिक रूप से प्रयत्न किए जाएंगे तो वे अधिक कारगर होंगे।

(8) वैचारिक परिवर्तन (Change in Attitude)—महिलाओं के विरुद्ध हिंसा एवं अपराधों को रोकने के लिए लड़कियों के माता-पिता के विचारों में भी परिवर्तन लाना होगा। वे लड़कियों का बचपन से ही इस प्रकार का समाजीकरण करते हैं जिसमें उन्हें पति परमेश्वर की धारणा सिखायी जाती है, उन्हें कहा जाता है पति के घर डोली जाती है और अर्थी भी वहीं से उठती है, स्त्री को सहिष्णु होना चाहिए, आदि। ऐसे संस्कारों के कारण ही स्त्री सब कुछ बर्दाश्त करती रहती है और प्रतिरोध नहीं करती। वे अपनी पुत्रियों को विवाहित एवं विधवा जिन्हें उनके पति पीटते हैं या ससुराल वाले दुर्व्यवहार करते हैं, को उनकी इच्छा के विरुद्ध ससुराल में रहने को मजबूर क्यों करते हैं, वे उनको अपने घर क्यों नहीं बुला लेते, सामाजिक कलंक के डर से वे अपनी पुत्री को बलि का बकरा क्यों बनाते हैं?

दूसरी ओर महिलाओं को भी निष्क्रिय रूप से अत्याचार नहीं सहना चाहिए, वे अपने दमन एवं शोषण के प्रति जागरूक हों, उनका विरोध करें, न्यायालय, कानून एवं अपने

परिजनो से मदद मांगें। उनके द्वारा अत्याचार सहने का प्रभाव उनके बच्चों पर भी पड़ता है और वे भी भीरु हो जाते है, उनके व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाता। अतः सर्वप्रथम तो स्वयं महिलाओं को ही उठना होगा, जागना होगा, विरोध प्रकट करना होगा तभी वे संकट की स्थितियों से मुक्त हो पाएंगी।

प्रश्न

1. 'भारत में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा विषय पर एक निबन्ध लिखिए।
2. महिलाओं पर किए जाने वाले अत्याचारों (हिंसा) की विवेचना कीजिए।
3. बलात्कार के कारणों व उपचारों की विवेचना कीजिए।
4. महिलाओं के प्रति किए जाने वाले अपराधों एवं हिंसा के कारणों की विवेचना करते हुए उन्हे रोकने के उपाय (सुझाव) बताइए।

परिशिष्ट

(नोट : यहां प्रत्येक अध्याय से सम्बन्धित लघु उत्तरीय एवं वस्तुनिष्ठ प्रश्न दिए जा रहे है। निबन्धात्मक प्रश्न प्रत्येक अध्याय के अन्त में दिए जा चुके हैं।)

अध्याय 1 : सामाजिक समस्याओं की अवधारणा

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. निम्नांकित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :
   (i) सामाजिक समस्या की अवधारणा।
   (ii) व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्या में अन्तर।
   (iii) विचलन की अवधारणा।
   (iv) विचलन की कोई तीन विशेषताएं।
   (v) सामाजिक समस्याएं, सामाजिक विघटन तथा वैयक्तिक विघटन मे सम्बन्ध।
   (vi) सामाजिक विघटन की अवधारणा।
   (vii) सामाजिक समस्याओ के कोई चार कारण।
   (viii) सांस्कृतिक विलम्बना की अवधारणा।
   (ix) सामाजिक समस्याओं के निवारण के उपाय।
   (x) सामाजिक समस्याओं के क्षेत्र में प्रमुख समाजशास्त्रीय निष्कर्ष।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्नांकित में से असत्य कथन छाटिए :
   (i) विचलन सामाजिक मानदण्डों से बहुत अधिक दूर हटना है।
   (ii) विचलन केवल वैयक्तिक स्तर पर ही होता है।
   (iii) विघटन मे प्रस्थिति तथा भूमिका की निश्चितता पाई जाती है।
   (iv) सामाजिक समस्याओं एवं सामाजिक विघटन में घनिष्ठ सम्बन्ध है।
   (v) सांस्कृतिक विलम्बना की अवधारणा मैकाइवर ने दी है।
   (vi) समूह मनोबल के द्वारा सामाजिक समस्याओं का समाधान सम्भव है।
   (vii) सामाजिक समस्या व्यक्ति एवं समाज दोनो के विकास में कोई बाधा नहीं पहुंचाती।

   [उत्तर—असत्य कथन—(ii), (iii), (v), (vii)]
2. निम्नांकित सिद्धान्तों के प्रतिपादक कौन हैं?
   (i) सांस्कृतिक विलम्बना का सिद्धान्त
   (ii) मूल्य संघर्ष का सिद्धान्त

(iii) वैयक्तिक विचलन का सिद्धान्त

(iv) सामाजिक समस्या के बारे में सामाजिक विघटन का सिद्धान्त।

[उत्तर—(i) ऑगबर्न, (ii) क्यूबर तथा हार्पर, (iii) मार्शल क्लिनार्ड, (iv) रोलॉण्ड वारेन, राबर्ट फैरिस।]

3 निम्नांकित पुस्तकों के लेखकों के नाम बताइए :

(i) सोशियल प्रोब्लम्स।

(ii) मेजर सोशियल प्रोब्लम्स।

(iii) कल्चर एण्ड सोसायटी।

(iv) डिसऑर्गेनाइजेशन—पर्सनल एण्ड सोशियल।

(v) सोशियल डिसआर्गेनाइजेशन।

(vi) सोशियल प्रोब्लम्स एण्ड द चेंजिंग सोसायटी।

(vii) द पोलिश पीजेण्ट इन यूरोप एण्ड अमेरिका।

(viii) सोशियोलॉजी ऑफ डेवियण्ट विहेवियर।

[उत्तर—(i) इस नाम से कई समाजशास्त्रियों ने पुस्तके लिखी है जिनमें प्रमुख हैं—डब्ल्यू. डब्ल्यू. वीवर, पॉल लैण्डिस, शेपर्ड एण्ड वॉस, जॉन जे काने। (ii) रॉब एण्ड सेल्जनिक, (iii) मैरिल एण्ड एल्ड्रिज, (iv) ई. आर. मावरर, (v) इलियट एण्ड मैरिल, (vi) मार्टिन एच. न्यूमेयर, (vii) थॉमस एवं नैनिकी, (viii) मार्शल क्लिनार्ड।]

अध्याय 2 : अपराध

लघु उत्तरीय प्रश्न

निम्लिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :

1. अपराध एक समाजशास्त्रीय अवधारणा के रूप में।
2. अपराध एक कानूनी अवधारणा के रूप में।
3. अपराध के कोई तीन लक्षण।
4. श्वेत-वस्त्रधारी अपराधी।
5. प्रारूपवादी सम्प्रदाय (इटैलियन सम्प्रदाय)।
6. अपराध का समाजशास्त्रीय सिद्धान्त।
7. भारत में अपराध।
8. परिवीक्षा।
9. पैरोल।
10. उत्तर-संरक्षण सेवाएं।
11. परिवीक्षा एवं पैरोल में अन्तर।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्नांकित वाक्यों मे रिक्त स्थानो की पूर्ति कोष्ठक में दिए गए शब्दो से सही शब्दों का चुनाव करके कीजिए :
   (i) अच्छे आचरण के कारण यदि अपराधी को वन्दीगृह से अस्थायी मुक्ति दे दी जाए तब इस व्यवस्था को.........कहा जाता है।
   (प्रोवेशन, पैरोल, उत्तर-रक्षा सेवा, मुक्ति सहायता)
   (ii) भारत में प्राचीर विहीन वन्दीगृहों की योजना आरम्भ करने का श्रेय... ... ..को है। (जवाहरलाल नेहरू, जयप्रकाश नारायण, सम्पूर्णानन्द, राधाकृष्णन)
   (iii) सुख और दुख की धारणा के आधार पर अपराध की व्याख्या करने वाले सिद्धान्त को.........सिद्धान्त कहा जाता है।
   (बहुकारकीय, जैविकीय, शास्त्रीय, आर्थिक)
   [उत्तर—(i) पैरोल, (ii) सम्पूर्णानन्द, (iii) शास्त्रीय।]
2. निम्नांकित प्रश्नो के उत्तर दीजिए :
   (i) इलियट और मैरिल, लैण्डिस तथा डॉ. हैकरवाल द्वारा दी गई अपराध की परिभाषा लिखिए।
   (ii) निम्नलिखित अवधारणाएं या कथन किन समाजशास्त्रियों से सम्बन्धित है :
   (अ) अपराधी जन्मजात होते हैं तथा अपनी विशेष जन्मजात विशेपताओ के कारण वे अपराधी व्यवहार करते हैं।
   (ब) समाज की असन्तुलित आर्थिक व्यवस्था ही अपराध का प्रमुख कारण है।
   (स) अपराध का प्रमुख सम्वन्ध जलवायु से है। जलवायु तथा मौसम मे परिवर्तन होने के साथ ही अपराधों मे भी परिवर्तन देखने को मिलते हैं।
   (द) श्वेतवसन अपराध।
   (य) आर्थिक निर्धारणवाद।
   [उत्तर : (अ) लोम्ब्रोसो, (ब) मार्क्स तथा ऐन्जिल्स, (स) क्वेटलेट, (द) सदरलैण्ड, (य) कार्ल मार्क्स।]
3. निम्नांकित में से सत्य/असत्य कथन छांटिए :
   (अ) कानून के दृष्टिकोण से अपराध किसी देश के कानून के विरुद्ध कार्यवाही है।
   (ब) अपराध का सम्वन्ध सामूहिक हित एवं कल्याण से नहीं है।
   (स) श्वेतवसन अपराध समाज के उच्च सामाजिक-आर्थिक वर्ग के सदस्यों द्वारा किया जाता है।
   (द) शास्त्रीय सिद्धान्त के प्रतिपादक क्वेटलेट और ग्वेरी थे।
   (य) लोम्ब्रोसो की मान्यता है कि अपराधी जन्मजात होते हैं।
   (र) सदरलैण्ड अपराध को संगति और सीख का परिणाम नही मानते है।
   (ल) अपराधी अपराध के परिणाम को जाने विना अपराध करता है।
   [उत्तर—सत्य कथन—(अ), (स), (य)
   असत्य कथन—(ब), (द), (र), (ल)।]

4. निम्नलिखित प्रत्येक प्रश्न के चार वैकल्पिक उत्तर प्रश्न के नीचे दिए गए हैं। इन चारों में से एक सही उत्तर चुनिए :

(1) अपराध को सामाजिक मानदण्डों का उल्लंघन किसने माना है :

(अ) रॉस (ब) मावरर (स) सेथना (द) उपर्युक्त सभी ने।

(2) "वैधानिक रूप से अपराध एक ऐसी क्रिया है जो कानून के अनुसार दण्डनीय है।" यह किसने कहा :

(अ) सेथना (ब) वीवर (स) क्लिनार्ड (द) टाफ्ट।

(3) "अपराध वह कार्य या त्रुटि है जिसके लिए कानून दण्ड देता है।" यह परिभाषा किसने दी है :

(अ) सेठना (ब) टाफ्ट (स) मावरर (द) डेविस।

(4) 'सोसायटी एण्ड द क्रिमिनल' नामक पुस्तक के लेखक कौन है :

(अ) सदरलैण्ड (ब) सेथना (स) मावरर (द) वीवर।

(5) 'प्रिन्सीपल्स ऑफ क्रिमिनोलॉजी' नामक पुस्तक के लेखक कौन है :

(अ) बोंगर (ब) सदरलैण्ड (स) क्वीनै (द) क्लिनार्ड।

(6) अपराध को संगति और सीख का परिणाम कौन मानता है :

(अ) सदरलैण्ड (ब) मर्टन (स) पारसन्स (द) उपर्युक्त सभी।

(7) 'जैसे के साथ तैसा' यह दण्ड के किस सिद्धान्त का आधार है :

(अ) प्रतिशोधात्मक (ब) प्रतिरोधात्मक (स) निरोधात्मक (द) सुधारात्मक।

(8) परिवीक्षा का लाभ किसे दिया जाता है :

(अ) प्रथम अपराधी को (ब) लम्बी सजा काटने वाले को

(स) दूसरी बार अपराध करने पर (द) उपर्युक्त सभी को।

[उत्तर—1 (ब) मावरर, 2 (द) टाफ्ट, 3 (अ) सेठना, 4. (ब) सेठना, 5 (ब) सदरलैण्ड, 6 (अ) सदरलैण्ड, 7. (अ) प्रतिशोधात्मक, 8. (अ) प्रथम अपराधी को।]

अध्याय 3 : बाल-अपराध

लघु उत्तरीय प्रश्न

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :

1. बाल-अपराध की अवधारणा।
2. अपराध तथा बाल-अपराध में अन्तर।
3. भारत में बाल-अपराध।
4 बाल-अपराध का पारिवारिक कारण।
5. बाल न्यायालय।
6 रिमाण्ड होम या अवलोकन गृह।
7. बोर्स्टल स्कूल।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्नांकित मे से किन व्यवहारों को आप बाल-अपराध कहेंगे :
   (i) होस्टल में साथियों का घी चुराकर खाना।
   (ii) घर में भाई-बहिन को मारना।
   (iii) स्कूल में से किसी सहपाठी की जेब से रुपए निकाल लेना।
   (iv) माता-पिता की आज्ञा न मानना।
   (v) वृद्ध व्यक्तियों से अशिष्टता का व्यवहार करना।
   (vi) अपराधियों की संगति में रहना।
   [उत्तर—(i), (iii), (vi)।]
2. निम्नांकित में से कौन से उपचार बाल-अपराधियों के लिए है :
   (1) प्राचीर विहीन जेल, (2) प्रोबेशन सेवाएं, (3) सुधार विद्यालय, (4) बाल-निर्देशन केन्द्र, (5) बोर्स्टल संस्थाएं, (6) परिवीक्षा गृह, (7) तरुण शान्ति सेना, (8) किशोर सदन, बरेली, (9) साहू छत्रपति बोर्डिंग हाउस, सतारा, (10) हरिजन सेवा सघ, (11) रिमाण्ड होम, (12) सेवा सदन, नासिक और (13) किशोर न्यायालय।
   [उत्तर—2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 11, 12, 13]
3. निम्नांकित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कोष्ठक में दिए गए उपयुक्त शब्द का चुनाव करके कीजिए :
   (i) बाल-अपराध का सबसे मुख्य कारण..........परिस्थितियां है।
   (पारिवारिक, राजनीतिक, आर्थिक)
   (ii) बच्चे अथवा किशोर द्वारा किए अपराध के लिए न्यायिक कार्यवाही..........द्वारा की जाती है। (जिला न्यायालय, किशोर न्यायालय, किशोर सदन, सुधार गृह)
   (iii) बहुत कम आयु के साधारण बाल अपराधियों को प्रशिक्षित करके उनमें सुधार करने का कार्य..........करते है।
   (पोषण गृह, सुधार गृह, रिमाण्ड होम, किशोर सदन)
   (iv) बाल-न्याय अधिनियम सन्..........में पारित हुआ। (1960, 1970, 1986)
   [उत्तर—(i) पारिवारिक, (ii) किशोर न्यायालय, (iii) किशोर सदन, (iv) 1986]
4. निम्नांकित वाक्यों में सही वाक्यों के आगे 'हां' और असत्य वाक्यों के आगे 'नहीं' अंकित कीजिए :
   (i) बाल-अपराध का तात्पर्य 15 वर्ष तक के बच्चो द्वारा किए गए कानून विरोधी कार्य से है।
   (ii) बाल-अपराध का आधारभूत कारण परिवार की निर्धनता है।
   (iii) प्रौढ-नैतिक शिक्षा के द्वारा बाल-अपराधियों में सुधार किया जा सकता है।
   (iv) सुधार-गृहों को परिवीक्षण-गृह भी कहा जाता है।
   (v) बोर्स्टल संस्थाओं में 14 से 28 वर्ष तक के बाल-अपराधियों का सुधार किया जा रहा है।
   (v) उत्तर प्रदेश में रिमाण्ड-गृहों की स्थापना के द्वारा बाल-अपराधियों का सुधार किया जा रहा है।
   [उत्तर—सही वाक्य—(iv), (vi), असत्य वाक्य—(i), (ii), (iii), (v)।]

5 निम्नांकित कथन जिन विद्वानो के हैं, उनका नाम लिखिए :

(अ) वाल-अपराध के अन्तर्गत किसी राज्य विशेष में उस समय लागू कानून द्वारा निर्धारित एक निश्चित आयु से कम वच्चों या युवक द्वारा किए गए अनुचित कार्यो का समावेश होता है।

(व) अपराधों में सड़को पर घूमना व भीख मांगना, दुर्व्यवहार, घातक शैतानियां और उच्छृंखल व्यवहार सम्मिलित होते हैं।

(स) "जब पिता रात को ड्यूटी देते हैं, और माता दिन में अथवा दोनों रात या दिन मे ड्यूटी देते है, तो वच्चे प्रायः सड़क पर ड्यूटी देते हुए मिलते हैं।"

[उत्तर—(अ) सेथना, (व) रॉबिन्सन, (स) न्यूमेयर।]

6. निम्नलिखित प्रत्येक प्रश्न के चार वैकल्पिक उत्तर प्रश्न के नीचे दिए गए हैं। इन चारों में से केवल एक सही उत्तर चुनिए :

(1) भारत में वाल-अपराधी के लिए लड़के व लडकी की आयु क्या है :

(अ) 7 वर्ष, 10 वर्ष से कम (व) 10 वर्ष, 12 वर्ष से कम

(स) 15 वर्ष, 16 से कम (द) 16 वर्ष, 18 वर्ष से कम।

(2) वाल-न्याय अधिनियम किस सन् में पारित हुआ :

(अ) 1974 (ब) 1984 (स) 1986 (द) 1991।

(3) भारत में 'अप्रेण्टीसेज एक्ट' किस सन् में वना :

(अ) 1850 (व) 1950 (स) 1964 (द) 1986।

(4) राजस्थान में वाल-अधिनियम कव बना :

(अ) 1888 (ब) 1919 (स) 1928 (द) 1970।

(5) भारत में पहला वाल-न्यायालय किस सन् में स्थापित किया गया :

(अ) 1890 (व) 1922 (स) 1950 (द) 1986।

(6) वाल-अपराधी को पकड़ने पर पुलिस उसे कहां भेजती है :

(अ) जेल (व) अवलोकन गृह (स) प्रमाणित विद्यालय (द) बोर्स्टल स्कूल।

(7) निम्नांकित मे से कौन-सा वाल-अपराधियों के लिए औद्योगिक विद्यालय है :

(अ) रिमाण्ड होम (व) सर्टिफायड स्कूल

(स) बोर्स्टल स्कूल (द) फोस्टर स्कूल।

(8) वोर्स्टल स्कूल का जन्मदाता कौन था :

(अ) हैकरवाल (ब) सम्पूर्णानन्द

(स) एल्विन रगिल्स (द) सदरलैण्ड।

[उत्तर—1 (द) 16 वर्ष, 18 वर्ष से कम, 2 (स) 1986, 3. (अ) 1850, 4 (द) 1970, 5 (व) 1922, 6 (व) अवलोकन गृह, 7. (व) सर्टिफायड स्कूल, 8. (स) एल्विन रगिल्स।]

अध्याय 4 : जनसंख्या समस्या एवं नियन्त्रण कार्यक्रम

लघु उत्तरीय प्रश्न

निम्नांकित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए -

1. माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त।
2. राष्ट्रीय जनसंख्या नीति की प्रमुख विशेषताएं।
3. जनसंख्या के बारे में पूर्व माल्थसीय विचार।
4. जनसंख्या का आदर्श सिद्धान्त।
5. निम्न के कारण बताइए -
   (अ) मृत्यु-दर का घटना (ब) शिक्षित भारतीयों का विदेशो मे पलायन
   (स) जनसंख्या-वृद्धि
6. भारतीय जनसंख्या की प्रमुख विशेषताएं।
7. अति जनसंख्या वृद्धि के दुष्प्रभाव।
8. भारत में परिवार नियोजन (कल्याण) की प्रगति।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(I) नीचे कुछ प्रश्न और उनके उत्तरो के विकल्प दिए गए हैं, सही विकल्प का चयन कीजिए :

1. 'अर्थशास्त्र' नामक पुस्तक के लेखक कौन है :
   (अ) चाणक्य (ब) मनु (स) वेदव्यास (द) पाराशर।
2. किसने कहा था—जनसंख्या की वृद्धि ज्यामितीय एवं खाद्य-सामग्री की वृद्धि गणितीय क्रम से होती है :
   (अ) सैडलर (ब) माल्थस (स) अरस्तू (द) प्लेटो।
3. सन् 1991 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या है :
   (अ) 33.3 करोड़ (ब) 68 5 करोड़
   (स) 84.63 करोड़ (द) 90 करोड़।
4. 1991 की जनगणना के अनुसार भारत की ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत है :
   (अ) 70 (ब) 74 3 (स) 75 (द) 76 3।
5. 1991 की जनगणना के अनुसार भारत का जनघनत्व है :
   (अ) 273 (ब) 216 (स) 267 (द) 250।
6. 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में साक्षरता का प्रतिशत है :
   (अ) 29.4 (ब) 52.21 (स) 36 2।
7. जनसख्या की दृष्टि से भारत का विश्व में कौन-सा स्थान है :
   (अ) प्रथम (ब) द्वितीय (स) तृतीय (द) चतुर्थ।
8. भारत में सर्वाधिक साक्षरता किस प्रान्त की है :
   (अ) केरल (ब) राजस्थान (स) मध्य प्रदेश (द) हरियाणा।

[उत्तर—1. (अ), 2 (ब), 3. (स), 4 (ब), 5. (स) 6. (ब), 7. (ब), 8. (अ)]

2 निम्नांकित के सही जोड़े बनाइए :

(1) जनसंख्या नीति — (अ) माल्थस

(2) आदर्श जनसंख्या का सिद्धान्त — (ब) एन ऐसे ऑन प्रिन्सीपल्स ऑफ पापुलेशन

(3) जनसख्या के नैसर्गिक एव निरोधक प्रतिबन्ध — (स) चाणक्य

(4) अर्थशास्त्र — (द) 1976

(5) माल्थस — (य) प्रो. रोबिन्स

[उत्तर—1. (द), 2 (य), 3 (अ), 4 (स), 5 (ब)।]

3 निम्नांकित के उत्तर दीजिए :

(अ) 1991 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या क्या है?

(ब) 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में साक्षरता की दर क्या है?

(स) 1991 की जनगणना के अनुसार भारत का जनसंख्या घनत्व क्या है?

(द) 1991 की जनगणना के अनुसार ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत क्या है

(च) भारत का सबसे बड़ा नगर कौन-सा है?

(छ) 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में लिंग अनुपात क्या है?

[उत्तर—(अ) 84 63 करोड़, (ब) 52 21%, (स) 267, (द) 74 3, (च) मुम्बई, (छ) 927 स्त्रिया प्रति हजार पुरुष।]

4 निम्नांकित वाक्यो में रिक्त स्थानो की पूर्ति कीजिए :

(अ) चाणक्य ने..........नामक पुस्तक लिखी।

(ब) माल्थस के अनुसार जनसंख्या का वृद्धि क्रम.......है।

(स) राजस्थान में साक्षरता का प्रतिशत........है।

[उत्तर—(अ) अर्थशास्त्र, (ब) ज्यामितिक, (स) 38 81।]

5 निम्नलिखित प्रत्येक प्रश्न के चार वैकल्पिक उत्तर प्रश्न के नीचे दिए गए हैं। इन चारों में से केवल एक सही उत्तर चुनिए :

(1) किसी क्षेत्र की जनसंख्या में परिवर्तन के लिए उत्तरदायी कारक कौन-कौन से हैं :

(अ) जन्म-दर (ब) देशान्तरण (स) मृत्यु-दर (द) सभी।

(2) निम्नांकित में से जन्म-मरण के आंकड़ों में किन-किन तथ्यों को सम्मिलित किया जाता है :

(अ) जन्म-दर (ब) मृत्यु-दर

(स) स्वास्थ्य एवं औसत आयु (द) सभी।

(3) सन् 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में स्त्रियों मे साक्षरता का प्रतिशत है :

(अ) 52 (ब) 63 (स) 40 (द) 39.29।

(4) विश्व में सर्वाधिक जनसंख्या जिस देश की है, वह है :

(अ) भारत (ब) संयुक्त राज्य अमेरिका

(स) चीन (द) रूस।

(5) भारत में सर्वाधिक जनसंख्या वाला राज्य है :

(अ) मध्य प्रदेश (ब) उत्तर प्रदेश (स) बिहार (द) महाराष्ट्र।

(6) भारत में अनियन्त्रित जनसंख्या-वृद्धि के लिए उत्तरदायी कारक हैं :

(अ) बाल-विवाह (ब) विवाह की अनिवार्यता

(स) पुत्र प्राप्ति को अधिक महत्व (द) उपर्युक्त सभी।

(7) भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम किस सन् में प्रारम्भ हुआ :

(अ) 1947 (ब) 1950 (स) 1951 (द) 1952।

(8) 'पापुलेशन ऑफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान' के लेखक है :

(अ) मार्शल (ब) के. डेविस (स) प. नेहरू (द) मि. जिन्ना।

[उत्तर—1. (द) सभी, 2 (द) सभी, 3. (द) 39 29, 4 (स) सभी, 5 (ब) उत्तर प्रदेश, 6. (द) उपर्युक्त सभी, 7. (द) 1952, 8 (ब) के डेविस।]

अध्याय 5 : निर्धनता

लघु उत्तरीय प्रश्न

निम्नांकित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :

1. भारत के विकास के मार्ग में समस्याएं।
2. निर्धनता की अवधारणा।
3. निर्धनता की माप।
4. भारत में निर्धनता का विस्तार।
5. पूर्ण एवं सापेक्ष निर्धनता।
6. निर्धनता के सामाजिक कारक।
7. निर्धनता और पंचवर्षीय योजनाएं।
8. निर्धनता निवारण के प्रयत्न।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्नांकित में से निर्धनता के परिणामों का चयन कीजिए :

   (i) दहेज प्रथा, (ii) विवाह-विच्छेद, (iii) बेकारी, (iv) सती-प्रथा, (v) अत्यधिक मद्यपान, (vi) भिक्षावृत्ति, (vii) वेश्यावृत्ति, (viii) बाल-विवाह, (ix) विधवा-विवाह निषेध, (x) अपराध, (xi) आत्महत्या।

   [उत्तर—(ii), (iii), (vi), (vii), (x), (xi)]

2. भारत में निर्धनता के चार प्रमुख कारणों का निम्नांकित मे से चयन कीजिए :

   (i) भाषा सम्बन्धी संघर्ष, (ii) कर्मकाण्डो पर अपव्यय, (iii) मुकद्दमो की देर से सुनवाई, (iv) क्षेत्रीय विवाद, (v) धन का दोषपूर्ण संचय, (vi) जनसंख्या की तीव्र गति से वृद्धि, (vii) मजदूर संघो की स्थापना, (viii) खेती का पिछडापन।

   [उत्तर—(ii), (v), (vi), (viii)।]

3. निम्नलिखित प्रत्येक प्रश्न के चार वैकल्पिक उत्तर प्रश्न के नीचे दिए गए हैं। इन चारों में से केवल एक सही उत्तर का चयन कीजिए :

1 "निर्धनता एक ऐसे जीवन-स्तर के रूप में परिभाषित की जा सकती है जिसमें स्वास्थ्य और शरीर सम्बन्धी क्षमता नहीं बनी रहती।" निर्धनता की यह परिभाषा किसने दी है :

(अ) गिलिन एवं गिलिन (ब) योगेश अटल

(स) वीवर (द) डाण्डेकर।

2 "निर्धनता की अवधारणा का सम्बन्ध सापेक्ष रूप से वंचित रहने के तथ्य से है।" यह कथन किसका है :

(अ) वीवर का (ब) डाण्डेकर एवं रथ का

(स) डॉ योगेश अटल का (द) गुन्नार मिर्डल का।

3. निर्धनता की माप का आधार है :

(अ) राष्ट्रीय आय (ब) व्यक्तिगत आय

(स) उपभोग खर्च (द) उपर्युक्त सभी।

4 भारत मे गरीबी-रेखा से नीचे किन लोगों को माना गया है :

(अ) जो प्रतिदिन 2250 कैलोरी ऊर्जा देने वाला भोजन प्राप्त न कर सकें

(ब) जिनका उपभोग खर्च 1989-90 के मूल्य स्तर पर 127 रुपए प्रति माह से कम हो

(स) जिनकी मासिक आय (चालू मूल्य स्तर पर) 150 रुपए प्रति माह से कम हो

(द) उपर्युक्त सभी।

5 एक व्यक्ति जिसकी आय 1989-90 के मूल्यों के आधार पर 71 रुपए से भी कम है, उसे कहते है :

(अ) गरीब (ब) बहुत गरीब

(स) सर्वाधिक गरीब (द) उपर्युक्त में से कोई भी नहीं।

6. राजस्थान में अन्त्योदय योजना किस सन् में प्रारम्भ की गयी :

(अ) 1952 (ब) 1978 (स) 1982 (द) 1990।

[उत्तर—1 (स) वीवर, 2. (स) डॉ. योगेश अटल का, 3. (द) उपर्युक्त सभी, 4 (द) उपर्युक्त सभी, 5. (स) सर्वाधिक गरीब, 6 (ब) 1978]

अध्याय 6 : बेकारी

निम्नांकित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :

1. भारत में बेकारी।
2. बेकारी और अर्द्ध-बेकारी।
3. बेकारी के व्यक्तिगत कारण।
4. बेकारी के दुष्प्रभाव।
5. ग्रामीण क्षेत्र मे बेकारी।
6. नगरीय क्षेत्र में बेकारी।

7. शिक्षित बेकारी।
8. बेकारी और पंचवर्षीय योजनाएं
9. ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रम।
10. बेकारी निवारण हेतु दीर्घकालीन उपाय।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्नांकित में से किन व्यक्तियों को आप बेरोजगार कहेंगे :
   (i) एक पागल व्यक्ति जो कहीं भी नौकरी नहीं पाता।
   (ii) गांव का एक अशिक्षित किसान जिसे प्रयत्न करने पर भी कोई धन्धा या काम नहीं मिल रहा है।
   (iii) एक धनी माता-पिता का एम. ए. पास लड़का जो न नौकरी करता है और न ही अपने पिता की फैक्ट्री मे काम की देखभाल करना चाहता है।

   [उत्तर—(ii)।]

निम्नलिखित प्रत्येक प्रश्न के चार वैकल्पिक उत्तर प्रश्न के नीचे दिए गए हैं। इन चारों में से केवल एक सही उत्तर का चयन कीजिए।

1. "सामान्य दशाओं तथा सामान्य वेतन दर पर व्यक्ति को बलपूर्वक और अनैच्छिक रूप से वेतन के काम से अलग कर देने की स्थिति।"
   यह कथन किस विद्वान का है
   (अ) फेयरचाइल्ड (ब) जी. आर. मदान
   (स) डिमैलो (द) पीगू।
2. "उस देश में बेकारी है जहां स्वस्थ शरीर वाले ऐसे व्यक्तियों को मजदूरी के सामान्य स्तर पर काम नही मिल पाता जो काम करना चाहते हैं।" यह कथन किस विद्वान का है :
   (अ) फ्लोरेन्स (ब) जी. आर. मदान
   (स) प्रो. राजकृष्ण (द) डिमैलो।
3. "बेकारी उन व्यक्तियों की निष्क्रियता के रूप में परिभाषित की जा सकती है जो कार्य करने के योग्य एवं इच्छुक है।" बेकारी को इस रूप में किसने परिभाषित किया है :
   (अ) पीगू (ब) कार्ल प्रिब्राम (स) डिमैलो (द) फ्लोरेन्स।
4. बेकारी के चार आधार—समय, आय, काम करने की इच्छा तथा उत्पादनशीलता किस विद्वान ने बताये हैं :
   (अ) प्रो. राजकृष्ण (ब) फ्लोरेन्स (स) पीगू (द) फेयरचाइल्ड।
5. बेकारी के कारणों को दो भागों—व्यक्तिगत कारण और अवैयक्तिक कारण में किसने बांटा है :
   (अ) कीन्स (ब) इलियट एवं मैरिल
   (स) जी. आर. मदान (द) पीगू।

6. 1991 में ग्रामीण क्षेत्रों मे लोग वेकार थे :

(अ) 35.18 प्रतिशत (व) 45 22 प्रतिशत
(स) 40.24 प्रतिशत (द) 38.59 प्रतिशत।

7. 1991 मे नगरीय क्षेत्रो में लोग वेकार थे :

(अ) 33.44 प्रतिशत (व) 43.52 प्रतिशत
(स) 52.13 प्रतिशत (द) 27.10 प्रतिशत।

8. वन्धुआ मजदूरी प्रथा को समाप्त करने हेतु केन्द्र सरकार ने अधिनियम बनाया :

(अ) 1972 मे (व) 1980 मे
(स) 1976 में (द) 1985 में।

[उत्तर—1 (स) फेयर चाइल्ड, 2. (व) जी. आर. मदान, 3 (द) फ्लोरेन्स, 4 (अ) प्रो. राजकृष्ण, 5 (व) इलियट एवं मैरिल, 6. (स) 40.24 प्रतिशत, 7. (अ) 33 44 प्रतिशत, 8 (स) 1976 में]

अध्याय 7 : अशिक्षा (निरक्षरता)

लघु उत्तरीय प्रश्न

निम्नांकित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :

1 शिक्षा की अवधारणा।
2. भारत मे साक्षरता।
3 अशिक्षा (निरक्षरता) के कारण।
4. अशिक्षा के दुष्परिणाम।
5. अनुसूचित जातियो एवं जनजातियों के लिए शिक्षा।
6. राष्ट्रीय साक्षरता मिशन।
7. प्रौढ शिक्षा कार्यक्रम।
8 ग्रामीण प्रकार्यात्मक साक्षरता कार्यक्रम।
9. स्त्री समानता के लिए शिक्षा।
10. स्त्री-शिक्षा।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रत्येक प्रश्न के चार वैकल्पिक उत्तर प्रश्न के नीचे दिए गए हैं। इन चारों में से केवल एक सही उत्तर चुनिए :

(1) 1951 मे भारत में साक्षरता का प्रतिशत था :

(अ) 15.2 (व) 18 4 (स) 16 6 (द) 14 9।

(2) 1991 में भारत में साक्षरता का प्रतिशत था :

(अ) 40 2 (व) 52.21 (स) 48.7 (द) 56 8।

(3) 1991 में देश में निरक्षरों की संख्या थी :

(अ) 40 4 करोड़ (व) 38.7 करोड़ (स) 55 3 करोड़ (द) 36.5 करोड़।

(4) राजस्थान में 1991 की जनगणना के अनुसार साक्षरता की दर है :

(अ) 34.4 प्रतिशत (ब) 36.8 प्रतिशत
(स) 41.7 प्रतिशत (द) 38.55 प्रतिशत।

(5) राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्रियो की सरक्षरता का प्रतिशत 1991 की जनगणना के अनुसार है :

(अ) 11.59 (ब) 10.76 (स) 12.41 (द) 9.55।

(6) 1991 में देश में निरक्षर स्त्रियां थी :

(अ) 20.51 करोड़ (ब) 22.72 करोड़ (स) 24.76 करोड (द) 27 61 करोड।

(7) 1991 की जनगणना के अनुसार स्त्रियों में निरक्षरता का प्रतिशत है :

(अ) 50.17 (ब) 60.58 (स) 55.79 (द) 52.27।

(8) 1991 की जनगणना के अनुसार पुरुषों में निरक्षरता का प्रतिशत है :

(अ) 26 70 (ब) 28.67 (स) 36 14 (द) 39 11।

(9) देश में 7 वर्ष या इससे ऊपर वाले निरक्षर बच्चे 1991 में थे :

(अ) 32.40 करोड़ (ब) 38.17 करोड़
(ब) 35.17 करोड़ (द) 40.23 करोड़।

(10) 1981 एवं 1991 में साक्षरता की गणना न्यूनतम किस आयु वाली जनसंख्या से की गयी :

(अ) 4 वर्ष (ब) 5 वर्ष (स) 3 वर्ष (द) 7 वर्ष।

(11) राष्ट्रीय साक्षरता मिशन नामक कार्यक्रम कब प्रारम्भ किया गया :

(अ) 1982 (ब) 1988 (स) 1986 (द) 1990।

(12) राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ :

(अ) 1968 में (ब) 1988 में (स) 1962 में (द) 1978 मे।

(13) देश में महिलाओं की सबसे कम साक्षरता दर किस राज्य मे है :

(अ) राजस्थान (ब) गुजरात (स) हरियाणा (द) मध्य प्रदेश।

[उत्तर—1. (स) 16.6, 2. (ब) 52.21, 3 (अ) 40.4 करोड, 4. (द) 38.55 करोड़ 5. (अ) 11 59, 6. (स) 24.76 करोड़, 7 (ब) 60.58, 8 (स) 36.14, 9. (अ) 32 40, 10 (द) 7 वर्ष, 11. (ब) 1988, 12 (द) 1978 13. (अ) राजस्थान (20 44%)]

2. "शिक्षा वह संस्था है जिसका केन्द्रीय तत्व ज्ञान का संग्रह है।" शिक्षा को इस रूप में किसने परिभाषित किया है :

(अ) महात्मा गांधी ने (ब) फिलिप्स ने
(स) बॉटोमोर ने (द) दुर्खीम ने।

[उत्तर—(ब) फिलिप्स ने।]

3. "शिक्षा से मेरा तात्पर्य बच्चे के शरीर, मन और आत्मा में विद्यमान सर्वोत्तम गुणों का सर्वांगीण विकास करता है।" यह कथन किसका है :

(अ) बॉटोमोर का (ब) दुर्खीम का
(स) फिलिप्स का (द) महात्मा गांधी का।

[उत्तर—(द) महात्मा गांधी का।]

4. "शिक्षा अधिक आयु के लोगो द्वारा ऐसे लोगों के प्रति की जाने वाली क्रिया है जो अभी सामाजिक जीवन मे प्रवेश करने के योग्य नही है। इसका उद्देश्य व्यक्ति में उन

भौतिक, बौद्धिक और नैतिक विशेषताओं का विकास करना है जो उसके लिए सम्पूर्ण समाज और पर्यावरण से अनुकूलन करने के लिए आवश्यक है।" शिक्षा की यह परिभाषा किस विद्वान की है :

(अ) मैक्स वेबर की (ब) दुर्खीम की

(स) बॉटोमोर की (द) डॉ. योगेन्द्र सिंह की।

[उत्तर—(ब) दुर्खीम की]

अध्याय 8 : युवकों की समस्याएं : छात्र असन्तोष

लघु उत्तरीय प्रश्न

निम्नांकित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :

1. युवा एवं छात्र असन्तोष का अर्थ।
2. युवकों की समस्याए।
3 छात्र असन्तोष के क्षेत्र।
4. छात्र असन्तोष के कारण।
5. विद्यार्थी नेतृत्व।
6. छात्र असन्तोष से सम्बन्धित राधाकृष्णन कमेटी की रिपोर्ट।
7. युवा असन्तोष को दूर करने हेतु नरेन्द्र देव कमेटी के सुझाव।
8. विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (कोठारी कमीशन 1964-66) के छात्र असन्तोष दूर करने सम्बन्धी सुझाव।
9 मुदालियर आयोग द्वारा दिए गए सुझाव।
10. छात्र असन्तोष में परिवार एवं राजनीतिज्ञों की भूमिका।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

निम्नलिखित प्रत्येक प्रश्न के चार वैकल्पिक उत्तर प्रश्न के नीचे दिये गए हैं। इन चारों में से केवल एक सही उत्तर चुनिए :

(1) छात्र असन्तोष के प्रमुख क्षेत्र है :

(अ) दो (ब) तीन (स) चार (द) पांच।

(2) युवाओं की प्रमुख समस्याएं है :

(अ) आर्थिक (ब) नैतिक मूल्यों का ह्रास

(स) मद्यपान एवं मादक द्रव्य व्यसन (द) उपर्युक्त सभी।

(3) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा नियुक्त कमेटी ने छात्र असन्तोष के कारक बताये हैं :

(अ) दो (ब) चार (स) छ: (द) पांच।

(4) डॉ. योगेश अटल के अनुसार आज विद्यार्थी-वर्ग का सन्दर्भ समूह कौन है :

(अ) शिक्षक (ब) महापुरुष

(स) राजनीतिज्ञ, प्रशासक व फिल्मी स्टार (द) माता-पिता।

[उत्तर—1. (स) चार, 2 (द) उपर्युक्त सभी 3. (द) पांच, 4 (स) राजनीतिज्ञ, प्रशासक व फिल्मी स्टार।]

अध्याय 9 : नशीली दवाओं का दुष्प्रयोग

लघु उत्तरीय प्रश्न

निम्नांकित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :

(i) मादक द्रव्य व्यसन का अर्थ समझाइये।

(ii) भारत में नशीली दवाओं का दुष्प्रयोग।

(iii) मादक द्रव्यों के सेवन के क्या कारण हैं?

(iv) मादक द्रव्यों के दुष्प्रयोग के कोई चार कुप्रभाव बताइये।

(v) मादक द्रव्य दुष्प्रयोग नियन्त्रण।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्नांकित मे से असत्य कथन छांटिए :

(i) मादक पदार्थों के सेवन पर शरीर का आश्रित हो जाना ही मादक द्रव्य व्यसन है।

(ii) मादक द्रव्यों के सेवन से शरीर की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है।

(iii) देश में अफीम के प्रयोग पर रोक का सरकार द्वारा निर्णय सन् 1959 में लिया गया।

(iv) नारकोटिक्स ड्रग्स एण्ड साइकोट्रापिक सबस्टेंसेज एक्ट, 1989 में बना।

(v) मादक पदार्थों की तस्करी और दुरुपयोग के खिलाफ अन्तर्राष्ट्रीय दिवस 26 जून, 1989 का मनाया गया।

(vi) डी-एडीक्शन सेन्टर देश में मादक पदार्थों से छुटकारा दिलाने हेतु सलाह देने का कार्य करते है।

(vii) एल.एस. डी. नामक पदार्थ नशीली आदत से छुटकारा दिलाने हेतु दिया जाता है।

[उत्तर—असत्य कथन (ii), (iv), (vii)]

अध्याय 10 : एड्स

लघु उत्तरीय प्रश्न

निम्नांकित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :

(i) एड्स क्या है?

(ii) एड्स के प्रभाव बताइये।

(iii) एड्स फैलने के प्रमुख कारण क्या है?

(iv) एड्स से बचाव के क्या उपाय है?

(v) एड्स के लक्षण क्या हैं?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्नांकित का उत्तर दीजिए :

(i) एड्स शब्द का पूरा नाम लिखिए।

(ii) एड्स किससे फैलता है?
(iii) एड्स के विषाणु रहने का कोई एक स्थान बताइए।
(iv) भारत में 1992 में एड्स से पीड़ित कितने रोगी थे?
(v) भारत में एड्स फैलाव के केन्द्र कौन-कौन से हैं?

[उत्तर—(i) एक्वायर्ड इम्यूनो डेफिसियंसी सिन्ड्रोम (उपार्जित प्रतिरक्षक अभाव संलक्षण), (ii) विषाणु (वाइरस) से, (iii) वीर्य (iv) 102 (v) मुम्बई, चेन्नई एवं नगालैण्ड)]

अध्याय 11 : भारत में स्त्रियों की समस्याएं

लघु उत्तरीय प्रश्न

निम्नांकित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :

(i) वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति।
(ii) उत्तरवैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति।
(iii) धर्मशास्त्र काल में स्त्रियो की स्थिति।
(iv) मध्यकाल में स्त्रियों की स्थिति।
(v) ब्रिटिश काल में स्त्रियों की स्थिति।
(vi) स्त्रियों की निम्न स्थिति के लिए उत्तरदायी किन्हीं तीन कारकों का उल्लेख कीजिए।
(vii) बाल-विवाह की समस्या।
(viii) विधवा पुनर्विवाह की समस्या।
(ix) दहेज की समस्या।
(x) हिन्दू स्त्रियों की किन्हीं प्रमुख तीन समस्याओं का उल्लेख कीजिए।
(xi) मुस्लिम स्त्रियों की किन्ही तीन समस्याओं का उल्लेख कीजिए।
(xii) स्त्रियों की समस्याओं के समाधान हेतु निर्मित विभिन्न विधान कौन-कौन से है?
(xiii) समता की खोज।
(xiv) एक व्यक्ति के रूप में स्त्री की पहचान।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

I निम्नांकित वाक्यों मे रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(i) दहेज निरोधक अधिनियम सन्..........मे बना।
(ii) वाल-विवाह निरोधक अधिनियम सन्..........में पारित हुआ।
(iii) विधवा पुनर्विवाह अधिनियम सन्..........में पारित हुआ।
(iv) हिन्दू-विवाह अधिनियम सन्..........में पारित हुआ।
(v) हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम सन्.........में पारित हुआ।
(vi) अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष सन्..........में मनाया गया।
(vii) मुस्लिम शरीयत अधिनियम सन्..........में पारित हुआ।
(viii) मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम सन्..........मे पारित हुआ।

[उत्तर—(i) 1961, (ii) 1929 (iii) 1856, (iv) 1955, (v) 1956, (vi) 1975, (vii) 1937, (viii) 1939]]

2. निम्नांकित प्रश्नों के उत्तर दीजिए
   (i) ब्रह्म समाज की स्थापना किसने की?
   (ii) आर्यसमाज की स्थापना किसने की?
   (iii) विशेष विवाह अधिनियम सर्वप्रथम किस सन् मे बना?
   (iv) 1991 की जनगणना के अनुसार महिलाओ मे साक्षरता का प्रतिशत क्या है?
   (v) सती प्रथा निरोधक अधिनियम किस सन् में बना।

   [उत्तर—(i) राजा राममोहन राय, (ii) स्वामी दयानन्द सरस्वती (iii) 1872, (iv) 39 29, (v) 1829.]

3. निम्नांकित में से सही कथन का चयन कीजिए .
   (i) प्रतिलोम विवाह में उच्च कुल का लड़का निम्न कुल की लडकी से विवाह करता है।
   (ii) मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम 1939 मुस्लिम स्त्री को तलाक का अधिकार प्रदान करता है।
   (iii) मुस्लिम शरीयत अधिनियम मुस्लिम स्त्री द्वारा अपने पति को तलाक देने पर रोक लगाता है।
   (iv) महर्षि कर्वे ने विधवा पुनर्विवाह एवं स्त्री-शिक्षा के लिए प्रयत्न किये।
   (v) ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के प्रयत्नो से सती निरोधक अधिनियम बना।

   [उत्तर—सही कथन (ii), (iv)]

4 निम्नांकित के सही जोडे बनाइये .

(i) ब्रह्म समाज	(अ) दयानन्द सरस्वती
(ii) आर्य समाज	(ब) 1872
(iii) शरीयत अधिनियम	(स) राजा राममोहन राय
(iv) राष्ट्रीय महिला आयोग	(द) 1937
(v) विशेष विवाह अधिनियम	(य) 1992

[उत्तर—सही जोडे (i) स, (ii) अ, (iii) द, (iv) 1992, (v) 1872।]

अध्याय 12 : कमजोर वर्गों (विशिष्ट समूहों) की समस्याएं : अनुसूचित जातियों की समस्याएं

लघु उत्तरीय प्रश्न

निम्नांकित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :

(i) अनुसूचित जाति का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
(ii) अनुसूचित जातियों की प्रमुख धार्मिक समस्याएं क्या हैं?
(iii) अनुसूचित जातियों की प्रमुख सामाजिक समस्याएं बताइए।
(iv) अनुसूचित जातियों की आर्थिक निर्योग्यताएं क्या है?
(v) अनुसूचित जातियों की कोई भी दो समस्याओ का उल्लेख कीजिए।
(vi) अस्पृश्यता के कोई तीन दुष्परिणाम बताइए।

(vii) अनुसूचित जातियों के लिए किए गए प्रमुख संवैधानिक उपचारों का उल्लेख कीजिए।

(viii) अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 के प्रमुख प्रावधानों का उल्लेख कीजिए।

(ix) अस्पृश्यता निवारण हेतु कोई तीन सुझाव दीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1 निम्नांकित प्रश्नो का उत्तर दीजिए .

(i) अस्पृश्यो के लिए **'बाहरी जातियां'** शब्द किस जनगणना में प्रयुक्त किया गया।

(ii) गांधीजी ने अस्पृश्यों के लिए किस शब्द का प्रयोग किया।

(iii) अस्पृश्यो के लिए 'अनुसूचित जाति' शब्द का प्रयोग किस सन् मे किया गया?

(iv) 'अखिल भारतीय दलित् वर्ग सघ' की स्थापना किसने की? .

(v) वर्तमान मे लोकसभा में अनुसूचित जातियों के लिए कितने स्थान आरक्षित है।

(vi) वर्तमान मे राज्यो की विधान सभाओं में अनुसूचित जातियों के लिए कितने स्थान आरक्षित हैं?

(vii) अखिल भारतीय आधार पर खुली प्रतियोगिता के आधार पर नियुक्तियो में अनुसूचित जातियों के लिए कितने प्रतिशत स्थान आरक्षित हैं?

(viii) अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम किस सन् में पारित हुआ?

(ix) नागरिक अधिकार सरक्षण कानून किस सन् में पारित हुआ?

[उत्तर—(i) 1931 में, (ii) हरिजन, (iii) 1935, (iv) डॉ. भीमराव अम्बेडकर, (v) 79, (vi) 557, (vii) 15, (viii) 1955, (ix) 1976)]

2. निम्नांकित के उत्तर दीजिए .

(i) संविधान के किस अनुच्छेद मे कहा गया है कि राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग एवं जन्म स्थान के आधार पर कोई विभेद नही करेगा।

(ii) सविधान के किस अनुच्छेद मे अस्पृश्यता के अन्त का उल्लेख है?

(iii) संविधान के किस अनुच्छेद में धार्मिक स्थानों का उपयोग सभी जातियों के लिए खोल देने की व्यवस्था की गयी है?

(iv) संविधान के किस अनुच्छेद में शिक्षण संस्थाओ मे प्रवेश हेतु किसी भी प्रकार का भेद-भाव नहीं करने का कहा गया है?

(v) संविधान के किस अनुच्छेद में संघ एवं राज्यो की नौकरियो मे अनुसूचित जातियो के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गयी है?

(vi) अनुसूचित जातियो एवं जनजातियों के लिए लोकसभा, विधान सभाओ मे आरक्षण की व्यवस्था संविधान के किन अनुच्छेदों में की गयी है?

(vii) संविधान के कौन-से अनुच्छेदों में अनुसूचित जातियों के कल्याण एवं हितों की रक्षा के लिए राज्यों मे सलाहकार परिषदों एवं पृथक् विभागों की स्थापना की व्यवस्था की गयी है?

[उत्तर—(i) अनुच्छेद 15(1), (ii) अनुच्छेद 17, (iii) अनुच्छेद 25, (iv) अनुच्छेद 29, (v) अनुच्छेद 335, (vi) अनुच्छेद 330, 332, (vii) अनुच्छेद 146 एव 338)]

3. निम्नांकित में से असत्य कथनों का चयन कीजिए :
   (i) हरिजन सेवक संघ की स्थापना महात्मा गांधी ने की थी।
   (ii) देश में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या 471 है।
   (iii) 1991 की जनगणना के अनुसार देश में अनुसूचित जातियों की संख्या 15 करोड़ है।
   (iv) डॉ. अम्बेडकर ने अछूतों के लिए पृथक् मतदान का विरोध किया।
   (v) रेसेज एण्ड कल्चर्स ऑफ इण्डिया पुस्तक घुरिए ने लिखी।

[उत्तर—असत्य कथन—(iii), (iv) (v)।]

अध्याय 13 : अनुसूचित जनजातियों की समस्याएं

लघु उत्तरीय प्रश्न

निम्नांकित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :

(i) कमजोर वर्ग की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
(ii) इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडी शिमला ने भारतीय जनजातियों की प्रमुख सात समस्याएं कौन-कौन सी बताई हैं?
(iii) भारतीय जनजातियों की प्रमुख आर्थिक समस्याएं बताइए।
(iv) भारतीय जनजातियों की प्रमुख सामाजिक समस्याएं क्या हैं?
(v) भारतीय जनजातियों की किन्हीं तीन समस्याओं का उल्लेख कीजिए।
(vi) भारतीय जनजातियों की समस्याओं के समाधान हेतु बुद्धिजीवियों ने क्या सुझाव दिए हैं?
(vii) भारतीय जनजातियों की समस्याओं के समाधान हेतु किए गए प्रमुख संवैधानिक उपायों का उल्लेख कीजिए।
(viii) सरकार द्वारा जनजातियों की समस्याओं के समाधान हेतु किए गये किन्हीं तीन कल्याण कार्यक्रमों का उल्लेख कीजिए।
(ix) जनजातियों की समस्याओं के समाधान हेतु चार सुझाव दीजिए।
(x) उचित जनजातीय नीति क्या है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्नांकित प्रश्नों के उत्तर दीजिए :
   (i) सन् 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में अनुसूचित जनजातियों का प्रतिशत क्या है?
   (ii) भारत में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या 1991 की जनगणना के अनुसार कितनी है?
   (iii) सागड़ी प्रथा किस प्रान्त में पाई जाती है?
   (iv) राजस्थान में सर्वाधिक जनसंख्या किस जनजाति की है?
   (v) 'द शेड्यूल्ड ट्राइब्स' नामक पुस्तक के लेखक का नाम बताइए।

(vi) माणिक्यलाल वर्मा आदिम जाति शोध एवं प्रशिक्षण संस्थान राजस्थान के किस नगर में स्थित है?

[उत्तर—(i) 8 08, (ii) 6 78 करोड, (iii) राजस्थान मे, (iv) मीणा जनजाति, (v) जी. एस. घुरिये, (vi) उदयपुर।]

2 जनजातियो की समस्याओं के समाधान हेतु दिए गए निम्नांकित सुझावों से सम्बन्धित बुद्धिजीवियो के नाम बताइए :

(i) पुनरुद्धार (ii) राष्ट्रीय उपवन

(iii) पृथक्करण (iv) आत्मसात।

[उत्तर—(i) एस सी. राय, (ii) राय तथा एल्विन, (iii) हट्टन तथा मजूमदार, (iv) डॉ. घुरिये, अक्षय देसाई एवं निर्मल कुमार बोस।]

3. निम्नांकित में से सत्य कथन छांटिए :

(i) राजस्थान में सर्वाधिक जनसंख्या भील जनजाति की है।

(ii) भारत में सर्वाधिक जनजाति जनसंख्या मध्य प्रदेश में पायी जाती है।

(iii) राजस्थान में बन्धुआ मजदूर प्रथा को सागड़ी प्रथा कहते हैं।

(iv) जनजातियों की समस्याओं के समाधान हेतु 'राष्ट्रीय उपवन' का सुझाव जी. एस. घुरिये ने दिया।

(v) जनजातियों के पृथक्करण का सुझाव हट्टन ने दिया।

(vi) जनजातियों को जी. एस. घुरिये पिछड़े हिन्दू मानते हैं।

(vii) जनजातियों के आत्मसात का सिद्धान्त डॉ. दुबे ने दिया।

[उत्तर—सत्य कथन—(ii), (iii), (v) (vi)।]

अध्याय 14 : अन्य पिछड़े वर्गों की समस्याएं

लघु उत्तरीय प्रश्न

निम्नांकित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :

(i) पिछडे वर्गो की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।

(ii) काका कालेलकर आयोग।

(iii) मण्डल आयोग।

(iv) बन्धुआ मजदूर।

(v) भूमिहीन श्रमिक।

(vi) सीमान्त किसान एवं छोटे किसान।

(vii) भूमिहीन श्रमिकों की प्रमुख समस्याएं क्या हैं?

(viii) भारत मे कृषक आन्दोलन।

(ix) भूमिहीन श्रमिको की समस्याओं के समाधान हेतु सरकार द्वारा किए गये प्रयत्नों का उल्लेख कीजिए।

(x) भूमिहीन श्रमिकों की समस्याओं के समाधान हेतु सुझाव दीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्नांकित वाक्यों में रिक्त स्थानो की पूर्ति कोष्ठक में दिए गए शब्दो में से सही शब्दो का चयन करके कीजिए :
   (i) पिछड़े वर्गो में वे जातियां आती हैं जो अनुसूचित जातियों से..........है। (उच्च/निम्न)
   (ii) काका कालेलकर आयोग की स्थापना सन्..........में की गई। (1948/1953)
   (iii) मण्डल आयोग की स्थापना..........ने की थी। (कांग्रेस/जनता दल)
   (iv) मण्डल आयोग के अनुसार देश में पिछडे वर्गों की जनसंख्या का प्रतिशत..........है। (48/52)
   (v) मण्डल आयोग ने नौकरियों में पिछड़े वर्गो के लिए..... ...प्रतिशत आरक्षण का सुझाव दिया। (20/27)
   (vi) ज्योतिबा फुले ने.........की स्थापना की। (आर्य समाज/सत्यशोधक समाज)
   (vii) 'नारायण धर्म परिपालन' आन्दोलन.........राज्य में चला। (आन्ध्र/केरल)

   [उत्तर—(i) उच्च, (ii) 1953, (iii) जनता दल, (iv) 52, (v) 27, (vi) सत्यशोधक समाज, (vii) केरल।]

2. निम्नांकित प्रश्नों का उत्तर दीजिए :
   (i) संविधान में अन्य पिछड़े वर्ग शब्द का प्रयोग किन अनुच्छेदो में किया गया?
   (ii) पिछड़े वर्गों के लिए मुंगेरीलाल आयोग किस राज्य में स्थापित किया गया?
   (iii) काका कालेलकर आयोग ने पिछड़े वर्गो मे कितनी जातियो को सम्मिलित किया?
   (iv) मण्डल आयोग के अध्यक्ष कौन थे?
   (v) मण्डल आयोग की सिफारिशो को लागू करने का कार्य देश के किस प्रधानमन्त्री के कार्यकाल में हुआ?
   (vi) संविधान का कौन-सा अनुच्छेद बेगार प्रथा को समाप्त करता है।
   (vii) 'बोन्डेड लेवर सिस्टम (ऐवोलिशन) एक्ट' किस सन् मे बना।
   (viii) सीमान्त किसान किसे माना गया है?
   (ix) लघु किसान किसे कहा गया है।
   (x) एका नामक कृषक आन्दोलन किस प्रान्त में हुआ?
   (xi) खेड़ा आन्दोलन किस सन् में हुआ?

   [उत्तर—(i) अनुच्छेद 16(4) तथा 340 में, (ii) बिहार में, (iii) 2,399, (iv) बी. पी. मण्डल, (v) बी. पी. सिंह, (vi) अनुच्छेद 23, (vii) 1976 मे, (viii) जिनके पास एक हेक्टेयर से कम भूमि हो, (ix) जिनके पास एक हेक्टेयर से 2 हेक्टेयर तक भूमि हो, (x) उत्तर प्रदेश, (xi) 1918 मे]

3. निम्नांकित में से सत्य कथन बताइए :
   (i) पिछड़ा वर्ग वह है जो सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक दृष्टि से पिछड़ा है।
   (ii) मण्डल आयोग के अध्यक्ष वी. पी. सिंह थे।
   (iii) मण्डल आयोग ने सरकारी नौकरियों में पिछड़े वर्गों के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण की सिफारिश की थी।

(iv) गांधी शान्ति प्रतिष्ठान देश में बन्धुआ मजदूरों का पता लगाने का कार्य करता है।
(v) प्रथम खेतिहर श्रम जांच समिति की स्थापना 1950-51 में हुई।
(vi) 10 हेक्टेयर से अधिक भूमि वाले किसान को बड़ा किसान माना गया है।
(vii) 'निजाई बोल आन्दोलन' राजस्थान में बिजौलिया मे हुआ।
(vii) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948 में बना।

[उत्तर—सत्य कथन—(iii), (iv), (v), (vi), (viii)]

अध्याय 15 : राष्ट्रीय एकीकरण की समस्याएं (साम्प्रदायिकता, क्षेत्रवाद, भाषावाद एवं जातिवाद)

लघु उत्तरीय प्रश्न

निम्नांकित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :

(i) राष्ट्रीय एकीकरण की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
(ii) राष्ट्रीय एकीकरण के आधार कौन-कौन से हैं?
(iii) क्षेत्रवाद की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
(iv) साम्प्रदायिकता का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
(v) जातिवाद से क्या तात्पर्य है?
(vi) भाषावाद।
(vii) राष्ट्रीय एकीकरण में बाधक किन्हीं दो तत्वों का उल्लेख कीजिए।
(viii) राष्ट्रीय एकीकरण हेतु किन्हीं तीन उपायों का उल्लेख कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्नांकित में से सत्य कथन छांटिए :

(i) भौगोलिक पृथक्करण राष्ट्रीय एकता को जन्म देता है।
(ii) भारत में प्राचीन निवासी द्रविड हैं।
(iii) अंग्रेजों से पूर्व सम्पूर्ण भारत में राजनीतिक एकता विद्यमान थी।
(iv) भारत को विभिन्न धर्मों, प्रजातियों एवं संस्कृतियों का द्रवण-पात्र माना गया है।
(v) जन-गण-मन राष्ट्रीय गीत है।
(vi) भारत मे विभिन्नता में एकता पायी जाती है।
(vii) क्षेत्रवाद का तात्पर्य एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में रहना है।
(viii) सभी भाषाओ का सम्मान करना भाषावाद है।
(ix) अपनी जाति के हितों की बलि देकर अन्य जातियों की भलाई करना ही जातिवाद है।
(x) 'कास्ट इन मॉडर्न इण्डिया एण्ड अदर ऐसेज' नामक पुस्तक के लेखक एम. एन. श्रीनिवास है।

[उत्तर—सत्य कथन—(ii), (iv), (vi) (x)]

2. निम्नांकित का उत्तर दीजिए :
   (i) भारत को विभिन्न धर्मों, प्रजातियों एवं संस्कृतियों का कौन-सा पात्र कहा जाता है।
   (ii) प्रजातियों का अजायबघर किस देश को कहा गया है।
   (iii) राज्य पुनर्गठन आयोग की स्थापना किस सन् में की गयी।
   (iv) भारत में त्रि-भाषा सूत्र किस सन् में बना।
   (v) 'भारतीय राजनीति में जाति' नामक पुस्तक के लेखक कौन है?
   (vi) 'माडर्निटी ऑफ ट्रेडीशन' पुस्तक के लेखक कौन हैं?
   (vii) राष्ट्रीय एकीकरण परिषद् की स्थापना किस की अध्यक्षता में हुई?
   (vii) अखिल भारतीय साम्प्रदायिकता विरोधी समिति का गठन किस सन् मे किया गया?

   [उत्तर—(i) द्रवण-पात्र, (ii) भारत को, (iii) 1953 में, (iv) 1959 में, (v) रजनी कोठारी, (vi) रूडोल्फ एवं रूडोल्फ (vii) श्रीमती इन्दिरा गांधी, (viii) 1970 में।]

अध्याय 16 : भ्रष्टाचार

लघु उत्तरीय प्रश्न

निम्नांकित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :
   (i) भ्रष्टाचार की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
   (ii) भारत में भ्रष्टाचार के किन्हीं तीन कारणों का उल्लेख कीजिए।
   (iii) भारत में भ्रष्टाचार के कोई तीन प्रमुख क्षेत्र बताइए।
   (iv) भ्रष्टाचार के किन्हीं तीन परिणामों का उल्लेख कीजिए।
   (v) भ्रष्टाचार उन्मूलन हेतु कोई चार सुझाव दीजिए।
   (vi) काला धन।
   (vii) भ्रष्टाचार निवारण हेतु गुन्नार मिर्डल द्वारा दिये गये सुझावों में से किन्हीं चार का उल्लेख कीजिए।
   (viii) सन्थानम् कमेटी ने भ्रष्टाचार निवारण हेतु जो सुझाव दिए हैं उनमें से किन्ही चार का उल्लेख कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्नांकित का उत्तर दीजिए :
   (i) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम किस सन् में बना हुआ?
   (ii) टेकचन्द समिति की स्थापना किस सन् में हुई?
   (iii) गृह मन्त्रालय में प्रशासन सतर्कता विभाग की स्थापना किस सन् में हुई?
   (iv) सन्तानम् कमेटी की स्थापना किस सन् में की गयी।
   (v) 'एशियन ड्रामा' पुस्तक के लेखक कौन हैं?

   [उत्तर—(i) 1947 में, (ii) 1949 में, (iii) 1955 मे, (iv) 1962 में, (v) गुन्नार मिर्डल।]

अध्याय 17 : महिलाओं के विरुद्ध हिंसा

लघु उत्तरीय प्रश्न

निम्नांकित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :

(i) 'महिलाओं के विरुद्ध हिंसा' की विवेचना कीजिए।

(ii) छेड़छाड़।

(iii) महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के कोई चार कारण बताइए।

(iv) महिलाओं के प्रति हिंसा को रोकने के कोई चार उपाय बताइए।

(v) बलात्कार।

(vi) पत्नी को पीटना।

(vii) विधवाओं के प्रति हिंसा।

(viii) वेश्यावृत्ति।

(ix) भ्रूण हत्या

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्नांकित का उत्तर दीजिए :

(i) भारत में कितने मिनट में महिलाओं के प्रति एक अपराध होता है?

(ii) सर्वाधिक महिला अपराध भारत के किस राज्य में होते हैं?

(iii) भारत में महिलाओं के साथ बलात्कार किस आयु वर्ग में अधिक होता है?

(iv) भारतीय दण्ड विधान की किस धारा में भाग ले जाने को परिभाषित किया गया है।

(v) अपहरण के सर्वाधिक मामले भारत के किस राज्य में होते है?

[उत्तर—(i) 33 मिनट, (ii) मध्य प्रदेश, (iii) 16 से 30 वर्ष, (iv) 366, (v) उत्तर प्रदेश।]

2. सत्य कथन बताइए :

(i) भारत में प्रतिवर्ष 1,500 महिलाओं को भगा ले जाने की घटनाएं होती हैं।

(ii) भारत मे हत्या में सम्मिलित स्त्रियों का प्रतिशत पुरुषों से अधिक है।

(iii) भारत में 25 वर्ष से कम आयु की स्त्रियों के साथ पीटने की घटना अधिक होती है।

(iv) स्त्रियों तथा कन्याओं का अनैतिक व्यापार अधिनियम 1956 में पारित हुआ।

(v) देवदासी प्रथा वेश्यावृत्ति रोकने में सहायक है।

(vi) मानसिक एवं सामाजिक रूप से परिपक्व महिलाएं हिंसा की शिकार कम होती है।

(vii) पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता ने महिलाओं के प्रति हिंसा को रोकने में सहायता की है।

[उत्तर—सत्य कथन—(i), (iii), (iv), (vi)।]

महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर

मॉडल प्रश्न-पत्र

वी. ए. पार्ट II—समाजशास्त्र

द्वितीय प्रश्न-पत्र : समकालीन भारत में सामाजिक समस्याएं

नोट : 1. प्रत्येक इकाई से एक प्रश्न का चयन करते हुए कुल पांच प्रश्नों के उत्तर दीजिए।
2. प्रत्येक प्रश्न के दो भाग हैं। भाग (अ) निवन्धात्मक रूप में 16 अंक का है और भाग (व) लघु उत्तरात्मक रूप में 4 अंक का है।
3. निवन्धात्मक प्रश्न का उत्तर लगभग 5 पृष्ठों में और लघु उत्तरात्मक प्रश्न का उत्तर लगभग 100 शब्दों में दीजिए।

इकाई : 1

1. (अ) सामाजिक समस्या क्या है? इसके कारण क्या है?
(व) अपराध को परिभाषित कीजिए।

अथवा

2. (अ) बाल अपराध को परिभाषित कीजिए। अपराध एवं बाल अपराध मे अन्तर कीजिए।
(व) रिमान्ड होम क्या है?

इकाई : 2

3. (अ) क्या भारत में जनाधिक्य है? विवेचना कीजिए।
(व) भारतीय जनसंख्या की प्रवृत्ति क्या है?

अथवा

4. (अ) भारत में परिवार नियोजन के गुण एवं दोषो की विवेचना कीजिए।
(व) भारत में जन्मदर एवं मृत्युदर विश्लेषित कीजिए।

इकाई : 3

5. (अ) भारत में छात्र असन्तोष के कारणों की व्याख्या कीजिए।
(व) महाविद्यालय परिसर में छात्र नेतृत्व।

अथवा

6. (अ) भारतीय महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक समस्याएं क्या है?
(ब) एड्स का निदान।

इकाई : 4

7. (अ) गरीवी को परिभाषित कीजिए। भारत में गरीबी के कारणों की व्याख्या कीजिए।
(व) गरीबी के दुष्परिणाम।

अथवा

8. (अ) बेरोजगारी के प्रकारों को विवरणित कीजिए।
   (ब) राजस्थान में अशिक्षा को दूर करने के उपाय।

इकाई : 5

9 (अ) भारत में जनजातियों की समस्याएं क्या है?
   (ब) जनजातीय समस्याओं के कारण।

अथवा

10. (अ) सरकार द्वारा अनुसूचित जातियों की समस्याओं के समाधान हेतु किये गये प्रयत्नों की विवेचना कीजिए।
   (ब) अस्पृश्यता (निवारण) अधिनियम, 1955।